Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी.....
पु०सं०.....
भारती पुस्तकालय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त्रिदेवनिर्णय की विषयसूची

	पृ०
अथ विष्णु निर्णय	
विद्वानों का समागम	२
एक देव	८
विष्णु नाम	१०
विष्णु का वाहन सुपर्ण	१२
सर्प भक्षक गरुड़	१४
सुपर्ण और अमृत हरण	१४
विष्णु और समुद्र	१६
अप्शब्द और विष्णु	१९
सागर और विष्णु	२२
विष्णु और शेषनाग	२३
अनन्त और विष्णु	२४
हरि और विष्णु	२४
विष्णु और चतुर्भुज	२६
विष्णु और अष्टभुज, दशभुज	२७
विष्णु और श्वेतवर्ण	२९
विष्णु और कृष्णवर्ण	३०
सूर्य्य के कृष्ण और श्वेत दो रूप	३२
राम कृष्ण आदि अवतार	३३
विष्णु और श्यामवर्ण	३४
सत्त्वगुण विरोधी कृष्णवर्ण	३६
विष्णु और लक्ष्मी श्री	३७
सूर्य्य और सम्पत्ति	३९
विष्णु और कमल	४२
विष्णु और समुद्र मथन	४३
हलाहल विष आदि	५१
विष्णु और त्रिविक्रम अथवा वामन	५५
विष्णु शब्दार्थ और विष्णु सूक्त	६०
इन्द्र विष्णु और आख्यायिका	७६
यज्ञ वाचक विष्णु शब्द	८३
विष्णु शब्द के प्रयोग पर विचार	९०
वि+क्रम् धातु	९१
अदिति और विष्णु	९२
वलि	९६
प्रार्थना	९८
जलन्धर और विष्णु	१०२
शालग्राम और विष्णु	१०४
शालग्राम की उत्पत्ति	१०६
शालग्राम की पूजा	१०९
विष्णु का शयन और उत्थापन	१०९
मत्स्यादि अवतार	१११
अथ ब्रह्मा निर्णय	
ब्रह्मा वायु	११२
ब्रह्मा नामधेय	११४
ब्रह्मा ऋत्विक	११६
ब्रह्मा की उत्पत्ति और चतुर्मुख	११७
ब्रह्मा और ब्रह्मा की कन्या	११९
ब्रह्मा और गायत्री सावित्री	१२२
गायत्री से ब्रह्मा का विवाह	१२३
सावित्री कथा का आशय	१२५
ब्रह्मा और सरस्वती	१२६
सरस्वती आदि तीन देविएं	१३०

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी.....
पु.स०.....
भारती पुस्तकालय

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषयसूची ॥

सरस्वती और नदी	१३४
सरस्वती नाम पर विचार	१३७
वेद में नदी का वर्णन	१३८
सरस्वती विद्याधिष्ठात्री देवी	१४०
,, और अमरकोश आदि	१४१
सरस्वती सूक्त	१४२
ब्रह्मा और हंस वाहन	१४७
ब्रह्मा का निवासस्थान और पुष्कर	१४७
ब्रह्मा और ब्राह्म अहोरात्र	१४८
ब्रह्मा ऋषि	१४९
ब्रह्मा और ब्रह्मा की पूजा	१५०
अथ रुद्र निर्णय	
रुद्र=मेघस्थ अग्नि, विद्युद्देव	१५३
अग्नि वाचक रुद्र शब्द	१५६
रुद्र और विद्युत	१५८
विद्युत वाचक रुद्र शब्द	१५८
रुद्र की उत्पत्ति और नाम	१६०
रुद्र की उत्पत्ति और शतपथ ब्रा०	१६३
रुद्र शब्द व्युत्पत्ति	१६६
रुद्र और निवासस्थान पर्वत	१६७
रुद्र और वृषभ वाहन	१७०
वाहन और ध्वज	१७०
मेघ वाचक वृषभ शब्द	१७१
रुद्र और गङ्गा	१७४
गङ्गा शब्द की व्युत्पत्ति और सगर	१७७
रुद्र और भस्म	१७८
रुद्र और सर्प	१७८
रुद्र और चर्म्म	१७९
रुद्र और पिनाक	१८०
रुद्र और त्रिनयन	१८१
नयन दृष्टि	१८४
रुद्र और त्रिसङ्ख्याकत्व	१८५
रुद्र और त्र्यम्बक	१८५
रुद्र और पञ्चवक्त्र	१८८
रुद्र और दो रूप	१८८
रुद्र और एकादश मूर्ति	१८९
रुद्र और अष्ट मूर्ति	१८९
अष्ट मूर्ति	१९०
रुद्र और पार्वती	१९१
रुद्र और काली	१९१
रुद्र और गौरी	१९२
रुद्र और अम्बिका	१९२
रुद्र और सती	१९४
रुद्र और अर्धाङ्गिनी	१९५
रुद्र और रोदसी	१९६
रुद्र और चन्द्र	१९७
रुद्र और मरुत्	१९८
रुद्र और सुवर्णादि धातु	१९८
रुद्र प्रस्तर और जलमय पूजा	१९८
रुद्र और पार्थिव पूजा	१९९
रुद्र और त्रिशूल	१९९
रुद्र और नग्नत्व	२००
उपसंहार	२०१
सत्य की महिमा	२०३

इति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

* ओ३म् *

वेद-तत्त्व-प्रकाश

* द्वितीय समुल्लास *

त्रिदेव निर्णय ।

पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान तिथी..... पु०सं०..... भारती पुस्तकालय

उप (१) नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये ।
सुमृडीका भवन्तु नः । ऋग्वेद ।

अर्थ–(अमृतस्य) अमृत जो मुक्तिका दाता अविनश्वर सदा एकरस परमेश्वर है उस के (ये) जो (सूनवः) पुत्र हैं अर्थात् परमेश्वर के जो भक्त हैं । वे (नः) हम लोगों के (गिरः) वचनों को (उप+शृण्वन्तु) सुनें । तत्पश्चात् वे (नः) हम लोगों को (सुमृडीकाः) अच्छे प्रकार सुख पहुंचानेवाले (भवन्तु) होवें । अथवा इस का अर्थ यह भी होता है कि हम मनुष्यों के जो सूनु अर्थात् सन्तान हैं । वे अमृतप्रद परमात्मा के वचनों को अर्थात् वेदों को प्रथम सुनें । तत्पश्चात् हम लोगों के सुखकारी होवें । क्योंकि वेदाध्ययन के विना जगत में कोई सुखकारी नहीं हो सकते ।

---

१ उप-शृण्वन्तु । "प्र परा अप सम् अनु अव निस् निर् दुस् दुर् वि आङ् नि अधि अपि अति सु उत् अभि प्रति परि उप" इतने शब्दों का नाम व्याकरण के अनुसार 'उपसर्ग' होता है । ये उपसर्ग आगे पीछे दूर समीप कहीं हों परन्तु अर्थ के समय क्रिया (Verb) के साथ मिल जाते हैं यह वैदिक नियम है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"विद्वानों का समागम"

एक समय पण्डित विष्णुदत्त, ब्रह्मदत्त, रुद्रदत्त, रामप्रसाद, कृष्णप्रसाद, भैरव-सहाय, भगवतीचरण, चण्डिकाप्रसाद, गङ्गाधर, यमुनानन्दन, और लक्ष्मणानन्द आदि अनेक जिज्ञासु विद्वान् पुरुष अनेक देशों से भ्रमण करते हुए मेरे समीप आ बोले कि हम लोग यद्यपि भिन्न २ देश के निवासी हैं परन्तु तीर्थयात्रा के प्रसङ्ग से सम्प्रति एक भ्राता के समान हो रहे हैं विशेष निवेदन आप से यह है कि हम लोगों ने भारतवर्ष के सकल तीर्थ स्थानों को देख भाल आप के समीप आए हैं। तीर्थयात्रा के समय भारतवर्ष के प्रसिद्ध २ स्थानों में श्री महर्षि दयानन्द सरस्वती के वेदभाष्य के अनुकूल उपदेश देते हुए अनेक आर्य्यपुरुषों के मुखारविन्द से वचनों को सुन बहुत संशय तो प्रथम ही निवृत्त हो चुके हैं। परन्तु दो चार सन्देह ऐसे रह गये हैं जिन से हम सबों के अन्तःकरण आकुल व्याकुल हो रहे हैं। आज्ञा यदि हो तो उन को निवेदन करें ॥ वे ये हैं विष्णु, ब्रह्मा तथा महादेव की पूजा कब से प्रचलित हुई है? और यह वेद विहित है या नहीं। हम सबों ने भी व्याकरण, न्याय, वेदान्त, पुराण, तन्त्र आदि अनेक शास्त्र गुरुमुख से पढ़े हैं। और वेद भी देखे हैं वेदों में विष्णु, लक्ष्मी, श्री, सुपर्ण, गरुड़, समुद्र, ब्रह्मा, सरस्वती, हंस, रुद्र, शङ्कर, महादेव, नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, पशुपति, कृत्तिवासा, गौरी, अम्बिका, वृष आदि सब ही नाम आए हैं। विशेष आप के निकट क्या वर्णन करें। वेदों में विष्णुसूक्त, लक्ष्मीसूक्त, और रुद्रसूक्त, तो बहुत देख पड़ते हैं और इन ही सूक्तों से इन देवों की पूजा भी लोग किया करते हैं इस लिये अधिक सन्देह होता है कि यह पूजा वैदिक है वा अवैदिक। वेदों के देखने से हम लोगों को कुछ भी निश्चय नहीं होता। सन्देहरूप दोला पर मन डोल रहा है ब्रह्मा, विष्णु, और महादेव इन तीन देवों के साथ जो वाहन शक्ति निवास स्थान आदि अनेक उपाधि लगे हुए हैं। उनका भी भेद कुछ प्रतीत नहीं होता विष्णु ब्रह्मा के वाहन पक्षी। महादेव का बैल। पुनः विष्णु का गृह समुद्र। महादेव का पर्वत। विष्णु श्याम, महादेव गौर इत्यादि अनेक उपाधि देखते हैं। ये सब क्या हैं। निश्चित नहीं होते। इत्यादि अनेक शङ्काएं हृदय में उठती हैं इस हेतु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

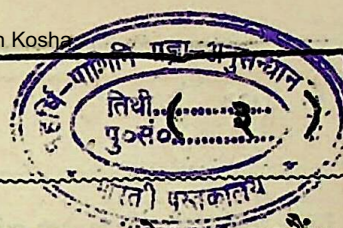

आप कृपा कर इस का भेद हम जिज्ञासुओं से कहें। हम लोग बहुत दूर से आए हुए हैं। हम लोगों के भाव को आप अच्छे प्रकार समझ गये होंगे जो कुछ अन्य विषय भी इन तीन देवों के सम्बन्ध में होवें सब ही विस्तार कर के हम लोगों को समझावें। यही आप से निवेदन है। एवमस्तु। मैं इन सबों का विस्तार से वर्णन करूंगा। आप सब सावधान हो कर सुनें। प्रथम मैं जगदीश को हाथ जोड़ नमस्कार करता हूं जिसने असंख्य सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र पृथिवी समुद्र नदी जलचर स्थलचर नभश्चर आदि पदार्थ उत्पन्न किये हैं और जो हम आप सबों के हृदय में विद्यमान हो हमारे निखिल कर्त्तव्य को देख रहा है। धन्य परमात्मन्! धन्य हे जगदीश! इस के अनन्तर मैं अपनी अति संक्षिप्त कथा सुनाता हूं जिस से मैं आशा करता हूं कि आप लोगों को भी अवश्य लाभ होगा क्योंकि भारतवर्ष में कैसा अन्धकार सर्वत्र व्याप्त है। बड़े २ विद्वान् किस प्रकार इस में पड़ कर अन्धवत् हो रहे हैं और मैं किस प्रकार इस से त्राण पाया। बाल्यावस्था में जब सत्यनारायण की कथा मुझ को अच्छे प्रकार से आ गई तो मेरे मन में एक बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। मैं विचारने लगा कि धनाढ्य पुरुषों में से किसी विरले पुरुष को ही पुण्य प्रताप से मास मास यह कथा सुनने को मिलती है और जो दरिद्र हैं वे अपने जीवन भर में कदाचित् ही एक आधबार ही सुनने पाते हैं। मुझे यह कथा समग्र आ गई है। पूर्व जन्मार्जित पुण्य का यह फलोदय है। मैं इसका प्रतिदिन पाठ किया करूं। इस विचार के अनुसार प्रातःकाल स्नान सन्ध्या आदि कर इसका पाठ करना आरम्भ कर दिया। कुछ दिन के पश्चात् सप्तशती दुर्गापाठ भी अर्थ सहित मैंने पढ़ा। अब विचारने लगा कि इस से बढ़ कर जगत् में कोई गुप्त और सिद्ध ग्रन्थ नहीं है क्योंकि इस से सब सिद्धिएं प्राप्त होती हैं। इसी का पाठ मेरे अखिल मनोरथ को सिद्ध करेगा। अतएव मैं प्रातः और सन्ध्या दोनों काल इसका पाठ आरम्भ किया और इसके लिये जितने नियम व्रतआदिक हैं वह सबही करने लगा। इस के साथ साथ सन्ध्याबन्दन पञ्चदेवतापूजा गायत्रीजप और महिम्नःस्तोत्र आदि अनेक पाठ और अनेक देवताओं के मन्त्रों का जप केवल इस की सहायता के लिये करता था। मेरे ग्राम के समीप प्रायः ८, ९ मील पर गङ्गेश्वर महादेव हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वहां माघमास के प्रत्येक रविवार को उपानह रहित पैदल जाया करता था। कुछ दिन के अनन्तर मेरे पितामह अमृतनाथ चौधरी (मिथिला देश में ब्राह्मणों की भी चौधरी सिंह आदि पदवी है। दरभंगा महाराज ब्राह्मण होने पर भी सिंह कहलाते हैं श्रीमान् रमेश्वर सिंह इत्यादि) मुझ को संस्कृत पाठशाला में भरती करवाने के लिये मधुबनी जो मेरे ग्राम से पूर्व पांच क्रोश पर है, ले गये। वहां मेरा डेरा एक मन्दिर में हुआ। जहां श्रीरामचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र आदि की अनेक प्रकार की मूर्तिएं स्थापित हैं। वहां साम्प्रतिक दरभंगा महाराज के पितामह भ्राता का सुविस्तृत राज्य है इस हेतु यहां बहुत प्रकार के देव मन्दिर हैं यहां मेरे मन में कई एक तरङ्गें उठा करती थीं। किस की उपासना मुख्यतया करनी चाहिये। श्री रामचन्द्र को श्रेष्ठ मानने लगा। परन्तु दुर्गा पाठ में पूर्ववत् ही भक्ति बनी रही। पाठशाला में जब जब अनध्याय होवे तब तब मेरा सम्पूर्ण समय विल्वपत्र और तुलसीदल आदि के लाने में लगता था। दश दश सहस्र विल्वपत्र और तुलसीदल महादेव और शालग्राम को चढ़ाया करता था इस में प्रातः काल से रात्रि के ९,१० बजे तक समय व्यतीत हो जाता था। श्रीयुत मान्यवर पण्डित अम्बिका दत्त व्यास सुप्रसिद्ध विद्वान् उस समय मधुबनी संस्कृत पाठशाला के मुख्याध्यापक थे। मुझ को इन सबों में अधिक समय लगाते हुए देख अनेक उपदेश दिया करते थे। उन में से एक बात यह है कि मुझ को और ५, ७ मेरे सहाध्यायियों को बुला कर मत्स्यमांस खाने से निवारण किया और शपथ भी खिलवाया। इस प्रतिज्ञा के भङ्ग करने पर मेरे एक सहाध्यायी को प्रायश्चित्त भी करवाया। इस समय मेरे मन में यह निश्चय हुआ कि तुलसी आदि के बटोरने में समय व्यर्थ व्यतीत करना है। केवल जप करना चाहिये। तत्पश्चात् यह निश्चय हुआ कि जप करने में भी व्यर्थ ही समय जाता है केवल ध्यान करना चाहिये। पाठशाला में सुनीति संचारिणी सभा होती थी जिसमें पं० अम्बिकादत्त व्यास श्रीकृष्ण जी का ध्यान बहुत बतलाया करते थे। इस हेतु मैंने श्रीकृष्ण जी के ध्यान में कुछ समय व्यतीत किया। परन्तु अब मेरे अन्तःकरण में यह उत्कट जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यथार्थ में ब्रह्म क्या वस्तु है। और वह कैसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मिल सकता है इस विषय में मैंने बहुत प्रश्न करना आरम्भ किया। रात दिन इस में मेरा समय व्यतीत होने लगा। पाठ्य पुस्तकों का अभ्यास बहुत कम करने लगा यह दशा देख व्यासजी मुझको और मेरे दो साथियों को भी गीता सांख्य और योगभाष्य पाठशाला के समय से अतिरिक्त पढ़ाने लगे। इस समय एक हठ योगी लक्ष्मण दास जी महाराज साहब के गृह पर रहते थे। उन से व्यासजी हठ योग सीखने लगे और मुझ को क्रिया सहित हठयोग प्रदीपिका पढ़ाने लगे। इस में मेरे किसी साथी को सम्मिलित नहीं किया। एकान्त स्थान में मुझको आसन आदि क्रियाऐं बतलाते थे। व्यासजी की अधिक वयःक्रम होने के कारण आसन आदि वे स्वयं नहीं लगा सकते थे। मेरी अवस्था बहुत कम थी इस से सब आसन साध लेता था। परन्तु इन आसन आदि क्रियाओं से भी मेरा चित्त प्रसन्न न देख कर व्यासजी मुझको विस्पष्ट कहा करते थे कि यह एक सीखने की बात है इस हेतु सीख लो ताकि तुमको आगे इस की लालसा न रहे और एक ग्रन्थ भी इस प्रकार हो जायगा इस को लोग सिद्धि मानते हैं। देखो तो इस में क्या सिद्धि है। जब पण्डित अम्बिकादत्त व्यास मधुबनी को छोड़ मुज़फ्फ़रपुर इन्ट्रेन्स स्कूल के हेड पण्डित पद पर नियुक्त हुए तो मैं भी इन के साथ ही चला आया यद्यपि इस के लिये मुझ को मधुबनी पाठशाला के सब अध्यापकों से विरोधी बनना पड़ा। यहां आकर धर्म्मसमाज नामक पाठशाला में पढ़ने लगा इस में संस्कृत की आचार्य्य परीक्षा तक संस्कृत के सब ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं। मधुबनी में भी व्यासजी धर्म्म के व्याख्यान देने के समय कभी २ स्वामी दयानन्द सरस्वती की चर्चा किया करते थे। परन्तु यहां इस की चर्चा अधिक बढ़ गई जब जब मैं व्यासजी से स्वामीजी के विषय में कुछ पूछता था तो वे बहला देते थे। मेरी जिज्ञासा इस के विषय में अधिक बढ़ गई॥ धर्म्मसमाज के पुस्तकालय में सत्यार्थप्रकाश का पता मुझ को लगा मैंने उस को पढ़ा। प्रश्नोत्तर होने पर पाठशाला के सब पण्डित मेरे विरोधी बन गये परन्तु मुख्याध्यापक श्रीयुत निधिनाथ झा मुझ को बहुत मानते थे और केवल इन से ही आकर दो घण्टे पाठ पढ़ जाता था। मैं यहां "काव्यतीर्थ" की परीक्षा दी और ईश्वर की कृपा से उत्तीर्ण भी हो गया। अब काशी जाने का मुझको मोका मिला। मैं काशी की मध्यम परीक्षा प्रथम ही दे चुका था। इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हेतु क्विन्सकालेज़ बनारस से छात्रवृत्ति भी मिलने लगी। यह समय प्रायः १८८१ ईस्वी था। श्रीयुत राममिश्र शास्त्री और श्रीयुत गङ्गाधर शास्त्री जी से पढ़ना आरम्भ किया। राममिश्र शास्त्री जी का अब तो नाममात्र शेष रह गया है परन्तु ईश्वर की कृपा से श्रीयुत गङ्गाधर शास्त्री जी अभी कालेज़ में पढ़ा रहे हैं। मैंने इस समय काशी की विचित्र लीला देखी। ४००,५०० मैथिल विद्यार्थी मुझ से विरोध करने लगे। इसी समय काशी के मानमन्दिर में एक पण्डित सभा होने लगी जिसका उद्देश केवल स्वामि-प्रणीत सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का खण्डन करना था। इस में शिवकुमार शास्त्री प्रधान थे और काशी के सब ही प्रसिद्ध पण्डित इकट्ठे होते थे इस सभा नें मेरा बड़ा उपकार किया। काशी के निखिल दिग्गज पण्डितों की योग्यता एक साथ ही प्रतीत हो गई। मुझे निश्चय हो गया कि इन में से कोई भी वेद नहीं जानते। यह घटना देख अत्यन्त शोक भी हुआ कि हाय! आज काशी ऐसे धाम में जब वेद विद्या नहीं रही तब अब भारतवर्ष की किस भूमि पर होगी। क्या ईश्वर की यही इच्छा है कि अपनी वाणी को इस अपवित्र भूमि से उठा ले। इस समय पण्डित कृपाराम जी जो आज कल स्वामी दर्शनानन्द कहलाते हैं काशीजी में थे। पण्डितजी उस सभा के सब प्रश्नों का उत्तर दिया करते थे। इन की सभा अलग हुआ करती थी। मुझे बड़ा आश्चर्य होता था कि काशी के पण्डित लोग कृपाराम जी की युक्तियों का भी खण्डन नहीं कर सकते थे। मेरा न कृपाराम से और न आर्य्यसमाज से कोई सम्बन्ध था। मैं कभी आर्य्यसमाज में भी नहीं गया। परन्तु कृपाराम जी का उत्तर सुनने के लिये केवल कभी २ वहां जाया करता था, जहां वे व्याख्यान दिया करते थे। काशी की प्रसिद्ध २ जितनी सभाएं होती थीं प्रायः मैं सब में जाता था।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यासजी का काशी में ही गृह था इस हेतु जब २ वे आते थे तब २ मुझको प्रायः दर्शन दिया करते थे और कभी २ चार २ घण्टे तक इन के साथ विचार होता रहता था। ये अच्छी तरह से मान गये थे कि मूर्ति पूजा वेद में नहीं है। दयानन्द जो कहता है वह सर्वथा सत्य है परन्तु कलियुग के लोग मन्दबुद्धि हैं अतः इस को नहीं समझ सकते हैं। और इस के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्रहण करने से लोक निन्दा भी होती है इस हेतु अच्छे मनुष्य इस के निकट नहीं जाते इत्यादि। मैं आप लोगों से इतना और भी कहना चाहता हूं कि जब मैंने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में वर्णित अहल्या वृत्रासुर आदि की कथा पढ़ी तो मेरे चित्त में एक बड़ा भारी सन्देह उत्पन्न हुआ। इस के पहिले मैंने इन सबों का ऐसा अर्थ न कहीं सुना था और न पठित पुस्तकों में कहीं देखा ही था। इस हेतु यह सन्देह उत्पन्न हुआ। क्या अन्य आचार्यों ने भी कहीं पर ऐसा अर्थ किया है वा नहीं जिन ग्रन्थों के प्रमाण भूमिका में दिये गये हैं उन का यथार्थ तात्पर्य यह है वा अन्य भी कुछ। इत्यादि सन्देहों से मुझ को वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के अध्ययनार्थ बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हुई तब से अन्य शास्त्रों के अध्ययन को त्याग केवल वेद पढ़ना आरम्भ किया ईश्वर की कृपा से विहार देशस्थ पटना-बांकीपुर रहने लगा यहां चारों वेद सभाष्य पढ़ने को मिल गये। यहां एक पब्लिक लाइब्रेरी भी बहुत उत्तम है। हे विष्णुदत्त आदि महाविद्वानो! वेदों के अध्ययन से सम्यक् प्रकार मुझे विदित हो गया कि आज कल जितनी प्रसिद्ध २ उपासनाएं देश में प्रचलित हैं वे केवल आलङ्कारिक अर्थात् मिथ्या हैं। सब ही प्रसिद्ध देव-विष्णु, महादेव, ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि रूपकालङ्कार मात्र में वर्णित हुए हैं। इस समय जिन २ प्रसिद्ध देवों की पूजा आप लोग देखते हैं वह सब ही बनाई हुई हैं। हे विद्वानो! केवल अपने देश में ही नहीं किन्तु कुछ समय पूर्व सम्पूर्ण पृथिवी पर इन आलङ्कारिक देवों की पूजा होती थी। भारतवासी विद्वान् लोग अभी तक इस मर्म्म को नहीं जानते हैं। आप लोगों ने बहुत सोच विचार कर इस प्रश्न को पूछा है। मैं विस्तार से वर्णन करता हूं आप सुनें। प्रथम मैं महर्षि दयानन्द जी--को सहस्रशः नमस्कार करता हूं कि जिन के ग्रन्थों के अवलोकन से शतशः भ्रम दूर हो गये यदि मुझ को इन की सहायता आज न मिलती तो मैं भी भारतवासी विद्वानों के समान अश्वत्थ, वट तुलसी, विल्व-आदि वृक्षों की, शालग्राम नर्मदेश्वर आदि प्रस्तरों की, गङ्गा यमुना कृष्णा कावेरी आदि नदियों की, भूत, प्रेत, डाकिनी शाकिनी आदि सर्वथा मिथ्या काल्पनिक वस्तुओं की पूजा करता रहता और सत्यनारायण की कथा सप्त-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शती आदि महा मिथ्याभूत ग्रन्थों का ही पाठ करता रहता वेद तक पहुंचने का अवसर नहीं मिलता। यदि मिलता भी तो इस के अर्थ से तो सर्वथा वञ्चित ही रहता। एवं श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, युधिष्ठिर, अर्जुन आदि को ही ब्रह्म अथवा ब्रह्म का अंश मान पर ब्रह्म से सदा विमुख रहता। परन्तु जिनके ग्रन्थावलोकन से ये सारे भ्रम मेरे अन्तःकरण से दूर हो गये उन को प्रथम सहस्रशः नमस्कार हो। पुनरपि सच्चिदानन्द को बन्दना करता हूं कि वह मेरे इस महान् कार्य में सहायक हो।

"यो देवेष्वधि देव एक आसीत्।
कस्मै देवाय हविषा विधेम' ॥ ऋग्वेद

(यः) जो (देवेषु+अधि) सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी, अग्नि, जल, वायु, आकाश, प्राण, इन्द्रिय, आदि समस्त देवों में (एकः+देवः) एक ही महान् देव (आसीत्) विद्यमान है उसी (कस्मै) आनन्द-स्वरूप (देवाय) महान् देव के लिये (हविषा) स्तुति, प्रार्थना, बन्दना उपासना, पूजा, आदि के द्वारा (विधेम) हम सब प्रेम भक्ति किया करें। इति ॥

एक देव।

हे कोविदवरो! जिस काल में ब्रह्मवादी—मधुच्छन्दा, मेधातिथि, दीर्घतमाः अगस्त्य, कक्षीवान्, गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, अत्रि, भारद्वाज, बृहस्पति, वसिष्ठ, नारद, कश्यप, नारायण, शिवसंकल्प, याज्ञवल्क्य ऐतरेय आदि और इन के पुत्र पौत्र दौहित्र आदि विद्वान् तथा ब्रह्मवादिनी—लोपामुद्रा, रोमशा, अपाला, घोषा, सूर्य्या, उर्वशी, यमी, कद्रू, गार्गी आदि विदुषी सब कोई मिल कर देश में वेद विद्या का प्रचार कर रहे थे। उस समय केवल एक ही ब्रह्म की उपासना इस देश में थी। उस परमात्म देव को अनेक नामों से पुकारते थे इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य सुपर्ण, गरुत्मान्, मातरिश्वा, पृथिवी, वायु आदि नामों से। जैसा कि वेदों में कहा गया है:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् ।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ।
सुपर्णं विप्राःकवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति।

मनुजी कहते हैं:—

प्रशासितारंसर्वेषा–मणीयांसमणोरपि
रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं विद्यात्तं पुरुषं परम् ।
एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम् ।
इन्द्रमेकेऽपरेप्राणमपरे ब्रह्म शाश्वतम् ।

बहुत युगों के अनन्तर यहां के महर्षि सन्तान उस प्रिय ब्रह्म को भूल प्राकृत वस्तुओं की उपासना करने लगे । प्राकृत वस्तु अनन्त हैं । यह पृथिवी, जल, जलचर विविधि मत्स्य, मकर, कच्छप आदि, पृथिवीस्थ समुद्र पर्वत, नदी, वृक्ष प्रभृति एवं विविध प्रकार के पशु, एवं परितःस्थित असंख्येय सूर्य्य चन्द्र तारागण ये सब ही प्रकृति देवी की विभूतिएं हैं । एक समय था जब विद्वान् बहुत कम रह गये और उपदेश की परिपाटी सर्वथा बन्द होगई उस समय प्रजाएं अज्ञ बन जिस किसी की पूजा मन माने करने लगीं । पश्चात् कुछ विद्वान् उत्पन्न हुए । यद्यपि वे भी ब्रह्म तक लोगों को न पहुंचा सके परन्तु इन असंख्य देवों की उपासना छुड़ना केवल तीन देवताओं की उपासना में लोगों की रुचि दिलाई । वे तीन देव ये हैं । द्युलोकस्थ सूर्य्य देव । अन्तरिक्षस्थ वायु देव । और पृथिवीस्थ अग्नि देव । और उन विद्वानों ने यह भी उपदेश किया कि ये तीनों यथार्थ में एक ही हैं । उस समय के ग्रन्थों में यह विस्पष्ट लक्षण पाया जाता है कि इन तीनों के ही अन्य समस्त देव देवी अङ्ग हैं । और इन तीनों में भी एक महान् देव गूढ़ रूप से विद्यमान है जो इन को चला रहा है । यथार्थ में वही पूज्य वही उपास्य वही बन्द्य, वही सत्य है । परन्तु इस सूक्ष्मता तक प्रजाएं न पहुंच सकीं । केवल सूर्य्य वायु अग्नि इन तीन ही देवों को प्रधानतारूप से यज्ञादि में पूजने लगीं । परन्तु इस समय तक इन तीनों देवों की कोई मूर्ति नहीं बनी थी । पश्चात् कुछ और विद्वान् उत्पन्न हुए । यह समय बुद्ध देव से बहुत पीछे का था । देश में सर्वत्र प्रायः जैन सम्प्रदाय प्रचलित हो गया था । और ये लोग ईश्वर की अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते थे । अर्थात् नास्तिक थे । नास्तिक होने पर भी ये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग अपने गुरु तीर्थङ्करों की मूर्ति बना कर बड़े समारोह के साथ मन्दिरों में स्थापित कर पूजते थे। इन जैन सम्प्रदायियों ने ही प्रथम इस देश में मूर्ति पूजा की रीति चलाई। जो लोग इस सम्प्रदाय से घृणा रखते थे विचार करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। ये जैनी मूर्ति बना मन्दिरों में स्थापित कर अपने घण्टे घरियाल और शङ्खादिकों की ध्वनि से हमारे भोले भाले भाइयों को अपनी ओर खींच रहे हैं। हमें भी ऐसी मूर्तिएं बनाकर स्थापित करनी चाहियें। यह विचार स्थिर होने पर इन में जो बुद्धिमान् थे उन्हों ने तीन देवता कल्पित किये॥ सूर्य्य के स्थान में विष्णु देव। वायु के स्थान में ब्रह्मा और विद्युत् (बिजुली) के स्थान में महादेव जिसको रुद्र शिव भोलानाथ आदि नाम से पुकारते हैं। विद्युत् एक प्रकार की अग्नि ही है। केवल विद्युत् ही नहीं किन्तु अग्नि शक्ति जितनी है उस सब के स्थान में रुद्र देव बनाये गये। अब यहां क्रमशः निरूपण करते हैं जिससे आप लोगों को विशदतया बोध हो जायगा।

"विष्णुनाम"।

पूर्वकाल में सूर्य्य का ही नाम विष्णु था। इस में प्रथम हम विष्णुपुराण का ही प्रमाण देते हैं यथाः—

तत्र विष्णुश्च शक्रश्च नज्ञाते पुनरेवच (१)
अर्य्यमा चैव धाता च त्वष्टा पूषा तथैवच। १३१
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एवच।
अंशो भगश्चादितिजा आदित्या द्वादश स्मृताः। १३२

विष्णु शक्र अर्य्यमा धाता त्वष्टा पूषा विवस्वान् सविता मित्र वरुण अंश और भग। ये द्वादश नाम सूर्य्य के हैं अब महाभारत का प्रमाण सुनिये।

धाताऽर्य्यमा च मित्रश्च वरुणोंऽशो भगस्तथा (२) ६५

(१)-विष्णुपुराण अध्याय १५। अंश प्रथम। जीवानन्द विद्यासागर प्रकाशित १८८२ ई०। कलकत्ता।

२-महाभारत आदि पर्व अध्याय १२३ प्रतापचन्द्रक प्रकाशित। कलकत्ता। शकाब्द १८०६।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन्द्रो विवस्वान् पूषा च त्वष्टा च सविता तथा ।
पर्जन्यश्चैव विष्णुश्च आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ६६ ॥

इन दो प्रमाणों से सिद्ध है कि पूर्वकाल में सूर्य्य का नाम विष्णु था। यह भी देखिये। अनेक नामों में अन्तरिक्ष (आकाश) का एक नाम विष्णुपद है। यथाः—

"वियद् विष्णुपदं वापि पुंस्याकाशविहायसी"

जिसहेतु आकाश में सूर्य्य का पद=स्थान है अतः विष्णुपद आकाश का नाम है। अब वेद का जो साक्षात् कोश है उसको देखिये। निघण्टु अध्याय ५। खण्ड ६।

त्वष्टा। सविता। भगः। सूर्य्यः। पूषा। विष्णुः वैश्वानरः वरुणः ॥

इस के ऊपर भाष्य करने वाले यास्काचार्य ने विष्णु का सूर्य्य ही अर्थ किया है। वेदों में तो अनेक प्रमाण हैं जिनको आगे निरूपण करेंगे। परन्तु यहां केवल एक प्रमाण सुनाते हैं—

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुष्ये दशास्या।
व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीं मभितो मयूखैः।

(विष्णो) हे सूर्य्य ! (एते+रोदसी) इस द्युलोक और भूलोक को (व्यस्कभ्नाः) आप ने पकड़ रक्खा है और (मयूखैः) अपने अनन्त किरणों से अर्थात् आकर्षण शक्ति से (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) चारों तरफ से (दाधर्थ) धारण किये हुए हैं। इस मन्त्र में किरण वाचक मयूख शब्द विद्यमान है। अतः यहां विष्णु शब्द का सूर्य्य ही अर्थ है। अब अधिक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। आप लोगों को विश्वास हो गया होगा कि विष्णु नाम सूर्य्य का ही था इस हेतु इस विष्णु देव के कल्पना करने वालों ने सूर्य्य के नाम पर ही अपने कल्पित देव का नाम संस्कार भी किया ताकि वेद से सब बातें मिलती जांय।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विष्णु का वाहन सुपर्ण (गरुड़)

अब आप लोगों को इस बात पर पूरा ध्यान रखना चाहिये कि सूर्य्य के जो जो गुण हैं वे ही इस कल्पित विष्णु में भी स्थापित किये गये और जिस २ शब्द के दो दो अर्थ हो सकते हैं उस उस शब्द के अर्थ के अनुसार वाहन, स्थान, शक्ति, आदि बनाए गये हैं। इसी प्रकार जिस २ समस्त पद में दो दो समास हो सकते हैं ऐसे ऐसे पद रक्खे गये। बात यह है कि बड़ी निपुणता और विद्वत्ता के साथ वाहन आदि की कल्पना की गई है। देखिये। सुपर्ण नाम सूर्य्य के किरण का है। परन्तु गरुड़ का भी नाम सुपर्ण है यथाः—

खेदयः। किरणाः। गावः। रश्मयः। अभीशवः। दीधितयः। गभस्तयः। वनम्। उस्राः। वसवः। मरीचियाः॥ मयूखाः। सप्तऋषयः। साध्याः। सुपर्णाः। इतिपञ्च दशरश्मिनामानि। निघण्टु। प्रथमाध्याय। खण्ड ५॥

खेदि, किरण, गौ, रश्मि, अभीशु, दीधिति, गभस्ति, वन, उस्र, वसु, मरीचिय, मयूख, सप्तऋषि, साध्य और सुपर्ण ये १५ नाम सूर्य्य के किरणों के हैं। यहां पर आप देखते हैं कि सुपर्ण शब्द आया है। निघण्टु वेद का कोश है इस का प्रमाण मैंने दिया। वेदों के मन्त्रों में सूर्य्य के किरण अर्थ में सुपर्ण शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है मैं केवल एक उदाहरण सुनाता हूं। यथाः—

वयः सुपर्णा उप सेदुरिन्द्रं प्रियमेधा ऋषयो नाधमानाः।
अप ध्वान्तमूर्णुहि पूर्धि चक्षुर्मुमुग्ध्यस्मान् निधयेव बद्धान्॥ निरुक्त ४।२।

यह ऋग्वेद का मन्त्र है यास्काचार्य्य ने निरुक्त में दिया है। सूर्य्य के किरणों का यहां अलङ्कार रूप से वर्णन किया गया है (वयः) अति गमनशील (सुपर्णाः) किरण (इन्द्रम्) सूर्य्य के निकट (उप+सेदुः) पहुंचे। (नाधमानाः) याचना करते हुए। अर्थात् सूर्य्य से याचना करने को किरण सूर्य के समीप गये। वे किरण कैसे हैं (प्रियमेधाः) यज्ञ प्रिय। क्योंकि सूर्य के उदय विना यज्ञ नहीं होता। पुनः कैसे हैं (ऋषयः) जैसे वसिष्ठादि ऋषि ज्ञान का प्रकाश करते हैं वैसे ये किरण भी अन्धकार को नाश कर सब पदार्थों के रूप को प्रकाशित करते हैं। किस प्रयोजन के लिये सूर्य्य के समीप गये सो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आगे कहते हैं। हे स्वामिन् ! (ध्वान्तम्) अन्धकार को (अप+ऋणुहि) दूर कीजिये। (चक्षुः) प्राणीमात्र की आंखे अपनी ज्योति से (पूर्धि) पूर्ण कीजिये। और (निधया+इव बद्धान्) जैसे पक्षी पास में बद्ध हो तद्वत् आप के मण्डल में बद्ध (अस्मान्) हम लोगों को मर्त्यलोक जाने को (मुमुग्धि) छोड़ दीजिये। यहां यास्काचार्य्य ने "सुपर्णा आदित्यरश्मयः" ऐसा लिखा है अर्थात् सुपर्ण सूर्य्य के किरण का नाम है। पुन :—

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भाग मनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश॥

इस मन्त्र की व्याख्या में भी यास्काचार्य ने "सुपर्णाः सुपतना आदित्य रश्मयः" लिखा है। अर्थात् सूर्य के किरण का नाम सुपर्ण है। अब आप लोगों को विश्वास होगया होगा कि सुपर्ण शब्द वेदों में सूर्य्य के किरणार्थ में आया है।

परन्तु आजकल यह सुपर्ण शब्द गरुड़ के अर्थ में ही आता है।

गरुत्मान् गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः।
नागान्तको विष्णुरथः सुपर्णः पन्नगाशनः। अमरकोश

गरुत्मान्, गरुड़, तार्क्ष्य, वैनतेय, खगेश्वर, नागान्तक, विष्णुरथ, सुपर्ण और पन्नगाशन इतने नाम गरुड़ पक्षी के हैं। गरुत्मान् तार्क्ष्य आदि शब्द भी सूर्य्य के किरणार्थक वेदों में आए हैं। आप लोगों ने देखा कि सुपर्ण नाम गरुड़ का भी है। अब विचार करने की बात है कि सूर्य्य का वाहन किरण है। क्योंकि किरणों के द्वारा ही सूर्य्य मानो सर्वत्र पहुंचता है। वेदों में वर्णन आया है कि किरण मानों सूर्य्य को ढोते फिरते हैं जब सूर्य्य के स्थान में विष्णु देव पृथक् कल्पित हुए तब जो वाहन सूर्य्य का था उसी नाम का वाहन इस विष्णु को भी दिया गया। उस नाम का वाहन इस मर्त्यलोक में गरुड़ नाम का पक्षी ही है अन्य नहीं। इस हेतु विष्णु का वाहन गरुड़ माना गया है। इस से भी आप देख सकते हैं कि सूर्य्य को ही लोगों ने विष्णु बनाया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"सर्पभक्षक गरुड़"

एक विषय यह भी मीमांसनीय है कि विष्णु के बनाने वाले चाहते तो अन्य किसी नाम के साथ संगति मिला कर विष्णु देव को कोई और ही वाहन देते। गरुड़ ही वाहन क्यों दिया। इस में एक अन्य कारण भी है। गरुड़ सांप को खाता है सांप का एक नाम "अहि" आता है यह संस्कृत में अति प्रसिद्ध है। परन्तु वैदिक भाषा मे अहि नाम मेघ का भी है। यथाः—

अद्रिः। ग्रावा। गोत्रः। बलः। अश्नः। पुरभोजाः।
.....अहिः। अभ्रम्। बलाहकः.....इत्यादि निघण्टु १। १०।

अद्रि, ग्रावा, गोत्र, बल, अश्न, पुरुभोज, बलिशान, अश्मा, पर्वत, गिरि, व्रज, चरु। वराह, शम्बर। रौहिण। रैवत, फलिग, उपर, उपल, चमस, अहि, बलाहक, मेघ, दति, ओदन, दृबन्धि, वृत्र, असुर, कोश। ये तीस नाम मेघ के हैं। अब आप लोग यह विचार सकते हैं कि सूर्य्य के सुपर्ण (किरण) तो अहि अर्थात् मेघ के खाने वाले हैं और विष्णु भगवान् के सुपर्ण (गरुड़) अहि अर्थात् सांप के खाने वाले हैं। किस प्रकार से विष्णु रचयिता ने द्वयर्थक शब्दों को लेले कर एक महान् देवता को गढ़ कर खड़ा किया है।

"सुपर्ण और अमृतहरण"

सुपर्ण (गरुड़) के सम्बन्ध में इतना और भी जानना चाहिये। कहीं२ और विशेष कर महाभारत के आदिपर्व से सुपर्ण और अमृत हरण की लम्बायमान आख्यायिका आती है। यथा :—

"इत्युक्तो गरुडः सर्पै स्ततो मातर मब्रवीत्।
गच्छाम्यमृत माहर्तु भक्ष्यमिच्छामि वेदितुम्"।

गरुड़-माता विनता किसी कारण वश सर्प-माता कद्रू की दासी बन बड़ी दुःखिता थी। एक समय माता से जिज्ञासा करने पर गरुड़ को विदित हुआ कि जब तक अमृत ला सर्पों को न दूंगा तब तक मेरी माता दासीत्व से मुक्त नहीं होगी। इस हेतु गरुड़जी को अमृत लाने के लिये अवर्णनीय उद्योग कर-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ना पड़ा है। महाभारत के आदिपर्व के २०वां अध्याय से ३२वां अध्याय तक देखिये। इस का नाम ही सौपर्णाध्याय है। इस आख्यायिका का मूल भी सूर्य्य का किरण ही है। अमृत नाम जल का है। "पयः कीलालममृतं जीवनं भुवनं वनम्" पय, कीलाल, अमृत, जीवन, भुवन, वन आदि अनेक नाम जल के हैं अमर कोश में देखिये। सुपर्ण जो सूर्य्य के किरण वे अमृत अर्थात् जल हरण करते हैं। और हरण करके अहि अर्थात् मेघ को देते हैं॥ सर्प और मेघ दोनों का अहि नाम है। शङ्का। कदाचित् आप कहेंगे कि अभी वर्णन किया गया है कि किरण मेघ का भक्षक है। परन्तु यहां पर पोषक बन गया। यह क्या! महाभारत की भी कथा में आप देखते हैं कि जो गरुड़ सर्पों का संहर्त्ता है। वह यहां दास बना हुआ है। महाभारत में कहागया है कि "ततः सुपर्णमाता तामवहत् सर्पमातरम्। पन्नगान् गरुड़श्चापि मातुर्वचन चोदितः" जब कद्रू ने पुत्रादिसहित अपने को नाग लोक में पहुंचाने को विनता से कहा है तब गरुड़जी अपनी माता की आज्ञा के अनुसार सर्पों को ढोढो कर नागालय को पहुंचाया करते थे। तत्त्व इस में यह है कि सूर्य्य के किरण अहि (मेघ) को बनाते और बिगाड़ते हैं क्योंकि सूर्य्य की ही गरमी से मेघ बनता है। वायु में शीतलता प्राप्त होकर उस से मेघ शीतल हो नष्ट भी हो जाता है। इन सब घटनाओं का मुख्य कारण सूर्य्य किरण ही है। इसीहेतु दोनों वर्णन है कि सुपर्ण "अहि"का पोषक और भक्षक दोनों हैं। इसीहेतु महाभारत की आख्यायिका में भी सुपर्ण (गरुड़) सर्प के भक्षक और वाहन दोनों हैं। अब आप लोग समझ गये होंगे। यह सब कथा गढ़ीहुई है। यथार्थ नहीं। आप लोग स्वयं बुद्धिमान् हैं ईदृग् कथाएं जहां जहां आप देखें वहां वहां प्रकृति का वर्णन मात्र समझें। न कोई कभी ऐसा गरुड़ वा विनता वा कद्रू वा सर्प हुआ। वेदों की एक छोटी सी बात लेकर इन पुराणो में सहस्रों श्लोकों के द्वारा नवीन रीति से आख्यायिका बनाई हुई हैं॥ यहां वेद का एक मन्त्र उद्धृत करता हूं जिस से आप को विदित होगा कि सुपर्ण अमृत के लिये मानो सदा लोभायमान रहता है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदथाभिस्वरन्ति ।
इनो विश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाक मत्रा विवेश ॥

यह ऋग्वेद का वचन है । यास्काचार्य ने निरुक्त में इसकी व्याख्या की है । (यत्र) जिस सूर्य्य मण्डल में स्थित (सुपर्णाः) किरण (अनिमेषम्) सर्वदा (विदथा) अपने कर्म्म से युक्त हो (अमृतस्य+भागम्) जल के अंश को पृथिवी पर से लेकर (अभिस्वरन्ति) पदार्थ मात्र को तपाते हैं । अर्थात् जब सूर्य्य के किरण पृथिवी के जल को सोख लेते हैं तब क्या जड़ क्या चेतन सब ही सन्तप्त होने लगते हैं (इनः) ऐश्वर्य्य युक्त (विश्वस्य+भुवनस्य) अपने प्रकाश से सम्पूर्ण भुवन का (गोपाः) रक्षक (धीरः) बुद्धिप्रद और (पाकः) प्रत्येक वस्तु को पकाने वाला (सः) वह सूर्य्य (अत्र) इस (मा) मुझ में (आ+विवेश) प्रविष्ट होवे अर्थात् मुझको सूर्य्य का प्रकाश प्राप्त हो यह आत्मा में भी घटता है । यहां यास्काचार्य ने "सुपर्णा आदित्यरश्मयः अमृतस्य भागमुदकस्य" सुपर्ण का आदित्यरश्मि और अमृत का जल अर्थ किया है यहां साक्षात् वर्णन पाया जाता है कि सूर्य्य का किरण अमृत का हरण करता है; इसी हेतु किरण का नामही 'हरि' हरण करने वाला वेदों में कहा गया है ।

"विष्णु और समुद्र"

पुराणों में यह अति प्रसिद्ध कथा है कि विष्णुभगवान् क्षीरसागर में निवास करते हैं । आप लोग यदि सावधान होकर इस को विचारेंगे तो मालूम होजायगा कि यह भी सूर्य्य भगवान् का ही वर्णन है । वैदिक भाषा में समुद्र नाम आकाश का है यथाः—

(१) ऋचि तुनुघमक्षुतङ् कुत्रोरुष्याणाम् ६ । ३ । १३३ । इस सूत्रसे वेदों मे "यत्र" का हो "यत्रा" बन जाता है ।

(२) छन्दसि लुङ्लङ्लिटः । ३ । ४ । ६ । धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः । वेदमें लुङ् लङ् और लिट् विकल्प से सब काल में होते हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अम्बरम् । वियत् । व्योम । बर्हिः । धन्व । अन्तरिक्षम् ।
आकाशम् । आपः । पृथिवी । भूः । स्वयम्भूः । अध्वा । पुष्करम् ।
सगरः । समुद्रः । अध्वरमिति षोडशान्तरिक्षनामानि । निघण्टु १ । ३ ।

अम्बर, वियत्, व्योम, बर्हि, धन्व, अन्तरिक्ष, आकाश, आप्, पृथिवी, भू, स्वयम्भू, अध्वा, पुष्कर, सगर, समुद्र, अध्वर । ये १६ नाम आकाश के हैं। इस में समुद्र शब्द भी विद्यमान है। निघण्टु के भाष्यकर्ता यास्क "समुद्र" शब्द की निरुक्ति इस प्रकार करते हैं :—

तत्र समुद्र इत्येतत् पार्थिवेन समुद्रेण सन्दिह्यते। समुद्रः कस्मात् समुद्रवन्त्यस्मादापः । समभिद्रवन्त्येनमापः । सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि । समुदको भवति । समुनत्तीति वा ॥ निरुक्त २ ॥ १०

पृथिवी पर जो जल-समूह स्थान है उसे भी समुद्र कहते हैं। जैसे हिन्दुस्तान का महासागर, ऐरेबियन् सागर, पैसेफिक महासागर इत्यादि भी समुद्र ही कहलाते हैं। इस हेतु यास्काचार्य्य कहते हैं कि (पार्थिवेन समुद्रेण) पृथिवीस्थ समुद्र के साथ आकाशवाची समुद्र में सन्देह हो जाता है। क्योंकि समुद्र शब्द के जो अर्थ हैं वे प्रायः दोनों में घट जाते हैं। अब आगे समुद्र शब्द के अर्थ दिखलाते हैं (समुद्रवन्ति+अस्मात्+आपः) जिससे जल द्रवी भूत होकर पृथिवी पर गिरे। आकाश से ही जल गिरता है। (समभिद्रवन्ति+एनम्+आपः) जिसमें जल प्राप्त हो। मेघरूप से आकाश में जल एकत्रित होता है। (सम्मोदन्ते+अस्मिन्+भूतानि) जिसमें प्राणी आनन्द प्राप्त करें। आकाश में पक्षी गण विहार करते हैं (समुदकः भवति) जिसमें बहुत जल हो (समुनत्ति+वा) जो आर्द्र करे। इत्यादि अर्थ समुद्र शब्द का है। यह सागर में भी घट सकता है। इस प्रमाण से निश्चय हुआ कि समुद्र नाम आकाश का भी है। एक दो मन्त्रों का भी उदाहरण देते हैं। यथा :—

एकः सुपर्णः स समुद्र मा विवेश स इदं विश्वं भुवनं विचष्ट । तं पाकेन मनसा ऽपश्य मन्तितस्तं माता रेढि स उ रेढि मातरम् ॥ ऋग्वेद ॥ १० । ११४ । ४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सायणभाष्यम् । एकः सर्वकार्य्येष्वसहायः सुपर्णः सुपतनः मध्यमस्थानो देवः समुद्र मन्तरिक्षम् आविवेश आविशति आविश्यच स इदं विश्वं सर्वं भुवनं भूतजातं विचष्टे अनुग्राह्यतयाऽभिपश्यति । तमेवंरूपं देवं पाकेन परिपक्केन मनसा अन्तितः समीपे अहमपश्य मदर्शम् । किंञ्च माता उदकानां निर्म्मात्री माध्यमिका वाक् तं रेढ्हि आस्वादयति उपजीवनमात्रमत्र लक्ष्यते । सउसखलु मातरं वाचं रेढ्हि लेढि तामेवोपजीवति लिह आस्वादने । अथ दुर्गाचार्य्यभाष्यम् एक एव अद्वितीयः यस्य पतने गमने । प्रतिमायानं अन्यं द्वितीयं नास्ति । स सुपर्णः सुपतनोवायुः समुद्रम् अन्तरिक्षम् नित्यं आविवेश आविशति न कदाचिदप्यनाविष्टस्तत्र । सच पुनः सर्वमूतानुप्रवेशा तदा विश्वं भुवनं सर्वाणि इमानि भूतानि विचष्टे अभिविपश्यति । यथा द्रष्टव्यानि । तमेवं वर्तमानं अहं पाकेन मनसा विपक्व प्रज्ञानेन सर्वगतमपि सन्तम् अन्तिकम् इव अपश्यम् । ऋषिर्दृष्टदेवतासतत्त्वः कस्मैचिदाचक्षाणो ब्रूवीति । तं माता रेढि सउरेढि मातरम् । माता माध्यमिका वाक् तमुप जीवति । परस्पराश्रयत्वात्तयोर्वृत्ते रध्यात्मवदिति । इति ।

भाष्यकार सायण आदि के अनुसार भावार्थ (एकः+सुपर्णः) एक अर्थात् असहाय सुन्दर पतनशील वायु सर्वदा (समुद्रम्+आविवेश) आकाश में व्याप्त रहता है (सः) वह वायु (इदं विश्वं भुवनम्) इस सम्पूर्ण प्राणी को (विचष्टे) अच्छे प्रकार देखता है । (तम्) उसको (अन्तितः) समीप में ही (पाकेन+मनसा) परिपक्व मन से (अपश्यम्) मैं देखता हूं (तम्) उसको (माता) जल निर्म्माण करने वाली माध्यमिका वाक् अर्थात् मेघस्थ विद्युत् (रेढि) चाटती है और (सः+उ) वह वायु भी (मातरम्) विद्युत को (रेढि) चाटता है । अर्थात् एक दूसरे का आधार है पुनः

सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् । अथर्ववेद । ४ । ५

जो सहस्र-सींगवाला बैल अर्थात् सूर्य्य है वह (समुद्रात्) आकाश से उदित हुआ । सूर्य्य का उदय आकाश से होता है इस हेतु यहां समुद्र शब्द का आकाश ही अर्थ होसकता है । पुनः-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रतिगृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः । इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात् स युध्म ओजसा पनायते । ऋग्वेद १ । ५५ । २ ।

यहां सायण " समुद्रिय " शब्द का अर्थ (समुद्रियः समुद्रवन्त्यस्मादाप इति समुद्रमन्तरिक्षं तत्रभवः समुद्रियः) अन्तरिक्षव्यापी करते हैं अर्थात् समुद्र जो अन्तरिक्ष उसमें जो व्यापक उसे "समुद्रिय" कहते हैं । मैं आप लोगों के लिये कहांतक उदाहरण बतलाऊं आप लोग स्वयं पण्डित हैं । वेद पढ़ कर देखिये पचासो स्थलों में समुद्र शब्द आकाशवाची आया है । अब आप लोग स्वयं मीमांसा कर सकते हैं । जब विष्णु देवता सूर्य्य से पृथक् माना गया और पूजा करने के लिये पृथिवी पर लाया गया तब पृथिवीस्थ समुद्र अर्थात् सागर उसका निवास स्थान बनाया गया ।

जब विष्णुशब्द का अर्थ सूर्य था तब वह विष्णु समुद्र अर्थात् अन्तरिक्ष (आकाश) में निवास करता था पश्चात् जब विष्णु को एक पृथक् देव बनाया तो उचित हुआ कि पृथिवीस्थ समुद्र (जलाशय) उसका निवासस्थान मानाजाय और यह सब घटना इस हेतु घटाई गई कि वेदों से सब संगति बैठती जाय । क्योंकि प्रजाओं को वेद पर ही अधिक विश्वास है । इस से भी आप लोगों को पूर्ण विश्वास होगया होगा कि यह चतुर्भुज विष्णु देव यथार्थ में सूर्य के ही प्रतिनिधि हैं ।

अप् शब्द और विष्णु

अभी वैदिक कोश निघण्टु के प्रमाण से "अप्"शब्द भी आकाश वाची है ऐसा मैंने आप लोगों से कहा है । इस में सन्देह नहीं कि अप् शब्द के अर्थ को भूल कर वा उस पर ध्यान न देकर संस्कृत भाषा में बड़ा ही अनर्थ मचा है । वेद के एक २ शब्द के उलट पुलट हो जाने से पीछे विविध आख्यायिकाएं बन-गई हैं । और अब वे यथार्थ सत्य मानी जा रहीं हैं । सुनिये अप् शब्द के अर्थ की विस्मृति से क्या क्या हानिएं हुई । अप् शब्द नित्य बहु वचन में आता है । प्रथमा में "आपः" बनता है आज कल केवल जलके अर्थ में ही प्रयुक्त होता है। इसी हेतु लोग कहने लगे कि हमारा "नारायण देव" जल में निवास करता है यथाः-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ मनु० १ । १० ॥

विष्णु पुराण कहता है :—

इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं नारायणं प्रति । ब्रह्म स्वरूपिणं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । अयनं तस्यताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥

आप लोग योगावस्थित होकर विचार कीजिये । भगवान् का निवास स्थान सम्पूर्ण जगत है । केवल जल में ही नहीं । यह मिथ्या ज्ञान आप् शब्द के अर्थ पर न ध्यान देने से ही विस्तृत हुआ । वास्तव में तो प्रथम विष्णु-रचयिता ने जानकर के ही विष्णु को समुद्र निवास स्थान दिया पश्चात् बहुधा अनर्थ प्रवृद्ध होगया इसका यथार्थ अर्थ यह है (आपः) आकाश । (नारा+इति०) और समस्त विश्व के नेता होने से परब्रह्म का नाम नर है । आकाश उसका पुत्रवत् है इस हेतु नार कहलाता है (नरस्यापत्यं नार आकाशः । नयति प्रापयतीतिनरः) और जिस हेतु यह आकाश उस परमात्मा का अयन अर्थात् निवास स्थान भी है इस हेतु नारायण कहलाता है । यहां आप शब्द का अर्थ जल करने पर भी कोई क्षति नहीं क्योंकि ईश्वर जल में भी व्यापक है । परन्तु क्षति वहां पहुंचती है जहां केवल जल में ही ईश्वर का निवास स्थान मान लिया गया है अन्यत्र नहीं । पुराणों में कहा गया कि वह परमेश्वर सम्पूर्ण जगत का संहार करके जल में ही शयन करता रहता है । यथा :—

यस्यांभसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ।
नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥ भागवत १।३।२

जल में शयन करते हुए और योग निद्रा लेते हुए जिस भगवान के नाभि कमल से प्रजापतियों के पति ब्रह्मा उत्पन्न हुए इत्यादि अनेक श्लोकों से सिद्ध है कि प्रलय काल में भगवान् जल में सोता रहता है । क्या उस समय में वह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यापक नहीं है ? इस हेतु मैं कहता हूं कि अप् शब्द के यथार्थ अर्थ न जानने से महान् अविवेक भारत वर्ष में प्रकीर्ण होगया है। और भी सुनिये।

अपएव ससर्जादौ तासु बीज मवासृजत् । मनु० । १ । ८ ।

यहां पर भी अप् शब्द को जल वाची मान सृष्टि की आदि में जल का ही सृजन किया ऐसा अर्थ करते हैं। सो सर्वथा अशुद्ध है, क्योंकि:-

"तस्माद्वा एतस्मा दात्मन आकाशः संभूतः"

उस परमात्मा से प्रथम आकाश प्रकाशित हुआ न कि जल। आकाश से वायु। वायु से अग्नि। अग्नि से जल हुआ है। यह सृष्टि क्रम है। इस हेतु ऐसे ऐसे स्थलों में "अप्" शब्द का अर्थ आकाश ही करना समुचित है। मैं यहां एक वेद का प्रमाण देता हूं आप लोग श्रवण कीजिये कैसा उत्तम वर्णन है।

यथा:-

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद् गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवा समपश्यन्त विश्वे ॥

ऋग्वेद १० । ८२ । ५ ॥

यहां प्रथम प्रश्न करते हैं। यदि ईश्वरीय-तत्त्व (दिवा+परः) द्युलोक अर्थात् जहां तक सूर्य्य नक्षत्रादि वर्तमान हैं उस से पर है और (एना+पृथिव्या+परः) इस पृथिवी से भी पर है वा आकश से भी पर है और (देवैः+असुरैः) प्राणप्रद व्यापक जितने पदार्थ हैं उन सबों से भी (यद्) यदि ईश्वरीय-तत्त्व पर (अस्ति) है अर्थात् ब्रह्मतत्त्व सब से पर है तब इस अवस्था में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड किस आधार पर कार्य कर रहा है और (आपः) आकाशने (प्रथमम्) पहले (कं+स्वित्+गर्भम्) किस गर्भ को (दध्रे) धारण किया (यत्र) जिस गर्भ में (विश्वे+देवाः) सब सूर्य्य नक्षत्र पृथिवी वायु आदि देव (समपश्यन्त) इकट्ठे हो कर परस्पर कार्य साधन करते हैं। हे विद्वानो ! इस प्रश्न का उचित समाधान करो। आगे उत्तर कहते हैं यथा:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तमिद्गर्भंप्रथमं दध्र आपोयत्र देवा समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभा वध्येक मर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः

ऋग्वेद १० । ८२ । ६ ॥

(आपः) आकाश ने (प्रथमम्) सर्वत्र प्रसिद्ध अथवा पहले (तम्+इत्) उसी परमात्मा स्वरूप (गर्भम्) गर्भ को (दध्रे) धारण किया । जो सब को ग्रहण करे उसे गर्भ कहते हैं अर्थात् सम्पूर्ण जगत् के धारण करने वाले परमात्मा को ही आकाश ने अपने में धारण किया क्योंकि व्यापक होने से वह आकाश में भी व्याप्त है उसी (अजस्य) अजन्मा परमात्मा के (नाभौ+अधि) नाभि में अर्थात् (णहबन्धने) जगत् के बांधने वाली शक्ति के आधारपर(एकम्+अर्पितम्) एक महान् अचिन्त्य अज्ञेय तत्त्व स्थापित है (यस्मिन्) जिस अचिन्त्य तत्त्व में (विश्वानि+भुवनानि) सकल जगत् (तस्थुः) स्थित हैं । हे जिज्ञासुओ ! उस ब्रह्म के आधार पर ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड स्थित है । यहां आप लोग विचारें । अप् शब्द का जल अर्थ कर के कैसा अनर्थ किया है । और इसी अनर्थ के कारण और इसी मन्त्र के मूल पर लोग पीछे यह समझने लगे कि पहले जल की ही सृष्टि हुई । और उस जल ने ईश्वर को अपने में धारण किया । जब अप्शब्द का आकाश भी अर्थ है तो इस का आकाश अर्थ क्यों न किया जाय । देखिये । एक अप्शब्द के अर्थ की विस्मृति से जगत में क्या हानि पहुंची है अब इस शब्द से भी आप मीमांसा करें । विष्णु (सूर्य्य) अप् अर्थात् आकाश में रहता है । और विष्णुस्थान में कल्पित यह चतुर्भुज विष्णु अप् अर्थात् जल में निवास करता है । अर्थात् इस कारण से भी विष्णु का स्थान क्षीर सागर माना गया है । जिस शब्द के दो दो अर्थ हैं ऐसे शब्दों को लेकर यहां विष्णु देव बनाये गये हैं इस में सन्देह नहीं ।

सागर और विष्णु ।

सगर शब्द भी आकाश वाचक है । आकाश में मेघ रहता है इस हेतु कहीं कहीं मेघ को समुद्र वा सागर कहा है । उस आकाश सगर से यह पृथिवीस्थ समुद्र बना है इस हेतु "सगरस्यापत्यं सागरः" सगर के लड़के को सागर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहते हैं। आकाश का ही मानों यह समुद्र पुत्र है। इस हेतु यह सागर है। पुराणों में जो सगर राजा की कथा है वह सर्वथा मिथ्या है। लोगों ने सागर शब्द के भाव को न समझ कर एक सगर राजा मान लिया है और विचित्र कथा गढ़ली है। उपरिस्थ समुद्र से पृथिवीस्थ समुद्र बना है इस में वेद का-ही प्रमाण है।

आर्ष्टिषेणो होत्र मृषि नर्षादन् देवापि र्देवसुमतिं चिकित्वान्।

सउत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद् वर्ष्या अभि। निरुक्त २। ११॥

इस का भाव यह है कि उत्तर समुद्र से अर्थात् उपरिस्थ आकाश से अधः समुद्र को अर्थात् नीचे के पृथिवीस्थ सागर को सूर्य्य ने बनाया इस का भी भाव यह है कि प्रथम यह पृथिवी सूर्य्य के समान अग्नि गोलक ही थी। धीरे धीरे सहस्रों वर्षों के अनन्तर यह अब इस दशा में है। इस महान् परिवर्तन का कारण एक महान् अग्नि शक्ति है। और सौर जगत् का कारण यह सूर्य्य माना जाता है। इस हेतु कह सकते हैं कि इन सब का कारण सूर्य्य देव ही है। हे विद्वानो! इस कारण से भी कल्पित विष्णु देव का निवास स्थान यह सागर माना गया है। इत्यादि कारण आप लोग स्वयं अन्वेषण कर सकते हैं। लोगों ने ब्रह्मचर्य्य को त्याग दिया इस हेतु वेदाध्ययन छूट गया। इस हेतु हे विद्वानो! पृथिवी पर यह मिथ्या ज्ञान विस्तृत हो लोगों को भ्रम में फंसा रहा है।

विष्णु और शेष नाग।

शेष नाग जी विष्णु भगवान् के पर्य्यङ्क (पलङ्ग खटिया विच्छौना) माने गये हैं। इस का भी कारण सूर्य्य और द्व्यर्थक (दो अर्थ वाले) शब्द हैं। प्रश्न यहां यह होता है कि सूर्य्य ने तो इस पृथिवी और बृहस्पति आदि अनेक ग्रहों को आकर्षण शक्ति से संभाल रक्खा है। परन्तु सूर्य्य किस आधार पर है। इस के उत्तर में कहा जा सकता है कि इस सूर्य्य को भी किसी अन्य महान् सूर्य्य ने वा महा आकार्षण शक्ति युक्त किसी मूर्तवस्तु ने आकर्षण द्वारा पकड़ रक्खा हैं। अब इस में यह प्रश्न होगा कि उस को किस ने धर रक्खा है। फिर आप जो बतलावेंगे उस को किस ने पकड़ रक्खा है। इस प्रकार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्वेषण करते करते अन्त में कहना पड़ेगा कि एक कोई महान् अचिन्त्य शक्ति है जिस की नाभि में यह जगत् स्थित है उसी महान् देव के नाम ओम् परमात्मा ब्रह्म आदि हैं। इसी के आधार पर सब हैं। उसी ब्रह्म का नाम शेष है। क्योंकि अन्त में वही शेष (बाकी) रह जाता है। एक बात यहां और भी जानना चाहिये। सूर्य्य शब्द उपलक्षण मात्र है। सूर्य्य शब्द से समस्त ब्रह्माण्ड का ग्रहण है। सूर्य्य का वही शेष अर्थात् भगवान् आधार है परन्तु शेष का अर्थ सांप भी होता है यथाः—

शेषोऽनन्तो वासुकिस्तु सर्पराजोऽथ गोनसे। अमरकोश।

इस हेतु जब विष्णु एक पृथक् देव बनाया गया तब पृथिवीस्थ शेष अर्थात् सर्प उस का शयनाधार कल्पित हुआ। इस में केवल यही कारण नहीं है अन्य भी है।

"अनन्त और विष्णु"

अनन्त नाम आकाश और सर्प दोनों का है। क्योंकि आकाश का हम लोगों की बुद्धि से अन्त नहीं। अतः सूर्य का शयनाधार आकाश है। और सूर्य स्थानीय विष्णु का आधार अनन्त अर्थात् सर्प है।

"हरि और विष्णु"

वेदों में हरि शब्द सूर्य के किरण और चक्र आदि अर्थ में आया है यथाः-

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णा अपो वसाना दिव मुत्पतन्ति ॥ ऋग्वेद ॥१।६४।४७॥

आद्राभ्यां हरिभ्या मिन्द्र याह्या चतुर्भिराषड़भि र्हूयमानः।
अष्टाभिर्दशभिः सोमपेय मयं सुतः सुमख मा मृधस्कः। ४ ॥
आविंशत्या त्रिंशता याह्यर्वाङ आचत्वारिंशता हरिभिः युजानः।
आपञ्चाशता सुरथेभि रिन्द्रा षष्ठया सप्तत्या सोमपेयम् ॥ ५ ॥
आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङा शतेन हरिभिरुह्यमानः।
अयं हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वाया परिषिक्तो मदाय ॥ ६ ॥
ऋग्वेद। २। १८॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यादि मन्त्रों में हरि शब्द सूर्य के किरण अर्थ में आता है। क्योंकि चारों ओर से वे अपनी ओर सब पदार्थों को हरण अर्थात् खींच रहे हैं। वेदों में हरि शब्द बहुत प्रयुक्त हुआ है अथ मन्त्रार्थ (सुपर्णाः) सुन्दर पतनशील (हरयः) अपनी ओर खींचने वाले किरण (नियानम्) सब के चलाने वाले (कृष्णम्) महाकर्षण शक्ति युक्त सूर्य को लेकर (दिवम्+उत्पतन्ति) द्युलोक को जा रहे हैं। सायङ्काल का वर्णन है। आगे अलङ्कार रूप से वर्णन करते हैं (इन्द्र) हे सूर्य (द्वाभ्याम्+हरिभ्याम्) दो किरणों से वा चार से वा छः से वा आठ से वा बीस से वा तीस से वा चालीस से वा पचास से वा साठ से वा सत्तर से वा अस्सी से वा नव्वे से वा सौ से अर्थात् अनन्त किरणों से हम लोगों के पदार्थों की रक्षा करो। यहां दो चार संख्या तो कुछ नहीं हैं अभिप्राय बहुत किरणों से है। परन्तु हरि नाम सांप का भी है। यथाः—

यमानिलेन्द्र चन्द्रार्क विष्णु सिंहांशुवाजिषु।
शुकाहि कपि भेकेषु हरिर्नो कपिले त्रिषु ॥ अमर०॥

यम, अनिल, इन्द्र, चन्द्र, अर्क, विष्णु, सिंह, अंशु, अश्व, शुक, सर्प, कपि, भेक, और कपिल अर्थ में हरि शब्द है ॥

अब थोड़ी देर तक यह विचार कीजिये कि जिस सर्प के ऊपर विष्णु भगवान् शयन करते हैं उस के सहस्रफण माने गये हैं। और वह शेष नाग महाश्वेत कहे गये हैं। क्या आप लोगों ने सहस्रफणों वाले और श्वेत सांप को पृथिवी के ऊपर कहीं देखा वा सुना है। सांप के सहस्र फण नहीं होते हैं और न श्वेत होता है। यह सूर्य के चक्र का वर्णन है, मानो सूर्य एक देवता है, जो अपने चक्र के ऊपर बैठा वा सोता हुआ है। वह चक्र आप देखते हैं वह सहस्र किरण वाला है और महाश्वेत है सहस्र शब्द अनन्त वाचक है अर्थात् अनन्त-किरण-युक्त अपने श्वेत (सुफेद white) चक्र के ऊपर मानो सूर्य देव विश्राम करता हुआ विद्यमान है। वह चक्र अपनी ओर परितः स्थित पदार्थों को बड़े वेग से खींच रहा है इसहेतु हरि शब्द से व्यवहृत होता है। अब जिस हेतु हरि शब्द का अर्थ सर्प भी होता है इस हेतु सूर्य स्थानीय विष्णु देव का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्य्यङ्क (खटिया) सहस्र-फण-युक्त श्वेत शेष-नाग कल्पित किया गया है । जो लोग सर्प से अति परिचित हैं उन्हें यह भी मालूम है कि सर्प अपनी नेत्र शक्ति से किञ्चित दूरस्थ छोटे २ पक्षियों को अपने मुख में खींच लेता है । यह सर्प में विशेष गुण है । इस हेतु भी कुछ सादृश्य सूर्य किरण से सांप रखता है । शेषनाग को सहस्रफण और श्वेत मानना ही सङ्केत करता है कि यह सूर्य के चक्र का वर्णन है ॥ इत्यलम् ।

"विष्णु और चतुर्भुज"

अभीतक विष्णु के वाहन आदि का निरूपण किया है। अब साक्षात् उनके स्वरूप का निर्णय कहते हैं । पुराणों में विष्णु चतुर्भुज अर्थात् चारभुजावाले माने गये हैं यथा :—

केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ।
चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गचक्र गदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥
श्री०भा० ॥ २ । २ । ८ ॥

किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ।
श्री० भा० ॥ २ । ९ । १५ ॥

तमद्भुतं बालक मम्बुजेक्षणं चतुर्भुजंशंख गदाद्युदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥
श्री० भा० ॥ १० । ३ । ९ ॥

मेघश्यामशरीरस्तु पीतवासाश्चतुर्भुजः । शेषशायी जगन्नाथो
बनमालाविभूषितः । देवी भागवत ॥ ३ । २ । २३ ॥

इत्यादि अनेक श्लोकों से निखिल पुराण विष्णु को चतुर्भुज मानते हैं । इतना ही नहीं किन्तु विष्णु लोक निवासी पार्षदों को भी चतुर्भुज ही कहके वर्णन करते हैं यथा :—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न तत्र माया किमुतापरे हरे रनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः । १०
श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः।
सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ ११ ॥
श्री० भागवत ॥ २ । ९ ॥

विष्णुलोक में न माया और न मायावी है किन्तु विष्णु के भक्त-सुर असुर से पूजित शुद्ध कमलाक्ष, पीतवस्त्रधारी सुन्दर हैं। और सब ही चारबाहु वाले हैं इत्यादि। विष्णु चतुर्भुज क्यों माने गये हैं? विष्णु के चार मुख या चार नेत्र या तीन या पांच नेत्र कहीं नहीं कहे गये हैं चार हाथ ही क्यों माने गये हैं? इस का भी कारण सूर्य्य देव ही है। आप देखते हैं कि सूर्य्य के किरण रूप भुज (बाहु) चारों तरफ फैले हुए हैं। किरण को कर, भुज, हस्त, आदि सब कहते हैं। किरण ही मानों सूर्य्य के भुज (बाहु) हैं। यहां पूर्व की अपेक्षा एक और विलक्षणता है। व्याकरण के अनुसार समास करके यह संगति बैठाई गई है। समास यह है। (चतसृषु दिक्षु भुजाः किरणा यस्य स चतुर्भुजः सूर्य्यः) (चतसृषु) चारों (दिक्षु) दिशाओं में (भुजाः) किरण हैं जिस के वह चतुर्भुज अर्थात् सूर्य्य। सूर्य्य इस हेतु चतुर्भुज है कि इसके किरण रूप भुज चारों दिशाओं में व्याप्त हैं। ऐसे२ स्थलों में व्याकरण से मध्यमपद लोपी समास हो जाता है। परन्तु चतुर्भुज शब्द में यह भी समास होगा कि " चत्वारो भुजा बाहवो यस्य स चतुर्भुजः " जिसके चार भुज हों वह चतुर्भुज। अब आप लोग ध्यान दीजिये। सूर्य्य के स्थान में जब विष्णु देव कल्पित हुए तब चतुर्भुज शब्द के चारबाहु वाला अर्थ करके विष्णु के चार भुजा दिये गये। यहां केवल समास कृत विलक्षणता से अर्थ का परिवर्तन हुआ है। और यह घटना घटाई गई।

विष्णु और अष्ट भुज, दशभुज

कहीं कहीं विष्णु के आठ और दश भुजों का भी वर्णन पाया जाता है; यथा :-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ।
चक्रशंखासिचर्म्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ श्री०भा० ६ । ४ । २६॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डलं प्रभापरिक्षिप्तसहस्रकुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालयावृतम् ॥
श्री० भा० ॥ १० । ८९ । ५६ ॥

जो गरुड़ के ऊपर आरूढ़ हैं। जिनके लम्बे२ आठ हाथ हैं। और उन आठों हाथों में चक्र शंखादि हैं पुनः जो विष्णु किरीट कुण्डलादि से सुभूषित हैं और जिनके लम्बे२ सुन्दर आठ हाथ हैं। इत्यादि अनेक स्थानों में विष्णु के आठ भुज माने गये हैं। परन्तु कहीं २ दश भुजाओं का भी उल्लेख पाया जाता है। यथा :—

पितामहादपिवरः शाश्वतः पुरुषो हरिः ।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य्य इवोदितः ॥ २ ॥
दशबाहुर्महातेजो देवतारिनिषूदनः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ३ ॥
महाभारत अनुशासन ॥ १४७ ॥

यहां पर विष्णु के विशेषण में "दशबाहु" शब्द आया है। इन सबों का कारण यह है कि दिशा कहीं चार कहीं आठ और कहीं दश मानी गई हैं। पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ये चार दिशाएं हैं। पूर्वोक्त चार और आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान मिलकर आठ दिशाएं होती हैं इन चारों को विदिक् वा अपदिश कहते हैं। जो दो दो दिशाओं के मध्यम में कोण हैं वे ही आग्नेयादि दिशाएं मानी गई हैं इन आठों में ऊर्ध्वा (ऊपर की) दिशा और ध्रुवा (नीचे की) दिशा जोड़ने से दश दिशाएं होती हैं। संस्कृत शास्त्र में इन तीनों प्रकारों से दिशा का हिसाब किया जाता है। यह बहुत प्रसिद्ध बात है। जब चार दिशाएं मानिये तब सूर्य्य चतुर्भुज है क्योंकि चारों दिशाओं में इस के भुज हैं। जब आठ दिशाएं मानियें तब सूर्य्य अष्टभुज हैं क्योंकि आठों दिशाओं में इस के भुज हैं जब दश दिशाएं मानिये तब दशभुज सूर्य्य हैं। क्योंकि दशो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिशाओं में उसके किरण हैं। अब विष्णु के आठ वा दश बाहु होने के कारण से भी आप लोग सुपरिचित हो गये होंगे। यहां पर भी व्याकरण के समास से ही अर्थ घटाया गया है। सूर्य पक्ष में" अष्टसु दिक्षु भुजा यस्य सोऽष्टभुजः सूर्यः" और विष्णु पक्ष में "अष्टौ भुजा यस्य सोऽष्टभुजो विष्णुः" सूर्य पक्ष में चार आठ वा दश शब्द से चार आठ वा दश दिशा का ग्रहण होता है। और विष्णु पक्ष में ये तीनों शब्द बाहु के ही विशेषण होते हैं, इत्यादि अनुसन्धान कीजिये। सर्वत्र सूर्य के ही स्थानापन्न विष्णु को देखेंगे। मुझे प्रतीत होता है जिस समय विष्णु देव बनाये गये उस समय इन को अवश्य दश बाहु दिये गये धीरे २ अब विष्णु के चार भुज रह गये हैं। और जब इस अलङ्कार को लोग सर्वथा भूल गये और उन को साक्षात् ब्रह्म ही मानने लगे तब इन को कहीं हस्तादि रहित कहीं अव्यक्त कहीं सहस्रबाहु कहीं सृष्टि कर्त्ता धर्त्ता संहर्त्ता आदि सब ही कहने लगे। सूर्यदेव से एक महान् देव बन कर गृह २ पूजित होने लगे।

"विष्णु और श्वेत वर्ण"

पूर्व काल में विष्णु का श्वेत (सुफेद गौर White) वर्ण माना गया। इस में अब भी प्रमाण पाये जाते हैं जहां २ महा विष्णु का वर्णन आता है वहां पश्चात् रचित पुराणों में भी विष्णु का वर्ण श्वेत ही कहा गया। देखियेः—

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।

प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥

यह श्लोक अति प्रसिद्ध है। आज कल प्रचलित सत्यनारायण की पद्धति में दी हुई है॥ यह पद्मपुराण का एक भाग है। श्वेतवस्त्रधारी, चन्द्रमा-समान श्वेतवर्ण, चतुर्भुज और प्रसन्न वदन विष्णु को सर्व विघ्न की शान्ति के लिये ध्यावे। यहां विस्पष्टतया विष्णु का वर्ण श्वेत कहा गया है। सूर्यस्थानीय विष्णु को श्वेत मानना उचित ही है। इस से भी सिद्ध होता है कि विष्णुभगवान् सूर्य के प्रतिनिधि हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ।
चक्रशंखासिचर्म्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ श्री०भा० ६ । ४ । २६॥
महामणिव्रातकिरीटकुण्डलं प्रभापरिक्षिप्तसहस्र कुन्तलम् ।
प्रलम्बचार्वष्टभुजं सकौस्तुभं श्रीवत्सलक्ष्मं वनमालयावृतम् ॥
श्री० भा० ॥ १० । ८९ । ५६ ॥

जो गरुड़ के ऊपर आरूढ़ हैं। जिनके लम्बे२ आठ हाथ हैं। और उन आठों हाथों में चक्र शंखादि हैं पुनः जो विष्णु किरीट कुण्डलादि से सुभूषित हैं और जिनके लम्बे२ सुन्दर आठ हाथ हैं। इत्यादि अनेक स्थानों में विष्णु के आठ भुज माने गये हैं। परन्तु कहीं २ दश भुजाओं का भी उल्लेख पाया जाता है। यथा :—

पितामहादपिवरः शाश्वतः पुरुषो हरिः ।
कृष्णो जाम्बूनदाभासो व्यभ्रे सूर्य्य इवोदितः ॥ २ ॥
दशबाहुर्महातेजो देवतारिनिषूदनः ।
श्रीवत्साङ्को हृषीकेशः सर्वदैवतपूजितः ॥ ३ ॥
महाभारत अनुशासन ॥ १४७ ॥

यहां पर विष्णु के विशेषण में "दशबाहु" शब्द आया है। इन सबों का कारण यह है कि दिशा कहीं चार कहीं आठ और कहीं दश मानी गई हैं। पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ये चार दिशाएं हैं। पूर्वोक्त चार और आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान मिलकर आठ दिशाएं होती हैं इन चारों को विदिक् वा अपदिश कहते हैं। जो दो दो दिशाओं के मध्यम में कोण हैं वे ही आग्नेयादि दिशाएं मानी गई हैं इन आठों में ऊर्ध्वा (ऊपर की) दिशा और ध्रुवा (नीचे की) दिशा जोड़ने से दश दिशाएं होती हैं। संस्कृत शास्त्र में इन तीनों प्रकारों से दिशा का हिसाब किया जाता है। यह बहुत प्रसिद्ध बात है। जब चार दिशाएं मानिये तब सूर्य्य चतुर्भुज है क्योंकि चारों दिशाओं में इस के भुज हैं। जब आठ दिशाएं मानिये तब सूर्य्य अष्टभुज हैं क्योंकि आठों दिशाओं में इस के भुज हैं जब दश दिशाएं मानिये तब दशभुज सूर्य्य हैं। क्योंकि दशो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिशाओं में उसके किरण हैं। अब विष्णु के आठ वा दश बाहु होने के कारण से भी आप लोग सुपरिचित हो गये होंगे। यहां पर भी व्याकरण के समास से ही अर्थ घटाया गया है। सूर्य पक्ष में" अष्टसु दिक्षु भुजा यस्य सोऽष्टभुजः सूर्यः" और विष्णु पक्ष में "अष्टौ भुजा यस्य सोऽष्टभुजो विष्णुः" सूर्य पक्ष में चार आठ वा दश शब्द से चार आठ वा दश दिशा का ग्रहण होता है। और विष्णु पक्ष में ये तीनों शब्द बाहु के ही विशेषण होते हैं, इत्यादि अनुसन्धान कीजिये। सर्वत्र सूर्य के ही स्थानापन्न विष्णु को देखेंगे। मुझे प्रतीत होता है जिस समय विष्णु देव बनाये गये उस समय इन को अवश्य दश बाहु दिये गये धीरे २ अब विष्णु के चार भुज रह गये हैं। और जब इस अलङ्कार को लोग सर्वथा भूल गये और उन को साक्षात् ब्रह्म ही मानने लगे तब इन को कहीं हस्तादि रहित कहीं अव्यक्त कहीं सहस्रबाहु कहीं सृष्टि कर्त्ता धर्त्ता संहर्त्ता आदि सब ही कहने लगे। सूर्यदेव से एक महान् देव बन कर गृह २ पूजित होने लगे।

"विष्णु और श्वेत वर्ण"

पूर्व काल में विष्णु का श्वेत (सुफेद गौर White) वर्ण माना गया। इस में अब भी प्रमाण पाये जाते हैं जहां २ महा विष्णु का वर्णन आता है वहां पश्चात् रचित पुराणों में भी विष्णु का वर्ण श्वेत ही कहा गया। देखियेः—

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम्।

प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये॥

यह श्लोक अति प्रसिद्ध है। आज कल प्रचलित सत्यनारायण की पद्धति में दी हुई है॥ यह पद्मपुराण का एक भाग है। श्वेतवस्त्रधारी, चन्द्रमा-समान श्वेतवर्ण, चतुर्भुज और प्रसन्न वदन विष्णु को सर्व विघ्न की शान्ति के लिये ध्यावे। यहां विस्पष्टतया विष्णु का वर्ण श्वेत कहा गया है। सूर्यस्थानीय विष्णु को श्वेत मानना उचित ही है। इस से भी सिद्ध होता है कि विष्णुभगवान् सूर्य के प्रतिनिधि हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"विष्णु और कृष्ण वर्ण"

परन्तु बहुधा विष्णु देव का वर्ण (रूप) श्याम वा कृष्ण (काला) कहा गया है ॥ इस में भी सूर्य ही कारण है । इस को वर्णन करते हुए मुझ को एक महान् शोक उत्पन्न होता है । हे विद्वान् पुरुषो ! किस प्रकार लोग अर्थ भूलकर वास्तविक तात्पर्य्य से विमुख हो सत्य का विनाश कर रहे हैं और पश्चात् जगत में कैसा अनर्थ उत्पन्न हुआ । वेदों में सूर्यदेव को कृष्ण कहा है । सूर्य में आकर्षण शक्ति के अधिक होने के कारण सूर्य कृष्ण कहा गया है आकर्षण शक्तियुक्तवस्तु का नाम कृष्ण है । यद्यपि प्रत्येक परमाणु में भी आकर्षण शक्ति विद्यमान है तथापि पृथिवी आदि की अपेक्षा से सूर्य बहुत ही बड़ा है इस सौर जगत में सूर्य से बड़ा अन्यग्रह नहीं है । अतः सूर्य में बहुत ही आकर्षण है जिसका वर्णन वेदविद्या निर्णय में विस्तार से करेंगे । इस कारण सूर्य को वेदों में कृष्ण कहा गया है । और जिस लोक लोकान्तर को सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति पर चला रहा है वा प्रकाश पहुंच रहा है उनको भी कृष्ण कहते हैं । क्योंकि उन में भी आकर्षण है जो उनका अपनी गति में सहायक होरहा है । यदि केवल सूर्य में ही आकर्षण होता और पृथिवी आदि में नहीं होता तो सूर्य के चारों तरफ भ्रमण करनेवाली पृथिवी आदि भूमि सूर्य में गिरकर भस्म होगई होती । इस हेतु पदार्थमात्र में आकर्षण होने से पृथिवी आदि भी कृष्ण कहलाने योग्य है । इन में वेदों के प्रमाण ।

कृष्णं नियानं हरयः सुपर्णाः अपो वसाना दिवमुत्पतन्ति ।

त आववृत्रन् सदना दृतस्याऽदिद्घृतेन पृथिवी व्युद्यते ॥

ऋ० १ । १६४ । ४७ ॥

(हरयः) जल के हरण करनेवाले अतएव (अपः+वसानाः) जल से मेघ को पूर्ण करनेवाले (सुपर्णाः) किरण (नियानम्) अपने नियम में पृथिवी आदि जगत को स्थिर रखनेवाले (कृष्णम्) आकर्षशक्तियुक्त-सूर्य के उद्देश से (दिवम्) द्युलोक को (उत्पतन्ति) जारहे हैं । जब वे किरण (ऋतस्य+सदनात्) सूर्य के भवन से (आववृत्रन्) लौट आते हैं (आत्+इत्) तब ही (घृतेन)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जल से (पृथिवी) पृथिवी (व्युद्यते) भींगकर गीली होजाती है । यह उत्तरायण दक्षिणायण का अथवा सायं प्रातःकाल का वर्णन है । दक्षिणायन होने पर वर्षा का आरम्भ होजाता है । सायंकाल सूर्य किरण पृथिवी के एक भाग से दूसरे भाग को जाते हैं लौटने के समय प्रातःकाल ओस से पृथिवी भींग जाती है । यहां साक्षात् सूर्य को कृष्ण कहा है । पुनः—

आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवोयाति भुवनानि पश्यन् ॥
ऋ० १ । ३५ । २ ॥

अर्थ—रज नाम पृथिवी आदि लोक का है यास्क कहते हैं ' लोका रजांस्युच्यन्ते । निरुक्त ४ । १९ । (आकृष्णेन+रजसा) आकर्षण युक्त पृथिवी आदि लोक के साथ (वर्त्तमानः) घूमता हुआ (सविता) सूर्य (देवः) देव (अमृतम्) बृहस्पति आदि अमर ग्रहों को (मर्त्यम्+च) और मरण धर्म्मी इस मर्त्यलोक को (निवेशयन्) यथास्थान में स्थापित करता हुआ और (भुवनानि) भूतजात अर्थात् प्राणीमात्र को (पश्यन्) दर्शन शक्ति देता हुआ (हिरण्ययेन+रथेन) हरण करनेवाले रथ से (आयाति) आरहा है । यहां आकर्षण युक्त पृथिवी आदि को कृष्ण कहा है । पुनः—

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः॥ऋ०१।३५।४

अर्थ—(चित्रभानुः) चित्रभानु (यजतः) यष्टव्य आदरणीय (सविता) सूर्य (कृष्णा+रजांसि) प्रकाश रहित पृथिवी चन्द्र मङ्गल आदि लोकों में (तविषीम्) प्रकाश को (दधानः) स्थापित करता हुआ (रथम्+आस्थात्) रथ पर स्थित है । आगे रथ के विशेषण कहते हैं (कृशनैः) कृश अर्थात् छोटे २ अनेक नक्षत्रों से (अभीवृतम्) चारोंतरफ आवृत अर्थात् घेरा हुआ । (विश्वरूपम्) नील पीत कृष्ण आदि सब रूप (रंग) से युक्त (हिरण्यशम्यम्) हरण करनेवाले शंकु (कीलों) से संयुक्त और (बृहन्तम्) बहुत बड़ा है। यहां

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्य्य से प्रकाश्यमान लोक को कृष्ण कहा है। इसादि वेद में बहुत प्रमाण हैं आप लोग स्वयं अन्वेषण कर विचारें। किस प्रकार सूर्य्य और अन्य पृथिवी आदि लोक कृष्ण कहलाने लगे। और आकर्षण अर्थ भूल कर किस प्रकार इस शब्द के अन्यान्य अर्थ करने लगे।

"सूर्य्य के कृष्ण और श्वेत दो रूप"

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्य्योरूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्त मन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति॥
यजुः॥ ३३। ३८॥

अथ महीधर भाष्यम्। सूर्य्यो द्यो द्युलोकस्योपस्थे उत्सङ्गे मित्रस्य वरुणस्य च तद्रूपं कृणुते कुरुते येन रूपेण जनान् अभिचक्षे अभिचष्टे पश्यति। मित्र रूपेण सुकृतिनोऽनुगृह्णाति वरुणरूपेण दुष्कृतिनो निगृह्णातीत्यर्थः। अस्य सूर्य्यस्य अन्यत् एकं पाजोरूप मनन्तम्। काल-तोदेशतश्चापरिच्छेद्यम् रुशत् शुक्लं दीप्यमानं विज्ञानघनानन्दं ब्रह्मैव। अन्यत् कृष्णं द्वैतलक्षणं रूपं हरितः दिशः इन्द्रियवृत्तयोवा संभरन्ति धारयन्ति। इन्द्रियग्राह्यं द्वैतरूपमेकम् एकं शुद्धं चैतन्यमद्वैत मिति द्वे रूपे सूर्य्यस्य सगुणनिर्गुणं ब्रह्म सूर्य्यएवेत्यर्थः।

(सूर्य्यः) सूर्य्य (द्योः+उपस्थे) द्युलोक के गोद में (मित्रस्य+वरुणस्य) मित्र और वरुण के (तद्+रूपम्) उस रूप को (कृणुते) करता है जिस रूप से मनुष्यों को (अभिचक्षे) देखता है अर्थात् मित्र रूप से सुकृती जनों के ऊपर अनुग्रह करता है और वरुण रूप से पापी जन को दण्ड देता है (अस्य) इस सूर्य्य का (अन्यत्) एक (पाजः) रूप (अनन्तम्) देश और काल से अपरिच्छेद्य (रुशत्) देदीप्यमान रोशनी देने वाला श्वेत है अर्थात् विज्ञान घनानन्द ब्रह्म ही है। और (अन्यत्) एक (कृष्णम्) कृष्ण अर्थात् द्वैत लक्षण रूप को (हरितः) दिशाएं अथवा इन्द्रियें (सम्भरन्ति) धारण करती हैं। अर्थात् सूर्य्य के दो रूप हैं एक कृष्ण अर्थात् इन्द्रियग्राह्य द्वैत रूप। और दूसरा श्वेत अर्थात् शुद्ध चैतन्य अद्वैत लक्षण। अर्थात् सगुण निर्गुण ब्रह्म सूर्य्य ही है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह महीधर कृत भाष्य का अर्थ है इस में आप देखते हैं कि महीधर भी सूर्य्य के दो रूपों को स्वीकार करते हैं एक (रुशत्) शुक्ल और दूसरा कृष्ण। शुक्ल को वे शुद्ध चैतन्य अद्वैत और कृष्ण को इन्द्रियग्राह्य कहते हैं। ये लोक पौराणिक समय के भाष्यकर्त्ता हुए हैं इस हेतु सूर्य्य को भी परम पूज्यदेव मान ब्रह्म ही समझते हैं। इसका यथार्थ अर्थ यह है कि द्युलोक के मध्य में स्थित हो सूर्य्य सम्पूर्ण परितःस्थित जगत् में रूप दे रहा है और सूर्य्य के स्वयं दो रूप हैं। एक (रुशत्) रोशनी देने वाला श्वेत और दूसरा आकर्षण करने वाला कृष्ण। जिस कृष्ण (आकर्षण) को (हरितः) हरण करने वाले किरण (संभरन्ति) धारण किये हुए हैं। हे कोविदवरो! अब आप लोग विचार सकते हैं कि विष्णु के दो रूप क्यों माने गये। और अधिकतर कृष्ण रूप ही क्योंकर वर्णित है। सूर्य्यस्थानापन्न विष्णु के श्वेत और कृष्ण दोनों रूपों का मानना बहुत ही योग्य है। सूर्य्य में कृष्ण शब्द का अर्थ आकर्षण था विष्णु में कृष्णशब्द का अर्थ केवल काला वा श्याम ही रहगया। सूर्य्य अपने आकर्षण से लोक-लोकान्तर को अपनी ओर खींचता है विष्णुदेव अपनी कृष्ण छवि से खींचते हैं॥ देखिये अर्थ में कितना परिवर्तन हुआ है।

राम कृष्ण आदि अवतार।

इसी कारण विष्णु के जितने अवतार माने गये हैं वे सब ही कृष्ण वा श्याम कहे गये हैं। वामन परशुराम व्यास आदि सब अवतारों का रूप श्याम ही कहकर वर्णित है। क्या यथार्थ में श्रीरामचन्द्र अयोध्यावासी दशरथपुत्र और मथुरावासी वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण जी और वेदव्यासादि कृष्ण (काले) थे? कदापि नहीं। वे लोग कदापि कृष्ण (काले) नहीं थे। राजवंश और ऋषिवंश में पहले काले कोई नहीं होते थे। बड़े गौर और सुन्दर हुआ करते थे। क्या यह सम्भव है कि एक ही उदरसे एक बहुत ही काला और एक बहुत ही गौर उत्पन्न हो जैसे भरत और शत्रुघ्न। दशरथ अत्यन्त गौर और उनके पुत्र रामचन्द्र कृष्ण (काले)। क्या यह संभव है?। नहीं। यदि कोई रामचन्द्र कृष्णचन्द्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि राजपुत्र राजा हुए हैं तो अवश्य वे गौरवर्ण के होंगे । यदि केवल विष्णुवत् वे भी आलङ्कारिक हैं तब निःसन्देह उन्हे कृष्णवर्ण मान सकते हैं । वास्तव में बात यह है कि पहले तीन ही देवों की सृष्टि हुई । पश्चात् अनेक प्रतापशाली राजा महाराज भी इन के अवतार माने गये । इस हेतु वे सब ही कृष्ण वर्ण बनगये । जब ये ही ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों देव काल्पनिक और आलङ्कारिक सिद्ध होते हैं तब कब सम्भव है कि इन देवों के अवतार यथार्थ सिद्ध हों इस हेतु यदि आप लोग रामचन्द्र कृष्णचद्र आदि को राजा मानते हैं तो आप को स्वीकार करना पड़ेगा कि वे कृष्णवर्ण के नहीं थे जब से वे विष्णुभगवान् के अवतार समझे गये हैं तब से ही इनको कविलोग वा भक्तलोग श्याम करके वर्णन करनेलगे ।

विष्णु और श्याम वर्ण ।

यथार्थ म विष्णु का रूप कृष्ण वा श्वेत कल्पित हुआ इस को विस्तार से वर्णन करचुके । परन्तु विष्णु को श्याम भी कहा है इसका क्या कारण है ? यद्यपि कृष्ण और श्याम वर्ण में इतना भेद नहीं और सब ग्रन्थों में कृष्ण और श्याम दोनों रूपों का साथ २ वर्णन आता है जहां ये दोनों शब्द पर्य्याय ही हैं । तथापि यहां विचारने की एक बात है । बहुत दिनों के अनन्तर जब विष्णु के यथार्थ रूपको लोग भूल गये । इन को ब्रह्म ही समझने लगे । और आकाश से उपमा देने लगे क्योंकि ब्रह्म की उपमा प्रायः आकाश से अधिकतर दीगई है तब इस उपमा के साथ २ लोग यह भी मानने लगे कि हमारा पूज्य देव विष्णु, रूपमें भी, आकाश के समान ही है । यह अनभिज्ञ भक्तों की कल्पना थी । क्योंकि आकाश में कोई रूप नहीं परन्तु शून्याकाश श्याम प्रतीत होता है । इस हेतु विष्णु को भी श्याम ही मानने लगे । इसका एक यह भी अभिप्राय हो सकता है कि जैसे आकाश में श्याम रूप कल्पित मात्र है । इसी प्रकार रूपरहित परमात्मा विष्णुदेव में श्याम वर्ण की कल्पनामात्र है यथार्थ में विष्णु का कोई रूप नहीं । इस में सन्देह नहीं, यदि इस हेतु विष्णु को श्याम कहने लगे तो यह कल्पना विद्वत्ता की है । विष्णु को श्याम मानने में दूसरा कारण यह भी होसकता है कि श्याम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम सुन्दर रूप का है। काव्यादिक ग्रन्थो में उक्त है कि "शीतकाले भवेदुष्णा ग्रीष्मे च सुखशीतला । तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा श्यामेत्यभिधीयते" अर्थात् जो परम सुन्दरी स्त्री हो उसे काव्य में श्यामा कहा है । श्रीसीता महारानी यद्यपि गौरवर्ण थीं तथापि वाल्मीकिजी ने उनको श्यामा कहकर वर्णन किया है इसी प्रकार द्रौपदी भी श्यामा कही गई हैं। उसी कारण भगवती देवी को श्यामा कहते हैं क्योंकि उन सब देवियों से सुन्दरी कोई अन्य देवी नहीं। श्यामा स्त्रीलिङ्ग है। इसका पुंल्लिङ्ग श्याम होगा। जब भारतवासी आचरण में बहुत गिरगये अपने देव को सांसारिक बालकवत् परम सुन्दर मोहनरूप मानने लगे। इतना ही नहीं किन्तु बालरूप की ही मूर्ति बनाकर पूजने लगे। क्योंकि बालरूप जैसा सुन्दर होता है वैसा युवा वा बृद्ध रूप नहीं । किसी मन्दिर में राम वा कृष्ण के बृद्धरूप की मूर्ति की पूजा नहीं देखी जाती। रामलीला आदि में भी आजकल सदा एक बालक रूप की ही मूर्ति को दिखलाते हैं। रावण के वध के समय रामचन्द्र बालक नहीं थे । परन्तु उस समय में भी वही बालरूप आप देखते हैं ॥ बल्लभाचार्य्य के सम्प्रदाय में तो युवा वा बृद्ध कृष्ण है ही नहीं। एवमस्तु। इस हेतु से भी अपने देव को श्याम कहने लगे। यहां पर एक यह विषय भी चिरस्मरणीय है क्योंकि यह ऐतिहासिक है। श्याम शब्द का अर्थ सुन्दर कैसे हुआ। श्याम तो एक प्रकार का रंग रूप है। अन्वेषण से इस का कारण विदित हुआ है कि प्रथम आर्य्य लोग बड़े श्वेत वा गौर वर्ण थे। और यहां के जंगली लोग बड़े काले थे ये लोग भारतभूमि पर अभी तक उस रूप में विद्यमान भी हैं। आर्य्य लोग उन जंगली काले वर्णों की कन्याओं से सम्बन्ध करने लगे। इन दोनों के संयोग से जो सन्तान उत्पन्न होने लगे वे कुछ विलक्षण रंग के हुए। न तो वे पिता के समान परम गौर ही हुए और न माता के समान परम काले ही हुए। वे एक प्रकार से श्याम हुए। यह रूप आर्य्यों को स्वभावतः अच्छा प्रतीत होने लगा इस हेतु श्यामवर्ण सुन्दर अर्थ में प्रयुक्त होने लगा पश्चात् श्याम शब्द का सुन्दर अर्थ ही हो गया। आज कल भी श्याम बालक सुन्दर प्रतीत होते हैं। अथवा प्रकृति में भी श्याम वर्ण अन्य वर्णों की अपेक्षा कवियों की दृष्टि में अधिक सुन्दर भासित होता है। इत्यादि कारणों से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्याम शब्द का अर्थ सुन्दर होने लगा। ऐसा बुद्धिमान् जन वर्णन करते हैं।

"सत्त्वगुण विरोधी कृष्ण वर्ण"

संस्कृत शास्त्रों में सत्त्वगुण का स्वरूप श्वेतवर्ण और तमोगुण का, कृष्ण वर्ण वर्णित है। तमोगुणी यमराज का स्वरूप कृष्ण। इन के दूत भी कृष्ण हैं। शूद्रों का रूप इसी हेतु कृष्ण कहा है। यह मर्य्यादा संस्कृतसाहित्य में बहुत दिन से चली आती है। इस अवस्था में विष्णु भगवान् सात्त्विक होने पर भी कृष्ण वा श्याम क्योंकर कहलाये। यह प्रश्न आधुनिक पौराणिकों को अचिन्त्य संकट में डालने वाला है। पुराणों में इस का यथार्थ समाधान एक भी नहीं। यह शङ्का पौराणिकों को भी समय समय पर हुई है। और अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर भी कहा है। परन्तु वे सब कल्पित हैं। श्रीमद्भागवत में कृष्ण की स्तुति करते हुए वसुदेव जी ने कहा है:—

स त्वं त्रिलोकस्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः॥
सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये। भा०१०।३।२०

हे भगवन्! आप अपनी माया से त्रिलोक की रक्षा के लिये सात्त्विक गुण प्रधान शुक्ल (श्वेत सुफेद) रूप को धारण करते हैं। सृष्टि के हेतु राजस गुण प्रधान रक्त रूप को धारण करते हैं। और नाश के लिये तामसगुण प्रधान कृष्ण रूप को धारण करते हैं। यहां पर वसुदेव ने भगवान के शुक्ल रक्त और कृष्ण इन तीनों रूपों का तीन कार्य के लिये वर्णन किया है। पुराणों में प्रधानतया विष्णु रक्षक, महादेव संहारकर्ता, और ब्रह्मा सृष्टिकर्ता माने गये हैं। इस विवरण से विष्णु को केवल श्वेत ही होना चाहिये। यदि यह कहा जाय कि विष्णु अवतार लेकर दुष्टों का संहार करता है। इस हेतु अवतारावस्था में इन को कृष्णवर्णस्वरूप होना युक्ति युक्त है। ऐसा कहना उचित नहीं। क्योंकि प्रधानता का ग्रहण होता है। यद्यपि विष्णु युद्ध करता है परन्तु इस का प्रधान कार्य्य रक्षा है। यों तो ब्रह्मा महादेव को भी पालन, संहरण, सृष्टि करण का वर्णन पाया जाता है। पुनः पौराणिक व्यवस्था का अनियम प्रसंग दोष

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होगा इस हेतु इन तीनो देवों में एक एक गुण की प्रधानता स्वीकार करनी होगी। अतः विष्णु का सर्वदा श्वेत और महादेव का कृष्ण ही वर्ण होना उचित था। परन्तु यहां दोनों देवों में विपरीत पाते हैं इस का कारण क्या है? इस का समाधान आधुनिक पुराण से कदापि नहीं होसकता। इस का समाधान वेदार्थ के बोध से साक्षात् हो जाता है। इसका समाधान वही जो मैंने पूर्व में वर्णन किया है। अर्थात् वेद में सूर्य्य को कृष्ण कहा है क्योंकि अपने परितःस्थित ग्रहों को वह सूर्य्य अपनी ओर आकर्षण (खींच) कर रहा है। इस हेतु सूर्य्य का नाम ही कृष्ण है इसी हेतु सूर्य्यस्थानीय विष्णु देव और विष्णुके अवतार कृष्ण वर्ण माने गये हैं। इस में विद्वानो! अणुमात्र सन्देह नहीं। इस से भी सिद्ध हुआ कि विष्णु देव सूर्य्य के प्रतिनिधि हैं।

विष्णु और लक्ष्मी श्री।

विष्णु की शक्ति लक्ष्मी वा श्री देवी मानी जाती है। शोभा और सम्पत्ति का नाम लक्ष्मी वा श्री है। संस्कृत में यह प्रसिद्ध है। निःसन्देह बड़ी बुद्धिमत्ता से विष्णु भगवान् को श्री देवी दी गई हैं। इस पृथिवी पर शोभा अथवा सम्पत्ति कहां से आती है। विचार कर यदि देखें तो ज्ञात हो जायगा कि सूर्य्य ही इस जगत को शोभा पहुँचाता है और यथार्थ में सूर्य्य के कारण से ही जगत में शोभा है। हम इसका वर्णन क्या करेंगे। प्रकृति देवी स्वयं इस भाव को विस्तार रूप से प्रकाशित कर रहीं हैं। हे विचक्षणजनो! आप लोग इस को विचारें। आहा! जब संध्या होने लगती है उस समय समस्त प्राणियों में क्या ही महान् परिवर्तन धीरे धीरे होती जाती है। जो विहगगण आकाश को भूषित करते थे जो एक घण्टे में कम से कम एक क्रोश अवश्य उड़ सकते हैं वे अब बिलकुल अन्ध हो गये एकपद भी चलना इन के लिये कठिन हो गया। वे परम विवश हो गये। व्याधाओं के आखेट बन गये। अब अपनी मधुर ध्वनि से प्रकृति देवी के यश को नहीं गाते। भयभीत हो कर बड़े संकट से रात काटते हैं। जो छोटे छोटे पतङ्ग और गृहमक्षिकाएं बड़े वेग से उड़ती थीं और आकाश में नाना क्रीड़ा कौतुक करती थीं। वे अब किसी शाखा में वा गृहरज्जु में वा किसी स्थान में लटक कर रात बिताती हैं उन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की तीक्ष्णगति अब उन को कुछ भी लाभ नहीं पहुंचाती है । हम मनुष्य भी प्रकृति देवी की परम शोभा के देखने से बंचित हो जाते। चारों दिशाओं से भय उपस्थित होने लगता है। चोर न आवे। व्याघ्रादि हिंस्रजन्तु मेरे बच्चे को न ले जांय। हिम की वृष्टि हो कर मेरी कृषि को नष्ट न करदे। हिम से रात में कोई आपत्ति न आजाय। आज कितना जाड़ा लगेगा। मेरे प्रिय सन्तान सूर्य्य के विना जाड़े से मर न जांय। आज रात्रि क्या आपत्ति आने वाली है विदित नहीं। ईश्वर! रक्षा करो। सूर्य्य को शीघ्र लाओ। इस प्रकार आप देखते हैं कि रात्रि में कैसी दुर्घटना प्राणियों के ऊपर आती है। मनुष्य जाति बुद्धिमान् है। नाना उपायों से अपनी रक्षा कर लेती है। परन्तु अन्य प्राणी नहीं कर सकते उन के लिये रात्रि एक एक प्रलय है। जिनकी आंखें बहुत ही सूक्ष्म हैं वे तो बहुत दुःख पाते हैं॥ पक्षियों में काकपक्षी बहुत चतुर और बुद्धिमान् माना गया है। चतुर होने पर भी रात्रि में उसे बड़ा दुःख भोगना पड़ता है। संस्कृत में एक अतिशय रोचक कथा "काकोलूकीय" नाम से प्रसिद्ध है। रात्रि में काक असमर्थ हो जाता है। उलूक पक्षी इस के ऊपर आक्रमण कर ध्वंस कर देता है वह भी दिन में इस का बदला लेता है। भाव यह है कि शक्तिसम्पन्न भी पक्षीगण रात में सर्वथा असमर्थ हो जाता है। उलूक के समान प्राणी जगत में बहुत बिरल हैं। इस हेतु रात्रि की प्रशंसा इस से नहीं हो सकती। रात्रि की भी प्रशंसा हमारी पृथिवी पर सूर्य्य से ही है। चन्द्र के उदय से रात्रि की शोभा बढ़ती है। परन्तु चन्द्र के उदय का कारण कौन है ? सूर्य्य ही है। चन्द्र में स्वयं प्रकाश नहीं। सूर्य्य के ही प्रकाश से यह प्रकाशित होता है। यह ज्योतिष शास्त्र में प्रसिद्ध है। वेदविद्यानिर्णय में इसका वर्णन करेंगे इस हेतु चन्द्र से जो रात्रि की शोभा है वह यथार्थ में सूर्य्य से ही। अतः सूर्य्य ही शोभा का कारण है।

अब यह विचार कीजिये। रूप के ऊपर ही मुख्यतया शोभा निर्भर है। हम लोग मेघ की श्याम शोभा का वर्णन रूप से ही करते हैं। मयूर की शोभा उस के रूप से ही है। परन्तु रूप का ग्रहण किस से होता है। निस्सन्देह नयन से होता है। परन्तु वह नयन कैसे होता है। निस्सन्देह सूर्य्य के कारण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से ही होता है। नयन के लिये ही सूर्य्य की सृष्टि है। " चक्षोः सूर्य्योऽजायतः " चक्षु के लिये सूर्य्य उत्पन्न हुआ है। अतः सिद्ध हुआ कि जिस नयन से शोभा का बोध करते हैं उस का भी मुख्य कारण सूर्य्य भगवान् ही है। यथार्थ में पूंछिये तो जगत में जितने शुक्ल पीत नलि आदि रूप हैं इन सब का कारण सूर्य्य ही है। इस हेतु सूर्य्य को वेद "विश्वरूप" कहता है। अर्थात् सब रूपों की उत्पत्ति सूर्य्य देव से है " विश्वानि सर्वाणि रूपाणि यस्मिन् अथवा विश्वं सर्वं रूपयतीति विश्वरूपः" जिस में सब रूप हों अथवा जो सब को रूपित करे उसे विश्वरूप कहते हैं। उपनिषद में कहा गया है

असौ वा आदित्यः पिङ्गल एष शुक्ल एष नील एष पीत एष लोहितः। छा० उ०। ८। ६। १।

निश्चय यह सूर्य्य ही पिङ्गल है। यही शुक्ल है। यही नील है। यही पीत है। यही लोहित है। यद्यपि यह संसार पारस्परिक है। अर्थात् सूर्य्य विना वायु नहीं। वायु विना सूर्य्य नहीं। यदि वायु न हो तो सूर्य्य क्या कर सकता। यदि पृथिवी ही न हो तो प्राणी रह ही कहां सकते। यदि जल ही न हो तो अन्न हीं नहीं हो सकते। फिर प्राणी कैसे जीवें। इस प्रकार देखते हैं तो सब मिल कर कार्य कर रहे हैं। तथापि एक २ पदार्थ की एक २ मुख्यता देखते हैं। सूर्य्य की मुख्यता रूप प्रदान में है॥

सूर्य और सम्पत्ति।

यद्यपि सूर्य के वर्णन में इस के प्रत्येक गुण का वर्णन विस्तार से करेंगे परन्तु प्रसङ्ग से यहां पर भी कुछ वर्णन करना पड़ता है। सूर्य केवल रूपका ही प्रदाता नहीं है किन्तु सम्पत्ति (धन) का भी प्रदाता है। प्रथम तो सूर्य अनेक रोगों का सर्वदा नाश किया करता है जिससे जगत में बहुत न्यून व्याधि उत्पन्न होने पाती है। और जिस से क्या मनुष्य क्या पशु क्या विविध प्रकार की औषधिआं सब ही सुरक्षित रहते हैं। यह महासम्पत्ति का कारण होता है। दूसरा यह भी देखते हैं कि जहां सूर्य की धूप गेहूं जौ धान आदि शस्यों पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ठीक २ नहीं पड़ती है। वृक्षादि की छाया जहां अवरोधक है वहां शस्य नहीं होता। और प्रधानतया रब्बी की फसल सूर्य के ही आतप से होती है। इसी हेतु इस का नाम ही 'रब्बी' है। देश में रब्बी प्रधान सम्पत्ति है। इस प्रकार जहां तक विचार करते जांयगे वहां तक यही बोध होगा कि इसी सूर्य की शक्ति लक्ष्मी और श्री देवी है। अब यहां साक्षात् वेद का प्रमाण देते हैं जहां सूर्य की शक्ति लक्ष्मी और श्री मानी गई है यथाः—

श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्या वहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूप मश्विनौ व्यात्तम्।
इष्णन्निषाणा मुंम इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥ यजुः ३१। २२ ॥

अथ महीधरभाष्यम्। ऋषिरादित्यं स्तुत्वा प्रार्थयते। हे आदित्य! श्रीः लक्ष्मीश्च ते तव पत्न्यौ जायास्थानीये त्वद्वश्ये इत्यर्थः। यया सर्वजनाश्रयणीयो भवति सा श्रीः श्रीयतेऽनया श्रीः सम्पदित्यर्थः। यया लक्ष्यते दृश्यते जनैः सा लक्ष्मीः सौन्दर्य्य मित्यर्थः। अहोरात्रे तव पार्श्वे पार्श्वस्थानीये नक्षत्राणि गगनगास्तारा: तव रूपम्। तत्रैव तेजसाभासमानत्वात्। तेजसां गोलकः सूर्यो नक्षत्राण्यम्बुगोलका इति ज्योतिःशास्त्रोक्तेः। अश्विनौ द्यावापृथिव्यौ तव व्यात्तम् विकाशितमुखस्थानीये। अश्नुवाते व्याप्नुत स्तौ अश्विनौ। द्यावापृथिव्यौ इमे हीदꣳसर्वं मश्नुवातामितिश्रुतेः। यईदृश स्त्वां याचे इष्णन् कर्मफलमिच्छन् सन्। इषाण इच्छ इषु इच्छायाम्। विकरणव्यत्ययः। यद्वा इष आभीक्ष्ण्ये क्रयादिः अत्रेच्छार्थः। किमेषणीयम्। तत्राह अमुं परलोकं मे मम इषाण मम परलोकः समीचीनोऽस्त्वतीच्छा अमोघेच्छत्वादिष्टं भवतीत्यर्थः। सर्वं मे मम इषाण सर्वलोकात्मकोऽहं भवेय मितीच्छेत्यर्थः मुक्तोभवेय मित्यर्थः। सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति सामश्रुतेः। २२।

इस मन्त्र का अर्थ महीधर भाष्यके अनुसार करते हैं (इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मैं महीधर भाष्य को सत्य समझता हूं किन्तु यहां यह दिखलाना है कि जिस समय सूर्य एक प्रधान देवता माना गया था उस समय में सूर्य को लोग क्या २ समझते थे और सूर्यस्थानीय जब एक विष्णुदेव बनाया गया तो किस प्रकार सूय के समस्त गुण इस में आरोपित हुए)। ऋषि सूर्य्य की स्तुति करके प्रार्थना करते हैं हे आदित्य! (श्रीः) श्री (च) और (लक्ष्मीः) ये दोनों (ते)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम्हारी (पत्न्यौ) पत्नी जायास्थानीय हैं अर्थात् आप के वश्य हैं। आगे श्री और लक्ष्मी शब्दकी व्युत्पत्ति करके अर्थ करते हैं कि श्रीनाम सम्पत्ति का है और लक्ष्मीनाम सौन्दर्य का है। (अहोरात्रे) दिनरात (पार्श्वे) पार्श्वस्थानीय हैं। (नक्षत्राणि) गगनस्थित ताराएं (रूपम्) आपके रूप हैं क्योंकि हे आदित्य! आपके ही तेज से ये नक्षत्र भासित होते हैं। ज्योतिषशास्त्र में कहागया है। तेज का गोलक सूर्य है और जलगोलकवत् ये नक्षत्र हैं। (अश्विनौ) द्युलोक और पृथिवी (व्यात्तम्) मुखस्थानीय हैं। आगे सप्रमाण सिद्ध किया है कि द्युलोक और पृथिवी का नाम अश्वी है॥ जो आप ऐसे हैं। उनसे मैं याचना करता हूं। (इष्णन्) कर्म फल की इच्छा करते हुए आप (मे) मेरे (अमुम्) परलोक की (इषाण) इच्छा करें। मुझे अछा परलोक होवे (मे) मेरे (सर्वलोकम्) सबलोक की आप (इषाण) इच्छा करें। अर्थात् मैं सर्वलोकात्मक होऊं अर्थात् मुक्त होऊं।

इस मन्त्र में साक्षात् सूर्य्य की पत्नी लक्ष्मी और श्री मानी गई हैं। इसी हेतु सूर्य्यस्थानीय विष्णु भगवान् की भी पत्नी लक्ष्मी और श्री ही बनाई गई। हे विद्वानो! इस पर आप लोग पूर्णतया ध्यान देवें। किस विद्वत्ता के साथ सङ्गति लगाई गई है। ऐसे स्थल में वैदिक भाषा में पत्नी नाम शक्ति मात्र का है। पालयित्री शक्ति का नाम पत्नी है। सूर्यादि-पदार्थों की मनुष्यवत् कोई स्त्री नहीं है। परन्तु इन में एक महती शक्ति है जिससे जगत् का पालन और पोषण कररहे हैं। उसी शक्ति का नाम पत्नी है। लक्ष्मी की उत्पत्ति समुद्र से मानी गई है मैंने अनेक स्थानों में आप लोगों से कहा है कि 'समुद्र' शब्द आकाशवाची है। आकाश से लक्ष्मी वा श्री की उत्पत्ति है यह बहुत ही ठीक है क्योंकि समुद्र जो आकाश उस में रहने वाला जो सूर्य्य वह भी 'समुद्र' कहलाता है। संस्कृत का ऐसा नियम है। जैसे मंच और मंचस्थ पुरुष दोनों मंच शब्दसे व्यवहृत होते हैं। इस हेतु समुद्र जो सूर्य उससे लक्ष्मी की उत्पत्ति है यह भाव है। परन्तु समय के परिवर्तन से इस भाव को लोग भूलगये और समुद्र शब्द भी एक ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा इस कारण यह अज्ञानता जगत में फैलगई कि जलराशि के मथन से लक्ष्मी देवी का जन्म हुआ। प्रथमतो लक्ष्मी देवी हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूर्य से भिन्न कोई वस्तु नहीं पुनः इस का जन्मादिक कैसे सम्भव होसकता है । हां, लक्ष्मीनाम शोभा सौन्दर्य्य सम्पत्ति ऐश्वर्य्य आदि का है । इस का कारण सूर्य देव है इस में संशय नहीं इस हेतु लक्ष्मी को सूर्य शक्ति वा पत्नी कहते हैं । पश्चात् जब सूर्य को विष्णुरूप से एक देह धारी मनुष्य समान बनाया तब आवश्यकता हुई कि इन को कोई मनुष्यवत् पत्नी होनी चाहिये । सो जो पत्नी वैदिकी थी उसी को यहां भी लेआए । हे विद्वानो ! इस विषय को आप लोग विचारें ।

"विष्णु और कमल"

यह पुराणों में विदित है कि विल्वपत्र (वेलनामक वृक्षके पत्ते) से जैसे श्री महादेव जी वैसे ही कमल के फूल से श्री विष्णुजी अति प्रसन्न होते हैं । क्यों ? क्या कमल अति सुन्दर होता है इस हेतु ? । नहीं । इस से भी अन्यान्य कुसुम परम मनोहर जगत में विद्यमान हैं । क्या कमल जल में रहनेसे जलशायी विष्णु का प्रीति भाजन हुआ ? । नहीं । कुमुदिनी आदि अनेक सुमन जल में निवास करते हैं । इस के भी मुख्य कारण सूर्य देव ही हैं । अलङ्कार रूप से कवियों ने वर्णन किया है कि कमलिनी रूप स्त्री का नायक, मानो, सूर्य है । क्योंकि सूर्य्योदय होने से कमलिनी प्रस्फुटित होती है और अस्त होनेपर संकुचित होजाती है । कविलोग कमल शब्द को ही कमलिनी बना लेते हैं । और इसको स्त्रीवत् मानते हैं । इसी हेतु सूर्य्यस्थानीय विष्णुदेव भी कमलिनी के नायक बनाए गए । इस कारण कमल के फूल से विष्णुकी प्रसन्नता का विवरण पुराणों में पाया जाता है । इस में सन्देह नहीं स्वभावतः कमल मनोहर होता है । इसी हेतु संस्कृत काव्य में कमलके साथ बहुत उपमा दीगई है ॥ पौराणिक अपने भगवान् को भी पुण्डरीकाक्ष, कमलनयन, आदि विशेषण देकर पुकारते हैं । पुण्डरीक नामभी कमल का ही है ॥ पुण्डरीक(कमल)के समान (अक्षि) नेत्रवाले को पुण्डरीकाक्ष कहते हैं । इस शब्द का महात्म्य पुराणों में बहुत कुछ गाया गया है । "अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोपिवा । यःस्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स वाह्याभ्यन्तरः शुचिः" यथार्थ में इस शब्दका अर्थ इसप्रकार होना चाहिये । "पुण्डरीकं हृदय कमलं अक्ष्णोति व्याप्नोतीति पुण्डरीकाक्षः अक्षू व्याप्तौ" पुण्डरीक जो हृदय कमल उस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में जो व्याप्त हो वह पुण्डरीकाक्ष । क्योंकि हृदय रूप कमल में ब्रह्म के ध्यान का विधान उपनिषदादि ग्रन्थों में आया है । यथार्थ में भारतवर्षीय सर्व सम्प्रदाय में कमल की प्रशंसा आई है । बौद्ध धर्म्म में इसकी बड़ी विशेषता गाई गई है कमल के फूल में शतदल १०० तो होते ही हैं । परन्तु एक एक फूल में कहीं २ सहस्र १००० दल भी देखे गये हैं इसी हेतु कमल का नाम ही "सहस्रपत्र" है । "सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम्" सूर्य को भी 'सहस्रांशु' सहस्र किरण वाला कहते हैं । इसी हेतु मानो प्रकृति देवी ने इन सहस्रपत्र और सहस्रांशु में सम्बन्ध जोड़ा है । विष्णु-रचयिता महाकवि ने भी इस प्राकृत सम्बन्ध को रूपान्तर में भी स्थिर रक्खा । एवमस्तु । प्रसेक विषय हम को सूचित करता है कि विष्णु सूर्य स्थानीय देव हैं ।

विष्णु और समुद्र मथन ।

समुद्र मथन की कथा अति प्रसिद्ध है । महाभारत रामायण और श्रीमद्भागवत आदि सकल पुराणों में इस की चर्चा आई है । इस कथा में विष्णु की ही प्रधानता है । यदि विष्णु मोहिनी रूप धारण नहीं करता तो देवों का प्रयत्न विफल हो जाता । इस हेतु इसका भाव वर्णन करना आवश्यक है ।

ततो नारायणो मायां मोहिनीं समुपाश्रितः । स्त्री रूपमद्भुतं कृत्वा दानवान भिसंश्रितः ॥ ४६ ॥ ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढ चेतसः । स्त्रियै दानव दैतेयाः सर्वेतद्गतमानसाः ॥ ४७ ॥ महा० ॥ १ । १८ ॥ उच्चैश्रवाः हयश्रेष्ठो मणिरत्नं च कौस्तुभम् । उदतिष्ठन्नरश्रेष्ठ तथैवा ऽमृतमुत्तमम् ॥ ३९ ॥ अथ तस्य कृते राम महानासीत् कुलक्षयः । अदितेस्तु ततः पुत्रा दितिपुत्रानयोधयन् ॥ ४० ॥ एकतामगमन् सर्वे असुरा राक्षसैः सह । युद्धमासीन्महाघोरं वीरत्रैलोक्य मोहनम् ॥ ४१ ॥ यदा क्षयं गतंसर्वं तदा विष्णुर्महाबलः । अमृतं सोऽरचूर्णं माया मास्थाय मोहिनीम् ॥ ४२ ॥ ये गताभि मुखं विष्णुमक्षरं पुरुषोत्तमम् । संमृष्टास्तेतदायुद्धे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ४३ ॥ इत्यादि । वाल्मीकि रा० बाल का० सर्ग ॥ ४५ ॥

इन सबों का भाव । तब नारायण देव मोहिनी माया के आश्रित हो अद्भुत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक स्त्री का रूप बना दानवों के निकट आ पहुंचे। तब उन दानवगणों ने स्त्री के रूप से मोहित हो उस स्त्री को अमृत दे दिया। इत्यादिकथा महाभारत आदि पर्व में देखिये। उस समुद्र से अश्वश्रेष्ठ उच्चैःश्रवा नाम का अश्व और मणिरत्न कौस्तुभ उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् उत्तम अमृत उत्पन्न हुआ। हे राम! जिसके लिये महान् कुलक्षय हुआ। अदिति के पुत्र अर्थात् देवगण दिति के पुत्र दैत्यों से युद्ध करने लगे। असुर और राक्षस सब मिल एकता कर देवों से घोर संग्राम करने लगे। जब सब का क्षय हुआ तब विष्णु ने शीघ्र मोहिनी माया को धारण कर अमृत हरण कर लिया। विष्णु के अभिमुख जो जो दैत्य दानव राक्षस आए उन सबों को विष्णु ने चूर्ण २ कर दिया। इत्यादि वाल्मीकि रामायण में अमृत मथन की कथा देखिये। श्रीमद्भागवत अष्टमस्कन्ध के षष्ठाध्याय से इस कथा का आरम्भ होता है संक्षेप से यह कथा है। जब देव गण असुरों से परास्त हुए और असुरों की परम वृद्धि होने लगी तब वे सब देव ब्रह्मा को साथ लेकर विष्णु के निकट गये। विष्णु ने उन सबों से यह कहा कि आप लोग असुरों से मेल कर अमृत मथन के लिये यत्नकीजिये। अन्त में असुर केवल क्लेश भागी ही होवेंगे परन्तु आप लोग फल प्राप्त करेंगे। विष भी उत्पन्न होगा उस से आप लोग मत डरना। मन्दराचल को मन्थन दण्ड और वासुकि सर्प को मन्थन रज्जु बना समुद्र का शीघ्र मन्थन कीजिये। इसी से आप लोगों का कल्याण है। देव और असुर दोनों ने मिल कर वैसा ही किया। प्रथम हलाहल विष उत्पन्न हुआ जिसको महादेव ने ग्रहण किया। तब हविर्धानी उत्पन्न हुई। जिसको ऋषियों ने लिया। तब श्वेतवर्ण उच्चैःश्रवा अश्व (घोड़ा) और चतुर्दन्त ऐरावत हाथी उत्पन्न हुए। जो इन्द्र की सेवा में रहे। तब कौस्तुभ मणि। जिसको विष्णु ने ग्रहणकिया। तब पारिजात। जो स्वर्ग का भूषण है। पश्चात् अप्सराएं उत्पन्न हुईं। तत्पश्चात् साक्षात् लक्ष्मी का आविर्भाव हुआ। जो विष्णु की प्रिया हुई। तब वारुणी उत्पन्न हुई जिस को असुरों ने ग्रहणकिया। इन सबों के पश्चात् जिस अमृत के लिये उतना उद्योग और परिश्रम किया गया। उसको कलश में लेकर वैद्य धन्वन्तरि आविर्भूत हुए। अमृत निकलते ही विष्णु तो अन्तर्हित होगये और देव दानवों में तुमुल संग्राम होने लगा देवों को मार पीट दूर कर असुरगण अमृत ले भाग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चले। विष्णु यह लीला देख मोहिनी स्त्री रूप बन असुरों के मार्ग में जा खड़े हुए। असुर गणों ने उस मोहिनी रूप से मोहित हो अमृत भाजन (पात्र) उस स्त्री को दे दिया। पश्चात् असुरों से छल कर विष्णु ने देवों को अमृत पान कर वाया। यह पौराणिक कथा अति प्रसिद्ध है। महाभारत रामायण और पुराण आदि की कथा में बहुत भेद है। यथा :—

ततः शतसहस्रांशु र्मथ्यमानात्तु सागरात्। प्रसन्नात्मा समुत्पन्नः सोमः शीतांशु रुज्वलः। श्री रनन्तरमुत्पन्ना घृतात्पाण्डरवासिनी। सुरा देवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डरस्तथा। कौस्तुभस्तु मणिर्दिव्य उत्पन्नोघृतसंभवः। मरीचिविकचः श्रीमान् नारायणउरोगतः। पारिजातस्तु तत्रैव सुरभिस्तु महामुने। अजायत तदा ब्रह्मन् सर्वकामफलप्रदे। श्रीः सुरा चैव सोमश्च— तुरगश्च मनोजवः। यतो देवास्ततो जग्मु रादित्यपथ माश्रिताः। धन्वन्तरिस्ततोदेवो वपुष्मानुदातिष्ठत। श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति। एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः। अमृतार्थे महान्नादो ममेदमिति जल्पताम्। श्वैतैर्दन्तैश्चतुभिस्तु महाकायस्ततः परम्। ऐरावणो महानागोऽभवद्वज्रभृताधृतः। अति निर्मथनादेव कालकूटस्तथापरः। जगदावृत्य सहसा सधूमोऽग्निरिव ज्वलन्। त्रैलोक्य मोहितंयस्य गन्ध माघ्राय तद्विषम्। प्राग्रसल्लोकरक्षार्थं ब्रह्मणोवचनाच्छिवः। दधार भगवान् कण्ठे मन्त्रमूर्तिर्महेश्वरः। इत्यादि महाभारत आदिपर्व अध्याय १८।

अर्थः—मथ्यमान समुद्र से प्रथम शतसहस्रांशु प्रसन्नात्मा उज्वल और शीतांशु सोम उत्पन्न हुआ। पश्चात् उस जल से श्वेतवस्त्र भूषिता लक्ष्मी उत्पन्न हुई। तब सुरादेवी, श्वेत घोड़ा, और कौस्तुभमणि, उत्पन्न हुए। कौस्तुभ मणि नारायण के उरस्थित हुआ। हे महामुने पारिजात और सुरभि गौ समस्त फल देने वाली उसी से उत्पन्न हुई। श्री, सुरा, सोम और वेगवान् तुरग ये सब देव के निकट गये। और आदित्य के पथ में विराजमान हुए। तब शरीर धारी धन्वन्तरि देव हाथ में श्वेत कमण्डलु लिए हुए उत्पन्न हुए जिस कमण्डलु में अमृत था। इस अत्यद्भुत लीला को देख दानवों में अमृत के लिये महान् नाद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपस्थित हुआ। तब चार दन्त वाला ऐरावण नाम का हाथी उत्पन्न हुआ तत्पश्चात् अति निर्मथन से कालकूट उत्पन्न हुआ। जिसको ब्रह्मा के वचन से महादेव ने अपने कण्ठ में धारण कर लिया। आगे यह कथा है कि अमृत और लक्ष्मी के लिये देव दानवों में बड़ी शत्रुता हुई। तब विष्णुने मोहिनी माया से दानवों को छल देवों को अमृत पिला कृतार्थ किया।

उत्पपाताग्निसंकाशं हालाहल महाविषम्। तेन दग्धं जगत् सर्वं सदेवासुर मानुषम्।.....अथ वर्ष सहस्रेण आयुर्वेदमयःपुमान्। उदतिष्ठत्सु धर्म्मात्मा सदण्डः सकमण्डलुः। अथ धन्वन्तरिर्नाम अप्सराश्च सुवर्चसः।.....वरुणस्य ततःकन्या वारुणी रघुनन्दन। उत्पपात महा भागा मार्गमाणा परिग्रहम्। दितेःपुत्रा न तां राम जगृहुर्वरुणात्मजाम्। अदितेस्तुसुतावीर जगृहुस्तामनिन्दिताम्। असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः। हृष्टाः प्रमुदिताश्चासन् वारुणीग्रहणात्सुराः।

रामायण बाल० ॥ ४५ ॥

वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार कथा है। समुद्र के मथन से प्रथम अग्नि के समान हलाहल विष उत्पन्न हुआ जिससे सम्पूर्ण जगत् दग्ध होने लगा। तब सब देव महादेव के निकट जा इस आपत्ति से रक्षा के लिये प्रार्थना करने लगे इसीसमय शंखचक्रधर हरि भी आगये। इन्होंने महादेव से कहा कि यह विष अग्र पूजा के समान उपस्थित हुआ है। आप इसको लेवें। महादेव जी ने वैसा ही किया। तब बहुत वर्षों के पश्चात् आयुर्वेदमय धर्मात्मा पुरुष धन्वन्तरि दण्ड और कमण्डलु के साथ जल से ऊपर हुए। और अप्सराएं भी ऊपर हुईं। आगे अप्सरा शब्द की व्युत्पत्ति करते हैं। जल में मथन से जल के रस से ये उपस्थित हुई इस हेतु ये "अप्सरस्" कहाती हैं। तब वरुण की कन्या वारुणी (सुरा, मद्य) उपस्थित हुई। और "मुझ को कौन ग्रहण करता है" यह प्रत्याशा करने लगी। हे राम! दिति के पुत्र दानव गणों ने वारुणी का ग्रहण नहीं किया। परन्तु हे वीर! अदिति के पुत्र देवगणों ने अनिन्दित वारुणी का ग्रहण किया। इसी हेतु दिति पुत्र दानवगण "असुर" सुरा रहित कहलाते हैं। और वारुणी सुरा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के ग्रहण से देवगण 'सुर' कहलाते हैं। वारुणी के ग्रहण से देवगण अति हृष्ट और मुदित हुए। इस के अनन्तर यह कथा है। "उच्चैःश्रवाहयश्रेष्ठो मणिरत्नञ्चकौस्तुभम्" घोड़ों में श्रेष्ठ उच्चैःश्रवा, मणिरत्न कौस्तुभ और उत्तम अमृतउत्पन्न हुए। हे राम! अमृत के लिये देव दानव में तुमुल संग्राम हुआ। मोहिनी माया को धारण कर तब विष्णु ने दानवों से अमृत ले लिया। विष्णु ने सब असुरों का नाश कर देवों को अमृत पिलाया। इन्द्र इस प्रकार राज्य पाकर परम मुदित हुए। भागवत का संक्षिप्त कथा सार ऊपर दे चुके हैं। इन तीनों ग्रन्थों से इस कथा के देने से हमारा यह अभिप्राय है कि आप लोग विचार करें कि अमृत मथन का जो प्राचीन भाव था वह भाव इन ग्रन्थकारों के समय में विस्मृत होगया था। इसी हेतु कथा में इतना भेद है। रामायण में लक्ष्मी की उत्पत्ति का वर्णन नहीं है। रामायण कहता है कि वारुणी का असुरों ने ग्रहण नहीं किया। किन्तु देवों ने इस का ग्रहण किया। इस के विरुद्ध श्रीमद्भागवत कहता है कि "अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना। असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते॥ तब कमललोचना वारुणी देवी उपस्थित हुई। जिस का ग्रहण भगवान् की अनुमति से असुरों ने किया। इस प्रकार देखते हैं कि कथा में विरोध भी है। यदि यह कथा सत्य होती तो सर्वत्र समान ही होती। परन्तु समान नहीं है। इस से अनुमान होता है कि यह मिथ्या है। और जहां से प्रारम्भ में यह कथा चली। उस का भाव भी इन ग्रन्थकारों के समय में विलुप्त होगया था इसी हेतु अपने अपने अनुमान के अनुसार पश्चात् इस कथा को बनाया। वाल्मीकि रामायण और महाभारत के देखने से यह झट से प्रतीत हो जाता है कि ये सब कथाएं इन में पीछे से मिलाई गई हैं। इस हेतु ये सब क्षेपक हैं। आज इस कथा की समालोचना करते हुए हम को साथ ही शोक होता है कि आख्यायिका-रचयिता की अविकल सम्पूर्ण रचना हम लोगों तक नहीं पहुंच सकी। यदि पहुंचती तो इन सबों का भाव आज विस्पष्ट हो जाता पौराणिक तो इस कथा के तात्पर्य्य से सर्वथा विमुख ही रहे। एवमस्तु। जितना अंश सामान्य रीति से सर्वत्र पाया जाता है। इस के भाव पर हम लोग अब ध्यान देवें। समुद्र का मथन अमृत का निकलना अमृत लेकर असुरों का भा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गना विष्णु को मोहिनी रूप होना तब देवों की कृतकृत्यता होनी इत्यादि कथा सब में तुल्य ही है ॥

इस कथा का भाव क्या है ? क्या यथार्थ में देवों ने समुद्र का मथन दधिवत् किया । क्या यथार्थ में उस से अमृत निकले जिस को देवगण पान कर अमर हुए ? हे विद्वानो ! जिस को आज कल लोग समुद्र समझते हैं उस का मथन न कभी हुआ न होगा । कौन अज्ञानी पुरुष इस पानी का अमृत की आशा से मथन करेगा । और जिस को लोग अमृत मानते हैं वह कहीं नहीं है । आज वे देव कहां हैं जो अमर हो गये ? आप पुराणों में सुनते हैं कि वे देव दानव सदा पृथिवी के ऊपर ही लड़ा करते थे परन्तु आज कल के समय में वे एक भी नहीं दिखते । क्या कारण है ? यथार्थ में इस का यह भाव ही नहीं है । फिर वह देव कहां से आवें । पुराण के समय में महान् अन्धकार इस जगत् में फैल गया जिस का नाश अभी तक नहीं हुआ । सुनिये इस का क्या भाव है । हमने आप लोगों से अनेक स्थल में कहा है कि समुद्र नाम आकाश का है । इस में अब प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं पीछे की बात स्मरण कीजिये । इस प्रकरण में "असुर" नाम मेघ का है आपलोग अच्छे प्रकार स्मरण रखिये । इस में निघण्टु का प्रमाण ।

अद्रिः । ग्रावा । गोत्रः । बलः । अश्मः । पुरभोजाः । वलिशानः । अश्मा । पर्वतः । गिरिः । व्रजः । चरुः । वराहः । शम्बरः । रोहिणः । रैवतः । फलिगः । उपरः । उपलः । चमसः । अहिः । अभ्रम् । वलाहकः । मेघः । दृतिः । ओदनः । वृषन्धिः । वृत्रः । असुरः । कोशः इति त्रिंशन्मेघनामानि । निघण्टु ५ । १० ।

इस में साक्षात् असुर शब्द का पाठ आया हुआ है ॥ और " देव " नाम सूर्य के किरणों का भी है यह आप लोग अच्छे प्रकार जानते ही हैं । परन्तु यह भी आप लोग स्मरण रक्खें कि वैदिक भाषा में पदार्थमात्र को ' देव ' कहते हैं । अब थोड़ी देर तक अलङ्काररूप से समझें कि सूर्य के किरण और मेघ देहधारी देवगण हैं । सूर्य के किरण, " देव " और मेघ ' असुर ' हैं ॥ (मेघ का नाम ही असुर है) ये दोनों मिलकर समुद्र अर्थात् आकाश का मथन करते हैं । अर्थात्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जैसे दूध जमकर जब दही होजाता है । तब उसका मथन करते हैं अथवा साक्षात् दूधका ही मथन कर घृत निकालते हैं । वैसे ही सूर्य-किरण द्वारा पृथिवी परसे जब थोड़ा २ पानी आकाश में एकत्रित होने लगता है । और क्रमशः मेघरूप में आकर आकाश में इधर उधर दौड़ने लगता है तो उस समय मानो सूर्य किरण और असुरगण (मेघदेवता) समुद्र (आकाश) को मथन कर रहे हैं ॥ इस प्रकार मथन करते हुए ' अमृत ' निकलता है । हे विद्वानो ! अमृत नाम 'जल' का ही है । वेदों में इस के अनेक उदाहरण आए हैं पीछे वर्णन भी किया गया है । अमरकोश भी कहता है यथाः—पयः कीलाल ममृतं जीवनं भुवनं वनम् " पय कीलाल, अमृत, जीवन, भुवन, वन आदि जलके नाम हैं अब आप ध्यान दीजिये । पृथिवी पर से वा पृथिवीस्थ जलाशयों से वा पृथिवीस्थ समुद्रों से पानी ऊपर उठता है तो वह प्रथम वाष्प के रूपमें आता है पुनः मेघाकार होता है । तब द्रवीभूत होकर बरसता है । यदि संयोग न हो तो वही उत्थित पानी कहीं शीत होकर पत्तोंपर जमजाता है । कहीं कुहक(कुहेशा)के रूप में होकर धुन्धलासा हो लुप्त होजाता है । कहीं तीक्ष्ण ताप से छिन्न भिन्न होकर वाष्प रूप में ही रह जाता है । कहीं वनौले हो पत्थर के रूप में पृथिवी पर गिरता है । इत्यादि पानी की दशा होती रहती है जब आकाश मथन द्वारा वह पानी अमृतरूप में आता है अर्थात् ठीक बरसने वाला मेघ रूप में आता है । तब उस समय में एक विचित्र शोभा देख पड़ती है । मेघ भागता है । पूर्व या पश्चिम या उत्तरादि दिशा की ओर मेघ दौड़ता हुआ दीखता है । यही असुरों का अमृत लेकर भागना है ॥ अभी मैंने कहा है कि असुर नाम मेघ का है । यहां असुरपद से मेघ का देवता समझें । मेघ का देवता जो असुर है वह अमृत जो मेघघटा है उसको लेकर मानो भाग रहा है । अब देव जो सूर्य्यकिरण वे देखते हैं कि हमारा परिश्रम बिलकुल व्यर्थ गया । क्योंकि जिसका हमने मथन किया था उस को असुर (मेघ देवता) लेकर भाग रहा है ॥ वे सूर्य्य किरण विष्णु (सूर्य) देव से कहते हैं कि आप कोई इस का उपाय सोचें । उस समय विष्णु देव एक सुन्दर मोहिनी रूप धारण करते हैं । अर्थात् विष्णु (सूर्य) विद्युद्रूप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्री का रूप धारण करते हैं। अर्थात् विद्युत (बिजुली) रूप होकर असुरगण (मेघगण) में प्रविष्ट हो मेघ को छिन्न भिन्न कर के पानी बरसाने लगते हैं। यही-विष्णु (सूर्य) का मोहिनीरूप धारण करना है और इस प्रकार असुरों को छलना है। वर्षा का होना ही देवों को अमृत प्राप्ति है। वर्षा होनाही अमृत है। इसको देव अर्थात् सकल पदार्थ पाकर परम प्रसन्न होते हैं। मेघ में विद्युत आदि की उत्पत्ति का कारण यथार्थ में सूर्य ही है। सूर्य की गरमी से ही वायु चलता है। वायु के आधार पर मेघ भ्रमण करता है। उस मेघ के संघर्षण से विद्युत् उत्पन्न होती है यथार्थ में मेघ का कारण ही सूर्यदेव है। इस का इसप्रकार भी विचार कर सकते हैं। सूर्य की उष्णता के कारण जो मेघ की घटा में एक परमसुन्दर शोभा उत्पन्न होती है मानो वही सूर्य(विष्णु)का मोहिनी रूप धारण करना है-उसमें असुर (मेघ) मोहित होकर (द्रवीभूत होकर) अमृत अर्थात् जल को छोड़ देता है। अर्थात् सूर्य की उष्णता से वर्षा होने लगती है। देव अर्थात् सब पदार्थ इसे पा अमर होते हैं। अन्यथा जलके विना सबही मरजांय यहां देव शब्दार्थ सूर्यकिरण और पृथिवीस्थ पदार्थ है। अमृत जलको इस हेतु कहते हैं कि वह कभी मरता नहीं। हम लोग देखते हैं कि वृक्ष जब आग में भस्म कर दिया जाता है। तब वह वृक्ष रूप में पुनः कदापि नहीं आसकता। ऐसी ही सब पदार्थों की गति है। परन्तु जल भस्म कर देने पर भी ठीक अपने स्वरूप में आजाता हैं। आग पर चढ़ाने से जल केवल वाष्प होजाता है। यन्त्र के द्वारा वह वाष्प ठीक उसी जल के रूप में दिखलाया जा सकता है हम लोग देखते हैं कि ढकने के पेंदी में पानी जमा रहता है। वह पानी वाष्प का ही है। प्रथम पृथिवी पर से पानी ऊपर जाकर वाष्प हो जाता है। और वाष्प से पुनः मेघ होता है। तब पुनः उसी पानी के रूप में होकर बरसता है। इस प्रकार देखते हैं कि जल कदापि मरता नहीं इसी हेतु इसका नाम वैदिक भाषा में "अमृत" है इस अमृत का मथन प्रतियुग प्रतिवर्ष प्रतिदिन होता रहता है। सूर्य्य प्रति दिन अपने किरणों से पृथिवी पर का पानी ऊपर खींचता है। इसी की गरमी से पृथिवीस्थ समुद्र से भी पानी वाष्प रूप में ऊपर उठता है। यही समयान्तर में मेघ बनता रहता है। सरोवर आदि का पानी वैशाख ज्येष्ठमें सूखा पाते हैं। इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का कारण क्या है ? कुछ पानी तो पृथिवी के अभ्यन्तर चला जाता है और उस के अधिकभाग सूर्य्य-किरणों से वाष्प हो जाता है। वर्षा ऋतु में सागर के पानी में बहुत वाष्प होता रहता है। इसी हेतु वर्षा भी अधिक होती है। यह घटना केवल वर्षा ऋतु में ही नहीं किन्तु प्रत्येक ऋतु में होती है इसी हेतु कुछ कुछ वर्षा सब ऋतु में होती है। जहां वर्षा नहीं होती है। वहां कई एक कारण हैं। उष्णता के कारण मेघ वहां आते आते वाष्प होजाता है। प्राकृत विज्ञान में इन सब का बृहत् वर्णन किया गया यहां इस की आवश्यकता नहीं। इस हेतु हे विद्वानो! अमृत मथन तो प्रतिदिन प्रतिऋतु में हुआ करता है अज्ञानी लोग समझते हैं कि अमृत मथन हो चुका देव अमर हो गये। असुर परास्त हुए। परन्तु ज्ञानी लोगों की दृष्टि में समुद्र मथन सर्वदा होता रहता है।

"हलाहल विष आदि"

आप लोग देखते हैं कि जब वर्षा का आरम्भ होता है तब उसके पहले बड़ी गरमी उत्पन्न होती है। वायु बन्द हो जाता है लोग परिभ्रान्त हो जाते हैं। पसीने से लोग तरबतर हो जाते हैं। वर्षा ऋतु की गरमी कभी कभी बड़ी दुःखदायी होती है। जो लोग ऐसे देश में निवास करते हैं जहां पर सब ऋतु होती हैं। उन्हें सब यह घटना अच्छे प्रकार अनुभूत है। इसी गरमी का होना मानों जगत में हालाहल कालकूट विष का फैलना है। वर्षा के आरम्भ में बीमारी भी बहुत फैलती। हैजे की बीमारी इसी ऋतु में होती है वातव्याधि इसी ऋतु में फैलकर लोगों में विविध रोग को उत्पन्न करती है। इन ही रोगों का फैलना मानों समुद्र (आकाश) से कालकूट विष का उत्पन्न होना है। इस विष को रुद्र (महादेव) खा लेते हैं। इसका भाव यह है कि रुद्र नाम "विद्युत" का है इसका वर्णन आगे करेंगे। विद्युत से यहां तात्पर्य्य पूर्णवर्षाका है। क्योंकि विद्युत वर्षा का सूचक है। अर्थात् जब पूर्ण वर्षा होने लगती है। जगह जगह की सरी चीजें अधिक वर्षा होने से नदियों के द्वारा समुद्र में जा गिरती हैं। तब पुनः देश में बीमारी कम हो जाती है। यही रुद्रकृत विष का पी.

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ना है। इस के अनन्तर उच्चैःश्रवाः हय और ऐरावत हाथी उस समुद्र से उत्पन्न होता है। इसका भाव यह है कि श्रवस नाम श्रवण यश कीर्ति आदि का है। इस हेतु उच्चैःश्रवाः वायु का नाम है। क्योंकि वायु का यश उच्चैः अर्थात् उच्च अधिक है वर्षा ऋतु में जो वायु उत्पन्न होता है उसका नाम उच्चैःश्रवा है। क्योंकि यदि वायु न हो तो मेघ को इधर उधर ले जा कर कौन बरसावे वर्षा ऋतु में प्रजाएं वायु का राह देखती रहती हैं। प्रजाओं को अच्छे प्रकार मालूम रहती है कि अमुक वायु के चलने से अवश्य वृष्टि होगी। इस हेतु उस वायु की कीर्ति को प्रजाएं बहुत गाती हैं। इसी कारण उस वायु का नाम उच्चैः श्रवाः (उच्चयश वाला) है। यह इन्द्र का वाहन है। ऐसे ऐसे स्थान में वायु के अधिष्ठातृ देव का नाम इन्द्र है। (अधिष्ठातृ देव की कल्पना भी आधुनिक है। परन्तु इसी कल्पना के ऊपर ये सब आख्यायिकाएं भी कल्पित हैं इस हेतु अधिष्ठातृ देव मानना पड़ता है) उस देव का यह उच्चैःश्रवाः वाहन है। इस में सन्देह ही क्या। अथवा इन्द्र नाम सूर्य्य का भी है। सूर्य्य के अधीन वायु है इस हेतु उच्चैःश्रवा भी इन्द्र अर्थात् सूर्य्य के अधीन है। ऐसा भाव भी हो सकता है इस को अश्व इस हेतु कहा है कि "अशू व्याप्तौ संघाते च" जो व्यापक हो जो घनीभूत हो अथवा जैसे घोड़ा आदमी को लेकर अभीष्ट स्थान पर पहुंचाता है इसी प्रकार यह वायु अपने ऊपर लादकर मानों अभीष्ट स्थान में मेघ को पहुंचाया करता है। इस हेतु यह अश्व कहा गया है। अब आगे ऐरावत हाथी प्रकट होता है। इरा नाम अन्न वर्षा आदि का है "इरां इणातीति वा इरां ददातीति वा इरां दधातीति वा इरां दारयते इति वा इरां धारयते इति वा" इत्यादि निरुक्त में देखिये। इरा जिसका हो वह "इरावान्" इरावान् का जो स्वामी वा इरावान् सम्बन्धी वस्तु उसे "ऐरावत" कहते हैं। ऐरावत नाम यहां मेघ का ही है। उस मेघ का नाम ऐरावत है जो वर्षा से भरा हुआ रहता हैं। और मानो हाथी के समान मन्दगति से आकाश में चल रहा है। यह मेघ की एक दशा का वर्णन है। इस के अनन्तर "पारिजातवृक्षः" प्रकट होता है। यह भी मेघ की ही एक दशा का निरूपण है। आकाश में चारों तरफ वृक्ष के समान आकार दीखने लगते हैं। वे ही पारि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जात हैं। परि=चारों तरफ। जात=उत्पन्न हों वे परिजात। परिजात को ही पारिजात बन जाता है। इसी का नाम "पर्जन्य" भी है। तब कौस्तुभमणि प्रकट होता है। मणि नाम प्रस्तर (पत्थर) का है। "कु" नाम पृथिवी का है सप्तमी में कौ होता है " कौ पृथिव्यां पदार्थान् यः स्तोभति स्तभ्नाति हिंसती-ति कौस्तुभो मेघवृष्टः प्रस्तरः " पृथिवी के ऊपर पदार्थों को जो हिंसित करे उसे कौस्तुभ कहते हैं अर्थात् मेघ से गिरे हुए प्रस्तर का नाम यहां "कौस्तुभ-मणि" है। वह विष्णु का भूषण है। अर्थात् विष्णु (सूर्य्य) के कारण से ही इस की भी उत्पत्ति होती है। इसी हेतु यह विष्णु का भूषण माना गया है यह भी मेघ की ही दशा का वर्णन है। अब आगे लक्ष्मीदेवी आविर्भूत होती हैं। लक्ष्मी नाम शोभा का है यह निरूपण करचुके हैं। यहां मेघ की शोभा का नाम लक्ष्मी है। इस का भी कारण श्रीसूर्य भगवान् ही है इस हेतु सूर्य की ही शक्ति लक्ष्मी है। यह मेघ की शोभा समुद्र अर्थात् आकाश के मथन से ही होती है। पश्चात् वारुणी देवी आती है। यह भी वर्षा का ही रूपान्तर है। जो वर्षा सबोंको ग्रहण योग्य हो वह वारुणी देवी कहलाती है। हे विद्वानो ! यह सब वर्षाऋतु का ही वर्णन है। आप लोग स्वयं विद्वान् हैं विचारें।

हे विचारशील पुरुषो ! यह समुद्र मथन केवल प्रात्यहिक दृश्य का वर्णन मात्र है। आप लोग अछे प्रकार समझ गये होंगे। जो लोग इस आख्यायिका को सत्य मानते हैं अर्थात् यह समझते हैं कि यथार्थ में जलमय सागर का मथन हुआ है और विष्णु भगवान्ने मोहिनी स्त्रीका रूप धारण कर असुर गणों को धोखा दिया है। वे अपने परम पूज्य देवके ऊपर अमार्जनीय कलङ्क लगा रहे हैं। सुंदर रूपके ऊपर वज्र पातकर रहे हैं और स्त्री जाति को परम दूषित कररहे हैं॥ जगत में हम मनुष्य अपने २ आधिपत्य के लिये संग्राम करते हैं विविध प्रकार के छल बल से शत्रुको जीतते हैं। क्या उत्तम क्या निकृष्ट काम करते रहते हैं॥ शिक्षा के अनुकूल मनुष्य उत्तम मध्यम निकृष्ट हुआ करता है॥ जैसा कर्म्म करते हैं तदनुसार ईश्वर नियम से हम लोग फल पाते हैं। ईश्वर हमारे किसी कार्य में बाधा डालने को नहीं आता है॥ वह साधारण नर के समान नहीं है। और न उसके

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई शत्रु न कोई सुहृद् है। वह शुद्ध पवित्र निष्कलङ्क है। वह क्या देव क्या असुर क्या मनुष्य क्या पशु क्या पक्षी सब का स्वामी है। सबके लिये बराबर है। वह असुर और देव दोनों का ईश्वर है। तब क्यों छलसे असुरों का नाश करेगा और देवों पर अनुग्रह करेगा। यदि दुष्टों का संहार करना उसका स्वभाव है यह कहा जाय तो यह सत्य है कि वह दुष्टों का संहार करता है। परन्तु किस प्रकार से ?। क्या छल कपट से। नहीं। छल कपट करना ईश्वर का स्वभाव नहीं उस का एक गुप्त नियम है जिस के अनुसार सब कोई कर्म्म फल पारहा है। यही ईश्वर कृत दण्ड है। देखिये ? ईश्वर सर्वथा समर्थ है यदि वह असुरों को दण्ड देना चाहे तो प्रत्यक्ष ही देसकता है। उसको छल करने की क्या आवश्यकता। जो प्रबल शत्रु होता है। वह छल नहीं करता है। वह अपने दुर्बल शत्रुको प्रत्यक्षही पकड़ छिन्न भिन्न करदेता है। ईश्वर सबसे महान् प्रबल है। इस हेतु इसको कपट करने की कोई आवश्यकता नहीं हेविद्वानो ! अज्ञानी बालक ईश्वरको छली कपटी बनाते हैं॥ जब देश की दशा बहुत गिरजाती है चारों तरफ अज्ञानी ही अज्ञानी भरजाते हैं तब वे अनभिज्ञ अज्ञानी पुरुष अपने पूज्यदेव को भी अपने समान बना लेते हैं। यदि वह अज्ञानी चोरी करता है तो वह अपने देव को भी चोर बना लेता है। अर्थात् ऐसी कथा कोई गढ़लेता है कि जिस से सिद्ध हो कि उस का देव भी चोर है इसी प्रकार व्यभिचारी अपने देव को व्यभिचारी बना लेता है। कपटी अपने देवको कपटी बनालेता है। जिसदेश में कपट छल करने वाले पूज्यदेव हों वहां समझना चाहिये कि इस देश में विवेकी पुरुष निवास नहीं करते। प्रजाएं जङ्गली हैं अज्ञानता बहुत विस्तृत है। राजा। उन्मत्त है। विद्या की चर्चा नहीं है। मनुष्य स्वतन्त्र—विचार—रहित हैं। इत्यादि। परन्तु इस देश में प्रारम्भ से ही विद्या थी। लोग बुद्धिमान् थे तब क्या सम्भव है कि यहां के लोग अपने देव को कपटी बनाते। यथार्थ बात यह है कि जो प्रकृति का वर्णन था उसको लोगों ने अज्ञान वश कथा बनाली और उसी रूप में यथार्थ समझने लगे। इस हेतु हे विवेकीपुरुषो ! आप लोग विचारें। और अज्ञानी जनों को समझावें कि समुद्र मथन आदि का अभिप्राय जो तुम समझते हो सो नहीं है और न तुम्हारा पूज्य देव स्त्री का रूप धारण कर किसी को ठगता ही है। और न असुर न देव किसी जाति का नाम ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है । विशेष विद्या की ओर ध्यान दो और इन सबों के प्राचीन अर्थ समझने के लिये प्रयत्न करो । इत्यलम् ।

" विष्णु और त्रिविक्रम अथवा वामन "

वामन अवतार की कथा भी पुराणों में बहुत विस्तारसे गाई गई है । हमें शोक होता है कि भारतवर्ष में कैसा घोर अन्धकार का एक समय आगयाथा कि जिस समय यहां लोग अपने परम पूज्यदेव को छली देख प्रसन्न होते थे और विविध स्तुति प्रार्थनाओं से उस कपटी देवको प्रमुदित करते । अबतक भी यही प्रथा चली जाती है । लोग नहीं समझते हैं कि बड़ों का अनुकरण झट से लोग कर लेते हैं जिस का देवता छल करता हो और अपने आचरण से छल करना सिखलावे वह पूजक कब निश्छली हो सकता है । इस के साथ २ जब हम यह देखते हैं कि इन आख्यायिकाओं को किस प्रकार वैदिक शब्दों के साथ मिलाया है तब हम को और भी अधिक चिन्ता उपस्थित होती है कि क्यों ऐसा कलङ्क वेदों के ऊपर मढ़ा । और वेदों के विस्पष्ट अर्थ न प्रकाश कर इस के स्थान में एक एक नवीन ही कथा गढ़ बड़ा ही अनर्थ फैलाया जिस से देश के धर्म्म आचरण गौरव पवित्रता शुद्धता आदि सब नष्ट होगये । एवमस्तु ! वामन अवतार की समालोचना अभी कर्तव्य है । इस की मीमांसा करते हुए हम को आप लोगों से यह कहना पड़ता है कि जब मनुष्य धीरे धीरे अज्ञानी बन गये । वेद के अध्ययन अध्यापन छोड़ दिये । मिथ्या कथाएं उन्हे मोहित करने लगीं और आध्यात्मिक-परिश्रम-शून्य होते गये तब ऐसी ऐसी कथाएं देश में प्रचलित होने लगीं । इस अवस्था में भी वेदों पर ही लोगों का विश्वास था । जो लोग कुछ पढ़े लिखे थे वे वेदों की ही वार्ता सुनाया करते थे । लोग प्रीति पूर्वक सुना करते थे ॥ इस समय में एक घटना यह उपस्थित हुई कि वेद की जो वार्ता कुछ कठिन है । उस को साधारण जन नहीं समझ सकते थे । इस हेतु कथा वांचने वाले उस वार्ता का कुछ परिवर्तन कर अथवा उस के ऊपर एक नई कथा बना कर कहने लगे ताकि श्रोताओं को रोचक हो । समयान्तर में वही रोचक कथाऐं सत्य होगईं । आज कल भी जब कथावाचक कहीं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर कथा कहते हैं तो उन में बहुत कुछ नून मिरिच लगाते हैं। यदि कोई कठिन विषय आता है तो उस के ऊपर नए नए प्रबन्ध (Allusion) कहते हैं। भिन्न भिन्न वाचक भिन्न भिन्न प्रबन्ध बतलाते हैं। इस से इनकी प्रतिष्ठा होती है। उदाहरण के लिये आप यह समझें कि कहीं पर यह कथा आई कि 'अगस्त्य समुद्र शोखताहै' यहां अगस्त्य नाम सूर्य्य का है और समुद्र नाम आकाश का है। वर्षा ऋतु के बाद अगस्त्य का उदय होता है अर्थात् वर्षाऋतु के अनन्तर सूर्य्य का नाम अगस्त्य होता है। जैसे सूर्य्य सविता अर्यमा इन्द्र विष्णु पूषा आदि समय समय के सूर्य का नाम है। वैसा ही अगस्त्य भी वर्षा ऋतु के अनन्तर सूर्य्य का नाम होता है। "अगंपर्वं-तं मेघं स्यायति संघातयति सम्यङ् नाशयति यः सोऽगस्त्यः" जो मेघ को अच्छे प्रकार से नष्ट भ्रष्ट कर दे उसे अगस्त्य कहते हैं अर्थात् शरद् ऋतु का सूर्य्य। इस ऋतु में सूर्य्य "समुद्र" अर्थात् आकाशस्थ मेघ को बिलकुल शोख जाता है। इस हेतु "अगस्त्य समुद्र को शोखता है" यह वार्ता कहीं पर मानों आई। अब अथा वाचक देखने लगे कि इस का क्या अर्थ करें। इस समय अगस्त्य का सूर्य और समुद्र का आकाश अर्थ भी विद्यमान नहीं रहा इन शब्दों का अर्थ भी बहुत कुछ परिवर्तित हो गया। इस अवस्था में वाचकों ने एक रोचक कथा बनाली और लोगों को सुना दी कि इस का भाव यह है। अगस्त्य एक ऋषि था वही किसी कारणवश समुद्र को पी गया। अब क्यों पी गया क्या कारण उपस्थित हुआ पुनः समुद्र कहां से आगया इत्यादि शङ्का होने पर इन सबों का भी समाधान बनाते गये। समयान्तर में यह एक बड़ी लम्बी कथा बन गई जब जब लोगों ने कुछ शङ्का की तब तब उत्तर दिया गया कि ऋषि लोग समर्थ थे सब कुछ कर सकते थे। इस पर शङ्का नहीं करनी चाहिये। प्रजाएं मूढ़ हो ही चुकी थीं। विश्वास कर लिया। जो अत्यन्त अज्ञानी थे वे इस पर अधिक प्रसन्न होने लगे कि आहा! हमारे ऋषि कैसे प्रतापशाली थे। अब देखिये यह कथा क्यों उत्पन्न हुई? अगस्त्य और समुद्र शब्द के प्राचीन अर्थ न जानने के कारण से। अथवा जो लोग प्राचीन अर्थ जानते भी होंगे उन्हों ने भी यह समझा होगा कि प्रजाऐं इस गूढ़ भाव को नहीं समझ सकेंगी। अगस्त्य और समुद्र शब्द का अर्थ यदि समझावें भी तथापि सर्वसाधारण को समझने में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बड़ी कठिनाई होगी । इस से अच्छा यही है कि इस के ऊपर कोई प्रबन्ध (Allusion) बना कर इन को समझा दिया जाय । इस प्रकार देश में हजारों कथाएं उत्पन्न हो गईं । ऐसी ही वार्ता इस वामन-अवतार की आख्यायिका के साथ है । प्रकरण के अनुसार अर्थ न जानने से यह मिथ्या ज्ञान उत्पन्न हुआ है ।

इस वामन-अवतार का कारण भी सूर्य्य देव ही है । सूर्य त्रिविक्रम है । त्रिविक्रम पद बारम्बार आया है । तीनों लोकों में अथवा तीनों स्थानों में जिस का विशेष क्रम अर्थात् पाद विक्षेप हो अर्थात् जिस का किरण तीनों लोकों में व्याप्त हों उसे त्रिविक्रम कहते हैं । सूर्य्य का किरण द्युलोक अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोक में व्याप्त है इस हेतु सूर्य त्रिविक्रम है । अथवा प्रातः काल मध्याह्न काल और सायङ्काल में किरणरूप-पाद को स्थापित करता हुआ सूर्य्य भासित होता है । उस से सूर्य्य "त्रिविक्रम" कहाता है । प्रातःकाल सूर्य्य बहुत छोटा सा प्रतीत होता है । उस समय 'बलि' जो मेघ अथवा अन्धकार वह प्रबल रहता है । सूर्य के उदय को मानो रोके हुए रहता है ज्यों ज्यों सूर्य ऊपर को बढ़ता जाता है त्यों त्यों बलि (अन्धकार) पाताल को अर्थात् नीचे को चला जाता है । उस समय सूर्य के चरण रूप किरण तीनों लोकों में फैल जाते हैं बलि के रहने के लिये कोई स्थान नहीं मिलता । इस को विष्णु (सूर्य) पाताल भेज देता है । देवगण अर्थात् जीव गण सूर्य के उदय से बड़े प्रसन्न होते हैं । यही इस कथा का भाव है । अब इस पर आप लोग विचार करें ।

एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा । हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्य्यतप्य-दनाथवत् ॥ १ ॥ एकदा कश्यप स्तस्या आश्रमं भगवानगात् । निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरताश्चिरात् ॥ २ ॥ स पत्नीं दीनवदनां कृतासन-परिग्रहः । सभाजितो यथान्याय मिदमाह कुरूद्वह ॥३॥ भागवत ८।१६।

श्रीमद्भागवत अष्टम स्कन्ध के षोडशाध्याय से वामनावतार की आख्यायिका का आरम्भ होता है । इस का संक्षेप अर्थ यह है । देवासुर-संग्राम होनेपर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असुरगण विजयी हुए। और देवगणों के सब अधिकार छीन लियें गये। इस प्रकार जब देवमाता अदिति के पुत्र इधर उधर नष्ट भ्रष्ट होगये और इनका स्वर्ग राज्य भी असुरों ने लेलिया तब अदिति पुत्रों के दुःख से अतिशय दुःखिता हो अनाथवत् विलाप करने लगी।एक समय कश्यप महर्षि अदिति के आश्रम में आकर देखते हैं कि अदिति अति क्लेशार्त्ता है और आश्रम निरानन्द निरुत्सव हो रहा है। कश्यप जी ने इस का कारण पूंछा। अदिति देवमाता ने सब कारण कह सुनाया। तत्पश्चात् कश्यपने कहा कि ईश्वर की कैसी इच्छा प्रबल है यह सम्पूर्ण जगत् स्नेहबद्ध है। कहां यह आत्मा। कहां यह माया। हे प्रिये! मेरे देव और असुर दोनों पुत्र हैं। इस हेतु असुर आप के भी पुत्र हुए यदि असुरों का विजय हुआ तो आप क्यों चिन्तित हैं। एवमस्तु। आप भगवान् की सेवा करें वही आप के मनोरथों को पूर्ण करेगा। उस की सेवा अमोघ है। इस प्रकार पति से आदिष्टा आदिति पति प्रदर्शित उपाय के अनुसार व्रत करने लगी। कुछ समय के अनन्तर अदिति के गर्भ से वामन जी उत्पन्न हुए। सब देवगण ने मिलकर इनका उपनयन संस्कार किया। इसके अनन्तर असुराधिप-बलि राजा का यज्ञ सुनकर वहां गये। बलि ने शास्त्रोचित सत्कार किया। भागवत में इस प्रकार सत्कार के विषय में लिखा है॥

स्वागतं ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते। अद्य नः पितर स्तृप्ता-
अद्य नः पावितं कुलम्। अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान्।
अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः। हतांहसो
वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव। इत्यादि।

हे ब्रह्मन्! आप का स्वागत हो। आप को नमस्कार हो। आप के लिये हम क्या करें। आज हमारे पितर तृप्त हुए। आज हमारा कुल पवित्र हुआ। आज यज्ञ अच्छे प्रकार से किया गया जो आप हमारे गृह को प्राप्त हुए हैं। आज हमारे अग्नि यथाविधि सुहुत हुए। हे द्विज! आप के चरणों के धोये हुए जलों से हम सब निष्पाप हुए। यह पृथिवी भी पुनीता हुई। हे वटो! आप क्या चाहते हैं। गौ, काञ्चन, सुन्दरधाम, विप्रकन्या, ग्राम, तुरग, गज, रथ, जो आप

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चाहते हों मुझ से मांगें। बलि के इस वचन को सुन प्रथम वामन जी ने बलि का यथेच्छ गुण वर्णन किया है। इस के वंश की महती कीर्त्ति गाई है तब अन्त में यह कहा है यथाः—

तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेऽहं वरदर्षभात्। पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम। नान्यत्ते कामये राजन् वदान्याज्जगदीश्वरात्। नैनः प्राप्नोति वै विद्वान् यावदर्थप्रतिग्रहः। अधिकं योऽभि कांक्षेत स स्तेनो दण्ड मर्हति॥ भा० ८। १९॥

हे दैत्येन्द्र! इस हेतु आप से मैं थोड़ी पृथिवी मांगता हूं। मुझ को अपने पैर से तीन ही पैर पृथिवी चाहिये। इस से अधिक कामना मैं नहीं करता हूं। जितना प्रयोजन हो उतना प्रतिग्रह लेने में विद्वान् को पाप नहीं होता। अधिक जो आकांक्षा करता है वह चौर दण्ड के योग्य है। तत्पश्चात् वामन के वचन सुन बलि राजा बोले हे बटो! आपके वचन वृद्धसमान हैं। परन्तु मुझ राजा से तीन पैर पृथिवी मांगते हैं सो अनुचित सा प्रतीत होता है। एवमस्तु! जो आपकी कामना हो सो लेवें। यह कह कर बलि ने सङ्कल्पपूर्वक तीन-पद पृथिवी दी। तब वामन जी बहुत बढ़ने लगे। एक पैर से पृथिवी, दूसरे पैर से द्युलोक माप लिया। तृतीय पैर की जगह ही नहीं रही। तब वामन जी बोले हे बलि महाराज! अब मुझ को तीसरा पैर पृथिवी दो। यदि नहीं देते हो तो पाताल जावो। क्योंकि तुमने अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं की। इस प्रकार कह कर बलि राजा को पाताल भेज दिया है। इत्यादि कथा श्री मद्भागवत अष्टम स्कन्ध में देखिये। वाल्मीकि-रामायण बालकाण्ड के २९ वां सर्ग में बामन अवतार की कथा आई है। कथा का भाव समान ही है। किञ्चित्मात्र का भेद यह है कि कश्यप ने अपनी पत्नी अदिति के साथ स्वयम् तपस्या कर के भगवान् से प्रार्थना की है कि आप मेरे और अदिति के पुत्र होवें "पुत्रत्वं गच्छ भगवन् अदित्या मम चानघ" भागवत में केवल अदिति का व्रत ग्रहण करना है और रामायण में यहां पर शुक्रकृत निषेध प्रभृति की भी चर्चा नहीं है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ विष्णु र्महातेजा अदित्यां समजायत । वामनं रूप मास्थाय वैरोचनि मुपागमत । त्रीन्पदानथ भिक्षित्वा प्रतिगृह्य च मेदिनीम् । आक्रम्य लोकान् लोकार्थी सर्वलोकहितेरतः ॥

अनन्तर महा तेजस्वी विष्णु जी अदिति के गर्भ से उत्पन्न हुए वामनरूप धारण कर विरोचनपुत्र बलि के निकट आए। उस से तीन पद मांगकर पृथिवी को ले सब लोकों का आक्रमण किया । इत्यादि । यह कथा पुराणों में परम प्रसिद्ध है । अनेक ग्रन्थों से प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं क्योंकि इस से ग्रन्थ बहुत विस्तार हो जायगा । अब इस पर विचार करना है कि इस आख्यायिका का मूल कारण क्या है । वेदवित् पुरुषों को विदित है कि शब्दार्थ के भ्रम से इस कथा की उत्पत्ति हुई है । जैसे अगस्त्यकृत समुद्रपान के तात्पर्य का निरूपण करते हुए कथक्कारों ने कथा कल्पित की है वैसी ही कथा यहां पर कल्पित हुई है । इसका भाव पूर्व मैं कुछ कह चुका हूं अब विस्तार से कहता हूं सुनिए ।

"विष्णु शब्दार्थ और विष्णुसूक्त"

अथ यद्विषतोभवति तद्विष्णुर्भवति । विष्णुर्विशतेर्वाव्यश्नोतेर्वा । निरुक्त दैवतकाण्ड । अथास्योपरिभाष्यम् । अथ यद्यदा विषितः व्याप्तो यऽमेव सूर्य्यो रश्मिभि र्भवति । तत्तदा विष्णु र्भवति । विशतेर्वा यदा विष्टमविष्टः सर्वतोरश्मिभिर्भवति तदा विष्णुर्भवति । व्यश्नोतेर्वा विपूर्वस्य वाश्नोतेः । यदारश्मिभिरतिशयेन अयं व्याप्तो भवति व्याप्नोति वा रश्मिभिरयंसर्वंतदाविष्णुरादित्यो भवति ।

यद्यपि वैदिक भाषा में विष्णु शब्द अनेकार्थक है तथापि जिस विष्णु शब्द को लेकर वामन की कथा सृष्ट हुई है उसका आदित्य (सूर्य्य) अर्थ है इस में यास्काचार्य्य का प्रमाण (अथ) जब वह सूर्य्य अपने (रश्मिभिः) किरणों से व्याप्त पूर्ण होता है तब उसी सूर्य्य का नाम विष्णु होता है । "वि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श प्रवेशने " धातु से इस शब्द की सिद्धि होती है । जब किरणों से सर्वत्र वह सूर्य्य प्रविष्ट होता है । तब विष्णु कहलाता है । अथवा " वि+अश " धातु से भी विष्णु शब्द सिद्ध होता है । इस का भी तात्पर्य्य यही है कि जो किरणों के द्वारा सर्वत्र फैल जाय उसे विष्णु कहते हैं । यहां यास्काचार्य्य का यह भाव है कि यद्यपि सूर्य्य सदा किरणों से युक्त ही रहता है परन्तु पृथिवी की रुकावट के कारण सूर्य्य को हम लोग सदा नहीं देख सकते । अतः प्रातःकाल सूर्य्य रश्मिरहित दीखता है । ज्यों २ ऊपर आता है त्यों २ अपने किरणों से संयुक्त होता हुआ भासित होता है । इस प्रकार जिस समय वह सूर्य्य मानो अपने समस्त किरणों से संयुक्त हो जाता है । उन के द्वारा सर्वत्र क्या द्युलोक क्या अन्तरिक्ष क्या पृथिवी सर्वत्र प्रकीर्ण होजाता है उस अवस्था में उस सूर्य्य का नाम " विष्णु " होता है । इस से सिद्ध हुआ कि सूर्य का ही नामान्तर " विष्णु " है । अब यास्काचार्य्य इसका एक वैदिक उदाहरण देते हैं जहां पर विष्णु शब्द का अर्थ सूर्य्य होता है और उस का स्वयं अर्थ भी करते हैं यथाः—

इदं विष्णु ।विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढ मस्य पांसुरे । यदिदं किञ्च तद्विक्रमते विष्णुः । त्रेधा निधत्ते पदं त्रेधा भावाय पृथिव्या मन्तारिक्ष दिवीति शाकपूणिः । समारोहणे विष्णुपदे गयशिरसीति और्णवाभः । समूढमस्य पांसुरे प्यायनेऽन्तरिक्षे पदं न दृश्यतेऽपिवोपमार्थे स्यात् समूढमस्य पांसुल इव पदं न दृश्यत इति ।

इस के ऊपर दुर्गाचार्य्य का भाष्य इस प्रकार है यथा :—

यदिदं किञ्चिद् विभागेन अवस्थितं तद्विक्रमते विष्णु रादित्यः । कथमिति ? यत आह " त्रेधा निधत्ते पदम् " निदधे पदं निधानं पदैः । क ? तत्र तावत्—पृथिव्यामन्तरिक्षे दिवीति शाकपूणिः । पार्थिवोऽग्निर्भूत्वा पृथिव्यां यत्किञ्चिदस्तितद्विक्रमते तदधितिष्ठति । अन्तरिक्षे विद्युदात्मना । दिवि सूर्य्यात्मना । यदुक्तम् । त मूअकृण्वन् त्रेधा भुवे कम् । इति । समारोहणे । उदयगिरावुद्यन् पद मेकं निधत्ते । विष्णुपदे मध्यन्दिनेऽन्तरिक्षे । गयशिरसि अस्तंगिरौ । इत्यौर्णवा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भ आचार्यो मन्यते एवम् । समूढमस्य पांसुरे अस्मिन् प्यायने एतस्मिन् अन्तरिक्षे सर्वभूतवृद्धिहेतौ यन्मध्यदिनं पदं विद्युदाख्यंपदं तत् समूढम् अन्तर्हितं न नित्यं दृश्यते । तदुक्तम् । स्वप्नमेतन्मध्यमं ज्योति रनित्यदर्शनम् । इति । अपिवोपमार्थेस्यात् समूढमिव पांसुले पदं न दृश्यत इति । यथा पांसुले प्रदेशे पदंन्यस्त मुत्क्षेपणसमनन्तरमेव पांशुभिराकीर्णत्वात् न दृश्यते एममस्य मध्यमं विद्युदात्मकं पद माविष्कृति समकालमेव व्यवधीयते नावतिष्ठत इत्यर्थः । इति ।

भाषार्थः—(विष्णुः) आदित्य=सूर्य्य (इदम्) जो कुछ यह त्रिभाग से स्थित है इस सब में (विक्रमते) अपने किरणों से व्याप्त हो जाता है । अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक, जो पृथक् २ प्रतीत होता है । उन सबों में सूर्य्य फैल जाता है । कैसे फैलता है सो आगे कहते हैं (त्रेधा निदधे पदम्) तीन स्थानों में वह सूर्य्य अपने पद को अर्थात् अपने किरण को स्थापित करता है । वे तीन स्थान कौन हैं इस प्रश्न पर यास्काचार्य दो आचार्यों की सम्मति कहते हैं (पृथिव्याम्०) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में वह विष्णु अर्थात् सूर्य्य किरणों को स्थापित करता है अथवा किरणों से इन तीनों स्थानों में विस्तृत हो जाता है । यह शाकपूणि आचार्य का मत है । अब दूसरे आचार्य और्णवाभ कहते हैं कि वह विष्णु=सूर्य (समारोहणे) उदय गिरि पर उदित होता हुआ एक पद रखता है (विष्णुपदे) मध्यदिन अन्तरिक्ष में एकपद रखता है और(गयशिरसि) अस्ताचल में एक पद स्थापित करता है । अब आगे तृतीय चरण का अर्थ करते हैं । (पांसुरे) इस अन्तरिक्ष में (अस्य) इस सूर्य का (समूढम्) एक पद छिपा हुआ है अर्थात् नहीं दीखता है । अथवा जैसे मृत्तिकामय स्थान में पद चिन्ह नहीं दीखता है । वैसे ही इस का अन्तरिक्ष में पद नहीं दीखता । दुर्गाचार्य का भाव यह है कि यहां विष्णु शब्द का सूर्य अर्थ है । वह विष्णु=सूर्य पृथिवीस्थ अग्नि रूप से पृथिवी पर विद्युत रूप से अन्तरिक्ष में और अपने ही रूप से द्युलोक में इस प्रकार तीनों लोकों में विस्तृत होता है । परन्तु अन्तरिक्ष में जिस विद्युत् रूप से सूर्य व्याप्त होता है । वह विद्युत नहीं दीखती है । यदि कुछ दीखती भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है तो झठ लुप्त हो जाती है। यास्काचार्य विस्पष्ट रूप से कहते हैं कि यह सूर्य का वर्णन है जिस हेतु सूर्य तीनों लोक में व्याप्त होता है। अतः वह त्रिविक्रम कहलाता है और जिस अवस्था में वह सर्वत्र प्रकीर्ण होता है। तब वह 'विष्णु' नाम से व्यहृत होता है। तीनों लोकों में फैलना ही विष्णु (सूर्य) का त्रिविक्रम है। इस से प्रतीत हुआ कि श्रीयास्काचार्य के समय में भी वामनावतार की कथा कल्पित नहीं हुई थी। यदि होती तो इस की चर्चा अवश्य करते।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः १६।
त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्म्माणि धारयन् १८।
विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतोव्रतानि पस्पशे। इन्द्रस्य युज्यः सखा। १९।
तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम् । २०।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णो र्यत्परमं पदम्। २१। ऋ० १।२२।

अर्थ–(विष्णुः) सूर्य (सप्तधामभिः) जगत के धारण पौषण करने वाले अपने सात प्रकार के किरणों के द्वारा (यतः+पृथिव्याः) जिस पृथिवी से ले कर द्युलोक पर्य्यन्त। सर्वत्र (विचक्रमे) विशेष रूप से भ्रमण करता है (अतः) इस पृथिवी से लेकर तीनों लोकों की (नः)हमारे (देवाः) अन्य बृहस्पति शुक्र आदि नक्षत्र और वायु आदि देव (अवन्तु) रक्षा करें। ईश्वर कहता है कि जहां जहां सूर्य अपनी किरणों के द्वारा व्याप्त होता है। वहां २ सूर्य तो इन स्थानो की रक्षा करता ही है परन्तु अन्य वायु आदि देव भी हमारे इन स्थानों की अपने अपने कार्य्य से रक्षा करें। १६। १७ का अर्थ हो चुका है। (अदाभ्यः) अहिंस्य अविनश्वर चिरस्थायी (गोपाः) तेज से जगत की रक्षा करने वाला (विष्णुः) सूर्य्य (त्रीणि+पदा) पद=स्थान। पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीन स्थानो में (विचक्रमे) भ्रमण करता है अथवा तीन स्थानों में मानो तीन पद रखता है। जैसा कि पूर्व में वर्णन किया है। क्या करता हुआ (अतः)इस भ्रमण से (धर्म्माणि)प्रजाओं में विविध प्रकार के धर्म्मों का(धारयन्)पोषण करता हुआ। सूर्य्य के उदय से ही लोग धर्म्म कर्म्म

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करना आरम्भ करते हैं। इस हेतु धर्म्म का भी पोषक मानों सूर्य ही। है यहां सूर्य (त्रीणि+पदा) तीन पद अर्थात् तीन पैर चलता है। त्रिशब्द अल्प वाचक है। तब यह अर्थ हुआ कि पृथिवी आदि तीनों लोकों की रक्षा के लिये सूर्य को केवल तीन पैर चलना पड़ता है अर्थात् बहुत कम चलना पड़ता है। क्योंकि सूर्य अपनी ही कक्षा पर भ्रमण करता है। पृथिवी आदि के समान किसी दूसरे की प्रदक्षिणा नहीं करता इस हेतु मानो महाराजवत् किञ्चित् भ्रमण से ही सूर्य सब की रक्षा कर रहा है। मानों तीन लोकों की रक्षा के लिये उसे केवल तीन पद ही रखना पड़ता है। यह आलङ्कारिक वर्णन है। १८। हे मनुष्यो! (विष्णोः) सूर्य के (कर्माणि) पालन आदि कर्मों को (पश्यत) देखो। (यतः) जिस से (व्रतानि) व्रत=धर्म्म कर्म्म (पस्पशे) करते हैं। जो सूर्य (इन्द्रस्य) वायु का (युज्यः) योग्य अनुकूल (सखा) मित्र है सूर्य्य की स्थिति से ही जगत् के सब कर्म्म धर्म्म स्थित हैं। क्योंकि सूर्य्य के कारण वायु चलता है। और वायु से सब जीवित हो रहे हैं। जीवन से सब व्रत होते हैं। इसी हेतु इस मन्त्र में इन्द्र अर्थात् वायु का सखा सूर्य्य कहा गया है। और सूर्य से व्रत का होना वर्णित हुआ है। १९। (सूरयः) विद्वान् (सदा) सर्वदा (विष्णोः) सूर्य्य के (तत्) उस (परमम्) उत्कृष्ट (पदम्) पदको (पश्यन्ति) देखते हैं अर्थात् विद्वान सूर्य्य के तत्त्व को जानते हैं। यहां दृष्टान्त देते हैं (दिवि+इव) जैसे आकाश में (आततम्) सब प्रकार से विस्तृत (चक्षुः) नयन सब कुछ देखता है अर्थात् किसी अवरोध के न होने के हेतु जैसे आकाश में प्रेरित नयन आकाशस्थ सब पदार्थ को विशद रूप से देखता है। तद्वत् उस परम पद को विद्वान् देखते हैं २०। (विष्णोः+यत्+परमं+पदम्) विष्णु का जो परम पद है (तत्) उसको (विपन्यवः) सदा स्तुति प्रार्थना करने वाले अथवा जगत के मिथ्या जञ्जाल से जो विनिर्मुक्त हैं और (जागृवांसः) जागरण करने वाले हैं (विप्रासः) वे मेधावी (समिन्धते) प्रकाशित करते हैं। २१। सूर्य्य का तत्त्व जानना भी परम विद्या का कार्य्य है। आप लोगों को हास्यसा यह वाक्य प्रतीत होगा। आप लोग कहेंगे कि सूर्य का जानना कौनसी विद्या की बात है। हां, ब्रह्म के जानने के लिये सारी विद्या की

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आवश्यकता है। हे विद्वानो ! यह बात मत कहें। देखिये आज कल विद्या बिना कैसा अन्धकार देश में फैला हुआ है ॥ सूर्य ग्रहण लगने पर लाखों आदमी कुरुक्षेत्र आदि स्थानों को दौड़ते हैं। यदि ग्रहण समझ जांय तो वे लोग क्यों कर इस अविद्या में फंस कर मरें। पुनः पृथिवी किस आधार पर है आज कल नाना उत्तर लोग देते हैं। परन्तु वे सब ही मिथ्या और कपोल कल्पित हैं। यदि सौर विद्या को जानते तो ऐसी मिथ्या कल्पना नहीं करते। पुनः रात दिन कैसे होता है ऋतु क्योंकर परिवर्तित होता है। चन्द्र क्यों घटता बढ़ता है। इत्यादि ज्ञान सूर्य्य सम्बन्धी विद्या के जानने से ही होता है। हे शास्त्रवेत्ताओ ! हम क्या वर्णन करें। आप लोग निश्चय जानें जिस ने सूर्य्य के गुणों को नहीं जाना वह सर्वदा अविद्या अज्ञान में फंसा रहेगा। वह ईश्वर को क्या जानेगा। प्रथम ईश्वरीय विभूतिएं जाननी चाहियें। सूर्य्य चन्द्र पृथिवी आदि ईश्वर की विभूतिएं हैं अज्ञानी को समझाने पर भी सूर्य सम्बन्धी आकर्षण आदि विद्याएं समझ में नहीं आवेंगी। इस हेतु मन्त्रों में कहा गया है कि विद्वान् मेधावी रात्रिन्दिवा चिन्तन करने वाले एकान्त सेवी जन इस सौर-विद्या का साक्षात् अनुभव करते हैं। वे ज्ञानी पुरुष धन्य हैं।

ये मन्त्र ईश्वर पक्ष में भी घटते हैं। विष्णु नाम ब्रह्म का भी है। यदि कहें कि इस पक्ष में "सप्तधाम" और "त्रिपद" आदि शब्दों का क्या अर्थ होगा। हे बुधवरो ! ईश्वर पक्ष में "सप्त" शब्द का "सर्पणशील" अर्थात् चलने वाला अर्थ होगा। संख्या नहीं जो "जगत्" और "संसार" शब्द का अर्थ है वही अर्थ "सप्त" का भी है। इस अर्थ में अन्य आचार्य्य ने भी "सप्त" शब्द का प्रयोग किया है। और "त्रिपद" शब्द का अर्थ तीन स्थान हैं। अब मन्त्रों का अर्थ सुनिये।

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे। पृथिव्याः सप्तधामभिः। १६ ॥

(यतः) जिस कारण (विष्णुः) सर्वत्र व्यापक परम ब्रह्म (पृथिव्याः) पृथिवी से ले कर जितने (सप्तधामभिः) सर्पणशील=गमनशील स्थान हैं उन के साथ ही (विचक्रमे) व्यापक हैं अर्थात् सब में व्यापक हैं (अतः) इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हेतु (देवाः) विद्वान् गण (नः) हम लोगों को (अवन्तु=अवगमयन्तु) समझावें। अर्थात् वेद से यह निश्चय है कि ब्रह्म सर्व व्यापक है॥ किस प्रकार से वह व्यापक है उस का क्या रूप है। वह क्यों नहीं दीखता है। व्यापक है तो वह क्या करता है इत्यादि विषय हम साधारण प्रजाओं की समझ में नहीं आते हैं विद्वान् समझावें। ऐसी प्रार्थना प्रजाएं विद्वानों से करती हैं। १६॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे। १७॥

(विष्णुः) सर्व व्यापक परमात्मा (इदम्) इस दृश्यमान जगत् में (विचक्रमे) व्यापक है। केवल इसी दृश्यमान जगत् में ही व्यापक नहीं है किन्तु (त्रेधा) तीनों स्थानों में पृथिवी अन्तरिक्ष द्युलोक में (पदम्) अपना स्थान (निदधे) निहित अर्थात् स्थापित किया है। जो अदृश्य वा दूर वा निकट स्थान हैं उन सबों में वह रम रहा है। अथवा (त्रेधा) तीन प्रकार से (पदम्) स्थान=जगत् को (निदधे) निहित अर्थात् स्थापित किया है। प्रत्येक वस्तु वाष्प, द्रव और स्थूल रूप में बनाई हुई है। प्रत्येक वस्तु आकर्षण, विकर्षण और गमन युक्त है। प्रत्येक वस्तु सत्त्व रज और तम से युक्त है। प्रत्येक वस्तु प्रकृति जीवात्मा और परमात्मा से युक्त है। इत्यादि अनेक त्रित्व से यह जगत् संयुक्त है इस हेतु कहा है कि इस पद (स्थान=जगत्) को तीन प्रकार से स्थापित किया है। अब आगे कहते हैं कि यद्यपि ब्रह्म सर्व-व्यापक है। तथापि (अस्य) इस ब्रह्म का तत्त्व (पांसुरे) अज्ञानरूप धूलिमय प्रदेश में (समूढम्) छिपा हुआ है। अज्ञानता के कारण वह नहीं दीखता यहां "त्रेधा-पदम्" से यह भी सूचित होता है। ईश्वर किसी एक स्थान में कहीं बैठा हुआ नहीं है जैसा कि अज्ञानी जन मानते हैं। किन्तु वह सर्वत्र विद्यमान है। यह उपदेश मन्त्र देता है। १७॥

त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः। अतो धर्माणि धारयन्। १८॥

(गोपाः) रक्षक (अदाभ्यः) अहिंस्य अविनश्वर (विष्णुः) परमात्मा निश्चय हे मनुष्यो! (त्रीणि+पदा) तीनों स्थानों में (विचक्रमे) प्राप्त अर्थात् व्यापक है। तीनपद से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ग्रहण है (अतः) इस व्यापकता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से (धर्माणि) समस्त पदार्थ शक्तियों को (धारयन्) धारण करता हुआ वह स्थित है । पदार्थों की शक्तिका नाम भी संस्कृत में धर्म होता है । जैसे अग्नि का धर्म अर्थात् अग्नि का गुण वा शक्ति । यदि ब्रह्म व्यापक नहीं होता और अपनी धारणा से सबों की यथोचित रक्षा नहीं करता तो कैसे यह जगत् स्थित रहता । १८ ॥

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे । इन्द्रस्य युज्यः सखा । १९ ॥

हे मनुष्यो ! प्रत्यक्षतया (विष्णोः) परमात्मा के (कर्म्माणि) सृजन पालन संहरण रूप कर्मों को (पश्यत) देखो । (यतः) जिस कारण उस परमात्मा ने (व्रतानि) शुभ कर्म अथवा ज्ञानों को (पस्पशे) फैलाया है । जिस हेतु ईश्वर स्वयं सृजन आदि कर्म्म करता है । और शुभ कर्म्म वा ज्ञान को उस ने इस जगत् में विस्तृत किया है अतः इस का देखना वा जानना आवश्यक है । हे मनुष्यो ! वह परम दयालु है । (इन्द्रस्य) इन्द्रियों से ज्ञान करने वाला जो हम लोगों का आत्मा है । उस का (युज्यःसखा) अनुकूल मित्र है । परमात्मा जीवात्मा का परम हितैषी है । इस हेतु इस को कर्म्म करना उचित है । क्योंकि इस का मित्र ईश्वर स्वयं कर्म्म कर रहा है । १९ । यद्यपि ईश्वर का कर्म्म प्रत्यक्ष है तथापि इस को मेधावीजन ही देखते हैं । सो आगे कहते हैं :—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीवचक्षुराततम् । २० ॥

(सूरयः) विद्वान् जन (विष्णोः) ईश्वर के (तत्+परमं+पदम्) उस परम पद को अर्थात् ईश्वरीय तत्त्व को (सदा) सर्वदा (पश्यन्ति) देखते हैं । अर्थात् जानते हैं इस में दृष्टान्त कहते हैं (दिवि+इव) जैसे आकाश में (आततम्) व्याप्त वस्तु को (चक्षुः) नयन देखता है । अथवा आकाश में महित नयन जैसे देखता है तद्वत् । २० । जब वेही विद्वान् जन उस पद को प्रकाशित करते हैं तब ही उस का ज्ञान होता है सो आगे कहते हैं ।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते । विष्णोर्यत्परमं पदम् । २१ ॥

(विपन्यवः) जो सदा स्तुति प्रार्थना करने वाले हैं वा जो सांसारिक व्यव-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हारों से पृथक् हैं (जागृवांसः) ईश्वरीय विभूति चिन्तन में जो सदा जागरित हैं ऐसे (विप्रासः) मेधावी जन (विष्णोः यत्+परमम्+पदम्) विष्णु के जो परम पद हैं (तत्) उस को (सम्+इन्धते) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हैं। २१। इस के आगे और भी विष्णु सूक्त लिखते हैं जिस से आप लोगों को विस्पष्ट रूप से सुबोध हो जाय कि किस प्रकार जगत् में भ्रम उत्पन्न होता है इन मन्त्रों में आप ने देखा कि वलि वा वामन आदि की वार्ता नहीं है। केवल "त्रिपद" और "विक्रमण" करने का वर्णन आता है। एवमस्तु आगे देखिये :—

विष्णोर्नुकं वीर्य्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि।
यो अस्कभायदुत्तरं सधस्थं विचक्रमाण त्रेधोरुगायः। ऋ० १। १५४। १॥

अर्थ—(नुकम्) शीघ्र (विष्णोः) सूर्य के (वीर्य्याणि) पराक्रम = शक्तियों को (प्रवोचम्) कहता हूं। अर्थात् सूर्य की शक्तियों को प्रकाशित करता हूं। आगे सूर्य के वीर्य दिखलाते हैं। (यः) जिसने (पार्थिवानि) पृथिवी सम्बन्धी (रजांसि) रज=धूलिएं (विममे) निर्माण कीं। और जिसने (उत्तरम्) पृथिवी की अपेक्षा उत्तम अथवा ऊपर (सधस्थम्) बृहस्पति आदि ग्रहों के रहने के स्थान को (अस्कभायत्) अपनी आकर्षण शक्ति से स्तम्भित अर्थात् रोक रक्खा है। पुनः वह सूर्य कैसा है (त्रेधा) तीनों स्थानों में अग्नि, वायु और सूर्य रूप से (विचक्रमाणः) भ्रमण करता हुआ। पुनः कैसा है। (उरुगायः) बड़े बड़े विद्वानों से गीयमान है। हे विद्वानो! ईश्वर सम्पूर्ण जगत् का साधारण कारण है। परन्तु विशेष२ कारण अन्य २ पदार्थ है। जैसे पानी न हो तो अन्न की उत्पत्ति न हो। इस हेतु अन्न की उत्पत्तिका कारण जल है। यदि वायु न हो तो सब पदार्थ ही नष्ट हो जांय। इस हेतु जीवन का वायु कारण है। इस प्रकार आप देखें कि ईश्वर सामान्य कारण है और अन्य २ पदार्थ विशेष कारण हैं। इसी प्रकार इस पृथिवी का विशेष कारण सूर्य ही है। सूर्य से ही यह पृथिवी निकली है। पहले यह अग्नि गोलक थी। धीरे २ इस की अग्नि शान्त होती जाती है। अब भी इस के अभ्यन्तर में अग्नि बहुत विद्यमान है। पुनः यह पृथिवी कभी २

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जल से पूर्ण हो जाती है। जहां पहले समुद्र था वहां अब स्थल है इत्यादि परिवर्तन इस में होता रहता है। सूर्य के ही कारण से वायु चलता है। मेघ होता है। वर्षा होती है। वायु आदि के कारण पृथिवी के ऊपर से अग्नि ठंडी होती गई। और इस में विविध ओषधिएं होने लगीं। यथार्थ में इस सब का कारण सूर्य देव ही है। इसी हेतु वेद मन्त्र कहता है कि सूर्य ने पृथिवी की धूलि बनाई। और सूर्य अपने आकर्षण से अनेक ग्रहों को चला रहा है इस हेतु मंत्र कहता है कि उत्तर उर्ध्व=स्थल को पकड़ रक्खा है। इस हेतु इस का यश बहुत है द्युलोक से पृथिवी तक किसी न किसी रूप से वह सूर्य विद्यमान है। अतःसूर्य 'त्रेधा विचक्रमाण' है। ईश्वर पक्ष में (विष्णोः०) सर्वव्यापक परमात्मा के वीर्यों को मैं सदा और शीघ्र गायाकरूं। अर्थात् वृद्धावस्था वा आपत्ति आने पर ही इस के वीर्य को गाऊं सो बात नहीं किन्तु (नुकम्) शीघ्र अर्थात् बाल्यावस्था से ही इस की कीर्त्ति गाऊं। वह कैसा है। (यः) जो (पार्थिवानि)स्थूल =बड़े २ (रजांसि) लोक लोकान्तरों को (विममे) बनाया करता है रजस् नाम लोक का है "लोका रजांसि उच्यन्ते" निरुक्त ४। १.६। पुनः जो (उरुगायः) ऋषि महर्षि बड़े २ विद्वानों से गीयमान है और (यः) जिस ने (त्रेधा+विचक्रमः) तीनों स्थानों में व्यापक हो कर (उत्तरम्+सधस्थम्) पृथिवी से लेकर उत्तर२ सब स्थान को (अस्कभायत्) अपने२ स्थान पर स्थिति के लिये रोक रक्खा है। १ ॥

प्रतद्विष्णुःस्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः।
यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा। २ ॥

(तत्) वह (विष्णुः) सूर्य (वीर्येण) तेज आदि बल के कारण (प्र+स्तवते) अच्छे प्रकार स्तुत्य होता है। अर्थात् सूर्य के गुण का वर्णन होता है। (मृगः+न+ भीमः) 'न' शब्द वेद में ' इव ' 'यथा' आदि अर्थ में भी आता है। जैसे पशुओं में सिंह भयङ्कर और बलिष्ठ होता है वैसे ही ग्रहों के बीच सूर्य भीम है (कुचरः) पृथिवी आदि सब लोक में विचरण करने वाला है 'कुषु सर्वेषु भूमिषु लोकत्रये संचारी' (गिरिष्ठाः) पर्वतवत् उच्च स्थान में रहने वाला। और (यस्य) जिस के (त्रिषु) तीन (उरुषु) विस्तीर्ण (विक्रमणेषु) पाद

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रखने के स्थानों में (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणी मात्र (क्षियन्ति) निवास करते हैं। इस में सन्देह नहीं कि जहां तक सूर्य का किरण विकीर्ण है वहां तक ही प्राणिओं का निवास है। अनेक सूर्य हैं। उन की गरमी सर्वत्र प्राप्त होती रहती है। वहां २ सृष्टि होती रहती है। सूर्य की उष्णता त्रिलोक व्यापिनी है इस कारण सूर्य 'त्रिविक्रम' कहलाता है। और सूर्य की व्यापकता का नाम 'त्रिविक्रमण' है।

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म गिरिक्षित उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थमेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः। ३॥

अर्थ :—(विष्णवे) सूर्य को (मन्म) मननीय उत्तम (शूषम्) शोषण शक्ति (एतु) प्राप्त है। वह सूर्य कैसा है। अतः (गिरिक्षिते) गिरि=मेघ। मेघ का क्षय करने वाला पुनः (उरुगायाय) जिस के यश को बहुत विद्वान् गाते हैं। पुनः (वृष्णे) वर्षा के देने वाला। पुनः (यः) जो सूर्य (एकःइत्) एक ही अकेला ही (इदम्) इस (दीर्घम्) दीर्घ (प्रयतम्) प्रकीर्ण सर्वत्र विस्तृत (सधस्थम्) सहस्थान अर्थात् तीनों लोकों को (त्रिभि+पदेभिः) तीन पदों से अर्थात् अग्नि, वायु और सूर्य रूप से (विममे) प्राप्त है। ३॥

यस्य त्री पूर्णा मधुना पदान्यक्षीयमाणा स्वधया मदन्ति।
य उ त्रिधातु पृथिवीमुत द्यामेको दाधार भुवनानि विश्वा॥ ४॥

अर्थः—(अस्य) जिस सूर्य के (त्री+पदानि) तीन स्थान (मधुना) मधु से अर्थात् आनन्द से (पूर्णा) पूर्ण हैं। पुनः (अक्षीयमाणा) जिन का कभी क्षय नहीं होता। पुनः (स्वधया) अन्नादि सामग्री से जो (मदन्ति) स्वाश्रित प्राणियों को आनन्दित करते हैं ऐसे वे तीनों स्थान हैं। (यः+उ) जो सूर्य (एकः) अकेला ही (पृथिवीम्) पृथिवी को (उत) और (द्याम्) द्यु-लोक को और (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) भूत-जात अर्थात् प्राणियों को (त्रिधातु) तीन धातुओं के समान (दाधार) पकड़े हुए हैं॥ ४॥

तदस्य प्रियमभिपाथोअश्यां नरोयत्र देवयवोमदन्ति।
उरुक्रमस्य स हिबन्धु रित्था विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः। ५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थः—(अस्य) इस सूर्य के (तत्+प्रियम्) उस प्रिय (पाथः) आकाश को (अभि+अश्याम्) मैं प्राप्त हूं। पाथ=आकाश। यास्क आदि आचार्य ने ऐसा ही अर्थ किया है। यहां 'अश्याम्' एक वचन उपलक्षण मात्र है। सब प्राणी सूर्य्य के प्रिय आकाश में निवास करते हैं। इसी का आगे वर्णन करते हैं (यत्रः) जिस आकाश में (देवयवः) दैवी-शक्ति-युक्त अथवा देव-सूर्य के चाहने वाले (नरः) नर (मदन्ति) आनन्द प्राप्त करते हैं (उरुक्रमस्य) सम्पूर्ण जगत् का आक्रमण करने वाला (विष्णोः) सूर्य के (परमे+पदे) परम पद में (मध्वः+उत्सः) आनन्द का उत्स-झरना है। (इत्था) इस प्रकार (सः+हि+बन्धुः) वही सूर्य सब का बन्धु है। विचारने से विद्वानों को विदित होता है कि सूर्य ही प्राणियों का जीवन है। किरण ही सूर्य का पद है। वह सब का उपकारी है इस हेतु वह 'परम' कहाता है। और जहां जहां वह परमपद (सूर्य्य किरण) है वहां २ निःसन्देह आनन्द है। इसी हेतु मन्त्र में (मध्वः+उत्सः) कहा है। ५॥

ता वां वास्तू न्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि ॥ ६ ॥

अर्थः—ईश्वर कहता है कि हे नर नारियो! (वाम्) तुम दोनों के (वास्तूनि) सुख पूर्वक-निवास योग्य स्थान (गमध्यै) गमन के लिये (उश्मसि) हम वहां चाहते हैं। (यत्र) जहां (भूरिशृङ्गाः) बहुत सींग वाले (अयासः) सदा गमनागमन वाले (गावः) किरण हैं 'गावः' शब्द का अर्थ यहां सबों ने किरण ही किया है। अर्थात् मनुष्यों का वास वहां हो जहां सूर्य्य के किरण आते हों। (अत्र+अह) यहां ही जहां सूर्य्य के किरण अच्छे प्रकार आते जाते हैं वहां ही (उरुगायस्य) बहुतों से गीयमान (वृष्णः) वर्षा देने वाले सूर्य्य का (तत् परमम् पदम्) वह परम पद=किरण स्थान (भूरि) बहुत (अवभाति) शोभित होता है। ६। इस सूक्त में छः मन्त्र हैं। इन का अर्थ ईश्वर पक्ष में भी घटता है। विस्तार के भय से अर्थ नहीं किया विद्वान् लोग ईश्वर पक्ष में भी लगा लेवें। आप लोग देखते हैं कि उरुगाय, उरुक्रम, त्रिपद आदि शब्द विष्णुसूक्त में आते हैं। अन्तिम षष्ठ मन्त्र में 'गौ' पद किरण के लिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

साक्षात् आया हुआ है। और यह उपदेश होता है कि सूर्य के किरण जहां हों वह स्थान अच्छा है। इन ही मन्त्रों से सायण आदि वामनावतार सिद्ध करते हैं। और इसी 'गोपद' के कारण 'विष्णुलोक' को 'गोलोक' भी कहते हैं एवमस्तु। विष्णुसूक्त से और भी मन्त्र उद्धृत करते हैं :—

परो मात्रया तन्वा वृधान नते महित्व मन्वश्नुवन्ति।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देवत्वं परमस्य वित्से ॥
ऋग्वेद मं० ७। सूक्त ९९। १ ॥

(परः+मात्रया) हे बहुत अपरिमित (तन्वा) किरणरूप शरीर से (वृधान) बढ़ने वाले (विष्णो) सूर्य! (ते) आप की (महित्वम्) महिमा को (न+अन्वश्नुवन्ति) कोई नहीं व्याप्त कर सकता अर्थात् कोई नहीं जान सकता। हे सूर्य्य (ते) आपके (उभे) दोनों (रजसी) लोक (पृथिव्याः) पृथिवी से लेकर अन्तरिक्ष ये जो दोनों लोक हैं उन को हम लोग अच्छे प्रकार (विद्म) जानते हैं। (देव) हे देव (त्वम्) आप ही (परमस्य) परम जो अन्य लोक लोकान्तर हैं उनके विषय में (वित्से) जानते। अर्थात् ये दो लोक हम साधारण मनुष्यों के ज्ञान गम्य हैं। इन के अतिरिक्त लोक लोकान्तरों को तो सूर्य देव ही जानता हो। यहां पुरुषत्व का आरोप करके वर्णन है। जिसको अङ्गरेजी में (Personification) कहते हैं। ऐसे वर्णन से कोई क्षति नहीं। १

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप।
उदस्तभ्ना नाक मृष्वं बृहन्तम् दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥ २ ॥

अर्थ :—(विष्णो+देव) हे दानादिगुण युक्त सूर्य देव! (न+जायमानः) न विद्यमान ज्ञानी (न+जातः) और न हो चुके हैं वे ज्ञानी (ते) आपके (महिम्नः) महिमा के (परम=अन्तम्) पर अन्त को (आप) पाते हैं आप का कौन महिमा है सो आगे कहते हैं (ऋष्वम्) दर्शनीय (बृहन्तम्) महान् (नाकम्) द्युलोक को अर्थात् आप के परितः स्थित ग्रहों को (उद्+अस्तभ्नाः) आप ने ऊपर ही रोक रक्खा है। जिस से वे न गिरजांय इस प्रकार आप उनको पकड़े हुए हैं। यह आपकी महान् महिमा है। और (पृथिव्याः)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पृथिवी की (प्राचीम्+ककुभम्) प्राची दिशा को (दाधर्थ) धारण किये हुए हैं। यह उपलक्षणमात्र है। सम्पूर्ण पृथिवी को आप पकड़े हुए हैं ॥ २ ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीं मभितोमयूखैः ॥ ३ ॥

अर्थ :—ये द्युलोक और पृथिवी लोक दोनों (मनुषे) मनुष्य के लिये (इरावती) अन्नादि पदार्थ देने वाले हैं पुनः (धेनुमती) गौ आदि पशुओं से युक्त हैं (सूयवसिनी) शोभन२ पदार्थ देने वाले हैं (दशस्या) सर्वदा कुछ न कुछ देने वाले ऐसे जो (हि) निश्चय (भूतम्) होते हैं। ये (रोदसी) अवरोधन करने वाले अपनी ओर आकर्षण करने वाले दोनों लोक हैं। (एते) इन को (विष्णो) हे सूर्य! आप (व्यस्तभ्नाः) पकड़े हुए हैं और (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) चारों तरफ से (मयूखैः) किरणों से अर्थात् आकर्षण शक्ति से (दाधर्थ) आप पकड़े हुए हैं। संस्कृत भाषा में 'मयूख' नाम किरण का है यह अति प्रसिद्ध है। यहां किरण-पद से सूर्य की आकर्षण-शक्ति का ग्रहण है। इसी शक्ति से पृथिवी अपने स्थान पर भ्रमण करती हुई स्थित है। अन्यान्य कोई पदार्थ इस को धारण करने वाला नहीं। इस वैदिकभाव को न समझ कर सायण महीधर आदिक भाष्य कर्त्ताओं ने कैसा २ अनर्थ किया है सो देखिये। यहां सायण अर्थ करते हैं यथा :—

'अपिच' पृथिवीं प्रथिता मिमां भूमिम्। अभितः सर्वत्र स्थितैः मयूखैः पर्वतै र्दाधर्थ धारितवानसि यथा न चलति तथा दृढीकृतवानित्यर्थः।

महीधर लिखते हैं यथा :—

पृथिवीं मयूखैः स्वतेजोरूपैर्नानाजातीयैर्बहुराहाधनेकावतारैर्वा
अभितो दाधर्थ दधर्ष सर्वतो धारितवानसि।

मयूख शब्द का अर्थ सायण 'पर्वत' करते हैं। और समझते हैं कि भगवान् ने इस पृथिवी के ऊपर हिमालय आदि पर्वत स्थापित किये हैं जिस से पृथिवी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चलायमान हो नष्ट न होजाय। हे विद्वानो ! जिनको पृथिवी का आधार वा स्थिति नहीं ज्ञात है वे वेदों का भाष्य क्या कर सकते हैं। प्रत्युत वेदों पर कलङ्क लगाये हैं। इसी प्रकार महीधर 'मयूख' शब्द का अर्थ 'नानाजीव' और वराहादि अनेक अवतार, करते हैं। यह सब भ्रम इन भाष्य-कारों को इस लिये हुआ है कि वे लोग आकर्षण विद्या से अपरिचित थे। और पृथिवी और सूर्य के गुणों को नहीं जानते थे ॥ ३ ॥

त्रिर्देवः पृथिवी मेष एतां विचक्रमे शतर्चसं महित्वा।
प्रविष्णुरस्तु तवसस्तवीयान् त्वेषंह्यस्य स्थविरस्यनाम। ३ ॥
विचक्रमे पृथिवी मेष एतां क्षेत्राय विष्णु मनुषे दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्यकीरयोजनासउरुक्षितिंसुजनिमाचकार। ४ ॥

ऋ० वे० ७। १००॥

त्रीण्येक उरुगायो विचक्रमे यत्रदेवासोमदन्ति। ऋ० ८। २९। ७॥

इत्यादि मन्त्रों में भी इसी त्रिविक्रम सूर्य का वर्णन है। अब आगे ऐसे मन्त्र लिखते हैं जहां सायणादि को भी विष्णु-शब्द का अर्थ सूर्य करना पड़ा है। यथाः-

चतुर्भिः साकं नवतिंच नामभिश्चक्रंनवृत्तं व्यतींरवीविपत्।
बृहच्छरीरो विमिमान ऋकभिर्युवाकुमारः प्रत्येत्याहवम्। ऋ० १। १५५। ६॥

अर्थः-यह आदित्यात्मा विष्णु (चतुर्भिः+साकम्) चार के साथ (नवतिम्+च) ९० नब्बे कालावयवों को (नामभिः) अपनी प्रेरणा-विशेष से (वृत्तम्+न+चक्रम्) वर्तुलाकार=गोलाकार चक्र के समान (व्यतीन्) विविध प्रकार से (अवीविपत्) घुमाते हुए स्थित हैं। आगे सायण ९४ चौरान्नवे का हिसाब इस प्रकार लगाते हैं। एक सम्वत्सर। दो अयन (उत्तरायण, दक्षिणायण) पांच ऋतु। द्वादश मास। चतुर्विंशति २४ अर्धमास। तीस अहोरात्र। आठ प्रहर और द्वादश लग्न ये सब मिल कर ९४ होते हैं। आगे सायण शङ्का करते हैं कि आदित्य तो अन्य ग्रहों के समान स्वयं भ्रमण करते फिर दूसरों को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कैसे घुमा रहे हैं। इस के उत्तर में कहते हैं कि यह दोष नहीं। क्योंकि सूर्य्य का दूसरा रूप ध्रुव विष्णु है जो सबों को घुमा रहे हैं। अथवा सूर्य के ही भ्रमण के अधीन अन्यों का भ्रमण है। इस हेतु कहा गया है कि सूर्य घुमा रहे हैं। इस प्रकार कालात्मक विष्णु (बृहच्छरीरः) बड़ा शरीर-वाले (ऋक्वाभिः) स्तुतियों से (विमिमानः) सबों को यथा-स्थान में स्थापित करते हुए स्थित हैं पुनः (युवा) नित्यतरुण इसी हेतु (अकुमारः) अनल्प वह विष्णु (आहवम्) यज्ञ देश में (प्रयेति) आते हैं। यह सायणाचर्य्य के भाष्य का अभिप्राय है। यहां 'विष्णु, का अर्थ कालात्मक आदित्य किया है। विवश हो कर सायण को यह अर्थ करना पड़ा है क्योंकि यहां ९४ चौरान्नवे का वर्णन है। जो सूर्य्य में ही घटते हैं। परन्तु तथापि सायण ने विष्णु को सूर्य का मूर्त्यन्तर माना ही है॥ यहां सायण ने 'चर्तुभिः साकं नवतिम्' इस पद की व्याख्या में क्या ही अशुद्धि की है। ९४ चौरान्नवे संख्या गिनाने के लिये क्या हिसाब लगाया है॥ यहां इस प्रकार अर्थ हो सकता है यथाः=९०×४=३६० नव्वे को चार से गुणा करने पर ३६०होता है॥ इतने वर्ष में दिन होते हैं। (यद्यपि ३६४ करीब वर्ष में दिन होते हैं तथापि यहां जो ३६० कहे गये हैं इस का कारण अधिक मास है वेद में एक अधिक मास भी माना गया है जिस से उस की पूर्ति हो जाती है) इनको ही मानों सूर्य घुमा रहे हैं। पुनः पुनः वेही ऋतु वेही दिन आते रहते हैं। यह इस का विस्पष्ट भाव प्रतीत होता है। चतुर्भिः-साकम्+नवतिं। का अर्थ है कि ४×९० को गुणा कर के जो दिन की संख्या आती है उन्हें सूर्य्य घुमा रहे हैं। अथवा प्रधानतया ९४ ग्रहों को अपने साथ सूर्य घुमा रहे हैं। यहां पर सूर्य को 'युवा' और "अकुमार" कहा है।

त्वां विष्णु बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः।
त्वां शर्धोमदत्यनुमारुतम्। ऋ०।८।१५।९।

सायणकृत अर्थः-हे इन्द्र! (बृहन्) बड़े (क्षयः) और निवास के कारण (विष्णुः मित्रः+वरुणः) विष्णु मित्र और वरुण (त्वाम्) आप की (गृणाति) स्तुति करते हैं। और (त्वाम्+अनु) आप के पीछे (मारुतम्+शर्धम्)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मरुत्सम्बन्धी बल (मदति) बढ़ता है। मदोन्मत्त होता है। यहां विष्णु इन्द्र की स्तुति करता है। वह विष्णु कौन हैं ?

उत नः सिन्धु रपां तन्मरुतस्तदश्विना।
इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सयोषसः। ऋ० ८। २५। १४

अर्थ-(उत) और (अपां+सिन्धुः) जल देने वाला मेघ (नः) हमारे (तत्) उस धनकी रक्षा करे। (मरुतः) मरुद्गण (तत्)उस धन की रक्षा करें (अश्विना) अश्विदेव रक्षा करें (इन्द्रः+विष्णुः) इन्द्र और विष्णु और (मीढ्वांसः) सब कामों के सेचन करने वाले सकल देव (सयोषसः) संगतहो अर्थात् मिलकर धनकी रक्षा करें॥ यह सायण का अर्थ है। यहां सब देवों के साथ धनरक्षा के लिये विष्णु प्रार्थित हुआ है। क्या एक ही विष्णु धन की रक्षा करने में असमर्थ है।

"इन्द्र, विष्णु और आख्यायिका"

इन्द्राविष्णू दंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान्॥ऋ० ७।९९।५॥

सायण कृतार्थानुवादः-(इन्द्राविष्णू) हे इन्द्र विष्णु ! आप दोनों ने (शम्बरस्य) शम्बर नाम असुर के (दंहिताः) दृढीकृत (नव+नवतिं+च)९९ निनान्नवै (पुरः) नगर (श्नथिष्टम्) नष्ट कर दिये। और (शतम्+सहस्रम् +च) सौ और सहस्र(वर्चिनः+असुरस्य) तेज युक्त असुर के (अप्रति+वीरान्) वीर साथ ही (हथः) छिन्न भिन्न कर मार दिये। इसी मन्त्र के समान एक यह मन्त्र है।

अध्वर्य्यवो यः शतं शम्बरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वीः।
यो वर्चिनः शतमिन्द्रः सहस्रमपावपद् भरता सोम मस्मै। ऋ० २। १४। ६॥

हे (अध्वर्य्यवः) अध्वर्यु ! (यः) जिस इन्द्र ने (शम्बरस्य) शम्बर नाम मायावी असुर के (पूर्वीः) पुरातन (शतं+पुरः) एक सौ नगर (अश्मनेव)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रस्तरके समान वज्र से (विभेद) तोड़डाले और (यः) जिस (इन्द्रः) इन्द्र ने (वर्चिनः) तेज युक्त अथवा वर्चीनामक असुर के (शतम्+सहस्रम्) सौ और सहस्र वीर (अपावपत्) पृथिवी पर मार गिराये । (अस्मै) इस इन्द्र को (सोमम्+भरत) सोम दो ।

यहां आप लोग देखते हैं कि इन्द्र और विष्णु मिलकर युद्ध करते हैं परन्तु इन्द्र प्रधान और विष्णु गौण हैं । क्योंकि शम्बर के नगरों को इन्द्र अकेला ही नाश करने वाला है । जैसा कि द्वितीय मन्त्र में वर्णित है । एवमस्तु । यहां पर भी सायण ने अर्थ में बड़ी अशुद्धि की है ॥ हम आप लोगों से कह चुके हैं कि ' शम्बर ' नाम मेघ का है । निघण्टु १ । १० । देखिये । और ९९ यह संख्या समस्तार्थक है । अर्थात् सम्पूर्ण वाचक है । क्योंकि ९ से अधिक अङ्क नहीं होते ९९ में भी नौ ही नौ हैं । इस हेतु शत सहस्र पद आए हैं जो अनन्त वाचक हैं अर्थात् सब । इन्द्र नाम यहां वायु का है और विष्णु नाम सूर्य का है। वायु और सूर्य दोनों मिलकर शम्बरासुर अर्थात् मेघ देवता के निखिल नगरों को भ्रष्ट कर देते हैं । वायु से विशेष कर मेघ छिन्न भिन्न होजाता है। अतः वायु वाचक इन्द्र की यहां प्रधानता कही गई है । इन्द्र और विष्णु ये दोनों शब्द बहुधा साथ २ आये हैं ऋग्वेद मण्डल ६ सूक्त ६९ देखिये। इस सूक्त में ८मन्त्र हैं आठों मन्त्रों में इन्द्र विष्णु शब्द आया है ॥

१–इन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।

२–इन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।

३–इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा ।

४–इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।

५–इन्द्राविष्णू तपनयाय्यम् ।

६–इन्द्राविष्णू हविषा वावृधाना ।

७–इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्यसोमस्य ।

८–इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथाम् ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्वेत्ता विष्णुराभर दुरुक्रमस्त्वेषितः ।
शतं महिषान् क्षीरपाक मोदन वराहमिन्द्र एमुषम् ।
ऋ० ८ । सू० ७७ । मन्त्र १० ।

सायणकृतार्थानुवादः—यहां सायण कहते हैं कि निरुक्तकार और ऐतिहासिक के मत के भेद से इस ऋचा की योजना अर्थात् अर्थ दो प्रकार से होती है। नैरुक्त (निरुक्तकार) के पक्ष में यह अर्थ होता है । हे इन्द्र (ता) जो जल आप को उत्पन्न करना उचित था उस जल को (विष्णुः) व्यापनशील आदित्य ही (आभरत्) लोगों को दे रहे हैं । वह विष्णु कैसा है । (उरुक्रमः) बहुत गति वाला । हे इन्द्र ! (त्वेषितः) । आप से प्रेरित हो वह विष्णु केवल जल ही नहीं ले आते हैं किन्तु (शतम्+महिषान्) सैकड़ों पशुओं को लाते हैं। सायण कहते हैं यहां महिषशब्द गवादिक का उपलक्षक है। अथवा शतशब्द अपरिमितवाची है और 'महिष' नाम 'महत्' का है अर्थात् यज्ञ का नाम यहां 'महिष' है । अर्थात् यजमान को वह आदित्य असंख्य यज्ञ देते हैं और (क्षीरपाकम्) पायस=खीर देता है 'क्षीरपाक' यह पुरोडासादि का उपलक्षक है और (ओदनम्) सब के लिये वृष्टिदान द्वारा ओदन देते हैं और (इन्द्रः) इन्द्र (वराहम्) जल पूर्ण मेघ का हनन करते हैं । वह मेघ कैसा है (एमुषम्) जल के चुराने वाला । यह निरुक्त पक्ष का अर्थ हुआ इस पक्ष में विष्णु का आदित्य अर्थ सायण ने किया है और वराह शब्द का 'मेघ' अर्थ किया है अब ऐतिहासिक पक्ष का अर्थ करते हैं । सा०क० चरक—ब्राह्मण में इतिहास उक्त है कि विष्णु जो यज्ञ इस ने देवताओं से अपने आत्मा को छिपा लिया । उस को अन्य देवता नहीं जानसके परन्तु इन्द्र ने उस को जान लिया । उस ने इन्द्र से कहा कि आप कौन हैं ? । इन्द्र ने उत्तर दिया कि मैं दुर्ग असुरों का हनन करने वाला हूं । परन्तु आप कौन हैं ? उसने कहा कि मैं दुर्गादाहर्ता हूं । यदि आप दुर्ग असुरों के हनन करने वाले हैं तो यह धन का चोर वराहासुर प्रस्तरमयी २१ इक्कीस पुरियों के पार में वास करता है । वहां असुरों का बहुत अच्छा धन है । उस को आप मारें । इन्द्र ने उस की सब नगरियों का भेद कर उस का हृदय तोड़ डाला और उस समय जो कुछ वहां धन था ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विष्णु उसे ले आए। इतना इतिहास कह अब आगे अर्थ करते हैं। हे इन्द्र! (त्वेषितः) आप से प्रेरित (विष्णुः) यज्ञरूपी विष्णु अर्थात् जब विष्णु ने यह कहा कि "मैं दुर्गादाहर्ता" हूं तब आपने कहा कि यदि आप दुर्गादाहर्ता हैं तो उस के धन ले आवें इस प्रकार आप से प्रेरित वह यज्ञरूपी विष्णु (उरुक्रमः) शीघ्र-गतिमान् हो कर (विश्वा+इत्+ता) उन सब धनों को (अभरत्) ले आए। किन किन पदार्थों को ले आए सो आगे कहते हैं (शतम्+महिषान्) अनेक प्रशस्त पदार्थों को अथवा उस असुर के वाहन रूप महिषों को ले आए। और (क्षीरपाकम् +ओदनम्) पका हुआ ओदन को। (इन्द्रः) इन्द्रने (एमुषम्) धन के चोराने वाले (वराहम्) वराह रूपी असुर का हृदय में ताड़न किया। यह सायण भाष्य का अर्थ है। यहां सायण द्वितीय ऋचा दे कर इस इतिहास की पूर्त्ति करते हैं वह ऋचा यह है।

अस्येदुमातुः सवनेषु सद्यो महः पितुंपापिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता॥
ऋ० १। ६१॥ मन्त्र॥ ७॥

सायणकृतार्थानुवाद (इद्+उ) निश्चय (मातुः) वृष्टि द्वारा सकल जगत् के निर्माण करने वाले (महः) महान् (अस्य) इस यज्ञ के सम्बन्धी (सवनेषु) प्रातस्सवनादि तीनों सवनो में (पितुं) सोमलक्षण अन्न को (सद्यः) तत्काल (पपिवान्) ज्यों ही अग्नि में डाला गया सों ही अग्नि ने उस का पान कर लिया और (चारु) अच्छे २ (अन्ना) धानाकरंभादिहविर्लक्षणरूपान्न खाएं और (विष्णुः) सब जगत् का व्यापक विष्णुः (पचतं) असुर के परिपक्व धन (मुषायद्) चोरी कर ले आये (सहीयान्) अतिशय बलवान् (अद्रिमस्ता) वज्र के फैंकने वाले इन्द्र ने (तिरः) प्राप्त हो कर (वराह) मेघ को ताड़ित किया अथवा विष्णु जो स्तुत्य दिवसात्मक यज्ञ है क्योंकि यज्ञ ही विष्णु रूप हो कर देवताओं से छिप गया था वह विष्णु असुर के परिपक्व धन चोरा कर ले आया तदनन्तर दीक्षोपसदात्मक सात दिनों के पर में विद्यमान जो अद्रि उस के नाश करने वाला इन्द्र सातो दुर्गों के निकट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जा उत्कृष्ट दिवस रूप यज्ञ को ताड़ित किया। यहां पर सायण भाष्य विस्पष्ट नहीं है क्योंकि विष्णुकृत असुरों का धन हरण करना और वराहरूप मेघ का वा दिवस का वा यज्ञ का इन्द्रकृत हनन होना इन दोनों से कुछ सम्बन्ध नहीं है इन दोनों ऋचाओं से सायण ने सिद्ध किया है कि एक असुर था जिस को इन्द्र ने मारा और उस के धन विष्णु ले आये परन्तु सायण ने इन के अर्थ करने में बड़ी असावधानता दिखाई है कभी वराह शब्द का अर्थ मेघ और कभी उत्कृष्ट दिवस रूप यज्ञ करते हैं इसी प्रकार विष्णु शब्द आदि के अर्थ करने में भी अशुद्धि की है। यथार्थ में इन मन्त्रों का अर्थ सायण ने नहीं समझा। यहां विष्णु का अर्थ सूर्य्य और इन्द्र का अर्थ वायु है और वराह और ओदनादि शब्द मेघ वाचक है सूर्य्य का किरण वायु के द्वारा मेघ उत्पन्न किया करता है जिस के द्वारा जगत् में नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं जब मेघ बन जाता है तब इन्द्र अर्थात् वायु मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है यही इन्द्रकृत वराहहनन है। अब द्वितीय मन्त्र को इस के साथ जो सायण ने मिलाया है सो ठीक नहीं है वहां विष्णुशब्द का अर्थ यज्ञ है उस से जगत् में विशेष आनन्द होता है यही विष्णु कृत अन्न का हरण है परन्तु यह अन्न जब तक वायु देवता कृपा न करे और मेघ को छिन्न भिन्न कर न बरसावें तो नहीं हो सकता यही इन्द्रकृत वराहहनन है वराह नाम मेघ का है इस में निघण्टु और निरुक्त है॥

अत्र निरुक्तं वराहोमेघोभवति वराहारो वरमाहार माहार्षी दिति च ब्राह्मणम्। अत्रसायणकृतार्थः। वरमुदकम् आहारोयस्य यद्वा वरमाहरतीति वराहारः सन् पृषोदरादित्वाद् वराह इत्यच्युते यज्ञपक्षेतु वरंच तदहो वराहः राजाहः सखिभ्यः इति समासान्तोटच् प्रत्ययः॥

निघण्टु में मेघ-नामों में 'वराह' शब्द आया है। वराह = शब्द का अर्थ यास्काचार्य्य अपने निरुक्त में करते हैं यथाः-'वराह' नाम मेघ का है क्योंकि वर = जल। आहार = भोजन खाद्यवस्तु। जिस का भोजन जल है उसे 'वराह' कहते हैं। सायण ने व्याकरणानुसार 'वराह' शब्द की सिद्धि की है सायण और भी कहते हैं कि 'वराह' नाम यज्ञ का भी है क्योंकि वर = उत्तम।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अहः = दिन । जो उत्तम दिन हो उसे ' वराह ' कहते हैं। जिस दिन यज्ञ होता है वह सब से उत्तम दिन है अतः यज्ञ का नाम वराह है ॥ इस प्रकार सायण आदि भाष्यकार कभी २ साधु-शब्दार्थ करते हुए भी क्योंकर भ्रम में पड़जाते हैं सो नहीं मालूम । पुनः-

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत प्रयद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदपगूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ । ऋ० ७।१००।६॥

इस ऋचा के व्याख्यान में सायण लिखते हैं यथाः-

पुरा खलु विष्णुः स्वं रूपं परित्यज्य कृत्रिमरूपान्तरं धारयन्
संग्रामे वसिष्ठस्य सहाय्यं चकार ॥ तं जानन् ऋषिरनया प्रत्याचष्टे ॥

पूर्व काल में अपना रूप त्याग कृत्रिम दूसरा रूप धारण कर विष्णु भगवान् ने संग्राम में वसिष्ठ जी की सहायता की इस को जानते हुए ऋषि ने इस ऋचा से कहा है । यहां हमें सायण की बुद्धि के ऊपर बहुत शोक होता है । इस अवस्था में वेद नित्य कैसे रहा । एवमस्तु यह ऋचा निरुक्त में भी आया है । यास्क कहते हैं ॥

शिपिविष्टो विष्णुरिति विष्णो र्द्वे नामनी भवतः। कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यवः ।

विष्णु के दो नाम हैं एक ' शिपिविष्ट ' और दूसरा ' विष्णु ' शिपिविष्ट' यह नाम निन्दा सूचक है ऐसा औपमन्यव आचार्य्य मानते हैं । इतना कहकर पुनः यास्क अपना मत प्रकाशित करते हैं । ' अपिवा प्रशंसानामैवाभिप्रेतंस्यात्' अथवा ' शिपिविष्ट ' नाम प्रशंसा सूचक ही है । यहां इस शब्द के दो अर्थ इस प्रकार हैं ॥

शेप इव निर्वेष्टितोऽसि अप्रतिपन्नरश्मिः ।
अथवा-शिपिविष्टोऽस्मि इति प्रतिपन्नरश्मिः ।
शिपयोऽत्र रश्मय उच्यन्ते तै राविष्टोभवति ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उदय काल में सूर्य अच्छे प्रकार शोभित नहीं होता है। समस्त किरण लुप्त प्रतीत होते हैं और रक्त भासित होने से कुरूप सा दीखता है। अर्थात् अपने किरणों से विरहित होने के कारण 'शिपिविष्ट' यह नाम निन्दा सूचक है अथवा शिपि = किरण उन से जो सम्यक् आविष्ट = सम्यक् परिपूर्ण वह शिपिविष्ट॥ इस पक्ष में प्रशंसासूचक है। अर्थात् एक पक्ष में 'शेप' (कुरूप वस्तु) के समान जो भासित हो। द्वितीयपक्ष में शिपि [किरण] से आविष्ट हो। इस प्रकार इस के दो अर्थ होते हैं।

अथ मन्त्रार्थः-(विष्णो) हे सूर्य! (ते) आपको (किम्) क्या [परिचक्ष्यम्+भूत्) प्रख्यात=प्रकाशित करना है अथवा (ते) आप (किम्) क्या यह (परिचक्ष्यम्) कररहे हैं (यत्) जो आप (प्र+ब्रवीषे) कहते हैं कि मैं (शिपिविष्टः+अस्मि) शिपिविष्ट हूं। हे सूर्य! (अस्मत्) हमलोगों से आप (एतत्) इस (वर्पः) रूप को (मा) नहीं (अप+गूह) छिपावें (यत्) जिस रूप को (अन्यरूपः) रूपान्तर होकर=अन्य रूपको धारण कर (समिथे) आकाश में) यत्+बभूथ = प्राप्नोषि) आप प्राप्त होते हैं उस रूपको आप हम लोगों से न छिपावें।

इस मन्त्र का भाव बहुत विस्पष्ट है। हे आर्य्यसन्तानो! सोचो। प्रातःकाल के सूर्य का यह वर्णन है॥ मानों प्रातःकाल का सूर्य कहता है कि मैं 'शिपिविष्ट' हूं अर्थात् मुझ में किरण-प्रकाश नहीं है आप लोगों को कैसे प्रकाशित करूं। इस पर सब देव मिलकर कहते हैं कि आप यह क्या कहरहे हैं आप तो 'शिपिविष्ट' हैं अर्थात् आप किरणों से शोभित हैं। मान भी लेवें कि आप में इससमय किरण नहीं हैं। तथापि हे विष्णो! जब इस प्रातःकालिक 'शिपिविष्ट रूप' को त्याग 'विष्णुरूप' अर्थात् व्यापक-रूप को धरते हैं तब आप उस रूप से हम देवों की रक्षा कर सकते हैं। इस व्यापक-विष्णुरूप को मत छिपावें। इस वर्णन से विस्पष्टतया प्रतीत होता है कि प्रातःकालिक सूर्य को 'शिपिविष्ट' कहते हैं और जब इस के किरण सर्वत्र पृथिवी पर फैल जाते हैं तब वह 'विष्णु' कहलाता है अब आगे कहते हैं कि आप का जो प्रातःकालिक 'शिपिविष्ट' रूप है वह भी प्रशंसनीय है मैं उसी की प्रशंसा करता हूं॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्र तत्तेअद्य शिपिविष्टनामार्य्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तन्त्वा गृणामि तवसमतव्यान् क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ ५ ॥

अर्थ—यास्काचार्य्य ने प्रथम ६ षष्ठ का अर्थ कर तव पञ्चम का अर्थ किया । वही क्रम मैंने भी रक्खा । (शिपिविष्ट) हे किरणों से युक्त सूर्य्य ! (ते) आप के (तत्+नाम) उस प्रसिद्ध 'शिपिविष्ट' नाम की (प्र+शंसामि) प्रशंसा करता हूं । क्योंकि (वयुनानि+विद्वान्) आप के सम्बन्ध में जितने ज्ञान हैं अर्थात् आप को जानने के लिये जितनी विद्याएं हैं उन सबों को जानने वाला मैं हूं क्योंकि (अर्यः) मैं सब विद्याओं का स्वामी हूं । हे सूर्य्य ! तथापि आप महान् हैं । मैं लघु हूं । सो आगे कहते हैं । (तवसम् । अति महान् (त्वाम्) आप की (अतव्यान्) अमहान्=लघु मैं (गृणामि) स्तुति करता हूं आप कैसे हैं (अस्य+रजसः) इस पृथिवी के (पराके) बहुत दूर (क्षयन्तम्) स्थित हैं ॥ ५ ॥ भाव इसका यह है कि सूर्य इस पृथिवी से बहुत दूर है इस हेतु इस के सम्बन्ध में कुछ जानना अति कठिन है ॥ परन्तु ऋषि लोग तथापि इस को अच्छे प्रकार जानते हैं । इस हेतु प्रातः कालिक सूर्य को निन्दनीय अथवा किरणरहित नहीं समझते हैं अज्ञानी लोग तो अवश्य ही प्रातःकाल सूर्य को किरणरहित ही समझते हैं परन्तु ज्ञानी लोग नहीं । वे समझते हैं कि पृथिवी के अवरोध (रुकावट) से सूर्य इस इस प्रकार भासित होता है । यथार्थ में सूर्य ऐसा नहीं है । इस हेतु सर्वज्ञ ऋषि कहते हैं मैं प्रातःकालिक सूर्य की प्रशंसा करता हूं अर्थात् मैं इस को समझता हूं अन्य लोग नहीं समझ रहे हैं । यहां सौरविद्या का वर्णन है ।

'यज्ञवाचक विष्णु शब्द'

दिवि विष्णु र्व्यक्रंस्त जागतेन छन्दसा ।
ततो निर्भक्तो योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः ।
अन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रंस्त त्रैष्टुभेन छन्दसा ।
ततो निर्भक्तो०
पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रंस्त गायत्रेण छन्दसा ।
ततो निर्भक्तो०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्मादन्नात् । अस्यै प्रतिष्ठायै । अगन्म स्वः । संज्योतिषाभूम ।
यजुः २ । २५ ।

(विष्णुः) यज्ञ (जागतेन+छन्दसा) जगतीछन्द से अनुष्ठीयमान हो (जिस में जगती छन्द पढ़े गये हों ऐसा यज्ञ) (दिवि) द्युलोक को (व्यक्रंस्त) प्राप्त होता है (ततः) उससे अर्थात् यज्ञ के फैल जाने से (निर्भक्तः) दुष्ट पदार्थ वा दूषित वायु आदि निकल जाता है । कौन निकल जाता है सो आगे कहते हैं (यः) जो दुष्ट वायु आदि वस्तु (अस्मान्) हम जीवों से (द्वेष्टि) द्वेष रखती है और (वयम्+च) हम लोग (यं) जिस से (द्विष्मः) द्वेष रखते हैं । ऐसी वस्तु उस यज्ञ के द्वारा विनष्ट हो जाती है । अर्थात् अग्नि में प्रक्षिप्त जो रोगनाशक पुष्टिप्रदायक और जलादिसंशोधक हवनसामग्री है वह भस्म होकर वायुद्वारा बहुत दूर तक पहुंचती है और वहां २ पहुंच कर रोगादिजनक वस्तु को नष्ट कर देती हैं । इस हेतु वेद में कहा जाता है जो वस्तु हम लोगों से द्वेष करती है एवं जिससे हम लोग द्वेष करते हैं वह वस्तु यज्ञ के द्वारा नष्ट होजाती है । आगेभी यही भाव समझना चाहिये । (विष्णुः) यज्ञ (त्रैष्टुभेन+छन्दसा) त्रिष्टुभ्छन्दसे अनुष्ठीयमान हो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षलोक को (व्यक्रंस्त) प्राप्त होता है । (ततः+निर्भक्तः) पूर्ववत् । (विष्णुः) यज्ञ (गायत्रेण+छन्दसा) गायत्रीछन्द से अनुष्ठीयमान हो (पृथिव्याम्) पृथिवीलोक में (व्यक्रंस्त) फैल जाता है । (ततः+निर्भक्तः) पूर्ववत् । (अस्मात्+अन्नात्) जगत् में प्रत्यक्षतया दृश्यमान जो अन्न अर्थात् खाद्य सामग्री है । जाति में यहां एक वचन है ' उसके निमित्त यह यज्ञानुष्ठान है केवल इसी के लिये नहीं । किन्तु (अस्यै+प्रतिष्ठायै) इस प्रत्यक्षप्रतिष्ठा के लिये भी यज्ञानुष्ठान है । (स्वः) सुख (अगन्म) पाते हैं एवम् (ज्योतिषा) ईश्वरीयज्योति = प्रकाश से (सम्+अभूम) संगत होते हैं । अर्थात् यज्ञ से ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों काम्य सम्पन्न होते हैं ॥ इस मन्त्र में विष्णु शब्द का अर्थ महीधर भी ' विष्णुर्यज्ञपुरुषः ' यज्ञ ही करते हैं । हमारे आचार्य श्री मद्दयानन्द सरस्वती जी भी ' यो वेवेष्टि व्याप्नोति अन्तरिक्षस्थलवाय्वादि पदार्थान् स यज्ञः ' । यज्ञो वै विष्णुः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शतपथ ' यज्ञ ही अर्थ करते हैं इस में शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण भी दिया है । एक मन्त्र और भी ऐसा ही है वह भी सुनिये :—

विष्णोः क्रमोऽसि सपत्नहा गायत्रं छन्द आरोह पृथिवीमनु विक्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽस्यभिमातिहा त्रैष्टुभं छन्द आरोहान्तरिक्षमनु विक्रमस्व । विष्णो क्रमोऽस्यरातीयतो हन्ता जागतं छन्द आरोह दिवमनु विक्रमस्व । विष्णोः क्रमोऽसि शत्रूयतो हन्ताऽनुष्टुभं छन्द आरोह दिशोऽनु विक्रमस्व । यजुः । १२ । ५ ।

अर्थः—यहां यज्ञ के फैलने का वर्णन है । यज्ञ का जो क्रम अर्थात् यज्ञ की सामग्री का जो चारों तरफ गमन है उसको सम्बोधन करके कहते हैं । आप (विष्णोः+क्रमः+असि) यज्ञ के क्रम हैं इसी हेतु (सपत्नहा) सपत्न अर्थात् जीव के आरोग्य के नाशकरनेवाले जो शत्रु हैं उनको भी आप नष्ट करनेवाले हैं । हे यज्ञरूप ! प्रथम आप (गायत्रम्+छन्दः+आरोह) गायत्री छन्द को प्राप्त करें (अनु) तत्पश्चात् (पृथिवीम्) पृथिवी पर (विक्रमस्व) फैलें । आप (विष्णोः+क्रमः+असि) यज्ञ के क्रम हैं । इसी हेतु (अभिमातिहा) अभिमाति जो घातक पाप उसको नष्ट करने वाले हैं (त्रैष्टुभं+छन्दः+आरोह) त्रिष्टुभ् छन्द को प्राप्त करें (अनु) पश्चात् (अन्तरिक्षम्+विक्रमस्व) अन्तरिक्ष लोक में व्याप्त होवें । पुनः (विष्णो+क्रमः+असि) विष्णुके आप क्रम हैं । इसी हेतु (अरातीयतः+हन्ता) शत्रुके हनन करने वाले हैं (जागतम्+छन्द+आरोह) जगती छन्दको प्राप्त करें (अनु) पश्चात् (दिवम्) द्युलोक तक (विक्रमस्व) फैल जांय । पुनः (विष्णोः+क्रमः+असि) यज्ञ के आप क्रम हैं इसी हेतु (शत्रूयतः) शत्रुओं के (हन्ता) नाश करने वाले हैं (आनुष्टुभं+छन्दः+आरोह) अनुष्टुभ् छन्द को प्राप्त करें (अनु) तत्पश्चात् (दिशः) सब दिशाओं में (विक्रमस्व) फैलजांय । यह मन्त्र विद्वान् में भी घटता है । क्योंकि विद्वान् भी विष्णु अर्थात् सर्व व्यापक ब्रह्म के क्रम अर्थात् पराक्रम = प्रताप स्वरूप हैं । अर्थात् उसके तत्त्ववित् हैं । वे गायत्री आदि छन्दों से निःसृत अर्थ को जान विविध यन्त्रादि प्रस्तुत कर पृथिवी से लेकर द्युलोक पर्यन्त गमन कर सकते हैं ॥ ५ ॥ इन दोनों मन्त्रों में एक रहस्य यह है । शतपथादि में कहा गया है कि:—

गायत्री वै प्रातः सवनं वहति । त्रिष्टुम्माध्यंदिनं सवनम् । जगती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीयसवनम् । शत० कां ४ । २ ॥

गायत्रं वै प्रातः सवनम् । त्रैष्टुभं माध्यन्दिनं सवनन् । जागतं तृतीयसवनम् । शत० का० ४ । ५ ॥

यज्ञ में प्रतिदिन तीन सवन (यज्ञ) होते हैं। प्रातः सवन, माध्यदिन सवन और तृतीय सवन। प्रातः काल के सवन में मुख्यतया गायत्री छंद के मंत्र पढ़े जाते हैं और माध्यदिन सवन में त्रिष्टुभ छन्द के मन्त्र और तृतीय सवन में जगती छंद के मंत्र पठित होते हैं। यह यज्ञ का एक साधारण नियम है। यह नियम ईश्वरीय आज्ञानुकूल ही है। अब आप लोग 'दिवि विष्णुर्व्यक्रंस्त' इस मंत्र पर ध्यान दीजिये। मन्त्र कहता है कि 'जगती छन्दके साथ यज्ञ द्युलोक को प्राप्त होता है'। यह तृतीयसवन का वर्णन है। तृतीय सवन में जगती छन्द पढ़े जाते हैं। और द्युलोक पदार्थ के शोधन के लिये होता है। पुनः मन्त्र कहता है कि 'त्रिष्टुप छंद से यज्ञ अन्तरिक्ष को प्राप्त होता है'। यह माध्यदिन सवन का वर्णन है जिसमें त्रिष्टुभ छन्द पढ़े जाते हैं। और यह अन्तरिक्षस्थ पदार्थ के शोधन के लिये होता है। पुनः मन्त्र कहता है कि 'गायत्री छन्द से यज्ञ पृथिवी में फैलता है' यह प्रातः सवन का वर्णन है। इस में गायत्री छन्द पढ़े जाते हैं। और पृथिवीस्थ पदार्थ के शोधनके लिये होता है ॥

द्वितीय मन्त्र (विष्णोः+क्रमोसि) का भी भाव समान ही है। इन दो मंत्रों से विस्पष्ट है कि विष्णु नाम यज्ञ का है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु क्रमका वर्णन है। और वहां कहा गया है कि 'विष्णु' नाम यज्ञ का है। इस प्रकार वेदों के बहुत स्थलों में विष्णु शब्द यज्ञार्थ में प्रयुक्त हुआ है। हे विद्वानो! यदि सब प्रयोग यहां दरसावें तो ग्रन्थ बहुत विस्तार होजायगा। हमने आप लोगों को बहुत से मन्त्रों का अर्थ सुनाया इस में सन्देह नहीं कि विष्णु सम्बन्धी मन्त्र बहुत हैं। जिनका अर्थ नहीं किया आप लोग स्वयं प्रकरणानुकूल विचार लेवेंगे। परन्तु आप लोग निश्चय जानें कि वामनावतार की कथा से इन का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस की चर्चा आई है उसे भी संक्षेप से सुना देना हम उचित समझते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवाश्च वा असुराश्च । उभये प्राजापत्याः पस्पृधिरे ततो देवा अनुन्यमिवासु रथहासुरा मेनिरेऽस्माक मेवेदं खलु भुवनमिति ॥ १ ॥ ते होचुः हन्तेमां पृथिवीं विभजामहै तां विभज्योपजीवामेति । ता मौक्ष्णै श्चर्म्मभि पश्चात् प्राञ्चो विभजमाना अर्भायुः ॥ २ ॥ तद्वै देवा शुश्रुवुः । विभजन्ते हवा इमामसुराः पृथिवी प्रेत तदेष्यामो यत्रेमामसुरा विभजन्ते के ततः स्याम यदस्यै न भजेमहीति । ते यज्ञ मेव विष्णुं पुरस्कृत्येयुः ॥ ३ ॥ शत० का० १ । २

अर्थः—निश्चय, देव और असुर दोनों ही प्रजापति के सन्तान थे और वे दोनों अपनी २ श्रेष्ठता के लिये सदा स्पर्धा किया करते थे । एक समय, देव गण क्लेशित से होगये । असुरों ने विचार किया कि, निश्चय, यह सम्पूर्ण भुवन हम लोगों का ही है ॥ १ ॥ इस हेतु वे परस्पर बोले कि हे भाइयो ! आते जाओ हम लोग मिलकर इस पृथिवी का विभाग करें और इस का विभाग कर जीवें । यह सम्मति कर के उन्हो ने बैल के चर्म से पृथिवी का पश्चिम से पूर्वतक विभाग करना आरम्भ किया ॥ २ ॥ देव गणों ने यह सुन लिया । और परस्पर बोल उठे कि इस पृथिवी को असुर लोग बांट रहे हैं । आओ भाई हम लोग भी वहां चलें जहां असुर लोग बांट रहे हैं । हम लोग क्या होंगे यदि इस पृथिवी में भाग नहीं पावेंगे । वे यज्ञ स्वरूप विष्णु को आगे कर वहां चले ।

ते होचुः । अनुनोऽस्यां पृथिव्यामाभजता स्वेव नोऽप्यस्यांभाग इति । ते हासुरा असूयन्त इवोचु र्यावदेवैष विष्णो रभिशेते । तावद्धो दद्म इति ॥ ४ ॥ वामनो ह विष्णुरास । तदेवा नजिहीडिरे महद्वै नोऽदुर्यैनोयज्ञसम्मितमदुरिति ॥ ५ ॥ ते प्राञ्चंविष्णुं निपाद्य । च्छन्दोभि रभितः पर्य्यगृह्णान् । गायत्रेण त्वा च्छन्दसापरिगृह्णामीति दक्षिणत स्त्रैष्टुभेनत्वाच्छन्दसा परिगृह्णामीति पश्चाज्जागतेन त्वा च्छन्दसा परिगृह्णामीत्युत्तरतः ॥ ६ ॥ तं च्छन्दोभि रभितः प्रतिगृह्यअग्निं पुरस्तात्समाधाय तेनार्चन्तः श्राम्यन्त श्चेरुस्तेनेमाꣳसर्वां पृथिवीꣳ समविन्दन्त तद्यदेनेनेमाꣳ सर्वाꣳ समविन्दत तस्माद्वेदिर्नाम तस्मादाहु र्यावतीवेदिस्तावती पृथिवी त्येतयाहीमाꣳ सर्वाꣳ समविन्दन्तैवꣳ हवाइमाꣳ सर्वा ꣳ सपत्नामाꣳ सवृङ्क्ते निर्भजत्यस्यै सपत्नान्यएव मेतद्वेद ॥ ७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वे देव बोले। इस पृथिवी में हम लोगों को भी भाग दीजिये। क्योंकि इस में हमारा भी भाग है। देवों के इस वचन को सुन कुछ उदासीनता और ईर्षा से असुरों ने कहा कि जितनी भूमि के ऊपर यह विष्णु शयन कर रहा है उतनी हम आप को दे सकते हैं अधिक नहीं। ४। निश्चय इस समय विष्णु वामन अर्थात् आकार में छोटा था। असुरों के इस उत्तर पर वे देव अप्रसन्न नहीं हुए। प्रत्युत कहने लगे कि इन्होंने हम को बहुत कुछ दिया जिन्होंने यज्ञ सम्मित (यज्ञ के बराबर) दिया है। ५। तब देव इस विष्णु को पूर्व की ओर स्थापित कर वैदिक छन्दों से चारों ओर घेरने लगे। यजुर्वेद अध्याय १. मन्त्र २७ के एक एक पद लेकर देव कहते हैं कि " गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि " अर्थात् आप को गायत्री छन्द से घेरता हूं इतना कह दक्षिण तरफ ' त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि ' आप को त्रिष्टुभ छन्द से घेरता हूं इतना कह पश्चिम तरफ, ' जगतेनत्वा छन्दसा परिगृह्णामि ' अर्थात् जगती छन्द से आपको घेरता हूं इतना कह उत्तर घेर दिया है। इस प्रकार उस विष्णु को चारों तरफ छन्दों से परिवेष्टित कर और पूर्व की ओर अग्नि प्रज्वलित कर उस के साथ श्रम करने लगे। उस से उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवी पर अधिकार पाया। इत्यादि। इसी प्रकार अन्य ब्राह्मण ग्रन्थों में भी त्रिविक्रम की चर्चा आई है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से उद्धृत नहीं करते हैं।

यहां पर भी सूर्य्य का ही वर्णन है। आप लोग देखते हैं कि यहां देव और असुर अपने २ अधिकार के लिये स्पर्धा कर रहे हैं। प्रकाश का नाम 'देव' और अन्धकार का नाम 'असुर' है। सन्ध्या काल का यह वर्णन है। पृथिवी पर यह भासित होता है कि सूर्य्य पूर्व से पश्चिम जाता है यद्यपि यह सत्य नहीं तथापि जैसा भासित होता है तदनुसार यह वर्णन है। इस हेतु मान लिया जाय कि सूर्य्य पश्चिम की ओर आ गया है। अब सन्ध्या होने पर है इस समय पृथिवी पर से (जहां सन्ध्या हो रही है) सूर्य्य बहुत छोटा और प्रकाश रहित भासित होने लगता है और अन्धकार फैलना आरम्भ होता है। अतः असुर जो अन्धकार वे प्रसन्न हुए कि अब हमारा ही सब राज्य आया आओ परस्पर बांटें। देव अर्थात् प्रकाश बेचारे दुःखित हुए कि हमारा कुछ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं रहा। अन्धकार पश्चिम से लेकर पूर्वतक फैल गया। यही असुरों का पश्चिम से पूर्वतक मापना है। अब मानों प्रकाशदेव रात्रिभर दिन काट प्रातःकाल होते ही असुरों के निकट पहुंचे। परन्तु अकेले ही नहीं पहुंचे किन्तु विष्णु को साथ लेकर जो विष्णु उस समय वामन अर्थात् बहुत छोटा था। अर्थात् प्रातःकाल सूर्य्य छोटा, अपने किरणों से रहित और निस्तेज भासित होता है। इस वामन विष्णु को लेकर प्रातःकाल देव असुर के निकट आ बोले कि अब हम को भी इस में भाग दीजिये। असुरों ने विष्णु को छोटा देख कहा कि जितनी भूमि पर विष्णु लेटे हुए हैं उतनी ले लो। देव इस से अप्रसन्न नहीं हुए क्योंकि वे देव समझते थे कि अब थोड़ी ही देर में यह वामन विष्णु अर्थात् प्रातःकाल का सूर्य अपने किरणों से त्रि-लोक-व्यापी हो जायगा। फिर सर्वत्र हमारा ही राज्य हो जायगा असुरों ने यह स्वीकार कर ही लिया अब चिन्ता किस बात की। देवगण इतने में विष्णु की स्तुति गुणगान करने लगे। अर्थात् प्रातःकाल बीतने लगा सूर्य बढ़ने लगे। असुर=अन्धकार भागने लगे। देवगण मुदित हुए। यही इस का तात्पर्य्य है। यह लीला प्रतिदिन हुआ करती है। रात्रि में असुरों का राज्य और दिन में देवों का राज्य। हे आर्यो! कैसा इस का भाव था अब किस प्रकार रूपान्तर में प्राप्त हो गया है। निःसन्देह यहां विष्णु के साथ वामन शब्द का पाठ आया है। परन्तु आप लोगों ने देखा किस भाव से यहां "वामन" शब्द का प्रयोग हुआ है। आर्यसन्तानो? अब आप विचार करें कैसे यह आख्यायिका धीरे २ विस्तार रूप में आती गई। और आज किस भयङ्कर रूप में प्राप्त है। श्रीयुत मैक्स मूलर शतपथ का अनुवाद करते हुए 'वामन' शब्द के ऊपर इसी अभिप्राय की टिप्पणी देते हैं। इसे भी देखियेः—

This legend is given in Muir's Original Sanskrit Texts, IV, p. 1:2, where it is pointed out that we have here the germ of the Dwarf Incarnation of vishnu; and in A. Kuhn's treatise, 'Ueber Entwicklungsstufen der Mythenbildung,' p. 128, where the following remarks are made on the story: Here also we meet with the same struggle between light and darkness: the gods of light are vanquished and obtain from he

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Asuras, who divide the earth between themselves, only as much room as is covered by Vishnu, who measures the atmosphere with his three steps. He represents (though I can not prove it in this place) the sun-light, which, on shrinking into dwarf's size in the evening, is the only means of preservation that is left to the gods who cover him with metres, i. e. with sacred hymns (probably in order to defend him from the powers of darkness), and in the end kindle Agni in the east—the dawn—and thereby once more obtain possession of the earth.' Compare also the corresponding legend in Taitt Br. III, 2,9,7,.

'विष्णु शब्द के प्रयोग पर विचार'

विष्लृ व्याप्तौ १ । विश प्रवेशने २। और विपूर्वकअशू व्याप्तौ संघाते च३। इन तीन धातुओं से इस शब्द की सिद्धि होती है । पूर्वाचार्य्य ऐसा ही मानते आए हैं । तब इस का अर्थ हुआ कि जो सब जगह व्याप्त हो अथवा जिस का प्रवेश सर्वत्र हो उस को 'विष्णु' कह सकते हैं । यह अर्थ सम्पूर्ण रूप से तो केवल परमात्मा ही में घट सकता है । इस हेतु परमात्मा में यह शब्द मुख्य है और सूर्य्य और यज्ञादि में गौण है । सूर्य्य प्रथम बहुत बड़ा है इस पृथिवी की अपेक्षा १३ लक्ष गुणा बड़ा है । इस हेतु इस की व्यापकता भी बड़ी है । और दूसरा अपने किरणों से बहुत व्यापक और प्रत्येक वस्तु में प्रविष्ट भी हो जाता है । क्योंकि सूर्य की गरमी सर्वत्र पहुंच जाती है । इन कारणों से सूर्य को किसी अंश में 'विष्णु' कह सकते हैं । इसी प्रकार यज्ञ भी बहुत दूर तक फैल जाता है । इस हेतु इस को भी विष्णु कहते हैं ॥ अब गंभीर विचार की बात है कि मनुष्य को वैदिक शब्द के द्वारा ही सब कुछ ज्ञान हुआ है यह विषय निर्विवाद है ॥ शब्द का जैसा अर्थ है वैसा ही प्रयोग भी वेद में दिखलाया गया है। एक पदार्थ के नाम अनेक भी हैं॥ वे सब गुण वाचक हैं । इस हेतु गुण के अनुसार शब्द का प्रयोग किया गया है । अर्थात् जहां ईश्वर की व्यापकता कहना है वहां प्रायः विष्णु शब्द का प्रयोग होगा । जहां परम ऐश्वर्य कहना है वहां इन्द्र । इत्यादि । इसी प्रकार सूर्य आदि में भी । अब वेद में शङ्का हो सकती है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि सूर्य्य एक देशी परिछिन्न वस्तु है। फिर वह व्यापक कैसे हो सकता है। यदि व्यापक नहीं तो विष्णु नाम भी नहीं होना चाहिये। इस का समाधान तो यह है कि सूर्य में इस शब्द की मुख्यता नहीं। अब गौण रूप से भी सूर्य किस प्रकार व्यापक है यह वेद को अवश्य दिखलाना होगा। इस हेतु वेद प्रथम प्रत्यक्ष उदाहरण दिखलाता है कि देखो पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक में कैसे सूर्य व्याप्त है। परन्तु सूर्य अपने स्वरूप से इन में व्याप्त नहीं है। सूर्य का किरण ही फैला हुआ है। इस हेतु वेद को कहना पड़ा कि सूर्य यद्यपि साक्षात् यहां तक पहुंचा हुआ नहीं है किन्तु अपने किरण द्वारा इन में प्रविष्ट है। इस हेतु वह विष्णु कहलाता है।

'वि+क्रम्धातु'

अब इस व्यापकता के सूचनार्थ वेद में जिस धातु का प्रयोग किया गया है वह 'क्रमु' है इस का पाणिनि-धातु-पाठानुसार पैररखना अर्थ है। "क्रमु पादविक्षेपे"। और 'वेः पादविहरणे' १। ३। ४१॥ इस पाणिनीयसूत्र के अनुसार पादविहरण (पैर रखना) अर्थ में विपूर्वक क्रम् धातु से आत्मनेपद होता है। इसी 'वि' सहित क्रम् धातु का वेद में प्रयोग अधिक है। इस हेतु से भी अज्ञानी जनों को कदाचित् भ्रम हुआ हो कि यह वर्णन किसी पैरवाले का है। क्योंकि जिस को पैर ही नहीं। उस में क्रम धातु का प्रयोग ही क्योंकर हो सकता है। परन्तु यह अज्ञानता की बात है। क्योंकि पाणिनि कहते हैं कि :—

वृत्ति, सर्ग, तायनेषु क्रमः॥ १। ३। ३८॥ वृत्तिरप्रतिबन्धः। ऋचिक्रमतेबुद्धिः। नप्रतिहन्यत इत्यर्थः। सर्गउत्साहः। अध्ययनायक्रमते उत्सहते। क्रमन्तेऽस्मिन् शास्त्राणि। स्फीतानि भवन्तीत्यर्थः। आङ उद्गमने॥ १। ३। ४०॥ आक्रमते सूर्यः। उदयत इत्यर्थः। इत्यादि॥

पाद विक्षेप के अतिरिक्त वृत्ति, सर्ग, तायन, उद्गमन आदि भी इस के अर्थ होते हैं। और इन अर्थों में इन के बहुत प्रयोग भी विद्यमान हैं। इसी हेतु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धातु अनेकार्थक कहलाता है। इस हेतु, देख कर अर्थ निश्चय करना चाहिये। यदि यहां पादविक्षेप ही अर्थ रक्खा जाय तब भी कोई क्षति नहीं होती है। ईश्वर में मुख, पाद, हस्त आदि का आरोपमात्र होता है 'विश्वतश्चक्षुरुत' 'सहस्रशीर्षा' इत्यादि में नेत्रादि का आरोपमात्र है। सूर्य के किरण को अलङ्कार रूप से सूर्य के हस्त और चरण कहे गये हैं। इस हेतु सूर्य में भी घट सकता है। यज्ञ में सामग्री दग्ध हो कर सर्वत्र फैलता है। मानो, फैलना ही इस का एक प्रकार का गमन है। इस में गौण रूप से प्रयुक्त हुआ है। ऐसे २ प्रयोग संस्कृत में बहुत हैं। इस विष्णु के प्रयोग में एक यह भी विचित्रता है कि जहां २ मुख्यतया विष्णु शब्द का प्रयोग आया है वहां २ इस की व्यापकता का विशेषरूप से वर्णन है।

"अदिति और विष्णु"

पुराणों में कहा गया है कि अदिति के गर्भ से वामन विष्णु की उत्पत्ति हुई है। यह भी एक विचारणीय वस्तु है। इस का भी सूर्य ही कारण है। अदिति शब्द के ऊपर एक स्वतन्त्र निर्णय रहेगा। यहां संक्षेप से यह जानना चाहिये कि वेदों में 'सूर्य' को 'अदितिपुत्र' कहा है। इस कारण भी सूर्य को 'आदित्य' कहते हैं यास्काचार्य्य कहते हैं यथाः—

> आदित्यः कस्मात् आदत्ते रसान्। आदत्ते भासं ज्योतिषा मादीप्तो भासेति वा। अदितेः पुत्र इति वा। निरुक्त। २। १३॥

सूर्य को आदित्य क्यों कहते हैं? (आदत्ते+रसान्) रसों को खींच लेता है। अथवा (आदत्ते+भासम्+ज्योतिषाम्) सूर्योदय होने पर चन्द्र नक्षत्रादि ज्योतिष्मान् पदार्थ मलीन होजाते हैं मानो उन की कान्ति को सूर्य लेलेता है। अथवा (आदीप्तः+भासा) ज्योति से वह आवृत्त है। अथवा (अदितेः+पुत्रः) अदिति का वह पुत्र है। इत्यादि कारणों से सूर्य आदित्य कहाता है॥ यहां यास्कने सूर्य को "अदितिपुत्र" कहा है। पुनः—

> ते हि पुत्रासो अदितेःप्रजीवसे मर्त्याय ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम्। यजु० ३। ३५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अदितेः) अदिति के (ते हि+पुत्रासः) वे पुत्र अर्थात् आदित्य (मर्त्याय) मनुष्यों को (जीवसे) जीने के लिये (अजस्रम्+ज्योतिः) बहुत ज्योति सर्वदा (प्र+यच्छन्ति) देते हैं। यहां ज्योतिःपद से सूर्य का ही बोध होता है पुनः-

दूरे देशे देवजाताय केतवे ।
दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत । यजु० ४ । ३५ ॥

(दूरे देशे) जो दूर दीखता हो अथवा दूरस्थ होने पर भी जो दृष्टिगत हो (देवजाताय) देव जो:परमात्मा उस से जिस की उत्पत्ति हो (केतवे) और जो प्रकाशरूप हो। ऐसा जो (दिवस्पुत्राय) द्यौ (द्युलोक) का पुत्र (सूर्याय) सूर्य है उसके गुणों को हे मनुष्यो! (शंसत) प्रकाशित करो। यहां द्यौ का पुत्र सूर्य कहा गया है।

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व स्परि ।
देवां उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्ड मास्यत् । ऋ० १० । ७२ । ८ ॥

अर्थः-(अष्टौ+पुत्रासः) आठ पुत्र (ये) जो (अदितेः) अदिति के (तन्वस्परि) शरीर से (जाताः) उत्पन्न हुए इन में (सप्तभिः) सात पुत्रों के साथ वह अदिति (देवान् उपप्रैत्) देवों को प्राप्त होती है और अष्टम (मार्ताण्डम्) सूर्य को (परा+आस्यत्) ऊपर फेंक दिया। इस मंत्र में भी सूर्य अदिति पुत्र गिना गया।

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुपधापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः । यजु० ३३ । ५ ॥

महीधर के अनुसार अर्थः-(द्वे+चरतः) रात्रि और दिनरूपा स्त्रियें ये दोनों निरन्तर प्रवृत्त रहती हैं। वे दोनों कैसी हैं (विरूपे) भिन्नरूपवाली अर्थात् रात्रि काली और दिन शुक्ल। पुनः (स्वर्थे) जिन का अच्छा प्रयोजन है। (अन्या+अन्या) ये दोनों भिन्न २ होकर (वत्सम्) अपने२ बच्चे को (धापयेते) दूध पिलाती हैं अर्थात् एक रात्रि तो वत्स-अग्नि को दूध पिलाती है। क्योंकि रात्रि में अग्निदेवत्य अग्निहोत्र होता है और दूसरी दिवसरूपा नारी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वत्स—आदित्य को दूध पिलाती है। क्योंकि दिन में सूर्य+देवत्य अग्निहोत्र होता है। इसी को आगे विस्पष्ट करते हैं (अन्यस्याम्) रात्रि में (हरिः) हरितवर्ण अग्नि (स्वधावान्+भवति) अन्नवान् होता है (अन्यस्याम्) दिन में (शुक्रः) शुक्ल = श्वेत आदित्य (सुवर्चाः) शोभा तेजवाला (ददृशे) दृष्टगोचर होता है५

यह मन्त्र ऋग्वेद मण्डल १। सूक्त ९५। मन्त्र प्रथम में भी आया है यहां सायण ने महीधर से भिन्न अर्थ किया है। सायण कहते हैं 'रात्रेः पुत्रः सूर्यः' रात्रि का पुत्र सूर्य है। क्योंकि वह सूर्य गर्भ के समान रात्रि में अन्तर्हित होकर रात्रिके अन्तिम भाग से उत्पन्न होते हैं और 'अह्नः पुत्रोग्निः' दिन का पुत्र अग्नि है। क्योंकि वह अग्नि दिन में विद्यमान रहने पर भी प्रकाश रहित होने से अविद्यमान सा रहकर दिन से निष्फल प्रकाशमान आत्मा को प्राप्त होता है। इत्यादि। जो कुछ हो इस से सिद्ध होता है कि दिन का पुत्र सूर्य माना गया है। इस में सन्देह नहीं। मैंने यहां दोनों दिखलाये हैं कि द्यौ और 'अदिति' इन दोनों का पुत्र सूर्य है। इस से सिद्ध हुआ कि द्यौ और 'अदिति' एक ही वस्तु है॥ 'द्यौ' यह नाम द्युलोक का है अतः अदिति भी नाम यहां द्युलोक का ही है। वेद मन्त्र स्वयं कहता है 'अदिति र्द्यौ रदितिरन्तरिक्षम्' अदिति नाम द्यौ का है। जहां सूर्य अपनी कक्षा पर भ्रमण कररहा है उस देश का नाम द्युलोक है। प्रायः आप लोग कहेंगे कि द्यौ का पुत्र सूर्य है इस का अर्थ क्या हुआ ?। यहां मनुष्य पुत्र के समान अर्थ नहीं है द्युलोक का सूर्य भूषण है इस हेतु दिवस्पुत्र है। अथवा द्युलोकस्थ जो अन्य ग्रह हैं अपनी धारणशक्ति से उनकी रक्षा करता है इस हेतु द्युलोक का रक्षक वा पोषक होने से वह 'दिवस्पुत्र' है। महीधर भी यही अर्थ करता यथाः—दिवः पुरुत्रायते स इति दिवस्पुत्रः। दिवःपालकायेति वा' जो द्युलोक की बहुत रक्षा करे। अथवा जो द्युलोक का पालक है उसे दिवस्पुत्र कहते हैं यहां अदिति शब्द दिन का उपलक्षक है अर्थात् अदिति शब्द से दिन का ग्रहण है क्योंकि दिन का पोषक सूर्य है। जैसे द्यौ का पुत्र हो कर द्युलोक धारण करता है। तद्वत् दिन का पुत्र हो कर सूर्य सब पदार्थ की रक्षा करता है। इस हेतु अदिति शब्द से दिन का ग्रहण है। अज्ञानी लोग जैसा "अदिति" को देवमाता मानते हैं। उसका वेद में वर्णन नहीं है। पुराणों में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहा गया है कि मनुष्यवत् इन्द्र की भी माता अदिति है इसी हेतु वामन इन्द्र के छोटे भाई माने गये हैं परन्तु वेद में देखो:-

अग्नये गायत्राय त्रिवृते राथन्तराय.....

अदित्यै विष्णुपत्न्यै चरुरग्नये वैश्वानराय

द्वादश कपालोऽनुमत्या अष्टाकपालः । यजुः २९ । ६० ॥

यजुर्वेद के इस मन्त्र में अदिति को 'विष्णुपत्नी' कहा है । पुनः पुराण के अनुसार 'अदिति' विष्णु वामन की माता कैसे हुई ? ॥ वेद के अनुसार तो ऐसे २ स्थानों में पत्नी शब्दार्थ केवल पालयित्री शक्ति होता है देखिये महीधर

"होता यक्षत्तिस्रो देवी र्न भेषजं त्रयस्त्रिधातवोऽपसइडा सरस्वतीभारतीमहीः ।

इन्द्रपत्नी हविष्मतीर्व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज" । यजुः ॥ २८ । ८ ॥

इस मन्त्र में "इन्द्रपत्नीः इन्द्रस्य पत्न्यः पालयित्र्यः" इन्द्रपत्नी का अर्थ इन्द्र की पालयित्री शक्ति करते हैं । इसहेतु विष्णु जो सूर्य इस की जो पालनकरने की शक्ति है । उसे वेद में "विष्णुपत्नी" कहते हैं । दिनादि शक्ति सब ही सूर्य की है अतः दिनादि भी विष्णुपत्नी हुई । अतः जो अज्ञानी लोग हैं वे अदिति को एक नारी समझते हैं परन्तु ज्ञानी नहीं ।

अब आख्यायिका के ऊपर ध्यान दीजिये । जितने पदार्थ हैं वे सूर्य के उदय से ही भासित होते हैं और तब ही उन के गुण भी प्रकाशित होते हैं दिन में ही सकल शोभा है । अतः मानो, सब पदार्थ क्या जड़ क्या चेतन क्या स्थावर क्या जंगम दिनरूपा अदिति के पुत्र हैं । अदिति देवी इस जाज्वल्य वर्धिष्णु परम मनोहर अपने सन्तानों की सम्पत्ति देख अति प्रसन्न होती है । परन्तु जब सूर्य इस को त्याग विदा होता है । तब अदिति माता के सन्तानों की शोभा जाती रहती है । यही मानो, देवों का अधिकार छिन जाना है । तब अन्धकार चारों तरफ फैल जाता है । यही असुरों का अधिकार पाना है । अन्धकार रूप महाअसुर जगत में नाना उपद्रव करने लगते हैं । व्यभिचार, चोरी, डकैती, मद्यपान आदि महापातक इसी अन्धकाररूप असुरराज्य में प्रवृत्त होता है इसी हेतु रात्रि का नाम ही 'दोषा' वा 'तामसी' है । अदिति देवी इस घटना से बड़ी दुःखिता होती है । इस भयङ्कर दुःख को मिटाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती है यह दुःख तब ही नि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दृष्ट हो सकता है जब पुनः सूर्य भगवान् आवें। मानो, अदिति पर प्रसन्न हो कर पुनः प्रातःकाल विष्णु (सूर्य) वामन रूप (लघुरूप) धारण कर असुरों के विजय के लिये प्रस्थान करते हैं। सूर्य का प्रातःकाल में उदय होना ही अदिति के गर्भ से विष्णु का जन्म लेना है। इस समय सूर्य लघु प्रतीत होते हैं। इस हेतु ये वामन हैं। अब थोड़ी ही देर में सूर्य बढ़ने लगते हैं ज्यों ज्यों सूर्य बढ़ते जाते हैं त्यों त्यों महाअन्धकार निवृत्त होता जाता है। यही असुरों का परास्त होना है। अब यहां से असुर कहां भाग जाते हैं ? तो कहा गया है कि पाताल को चले जाते हैं। पाताल का अर्थ नीचा है। सूर्य ज्यों ज्यों ऊपर आता हैं त्यों त्यों अन्धकार नीचे को भागता चला जाता है। यही असुराधिपति बलि का पाताल गमन है। कैसा प्रात्यहिक दृश्य का मनोहर वर्णन है। इस को लोगों ने क्या उलटा समझ रक्खा है।

'बलि'

आप लोगों ने वेदों में देखा कि विष्णु के साथ 'बलि' की कोई वार्ता नहीं आई है। हम को प्रतीत होता है कि 'बलिशान' नाम मेघ का है। इस में से 'शान' पद त्याग 'बलि' शब्द रख लिया है। मेघ होने पर अन्धकार छा जाता है। इस हेतु बलि शब्द अन्धकार का उपलक्षक है। और 'बलि' को 'वैरोचन' कहा है जिस में रोचन अर्थात् दीप्ति, कान्ति, तेज नहीं वह 'वैरोचन' अर्थात् मेघादि। उस का पुत्र अर्थात् अन्धकार। इस प्रकार भी 'बलि' शब्द से अन्धकार का बोध होता है। अथवा मेघ का एक नाम 'बल' भी है। 'बलस्यापत्यं बलिः" बल का अपत्य 'बलि' यह आर्ष प्रयोग हो। यद्वा। 'बल सम्वरणे इति भ्वादिः बलयति सम्वृणोति सम्यङ् नेत्रमाच्छादयतियःस बलिरन्धकारः'॥ भ्वादिगण में सम्वरणार्थक 'बल' धातु है। जो नेत्र को अच्छे प्रकार आच्छादन कर लेवे उसे 'बलि' कहते हैं। अन्धकार नेत्र का आवरण कर लेता है अतः अन्धकार का नाम 'बलि' है॥ यहां जैसे सूर्य को अलङ्कार रूप से अदिति पुत्र कहा है वैसे ही सूर्य स्थानीय विष्णु को भी अदिति पुत्र ही माना है। जैसे उदय काल में सूर्य छोटे भासित होते हैं। ऐसे विष्णु वामन माने गये हैं॥ इस प्रकार वैदिक शब्दों को मिलाया है। हम अब विश्वास करते हैं कि आप लोग अच्छे प्रकार समझ गये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होंगे क्योंकि आप स्वयं पण्डित हैं। किस प्रकार एक एक शब्द ले ले कर आख्यायिका की उत्पत्ति होती गई है।

भारतवर्षीय ब्राह्मणो! क्या आप सत्य समझते हैं कि हमारा ईश्वर वामन रूप धर असुर छल इन्द्र को राज्य देता है। हम समझते हैं कि आप लोग यदि इस को सत्य घटना मानते हैं तो महा शोक है। परन्तु आप भी इस को असत्य ही मानते समझते होंगे॥ यह प्रातः कालिक सूर्य का वर्णन मात्र है। भारत सन्तानो! इस को सत्य मान कर आप कौन सा फल समझते हैं। इस आख्यायिका से आध्यात्मिक लाभ क्या है? कहां आध्यात्मिक उपासना कहां छल। कहां सत्यपरायणता कहां कपटता॥ कहां सत्यता के लिये हरिश्चन्द्रादिक महाराजों का राज्य परित्याग। कहां राज्य के लिये भी भगवान् को भी कपट रूप धारण करना। आहा! निःसन्देह आप लोगों का कोई दोष नहीं यह सब पुराण लेखकों का अपराध है॥ इन्हों ने भगवान् के ऊपर भी महाकलङ्क स्थापित किया। परमात्मा को इस सब से क्या प्रयोजन। उन के लिये सब ही बराबर है। इन का नियम ही सब को दण्ड दे रहा है। न वह स्वयं कहीं जाता है न आता है। वह सब के हृदय मध्य में व्याप्त हो कर सब कुछ देख रहा है। वह प्रभु आनन्दमय ज्ञानमय सच्चिदानन्द सर्वकाम सर्वानन्द सर्वसुख सर्वरस सर्वरूप है। कौन उस का शत्रु। कौन उस का मित्र है। विप्रवर्यो! अब भी आप लोग इस सर्वान्तर्यामी सर्वानन्दमय शुद्ध अकाय अव्रण अजर अमर अजन्मा ध्रुव कूटस्थ एक अद्वितीय ब्रह्म को भजें। अपने हृदय में इस को देखें। वह आनन्दमय देव कहां नहीं है। उस से परमाणु भी खाली नहीं। इस की परम कृपा है कि आप नीरोग हो कर इसकी परितःस्थित विभूति को देखते हैं। परंतु विभो! जैसे देखते हैं वैसे समझने के लिये भी प्रयत्न करें। शुद्ध ब्रह्म की सन्निधि से स्वयं शुद्ध होवें और अन्यान्य को शुद्ध बनावें। हे प्रियगण! ज्ञान ही परम शुद्धता का बीज है। ज्ञान ही वेद शास्त्र प्रशंसित है। यही भूषण है। यही धन है। ज्ञान की ओर चलें। एकान्तसेवी हो उस की चिन्ता करें। ज्ञान ग्रहण का पूर्ण अभ्यास करें और ज्ञानियों के संग से लाभ उठावें। हम लोग

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निष्कारण महापाप करते हैं जब शुद्ध अक्रिय अशस्त्र ब्रह्म पर किसी प्रकार का दोषारोप करते हैं। अज्ञानी जनों ने तात्पर्य न समझ मिथ्या मिथ्या कथा बना देश में अविद्यारूप नदिऐं प्रवाहित की हैं उसी ब्रह्म से इस के लिये क्षमा मांगे। आगे हम सब शुद्ध होवें। और भविष्यत् में हमारे सन्तान प्रत्येक अशुद्ध और पापजनक भावना से रहित हो जगत् में मंगल-विधायक होवें।

विष्णो रराटमसि। विष्णोः श्नप्त्रेस्थः। विष्णोः स्यूरसि।
विष्णोर्ध्रुवोसि। वैष्णवमसि। विष्णवे त्वा॥

यजुः॥ ५। २१॥

सर्वव्यापिन् परमात्मन्! आप ही (विष्णोः) बहुत प्रदेश व्यापी सूर्य का अथवा इस व्यापी जगत् का (रराटम्+असि) ललाट हैं। अर्थात् सब के ऊपर आप ही विद्यमान हैं। आप ही (विष्णोः) सूर्य का (श्नप्त्रे+स्थः) ओष्ठ स्थानीय हैं जब चाहें तब आप इस सूर्य को बद्ध वा प्रकाशित कर सकते हैं। (विष्णोः+स्यूः+असि) सूर्य का बन्धन भी आप ही हैं। (विष्णोः+ध्रुवः+असि) सूर्य को स्थिर रखने वाले आप ही हैं। (वैष्णवम्+असि) सूर्य सम्बन्धी तेज का भी कारण आप ही हैं। हे भगवन् (विष्णवे) सर्वव्यापी सर्वान्तर्यामी आप के लिये ही मेरा सब कार्य्य होवे आप की प्रीति के लिये ही मैं सम्पूर्ण प्रयत्न करूं। (त्वा) आप को ही भजूं। ऐसी सुमति मुझे आप देवें। आप को त्याग अन्य किसी को न पूजूं न भजूं आप को ही परमात्मा समझूं।

अग्नेस्तनूरसिविष्णवे त्वा। सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वा। अतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा। श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वा। अग्नये त्वा। रायस्पोषदे विष्णवे त्वा। यजु० ५। १।

अर्थः-हे मेरे जीवात्मन्! आप (अग्नेः) अग्नि का (तनूः+असि) शरीर हो अर्थात् आग्नेय शक्ति से युक्त हो अग्निवत् प्रकाशक जाज्वल्यमान शुद्ध पवित्र हो इस हेतु (त्वा) आप को (विष्णवे) अन्तर्यामी व्यापक के निकट समर्पित करता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हूं। (सोमस्य+तनूः असि) सुन्दरपदार्थों का आप शरीर हैं इस हेतु हे जीव ! (विष्णवे+त्वा) परमात्मा के निमित्त आप को समर्पित करता हूं (अतिथेः आतिथ्यम्+असि) आप अतिथि का सत्कार स्वरूप हैं इस हेतु (विष्णवे+त्वा) ईश्वर के निमित्त आप को समर्पित करता हूं। हे मेरे प्रिय जीव ! (श्येनाय+सोमभृते) विविध पदार्थ के भरण पोषण करने वाला वायुवत् वेगवान् सर्वत्र विद्यमान और सब के प्राण स्वरूप ब्रह्म के लिये आप को नियुक्त करता हूं (विष्णवे+त्वा) ब्रह्म के ही लिये आप को कार्य में प्रेरित करता हूं (अग्नये+त्वा) अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म्म के लिये आप को नियुक्त करता हूं (रायस्पोषदे+विष्णवे+त्वा) राय=ऐहलौकिकसुख पारलौकिक-निःश्रेयस सुख की पुष्टि करने वाले विष्णु के लिये ही आप को कर्म्म में नियुक्त करता हूं। हे मेरे प्रिय जीव ! आप जो कुछ शुभ कार्यानुष्ठान का सम्पादन करें। वह ईश्वर के निमित्त ही करें। मैं सदा चाहता हूं कि आप की दृष्टि में सदा अन्तर्यामी परमात्मा विद्यमान रहें आप उसी के आधार पर सन्तरण करें। वही आप के पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण ऊपर नीचे सर्वत्र विद्यमान रहें। इसे त्याग किसी कार्य्य में प्रवृत्त न होवें। उसी की शरण में सदा रहें।

दिवो वाविष्ण उत वा पृथिव्या महो वा विष्ण उरोरन्तरिक्षात्।
उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्। विष्णवे। त्वा॥ १९॥

अर्थः-(विष्णो) हे सर्वव्यापी ब्रह्म ! आप (दिवः+वा) द्युलोक से (उत+वा) अथवा (पृथिव्याः) पृथिवी से (वा) अथवा हे (विष्णो) विष्णो ! (महः+उरोः) महा विस्तीर्ण (अन्तरिक्षात्) द्युलोक से कहीं से ला कर (वसुना) वसु से आप प्रथम अपने (उभा+हि+हस्ता) दोनों हाथों को (पृणस्व) भरें तत्पश्चात् (दक्षिणात्) दक्षिण हस्त से (उत) अथवा (सव्यात्) वाम हस्त से (आ+प्रयच्छ) मुझ को वसु दीजिये। हे जीवात्मन् !(त्वा) आप को (विष्णवे) विष्णु की प्रीति के कारण नियुक्त करता हूं। यहां परम प्रीति दिखलाई गई है। जैसे छोटा बच्चा अपने पिता से प्रार्थना करता है कि मुझे अमुक पदार्थ अवश्य दीजिये। तद्वत्। यहां कोई भक्त ईश्वर से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रार्थना करता है कि मुझ को 'वसु' दीजिये। वसु नाम ज्ञान सम्पत्ति का है इसी से उभय लोक में वास होता है। वह ईश्वर त्रिलोक व्यापी है इसी हेतु जहां से वह चाहै वहां से हमें ज्ञान दे सकता है। सामर्थ्य ही उस का हस्त है इसी परमात्म देव की स्तुति प्रार्थना करते हुए हम जीव ऐहिक कार्य का तन मन से अनुष्ठान करें। इति ॥

"जलन्धर और विष्णु"

यद्यपि भागवत प्रभृति सुप्रसिद्ध पुराणों में वृन्दा और जलन्धर की आख्यायिका नहीं है तथापि कार्तिक माहात्म्य में इस की कथा पाई जाती है ॥ आज कल नारीगण इस को बहुधा सुना करते हैं। यह कार्तिक माहात्म्य पद्मपुराण का एक भाग समझा जाता है। इस का प्रसंग इस प्रकार है। विष्णु भगवान् को क्यों कर तुलसी प्रिया है? इस प्रश्न पर कथा चली है कि एक समय इन्द्र और रुद्र में महा द्वन्द्व युद्ध होने लगा। रुद्र ने इन्द्र को मार गिराया बृहस्पति यह सुन कर महादेव के निकट आ उन्हें प्रसन्न कर बोले कि हे रुद्र! इन्द्र को जीवन दान दीजिये और भालनेत्र-समुद्भव यह कालाग्नि शान्त होवे। रुद्र ने कहा एवमस्तु। यह अग्नि पुनरपि भाल में तो प्रविष्ट नहीं होगा परन्तु मैं इस को वहां पर त्याग करूं जहां इन्द्र को यह पीड़ित नहीं करेगा। उस अग्नि को समुद्र में फेंका। वहां वह तत्काल ही बालक हो गया। समुद्र ने ब्रह्मा से इस का नामकरण संस्कार करवाया। इस का नाम जगत् में जलन्धर विख्यात हुआ। वृन्दा से विवाह कर देवों के सब अधिकार को इस ने छीन लिया। देवगण लड़ते रहे परन्तु अन्त में हार मान इधर उधर भाग गये। रुद्र और जलन्धर में तुमुल संग्राम होता रहा। जलन्धर को संग्राम भूमि में न गिरते हुए देख विष्णु भगवान् ने यह विचारा कि जब तक इस की पतिव्रता वृन्दा स्त्री का पातिव्रत धर्म्म भग्न नहीं होगा तब तक यह नहीं मरेगा ॥ "नान्यथा स भवेद्वध्यः पाति तस्मुरक्षितः" ॥

विष्णुर्जलन्धरं दृष्ट्वा तद्दैत्यपुरभेदनम् ।
पातिव्रतस्यभंगायवृन्दायाश्चाकरोन्मतिम् ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृन्दा के पातिव्रत के भंग के लिये विष्णु जी प्रयत्न करने लगे। और अन्त में वैसा ही किया। किसी उपाय से वृन्दा को विश्वासित कर स्वयं जलन्धर का रूप धर इस के पातिव्रत का भंग किया इस के पातिव्रत के भंग होने से जलन्धर संग्राम में रुद्र से मारा गया। यही संक्षेप कथा है। इस कथा में कई एक बात बड़ी ही विचित्र है। जिस समय वृन्दा को यह प्रतीत हुआ है कि इस विष्णु ने मेरे साथ बड़ा कपट किया उस समय वृन्दा ने यों कहा है।

वृन्दोवाच।

धिक्त्वदीयं हरे शीलं परदाराभिगामिनः। ज्ञातोसित्वं मयासम्यङ् मायी प्रत्यक्षतापसः। यौ त्वया मायिनौ द्वाःथौ स्वकीयौ दर्शितौ मम। तावेव राक्षसौभूत्वा भार्यां तव हरिष्यतः। त्वं चापि भार्यादुःखार्तोवने कपिसहायवान्। भव सर्वेश्वरेणायं यस्तोशिष्यत्वमागतः। इत्युक्त्वा सातदावृन्दाप्राविशद्धव्यवाहनम्॥ विष्णुना वार्य्यमाणापि तस्यामासक्तमानसः। ततोहरिस्तामनुसंस्मरन्मुहुर्वृन्दान्वितोभस्मरजोवगुण्ठितः। तत्रैव तस्थौ सुरसिद्धसंघैः प्रबोध्यमानोपि ययौ न शान्तिम्।

अध्याय १६।

तुझ परदाराभिगामी को धिक्कार हो! तुझ को मैंने पहिचाना। तू वही मायी तापस है। तूने प्रथम मुझ को दो दूत दिखलाये। वे ही दोनों राक्षस हो कर तेरी भार्या को हरेंगे। और तू भार्या के दुःख से दुःखित हो वानरों की सहायता चाहेगा। ऐसी दशा तेरी भी होगी। इतना कह वह वृन्दा अग्नि में प्रवेश कर भस्म हो गई। विष्णु ने इस को बारम्बार इस काम के करने से रोका। परन्तु वह एक न सुन कर भस्म ही हो गई। विष्णु उसी को स्मरण करते हुए और उस की चिता से भस्म लगा उस के वियोग से उन्मत्त हो गये देव सिद्धगण कितनी ही प्रार्थना करते हैं। विष्णु जी एक भी नहीं सुनते। यह वृन्दा के वियोग से अशान्त ही पड़े हुए हैं। इधर जलन्धर का बध हुआ। देव लोग प्रसन्न हुए। महेश्वर से निवेदन करने लगे कि आपने देवों का बड़ा उपकार किया परन्तु :—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किञ्चिदन्यत्समुद्भूतं तत्र किंकरवामहे ।
वृन्दालावण्यसंभ्रान्तो विष्णु स्तिष्ठतिमोहितः ॥

एक महा अनर्थ उपस्थित हुआ है हम लोग क्या करें । विष्णु जी वृन्दा के लावण्य से संभ्रान्त और मोहित हो जगत् को ध्वंस कर रहे हैं । इस का क्या उपाय है । महेश्वर ने मूलप्रकृति की सेवा में देवों को जाने को कहा । देवगण से प्रार्थित मूलप्रकृति बोली कि मैं ही लक्ष्मी सरस्वती और पार्वती तीन रूपों से स्थिता हूं इन ही तीनों के निकट आप लोग जांय अवश्य कल्याण होगा । देवगण इन तीनों देवियों के निकट पहुंचे इन तीनों ने तीन बीज दे कर कहा है कि :–

देवता ऊचुः । इमानि तत्र बीजानि विष्णुर्यत्रावतिष्ठते ।
निवपध्वं ततः कार्य्यं भवतां सिद्धि मेष्यति ॥

जहां विष्णु स्थित हैं वहां इन बीजों को बो दीजिये । इसी से आप लोगों का कार्य सिद्ध होगा । देवों ने वैसा ही किया । उन तीनों बीजों से धात्री, मालती और तुलसी तीन वनस्पतिएं हुईं ।

धात्युद्भवा स्मृता धात्री माभवा मालती स्मृता । गौरीभवा च तुलसी तमः सत्त्वरजोगुणः । स्त्रीरूपिण्यो वनस्पत्यो दृष्ट्वा विष्णुस्तदा नृप। उत्तस्थौ संभ्रमाद् वृन्दारूपातिशयविभ्रमः । दृष्ट्वा च तेन रागात् कामासक्तेन चेतसा । तं चापि तुलसी धात्री रागेणैव व्यलोकयत् । यच्च लक्ष्म्या पुराबीज मीर्ष्ययैव समर्पितम् । तस्मात्तदुद्भवा नारी तस्मिन्नीर्ष्यापरा भवत् । ततःसा वर्वरीत्याख्यामवापाथ विगर्हिता । धात्री तुलस्यौ तद्रागात् तस्य प्रीति पदे सदा । ततो विस्मृत दुःखोसौ विष्णुस्ताभ्यां सहैव तु । वैकुण्ठमगमद्धृष्टः सर्व दंवनमस्कृतः ।

अध्याय १८ ।

जिस हेतु धात्री (सरस्वती) से उत्पन्न हुई इस हेतु वह धात्री (आंवला का वृक्ष) हुई । मा (लक्ष्मी) से उत्पत्ति होने के कारण मालती और गौरी से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो बनस्पति हुई वह तुलसी हुई। स्त्रीरूपा वनस्पतियों को देख महाविष्णु जो वृन्दा के परम सुन्दर रूप से मोहित हो उन्मत्त थे अब शान्त हो उठे। और राग से उन को देखने लगे। तुलसी और धात्री भी बड़ी प्रीति से देखने लगीं। लक्ष्मी जी ने पहले ही बीज ईर्ष्या से दिया था इस हेतु उस से जो नारी उत्पन्न हुई उस ने ईर्ष्या से ही विष्णु को देखा। इसी हेतु वह निन्दनीय बर्बरी कहलाती है। धात्री और तुलसी दोनों विष्णु की परम प्रीति के भाजन हुई। इन दोनों के साथ सब दुःख भूल वैकुण्ठ को विष्णु चले गये।

विचार से प्रतीत होता है कि इसका लेखक कोई शिवद्रोही महा अज्ञानी था। प्रथम तो इस ने असुर जलन्धर की स्त्री वृन्दा को पूर्ण रीति से पतिव्रता सिद्ध किया और विष्णु को परदाराभिगामी। और सरस्वती और पार्वती जी के ऊपर महा असह्य अचिन्त्य अवाच्य कलङ्क लगाया। क्योंकि सरस्वती और पार्वती प्रदत्त बीजों से उत्पन्न नारिएं विष्णु की प्रियतमा बनीं। इस में भी पार्वती बीज संभव तुलसी तो साक्षात् प्रिया बनी। लक्ष्मी-बीजोद्भवा नारी निरादृता हुई। किसी वैष्णवाभिमानी ने इस से समझा होगा कि इस उपाय से शैव लोग भी तुलसी को पार्वती जी का अंश मान विष्णु के भक्त बन जायंगे परन्तु इस अज्ञानी को यह नहीं सूझा कि श्रीपार्वती जी के ऊपर कैसा अपरिमार्जनीय कलङ्क लगता है। ऐसी ऐसी कथाएं स्थापित करती हैं कि यह देश अत्यन्त भ्रष्ट हो गया है। इस में आचरण का सर्वथा लोप हो गया है जिस के परम पूज्य देव परस्त्री पर मोहित हों और ऐसे कामी हों कि अन्यरूप बना कर परस्त्री को सदा अपने ऊपर धारण किये हुए रहें। क्षण मात्र भी इस से वियुक्त न हो सकें।

हे भारतविद्वानो! सोचो इस कथा से आप स्त्रियों को क्या शिक्षा देते हैं। क्या वृन्दा के समान पतिव्रता होने की शिक्षा देते हैं! परन्तु यह भी स्मरण राखिये कि विष्णु का अनुकरण पुरुष करेगा। तब पुनः स्त्रियों का पातिव्रत कहां रहा जो साक्षात् अपने को विष्णु कहेगा वह कितना पाप करेगा। सरस्वती और पार्वती के बीज से क्या शिक्षा स्त्रियों को मिलेगी आह! कैसा कैसा घोर पाप इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भारत में ऐसी कथाएं प्रचलित कर रहीं हैं। हे बुधवरो! अज्ञानी लोगों ने विष्णु को परम कलङ्कित किया है। इस कथा का भी मूल कारण सूर्य्य देव ही है। परन्तु आगे चल कर महा भयङ्कर रूप को यह धारण कर लेती है। धीरे धीरे इस का भाव बदल गया।

'जलन्धर' नाम मेघ का है जो जल धरे उसे 'जलन्धर' कहते हैं। 'जलन्धर तीति जलन्धरः'। जब समुद्र में बड़ी गरमी पैदा होती है तब प्रधानतया मेघ बनता है। रुद्र नाम विद्युत् का है वह विद्युत् शक्ति अर्थात् आग्नेयशक्ति जब अधिक समुद्र में गरमी पैदा करती है तब उस से जलन्धर मेघ का जन्म होता है। यही समुद्र में रुद्र का अग्नि फेंकना है। और जलन्धर का जन्म लेना है। जलन्धर जब बहुत बढ़ जाता है। परन्तु अपने में से पानी नहीं छोड़ता अर्थात् नहीं बरसता है तब देवगण बहुत घबराते हैं। रुद्र जो विद्युत् वह मेघ से युद्ध करना आरम्भ करता है। परन्तु केवल विद्युत् से वह नहीं मरता। मेघ के जो अनेक झुण्ड देख पड़ते हैं उस को संस्कृत में बृन्द (समूह) कहते हैं। इसी को स्त्रीलिङ्ग कर 'वृन्दा' बना लिया है। यहीसब मानों घटा जलन्धर मेघ की स्त्री है। इस वृन्दा के ऊपर जब सूर्य्य किरण पड़ता है तब गल कर पृथिवी पर गिरने लगती है। यही वृन्दाका विष्णुकृत पातिव्रत भंग है। वृन्दा के नाश होते ही जलन्धर नष्ट हो जाता है। यही इस का भाव है। परन्तु इस को न समझ कर कैसी अघटित घटना को गढ़ पौराणिकों ने जगत् में महापाप फलाया है। ईश्वर इस से भारत की रक्षा करे।

"शालिग्राम और विष्णु"

नारदउवाच। नारायणश्च भगवान्वीर्याधानंचकारह। तुलस्यां केन रूपेण तन्मे व्याख्यातु मर्हासि ॥ १ ॥ श्रीनारायणउवाच ॥ नारायणश्च भगवान् देवानां साधनेषु च। शंखचूडस्य कवचं गृहीत्वा विष्णुमायया ॥ २ ॥ पुनर्विधाय तद्रूपं जगाम तत्सतीगृहम्। पातिव्रतस्य नाशेन शंखचूडजिघांसया ॥ ३ ॥ दुन्दभिं वादयामास तुलसीद्वार-सन्निधौ। देवी भागवत नवमस्कन्ध ॥ २४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वृन्दा के उपाख्यान के सदृश ही तुलसी का उपाख्यान है। इसी तुलसी के शाप से विष्णु भगवान् प्रस्तरत्व को प्राप्त हुए हैं। जिस प्रस्तर को आज कल शालग्राम कहते हैं। शङ्खचूड नाम का एक असुर था। उस की स्त्री का नाम तुलसी था। यह परम पतिव्रता थी। और ये दोनों दम्पती विष्णु भक्ति-परायण थे। इस के पातिव्रत के प्रताप से संग्राम में शंखचूड़ परास्त नहीं होता था। इस हेतु विष्णु जी प्रथम दान में माया से शंखचूड़ का कवच मांग लाये पश्चात् शंखचूड़ के समान ही रूप धर के तुलसी के पातिव्रत धर्म्म के नाश से शंखचूड़ की घात की इच्छा से तुलसी के द्वार पर दुन्दुभि बजाते हुए भगवान् पहुंचे।

रेमे रमापतिस्तत्र रामया सह नारद । सा साध्वी सुखसंभोगाद्धैर्यकर्षण्यति क्रमात्। सर्वं वितर्कयामास कस्त्वमेवेत्युवाचसा । तुलस्युवाच । को वा त्वं वद मायेश भुक्ताऽहं मायया त्वया। दूरीकृतं मत्सतीत्वं यदतस्त्वां शपामि हे। तुलसीवचनं श्रुत्वा हरिःशापभयेनच । दधारलीलयाब्रह्मन् सुमूर्तिं च मनोहराम्। ददर्श पुरतोदेवी देवदेवं सनातनम । .....पाषाण हृदयस्त्वंहि दयाहीनो यतः प्रभो। तस्मात् पाषाणरूपस्त्वं भुवि देवभवाधुना। ये वदन्ति साधुं त्वां ते भ्रान्ता हि न संशयः। भक्तोविनापराधेन परार्थे च कथं हतः। भृशंरुरोदशोकार्ता विललाप मुहुर्मुहः ॥

अनेक प्रकार के छल बल कर तुलसी को "यह निश्चय मेरे ही स्वामी हैं" ऐसा विश्वास करवा उस के सतीत्व का विध्वंस किया। परन्तु अन्त में तुलसी को सब वार्त्ता ज्ञात हो गई। बहुत शोकार्ता हो वह बोली। तू बड़ा ही कठोर और छली है। तेरा हृदय पाषाण के समान है। इस हेतु तू आज से पृथिवी पर पाषाण रूप हो जा। निःसन्देह, जो तुझ को साधु कहते हैं वे भ्रान्त हैं। तूने अपने भक्त को किस अपराध से दूसरे के लिये हत किया है। इतना कह वह अत्यन्त विलाप करने लगी। विष्णु ने भी इसे शोकार्ता देख बोल भरोसा दे बोले कि:—

इयं तनुर्नदीरूपा गण्डकीति विश्रुता। तव केशसमूहश्च पुण्यवृक्षो भविष्यति। तुलसी केशसंभूता तुलसी च विश्रुता। त्रिषु लोकेषु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने । प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने । स्वर्गे मर्त्यंच पाताले गोलोके मत्सन्निधौ । भव त्वं तुलसी वृक्षवरा पुष्पेषु सुन्दरी । अहंच शैलरूपेण गण्डकीतीरसन्निधौ । अधिष्ठानंकरिष्यामि भारते तव शापतः । कोटिसंख्यास्तत्र कीटास्तीक्ष्णदंष्ट्रा वरायुधैः । तच्छिलाकुहरेचक्रं करिष्यन्तिमदीयकम् ।

तुम्हारी यह तनु (शरीर) जगत में गण्डकी नदी प्रसिद्ध होगी । और तुम्हारे ये केश समूह पवित्र वृक्ष होंगे । तुलसी के केश से होने के कारण यह तुलसी कहलाती है । तीनों लोकों में स्वर्ग मर्त्य पाताल सर्वत्र इस से श्रेष्ठ पत्र पुष्प नहीं होंगे । हे तुलसी ! तुम सर्वत्र मेरे समीप बास करो । तुम्हारे बिना मेरी पूजा वृथा है तुम्हारे सेवन से गति मुक्ति सब ही होगी और मैं तुम्हारे शाप से गण्डकी के तीर पर प्रस्तर हो कर निवास करूंगा । वहां तीक्ष्णदन्त के कीट सहस्रों उस शिला के क्षिद्र में मेरा चक्र बनावेंगे । वे अनेक प्रकार के होवेंगे "शालिग्रामं च तुलसीं शंखं चैकत्रमेवच । योरक्षीति महाज्ञानी सभवेच्छ्री हरेः प्रियः" शालग्राम, तुलसी, शंख, और चक्र, ये चारों जो रक्खेंगे वे महा ज्ञानी लक्ष्मी और मेरे प्रिय होवेंगे । इत्यादि कथा देवी भागवत में विस्तार पूर्वक उक्त है । ये सब कथाएं बहुत आधुनिक हैं । शालग्राम की चर्चा कहीं पर भी प्राचीन ग्रन्थों में नहीं है । यहां एक और विलक्षणता देखते हैं कि तुलसी वृक्ष तुलसी से हुई है । कार्तिक माहात्म्य में पार्वती के बीज से इस की उत्पत्ति मानी है ।

'शालग्राम की उत्पत्ति और पूजा का कारण'

जिस शालग्राम की पूजा होती है । वह यथार्थ में पाषाण नहीं है । भूल से इस को लोग पाषाण समझते आए हैं । योरोप आदि देशों में भी इस को लोग पाषाण ही समझते थे । परन्तु अब परीक्षा से सिद्ध हुआ है कि यह एक प्रकार का shell घोंघा है । ये बहुत प्रकार के होते हैं कोई बहुत ही छोटे होते हैं और कोई गाड़ी के पहिया चाक (चक्र) के बराबर होते हैं इस को अङ्गरेज़ी में Ammonite ऐमोनाइटस कहते हैं । यह सांटिफिक नाम है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये अन्यदेश में पाये जाते हैं। गण्डकी नदी में बहुत मृत और जीवित भी पाये जाते हैं। एक विद्वान् लिखते हैं।

Ammonites. This shell fish was found through the Mesozoic Age in many forms. Several hundred species are known. They varied in size some being very minute, others as large as a cart wheel. They were called ammonites, from a fancied resemblance to the horns on the sculptured heads jupiter Ammon. In former days in Europe they were mistaken for snakes turned into stone. Among. Hindus they are known as Salagramas .

दूसरे विद्वान् लिखते हैं।

Ammonites attracted the attention of the curious long before geology was seriously studied, ard legends were invented to explain them.

Then Whitby's nuns exulting told
How of thousand snakes each one
Was turned into a coil of stone
When holy Hilda prayed.

Scott's Marmion. ii. 13.

यह बहुत सुन्दर और ठीक चक्र के समान होता है। मुझे प्रतीत होता है कि इस की सुन्दरता देख इस की पूजा अज्ञानी लोग करने लगे होंगे। पीछे धीरे २ सर्वत्र पूजा चल पड़ी होगी। अथवा विष्णु-रचयिता ने सूर्य को अच्छे प्रकार मनुष्य के स्वरूप में ढाल विष्णु नाम दे जगत में पूजा चलाई। उस समय यह भी एक आवश्यकता आई कि मूर्ति दो प्रकार की होनी चाहिये। एक चल और दूसरा अचल। अचल तो मनुष्यरूप विष्णु हुए। चल के लिये इसी शालग्राम को रक्खा। क्योंकि जैसा सूर्य का तेज चक्राकार भासित होता है। वैसा ही यह भी कोई २ होता है। इस के ऊपर सुन्दर सुन्दर रेखाएं होती हैं और चक्राकार होता है। और चक्र के स्वरूप भी इस के ऊपर अङ्कित रहता है। इस हेतु इस को सूर्य भगवान् का अवतार मान इस की पूजा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चलाई हो। अथवा इस शालग्राम के अभ्यन्तर एक सूक्ष्म कीट बहुत ही सुन्दर और सुवर्णाकार होता है। जैसा घोंघा वा शंख में केवल मांस के लोथ समान जीव होता है वैसा ही जीव इस में नहीं होता है इस में कुछ इस से विलक्षण होता है। इस को लोग निकाल देते हैं अथवा जैसे कौड़ी शंख के अभ्यन्तर के जीव कुछ दिनों के पश्चात् स्वयं मर जाते हैं तद्वत् इस शालग्राम के जीव भी मर जाते हैं। इस को देख कर यहां के पौराणिकों ने विचार किया होगा कि हिरण्यगर्भ जो आदि सृष्टि में हुए और अण्ड समान सहस्रसूर्य प्रतिभ थे इन्हीं का यह अवतार है। क्योंकि इस में भी वे गुण पाये जाते हैं इसी हेतु इस को हिरण्यगर्भ भी कहते हैं। अथवा सब जीवों की सृष्टि के पहले भगवान ने इसीको प्रथम बनाया हो क्योंकि इस में प्रस्तर और जीव दोनों पाये जाते हैं और इन्द्रियादि का विकाश बहुत सूक्ष्म पाया जाता है। यह समझ कर पौराणिकों ने इस की पूजा चलाई हो। परन्तु जिओलोजी विद्यावित् इस को प्रथम जीव नहीं मानते हैं। जो कुछ हो यह अज्ञानता के कारण से भ्रम उत्पन्न हुआ है। शंख घोंघा सीपी वृक्ष पाषाण जल प्रभृति की पूजा निःसन्देह अविद्या से उपजी है। हे विद्वानो ! कैसा शोक है कि ब्रह्म की उपासना छोड़ यहां के लोग तुच्छ तुच्छ पदार्थ को ईश्वर समझ पूजने लगे। यह शालग्राम भारत देश में केवल गण्डकी वा शालग्रामी नदी में होता है। इस हेतु भगवान् को भी शापवश गण्डकी के तीर पर वा इस की धारा में वास करना पड़ा। परन्तु जगत् बहुत बड़ा है। आज कल प्रायः सब देश का भूगोल इतिहास पढ़ाया जाता है अन्वेषण होता ही रहता है। इस परिश्रम के फल से अनेक स्थानों में शालग्राम जी पाये गये। अब भगवान् का वाक्य कहां रहा। गण्डकी नदी तो भारतवर्ष में ही है। क्या इस असुर के पहले गण्डकी नदी नहीं थी। यदि यह नदी तुलसी का शरीर है तो सब ऋतु में इस को समान ही रहना चाहिये। वर्षा और ग्रीष्म में बढ़ना घटना नहीं चाहिये। एवमस्तु। शालग्राम इस का नाम भी अनुचित ही प्रतीत होता क्योंकि शालवृक्षों के ग्राम को शालग्राम कहेंगे अथवा कोई शालिग्राम कहते हैं। शालि नाम धान का है। कहने का तात्पर्य्य यह है कि इस नाम से कुछ ईश्वरीय-गुण प्रतीत नहीं होते। और यह कथा भी अत्यन्त अश्लील और अवाच्य है। यदि विष्णु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

केवल सूर्य प्रतिनिधि रूप में ही पूजित होते तब भी कुछ अच्छा था इन को स्वेच्छानुसार सब कुछ बना लिया यदि छल करना है तो इन को आगे कर दिया यदि लम्पटता का उदाहरण प्रस्तुत करना है तो झट इन का निदर्शन दिखला दिया। चोरी भी करना इन से नहीं छूटा है। मद्यपान कर इन का कुल का ही क्षय हुआ है। रण में युधिष्ठिर सत्यवादी से मिथ्या बुलवाना इन का ही काम था। परस्त्रीराधा से इन की ही परम प्रीति वर्णित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यथार्थ विष्णु अब विष्णु नहीं रहे। विष्णु एक साधारण मनुष्य बन गये।

"शालग्राम की पूजा"

पौराणिक जगत् में शालग्राम की कथा बहुत ही शोचनीय है तुलसी ने अच्छा शाप दिया कि "तू पाषाण होजा"। "तू ने महा अनुचित काम किया"। विष्णु पाषाण हो गये यह भी उचित ही हुआ। परन्तु यह और भी सुशोभित होता और पौराणिक धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ती यदि इस की पूजा नहीं होती किन्तु इस की परम निन्दा होती क्योंकि जिस को पतिव्रता ने शाप दिया और उस शाप से जो पाषाण बना वह अवश्य जगत् में निन्दनीय है। यदि ऐसा होता तो निःसन्देह यह कथा बहुत ही रोचक और शिक्षा-प्रद होती। परन्तु अति शोक की वार्ता है कि शापित पाषाण की पूजा चला कर अधर्म की जड़ को स्थिर कर दिया। और भगवान् के ऊपर अचल लाञ्छन अङ्कित कर अपने स्वभाव का परिचय दिया है। हे विद्वानो! आप लोग विचार करें। यहां यह भी जानना चाहिये कि प्रथम तो चक्राकार शालग्राम की पूजा चली थी परन्तु अब गोलाकार श्याम पाषाणादि की भी पूजा होती है। भगवान् के ऊपर तुलसी चढ़ाने की विधि बहुत ही आधुनिक है। इस तुलसी-वृक्ष की श्रेष्ठता प्रकट करने और शालग्राम को पूज्य बनाने के हेतु ये सब उपाख्यान प्रकल्पित हुए हैं।

'विष्णु का शयन और उत्थापन'।

मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुः पौष्णान्त्यपादे प्रतिबोधमेति। एकादश्यान्तु शुक्लायामाषाढे भगवान् हरिः। भुजङ्गशयन शेते क्षीरार्णवजलेसदा। क्षीराब्धौ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शेषपर्यङ्के आषाढ्यां संविशेद्धरिः । निद्रांत्यजति कार्तिक्यां तयोः संपूजयेत्सदा इत्यादि निर्णयसिन्धौ ॥

भाव इस का यह है कि आषाढ शुक्ल-पक्ष की एकादशी को भगवान् क्षीरसागर में भुजङ्ग के ऊपर सो जाते हैं । और कार्तिक शुक्ल-पक्ष एकादशी को पुनः जागते हैं । ये दिन पवित्र समझे जाते हैं । इत्यादि । लगातार चार मास भगवान् सोते रहते हैं यह विचार क्योंकर उत्पन्न हुआ ? मैं समझता हूं इस के दो कारण हो सकते हैं । आप जानते हैं कि ये चारों मास वर्षा ऋतु के हैं । भारतवर्ष में कहीं २ रात्रिन्दिवा अब भी वृष्टि होती रहती है । बंगाल आदि प्रदेशों में अतिवृष्टि होने के कारण आज कल भी नदिएं बहुत भर आती हैं जिस से सहस्रों ग्राम पल्ली नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं बहुत मनुष्य भी डूब मरते हैं। गृह पशुओं के ऊपर बड़ी आपत्ति आजाती है । यह एक प्रकार का प्रलय समान समय उपस्थित होता है । जिन्होंने इस दृश्य को देखा है उन्हें अच्छे प्रकार परिज्ञात है । इस घोर आपत्तिसमय में हाहाकार ! प्रजाएं मचाने लगती हैं । भगवान् कहां हैं क्यों नहीं हमारी रक्षा करते हैं। क्या अभी वह सो गये। किस की शरण हम जांय । इस प्रकार विलाप करती हुई प्रजाओं को पुरोहितों वा आचार्यों ने सचमुच समझा दिया होगा कि भगवान् यथार्थ में आज कल सो जाते हैं और इस वर्षा के अन्त कार्तिक मास में जागते हैं । यह समझा देने से मूर्ख प्रजाओं के वारम्वार क्लेशजनक प्रश्नों के झंझट से अपने को आचार्यों ने बचा लिया हो और उन के संतोषार्थ उत्सव भी आरम्भ कर दिया हो। क्रमशः यह पर्व सर्वत्र फैल गया हो । इस प्रकार इस की उत्पत्ति की सम्भावना है। क्योंकि भगवान् को शयन करवाने का अभिप्राय यही हो सकता है कि अभी वह जगत् की रक्षा नहीं कर रहे हैं इस हेतु अराजक राज्यवत् इस में उपद्रव हो रहा है । इत्यादि ।

दूसरा कारण इस में सूर्य देव ही प्रतीत होते हैं । सम्पूर्ण वर्ष वह बड़े परिश्रम से कार्य करते हैं । और अपने अप्रधर्ष्य प्रचण्ड तेज से मेघ की घटा को स्थिर नहीं होने देते। वर्षा आते ही सूर्य की शक्ति कम भासित होने लगती है । मेघ उन्हें घेर लेता है अज्ञानी जन इस से समझते हैं कि इस समय सूर्य शयन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर रहा है अतः इस का तेज कम होगया है। इसी हेतु मेघ प्रबल हो जगत् में धूम मचा रहा है। कार्तिक में पुनः सूर्य प्रचण्ड होने लगते हैं। लोगों ने समझा कि सूर्य भगवान् अब जाग उठे। जब सूर्यस्थानीय एक विष्णु पृथक् कल्पित हुये तब यह गुण भी इन में स्थापित किया गया। इस प्रकार आलोचना से विष्णु के शयन और उत्थापन का पता लगता है। हे आर्य विद्वानो! विष्णु सम्बन्धी प्रायः सब ही आख्यायिकाएं कर्म गुण स्वभाव आदि धर्म हमें इतिहास की रीति पर सूचित करते हैं कि यह विष्णु सूर्य स्थानीय हैं। इस में अणुमात्र सन्देह नहीं।

'मत्स्यादि अवतार'।

इस समय केवल विष्णु का निर्णय करना आवशक था। सो हो चुका। इस में सन्देह नहीं कि धीरे २ विष्णु के सम्बन्ध में बहुत सी कथाएं समय २ पर बनती गई जो सूर्य से कुछ सम्बन्ध नहीं रखती हैं आप लोग विचारें कि जब साक्षात् महा विष्णु भगवान् ही कोई भिन्न देव सिद्ध नहीं होते। जब यही आलङ्कारिक और सूर्य प्रतिनिधि सिद्ध हो चुके तब कब सम्भव है कि इन के अवतार सत्य यथार्थ सिद्ध हों। अवतार निर्णय में अवतारों की आलोचना करेंगे। श्रीमद्भगावत में लिखा है कि:-

एतन्नानावतारणां निधानं बीजमव्ययम्।
यस्यांशांशेनसृज्यन्ते देव तिर्य्यङ्नरादयः। १। ३। ५।

यही विष्णु नानावतारों के कारण हैं। विज्ञानी पुरुषो! आप लोगों को इस उपदेश से अवश्य प्रतीत हो गया होगा कि विष्णु कोई देवता नहीं। जिस की पूजा देश में प्रचलित है वह केवल कल्पित प्रतिनिधि है। इस हेतु हे विद्वानो! जो नानावतारों का बीज माना गया है। वही खपुष्पवत् मिथ्या सिद्ध होता है तब इस के अवतार तो सर्वथा मिथ्या ही सिद्ध होंगे इस में सन्देह ही क्या।

शुभमस्तुवः।

इति श्री मिथिलादेश-निवासि
शिवशङ्कर-शर्म्म कृते
त्रिदेव-निर्णये विष्णु-निर्णयः समाप्तः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ ओ३म् ॥

अथ चतुर्मुख निर्णय

"ब्रह्मा = वायु"

यद्यपि सूर्य हमारी पृथिवी से, कई एक लक्ष क्रोश, दूरस्थित है तथापि इस के विना हमारी पृथिवी का अस्तित्व ही नहीं रह सकता। सूर्य के उदय होते ही पृथिवी पर कैसा आनन्दाब्धि का प्रवाह प्रवाहित होने लगता है। जीवमात्र चेतन हो उठते हैं। विविध प्राकृत उपद्रव शान्त हो जाते हैं। अन्धकारासुर की निवृत्ति होते ही प्रकाश से पृथिवी शोभायमान और प्रज्वलित होने लगती है। मित्र २ मिल कर आनन्द होते हैं। इतना ही नहीं, सूर्य की उष्णता से पृथिवी पर महापरिवर्तन होता रहता है। आप लोग देखते हैं कि आर्यावर्त्त की भूमि पर प्रायः सर्वत्र फाल्गुन चैत्र से वायु अधिक जोर से चलने लगता है। वैशाख ज्येष्ठ म प्रचण्ड-रूप को धारण करता है। कभी कभी ऐसी आंधी चलती है कि ग्राम के अधिकांश छप्पर गि पड़ते हैं। सहस्रों वृक्ष टूट गिरते हैं। उष्ण-प्रधान प्रदेश में यात्रा करना अति कठिन हो जाता है। धूल इतनी उड़ती है कि उस के तले दब कर आदमी मर जाते हैं। रेगिस्तान में यह दृश्य बहुधा देखने में आती है। ऊंट समान लम्ब जन्तु भी धूलि में दब कर मर जाते हैं कभी कभी वर्षा के प्रारम्भ में बड़े जोर से आंन्धी पानी और ओले के साथ आती है। वह बड़ी भयङ्कर और उपद्रव करने वाली होती है। इस सब का कारण सूर्य ही है। वायु पृथिवी पर भराहुआ है। यद्यपि यह आंखोंसे दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु इस की क्रिया बच्चे को भी प्रतीत होती है। जैसे सामुद्रिकवारि के अभ्यन्तर मत्स्यादि जल-जन्तु निवास करते हैं। तद्वत् हम लोग वायु के अभ्यन्तर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहते हैं। कई एक सौ मन वायु का बोझ हम लोगों पर प्रतिक्षण रहता है। अ.प यह भी देखते हैं कि सूर्य अस्त हो जाता। चन्द्र सर्वदा दृश्य नहीं होता ताराएं दिन में निस्तेज हो जातीं। अग्नि भी शान्त हो जाता। परन्तु वायु प्रतिक्षण विद्यमान रहता है। यह पल पल अपना काम करता रहता है। यह स्थगित नहीं होता। इसी प्रकार आभ्यन्तरिक चक्षु, श्रोत्र, कर्ण, घ्राण, मन, चित्त, बुद्धि सब ही थक जाते सो जाते हैं। परन्तु प्राण वायु सदा चलता रहता है। यह सोता नहीं। विश्राम नहीं लेता। यह कल्पान्ततक अपना काम करता हुआ चला जाता है। इस हेतु वायु का दिन बहुत बड़ा होता है। इस के बिना क्षणमात्र हम चेतन नहीं जी सकते हैं। स्थावर भी इस के बिना जीवित नहीं रह सकते। अग्नि तो इस को छोड़ ही नहीं सकता। यह वायु महान् देव है।

परन्तु आप प्रथम स्थूल दृष्टि से ही विचारें कि यह कैसे उत्पन्न होता है। ग्रीष्म में इस की बड़ी वृद्धि होती है। जहां जङ्गलादिक-स्थानों में दावानल लगता है वहां वायु प्रचण्ड हो जाता है। इस से मालूम होता है कि उष्णता से इस की वृद्धि होती रहती है। अब आप देखेंगे कि घनीभूत हो कर भूमि पर करीब द्वादश योजन ऊर्ध्वतक भूवायु भरा हुआ है। सूर्य के तीक्ष्ण और उष्ण किरण जब इस के बीच में प्रविष्ट होने लगते हैं तब वायु छिन्न भिन्न हो कर इधर उधर चलना आरम्भ होता है। वायु मिश्रित जल भी सूखने लगता है। इस हेतु हल की हो वेगवान् हो चारों ओर विस्तृत होने लगता है। इसी हेतु 'वायु' को सूर्यपुत्र कहते हैं। और सूर्य किरण पड़ने से जिस हेतु चारों दिशाओं में फैलता है इस हेतु इस को 'चतुर्मुख' कहते हैं। इस में एक और भी विलक्षणता देखते हैं कि यही शब्द को पहुँचाने वाला है। यदि वायु न होवे तो हम लोग शब्द नहीं सुन सकते हैं। परन्तु हमारे मुख से किस की सहायता से शब्द की उत्पत्ति होती है? निःसन्देह, आभ्यन्तरिक प्राण-वायु की सहायता से वाणी निकलती है। आभ्यन्तरिक प्राण भी एक प्रकार का वायु ही है इन दोनों में यदि भेद है तो किञ्चित् मात्र का ही भेद है। इस हेतु आभ्यन्तरिक वायु वाणी को उत्पन्न करता है और वाह्य वायु इस को ग्रहण कर लेता है। यह प्रत्यक्ष सिद्ध है। परन्तु ये दोनों वायु एक ही हैं। इसी कारण कहा जाता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि वायु अपनी दुहिता को ग्रहण करता है क्योंकि वाणी वायु से उत्पन्न होती है। इस हेतु इस की दुहिता हुई। और पुनः वायु ही इस को ग्रहण कर लेता है। इस हेतु अपनी दुहिता को वायु ग्रहण करता है। यह अलङ्कार रूप से कहा जा सकता है यह एक प्रकृति का दृश्य है। वायु का न कोई पुत्र न कोई पुत्री। यह वर्णन अलङ्कार मात्र है। इस से सिद्ध हुआ कि जिस को वाक् वा वाणी, वा सरस्वती, वा, शब्द वा भाषा कहते हैं वह वायु की शक्ति है। अर्थात् वायु का गुण वा धर्म्म है। हम वन में देखते हैं कि वंश के छिद्र से शब्द निकलता रहता है। जल प्रवाह में शब्द होता रहता है। यदि कोई ऐसा यन्त्र प्रस्तुत किया जाय जिस से वायु बिलकुल निकाल लिया जाय और उस यन्त्र के अभ्यन्तर में एक घण्टी रखदी जाय और किसी युक्ति से इस को हिलाया जाय। तब परीक्षा हो जायगी कि वायु के बिना शब्द फैल सकता है या नहीं। ऐसा यन्त्र बना कर परीक्षा लीगई ऐसे यन्त्र में घण्टी कितनी ही हिलाई जाय शब्द नहीं निकलता। इस से वाणी=सरस्वती वायु की शक्ति है ऐसा कहा जा सकता है। पुनः अभी सिद्ध कर चुके हैं कि सूर्य के कारण वायु बहुत बेगवान् हो जाता है। इस से वायु का वाहन सूर्य है यह भी कह सकते हैं। सूर्य को वैदिक लौकिक दोनों भाषा में 'हंस' कहते हैं। इस हेतु वायु का वाहन हंस है यह भी कह सकते हैं। और वायु इस में सन्देह नहीं कि प्रतिक्षण सृष्टि करता है। सर्वत्र प्रविष्ट हो कर सब को रच रहा है। इसी हेतु इस को 'मातरिश्वा' कहते हैं। माता अर्थात् निर्म्माण करने वाली जितनी शक्तियां हैं उन में प्रविष्ट हो कर श्वास प्रश्वास देने वाला यही वायु है। इस हेतु इस को धाता विधाता स्रष्टा आदि नामों से भी पुकार सकते हैं इस प्रकार हम देखते हैं तो वायु के सर्व गुण ब्रह्मा में संघटित होते हैं इस कारण निःसन्देह ब्रह्मा वायु स्थानीय है आगे इस को अनक प्रमाणों से सिद्ध करेंगे। ब्रह्मा केवल वायु स्थानीय ही नहीं किन्तु ब्रह्मा नामक ऋत्विक्स्थानीय भी है। आगे के प्रमाणों से यह सब विषय सिद्ध होगा।

"ब्रह्मानामधेय"

जैसे वेदों में विष्णु, रुद्र, आदित्य, सूर्य, अग्नि, वायु, नदी, उषा, अहोरात्र द्यावापृथिवी प्रभृति नाम से अनेक देवता वर्णित हैं वैसे प्रायः ब्रह्मा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम का किसी मन्त्र का कोई देवता नहीं। वेद में यह ब्रह्मन् (शब्द स्तोत्र) वेद ऋत्विक, परमात्मा, तपस्या आदि अनेक अर्थ में आया है परन्तु किसी देवता विशेषा अर्थ में इस का प्रयोग नहीं पाया जाता। पुनः जैसे अनेक मन्त्रों के द्वारा, विष्णु, इन्द्र, वायु, मित्र, अर्य्यमा, वरुण, अदिति, द्यौ, पृथिवी, रुद्र आदि शब्द वाच्य देवता की स्तुति प्रार्थना आती हैं। वैसे 'ब्रह्मा' की कोई स्तुति प्रार्थना नहीं आई है। इस में सन्देह नहीं कि ब्रह्मन् शब्द का भी प्रयोग वेद में बहुत आया है। यथाः—

तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानः। यजुः १८। ४९॥
सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। यजुः ३। २८॥
इदं में ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्। य० ३२। १६॥
इदं जनासो विदथ महद्ब्रह्म वदिष्यति। अथर्व १। ३२। १॥
अतीव यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यो निन्दिषत् क्रियमाणम्।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषं क्रोरभिसंतपाति। अ० २। १२। ६॥
ब्रह्म यज्ञानं प्रथमं पुरस्तात्। अ० ४। १। १॥
तेभिर्ब्रह्माविध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुभिर्देवजूते। अ० ५। १८। ८॥
ब्रह्माणंयत्रहिंसन्ति तद्राष्ट्रंहन्तिदुच्छुना। अ०। ५। १९। ८॥
यद्ब्रह्मभिर्यदृषिभिर्यद्देवैर्वीदितंपुरा।
यद्भूतं भव्यमासन् वत तेना ते वारये विषम्॥ अथर्व।६।१२।२॥

यद्यपि वायु अर्थ में इस का प्रयोग नहीं है। परन्तु हो सकता है। क्योंकि यह शब्द विशेषण है। महान् को ब्रह्म वा ब्रह्मा कहते हैं। संस्कृत में इस का स्वरूप "ब्रह्मन्" है पुँल्लिङ्ग में ब्रह्मा और नपुंसक में 'ब्रह्म' हो जाता है। यह उभय लिङ्ग है। वेदों में सब अर्थ में दोनों प्रकार के प्रयोग हैं। परन्तु पिछले संस्कृत में "वेदस्तत्त्वं तपो ब्रह्म ब्रह्मा विप्रः प्रजापतिः" वेद, तत्त्व, तप, और परमात्मा में नपुंसक और ब्राह्मण प्रजापति में पुँल्लिङ्ग होता है। आजकल आर्य भाषा में ईश्वरार्थ में ब्रह्म अन्यत्र ब्रह्मा कहते हैं ईश्वर सब से महान् है। अतः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ईश्वर में इस की मुख्यता है। वेद भी बड़ा है। अतः वह भी ब्रह्म है। वेद के अध्ययन करने वाले वा ब्रह्म वाच्य परमात्मा को जानने वाला भी महान् है अतः इस का भी नाम ब्रह्मा है। इसी प्रकार स्तोत्र तपस्यादि का नाम ब्रह्मा है। अतः इस अर्थ में वायु को भी ब्रह्मा कह सकते हैं। कोई क्षति नहीं। इस हेतु संभव है कि कल्पित देव का नाम ब्रह्मा रक्खा हो। क्योंकि जब यह स्रष्टा हुआ तब इस को महान् बनाना आवश्यक है। ब्रह्मन् शब्द सब से महत्त्व सूचक है। परन्तु इस को ब्रह्मनाम होने का अन्य कारण भी पाया जाता है।

"ब्रह्मा ऋत्विक्"

मैं प्रथम कह चुका हूं कि यह ब्रह्मा केवल वायुस्थानीय ही नहीं किन्तु ब्रह्मा नाम का जो ऋत्विक् होता है। उस के भी यह प्रतिनिधि हैं। कारण इस में यह है। ब्रह्मा सृष्टिकर्त्ता कहे गये हैं। परन्तु वेदों के विना सृजन नहीं हो सकता इस हेतु वेदों के भी प्रकाश कर्त्ता ब्रह्मा कहे गये हैं जिस की सहायता से इन्होंने सृष्टि की अब जो चारों वेदों को जाने और उस के प्रयोग भी अच्छ प्रकार कर सके। उस ऋत्विक् का नाम वैदिक भाषा में ब्रह्मा प्रथम से ही विद्यमान है। इसी कारण जब एक पृथक् देव कल्पित हुआ तब इस का नाम ब्रह्मा रक्खा गया। क्योंकि इन को चतुर्वेदविद् बनाना है तब ही यह सृष्टि कर सकते हैं और यथोचित पदार्थों के नाम भी रख सकते हैं। और जैसे ब्रह्मा ऋत्विक् वेदों के अर्थ जान यज्ञ में विविध प्रयोगरूप सृष्टि करता है तद्वत् यह भी वेदार्थ जान तदनुसार जगत् रचना करते हैं। इत्यादि कारण से इस कल्पित देव का नाम ब्रह्मा रक्खा गया। ऋत्विक् ब्रह्मा चतुर्मुख इस हेतु है कि (चत्वारो वेदा मुखे यस्य स चतुर्मुखः) जिस के मुख में चारों वेद हों वह चतुर्मुख। यहां मध्यम पद लोपी समास हुआ। जब ऋत्विक् के स्थान में एक पृथक् देव कल्पित हुआ तो यहां 'चत्वारि मुखानि यस्य' चार मुख हैं जिस के वह चतुर्मुख ऐसा समास कर ब्रह्मा को चारमुख दिये गये। इस प्रकार ब्रह्मा में दो गुणों के होने की आवश्यकता के कारण वायु और ब्रह्मा ऋत्विक् इन दोनों के गुण इन में स्थापित किये गये हैं। अब आगे के प्रमाणों से आप लोगों को अवश्य विदित होगा कि प्रधानतया ब्रह्मा वायु के स्थान में रचित हुआ है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"ब्रह्मा की उत्पत्ति और चतुर्मुख"

उदप्लुतं विश्वमिदं तदासीत् यन्निद्रया मीलितदृङ् न्यमीलयत् ।
अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतावनीहः ॥ १० ॥
तस्यात्म-सूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ।
गुणेनकालानुगतेन विद्धः शुष्यंस्तदाभिद्यतनाभिदेशात् ॥ १३ ॥
स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत् कालेन कर्म्मप्रतिबोधितेन ।
स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥ १४ ॥
तस्मिन्स्वयं वेदमयोविधाता स्वयंभुवं यंस्म वदन्ति सोऽभूत् ॥ १५ ॥
परिक्रमन् व्योम्नि विवृत्तनेत्र श्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६ ॥
भागवत तृतीयस्कन्ध अध्याय ९ ॥

भाव इस का यह है कि जब आदि देव भगवान् इस सृष्टि को समिट कर अपने उदर में स्थापित कर समुद्र में अनन्तनागरूप तल्प के ऊपर शयन करते थे। उस समय यह विश्व जलमय था। कुछ समय के अनन्तर भगवान् के नाभिदेश से एक पद्म (कमल) निकला। वह सूर्यवत् विशाल जल को प्रकाशित करने लगा। उस कमल से वेदमय ब्रह्मा उत्पन्न हुए जिन को स्वयंभू कहते हैं। और आकाश में परिक्रमा करते हुए ब्रह्मा जी को दिशाओं के बराबर चार मुख प्राप्त हुए। इस प्रकार ब्रह्मा की उत्पत्ति विस्तार पूर्वक श्रीमद्भागवत में कथित है। भाव इस का इतना ही है कि विष्णु के नाभि से एक कमल निकल कर समुद्र के जल के ऊपर तैरने लगा उस से चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र सञ्जीकश्च चतुर्मुखः। पद्मनाभे र्नाभिपद्मात्
निःससार महामुने ॥७८॥ कमण्डलुधरः श्रीमान् तपस्वी ज्ञानिनांवरः।

नोट १--आज कल के मुद्रित पुस्तकों में अध्याय श्लोकादि न्यूनाधिक पाए जाते हैं इस हेतु पता में भेद पड़ जाता। इस हेतु पता के ऊपर पूरा भरोसा न कर ग्रन्थ पर केवल भरोसा रखना चाहिये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चतुर्मुखैस्तं तुष्टाव प्रज्वलन् ब्रह्म तेजसा ॥ ७९ ॥ तन्नाभिकमले ब्रह्मा बभूव कमलादूभवः । सम्भूय पद्मदण्डेच बभ्राम युगलक्षकम् ॥ ८३ ॥ नान्तंजगाम दण्डस्य पद्मनालस्य पद्मजः ॥

इत्यादि देवी भागवत नवमस्कन्ध में ब्रह्मा की उत्पत्ति की कथा विस्तार से वर्णित है। भाव यह है कि इतने ही में नारायण के नाभि पद्म से स्त्री सहित चतुर्मुख ब्रह्मा प्रकट हुए। और चारों मुख से उसकी स्तुति प्रार्थना करने लगे ब्रह्मा जी नाभिकमल से निकल कर सहस्रों युग उसी में भ्रमण करते रहे। परन्तु उस का अन्त नहीं पाया इत्यादि। यह कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है आज कल चित्र में भी देखते हैं कि विष्णु भगवान् समुद्र में सर्प के ऊपर सो रहे हैं। लक्ष्मी चरण सेवा कर रहीं हैं। नाभि से एक पद्म निकला हुआ है। उस के ऊपर चतुर्मुख श्री-ब्रह्मा जी बैठ कर सृष्टि रच रहे हैं।

विवेकी पुरुषो ! अब आप लोग ध्यान से विचार करो कि इस का आशय क्या है ? ब्रह्मा कौन हैं ?। क्या यथार्थ में ऐसी घटना हुई या यह कल्पित है ? प्रिय विद्वानो ! यह केवल वायु का वर्णन है। प्रथम वर्णन हो चुका है कि 'विष्णु नाम सूर्य का है। समुद्र नाम आकाश का है सूर्य का किरण, मानो, कमलनाल हैं ॥ मानो, विष्णु (सूर्य) समुद्र (आकाश) में शयन कर रहा है। उस के मध्य से किरण रूप कमलनाल समुद्र=अन्तरिक्ष (आकाश) में आ निकाला। अर्थात् सूर्य की उष्णता अन्तरिक्ष में आकार फैलाने लगी। यही उष्णता का फैलना, मानो, कमल कुसुम का प्रकट होना है। और उस उष्णता से उत्पन्न क्या हुआ ? वायु। वह वायु कैसा हुआ। चतुर्मुख। यहां पर भी वही समास है जो 'चतुर्भुज' में दिखलाया है। अर्थात् "चतसृषु दिक्षु मुखं यस्य स चतुर्मुखो वायुः" चारों दिशाओं में मुख है जिसका। वह चतुर्मुख अर्थात् वायु। जब वायु के स्थान में एक अन्य देवता कल्पित हुआ उस समय इस में इस प्रकार समास हुआ है कि (चत्वारि मुखानि यस्य स चतुर्मुखो ब्रह्मा) जिस के चार मुख हों वह चतुर्मुख। इस प्रकार समास कृत पाण्डित्य के बल से ब्रह्मा को चार मुख दिये गये आप लोग बुद्धिमान् हैं बिचारें कि ब्रह्मा चतुर्मुख ही क्यों माना गया। इस में अन्य कोई विशेषता नहीं। मुख की ही विशेषता है। विष्णु में बाहु की और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुद्र में नेत्र की विशेषता है। इस में संशय नहीं कि ब्रह्मा में मुख की ही विशेषता होनी चाहिये। क्योंकि यह वायुस्थानीय है। आप देखते हैं कि वायु अदृश्य वस्तु है। इस में सूर्य के समान किरण नहीं कि जिसका कर वा पाद वा चरण कह कर वर्णन किया जाय। इस में कोई अन्य प्रत्यक्ष अग्निवत् तेज नहीं कि वह जटाजूट कहा जाय। परन्तु इस में केवल मुख की प्रधानता है। वायु रूप जो एक देवता है मानो उस का चारों तरफ मुख हैं। जब जैसा चाहता है तब तैसा हो जाता है। कभी पूर्वाभिमुख। कभी पश्चिमाभिमुख। कभी उत्तराभिमुख कभी दक्षिणाभिमुख। इस प्रकार देखते हैं कि 'वायु' ही चतुर्मुख है। जब इस के स्थान में एक पृथक् देव कल्पित हुए तो इस में भी वेही गुण स्वभाव कर्म्म स्थापित किये गये। इसी हेतु वायुस्थानीय ब्रह्मा चतुर्मुख है। चतुर्मुख शब्द और इस की उत्पत्ति-प्रकार हमें सूचित करता है कि यह ब्रह्मा वायुदेव का प्रतिनिधि है। इस में सन्देह नहीं।

'ब्रह्मा और ब्रह्मा की कन्या'

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः। अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥ २८ ॥ तमधर्म्मे कृतमतिं विलोक्य पितरं सुताः। मरीचिमुख्या मुनयो विस्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥ २९ ॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति ये परे। यः स्वां दुहितरं गच्छेदनिगृह्यांगजं प्रभुः ॥ ३० ॥ तेजीयसामपीह्येतन्नसुश्लोक्यं जगद्गुरो। यद्वृत्तमनुतिष्ठन् वै लोकः क्षेमाय कल्पते ॥ ३१ ॥ तस्मै नमोभगवते यइदंस्वेन रोचिषा। आत्मस्थं व्यंजयामास स धर्म्मं पातुमर्हति। ३२.

श्रीमद्भागवत। ३ ॥ १३ ॥

विदुर और मैत्रेयजी का यह सम्वाद है। भागवत तृतीयस्कन्ध सृष्टि प्रकरण में यह उपाख्यान आया है। सृष्टि करते करते ब्रह्मा जी ने वाक् अर्थात् सरस्वती को भी उत्पन्न किया। हे विदुर! हम लोगों ने सुना है कि वह स्वयंभू सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा जी (सकामः) कामयुक्त हो मन को हरणकरती हुई अकामा दुहिता (वाचम्) वाणी=सरस्वती को (चकमे) चाहने लगे। २८। (तम्+अधर्म्मे कृतमतिम्) अधर्म्म में बुद्धि करते हुए अपने पिताजी को देख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मा के पुत्र मरीचि आदि मुनियों ने उस अधर्म्म से ब्रह्मा जी को वर्जित किया २९। इस प्रकार वे मुनि अपने पिता से बोले हे जगद्गुरो! (नैतत्पूर्वैः) न पूर्व में ऐसे कोई हुए और न आगे होवेंगे और न आज कोई हैं जो अपने अङ्गजकाम को न रोक कर अपनी दुहिता का ग्रहण करेंगे।३०। हे जगद्गुरो! तेजस्वी देवता के लिये भी यह कार्य यशोदायक नहीं। जिन के आचरण के अनुसार अनुष्ठान कर के लोक कल्याण भागी होते हैं। यदि वे ही अनुचित काम करेंगे तो धर्म्मानुष्ठान नष्ट हुआ। ३०। उस भगवान् ब्रह्मा को नमस्कार हो जिस ने अपनी दीप्ति से ईश्वरस्थ जगत् को प्रकट किया है वह ब्रह्मा स्वस्थापित धर्म्म का पालन करे। ३२॥

सइत्थंगृणतः पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन्। प्रजापतिपतिस्तन्वीं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥ ३३ ॥ तां दिशोजगृहुर्वीरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार स्तुति करते हुए आगे खड़े मरीचि प्रभृति प्रजापतियों को (जो विवाह कर के सन्तान उत्पन्न करनें वाले सृष्टि के आदि में हुए वे भी प्रजापति कहलाते हैं)। देख परम लज्जित हो प्रजापतिपति ब्रह्मा जी ने अपनी कन्या को छोड़ दिया॥ प्रजापति का अपनी दुहिता के ऊपर मोहित होने की कथा अन्य पुराणों में भी उपलब्ध होती है। यह परम प्रसिद्ध आख्यायिका है। पुष्कर तीर्थ में इस लीला की मूर्ति भी विद्यमान है। भारतवर्ष में प्रायः यहां ही ब्रह्मा जी का मन्दिर है। विचारशील पुरुषो! इस का क्या भाव है। क्या ब्रह्मा जी ने ऐसा अनुचित कार्य्य किया? नहीं नहीं। ब्रह्मा कोई व्यक्ति विशेष पुरुष का नाम यहां नहीं। ब्रह्मा नाम यहां वायु का है। वायु में ही यह घटना घटती है। देखिये॥ यहां कहा हुआ है कि 'वाक्' को ब्रह्मा ने उत्पन्न किया। 'वाक्' को संस्कृत में, ब्राह्मी भारती गिरा वाक् वाणी सरस्वती कहते हैं (ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग वाणी सरस्वती) टीकाकार भी यहां कहते हैं कि जिस को ब्रह्मा ने त्याग दिया वह निज भार्या सरस्वती नहीं है तो कौन है? कहते हैं यह शंका मन्द है। अर्थात् इस का तत्त्व टीकाकार को विदित नहीं है तथापि टीकाकार एक श्लोक उद्धृत कर के परिहार करते हैं:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यां तत्त्याज विभुर्ब्रह्मा मानुषी वाक् तु सा स्मृता । सरस्वती निजा भार्या दैवीं वाचंतुतांविदुः—

जिसको ब्रह्मा ने त्यागा वह मानुषी वाक् है । जो अपनी भार्या सरस्वती है वह दैवी वाणी कहलाती है । वाणी की उत्पत्ति वायु से होती है । और पुनः इस को वायु ही ग्रहण कर लेता है । भीतर की वायु की सहायता से वाणी उत्पन्न होती है और पुनः वाहरीवायुम समाजाती है । आप देखते हैं कि मुख से जो वाणी निकलती है वह कहां चली जाती है ? निःसन्देह बाहर की वायु में लीन हो जाती है । परन्तु भीतर की वायु यदि इसे उत्पन्न न करे तो इसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती है । परन्तु वाह्य और आन्तरिक वायु दोनों एक ही हैं । अब विचारें कि वायु एक महान् देव है । इस ने परम मोहिनी वाणी को भीतर से प्रकट किया । मानो इस की मधुरता देख इस को अपने ही में मिला लिया । वाणी का स्वभाव ही है कि उत्पन्न हो कर वायु में मिल नष्ट हो जाय । जिस हेतु वायु से यह वाणी उत्पन्न होती है इस हेतु मानो यह इस की कन्या के समान है । और पुनः इस को अपने में लीन कर लेता है । यही मानो इस का अनुचित व्यवहार है यह केवल आलङ्कारिक वर्णन है । वायु की न कोई कन्या है न भाई है न बाप है । इन के सम्बन्ध का जो कुछ वर्णन होता है वह केवल अलङ्कार रूप से होता है । इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि यह वायु और सरस्वती-(वाणी वाक्) का वर्णन है । जब वायु के स्थान में एक ब्रह्मा नाम के देव कल्पित हुए तो यह गुण इन में भी स्थापित हुआ । वहां वाक् का केवल वाणी= शब्द अर्थ था । यहां अज्ञानतावश लोग यथार्थ पुत्री वा कन्या समझने लगे । और इस को इतना बढ़ा दिया कि इस के नाम से मन्दिर आदि भी बनाने लगे । एवमस्तु । यह आख्यायिका भी हमें दरसाती है कि ब्रह्मा वायुस्थानीय है (१) ।

(१) नोट—द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम् । उत्तानयोश्चम्वोर्योनिरन्तरत्रा पिता दुहितुर्गर्भ माधात् । ऋग्वेद ।१।१६४। ३३ । मथिष्ट यस्य वीरकर्म्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्योऽपौहत् । पुनस्तदा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मा और गायत्री सावित्री ।

पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणःप्रिया । दे०भा० ९ । १ ॥
सावित्री वामपार्श्वस्था दक्षिणस्था सरस्वती । कालिकापु० ८२ ॥
शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते ॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप । मत्स्यपु० ३ ।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्रह्मा की दो स्त्रियों का वर्णन पुराणों में आया है । एक सावित्री और दूसरी सरस्वती । 'सावित्री' को ही 'गायत्री' कहते हैं क्योंकि गायत्री ऋचा का देवता सविता है ।

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादंपादमदूदुहत् ।
तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठीप्रजापतिः॥ मनु०२।७७॥

बृहति यत्कनाया दुहितराअनुभूतमनर्वा ॥ ५ ॥ मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कार्षं कृण्वाने पितरि युवत्याम् । मनानग्रेतो जहुतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६॥ पितायत्स्वां दुहितरमधिष्कन्नूक्ष्मयोरतः संजग्मानो निषिञ्चत् । स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ।७। ऋग्वेद १० । ६१ ।

इत्यादि मन्त्रों में भी ब्रह्मा सरस्वती के समान सूर्य और उषा (प्रातःकाल) का वर्णन रूपकालङ्काररूप से आता है इस को वैदिकालङ्कार निर्णय में लिखूंगा । इस के ऊपर ब्राह्मण के ये प्रमाण हैं :-

प्रजापतिर्वैस्वां दुहितरमभ्यध्यायद्—दिवमित्यन्य आहुरुषसमित्यन्ये । तामृश्यो भूत्वा रोहितंभूतामभ्यैत् । तस्यतद्रेतसः प्रथममुददीप्यत तदसावादित्योऽभवत् । ऐतरेय ब्राह्मण ३ । ३३ ।

प्रजापतिर्वैस्वां दुहितरमभिदध्यौ दिवंवोषसंवा । शतपथ ब्राह्मण ॥ १ । ७ । ४ । १ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओङ्कारपूर्विकास्तिस्रोमहाव्याहृतयोऽव्ययाः ।
त्रिपदाचैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणोमुखम् । म० । २ । ८१ ॥
एकाक्षरं परंब्रह्म प्राणायामाः परन्तपः ।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते । म० २ । ८३ ॥

मनुस्मृति के इन श्लोकों से सिद्ध है कि गायत्री का ही नाम सावित्री है। मनु जी ने प्रायः 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' इस गायत्री ऋचा के लिये सर्वत्र 'सावित्री' शब्द का प्रयोग किया है। इस ऋचा को 'गायत्री' इस हेतु कहते हैं कि इस का छन्द 'गायत्री' है। और 'सावित्री' इस हेतु कहते हैं कि इस ऋचा का देवता-सविता है 'सवितादेवतायस्याः सा सावित्री' परन्तु पुराणों में इस सावित्री से तो तात्पर्य्य नहीं था। किन्तु सविता जो सूर्य उस की जो शक्ति उसे 'सावित्री' कहते हैं। 'सवितुः सूर्यस्येयं सावित्री' इस सूर्य शक्ति सावित्री से प्रथम पौराणिक तात्पर्य था परन्तु धीरे धीरे पौराणिकों ने अविद्यावश खूब खिचड़ी पकाई है। जो इस का मुख्य प्रथम रचयिता था उस का भाव पीछे विस्मृत हो गया। इस हेतु यह सब कठिनाई उपस्थित हुई। जैसे ब्राह्मण ग्रन्थ और मनुस्मृत्यादि में ये दोनों गायत्री और सावित्री शब्द एकार्थक में प्रयुक्त हुए हैं वैसे ही पौराणिकों ने भी प्रयोग किया और एक ही देवी का नाम कहीं गायत्री और कहीं सावित्री रखते हैं। परन्तु कहीं पर इस से विरुद्ध भी पाते हैं। एवमस्तु। पौराणिक लीला विचित्र है।

"गायत्री से ब्रह्मा का विवाह"

पद्म पुराण सृष्टिखण्ड षोडशाध्याय में यह कथा है कि पुष्कर तीर्थ में ब्रह्मा जी यज्ञ करने लगे। जब सब पदार्थ प्रस्तुत हो गये तब ऋत्विकों ने ब्रह्मा की स्त्री यजमानी सावित्री को बुलाने के लिये दूत भेजा। सावित्री उस समय कार्य्य में आसक्ता थीं इस हेतु यह कहा। यथा :—

इह मे नकृतं किञ्चित् द्वारे वै मण्डनं मया। भित्त्यां वै चित्रकर्म्माणि स्वस्तिकं प्राङ्गणे नतु। लक्ष्मीर्नाद्यापि आयाता सतानैवेहदृश्यते। महताऽऽग्रहेणाऽऽहूता शक्राणीनाऽऽगतात्विह। मेधाश्रद्धा विभूतिश्च अनसूयाधृतिःक्षमा। गङ्गासरस्वती चैवनाद्याऽऽगच्छन्ति कन्यकाः। ब्रूहिगत्वाविरञ्चिं तं तिष्ठ तावन्मुहूर्तकम्। सर्वाभिः सहिताचाहमागच्छामित्वरान्विता। ११४-१२२।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभी मैंने घर में कुछ नहीं किया है। द्वार का मण्डन नहीं हुआ। भीत के ऊपर चित्र अभी तक नहीं हुए। प्राङ्गण में स्वस्तिक नहीं लिखा है। अभी लक्ष्मी पार्वती जी नहीं आई हैं। बड़े आग्रह से इन्द्राणी बुलाई गई हैं वह भी नहीं आई हैं। मेधा, श्रद्धा, विभूति, गङ्गा, सरस्वती आदि कोई नहीं आई हैं। जाकर ब्रह्मा से कहो एक मुहूर्त ठहरें। अभी सब देवियों के साथ आती हूं। दूतने ऐसा ही जा कर कहा। ब्रह्मा जी एक मुहूर्त नहीं सहसके इन्द्र से कहा कि शीघ्र मेरे लिये दूसरी पत्नी ले आओ। इन्द्र जी एक गोपकन्या लेआए। विष्णु ने कहा कि इस से शीघ्र गन्धर्वविवाह की रीति से विवाह कर लीजिये। ऐसा ही ब्रह्मा जी ने किया। पश्चात् सावित्री रुष्टा हो कर चली गई। ब्रह्मा जी का यज्ञ रुक गया। पुनः सावित्री की बहुत सी प्रार्थना कर यज्ञ में ले आए हैं।

तत्राऽऽयाताचसादेवी सावित्री ब्रह्मणः प्रिया। सावित्रीं संमुखीं दृष्ट्वा सर्वलोकपितामहः। गायत्र्यासहितोब्रह्मा इदं वचनमब्रवीत्। एषादेवीकर्मकरी अहंतेवशगःस्थितः। मामादिशवरारोहे यत्तु कार्य्यमयात्विह। एवमुक्तातुसावित्री स्वयं देवेन ब्रह्मणा। त्रपयाऽधोमुखी देवी न वक्तुं किञ्चिदिच्छति। पादयोःपतिता तस्या गायत्री ब्रह्मचोदिता। इत्यादि। सृष्टिखण्ड अध्याय २९।

देव देवियों से प्रार्थना होने पर ब्रह्मा की प्रिया सरस्वती देवी वहां आई। सम्मुख में स्थित सरस्वती को देख गायत्री सहित ब्रह्मा बोले। प्रिये! यह गायत्री तेरी दासी है। मैं तेरे वश में सदा स्थित हूं। जो आप आज्ञा करें मैं उसे करने को सदा प्रस्तुत हूं। इस प्रकार ब्रह्मा से प्रार्थिता सावित्री लज्जा से अधोमुखी हो गई ब्रह्मा के कहने से गायत्री सावित्री के चरण पर गिर पड़ी। इत्यादि कथा पद्मपुराण में विस्तार से कथित है। इस कथा से विस्पष्ट भाव निःसृत होता है कि सावित्री ही ब्रह्मा की मुख्य पत्नी है गायत्री नहीं। कविवरो! यहां यह

(१)-पत्नीं चान्यां मदर्थंतु शीघ्रं शक्र समानय। १२७।

(२)-तदेता मुद्वहस्वाद्य मयादत्तां तव प्रभो। गान्धर्वेण विवाहेन उपयेमे पिता महः १८४।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विचार करो कि एक मुहूर्त ब्रह्मा जी सावित्री के लिये नहीं ठहर सके परन्तु इन्द्र एक कन्या को खोज लाए। सब देवों की सम्मति हुई। पश्चात् इस से विवाह हुआ। क्या इस से एक मुहूर्त समय नहीं लगा। अर्वाचीन पौराणिक लोग कभी २ शिशुवत् क्रीड़ा करते हैं॥

"सावित्री कथा का आशय"

ब्रह्मा जी की पत्नी (पालयित्रीशक्ति) सावित्री है। इस का आशय अतिशय सरल है। 'सावित्री' शब्द के अर्थ जानने से ही इस का भाव प्रकाशित हो जाता है। (सवितुः सूर्यस्यइयंसावित्री) सविता जो सूर्य उस की जो शक्ति उसे सावित्री कहते हैं। यहां सूर्य की जो उष्णता है उस का ग्रहण हैं। सूर्य की उष्णता सूर्य से उत्पन्न होती है इस हेतु मानो वह सूर्य की कन्यावत् है। यह सूर्य इस उष्णतारूप सावित्री को वायु को देते हैं। इस सावित्री को पाकर वायुदेव शक्ति सम्पन्न हो जगत् की सृष्टि करते हैं। इस उष्णता-रूपा सावित्री बिना वायु देव कुछ नहीं कर सकते हैं। इस हेतु वायु की द्वितीय स्त्री सावित्री अर्थात् सूर्य की उष्णता है। परन्तु मुख्य शक्ति वायु की सरस्वती ही है। अब आप विचार करलेवें कि ब्रह्मा की पत्नी सावित्री कैसे बनी। वायु-स्थानीय ब्रह्मा जब पृथक् देव कल्पित हुआ तो अवश्य था कि यही सावित्री इन की स्त्री कल्पित हों जिस से सर्व गुण वायु के ब्रह्मा जी में घट सकें। विवेकिपुरुषो! अब इस का भाव आप लोगों को विस्पष्ट हो गया होगा।

शङ्का—आप लोग कदाचित् कहेंगे कि यह क्या बात है॥ पहले वायु है। अथवा सूर्य है। सृष्टि प्रकरण से तो यह विदित होता है कि प्रथम आकाश, आकाश से वायु। वायु से अग्नि। अग्नि से जल इत्यादि। अग्नि पद से सूर्य आदि सब का ग्रहण है। इस क्रम के अनुसार सूर्य का कारण वायु होना चाहिये नकि वायु का कारण सूर्य। परन्तु आप प्रत्येक विषय से सूर्य की ही मुख्यता और कारण सिद्ध करते हैं। यह क्या बात है। समाधान। हे विद्वानो! इस में सन्देह नहीं कि वायु मुख्य है। सूर्य नहीं। परन्तु यहां जो कुछ आख्यायिका रचित हुई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है वह लौकिकदृष्टि से अर्थात् जगत् में जो प्रत्यक्षकार्य्य देख रहे हैं कि सूर्य्य की गरमी से वायु की वृद्धि होती है। प्रत्यक्ष देखते हैं कि चैत्र वैशाख ज्येष्ठ मास में यहां वायु की शक्ति बहुत हो जाती है इन मासो में सूर्य प्रचण्ड रहता है। पृथिवी पर इस की उष्णता अधिक आती है। इसी हेतु वायु भी प्रचण्ड रहता है। उष्णता के कारण वायु लघु हो जाता है। वायु में जो जलकण रहते हैं उन्हे भी सूर्य्य सोख लेता है। इत्यादि प्रत्यक्ष दृष्टि में यही कहा जाता है कि वायु का चालक वा वाहक वा उत्पादक सूर्य ही है। विद्वानो! वायु यथार्थ में क्या वस्तु है इस विद्या को वायव्यशास्त्र के द्वारा जानें यदि इस का निरूपण किया जाय तो ग्रन्थ बहुत विस्तार हो जायगा यहां धर्म्म निरूपण ही मुख्य है। जिस लौकिकदृष्टि से आख्यायिका रचित हुई है उस का भाव प्रदर्शन करना यहां अपेक्षित और इष्ट है। आप अब देखें। मानो, वायु एक वस्तु है जो पृथिवी से कई क्रोश ऊपर तक घनीभूत हो कर भरा हुआ है मानो यह एक देव है। और अभी अचल भाव से स्थिर है। क्योंकि अभीतक इस को कार्य्य करने को कोई शक्ति नहीं मिली है। अब सविता (सूर्य) अपनी कन्या उष्णतारूपा सावित्री को वायु के निकट भेजते हैं। इस शक्ति को पाकर वायु अपने कार्य में दक्ष हो जाता है। परन्तु वायु में जो शब्द उत्पन्न करने की एक शक्ति है वह इस की अपनी शक्ति है; जिस को सरस्वती कहते हैं। इस हेतु सरस्वती तो वायु की मुख्य और सावित्री गौण शक्ति है। अतएव ब्रह्मा जी की भी मुख्य पत्नी सरस्वती और गौण सावित्री है इस हेतु सरस्वती का विशेष वर्णन यहां करूंगा।

'ब्रह्मा और सरस्वती'

जैसे विष्णु की लक्ष्मी, महादेव की पार्वती वैसे ही ब्रह्मा की सरस्वती शक्ति मानी गई है। अभी कह आये हैं कि वायु का ही धर्म्म शब्दोत्पत्ति करने का है वायु विना शब्द उत्पन्न नहीं होता। शब्द का ही नाम सरस्वती है। जिस हेतु सरस्वती शब्द स्त्री लिङ्ग है इस हेतु इस को शक्ति के नाम से पुकारते हैं। किस सुन्दरता से वायु देवता आकाश में रन रनाते और वनों के वृक्षों के साथ मधुर ध्वनि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते और जलप्रवाह में मिल सनसनाते, मानो, वीणा बजाते हुए सर्वत्र भ्रमण करते हैं। यही वायु देव मेघ के साथ मिल कर क्या ही घोर भयङ्कर नाद उत्पन्न करते हैं। यही मनुष्य के कण्ठ में प्रविष्ट हो कैसी मधुरता देते हैं। यह देव किस प्राणी को कुछ न कुछ निज गुण नहीं देते हैं। इस से सिद्ध है कि वायु की शक्ति वा पत्नी वा पालयित्री शक्ति सरस्वती है। इसी कारण वायुस्थानीय ब्रह्मा की भी पत्नी सरस्वती मानी गई। सरस्वती नाम वाणी का है इस में प्रमाण :—

श्लोकः। धारा। इला। गौः। गौरी। गान्धर्वी। गभीरा। गंभीरा। मन्द्रा मन्द्राजनी। वाशी। वाणी। वाणीची। वाणः। पविः। भारती। धमनी। नाली। मेलिः। मेना। सूर्या। सरस्वती। निविद्। स्वाहा। वग्नुः। उपब्दिः। मायुः। काकुद्। जिह्वा। घोषः। स्वरः। शब्दः। स्वनः। ऋक्। होत्रा। गीः। गाथा। गणः। धेना। ग्राः। विपा। ननां। कशा। धिषणा। नौः। अक्षरम्। मही। अदितिः। शची। वाक्। अनुष्टुप्। धेनुः। वाल्गुः। गल्दा। सरः। सुपर्णी। वेकुरा। नि०। १। ११।

यहां ५७ सतावन नाम वाणी के हैं। इन में सरस्वती, इला, भारती आदि नाम भी आगये हैं। यह वैदिक कोष का प्रमाण हुआ। अब लौकिक कोश का भी प्रमाण सुनिये।

ब्राह्मी तु भारती भाषा—गीर्वाग्वाणी सरस्वती।
व्याहार उक्तिर्लपितं भाषितं वचनं वचः। अमरकोश॥

वेदों में यह 'सरस्वती' शब्द 'नदी' और वाणी इन दोनों अर्थों में बहुधा प्रयुक्त हुआ है। परन्तु जैसे आजकल यह एक देवी 'वीणापुस्तक धारिणी' मानी जाती है। और वसन्त पञ्चमी आदि तिथि में इस की पूजा होती। वैसी देवी वैदिक समय में कभी नहीं मानी गई। कतिपय मन्त्र सरस्वती सम्बन्ध में यहां उद्धृत करते हैं।

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः। १०॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् । यज्ञं दधे सरस्वती । ११॥
महोअर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना । धियोविश्वा विराजति । १२॥

कोई ऐसा देश नहीं जहां सत्य युक्त और मनोहर वाणी की प्रशंसा न हो और ईश्वर की यह महती कृपा है कि मनुष्यों में व्यक्त वाणी दी है जिस के कारण से ही यथार्थ में मनुष्य मनुष्य है। हम मनुष्य अपने भाव को परस्पर प्रकट करते हैं। एक दो नहीं किन्तु सहस्रों लाखों काव्य साहित्य इसी वाणी के द्वारा प्रकाशित किये गये हैं। जंगली से जंगली मनुष्यजाति गीत संगीत के विवश हैं। हमारे वैदिक यज्ञों में सरस्वती का आधिपत्य न्यून नहीं है जब ऋत्विक् वीणा के ऊपर सामगान करना आरम्भ करते हैं मानो उस समय सब कोई क्या विद्वान् क्या अज्ञानी क्या राजा क्या प्रजा क्या बालक क्या वृद्ध सब कोई सरस्वती देवी के वश हो और विमुग्ध हो चित्र लेख्यवत् हो जाते हैं। इस प्रकार निःसन्देह सरस्वती देवी का प्रभाव बहुत अचिन्त्य अलौकिक है। इस से बढ़ कर साक्षात् रस कोई नहीं। किसी किसी कवि ने इस को ब्रह्मानन्द का सहोदर कहा है एवमस्तु इस सरस्वती के रस को कौन नहीं जानता है। यहां वेदों में भगवान् उपदेश देते हैं कि शब्द का मुख्य प्रयोजन क्या है। इस से क्या क्या आन्तरिक और बाह्य लाभ जीवात्मा को पहुंच सकता है। और इस से यह भी शिक्षा देते हैं कि वाणी को किस काम में लगाना चाहिये। अथ मन्त्रार्थः—(वाजेभिः) विविध प्रकार की जो ग्राम मूर्छना आदि गाने की क्रिया स्वरूप गतिएं हैं उन्हें 'वाज' कहते हैं। उन गतियों के साथ (सरस्वती) सरस वाणी अर्थात् परम पवित्र वेद वाणी और तत्सदृश अन्य वाणी भी (नः) हम लोगों के अन्तःकरण को (पावका) पवित्र करती है। वह कैसी सरस्वती है (वाजिनीवती) जो स्वाभाविका प्रशस्त विविध तान, स्वर आदि गति से युक्ता है पुनः (धियावसुः) जो शीघ्र बुद्धि में वास करने वाली है। ऐसी जो वाणी है वह (यज्ञम्) यजनीय परमात्मा की अथवा यज्ञ की (वष्टु) कामना करनेवाली होवे

(१) वज, ब्रज, गतौ। गति अर्थ में 'वज' धातु है। इसी से 'बाज' बनता है। गान की जो विविध प्रकार की गतिएं हैं। उन्हीं को यहां वाज कहा है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह प्रत्यक्ष अनुभव की बात है कि जब हम लोग उत्तम मनोहर गीतिका-युक्ता और उपदेशमयी सरस्वती (वाणी) सुनते हैं तो उस समय निःसन्देह चित्त ईश्वर की ओर खिंच जाता है। इस से बढ़ कर अन्तःकरण की पवित्रता क्या है। परन्तु यह तब ही हो सकता है यदि वह वाणी 'धियावसु' अर्थात् बुद्धि में पूर्ण रीति से प्रविष्ट हो गई हो। इस से यह उपदेश मिलता है कि वाणी ऐसी बोलनी वा गानी चाहिये जो सब कोई साथ साथ समझते जांय। अब पुनः वेद उपदेश देता है कि हे मनुष्यो! तुम्हारी ऐसी पवित्र वाणी यजनीय ईश्वर की ओर ही लगे इसी से तुम्हारा कल्याण है और यही वाणी का महान् प्रयोजन है। आगे भी इसी प्रकार का भाव जानना। अथवा इस का यह भी अर्थ होगा। (नः) हम मनुष्यों की (सरस्वती) वाणी=भाषण। (पावका) शुद्ध होवे। अर्थात् सत्य युक्ता होवे। वह शुद्ध कैसे हो सकती है तो कहते हैं (वाजेभिः) गतियों से अर्थात् ज्ञानों से वाज=गति=ज्ञान। 'वजव्रज गतौ' क्योंकि वह सरस्वती स्वयं (वाजिनीवती) ज्ञानवती हैं। अर्थात् जब मनुष्य में वाणी होती है। तब उस से भला बुरा विचार करता ही रहता है। वाणी से ही ज्ञान का विचार होता है। इस हेतु वाणी में स्वाभाविक ज्ञान-विचार का धर्म है। पुनः वह पावका कैसे हो सकती है। (धियावसुः) ज्ञान में ही यदि उस का वास हो। अर्थात् यदि प्रतिक्षण ज्ञान की बातों में लगी रहे। वह वाणी (यज्ञं+वष्टु) यजनीय परमात्मा की कामना करे इत्यादि। १० (सूनृतानाम्) सत्य प्रिय वाक्यों की (चोदयित्री) प्रेरणा करने वाली (सुमतीनाम्) शोभनबुद्धि युक्त पुरुषों को (चेतन्ती) चेताने वाली जो (सरस्वती) वाणी है। वह (यज्ञम्) यजनीय परमात्मा को अथवा विविध यज्ञ को (दधे) धारण करती है। अर्थात् जो वाणी प्रिय और सत्ययुक्त है और बुद्धिमान् को सर्वदा चितौनी देने वाली परम शुद्ध पवित्र देवी वाणी है उसी से ईश्वर की स्तुति प्रार्थना हो सकती है। अर्थात् प्रथम वाणी को सत्ययुक्ता प्रिया और निज कर्म्मों की रक्षयित्री बनानी चाहिये। तब उस से यज्ञादि शुभकर्म्म करे यह उपदेश है। ११ (सरस्वती) पूर्वोक्त-गुण विशिष्टा वाणी (केतुना) निज कर्म्म से (महः) बहुत (अर्णः) आनन्दाब्धि रस को जगत् में (प्रचेतयाति) उत्पन्न करती है। अर्थात् पवित्र वाणी से केवल अपना ही उप-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार नहीं होता किन्तु जगत् में भी महान् आनन्दाब्धि विस्तृत होता है। और वही वाणी तब (विश्वा) निखिल (धियः) कर्मों को (विराजति) प्रदीप्त करती है। जब वाणी शुद्ध होती है। तब ही शुभ कर्म्म भी शोभित होते हैं। यह कैसा उत्तम वाग्देवी का वर्णन है। वे विद्वानो ! निःसन्देह प्रथम वाणी पवित्र करनी चाहिये।

इला सरस्वती मही तिस्रोदेवीर्मयोभुवः।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः। ऋ०। १। २५। ९।

अर्थः—(इला+सरस्वती+मही) इला, सरस्वती और मही ये तीन प्रकार की वाणी के नाम हैं। इन के भेद संगीत शास्त्र से प्रतीत होते हैं ये (तिस्रः+देवीः) तीन प्रकार की देदीप्यमान वाणी (मयोभुवः) सुखोत्पन्न करने वाली है और (अस्रिधः) सरस है। ये तीनों प्रकार की वाणी (बर्हिः) मेरे हृदय रूप आसन पर (सीदन्तु) विराजमान होवें। इस मन्त्र में इला, सरस्वती और मही ये तीनों वाणी के नाम है। परन्तु अन्यान्य मन्त्रों में मही के स्थान में प्रायः 'भारती, शब्द आया करता है और इन तीनों के विशेषण में 'देवी' शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है क्योंकि लोगों को वाणी आमोद, प्रमोद, आनन्द देती है इस कारण ये तीनों देवी हैं। अभी वाणी के नामों में ये तीन नाम देखे हैं यद्यपि ये पर्य्याय वाचक हैं तथापि इन में बहुत कुछ भेद है।

'सरस्वती आदि तीन देवियें'

शुचिर्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती।
इला सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः। १। १४२। ९॥

अर्थः—(मरुत्सु+देवेषु) अनेक प्रकार के वायु देवों में (अर्पिता) समर्पित। यहां मरुत् शब्द से विविध प्रकार के गाने के जो षड्ज, ऋषभ, गंधार मध्यम, पंचम, धैवत निषाद ये सात स्वर और ग्राम मूर्च्छना आदि गतिएं हैं उन का ग्रहण है। जब वाणी इन स्वर रूप देवताओं में अर्पित होती है तब (शुचिः) पवित्र और (होत्रा) होमनिष्पादिका अर्थात् यज्ञसम्पादन योग्य होती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस प्रकार शुचि (मही) महती (भारती+इला+सरस्वती) भारती+इला सरस्वती तीन प्रकार की वाणी (वर्हिः) हृदय रूप आसन पर (सीदन्तु) बैठें। वे तीनों केसी हैं (यज्ञियाः) ईश्वर सम्बन्धी वा यज्ञ सम्बन्धी, यहां सायण कहते हैं कि द्युस्थाना वाणी का नाम भारती, पार्थिववाणी का नाम इला। और माध्यमिका (मेघस्थ) वाणी का नाम सरस्वती है । यहां मही शब्द विशेषण में आया है। ९ ।

भारतीले सरस्वति या वः सर्वाउपब्रुवे ।
ता नश्चोदयत श्रिये। १ । १८८ । ८ ॥

अर्थः–(भारति+इले+सरस्वति) हे भारती ! हे इला । हे सरस्वती। (याः+वः सर्वाः) जो आप सबों को (उपब्रुवे) मैं सेवन करता हूं । (ताः) वे आप (नः) हमारे (श्रिये) कल्याण के लिये (चोदयत) प्रेरणा करें हमें शुभ कर्म्म में लगावें यहां अध्यारोप करके वर्णन है किसी ब्रह्मचारी ने तीनों प्रकार की वाणी में परिश्रम किया है । वह अपने मन में विचार कर रहा है और मानो वाणी को साक्षात्कार कर के कहता है कि हे वाणी ! मैंने परिश्रम से तेरा अभ्यास किया है। अब यज्ञादि में मेरी सहायता कर ॥ ऐसा कहने का मनुष्य का स्वभाव है । आज कल भी विद्यार्थी जब एक ग्रन्थ को समाप्त करता है तो बड़ी प्रसन्नता से कहता है कि ग्रन्थ ! अब मुझ पर कृपा रक्खो विस्मृत मत होजाना । इत्यादि । इस से यह सिद्ध नहीं होता है कि इस ने ग्रन्थ को चेतन मान लिया। इस प्रकार कहने का मनुष्यस्वभाव है । इसी स्वभाव का वेद में भी वर्णन है ।

आ भारती भारतीभिः सजोषा
इला देवै र्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक्
तिस्रोदेवीर्वर्हिरेदं सदन्तु । ३ । ४ । ८ ॥
भारतीयवमानस्य सरस्वतीलामही
इमंनोयज्ञमागमन् तिस्रोदेवीः सुपेशसः । ९ । ५ । ८ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन सबों का भी अर्थ पूर्ववत् ही हैं। इस प्रकार अनेक ऋचाओं में इला, भारती, सरस्वती ये तीनों नाम साथ आते हैं।

आदित्यैर्नो भारती वष्टु यज्ञं सरस्वती सह रुद्रैर्न आवीत्।
इडोपहूता वसुभिः सजोषा यज्ञनो देवी रमृतेषु धत्त। य०२९। ८॥

अर्थः—(भारती) भारती वाणी (आदित्यैः) आदित्यों के साथ (नः+यज्ञम्) हमारे यज्ञ की (वष्टु) कामना करे। (सरस्वती) सरस्वती वाणी (रुद्रैः) रुद्रों के साथ (नः) हमारे यज्ञों की (आवीत्) रक्षा करे। (उपहूता) सम्यक् अभ्यसित (इडा) इला वाणी (वसुभिः) वसुओं के साथ (सजोषाः) प्रीति से युक्त हो (नः+यज्ञम्) हमारे यज्ञ को (अमृतेषु) वायु आदि अमर देवों में (धत्त) स्थापित करे। ८।

इस मन्त्र से विस्पष्टतया सिद्ध होता है कि वाणी तीन प्रकार की है आदित्य सम्बन्धी, रुद्र सम्बन्धी और वसु सम्बन्धी। इस में रहस्य यह है। सामवेद आदित्य दैवत। रुद्र नाम वायु का है। यजुर्वेद वायुदैवत और ऋग्वेद अग्नि दैवत। वसु नाम अग्नि का है। इस का विस्पष्ट भाव यह हुआ है कि सामवेद सम्बन्धी गान का नाम भारती। यजुर्वेद सम्बन्धी वाणी का नाम सरस्वती और ऋग्वेद सम्बन्धी वाणी का नाम इला वा इड़ा है। इन्हीं तीन के अन्तर्गत अथर्व है। अथवा सूर्य, वायु और अग्नि इन तीनों तत्त्वों से वाणी बनती है। अथवा तीन प्रकार के जो आदित्य, रुद्र, वसु नाम के ब्रह्मचारी होते हैं। इन तीनों की जो वाणी है वह क्रम से भारती सरस्वती और इला कहलाती है। ये तीनों प्रकार के ब्रह्मचारी अपनी अपनी वाणी से यज्ञ को सुशोभित करें। यह ईश्वर का उपदेश होता है।

देवीस्तिस्रस्तिस्रोदेवीः पतिभिर्न्नमवर्धयन्।
अस्पृक्षद् भारती दिवं रुद्रैर्यज्ञं सरस्वती
इडावसुमती गृहान् वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज। य०२८। १८॥

इस का पूर्ववत् भाव है। यहां तीनों भारती, सरस्वती, इड़ा देविएं पति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् पालक इन्द्र को प्रसन्न कर रहीं हैं। यहां इन्द्र शब्दार्थ परमात्मा है। ऋग् यजुः साम तीनों वाणी ईश्वर की ही स्तुति करती हैं वेदों का पति ईश्वर ही है। जीवात्मा में भी यह घट सकता है क्योंकि यदि जीवात्मा न हो तो उच्चारण कौन करे। जीवात्मा इस वाणी से निःसन्देह अति प्रसन्न होता है परन्तु मुख्यतया 'इन्द्र' शब्दार्थ यहां 'वायु' से 'स्वर' का तात्पर्य है यज्ञ के प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और सायंसवन में जो ऋचाएं पढ़ी जाती हैं और उन के द्वारा जो आहुति होती है उस से सर्वत्र लाभ पहुंचता है इस का इस में वर्णन है।१८

होता यक्षत् तिस्रोदेवीर्न मेषज त्रयस्त्रिधातो अपस इडा सरस्वती भारती महीः। इन्द्रपत्नी हविष्मतीर्य्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज। यजु० ॥ २८। ८ ॥

इस का भी भाव पूर्ववत् है। यहां पर भी इड़ा, सरस्वती और भारती को 'इन्द्रपत्नी' कहा है इन्द्र के पालन करने वाली को 'इन्द्रपत्नी' कहते हैं। महीधर कहते है "इन्द्रपत्नीः इन्द्रस्य पत्न्यः पालयित्र्यः" पत्नी शब्द का अर्थ पालयित्री है यदि वेद न होतो ईश्वर की रक्षा अति कठिन है। इस हेतु वेद वाणी इन्द्रपत्नी है अथवा इन्द्र जिन का रक्षक हो उन्हे 'इन्द्रपत्नी' कहते हैं। "इन्द्रःपतिः पालको यासां ता इन्द्रपत्न्यः"। इत्यादि भाव इस का हो सकता है। विश्वेदेव के साथ एकेला सरस्वती शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है। आगे सरस्वती सम्बन्धी कतिपय ऋचाएं लिखेंगे उस में इस का उदाहरण देखलेना। परन्तु कहीं २ केवल सरस्वती शब्द आया है। जिस के उदाहरण प्रथम भी कुछ लिख आए हैं यहां दो उदाहरण और भी देते हैं।

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्। (१)। ९।६७।३२ ॥

अर्थ=जिन वाणियों में (ऋषिभिः) ऋषियों ने (रसम्) परमात्म स-

नोट (१) यः पावमानीरध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्
सर्वं स पूत मश्नाति स्वदितं मातरिश्वना ॥ १ । ६७ । ३१ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

म्बन्धी विज्ञान रूप रस को (संभृतम्) भरा है उन (पावमानीः) अन्तः करण पवित्र करने वाली वाणियों को (यः) जो ज्ञानीजन (अध्येति) पढ़ते विचारते हैं (तस्मै) उन अध्येताओं के लिये (सरस्वती) वाणी (क्षीरम्) क्षीर (सर्पिः) घृत और (मधूदकम्) मधुरस (दुहे) देती है। यहां भगवान् उपदेश देते हैं कि जो वेदवित् परम ज्ञानी जन हैं उन के ही रचित ग्रन्थ पढ़ने चाहियें उन ही से कल्याण होता है। और जो अवेदवित् नास्तिक जन हैं उन के ग्रन्थ पढ़ने से ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों नष्ट होते हैं। यहां सरस्वती शब्द का अर्थ अभ्यसित विद्या है।

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीं मध्वरे तायमाने
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषेवार्यंदात् ॥ १०। १७। ७॥

(देवयन्तः) परमेश्वर के भक्त जन (सरस्वतीम्) विद्या का (हवन्ते=आददति) ग्रहण करते हैं। अर्थात् विद्या में प्रेम करते हैं। (अध्वरे+तायमाने) यज्ञ जब होने लगता है तब ज्ञानी जन (सरस्वतीम्) विद्या का ही आवाहन करते हैं क्योंकि यज्ञ में विद्या का ही काम पड़ता है। (सुकृतः) सुकृती पुरुष सर्वदा (सरस्वतीम्+अह्वयन्त) विद्या का ही ग्रहण करते आए हैं। जो जन विद्या की शरण में रहते हैं उस (दाशुषे) परिश्रमी पुरुष को (सरस्वती) विद्या भी (वार्यम्) अच्छे वरणीय कर्म्मफल (दात्) देती है। ७।

'सरस्वती और नदी'

इयं शुष्मेभि र्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः।
पारावतघ्नी मघसे सुवृक्तिभिः सरस्वती माविवासेम धीतिभिः ॥
ऋ० ६। ६१। २॥

(इयम्+सरस्वती) यह सरस्वती अर्थात् सरस मधुर जल वाली नदी (शुष्मेभिः) अपनी विदारण करने वाली (तविषेभिः) महान्-प्रचण्ड-वेगवान् (ऊर्म्मिभिः) तरंगों से (गिरीणाम्) तटस्थ पर्वतों के (सानु) शिखरों को (अरुजत्) भग्न करती है। इस में उपमा देते हैं। (विसखाः+इव) कमल के बिस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के (कमल के जड़ में जो कन्द होता है उसे बिस कहते हैं) खोदने वाले जैसे कमल को उखाड़ देते हैं । तद्वत् । वह कैसी है (पारावतघ्नीम्) जो तट से बहुत दूर ग्राम वृक्षादिक हैं उन्हे भी नष्ट करने वाली है । हम लोग (सुवृक्तिभिः) अच्छे (धीतिभिः) उपायों से (अवसे) रक्षा के लिये उस पारावतघ्नी (सरस्वतीम्) सरस्वती के निकट (विवासेम) पहुंचे । भाव इस का यह है कि जब नदियों से उपद्रव पहुंचे तब बुद्धिमानों को उचित है कि इस का पूरा प्रबन्ध करें ।

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्र बाबधाना रथ्येव याति विश्वाअपो महिना सिन्धुरन्याः । ७ । ८५ । १

अर्थ–(एषा) यह (सरस्वती) सरस्वती नदी (धायसा) तीक्ष्ण (क्षोदसा) जल प्रवाह के साथ (प्र×सस्रे) बड़े वेग से दौड़ रही है । यह कैसी है(आयसी+पूः) लौहनिर्मित नगरी के समान (धरुणम्) हम लोगों की रक्षा करने वाली । पुनः कैसी है (सिन्धुः) बड़े वेग से बहने वाली वह सरस्वती (महिना) अपनी महिमा से अर्थात् अपनी तीक्ष्ण धारा से । (अन्याः+अपः) अन्यान्य नदियों को (बावधाना) बाधित करती हुई (रथ्या+इव) सारथी के समान (प्रयाति) जा रही है । जैसे रथ पर बैठ मनुष्य अपने रथ से मार्गस्थ लता-प्रभृतियों को चूर्ण करता हुआ जाता है । तद्वत् सरस्वती नदी अन्य नदियों को दबाती हुई जा रही है । यहां 'अप्' शब्द से नदी का ग्रहण है । १

एकाचेतत् सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयोदुदुहे नाहुषाय ॥ ७ । ९५ । २ ॥

अर्थः–(नदीनाम्) अन्यान्य नदियों में (शुचिः) शुद्ध स्वच्छ जलवाली और (गिरिभ्यः) पर्वतों से निकल कर (आसमुद्रात्) समुद्र पर्य्यन्त (यती) जाती हुई (एका) एक (सरस्वती) सरस्वती नदी (अचेतत्) असंख्य जंगम स्थावरों को प्राण देरही है । इसीको आगे विस्पष्ट करते हैं (भूरेः) बहुत असंख्य (भुवनस्य) भूतजात अर्थात् प्राणियों को (रायः) खुराक भोजन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पहुँचाकर, (चेतन्ती) जिलाती हुई (नाहुषाय) मनुष्य संतान के लिये (घृतम्+पयः) घृत और दूध (दुदुहे) देती है। २॥

नदी का यह कैसा उत्तम वर्णन है। उसी नदीका जल शुद्ध होता है जो पर्वत से निकलती है। जैसे गंगा। एकतो सहस्रों जलजन्तु नदी से पलते हैं। इसके अतिरिक्त इस के पानी से विविध अन्न उत्पन्न होते हैं नदीतट पर शस्यसम्पन्न देश होता है। सर्वदा हरी हरी घासें लगी रहती हैं। ग्रामपशु गौ बैल, भैंस, बकरे, भेड़, घोड़े आदि खूब चरकर सुपुष्ट रहते हैं। इन से गृहस्थ आनन्द से काम लेते हैं। बियाई हुई गौ भैंस खूब घास चर कर अधिक दूध देती है। इस प्रकार यदि बिचारेंगे तो मालूम होगा कि नदी क्या नहीं देती है।

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महोमही रवसा यन्तु वक्षणीः
देवी रापो मातरः सूदयित्नवो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥१०।६४।९॥

अर्थः—(ऊर्मीभिः) तरंगों से संयुक्त (महः+महीः) बड़ों में भी महान् (सरस्वती+सरयुः+सिन्धुः) सरस्वती, सरयु और सिन्धु नदिएं (अवसा) अपने गमन से (वक्षणीः) ढोनेवाली हो (आयन्तु) हमारे देश में आवें। और उन के (देवीः) दिव्य शुद्ध स्वच्छ (मातरः) अनेक पदार्थ के निर्म्माण कर ने वाले (सूदयित्नवः) नौका आदिकों को चलाने वाले (आपः) जल (नः) हमारे देशस्थ (पयः) जल को (घृतवत्) घृत के समान पुष्ट और (मधुवत्) मधु के समान स्वादिष्ट (अर्चत) बनावें। ९

हे विद्वानो ! इस वर्णन के ऊपर ध्यान दीजिये ! परमेश्वर उपदेश देता है कि जहां का जल अच्छा न हो अथवा जल ही न्यून हो वहां नहरें खोदवा कर नदी लेआनी चाहिये। उन नादियों के जल से देशस्थ दुष्ट जल भी अच्छा हो जायगा। इस से केवल इतना ही लाभ नहीं होगा किन्तु वह जल (वक्षणीः) तुम्हारे पदार्थों को ढोने वाला भी होगा। कैसी नदी लानी चाहिये सरस्वती जिस का जल सरस अर्थात् मधुर हो और सरयु=जिस का वेग बहुत हो और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिन्धु=जिसका जल अगाध गंभीर हो। ऐसी २ नदियों को लाकर देश की रक्षा करनी चाहिये।

पञ्च नद्यः सरस्वती मपि यन्ति सस्रोतसः।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत् सरित्। य०-३४-११॥

अर्थ-(सस्रोतसः) समान-स्रोत-वाली (पञ्च+नद्यः) पांच नदिएं (सरस्वतीम्+अपियन्ति) सरस्वती में मिलती हैं। (तु) निश्चय (सा+उ+सरस्वती) वही सरस्वती (पञ्चधा) पांच से मिल कर (देशे) देश में (सरित्+अभवत्) नदी होती है। यहां पञ्च शब्द उपलक्षण मात्र है। जब किसी एक नदी में अनेक नदिएं मिलती हैं तो वही नदी बहुत बड़ी हो कर देश में सरित्= महानदी नाम से पुकारी जाती है। यह ऋचा वाणी में भी घटती है। पांचों इन्द्रियें नदीवत् हैं।

"सरस्वती नाम पर विचार"

आप लोगों को स्मरण रखना चाहिए कि सरस्वती, सरयु, गङ्गा, यमुना, शुतुद्री, परुष्णी, असिक्नी, और वितस्ता आदि जो नाम वेद में आये हैं वे किन्हीं खास नदियों के नाम नहीं। वे गुण वाचक शब्द हैं। अर्थात् नदी के विशेषण हैं। नदी कैसी होती है। नदी किस को कहना चाहिये इस से क्या लाभ हानि है इत्यादि वर्णन अवश्य वेद में होने चाहियें। सृष्टि के आदि में पदार्थ-गुण जान वेद के शब्दों को ही लेले कर पदार्थों के ऋषियों ने नाम रक्खे हैं। वेद में जैसा वर्णन है और जो शब्दार्थ जिस में घट सकता है। तदनुकूल नाम-करण करते गये हैं। दूसरी बात यह भी है कि जो सम्प्रदाय देश में अधिक फैलता है उसी के अनुसार नाम भी होते हैं। जैसे आज कल शिव, राम, कृष्ण, गङ्गा आदि नामों पर लोग अपने सन्तानों के नाम रखते हैं। अति प्राचीन समय में वैदिक धर्म ही सर्वत्र प्रचलित था इस हेतु वेद के शब्दों के ऊपर बहुत नाम हैं वेद में नदी के विशेषण में सरस्वती सिन्धु सरयु आदि नाम आये हैं। अतः अपने देशीय नदियों के भी वैसे ही नाम रख दिये। बहुत दिनों के पीछे जब वेद के यथार्थ अर्थ को भूल गये तब लोग समझने लगे कि इन्हीं नदियों का वेदों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में वर्णन है परन्तु सर्वसिद्धान्त से वैदिकशब्द नित्य माने गये हैं इस हेतु इस में किसी विशेष नदी का नाम नहीं हो सकता। स्मृतियों में कहा गया है:-

ऋषीणां नामधेयानि याश्च वेदेषु दृष्टयः।
शर्वर्य्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्योऽददात्यजः॥
यथर्तावृतु लिङ्गानि नानारूपाणि पर्यये।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा भावा युगादिषु॥ इत्यादि॥

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि वैदिक नाम से ही पदार्थों का नाम करण हुआ हम आगे इन सब शब्दों का एक एक का अर्थ करेंगे। इस हेतु यह शंका नहीं करनी चाहिये कि वेद में अनित्य वा खास किसी वस्तु का नाम है।

'वेद में नदी का वर्णन'

जगत् में नदी भी ईश्वरीय-विभूति-प्रदर्शन में सहायिका होती है वैशाख ज्येष्ठ में जब सूर्य भूमि को दग्ध करना आरम्भ करता है। घासें सूख जाती हैं। उष्णता से लोग व्याकुल होने लगते हैं। छोटे छोटे तालाब सरोवर का जल समाप्त हो जाता है। उस समय हम किस आनन्द से नदी में स्नान करते हैं प्रहर रात्रि से लेकर प्रहर रात्रि तक मनुष्यों की कैसी भीड़ तट पर शोभित रहती हैं। इतना ही नहीं हमारे पशु गौ, बैल, भैंस, बकरे भेड झुण्ड के झुण्ड भानु-रश्मि से सन्तप्त हो पानी पीने को दौड़ते हैं। महिष (भैंस) किस आमोद प्रमोद के साथ घण्टों जल-क्रीड़ा करती रहती हैं। इसी प्रकार रात्रि में अन्य पशु इस नदी से महान् लाभ उठाते हैं। इन सबों से बढ़ कर हमारे खाद्य पदार्थों में यह नदी रस पहुंचाती है। इस के पानी से सैकड़ों भोज्य वस्तुओं को कृषीबल (किसान) सदा उत्पन्न करते रहते हैं। इस का तट सर्वदा उर्वरा (उपजाऊ) रहती है। वर्षा ऋतु में इस की दशा कभी २ अत्यन्त भयंकरी हो जाती है। जहां यह लाभ पहुंचाती है अब वहां इस का पानी इतना बढ़ जाता है कि ग्राम ग्राम में पानी पानी हो जाता है। हजारों गृह गिर कर भूमि में मिल जाते हैं। इस में मनुष्य भी डूब कर बहुधा मर जाते हैं। जहां नदी की बाढ़ होती है। वहां समुद्र के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समान दृश्य प्रतीत होता है। परन्तु इतनी भयङ्करी होने पर भी नदी अपनी उत्पादक-शक्ति से लोगों के दुःख को भुला देती है। जब इस के कारण से पूर्ण शस्य उत्पन्न होते हैं। तब प्रजाएं गद्गद् होजाती हैं। और पिछले क्लेश को भूल जाती हैं इस प्रकार नदी हम को, हमारे द्विपद चतुष्पदों को और अन्य पशु पक्षिणों को जीवन-प्रद जल देती है। अन्न देती है। प्रचुर घास देती है। बहुत धन देती है। शीतलता प्रदान कर अति सुख देती है। स्वच्छ पानी के देने से जीवन की रक्षिका भी होती है। और स्वास्थ्य की रक्षा से मानों व्याधि की भी विनाशयित्री होती है। अपनी तरंग की क्रीड़ा और चञ्चलता से हम को ईश्वराभिमुख करती है। इस हेतु इस को ईश्वरपथ-प्रदर्शिका भी कह सकते हैं। ऐसी सुखप्रदा नदी के गुण कीर्तन वेद में क्यों न होंगे परन्तु क्या इस हेतु नदी की स्तुति प्रार्थना हम मनुष्य करें ?। नहीं नहीं कदापि नहीं। यह तो अज्ञानता की बात है। नदी जड़ है। हमारी स्तुति प्रार्थना को वह नहीं सुन सकती है। क्या वेद इस की स्तुति करने के लिये हमें आज्ञा नहीं देते हैं ? नहीं नहीं कदापि नहीं। वेद का यह अभिप्राय नहीं। वेद इन के गुणों को केवल बतलाता है। और दर्शाता है कि इन में भी ईश्वर की विभूति देखो। आर्य सन्तानो ? जो लोग आज कल गङ्गा कावेरी नर्म्मदा त्रिवेणी अथवा सागर आदि की पूजा करते हैं और इन पर पूजा चढ़ाते हैं और इन में स्नानादि से पाप का कटना समझते हैं वे निःसन्देह बड़े अज्ञानी हैं। वे वेद के तत्त्व से सर्वथा विमुख हैं। ज्ञानी पुरुषो ! मनुष्य ज्ञान के प्रताप से इन सबों से बहुत बड़ा है। मनुष्य के ये सब दासवत् हैं मनुष्य का स्तुत्य, प्रार्थनीय, जपनीय, सेवनीय, एक परमात्मा है। इन सबों का कर्ता धर्ता ईश्वर ही है।

अहंभूमि मददामार्य्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवास अनुकेतमायन्। ऋ० ४। २६। २॥

अर्थः—ईश्वर कहता है हे मनुष्यो ! (अहम्) मैं (आर्य्याय) मनुष्यों को (भूमिम्) निवास के लिये भूमि (अददाम्) देता हूं (अहम्) मैं (दाशुषे+मर्त्याय) आश्रित और यज्ञानुष्ठानादि करने वाले मर्त्यलोक के लिये (वृष्टिम्)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्षा देता हूं। (अहम्) मैं (अपः+वावशानाः) शब्दायमान जल (अनयम्) लाता हूं (देवाः) अग्नि, वायु, सूर्य प्रभृति सकल देव (मम+केतम्) मेरे सङ्कल्प के (अनु+आयन्) अनुगामी होते हैं।

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
अहं प्रजाअजनयं पृथिव्या महं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान्। ऋ०।१०।१८३।३।

(अहम्) मैं (ओषधीषु) ओषधियों में (गर्भम्) गर्भ (अदधाम्) स्थापित करता हूं। (अहम्) मैं (विश्वेषु+भुवनेषु) समस्त भुवनों के (अन्तः) मध्य व्यापक हूं। (अहम्) मैं (पृथिव्याम्) पृथिवी के ऊपर (प्रजाः+अजनयम्) प्रजाओं को उत्पन्न करता हूं (अहम्) मैं (अपरीषु+जनिभ्यः) अन्यान्य सकल निर्म्माण और उत्पन्न करने वाली शक्तियों में (पुत्रान्) सन्तान उत्पन्न करता हूं। इस से यह सिद्ध हुआ कि भगवान् ही जल का भी प्रेरक है भगवान् ओषधि में शक्ति देने वाला है अतः वही सर्वथा पूज्य है। इस ईश्वर को छोड़ अविवेक-वश जो नदी आदि जड़ की पूजा करते हैं वे जड़बुद्धि और बालक हैं।

अस्य श्रवोनद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामापृथिवी दर्शतं वपुः। अस्मे सूर्य्याचन्द्रमसा भिचक्षे श्रद्धेकामेन्द्रचरतो वितर्तुरम्। ऋ० १। १०२। २॥

इसी के यश को प्रवहण शील नदिएं धारण करती हैं। द्यावा पृथिवी इसी का यश प्रगट कर रही हैं। हे भगवन्! हमारी श्रद्धा के हेतु ये सूर्य चन्द्र निरन्तर कार्य्य कर रहे हैं। देखिये ऋषि क्या कहते हैं—

एतस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्यानद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायाञ्चदिशमन्वेति। योऽप्सुतिष्ठन्नद्भ्योऽन्तरो यमापोनविदुर्यस्यापः शरीरं योऽन्तरो यमयन्त्येष आत्मान्तर्याम्यमृतः।

बृहदारण्यकोपनिषद्।

'सरस्वती विद्याधिष्ठात्री देवी'

सरस्वती विद्या की अधिष्ठात्री देवी कैसे बन गई? वेदों के वर्णन से अभी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखा है कि 'सरस्वती' नाम वाणी और विद्या आदि का है। हम देखते हैं कि विद्वानों की प्रतिष्ठा क्या पूर्व समय क्या आज कल सर्वदा होती आई है। जिस समय महाराजों के गृह पर यज्ञ होते थे। जिस में देश देश के भूप आहूत होते थे। सहस्रों लाखों मनुष्य एकत्रित होते थे। उस महायज्ञ में जब विद्वान् सिंहासन पर बैठ कर उपदेश देते होंगे और वेद के गान से सबों के हृदय को अपनी ओर खींचता होंगे। उस समय, अनुमान कीजिये, लोगों के हृदय में उन विद्वानों की कितनी गौरव प्रतिष्ठा होती होगी। लोग समझते होंगे कि इस की जिह्वा पर साक्षात् सरस्वती नृत्य कर रही है। यह ईश्वर की महती कृपा है। इस के ऊपर सरस्वती का अनुग्रह है। आज कल भी लोग विद्वान् और सुवाग्मी को देख कहते हैं कि इस के मुख पर सरस्वती विराजमान है॥ यज्ञ में उद्गाता ऋत्विक् पूर्व समय वीणावाद्य के ऊपर सामगान किया करते थे। इस में सन्देह नहीं कि वाद्य से यों ही लोग मोहित रहते हैं परन्तु जिस समय बड़े प्रवीण जन गाते होंगे उस से तो और अधिक मोहित होते होंगे। इस प्रकार वाणी का अद्भुत प्रभाव देख कर धीरे धीरे लोग समझने लगे कि सरस्वती कोई देवता है जिस की कृपा से मनुष्य जगत् में परम प्रतिष्ठित होता है। पूर्व समय वीणा ही प्रधानतया बजाई जाती थी। इस हेतु लोगों ने समझा कि सरस्वती का बाजा वीणा है। इस प्रकार क्रमशः सरस्वती देवी विद्या और गान दोनों की अधिष्ठात्री देवी बनी। और नादविद्या विशेषतया वायु अर्थात् स्वर के अधीन है। इस हेतु वायु स्थानीय ब्रह्मा की शक्ति समझी गई। परन्तु जैसे लक्ष्मी नारायण, गौरीशङ्कर शब्द प्रसिद्ध है। वैसे 'सरस्वतीब्रह्मा' समस्त शब्द कहीं नहीं प्रयुक्त होता और न लोग बोलते हैं। यद्यपि ब्रह्मा अपूज्य हैं। तथापि सरस्वती की पूजा बहुत है। ब्रह्मा के साथ सावित्री वा गायत्री के भी नाम नहीं आते। ये देविएं भी पूज्य हैं। परन्तु ब्रह्मा नहीं।

'सरस्वती और अमरकोश आदि'

अमरकोश में जहां विष्णु और महादेवजी के नाम आए हैं वहां इन दोनों की शक्ति लक्ष्मी और पार्वती के भी नाम विहित हैं। परन्तु ब्रह्मा के नाम के साथ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न सरस्वती का और न गायत्री सावित्री का नाम आया है। इतना ही नहीं किन्तु अमरकोश में ब्रह्मा की पत्नी वा शक्ति कहीं नहीं कही गई है। यह आश्चर्य प्रतीत होता है। अमरसिंह ने इन्द्रादि देवताओं की भी शक्तियों के नाम दिये हैं। परन्तु ब्रह्मा की पत्नी की कोई चर्चा नहीं इस से प्रतीत होता है कि अमरसिंह के समय तक प्रायःसरस्वती आदि ब्रह्मा की पत्नी नहीं बनी थीं। और न अन्यान्य ही कोई ब्रह्मा की पत्नी मानी जाती थी। पुराणों में कहीं २ सरस्वती विष्णुपत्नी कही गई हैं। परन्तु यह सम्प्रदाय का पक्षपात है "लक्ष्मी सरस्वती गङ्गा तिस्रो भार्या हरेरपि। प्रेम्णा समास्तास्तिष्ठन्ति सततं हरिसन्निधौ" देवीभागत ९। ६। १७। देवी भागवत में सावित्री ब्रह्मा की प्रिया कही गई "पवित्ररूपा सावित्री गायत्री ब्रह्मणः प्रिया"। २। १। ४०। पूर्व समय में सरस्वती नदी की चर्चा बहुधा आती है। मनुजी लिखते हैं।

सरस्वती दृषद्वत्यो र्देवनद्योर्यदन्तरम्।
तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते॥ मनु० २। १७॥

ब्राह्मण ग्रन्थादिकों में भी सरस्वती तट का वर्णन अधिक आता है। इस के तट पर ऋषि लोग प्रायः निवास किया करते थे। ईश्वर की कैसी अद्भुत लीला है आज वह सरस्वती तट कहां है। आज कितना परिवर्तन हो गया। इस में सन्देह नहीं कि यह सरस्वती शब्द हम को बारम्बार ऋषियों के चरित्र, लीला यज्ञ सम्पादन आदि व्यवहारों का स्मरण दिला एक अलौकिक भक्ति प्रेम अथवा श्रद्धा उत्पन्न करता है। ईश्वर! धन्य तेरी महिमा।

"सरस्वती सूक्त"

१–पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञंवष्टु धियावसुः।१०

२–चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञंदधे सरस्वती ११

३–महो अर्णः सरस्वती प्रचेतयति केतुना। धियो विश्वा विराजति। १२। ऋ० १। ३।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

४-इला सरस्वती मही तिस्रोदेवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्व-स्रिधः ॥ १ । १३ । ९ ॥

५-तान् पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्र मदितिं दक्ष मस्रिधम् । अर्य्यमणं वरुणं सोम माश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् । १ । ८९ । ३ ।

६-युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्रपूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ॥ अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते । १ । १०४ । ४

७-शुचि र्देवेष्वर्पिता होत्रा मरुत्सु भारती । इला सरस्वती मही बर्हिः सीदन्तु यज्ञियाः । १ । १४२ । ९

८-यस्ते स्तनः शशयो योमयोभूर्येन विश्वा पुष्यसि वार्य्याणि । यो रत्नधा वसुविद्यः सुदत्रः सरस्वति तमिह धातवे कः । १ । १६४ । ४९ ॥

९-भारतीले सरस्वति या वः सर्वा उपब्रुवे । ता नश्चोदयत श्रिये ॥ १ । १८८ । ८ ॥

१०-त्वमग्ने अदितिर्देव दाशुषे त्वां होत्रा भारती वर्धसे गिरा । त्वमिला शतहिमासि दक्षसे त्वं वृत्रहा वसुपते सरस्वती । २ । १ । ९१

११-सरस्वती साधयन्ती धियं न इला देवी भारती विश्वतूर्तिः । तिस्रोदेवीः स्वधया बर्हिरेद मच्छिद्रं पान्तु शरणं निषद्य । २-३-८ ।

१२-सरस्वति त्वमस्माँ अविड्ढि मरुत्वती धृषती जोष शत्रून् । त्वं चिच्छर्धन्तं तविषीयमाण मिन्द्रो हन्ति वृषभं शंडिकानाम् । २-३०-८

१३-अम्बितमे नदितमे देवितमे सरस्वति । अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि । २ । ४१ । १६ ।

नोट १-टीकाकार 'वोरपत्नी' शब्द से सरस्वती का ग्रहण किया है ६ । ४१ । ७ देखो यहां वीरपत्नी सरस्वती का विशेषण में आया है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१४-त्वे विश्वा सरस्वति श्रिता यूंषिदेव्याम् । शुनहोत्रेषु मत्स्व प्रजां देवि दिदड्ढि नः ।२।४१।१७।

१५-इमा ब्रह्म सरस्वति जुषस्व वाजिनीवती । या ते मन्म गृत्समदा ऋतावरि प्रिया देवेषु जुह्वति । २ । ४१ । १८ ।

१६-आ भारती भारतीभिः सजोषा इला देवै र्मनुष्येभिरग्निः । सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रोदेवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ।३-४-८॥

१७-नि त्वा दधे वर आ पृथिव्या इलायास्यस्पदे सुदिनत्वे अह्नाम् । दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदिहि । ३-२३-४

१८-विद्युद्रथा मरुत ऋष्टिमन्तो दिवोमर्या ऋतजाता अयासः । सरस्वती शृणवन् यज्ञियासो धाता रयिं सहवीरं तुरासः । ३-५४-१३।

१९-इला सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सदन्त्व स्रिधः । ५-५-८

२०-दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णःपत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यती बरिवस्यन्तु शुभ्राः । ५ ४२-१२

२१-आनोदिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजतागन्तु यज्ञम् । हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु।५-४३-११।

२२-अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्रयन्त मरुतोत विष्णो । उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ।५।४६।२।

२३-पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् । ग्नाभिराच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ।६।४९।७॥

२४-ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीलहुष्मन्तो विष्णुर्मृलन्तु वायुः ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यता मिषं नः।६।५०।१२।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

२५-इन्द्रो नेदिष्ठमवसा गरिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ।६।५२।६।

२६-शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाचःशमुरातिषाचःशन्नोदिव्याःपार्थिवाःशंनोअप्याः।७।३५।११

२७-आ यत्साकं यशसो वावशानाःसरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधाराअभि स्वेन पयसा पीप्याना: ।७।३६।६

२८-आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्यो रवो वृणे। याभ्यां गायत्र सृज्यते । ८ । ३८ । १० ।

२९-पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् । ८ । ५४ । ४ ।

३०-भारती पवमानस्य सरस्वतीला मही।
इमं नो यज्ञमा गमन् तिस्रो देवीः सुपेशसः । ९ । ५ । ८ ।

३१-पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः सम्भृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम् । ९ । ६७ । ३२ ।

३२-सरस्वतीं देव यन्तो हवन्ते सरस्वती मध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ।१०।१७।७।

३३-सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ति।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे।१०।१७।८।

३४-सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः।
सहस्रार्घमिलो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ।१०।१७।९।

३५-आपो रेवती क्षयथा हि वस्वः ऋतुञ्च भद्रं बिभृता मृतञ्च।
रायश्चस्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तदृगृणते वयो धात्।१०।३०।१२।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३६–सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो मही रवसा यन्तु वक्षणी।
देवी रापो मातरःसूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधूमन्नो अर्चत ।१०।६४।९।

३७–इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयाऽर्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ।१०।७५।५।

३८–आ नो यज्ञं भारती तूयमेत्विला मनुष्वदिह चेतयन्ति ।
तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं स्योनं सरस्वती स्वपसः सदन्तु ।१०।११०।८।

३९–गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति।
गर्भं ते अश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्करस्रजा । १०।१८४ । २ ॥

इस के अतिरिक्त ऋग्वेद का ६-६१ सम्पूर्ण सूक्त । और ७-९५ । और ७-९६ सम्पूर्ण सूक्त सरस्वती के वर्णन में हैं । प्रत्येक ऋचा में कुछ न कुछ विलक्षणता है । इस हेतु वेद के रसिकों के विचारार्थ बहुत मन्त्रों का संग्रह कर दिया है । यजुर्वेद और अथर्ववेद में कतिपय नवीन ऋचाएं हैं । यजुर्वेद से कई एक ऋचाओं का अर्थ यहां किया गया है । ग्रन्थ के विस्तार के भय से सब का नहीं हो सका । परन्तु बुद्धिमान् लोग इतने से ही बहुत कुछ विचार सकते हैं । इस में सन्देह नहीं कि वेदों के अध्ययन अध्यापन की रीति छूट जाने से वैदिक शब्द प्रायः नवीन प्रतीत होते हैं । और इसी हेतु कठिनता का बोध होता है । परन्तु इस हेतु निराश नहीं होना चाहिये । जब तक वेदों के ऊपर पूर्ण विचार नहीं होगा और वैदिक शब्दों का भाव नहीं समझेंगे । तब तक लोगों को संस्कृत विद्या का किञ्चिन्मात्र भी वास्तविकतत्त्व विदित नहीं हो सकता और किस प्रकार यहां नाना देव देवी की सृष्टि हुई इस का भी भेद वेद के बिना कदापि नहीं लग सकता । बहुत क्या कहें । भारतवर्षीय जीवनतत्त्व ही केवल तब तक अपूर्ण नहीं रहेगा किन्तु पृथिवी भर के धर्म्म सम्प्रदाय का जीवनतत्त्व तब तक अज्ञात रहेगा जब तक वेदों के ऊपर पूर्ण विचार नहीं होगा। हे आर्य विद्वानो ! मनुष्य मङ्गलार्थ वेद के अध्यपन अध्यापन का प्रचार करो ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'ब्रह्मा और हंस वाहन'

लौकिक वैदिक दोनों भाषाओं में सूर्य के नामों में एक नाम हंस भी है 'भानुर्हंसः सहस्रांशु स्तपनः सविता रविः' भानु, हंस सहस्रांशु तपन, सविता रवि आदि सूर्य के अनेक नाम हैं। पूर्व में वर्णन हो चुका है कि सूर्य की उष्णता से वायु फैलता रहता है इस कारण मानों सूर्य वायु का वाहन है अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाने में सहायक है। जो वायु एक जगह जमा हुआ रहता है। उस में किरण पड़ने से गति होने लगती है। तब वह उस स्थान को छोड़ इधर उधर फैलने लगता है। यही सूर्य-कृत वायु का वाहनत्व है। इस से सिद्ध हुआ कि वायु का वाहन सूर्य है। जब वायु के स्थान में एक मूर्तिमान् शरीर-धारी देव कल्पित हुआ तो आवश्यक हुआ कि शरीर-धारी ही इस का वाहन होना चाहिये। और वह ऐसा हो जिसका नाम सूर्य के किसी नाम से मिलता हो। वह एक हंस शब्द है जो सूर्य और पक्षी इन दोनों का वाचक है इस हेतु वायुस्थानीय ब्रह्मा जी का वाहन हंस पक्षी कल्पित हुआ। जैसे हंस पक्षी कहा जाता है कि मिश्रित दूध पानी में से दूध पी लेता है पानी छोड़ देता है। वैसे सूर्य भी पृथिवी आदि में मिश्रित जल को खींच लेता है। अन्य पदार्थ को छोड़ देता है। हंस पक्षी भी महाश्वेत होता है इत्यादि गुण और नाम की समानता देख हंस पक्षी ब्रह्मा का वाहन माना गया है।

'ब्रह्मा का निवासस्थान और पुष्कर'

जैसे विष्णु का क्षीरसागर और रुद्र का कैलास-पर्वत निवास-स्थान वर्णित है वैसे ब्रह्मा जी का कोई नियत स्थान नहीं है। इस का भी कारण वायु है। वायु का कोई नियत स्थान नहीं वह सदा अन्तरिक्ष में चला करता है। कभी विश्राम नहीं लेता। हां, पुराण में यह वर्णन आता है कि ब्रह्मा जी कमल के ऊपर बैठ कर सृष्टि करते हैं। कमल का एक नाम 'पुष्कर' आता है "बिस प्रसून राजीव पुष्करांभोरुहाणि च" बिस, प्रसून, राजीव, पुष्कर और अम्भोरुह आदि अनेक नाम कमल के हैं। परन्तु 'पुष्कर' यह नाम आकाश=अन्तरिक्ष का भी है यथा :-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अम्बरम् । वियत् । व्योम । बार्हिः । धन्व । अन्तरिक्षम् । आकाशम् । आपः । पृथिवी । भूः । स्वयम्भूः । अध्वा । पुष्करम् । सागरः । समुद्रः । अध्वरम् । इति षोडशान्तरिक्ष नामानि नि० १ । ३ ॥

इस में पुष्कर शब्द आया है और :—

उतासि मैत्रावरुणो वासिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन् मनसोऽधिजातः ।
द्रप्संस्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वेदेवाः पुष्करेत्वाददन्त ॥ ऋ० ७ । ३५ । ११ ।

इस मन्त्र की व्याख्या में यास्काचार्य्य 'पुष्कर मन्तरिक्षं पोषति भूतानि' पुष्कर शब्द का अन्तरिक्ष अर्थ करते हैं । अब आप विचार सकते हैं कि ब्रह्मा का निवासस्थान वा सृष्टि करने का स्थान पुष्कर क्यों माना है । वायु पुष्कर अर्थात् अन्तरिक्ष में रहता है । वायुस्थानीय ब्रह्मा पुष्कर अर्थात् कमल के ऊपर रहता है । इस कारण ही ब्रह्मा का निवासस्थान पद्म है । और इसी कारण राजपूताने में अजमेर के समीप 'पुष्कर' नाम का तीर्थ कल्पित कर वहां ब्रह्मा का मन्दिर बनाया है ।

'ब्रह्मा और ब्रह्मा अहोरात्र'

ब्रह्मा जी का दिन बहुत बड़ा माना गया है । एक कल्प एक दिन है ब्रह्मा का जागरण सृष्टि है । और शयन प्रलय है । जब तक जागे हुए रहते हैं तब तक ब्रह्मा जी सृष्टि करते रहते हैं । जब सृष्टि समाप्त हो गई । इस गुण का भी कारण वायु है । वायु सृष्टि पर्य्यन्त शयन नहीं करता है । इस में क्या ही सन्देह है कि वायु जिस समय शयन करे उसी क्षण जीवों का प्रलय हो जाय । और भी लौकिक दृष्टि से एक घटना देखते हैं कि सूर्य हमारी दृष्टि से बाहर चला जाता है । अग्नि भी शान्त हो जाती है । परन्तु वायु सदा विद्यमान ही रहता है । मानों, वायु कभी शयन ही नहीं करता है इस हेतु वायु का अहोरात्र, मानों, बहुत बड़ा होता है । इसी कारण वायु स्थानीय ब्रह्मा का भी दिन बहुत बड़ा माना गया उपनिषदों में कहा गया है:—

निम्लोचन्ति ह्यन्या देवता न वायुः सैषाऽनस्तमिता देवता यद्वायुः । बृ० उ० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लौकिक-दृष्टि से यह वर्णन है कि सब देवता अस्त होते हैं परन्तु वायु नहीं वह यह वायु अनस्तमिता देवता है। आर्य्यो! यह सब घटना हमें सूचित करती है कि वायु के स्थान में ब्रह्मा कल्पित हुआ है। इस में अणुमात्र सन्देह नहीं।

'ब्रह्मा ऋषि'

तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच। प्रजापतिर्मनवे। मनुः प्रजाभ्यः।

छा० उ० २-११ ४॥ ८-१५-१॥

तुरः कावषेय प्रजापतेः। प्रजापतिः ब्रह्मणः। बृ०उ० ६-५-४।

ब्रह्मा ने इस ज्ञान को प्रजापति से कहा। प्रजापति ने मनु से। मनु ने प्रजाओं से। इत्यादि प्रमाण से प्रतीत होता है कि ब्रह्मा कोई प्रसिद्ध ऋषि भी हुए हैं।

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता।

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वायज्येष्ठपुत्राय प्राह। मुण्डकोपनिषद्।

यह विद्वान् ब्रह्मा ऋषि की प्रशंसा मात्र है। निःसन्देह विद्वान् लोग अपनी विद्या से जगत् के कर्त्ता गोप्ता होते हैं जगत् में विविध कला कौशल उत्पन्न कर जगत् के रक्षक होते हैं। पुराणों में भी ब्रह्मा का ज्येष्ठपुत्र अथर्वा है यह कहीं भी उक्त नहीं है। यह ब्रह्मा कोई अन्य है। प्रजापति के पिता यह ब्रह्मा नहीं हैं।

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।

तंह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणं प्रपद्ये। श्वेता० उ० ६। १८॥

यह ब्रह्मज्ञानी ऋषि के विषय में कहा है। क्योंकि सृष्टि की आदि में जो शुद्ध पवित्र रहते हैं उन को ही भगवान् वेद का आदेश करते हैं। जाति में यहां एक वचन है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'ब्रह्मा और ब्रह्मा की पूजा'

पुराणों में ब्रह्मा जी अपूज्य सिद्ध किये गये हैं। इन के कई एक कारण पौराणिकों ने कहे हैं। कोई कहते हैं कि अपनी दुहिता के ऊपर कुदृष्टि डाली इस हेतु वह अपूज्य हैं। किसी का कथन है कि एक समय महादेव के समीप मिथ्या बोले इस कारण अपूज्य हैं इत्यादि कल्पित समाधान हैं। परन्तु यह सब कल्पना मात्र ही है। जब वायु-भिन्न ब्रह्मा कोई पृथक् देवही नहीं तो वह अपनी दुहिता के ऊपर कुदृष्टि क्या डालेंगे और क्या असत्य भाषण करेंगे। और ऐसे ऐसे कलङ्की अनेक देव हैं जिन की पूजा बराबर होती है। क्या चन्द्रमा के ऊपर छोटा कलङ्क है। एवमस्तु। चतुर्मुख-सृष्टिकर्ता का यह तात्पर्य कदापि नहीं हो सकता। वह समझता था कि मैं एक देवता को वायु के स्थान में बना रहा हूं। जिस समय इन देवताओं की कल्पना हुई है। वह जैन का समय था। वे तीर्थङ्करों को प्राण-प्रतिष्ठा दे कर पूजते थे। परन्तु ब्रह्मा की प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। क्योंकि वह स्वयं प्राणस्वरूप है। और जो वायु सदा चलता रहता है उस को स्थिर वा बद्ध कर रखना अनुचित है। इस के अतिरिक्त एक कारण यह है कि वायु सर्वगत प्रत्यक्षतया भासित होता है। भीतर बाहर भराहुआ है। उपनिषदों में इस विषय का विस्तार से वर्णन है। इस के विना क्षणमात्र जीवन नहीं रह सकता है। यह प्रतिक्षण अपने कार्य्य में लगा हुआ है। इत्यादि वायु के गुणों से ब्रह्मा-रचयिता परिचित था इस हेतु इसको आवाहनादि-क्रिया से क्लेशार्त्त करना और उस से जगत् के कार्य को बन्द करना अनुचित समझा और इस को असम्भव भी मान इस की पूजा नहीं चलाई। तथापि सब देवों की पूजा के अन्त में इन की संक्षेप पूजा कही गई है। पीछे लोग इन को अपूज्य होने के अनेक कारण वर्णन करने लगे। आश्चर्य की बात है कि जिस का सन्तान स्थावर जङ्गम सब ही कहा जाता है। उस की पूजा नहीं होती।

उपसंहार

हमनें यहां आप लोगों को दरसाया है कि सूर्य ही वायु का पिता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्योंकि सूर्य के किरण के पड़ने से चतुर्मुख-वायु का जन्म होता है। इसी विषय को यों भी वर्णन कर सकते हैं कि सूर्य अपनी शक्ति वायु को देता है। तब वायु शक्तिमान् होता है। इस शक्ति को रूपकालङ्कार से मान लीजिये कि सविता की पुत्री है। अतएव वायु का श्वशुर भी सविता ही हुआ। पुनः इसी विषय को यों भी वर्णन कर सकते हैं कि सूर्य ही वायु को, मानो ढोता फिरता है। क्योंकि सूर्य की उष्णता से ही वायु गतिमान् होता है। इस हेतु वायु का वाहन भी सूर्य ही हुआ। कदाचित् आप कहेंगे कि यह क्या ?। परन्तु आप पुराण की ओर देखिए। एक ही शरीर दो भागों में बँट गया एक स्त्री शतरूपा दूसरा मनु। इन दोनों में विवाह हुआ। अथवा सारी सृष्टि तो ब्रह्मा जी से हुई। इस हेतु सब ही ब्रह्मा जी के पुत्र पुत्री हुए। फिर ब्रह्मा जी की स्त्री कोन हो ?। अथवा यों देखिए सारी सृष्टि ब्रह्मा जी ने की। समुद्र को भी ब्रह्मा जी ने ही बनाया। उस समुद्र से लक्ष्मी हुई। इस हिसाब से लक्ष्मी जी ब्रह्मा की पौत्री हुई। विष्णु जी ब्रह्मा के पिता हैं फिर विष्णु और लक्ष्मी में विवाह कैसे पर्वत को भी ब्रह्मा जी ने ही बनाया। उस पर्वत से पार्वती देवी जी का जन्म हुआ। वह पार्वती भी ब्रह्मा की पौत्री हुई। महादेव ब्रह्मा के पुत्र हैं। फिर पुत्र पौत्री में विवाह कैसे। किसी प्रकार से आप देखें पौराणिक कथा की संगति नहीं लग सकती है। और मैं तो यह कहता हूं कि सूर्य वायु पृथिवी आदि सब जड़ पदार्थ हैं। इन में न कोई किसी का पिता न किसी का कोई पुत्र। यह सब रूपकालङ्कार-मात्र है। बारम्बार इस को कहा है। एवमस्तु। प्रसंग देखिये। सूर्य का ही नाम विष्णु है। इस हेतु वायुस्थानीय ब्रह्मा का पिता वा जनक विष्णु है। सूर्य का भी एक नाम हंस है इस हेतु हंस ब्रह्मा का वाहन है और सूर्य की शक्ति का नाम सावित्री है। इस हेतु ब्रह्मा की पत्नी सावित्री है इत्यादे भाव जानना। मैंने यहां संक्षेप से सब कुछ वर्णन किया है विस्तार से आप लोग स्वयं विचार लेवें। परन्तु इस विषय पर सदा ध्यान रक्खें कि धीरे धीरे ब्रह्मा प्रभृति की कथाओं में बहुत कुछ परिवर्तन होता गया। जो उसका यथार्थ भाव था उस की विस्मृति से नूतन नूतन आख्यायिकाएं बनती चली गईं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आपो वत्सं जनयन्तीर्गर्भमग्रे समैरयन् ।
यस्योतजायमानस्योल्वआसीद्धिरण्ययः ।
कस्मै देवाय हविषा विधेम । अ० ४ । २ । ८ ॥
सुभूः स्वयम्भूः प्रथमोऽन्तर्महत्यर्णवे । दधे हगर्भमृत्वियं यतोजातः प्रजापतिः ।
यजुः ॥ २३ । ६३ ॥
योभूतानामधिपतिर्यस्मिल्लोका अधिश्रिताः य ईशे महतो महांस्तेन गृह्णामि
त्वामहं मायगृह्णामित्वामहम् । यजु० ॥ २० । ३२ ॥
अर्चत प्राचत प्रियमेधासो अर्चत
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ऋ० वे० ८ । ५८ । ८

हे विद्वानो ! आओ परिवार सहित हम सब मिल कर उसी परमात्मा की पूजा उपासना प्रार्थना करें जिस की कृपा से यह समस्त भुवन चेष्टित हो रहा है ।

इति श्री मिथिलादेशनिवासि शिवशङ्कर शर्म्म-
कृते वेदतत्त्वप्रकाशे—
त्रिदेव निर्णये
चतुर्मुख निर्णयः समाप्तः ।

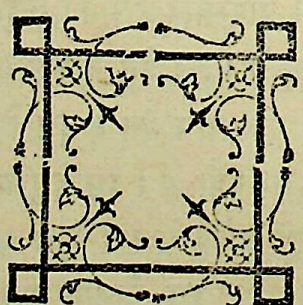

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ रुद्रनिर्णयः

रुद्र = मेघस्थ-अग्नि = वज्र, विद्युदेव Lightning

ईश्वर भक्तिपरायणजनो ! क्या ही लीला उस की है। देखिये। मेघ में भी अग्नि विद्यमान है। कहां शीतल जल। कहां विद्युत्प्रकाश। कहां प्राण-प्रद वारिद। कहां जीवनहर्ता मेघ से विद्युत्पात। कहां वारिवाह के लिये प्रजाओं की परम उत्सुकता। कहां ओले के गिरने से चारों तरफ हाहाकार। कहां मेघ के जल से वनस्पति, लता, ओषधि, वीरुध, वृक्षादिकों की पुष्टि और अनन्त वृद्धि। कहां उसी के पत्थर से उन वनस्पति प्रभृतियों का विनाश। आहा ! क्या-ही ईश्वर की घटना है। विज्ञानी पुरुषो ! भूमिस्थ जलवाष्प से मेघ बनता है। वाष्प के समय इस की शक्ति हम मनुष्यों को कुछ भी प्रतीत नहीं होती। परन्तु वही वाष्प मेघ बन जाने पर अद्भुत-शक्ति-सम्पन्न हो जाता है इस को देख कर मनुष्य आनन्दित और भय-भीत दोनों साथ साथ होते हैं। जब धाराधर[१] बड़े जोर से गरजना आरम्भ करता है तो सब डर जाते हैं। हृदय धड़कने लगता है। धैर्य्य नहीं रहता। ऐसा न हो कि कहीं वज्र गिरे। मैं भस्म हो जाऊं। मेरे गृह जल जायं। प्रिय बच्चों पशुओं पर गिर कर यह विद्युत् मेरी हानि न करे। ईश्वर रक्षा करो। इस के साथ साथ आनन्द भी असीम प्राप्त होता है। मुसला धार जल गिर रहा है। खेत उपजेंगे। घासें बहुत होंगी। पशु खा पी कर सुपुष्ट होवेंगे। उष्णता चली जायगी। प्राणप्रद-शीतलता प्राप्त होगी। इस प्रकार मेघ से हानि और लाभ दोनों हैं। लाभ अनन्त। हानि किञ्चिन्मात्र। अब आप विचारें कि मेघस्थ अग्नि कैसा तीक्ष्ण है। कैसा घोर नाद करने वाला है

(१) मेघ। (२) मेघ। (३) मेघ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कैसा दौड़ता है। इस की शुश्रूषा देखिये। काली काली कादम्बिनी चारों ओर छा जाती है। इस के ऊपर विद्युल्लता कैसी शोभा देती। क्षण में कोई विद्युत् प्रकाश कर विलुप्त हो जाती है। कोई अशनि मेघ से गरज गरज कर पृथिवी पर गिर पदार्थ को भस्म कर देता है। कैसा यह तीक्ष्ण अग्नि है। कितना जोर से दौड़ता है। पृथिवी पर भी अग्नि है। परन्तु ऐसा तीक्ष्ण नहीं। पृथिवी पर की आग क्षण क्षण में बूतती नहीं। मेघ की आग क्षण में दृष्टि गोचर होती है परन्तु क्षण में ही छिप जाती है। पृथिवीस्थ आग देर से किसी पदार्थ को भस्म करती है। परन्तु मेघस्थ पलमात्र में दग्ध कर देती है। पृथिवीस्थ वह्नि दौड़ती नहीं। परन्तु मेघस्थ क्षणमात्र में सहस्रों क्रोश दौड़ जाती है। जब किसी दारु से पावक प्रकट होता है तो उतना घोर नाद नहीं होता। परन्तु मेघ से जब प्रकट होता है तो अति भयङ्कर गर्जन होता है। इत्यादि अनेक भेद देखते हैं।

अब आर देखते हैं कि मेघ में कैसा एक घोर नाद होता है। यह नाद करने वाला कौन है ?। मानों यह एक देव है। जो इतना गरज रहा है उस का नाम 'वज्र' है। इसी को कुलिश, भिदुर, पवि, शतकोटि, स्वरु, अम्ब, दम्भोलि, ह्रादिनी, अशनि कहते हैं। 'वज्र' शब्द पुंल्लिङ्ग भी है। इस हेतु यह पुरुष देव है। इस का गरजना मानों रोना है। जब यह रोता हुआ मेघ के ऊपर दौड़ता है तो भूमिस्थ प्राणी को भी रुला देता है। जिस हेतु यह रोता हुआ दौड़ता है। और अन्यान्य जीवों को भी भयभीत बना रुलाता है इस हेतु इसी वज्र का नाम 'रुद्र' है। जब जीमूत अन्तरिक्ष में स्थिर रहता है। तब इस का स्वरूप हिमालय पर्वत के समान ही भासित होता है। इसी हेतु वैदिक भाषा में पर्वत के जितने नाम हैं वे सब के सब मेघ के वाचक हैं। इस हेतु मेघ तो पर्वत है। और मेघोत्पन्ना विद्युत् पार्वती है। यह विद्युद्रूपा पार्वती रुद्र देव की स्त्री हैं। मेघ पानी देता है। इस हेतु यह 'वृषभ' (वर्षा करने वाला) कहलाता है। यह वृषभ (मेघ) रुद्र (वज्र) का वाहन है यह रुद्र मानो मेघ पर बैठा हुआ है। जो विद्युत् चारों ओर चमकती हैं। वे इस के केश वा जटाएं हैं। इस हेतु

(१) परमशोभा। (२) मेघमाला। (३) वज्र। (४) मेघ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यह वज्रदेव जटाजूट, केशी और घूर्जटि हैं। जो विद्युत् पृथिवी पर गिरती हैं। वे इस के बाण हैं। और जो मेघ में धनुषाकार प्रकाशित होते हैं वे इस के धनुष हैं। इस का नाम पिनाक है। यही पिनाकं इस के हाथ में हैं। यह अपने विद्युद्रूप अस्त्र से सब को भस्म करता है। अतः इस का चिह्न भस्म है। मेघधारा, मानों शान्ति के हेतु इस के ऊपर गिर रही है इसी हेतु यह गंगाधर है। मेघ की जो घटा है यही गजचर्म्म के समान है। अतः यह 'कृत्तिवासा' चर्म्म वस्त्र वाला है मेघ के ठीक ऊपर चन्द्रमा निकलता हुआ दीखता है। इस हेतु यह रुद्र (वज्र) चन्द्रधर है। इस का जल ही भूषण है। यदि जल न होतो इस का अस्तित्व ही नहीं हो सकता है। परन्तु पानी को 'अहि' कहते है। इस हेतु 'अहि' इस का भूषण है। परन्तु 'अहि' सर्प को भी कहते हैं। अतः यह सर्प भूषण है। जब यह वज्र गिरता है तब इस का स्वरूप अतिशय महान् आकाश पाताल व्यापक प्रतीत होता है। अतः यह 'महादेव' है। इसी हेतु इस का एक नाम शतकोटि भी है। यह अशनिदेव मेघरूप वृषभ के ऊपर बैठ मेघ और विद्युत् आदि का शासन करता है। अतः यह ईश, ईशान, महेश आदि है। यह भयङ्कर रूप धारण कर पदार्थों को भस्म करता है। अतः संहारकर्ता है। परन्तु यही देव जल बरसाता है जिस से विविध वनस्पति लता प्रभृति पोषण पाती हैं अतः यह ओषधीश्वर है। और उन घासों से पशु पुष्ट होते हैं अतः यह 'पशुपति' भी है। कभी मेघ श्वेत, कभी श्याम, कभी काला होता है यही मेघ वज्र देव का कण्ठ भूषण है। अतः नीलग्रीव, शितिकण्ठ वज्र ही है। इत्यादि विद्युद्देव के समग्र विशेषण इस रुद्र में सम्भास हैं इस हेतु निःसन्देह यह विद्युद्देव अर्थात् वज्र का प्रतिनिधि है। मुख्यता इसी की है। परन्तु सम्पूर्ण आग्नेय शक्ति का यह प्रतिनिधि है आगे के प्रमाणों से आप लोगों को विस्पष्ट बोध होगा। हे सहृदय मनुष्यो! आप को विचारना चाहिये कि इस रुद्र के साथ इतनी उपाधिआं क्योंकर हैं। इस का वाहन वृषभ नन्दी (बैल) जटा में गङ्गा। शिर पर चन्द्रमा शरीर पर सर्प। चर्म्म का वस्त्र। तीन नेत्र। पांच मुख। बिल्वपत्र। त्रिशूल। रुद्राक्ष। पर्वत-निवास। कभी नग्न। कभी कृत्तिवासा। कभी सती। कभी पार्वती इनकी शक्ति। भूत प्रेत साथी। इत्यादि उपाधियों का क्या कारण है। ये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सब हमें क्या सूचित करते हैं। क्या ऐसा कोई व्यक्ति विशेष हुआ है या यह कल्पित है। मनुष्य ज्ञान के लिये उत्पन्न हुआ है। इस हेतु हमें विचार करना चाहिये। आगे हम रुद्र देव के एक२ गुण के ऊपर विचार करेंगे। जिस से आप लोगों को पूर्ण बोध होजाय कि यह महादेव कल्पित देव हैं। रुद्र को आजकल "शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः। ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्रशेखरः। भूतेशः खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः। मृत्युञ्जयः कृतिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः इत्यादि"। शम्भु, ईश, पशुपति, शिव, शूली, महेश्वर, ईश्वर, शर्व, ईशान शङ्कर चन्द्रशेखर, आदि कहते हैं। वेदों में रुद्र शब्द का पाठ अधिक है। पुराणादिकों में भी इसी शब्द से आख्यायिका प्रारम्भ होती है अतः इस शब्द की प्रधानता है। हम भी प्रथम इसी शब्द से निर्णय आरम्भ करते हैं। इस देव का रुद्र नाम क्यों हुआ ?

'अग्निवाचक रुद्र शब्द'

अग्निरपि रुद्र उच्यते तस्यैषा भवति :—

जराबोध तद्विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय॥
स्तोमं रुद्राय दृशीकम्। नि०दै०। ४। ८॥

'जराबोध' इस मन्त्र के ऊपर यास्क कहते हैं कि अग्नि भी रुद्र कहलाता है और इस के प्रमाण में यह ऋचा है। दुर्गाचार्य के अनुसार ऋचा का अर्थ लिखते हैं। हे भगवन्! अग्नि! जो (जरा[1]) स्तुति मैं करता हूं उस को आप (बोध) समझें। अथवा (जराबोध) स्तुतियों से यजमान के प्रयोजन समझ देवों के समझाने वाले हे अग्निदेव! आप (यज्ञियाय) यज्ञ-सम्पादन-करने वाले (विशे-विशे) मनुष्य के लिये (तत्) उस उस कार्य्य को (विविड्ढि) करें जिस२ को आप उचित समझें। तब (रुद्राय) आप के लिये मनुष्य (दृशीकम्) दर्शनीय उत्तम (स्तोमम्) स्तुति उच्चारण करेंगे। यहां अग्निके लिये विशेषण हो कर रुद्र शब्द का प्रयोग हुआ है। यहां सायण अर्थ करते हैं कि (रुद्रायक्रू-

(१) जरा स्तुतिर्जरतेः स्तुतिकर्मणः। नि० दै० ४। ८। स्तुत्यर्थक 'जृ' धातु से (जरा) बनता है। वेदों में स्तुति के अर्थ में (जरा) शब्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

राय अग्नये) क्रूर अग्नि को रुद्र कहते हैं। क्रूराग्नि वज्र ही है। यहां रुद्र शब्द का अर्थ ईश्वर में भी घट सकता है। जो दुष्टों को दण्ड देवें। हे स्तुति से बोध्यमान प्रकाशस्वरूप ईश्वर! आप सब मनुष्य के कर्त्तव्य को जानते हैं। आप के लिये ही उत्तम स्तोत्र है।

अग्निं सुम्नाय दधिरे पुरोजना वाजश्रवसमिह वृक्तबर्हिषः।
यतस्रुचः सुरुचं विश्वदेव्यं रुद्रं यज्ञानां साधदिष्टिमपसाम् ॥ ऋ०।३।२।५॥

अर्थ :—(वृक्तबर्हिषः) बिछाये कुशासन पर बैठे हुए (यतस्रुचः) हाथ में स्रुवा लिये हुए (जनाः) यज्ञ करने वाले ऋत्विक्जन (सुम्नाय) सुखार्थ (इह) यहां (अग्निम्) अग्नि को (पुरः) सामने (दधिरे) रख कर होम कर्म्म कर रहे हैं अग्नि कैसे हैं। (वाजश्रवसम्) प्रत्येक वस्तु में गति देने वाले। पुनः (सुरुचम्) सुन्दर दीप्ति वाले। पुनः (विश्वदेव्यम्) सब पदार्थों को सुख पहुंचाने वाले। पुनः (रुद्रम्) शीत-अन्धकारादि-जनित दुःखों के नाश करने वाले पुनः (अपसाम्) कर्म्मवान् (यज्ञानाम्) यजमानों के (साधदिष्टिम्) इष्ट कार्य्य सिद्ध करने वाले ऐसे अग्नि को स्थापित कर ऋत्विक् होम कर रहे हैं। यहां प्रसङ्ग ही अग्नि के विशेषणों में रुद्र शब्द आया है। और शीतादि दुःखों का नाश करना अर्थ है।

आ वो राजान मध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नो रचित्ता द्विरण्यरूप मवसे कृणुध्वम। ऋ० ४।३।१॥

अर्थ=ईश्वर उपदेश देता है कि हे मनुष्यो ! तुम (वः+अवसे) अपनी रक्षार्थ (तनयित्नोः) विद्युत्समान आकस्मिक उपस्थित होने वाले (अचित्तात्) मरण से (पुरा) पहले ही। (अग्निम्+आकृणुध्वम्) अग्निको शरण बनाओ। अर्थात् विविध कर्म्मों का सम्पादन करो। यहां अग्नि शब्द से कर्मकाण्ड का ग्रहण है अग्नि कैसा है। (अध्वरस्य राजानम्) यज्ञ का अधिपति (रुद्रम्)शब्द

(१) बर्हिष = कुश। २-स्रुच = स्रुवा। ४-यज्ञ = यजमान। सब भाष्यकारों ने 'यज्ञ' शब्दार्थ यहां 'यजमान' किया है। ३-अपस् = कर्म्म। और कर्म्म करने वाला॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता हुआ बढ़ने वाला (होतारम्) होता (रोदस्योः) द्युलोक और पृथिवी लोक में (सत्ययजम्) परमात्मा के गुण प्रकट करने वाला (हिरण्यरूपम्) हिरण्यवत् देदीप्यमान । यहां पर भी 'रुद्र' शब्द अग्नि विशेषण है । यहां सायण यह भी कहते हैं कि 'यद्वा एषा वा अग्नेस्तनूरुद्रइति' निश्चय, अग्नि की यह तनु है जो यह रुद्र है । इस प्रकार अग्नि को भी रुद्र कहते हैं । यह वेदों की ऋचा से सिद्ध होता है । यहां शब्द करता हुआ बढ़ने वाला अर्थ है । जब अग्नि में गीली आहूति दी जाती है तो अग्नि से शब्द उत्पन्न होता है । इस कारण अग्नि रुद्र है ।

'रुद्र और विद्युत्'

या ते विद्युदवस्रष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परिसा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः । ऋ० ७।४६।३ ॥

अर्थ—हे रुद्र ! तुम्हारी जो (दिवः+परि) अन्तरिक्ष से (अवस्रष्टा) दूर फेंकी हुई (विद्युत्) विद्युत=बिजुली है और जो (क्ष्मया+चरति) पृथिवी पर विचरण कर रही है । अर्थात् आकाश से फेंकी हुई जो विद्युत् पृथिवी पर गिराकरती है (सा) वह (नः) हमको (परि+वृणक्तु) छोड़दे । हमारी हिंसा न करे (स्वपिवात) हे सोए हुए प्राणियों को जगाने वाले रुद्र ! (वज्र के गर्जन से कौन आदमी नहीं डर उठता है) (ते) तुम्हारे जो (सहस्रम्+भेषजा) सहस्रों औषध हैं वे हमें प्राप्त होवें । हे रुद्र ! (नः) हमारे (तोकेषु) पुत्रों को (तनयेषु) तनयों को (मा+रीरिषः) मत मारो । यहां विद्युत् के अधिष्ठातृदेव वज्र का नाम रुद्र है । अर्थात् जिस आग्नेयशक्ति के प्रताप से विद्युत् पृथिवी पर गिर विविध हानि करती है । उस का नाम रुद्र है । यहां विद्युत् रुद्र का अङ्ग है ।

'विद्युत् वाचक रुद्र शब्द'

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधिभूम्याम् ।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ।

अर्थः—(असंख्याता) असंख्यात (सहस्राणि) सहस्रों (ये) जो (रुद्राः) बिजुलियां (अधिभूम्याम्) पृथिवी के ऊपर विद्यमान हैं (तेषाम्) उनके (ध-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यानि) धनुषों को (सहस्रयोजने) सहस्रयोजन दूर (अव+तन्मसि) फैंक दो यहां 'रुद्राः' बहुवचन है। और इस के विशेषण में असंख्यात सहस्र शब्द आए हैं वे सहस्रों 'रुद्र' कौन हैं जिन को हजारों योजन दूर फैंकते हैं ? निःसन्देह वे विद्युत् हैं। आगे के प्रमाण से विस्पष्ट होगा।

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ।
तेषां सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि यजु० ॥ १६ । ६२ ॥

अर्थ=(ये) जो रुद्र (अन्नेषु) अन्नों के ऊपर (पात्रेषु) पात्रों पर गिर कर (पिबतः+जनान्) खाने पीने वाले प्राणियों का (विविध्यन्ति) ताड़न करते हैं। उनके धनुषों को सहस्र योजन दूर फैंक दो।

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः । तेषां सह० ॥६१॥

अर्थ=जो रुद्र हमारे सरोवर नदी आदि स्थानों पर गिरते हैं उन्हे भी दूर करो।

अस्मिन् महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि । तेषाम्० । १६ । ५५ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं रुद्रा उपश्रिताः । तेषाम्० । ५६ ॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वाः अधःक्षमाचराः । तेषाम्० । ५७ ॥

ते वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः । तेषाम्० । ५८ ।

भावार्थः—यहां वेद में दिखलाया गया है कि बिजुली क्या पृथिवी क्या मेघ क्या सूर्य क्या अन्यत्र सर्वत्र विद्यमान है। जो रुद्र=विद्युत् जलवाले महान् आकाश में उत्पन्न होते हैं। जो द्युलोक में नीलग्रीव और शितकण्ठ प्रतीत होते हैं। जो पृथिवी और ओषधियों में व्यापक हैं और जो हमारी हानि करने वाली हैं उनको भगवन् ! दूर करो। इन ऋचाओं के ऊपर बहुत ध्यान देना चाहिये। क्योंकि यहां परमेश्वर से प्रार्थना है कि रुद्रों को हमसे अलक करदो। यदि रुद्र कोई शुभ कारी देव होते तो इन के अस्त्र दूर क्योंकर फैंके जांय विष्णु के।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अस्त्र—शंख चक्र को अपनी रक्षा के लिये अपने समीप बुलाते हैं। परन्तु यहां विपरीत देखते हैं। इस हेतु रुद्र यहां कोई क्रूर देव हैं। वे कौन हैं? वे विद्युत् वा वज्र हैं। और यहां विशेषकर ध्यान देने की बात यह है कि इसी रुद्र अर्थात् विद्युत् के विशेषण में नीलग्रीव, शितिकण्ठ आदि शब्द आए हैं जो महादेव के विशेषण में आज कल आते हैं। :—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा।
एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः। यजुः ३—५७।

इस ऋचा का व्याख्यान आगे करेंगे। इस ऋचा के भाष्य में महीधर यों लिखते हैं:—

योऽयं रुद्राख्यः क्रूरोदेवस्तस्य विरोधिनं हन्तु मिच्छाभवति।
तदा अनया भगिन्या क्रूरदेवतया साधनभूतया तं हिनस्ति।
सा चाम्बिका शरद्रूपं प्राप्य जरादिकमुत्पाद्य तं विरोधिनं हन्ति।

जो यह रुद्र नामक क्रूर देव है उसको जब शत्रुके मारने की इच्छा होती है। तब २ इस क्रूर भगिनी अम्बिका को अस्त्र बनाकर मारता है। और वह अम्बिका शरद्रूप धर ज्वरादिक रोग को उत्पन्न कर उस विरोधी को मारती है। यहां पर महीधर भी 'रुद्र' को और उनकी बहिन अम्बिका को भी क्रूर कहते हैं॥ इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि 'रुद्र' नाम वज्र का है। यहां मानो कि उन विद्युल्लियों का भी एक अधिष्ठातृ देव है जो इनका शासन करता है। उसी का नाम यहां रुद्र है। आगे के निरूपण से आप लोगों को अच्छे प्रकार ज्ञात होगा कि विशेष कर विद्युद्देव के स्थान में यह रुद्र बनाए गये हैं। रुद्र सम्बन्धी ऋचाओं का अर्थ प्रसंग से आगे करेंगे। अब रुद्र की उत्पत्त्यादि धर्म्म से आप परीक्षा करें कि यह महादेव कौन है?।

'रुद्र की उत्पत्ति और रुद्र नाम होने के कारण'

सनकं च सनन्दं च सनातन मात्मभूः। सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः। ४। तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाःसृजत पुत्रकाः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तन्नैच्छन् मोक्षधर्म्माणो वासुदेवपरायणाः ॥ ५ ॥ सोऽवध्यातःसुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः । क्रोधं दुर्विषयं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोऽपि भ्रुवोर्मध्यात्प्रजापतेः । सद्योऽजायत तन्मन्युःकुमारो नीललोहितः ॥७॥ स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः । नामानि कुरु मे धातः स्थानानि जगदुगुरो ॥ ८ ॥ इति तस्य वचः पाद्मो भगवान् परिपालयन् । अभ्यधाद्भद्रया वाचा मारोदीस्तत्करोमि ते ॥ ९ ॥

अर्थ :—एक समय ब्रह्मा जी निष्क्रिय और ऊर्ध्वरेता सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार इन चारों पुत्रों से कहने लगे कि हे सौम्य ! आप प्रजाएं बढ़ावें । परन्तु मुमुक्षु और वासुदेव-परायण उन सनकादिकों ने यह नहीं पसन्द किया । इस प्रकार अनुशासन-भंग करने वाले पुत्रों से निराश ब्रह्मा जी को नितान्त क्रोध उत्पन्न हुआ । क्रोध दबाने को बहुत प्रयत्न किया । परन्तु न दबा । इस के पश्चात् ब्रह्मा की भ्रू (भौंह) के मध्य से एक नील-लोहित कुमार उत्पन्न हुआ । तत्काल ही रोने लगा । और रोता हुआ बोला कि धाता ! मेरे नाम और स्थान देवें । ब्रह्मा जी इस का वचन सुन बोले कि तू मत रो । मैं तुझ को नाम स्थान देता हूं ।

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः । ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलंमही । सूर्य्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥ इत्यादि भागवत ३-१२ ॥

अर्थ :—जिस हेतु आप जन्म लेते ही 'रोदन' करने लगे इस हेतु प्रजाएं आप को 'रुद्र' नाम से पुकारेंगी । यह आप का मुख्य नाम हुआ । हृदय, इन्द्रिय, असु, (प्राण) आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी सूर्य, चन्द्र और तप ये आप के स्थान हैं । इला अम्बिका रुद्राणी आदि आप की स्त्रियां होवेंगी । इत्यादि भागवत में कथा देखिये:—

कल्पादावात्मनस्तुल्यं सुतं प्रध्यागतस्ततः । प्रादुरासीत्प्रभोरङ्के कुमारो नीललोहितः ॥ २ ॥ रुदन् वै सुस्वरं सोऽथ द्रवंश्च द्विज सत्तम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किं रोदिषीति तं ब्रह्मा रुदन्तं प्रत्युवाच ह ॥ ३ ॥ नाम देहीति तं सोऽथ प्रत्युवाच प्रजापतिम्। रुद्रस्त्वं देव नाम्नासि मा रोदीर्धैर्य्यमावह ॥ ४ ॥ एव मुक्तः पुनःसोऽथ सप्तकृत्वो रुरोद वै। ततोऽन्यानि ददौ तस्मै सप्त नामानि वै प्रभुः ॥ ५ ॥ भवं शर्वं महेशानं तथा पशुपतिं द्विज । भीममुग्रं महादेव मुवाच स पितामहः ॥ ६ ॥ विष्णुपुराण प्रथम अंश अ० ८ ।

अर्थ :—कल्पादि में स्वसमान पुत्र चाहते हुए ब्रह्मा जी के गोद में सुस्वर रोता और दौड़ता हुआ नीललोहित एक बालक उत्पन्न हुआ । रोता उसे देख तू क्यों रोता है ? इस प्रकार ब्रह्मा जी उसे समझाते हुए बोले । रोते हुए उस ने कहा कि मेरा नाम संस्कार करो । हे देव ? तेरा नाम 'रुद्र' होगा मत रो धैर्य्य धर । परन्तु पुनः वह सात वार कर के रोने लगा । अतःब्रह्मा जी ने इस को सात नाम और दिये, भव, शर्व, महेशान, पशुपति, भीम, उग्र, महादेव । कथा का आशयः—इस पौराणिक वर्णन पर अवश्य ध्यान देना चाहिये। यद्यपि रुद्र के यथार्थ तात्पर्य्य को ये लोग भूल बैठे थे तथापि कुछ कुछ प्राचीन कथा से इन लोगों ने भी सम्बन्ध रक्खा है । अब विचार कीजिये । प्रजापति (ब्रह्मा) क्रुद्ध हुए । रोता हुआ वह कुमार उत्पन्न हुआ । इस हेतु इस का नाम रुद्र हुआ । और अन्यान्य नाम भी इस के उग्र, पशुपति आदि हुए। यह सब वर्णन हम को क्या सूचित करता है । हे विज्ञानप्रवरआर्य्यो ! विचारो । निःसन्देह यह वज्र वा विद्युत्=Lightning, Thunderbolt. की उत्पत्ति का निरूपण है। यहां भागवत के शब्दों के ऊपर ध्यानदीजिये। प्रजापति शब्द का यहां प्रयोग है मेघ, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र, आदि सर्व देवों के विशेषण में प्रजापति शब्द का प्रयोग होता है यहां वायु और मेघ प्रजापति हैं । देखिये । मेघ से वज्र कब उत्पन्न होता है ? जब बड़े वेग से वायु चलना आरम्भ होता है । उस से मेघ=मालाएं परस्पर टकराती हैं । घोर नाद होने लगता है । प्राणी कम्पायमान हो जाते हैं । क्रोधाग्नि-स्वरूप विद्युत् इधर उधर चमकने लगती हैं । इस प्रकार वायु के कारण जब पर्जन्य भगवान् बड़े क्रोध में जलने लगते हैं उस समय रोते हुए और जगत् को रुलाते हुए मेघ से वज्रदेव बड़ी तीक्ष्णता से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दौड़ते हैं। ये बड़े लाल होते हैं। और नीले नीले मेघ इन के चारों तरफ रहते हैं। इस हेतु ये नीलवर्ण भासित होते हैं। इस हेतु इस वज्रदेव को नीललोहित कहते हैं। लोहित=लाल। जिस हेतु रोता और रुलाता हुआ यह वज्र दौड़ता है अतः इस का नाम रुद्र होता है "रुदन् द्रवति धावतीति रुद्रः" रोते हुए दौड़ने वाले को रुद्र कहते हैं। यही व्युत्पत्ति विष्णु पुराण में है। ऊपर के श्लोक देखिये। महादेव का जन्म हमें सूचित करता है कि ये वज्रदेव के प्रतिनिधि हैं इस में सन्देह नहीं।

"रुद्र की उत्पत्ति और शतपथ ब्राह्मण"

प्रियविद्य जिज्ञासुयो! यजुर्वेदीय शतपथ-ब्राह्मण में एतत्सम्बन्धी अतिमनोहर और रोचक वर्णन है इस हेतु आप को इस का भाव सुनाते हैं। इस के वर्णन से आपको असंदिग्ध प्रतीति उपजेगी कि यथार्थ में रुद्र कौन है।

अभूद्वा इयं प्रतिष्ठेति। तद्भूमिरभवद्। ता मप्रथयत्। सा पृथिव्यभवत्। तस्यामस्यां प्रतिष्ठायां भूतानि च भूतानां च पतिः सम्बत्सरायादीक्षन्त। भूतानां पतिर्गृहपतिरासीत्। उषाः पत्नी। तद्यानि तानि भूतानि ऋतवस्ते। अथ यः स भूतानां पतिः सम्बत्सरः सोऽथ। या सोषाः पत्नी ओषसी सा। तानि इमानि भूतानि च भूतानां च पतिः सम्बत्सर उषसि रेतोऽसिञ्चत् स सम्बत्सरे कुमारोऽजायत। सोऽरोदीत्। काण्ड ६। अध्याय १। ब्राह्मण ३। कण्डिका ७॥

यहां आग्नेय शक्ति की व्यापकता दरसाने के हेतु इस प्रकरण का आरम्भ किया है। इस में सन्देह नहीं जो सृष्टितत्त्ववित् विज्ञानी हैं वे निमित्त कारण ईश्वर को छोड़ इस सौरजगत् का मुख्य कारण सूर्य को कहते हैं। क्रमशः उसी सूर्याग्नि से एक पार्थिव गोलक निकला जो बनते २ कई लक्ष वर्षों के अनन्तर सब प्राणियों की प्रतिष्ठा के योग्य हुआ। इस के ऊपर पर्वत, समुद्र, वनस्पति ओषधि, पर्जन्य, विविध पशु, पक्षी, मनुष्यादि, भूत उत्पन्न किये गये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस पृथिवी के बहुत दूर सूर्य स्थापित किया गया । वह उष्णता इस पर पहुंचाने लगा । अपनी २ प्रदत्त शक्ति के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उष्णता धारण करने लगे । उससे एक कुमार उत्पन्न हुआ । वह रोने लगा । भाव यह है कि किसी वस्तु में जब अग्नि उत्पन्न होता है तो उस से यत्किञ्चित् शब्द अवश्य हुआ करता है आर्द्र पदार्थ में आग लगने से बहुत नाद होता है । शुष्क पदार्थ के भी पर्व २ से चट चट शब्द उत्पन्न होता है । प्रत्येक पदार्थ में अग्निशक्ति का होना ही कुमार का जन्म है । और नाद होना ही इस का रोना है । आगे हम अभीष्ट वाक्यों को उद्धृत करेंगे अन्यान्य वाक्यों को छोड़ देवेंगे ।

तं प्रजापतिरब्रवीत् । कुमार ! किं रोदिषि । सोऽब्रवीत् । नाम मे धेहीति ॥ ९ ॥ तमब्रवीद् रुद्रोऽसि इति । तद्यदस्य तन्नाम अकरोत् अग्निस्तद्रूपमभवत् । अग्निर्वैरुद्रः यदरोदीत् । तस्माद्रुद्रः । सोऽब्रवीत् । ज्यायान्वा अतोऽस्मि । धेह्येव मे नामेति ॥ १० ॥ तमब्रवीत् । सर्वोऽसीति । तद्यदस्य तन्नामाकरोत् । आपस्तद्रूपमभवन्नापोवैसर्वः । अद्भ्योऽहीदं सर्वं जायते । सोऽब्रवीत् । ज्यायान्वा अतोऽस्मि । धेह्येव मे नामेति । ११॥

अर्थ :—प्रजापति बोले हे कुमार ! तू क्यों रोता है ? उस ने कहा कि मुझ को नाम दो ॥ ९ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'रुद्र' है । उस का जो यह 'रुद्र' नाम है वह शुद्ध अग्नि सूचक है अग्नि ही रुद्र है । जिस हेतु यह रोने लगा अतः यह रुद्र कहलाता है । तत्पश्चात् प्रजापति से वह कुमार कहने लगा कि, निश्चय, मैं इस से 'ज्यायान्' अधिक हूं मुझ को अन्य नाम भी दीजिये ॥१०॥ प्रजापति ने कहा कि तू सर्व है । जो इस का यह सर्व नाम है । वह जल में व्यापकता और जलदायित्व सूचक हैं क्योंकि जल से ही सब उत्पन्न होता है । पुनः वह कुमार बोला इस से भी मैं 'ज्यायान्' अधिक हूं और भी मेरा नाम कीजिये ॥ ११ ॥ प्रजा-

(१)-आज कल रुद्र के नाम मे 'शर्व' आता है । परन्तु यहां 'सर्व' ही उचित प्रतीत होता है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पति ने कहा कि तू 'पशुपति' है। जो यह पशुपति नाम इस का हुआ वह ओषधि-वृद्धि सूचक है। ओषधि ही पशुपति (पशुओं का पालक) है। जब पशु ओषधि पाते हैं तब वे पुष्ट हो कर स्वामी के योग्य होते हैं। पुनः वह कुमार बोला कि निश्चय मैं इस से भी अधिक हूं। और भी मेरा नाम कीजिये।१२। प्रजापति ने कहा कि तू 'उग्र' है जो यह इस का 'उग्र' नाम हुआ वह वायु-वृद्धि सूचक है। निश्चय, वायु ही उग्र है। इस हेतु जब वायु बड़े वेग से चलता है तो लोग कहते हैं कि सम्प्रति वायु बड़ा उग्र है। पुनः वह कुमार बोला कि मैं इस से भी अधिक हूं अतः और भी मेरा नाम कीजिये ॥ १३ ॥ प्रजापति ने कहा तू 'अशनि' है। जो यह इस का 'अशनि' नाम है। वह विद्युत् सूचक है। निश्चय, विद्युत् ही अशनि है। इस हेतु जिस को विद्युत् मारती है। उस को लोग कहते हैं कि इस को अशनि ने मारा है पुनः वह कु० ॥ १४ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'भव' है। जो यह इस का 'भव' नाम है वह पर्जन्य (मेघ) सूचक है। निश्चय पर्जन्य ही भव है। क्योंकि पर्जन्य से यह सब कुछ होता है पुनः वह कु० ॥ १५ ॥ प्रजापति ने कहा तू 'महान् देव' है जो यह इस का महान् देव नाम है। वह चन्द्रमा सूचक है। प्रजापति ही चन्द्रमा है। निश्चय, प्रजापति ही महान्देव है। पुनः वह कु० ॥ १६ ॥ प्रजापति ने कहा कि तू 'ईशान' है। जो यह इस का ईशान नाम है। वह आदित्य व्यापकता सूचक है। निश्चय, आदित्य ही ईशान है। वही सब का शासन करता है। इस के अनन्तर वह कुमार बोला। वश ! मैं इतना हूं। इस के आगे नाम मत कीजिये। "तान्येतान्यष्टावग्निरूपाणि कुमारो नवमः सैवाग्ने स्विवृत्ता" ये आठों अग्नि के रूप हैं। नवम कुमार है।

सोऽयं कुमारो रूपाण्यनु प्राविशत्। न वा अग्निं कुमारमिव पश्यन्ति।
एतान्येवास्य रूपाणि पश्यन्ति। एतानि हि रूपाण्यनु प्राविशत् ॥१९॥

जो यह कुमार-रूप अग्नि है वह सब रूपों में अनुप्रविष्ट है। निश्चय इस कुमार रूप को कोई नहीं देखते। इन हीं रूपों को देखते हैं। इन हीं रूपों में यह प्रविष्ट है ॥ १९ ॥ शतपथ का यह प्रकरण हमें सूचित करता है कि एक महान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्निशक्ति है। जो पृथिवी से लेकर सूर्य्य पर्यन्त व्यापक है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक इन तीनों में अग्नि है। अतः अग्नि 'त्रिवृत्' है। यही इस की त्रिवृत्ता है॥ इन वाक्यों के ऊपर बहुत कुछ विचारणीय है। जब इस कुमार को आदित्य-सूचक 'ईशान' नाम दिया गया तब इसने कहा कि वश! मैं इतना हूं। यह वाक्य विस्पष्ट बोध करवाता है कि यह अग्नि का वर्णन है। क्योंकि 'आदित्य, से बढ़ कर कोई आग्नेय-शक्ति नहीं। इस हेतु इस से आगे इसका नाम नहीं हो सकता। रुद्र से लेकर ईशान तक समाप्त हो जाता है। अग्नि केवल पृथिवी पर ही नहीं है। इस हेतु अग्नि कहता है कि मैं इस से अधिक हूं। जब मेघस्थसूचक 'भव' नाम दिया तब पुनः कहता है कि इस से भी अधिक हूं। क्यों कि अग्नि मेघ तक ही नहीं है। इस से भी ऊपर विद्यमान है। जब निजयोनि आदित्य तक पहुंचता है तब वह 'वश' कहता है। इस पृथिवी के लिये इस आदित्य से आगे के अग्नि की आवश्यकता नहीं। अतः यह वर्णन अग्नि का ही है। जो नाम आज कल महादेव के हैं वे ही नाम यहां पर भी देखते हैं। रुद्र, सर्व, पशुपति, उग्र, अशानि, भव, महान्देव, (महादेव) ईशान, और कुमार। अमरकोश में महादेव के नाम देखिये। उन नामों का आगे अर्थ करेंगे। सत्यान्वेषिविद्वानो! कहां अग्नि का वर्णन। कहां आज महान् रुद्रदेव की सृष्टि। जिस देव के विषय में आज लक्षों श्लोक बन गये हैं। यह केवल अग्निशक्ति है। अग्नि की व्यापकता वेद मन्त्र में ही कहागया है।

त्वमग्नेद्युभिस्त्व माशुशुक्षाणि स्त्वमद्भ्य स्त्वमश्मनस्परि।
त्वं वनेभ्य स्त्वमोषधीभ्यस्त्वं नृणां नृपते जायसे शुचिः। ऋ०२।१।१॥

अर्थः—हे अग्ने! तू सूर्य्य से, तू पानी से अर्थात् मेघ से, तू प्रस्तर से, तू वन से, तू ओषधि से उत्पन्न होते हो। इत्यादि॥

"रुद्र म्रन्दन्युत्पाति"

रुद्रो रौतीतिसतो रोरूयमाणो द्रवतीति वा रोदयते वा। यदरुदत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति काठकम्। यदरोदीत् तद्रुद्रस्य रुद्रत्वमिति हारिद्रविकम्। निरु०दै०४-५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बृहद्देवता में इसी विद्युत् को रुद्र कहा है। यथाः-

अरोदीदन्तरिक्षे यद्विद्युद्वृष्टिं ददन्नृणाम्।
चतुर्भिर्ऋषिभिस्तेन रुद्रइत्याभि संस्तुतः। २। ३५॥

जिस कारण अन्तरिक्ष में यह विद्युद्देव रोता रहता है और मनुष्यों के हितार्थ वृष्टि किया करता है। इस हेतु इस को 'रुद्र कहा है। तीन धातुयों से इस को यास्काचार्य सिद्ध करते हैं। (रौति+रुशब्दे) शब्दार्थक 'रु' धातु से (१) 'रु' और द्रु+गतौ गत्यर्थक 'द्रु' इन दो धातुओं से (२) और (रुदिर्+अश्रुविमोचने) ण्यन्त 'रोद' धातु से (३) इन तीन धातुयों से 'रुद्र' शब्द सिद्ध होता है। और किसी के मत में केवल 'रुद्' धातु से भी 'रुद्र' सिद्ध होगा इत्यादि वैयाकरणों का भी मत देखिये। इस का रुद्र नाम ही सूचित करता है कि वज्र (१) देव का वर्णन है।

"रुद्र और निवासस्थान पर्वत"

पुराणों में महादेव का स्थान पर्वत माना गया है। जैसे विष्णु जी क्षीर सागर में वैसे ही महादेव जी कैलास पर्वत पर विराजमान रहते हैं। इसी हेतु इन को गिरिश, गिरीश, पर्वतशायी आदि नाम देते हैं। क्यों!। पर्वत इन का निवासस्थान क्यों माना गया है। इस में भी वज्र और द्व्यर्थक (दो अर्थ वाले) शब्द ही कारण हैं। शब्दतत्त्वविद् विद्वानो! वैदिक भाषा में मेघ और पर्वत वाचकबहुत से शब्द समान ही हैं। पर्वत, गिरि, आद्रि, ग्रावा आदि शब्द मेघ और पर्वत दोनों अर्थों में समान रीति से वेदों में प्रयुक्त हुए हैं। परन्तु आज कल पर्वत, गिरि, आद्रि आदि शब्द मेघार्थ में कदापि भी प्रयुक्त नहीं होते। अब आप लोग विचार सकते हैं कि महादेव का निवासस्थान पर्वत क्यों माना गया है। रुद्र जो 'वज्र' वा 'विद्युद्देव' वह 'गिरि' जो मेघ उस में निवास करता है। यह

नोट १-विद्युत्, नेमि, हेति, नमः पविः, सूक, वृक, वध, वज्र, अर्क, कुत्स, कुलिश, तुज, तिग्म, मेनि, स्वधिति, सायक, परशु। यह १८ नाम वज्र के हैं। निघण्टु २।२०। मेघस्थ जो प्रचण्ड अग्नि उसी का वज्र विद्युत् कुलिश आदि नाम हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसक्ष है। जब रुद्र स्थानीय एक देव पृथक् कल्पित हुए तो इन को भूमिस्थ पर्वत निवासस्थान मानागया यह बहुत ही समुचित है। अब इन में दो एक प्रमाण देते हैं। इन पर पूर्ण रीति से ध्यान दीजिये।

अद्रिः। ग्रावा। गोत्रः। वलः। अश्नः। पुरभोजः। बलिशानः। अश्मा। पर्वतः। गिरिः। व्रजः। चरुः। वराहः। शम्बरः। रौहिणः। रैवतः। फलिगः उपरः। उपलः। चमसः। अहिः। अभ्रम्। बलाहकः। मेघः। दृतिः। ओदनः वृषन्धिः। वृत्रः। असुरः। कोशः। इति त्रिंशन्मेघ नामानि। निघण्टु १-१०।

निघण्टु वैदिक कोष है। इस में आप देखते हैं कि अद्रि, ग्रावा गोत्र अश्मा, पर्वत, गिरि आदि मेघ के नाम हैं। परन्तु ये नाम सब आज कल केवल पर्वत=पहाड़ के ही होते हैं यथा :-

महीध्रे शिखरि क्ष्माभृदहार्य्ये धर पर्वताः।
अद्रि गोत्र गिरि ग्रावाऽचल शैल शिलोच्चयाः॥ अमरकोश शैलवर्ग॥

महीध्र, शिखरी, क्ष्माभृत् अहार्य्य, धर, पर्वत, अद्रि, गोत्र. गिरि, ग्रावा, अचल, शैल, शिलोच्चय। ये १३ तेरह नाम पहाड़ के हैं। अब मेघ के अर्वाचीन नाम देखिये।

अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्वलाहकः।
धाराधरो जलधर स्तडित्वान् वारिदोऽम्बुभृत्
घनजीमूतमुदिर जलमुग् धूमयोनयः। अमर दिग्वर्ग।

अभ्र, मेघ, वारिवाह, स्तनयित्नु, बलाहक, धाराधर, जलधर, तडित्वान्, वारिद, अम्बुभृत्, घन. जीमूत, मुदिर, जलमुक् और धूमयोनि ये १५ पन्द्रह नाम मेघ के हैं आज कल के मेघ के नामों में आप देखते हैं कि अद्रि, पर्वत गोत्र अश्मा, आदि शब्द नहीं हैं। इसी हेतु वैदिक और लौकिक अर्थ में महान् अन्तर हो गया है।

मेघनामानि उत्तराणि त्रिंशत्। मेघः कस्मान्महेतीतिसतः।
आ उपर उपल इत्येताभ्यां साधारणानि पर्वतनामभिः। नि० २-२१

यास्काचार्य्य मेघ के नामों के व्याख्यान में कहते हैं कि मेघ के ३० नाम हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन में अद्रि से लेकर उपल तक जो १७ नाम हैं वे मेघ और पर्वत इन दोनों के हैं। पुनः प्रसंगवशतः इन नामों के व्याख्यान भी करते गये हैं यथा (मेघोऽपिगिरिरेतस्मादेव । निरुक्त १-३०) इसी कारण मेघ को भी "गिरि" कहते हैं। आज कल 'गिरि' केवल पर्वत के ही अर्थ में आता है।

गिरौ मेघे स्थिता वृष्टिर्द्वारेण शं तनोतीति 'गिरिशन्तः' ॥ यजु० १६-२।

यजुर्वेद के षोड़शाध्यायि द्वितीय मन्त्र के व्याख्यान में महीधर भी "गिरि" शब्द का अर्थ मेघ ही करते हैं। इसी प्रकार पर्वत अद्रि आदि शब्दों के भी मेघ अर्थ सब भाष्यकार करते गये हैं। वेदों में इस के बहुत से उदाहरण विद्यमान हैं। देखिये।

बलित्था पर्वतानां खिद्रंबिभर्षि पृथिवि।
प्र या भूमिं प्रवत्वति महा जिनोषि महिनि। निरुक्त दै० ५-२७
महान्तमिन्द्र पर्वतं वियद्भः सृजोविधारा अव दानवं हन्। नि० दे० ४-७

यास्काचार्य्य इन दोनों स्थानों में "पर्वतानां मेघानाम्" 'पर्वतं मेघम्' पर्वत शब्द का अर्थ मेघ ही करते हैं।

इन्दो दीर्घाय चक्षस आसूर्य्यरोहयद्दिवि। वि गोभिरद्रिमैरयत्। ऋ० १-७-३

इस ऋचा में आए हुए "अद्रि" शब्द का अर्थ सायण "अद्रिं मेघम्" मेघ करते हैं। हम कहां तक उदाहरण देवें। आप लोग वेद स्वयं पढ़कर देखें। आज कल जो जो शब्द हिमालय विन्ध्याचल प्रभृति पर्वतके वाचक हैं वे प्रायः वेदों में मेघवाचक भी हैं। अब आप लोगों को पूर्ण विश्वास होगया होगा कि वैदिक समयमें अद्रि पर्वत गिरि आदि शब्द व्यर्थक थे। परन्तु अब नहीं रहे। इसी हेतु वज्र स्थानीय रुद्र वा महादेव जी का स्थान गिरि कहा गया है। पर्वतों में कैलास प्रसिद्ध है और सर्वदा उस पर हिम जमा रहता है। इस हेतु महादेवजी का स्थान कैलास है। परन्तु रुद्र के साथ "गिरि" शब्द का अधिक प्रयोग आता है। कैलास का प्रयोग प्रायः वेद में नहीं है। अमरकोश में भी गिरिश वा गिरीश कहा है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'रुद्र और वृषभ वाहन'

महादेव का बैल वाहन क्यों है ? विष्णु और ब्रह्मा के वाहन विहग हैं। परन्तु महादेव का पशु क्यों ? इस का भी कारण विद्युद्देव ही हैं। वृषभ वा वृष मेघ और बैल दोनों को कहते हैं। वृष, वर्षण, वृष्टि, वर्षा, वृषभ, वर्षिता इत्यादि शब्दों का एक ही धातु है 'वृषु, वृषु, वृषु सेचने' वृष धातु का अर्थ सींचना है। 'वर्षति सिञ्चति यः स वृषः' जो जल से पृथिवी को सींचे उसे वृष कहते हैं। "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः"। ३। १। १३५। इस सूत्र के अनुसार वृष् धातु से 'क' प्रत्यय हो कर वृष शब्द सिद्ध हो जाता है और इसी से वृषभ भी बनता है। वृष और वृषभ का एक ही धातु "वृष सेचने" यास्काचार्यादिकों ने माना है।

प्र नू महित्वं वृषभस्यवोचं यंपूरवोवृत्रहणंसचन्ते।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वां अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत्।

यास्काचार्य इस ऋचा की व्याख्या में 'वृषभस्य वर्षितुरपां' वृषभ शब्द का अर्थ जल के वर्षा करने वाला करते हैं। पुनः—

वृषभः प्रजां वर्षतीति वातिवृहति रेत इति वा।
तद् वृषकर्म्मा वर्षणाद् वृषभः। तस्यैषा भवति। नि० दै० ३-२२।

इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि वृष वा वृषभ वर्षा करने वाले पदार्थ को कहते हैं। अब विस्पष्ट हो गया कि महादेव का वाहन बैल क्यों रक्खा ?॥ रुद्र अर्थात् वज्रदेव का वाहन वृषभ अर्थात् वर्षा करने वाला मेघ है। यह प्रत्यक्ष है। परन्तु जब कि एक वज्र-स्थानीय देव कल्पित हो पृथिवी पर पूजार्थ लाये गये तो उन के लिये आवश्यक हुआ कि पृथिवीस्थ वृषभ (बैल) इन का वाहन कल्पित हो। अतः रुद्र का वाहन वृषभ है।

वाहन और ध्वज।

पौराणिक कल्पित देवों के वाहन और ध्वजा वा पताका एक ही होते हैं। जो वाहन वही ध्वजा। जैसे विष्णु को 'गरुड़ वाहन' 'गरुड़ध्वज' दोनों कहते हैं। वैसे ही रुद्रको भी 'वृषभ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाहन' और 'वृषभध्वज' दोनों कहेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि 'ध्वज' वा पताका का लक्ष्यार्थ चिन्ह ही है। वज्र वा विद्युत् का चिन्ह मेघ ही है। जब मेघ आता है तब ही लोक अनुमान करते हैं कि कदाचित् आज वज्र वा पत्थर (ओले) वा विद्युत् गिरेंगे। इस हेतु वज्र का चिन्ह भी वृषभ अर्थात् मेघ ही है अतएव रुद्र का वाहन और ध्वजा दोनों ही वृषभ हैं। इसी प्रकार अन्यान्य देवों के वाहन पताका जानने चाहिये।

'मेघ वाचक वृषभ शब्द'

अच्छा वद तवसं गीर्भि राभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास।
कनिक्रदद् वृषभोजरिदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम्।। ऋ० ५-८३-१।

ईश्वर विद्वान् के प्रति कहता है कि हे विद्वज्जन! आप (तवसम्) बलवान् (पर्जन्यम्) मेघ को (अच्छ) प्राप्त करके (आभिः गीर्भिः) मेरे इन उपदिष्ट वचनों से अर्थात् मेरे उपदेश के अनुसार (स्तुहि) मेघ के गुणों को प्रकाशित करो और (नमसा) बड़ी नम्रता से (विवास) बारम्बार इस की सेवा करो अर्थात् मेघ सम्बन्धी विद्या के अध्ययन में श्रद्धा करो। जो पर्जन्य (कनिक्रदद्) अत्यन्त गर्जन करने वाला है (वृषभः) वर्षा देने वाला है (जीरदानुः) जिस का दान शीघ्र होता है और (ओषधीषु) जितने प्रकार के वनस्पति हैं क्या गेहूं जौ आदि, क्या लता वीरुध, क्या आम्र प्रभृति वृक्ष, सब ही ओषधियां कहलाती हैं इन ओषधियों में (गर्भम्+रेतः) बीज रूप जल को (दधाति) स्थापित करता है। पर्जन्य=मेघ के लिये 'वृषभ' शब्द का यह पाठ प्रत्यक्ष है। सायणाचार्य (वृषभोऽपां वर्षिता) वृषभ का जल-वर्षिता=जल वर्षा करने वाला अर्थ करते हैं। इस सम्पूर्ण सूक्त का देवता पर्जन्य है। यह पर्जन्य सूक्त बहुत अच्छा है।

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति। ४
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म्म यच्छ ॥ ५ ॥
यत्पर्जन्यकनिक्रदत् स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किञ्च पृथिव्यामधि । ९ ।

अनुवाद–जब पर्जन्य जल से पृथिवी की रक्षा करता है । तब वात बड़े ज़ोर से चलते हैं । विद्युत गिरती हैं या चमकती हैं । ओषधियां निकलती हैं । आकाश भर जाता है । पृथिवी सर्व प्राणी के हितार्थ समर्था होती है । ४। जिस पर्जन्य के व्रत से यह पृथिवी पानी के नीचे हो जाती है । अर्थात् पृथिवी के ऊपर पानी भर जाता है । जिस के व्रत से चतुष्पद जन्तु सुपुष्ट होते हैं । जिस के व्रत से नान वर्ण रंग रूप की ओषधियां उत्पन्न होने लगती हैं । वह पर्जन्य हम लोगों को बहुत सुख देता है । ५ । जब यह मेघ बहुत चिल्लाता और गरजता हुआ दुर्भिक्षादि दुष्कृतों का निवारण करता है तब पृथिवी पर जितने स्थावर जङ्गम पदार्थ हैं सब ही मुदित होते हैं ९ । पुनः ।

तिस्रो वाचः प्रवद ज्योतिरग्रा या एतदुहे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्योजातो वृषभो रोरवीति ।१।
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।६।ऋ०७।१०१

अर्थः–जिस पर्जन्य में (ज्योतिरग्राः) विद्युत् जिन के आगे आगे है ऐसी (तिस्रः+वाचः) तीन प्रकार की इला, सरस्वती, भारती वाणी (वाजा) (प्रवद=प्रवदन्ति) बज रही है । (याः) जो वाणी जहां (एतत्) इस (मधुदोघम्) मधुर-जल-प्रद (ऊधः) मेघ-रूप-स्तन को (दुहे) दुह रही है । (सः) वह पर्जन्य (वत्सं) साथ बसने वाले बच्चे वैद्युत अग्नि को (कृण्वन्) प्रकट करता हुआ और उसी को (ओषधीनाम्) व्रीहि, लता, वनस्पति प्रभृतियों का (१) (गर्भम्) गर्भ बनाता हुआ (सद्यः) शीघ्र (जातः) चारों तरफ

(१) ओषधिः फलपाकान्ता । ओषध्यो जातिमात्रेस्युरजादौसर्वमौषधम् । भेषजं व्याधि भेषज्यान्यगदे जायुरित्यपि । अमर ६ । ओषधि और औषध में भेद यह है कि ओषधि एक बार फल दे कर सूख जाय जैसे कदली धान्य गेहूं जौ आदि उसे ओषधि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न हो (वृषभः) बरसता हुआ (रोरवीति) अत्यन्त चिल्ला रहा है । १ । (सः) वह पर्जन्य (शश्वतीनाम्) नाना विध ओषधियों का (रेतोधाः) जल विधाता और (वृषभः) सेचन करने वाला है (तस्मिन्) उस जीवन-भूत मेघ के आश्रित (जगतः+तस्थुषः+च) स्थावर और जंगम का (आत्मा) शरीर है । (तत्+ऋतम्) वह पर्जन्य से निःसृत जल (शतशारदाय) सौ वर्ष अर्थात् जीवन भर (मा) मुझको (पातु) पाले । जिस प्रकार ये प्राकृत पदार्थ-पर्जन्य, वायु, मरुत्, ओषधि, जल, चन्द्र, सूर्य्य प्रभृति हमारी रक्षा करते हैं वैसे ही हे मनुष्यो ! (यूयम्) आप लोग भी (सदा) सर्वदा (नः) हमको (स्वस्तिभिः) विविध कल्याणकारी उपायों से रक्षा करें । हम भी आप की रक्षा करें इस प्रकार परस्पर एक दूसरे के रक्षक बनें । ६ ।

इन दोनों ऋचाओं में मेघ के विशेषण में वृषभ शब्द आया है इस से सिद्ध हुआ कि मेघ को वृषभ वा वृष कहते हैं । परन्तु आधुनिक संस्कृत में बैल का ही नाम प्रायः वृषभ आता है "उक्षा भद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृषः अमर० । वृष शब्द अन्यार्थ में भी आता है । जैसे 'शुक्रले मूषिके श्रेष्ठे सुकृते वृषभे वृषः" अमरकोश । इसी हेतु विद्या विलासी पुरुषो! वज्र स्थानीय रुद्र का वृषभ वाहन माना गया है । यहां शङ्का हो सकती है कि जैसे विष्णु और ब्रह्मा के वाहन पक्षी कल्पित हैं वैसे किसी अन्य नाम के साथ योग लगा महादेव का भी पक्षी ही वाहन कल्पित क्यों नहीं किया । इस का समाधान यह है कि मेघ का खास गुण वर्षा करना ही है । वेद में सींचने के अर्थ में इस का प्रयोग बहुत आया है । मनुष्य आदि सब ही पुरुष वृषभ नाम से पुकारे गये हैं । सूर्य्य को भी वृषभ कहा है । जैसे पुरुष गर्भाधान कर त्रिविध सन्तान उत्पन्न करते हैं तद्वत् यह मेघ भी पृथिवी रूप स्त्री शक्ति में वीर्याधान कर के ओषधि रूप असंख्य सन्तान उत्पन्न करता है । इस हेतु यथार्थ में मेघ ही वृषभ है । वृषभ शब्द

और रोग नाशक जो त्रिफला कल्क पाचक आदि दवाई हैं उसे औषध कहते हैं । यह सामान्य नियम है । परन्तु कहीं २ ओषधि के स्थान में औषध शब्द भी प्रयुक्त होता है । वेद में ओषधि शब्द स्थावर वृक्ष मात्र के लिये है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की मुख्यता इसी में है। और अन्यत्र गौण भाव से प्रयुक्त हुआ है। इस मुख्यता का लक्ष्य रख कर रुद्र का वृषभ वाहन माना गया है।

'रुद्र और गङ्गा'

अब हम लोग अच्छे प्रकार समझ सकते हैं कि रुद्र की जटा में गङ्गा की स्थिति क्यों कर मानते हैं ?। मेघस्थ वज्रात्मक अग्नि का नाम रुद्र है यह अनेक प्रमाणों से सिद्ध है। जिस को विद्युदेव भी कहते हैं। वह विद्युदेव आप देखते हैं कि जल से पूर्ण रहता है। मेघ रूप जल के अभ्यन्तर ही इन का निवास है मानो यह रुद्र=वज्रात्मक अग्नि देव बैठे हुए हैं इन के ऊपर पर्जन्य धाराएं गिरा रहे हैं। यही मेघ धारा गङ्गा है। (१) जहां यह मेघस्थ विद्युदेव रहेंगे वहां अवश्य ही मेघ धारा भी रहेगी इसी हेतु महादेव के साथ २ गङ्गा देवी भी लगी हुई हैं। इस में अन्य भी कारण प्रतीत होता है। मैंने आप लोगों से कहा है कि जैन धर्म्म के पश्चात् त्रिदेव की सृष्टि हुई है। उस समय अज्ञानता देशमें अधिक विस्तृत थी। प्रत्येक पदार्थ का अधिष्ठातृ-देव विश्वास पूर्वक माना जाता था। इस नियम के अनुसार मेघका अधिष्ठाता देव भी रुद्र माना जाता था। यद्यपि यह रुद्र वज्र वा विद्युदेव है तथापि यहां पर यह समझना चाहिये कि क्या वज्र क्या विद्युत् ये सब स्थूल और विनश्वर वस्तु हैं। इन सबों का शासक जो एक चेतन और अमर शक्ति है उस का नाम 'रुद्र' है। पौराणिक समय में ऐसा ही अधिष्ठातृ-देव माना जाता था। इस नियम के अनुसार वज्र एक भिन्न वस्तु और वज्र का अधिष्ठाता भिन्न वस्तु है। वज्र जड़ है। अधिष्ठाता चेतन और अमर है। यद्यपि यह सब अज्ञानता मूलक। और अवैदिक ही है

(१) इयमाकाश गङ्गा च यस्यां पुत्रं हुताशनः। जनयिष्यति देवानां सेनापति मरिन्दमम्। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ३७। इस प्रमाण से मेघ धारा का भी नाम गङ्गा है। इस में सन्देह नहीं। कार्तिकेय के जन्म में देखो।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस में सन्देह नहीं परन्तु इसी अज्ञानता के मूलाधार पर इन देवों की सृष्टि हुई है। इसी हेतु हमें वैसा ही मान कर सङ्गति लगानी पड़ती है। अतः आप समझें कि आकाश अब अभ्र-रहित होगया। विद्युत अब नहीं रही। अशनि का भी पता कुछ नहीं रहा। सर्वथा अन्तरिक्ष स्वच्छ दीखता है। परन्तु इस अवस्था में भी रुद्रदेव आकाश में विद्यमान हैं। क्योंकि वह चेतन और अमर हैं। वह अपने स्थान पर सदा स्थिर रहते हैं। अब आप सोचें कि प्रजाएं पर्जन्यदेव की जलार्थ आराधना कर रही हैं? वर्षा ऋतु भी आ गई है। धाराधर इतस्तत आने लगे। अब पूछ सकते हैं कि ये धाराधर कहां से आगये। निःसन्देह जो एक चेतन अमर रुद्र देव हैं उन्होंने ही अपनी मेघ की विभूति फैलानी आरम्भ की है। मानो इस की जटा में इतना पानी भरा है इस के निकट इतना जल है कि उसी में से कुछ पानी अपने भक्तों को देदेता है जिस से पृथिवी पर धाराएं गिर कर प्राणी की रक्षा होती है। यह एक स्वाभाविक विषय है कि जो मेघ का देव माना जायगा वह अनन्त अक्षय असंख्य जल का स्वामी भी बनाया जायगा। इस देव की जटा भी शतकोटि अर्थात् जगत के बराबर मानी गई है। इसी हेतु इस को "धूर्जटि" कहा है। इसी जटाके अभ्यन्तर जल समुद्र जो अक्षय और प्रलय तक रहने वाला है प्रवाहित हो रहा है। जब वह चाहता है तब जटा खोल देता है। जगत में पानी २ हो जाता है। पुनः जटा सम्मिट लेता है। वर्षा बन्द होजाती है। परन्तु इस में अज्ञानता की बात यह है कि जल को एक स्थान में एक त्रित मान लिया है। सूर्य की उष्णता से जो मेघ बनता है यह ज्ञान इस में लुप्त होजाता है प्राचीन पौराणिकों ने इसके लिये उपायान्तर सोच रक्खा है। गङ्गा की उत्पत्ति प्रथम विष्णु के चरण से मानी है। वहां से निकलकर महादेव की जटामें आती हैं। तब वहां से पर्वतोंपर, तब पृथिवी पर इसी हेतु गङ्गा को विष्णुपदी (१) कहते हैं। विष्णु के पैर से निकली है। यह वर्णन अधिकतर प्राचीन पौराणिक प्रतीत होता है। अब प्रथम क्षणमात्र गङ्गा की उत्पत्ति पर ध्यान दीजिये। सगर महाराज के सन्तान कपिल ऋषि से दग्ध होकर

(१) गङ्गा विष्णुपदी जह्नु-तनया सुरनिम्नगा। अमर०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भस्म होते हैं पश्चात् भगीरथ की तपस्या से विष्णु के चरणसे गङ्गा निकलती है महादेव इस को अपने जटा में रख लेते हैं। तत्पश्चात् भगीरथ की प्रार्थना से वहां से निकलती है। सगर के सन्तानों की चिता को शुद्ध करती हुई समुद्र में गिरती है। इतना ही सम्पूर्ण कथा का सार है। आख्यायिका-प्रिय-जनो! हम आप लोगों से अन्तरिक्ष (आकाश) के नाम सुना चुके हैं। निघण्टु १-३ देखिये। अम्बरम्। विपत्। सगरः। समुद्रः आदि षोड़श अन्तरिक्ष नाम हैं। इस में सगर शब्द विद्यमान है। अब आप विचार कीजिये सगर जो आकाश उस के सन्तान कौन हैं? यद्यपि इस के सन्तान अनेक हैं तथापि इस के प्रधान सन्तान मेघ हैं। वेद में भी कहा है।

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीढुषे। स नो यवसमिच्छतु। १
योगर्भमोषधीनां गवांकृणोत्यर्वताम्। पर्जन्यः पुरुषीणाम्। २। ७-१०२

यहां पर्जन्य अर्थात् मेघ के लिये (दिवस्पुत्र) शब्द आया है। सायण कहते हैं—(दिवोऽन्तरिक्षस्य पुत्राय) अर्थात् अन्तरिक्ष का पुत्र। इस से सिद्ध हुआ कि सगर के पुत्र ये मेघ हैं। ये मेघ वर्षा ऋतु में निरन्तर जगत् में भ्रमण करना आरम्भ करते हैं। कपिल नाम अग्नि का है। इसी कारण अनेक स्थलों में कपिलाचार्य को अग्न्यवतार माना है १। यहां कपिल से आग्नेय शक्ति का ग्रहण है। वह आग्नेय शक्ति वर्षा के अन्त में उन सब सगर सन्तानों (मेघों) को सोख लेती है। यही कपिल कृत सन्तानों का भस्म होना है। अब, मानो, सगर (आकाश) व्याकुल हो रहे हैं। कुछ दिनों के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु व्यतीत होती है। वर्षा का आरम्भ होता है। यही भगीरथ का जन्म लेना है। भग नाम सूर्य का है। रथ नाम रमणीय वस्तु का है। पृथिवी के लिये सूर्य्य की रमणीयता

(१) अग्निः सकपिलोनाम सांख्य शास्त्र प्रवर्तकः। हेमचन्द्र में 'कपिल' नाम अग्नि का आता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशेष कर वर्षा है। हम आप को कह चुके हैं कि विष्णु नाम सूर्य्य का है। विष्णु के चरण अर्थात् किरण की उष्णता से पृथिवी पर अधिक जलीयवाष्प होने लगा है। वह आकाश में जाजा कर जलधारा बनना आरम्भ होता है। मानों, रुद्र देव की जटा में जलधारा एकत्रित होने लगती है। यही गङ्गा का विष्णुपद (चरण) से निकलना है। और पर्वत (मेघ) पर स्थित रुद्र (विद्युदेव) की जटा में आकर गङ्गा का भ्रमण करना है। जटा में अर्थात् पर्वत (मेघ) पर आई अर्थात् जल मेघाकार में प्रस्तुतहुआ। जब मेघाकार में प्रस्तुत हुआ तब इतस्ततः भ्रमणकर पर्वत (मेघ) से निकल जगत् में वर्षकर प्राणीमात्र को सुख पहुंचाने लगा। अन्त में पुनः समुद्र में जाकर लीन हो गया। धारा रूप जो मेघ का इतस्ततः भ्रमण है यही गङ्गा का सगर सन्तानों की चिता का शुद्ध करना और पृथिवी पर प्रवाहित होना है अब आप समझ गये होंगे कि गङ्गा को क्यों कर विष्णुपदी कहा है और महादेव की जटा में निवास माना है।

'गङ्गा शब्द की व्युत्पत्ति और सगर'

"इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वती" इस की ऋचा के व्याख्यान में यास्काचार्य्य "गङ्गागमनात्" गमनार्थक "गम्" धातु से गङ्गा की सिद्धि मानते हैं। मेघस्थजलधारा भी गमन करती है इस हेतु धारा का नाम गङ्गा (१) है। "गच्छतीतिगङ्गा" नाड़ी प्रभृति का भी नाम गङ्गा है। क्या ही शोक की बात है जिस अभिप्राय से यह आख्यायिका बनी थी वह आज नहीं है। सगर की कथा को लोग यथार्थ समझने लगे। क्या यह सम्भव है कि एक एक राजा को ६०००० साठ सहस्र पुत्र (२) हों। और वे कपिल के शाप से तत्काल भस्म हो जांय। गङ्गा का विष्णु के पद से निकलना और रुद्र की जटा में आना इत्यादि वर्णन सूचित करता है कि यह कथा मेघ की है। पुनः सगर

(१) इयमाकाशगङ्गाच यस्यां पुत्रं हुताशनः। जनयिष्यति देवानां सेनापतिमरिन्दम। वाल्मीकीय रा० १। ३७॥

(२) षष्टि पुत्र सहस्राणि सगरस्याऽभवंस्तदा। वा० रा० १। ३८॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नाम ही बताता है कि यह वर्णन आकाश का है। इस प्रकार गङ्गा रुद्र का संयोग हमें दृढ़ करता है कि रुद्र नाम-धारी महादेव विद्युत्स्थ नीय हैं। धर्म्म सख प्रेमियो! कैसा अन्धकार देश में प्रचलित है कि इस को न समझ कर गङ्गा आदि की उत्पत्ति यथार्थ मान पदे २ ठोकर खा रहे हैं। इत्यलम् ॥

'रुद्र और भस्म आदि भूषण'

रुद्र और भस्मः—अनेक प्रमाण से सिद्ध हो गया है कि महादेव अग्नि के विशेषतया मेघस्थ अग्नि के प्रतिनिधि स्वरूप हैं। इस हेतु अब सूत्ररूप से मैं लिखता हूं। भाष्यवत् इस को आप लोग कर लेवें। महादेवजी सदा भस्म-विभूषिताङ्ग (१) वर्णित हुए हैं। आग्नेयशक्ति का कार्य्य ही प्रत्येक वस्तु को दग्ध कर=भस्म करदेना है। परन्तु भस्म शब्द के अर्थ जलादेना और राख छार दोनों हैं। अतएव जब शिवजी अग्नि के प्रतिनिधि मूर्तिमान् देव विरचित हुए तो यह स्वाभाविक है कि इन का चिन्ह भस्म रक्खा जाय। इसी कारण महादेवजी की मूर्त्ति भस्मविभूषित बनाई जाती है। और इसी हेतु शङ्कर जी श्वेत माने गये हैं। अन्यथा तमोगुणी शिवजी का कृष्णरूप होना चाहिये परन्तु यहां विपरीति देखते हैं इस से सिद्ध है कि यह महादेव अग्निस्थानीय हैं। इसी कारण शैवसम्प्रदायी भी भस्म देह में लगाया करते हैं और इस के सहस्रों माहात्म्य गाते हैं। आहा! कैसी अज्ञानता छाई हुई है ॥

रुद्र और सर्पः—सर्प को 'अहि' भी कहते हैं। परन्तु 'अहि' यह नाम मेघ और पानी का भी है। निघण्टु १—१० में अद्रि, ग्रावा, अहि, आदि ३० नाम मेघ के देखें। इसी के अनन्तर निघण्टु १—१२ में १०१ एक सौ एक नाम उदक (जल) के आए हैं। इन में से कतिपय प्रयोजनीय नाम उद्धृत कर देते हैं। यथा :—

(१) अस्याङ्गभूषणं भस्म विभूतिर्भूतिरस्यतु। शब्दरत्नावली ॥ महादेवोऽथ तद्भस्ममन्त्रेणाभिशरीरजम्। आदाय सर्वगात्रेषु भूतलेपं तदा करोत्। कालिकापुराण ३१ अ० ॥ विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विनारुद्राक्षमालया। पूजितोऽपिमहादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः। इत्यादि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्णाः । कबन्धम् । विषम् । अहिः । सरः । भेषजम् । शवः । भूतम् । अमृतम् । इन्दुः । शम्बरम् । कृपीटम् । जलाषम् । इत्यादि ।

इस में आप देखते हैं कि विष, अहि, शव, भूत, इन्द्र, शम्बर आदि नाम आगये हैं । आज कल विष को माहुर, जहर, गरल आदि अहि को सांप । शव को मुर्दा । इन्दु को चन्द्रमा । शम्बर को दैत्य कहते हैं । वेदों को छोड़ जलार्थ में ये शब्द अब प्रयुक्त नहीं होते । और ये ही सब महादेव के साथ उपाधियां लगी हुई हैं । प्रस्तुत विषय की ओर आवें । अहि नाम जल का भी सिद्ध हुआ । विद्युत् वा मेघस्थ वज्र का भूषण क्या है ? । निःसन्देह यदि मेघरूप जल न होवे तो इन के अस्तित्व में ही सन्देह रहेगा । इस हेतु विद्युदेव का भूषण 'अहि' अर्थात् जल वा मेघ है । विद्युदेव स्थानीय शिवजी का भूषण अहि अर्थात् सांप (१) है । इसी प्रकार विष, भूत, शव, चन्द्र आदि की भी व्यवस्था समझ लेवें । क्यों कि ये सब नाम जल के भी हैं । शम्बर एक दैत्य का भी नाम है इस को आगे लिखेंगे ।

रुद्र और चर्म्म—यद्यपि रुद्र दिगम्बर हैं तथापि इन का वस्त्र व्याघ्र वा गज-चर्म माना गया है "मृत्युञ्जयः कृत्तिवासाः" अमर० । इस का भी कारण मेघस्थ अग्नि है । आप वर्षा समय में आकाश की ओर देखें कभी २ हाथी के चर्म के समान मेघखण्ड प्रतीत होते । कभी व्याघ्रचर्म्म सदृश । ये ही चर्म्म-समान मेघ खण्ड मेघस्थ कुमार रुद्र (अशनि देव) के वस्त्र हैं । जब रुद्र एक पृथक् देव सृष्ट हुए तो तत् सदृश गजचर्म्म वा व्याघ्रचर्म्म इन को वस्त्र दिये गये । वेदों में भी यह वर्णन आया है ।

मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव । परमे वृक्ष आयुधं निधाय
कृत्तिं वसान आ चर पिनाकं बिभ्रदागहि । यजुः० १६–५१॥

(१) वासुक्याद्याश्रये सर्पा यथास्थानञ्चते हरम् । भूषयांचक्रुरुद्गम्य शिरोबाहूवादिषु द्रुतम् । कालिकापु० शिव विवाह ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पर्जन्यदेव में विशेष कर दो गुण हैं। वृष्टि देकर रक्षा करते हैं और अपने वज्र से हम लोगों पर प्रहार भी करते हैं। इस हेतु ईश्वर से प्रार्थना के द्वारा आशा की जाती है कि हे भगवन्! ये विद्युत् हम जीवों के प्रति कल्याण-प्रद होवें। इन के जो तीक्ष्ण आयुध हैं वे कहीं अन्यत्र जहां जीव न होवें वहां गिरें। जो यह शान्त, शिवतम, मीढुष्टम अर्थात् बहुत सींचनेवाले पर्जन्य देव हैं वे 'कृत्तिवसानः' गजचर्म समान मेघ से युक्त हो 'पिनाकं बिभ्रत्' जलरूप अस्त्र लेकर 'आगहि' आवें। एक बात यहां स्मरण रखनी चाहिये कि जब वेद के सम्पूर्ण अर्थ मुख्यतया सूर्य, वायु और अग्नि में ही घटाए जाने लगे और सम्पूर्ण वेद क्रियापरक माने जाने लगे उस के बहुत पश्चात् इन देवों की सृष्टि हुई है। इस कारण मुझ को वे ही अर्थ यहां लेने पड़ते हैं क्योंकि इन के ही आधार पर ये सब देव सृष्ट हैं।

रुद्र और पिनाक—"एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अव तत-धन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिंसन्नः शिवोऽतीहि"। यजु० ३। ६१॥ महादेव का एक पिनाक अस्त्र माना जाता है। यास्क निरुक्त ३, २१ में पिनाक शब्द के "पिनाकं प्रतिपिनष्टि अनेन" जिस से पीसे उसे 'पिनाक' कहते हैं ऐसा अर्थ करते हैं। अर्थात् जैसे मनुष्य गेहूं आदि खाद्य वस्तु को पीसने को यन्त्र चक्की आदि रखता है और उस से खाद्य पदार्थ को सूक्ष्म बनाया करता है। इसी प्रकार मेघस्थ विद्युद्देव में यह प्रत्यक्ष शक्ति है कि जल को वे सूक्ष्म बनाकर पृथिवी पर बरसाते हैं। अन्यथा हम देखते हैं कि मेघ एक महान् पर्वत समान प्रतीत होते हैं। यदि वैसे ही मेघ पृथिवी पर गिरें तो जीवजन्तु कैसे बच सकते छोटे २ ओलों के गिरने से तो यह दशा होती है यदि बड़े २ मेघ खण्ड गिरें तो न जाने जगत् की क्या दशा हो। इसहेतु भगवान् ने अग्नि में जैसे जलको वाष्परूप में लाकर मेघाकार बनाने की शक्ति दी है वैसे ही उस मेघ को सूक्ष्म कर बरसाने की भी शक्ति दी है। इसी आग्नेय शक्ति का नाम वैदिक भाषा में पिनाक है यह पिनाक मानों मेघस्थ अग्नि का अस्त्र है। अथ मन्त्रार्थ। यह आलङ्कारिक अध्यारोपित वर्णन है। (रुद्र) हे अशनिदेव! (ते) आपने (एतत्) यह (अवसम्) रक्षा की है अर्थात् आप जो हम लोगों पर कृपाकर वर्षा देते हैं सो हम जीवों के प्रति आप का रक्षा करना कार्य है। (तेन) इस हेतु सर्वदा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(मूजवतः) प्रतिबन्धकों का (अतीहि) अतिक्रमण अर्थात् त्याग करें अर्थात् आप जो जलों को अपने में बांध लेते हैं हम जीवों को नहीं देते ये जो आपके बन्धन हैं उन्हें त्याग देवें 'मूञ् बन्धने' धातु से मूजवान् बनता है जीमूत नाम भी इसी कारण मेघ का है। आप (परः) अतिशय श्लाघनीय हैं और आप (अवततधन्वा) विद्युद्रूप धनुष विरहित (पिनाकावसः) पिनाकरूप-शक्ति युक्त (कृत्तिवासाः) श्याम घटारूप चर्म्म विभूषित हो (अहिंसन्+नः) हम जीवों की हिंसा न करते हुए किन्तु (शिवः) कल्याण स्वरूप हो (अतीहि) सर्वत्र भ्रमण करें अथवा हमारे निकट अतिशय बारम्बार प्राप्त होवें।

अब आप विचार कर लेवें कि महादेव का अस्त्र पिनाक क्यों माना है? विद्युद्देव का सूक्ष्म करने की शक्ति का नाम पिनाक है। तत्स्थानीय गुण इस में भी संगठित करने के हेतु महादेव का पिनाक अस्त्र माना गया है। कैसी युक्ति व्यामोह के लिये रची गई है।

"रुद्र और त्रिनयन"

जैसे विष्णु में बाहु की, ब्रह्मा में मुख की वैसे ही महादेव में नेत्र की विशेषता है। महादेवजी की तीन आंखे विहित हैं। क्यों?। इस में भी अग्नि ही कारण है। इस में मेघस्थ आग्नेय शक्ति के योग का वर्णन संक्षेप से कर दिया है अब सम्मिलित अग्नि के योग दिखलाते हैं। हम स्थूल दृष्टि से देखते हैं कि पृथिवी पर एक अग्नि है जिस से यज्ञ करते हैं। विविध पाक बनाते। बड़े २ अस्त्र शस्त्र इसी से बनाए जाते, रेलगाड़ी इसी से चलाई जाती, कभी कभी भयङ्कर रीति से जंगलों को यही आग जला देती। शीत समय में वस्त्र से बढ़ कर काम देती है। इस प्रकार पृथिवी पर भी अग्नि की विभूति न्यून नहीं। अब पृथिवी से ऊपर चलिये। आकाश में भी महान् अग्नि विद्यमान है। मेघस्थ अग्नि अति भयङ्कर है। ऐसा तो न पृथिवीस्थ और न द्युलोकस्थ सूर्य्याग्नि ही है। किस घोर गर्जन और वेग से वैद्युताग्नि दौड़ता है। क्षण में ही कैसा प्रकाश कर देता है इस रुद्राग्नि का बहुत वर्णन व्यतीत हुआ। इस से आगे चलिये। सूर्यरूप महा अग्नि को देखिये। यह अग्नि का महा समुद्र है। इसी का किञ्चित्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अंश पृथिवी पर आता है जिस से भूमि इतनी गरम हो जाती है और उसी के किञ्चित् प्रताप से मेघादि घटना घटित होती रहती है। हे विज्ञान-विलासियो ! इस प्रकार आप देखते हैं कि हम जीवों की रक्षा के लिये भगवान् ने तीन स्थानों में अग्नि का प्रणयन अर्थात् स्थापन किया है अतः अग्नि त्रिनयन है। "त्रिषु स्थानेषु नयनम् प्रणयनं स्थापनं यस्य स त्रिनयनः" इसी प्राकृतिक-दृश्य के अनुसार यज्ञस्थला में तीन कुण्डों में तीन अग्नि स्थापित होते हैं। आहवनीय, गार्हपत्य और दक्षिणाग्नि। इस कारण से त्रिनयन अर्थात् तीन स्थानों में जिस का नयन=प्रणयन=स्थापन हो उसे त्रिनयन कहते हैं। मन्त्रों से यह अर्थ विस्पष्ट होगा अतः कतिपय ऋचाएं यहां लिखते हैं।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ॥ ६४ ॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः ॥ ६५ ॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ॥ ६६ ॥ यजु० १६ ॥

यहां देखते हैं कि द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी तीनों स्थानों में रुद्र अर्थात् आग्नेय शक्ति की व्यापकता दिखलाई गई है। जो आग्नेय शक्तियां द्युलोक में सूर्य्याकार हैं वे पृथिवी के लिये वर्षा उत्पन्न करती हैं ये ही इन के इषु हैं। जो अन्तरिक्ष में हैं वे प्राणीमात्र के प्राण की रक्षार्थ वायु देती हैं। ये ही इन के इषु हैं। जो पृथिवी में हैं वे अन्न उत्पन्न करती हैं। ये ही इन के इषु हैं। धन्य ये आग्नेय शक्तियां ! ! !

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्य्यो जायते प्रातरुद्यन्।
मायामू नु यज्ञियाना मेतामयो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥ ऋ० १० । ८८ । ६ ॥

(अग्निः) अग्नि (नक्तम्) रात्रि में (भुवः) संसार का (मूर्धा+भवति) मूर्धा होता है। चन्द्र ग्रह नक्षत्रादिरूप से रात्रि की शोभाप्रद अग्नि होता है। (ततः) तब (प्रातः उद्यन्+सूर्यः जायते) प्रातःकाल उदित होता हुआ सूर्य्य होता है। और (एताम्) इस अग्नि को (यज्ञियानाम्+मायाम्+उ) यज्ञ करने वाले मनुष्यों की माया मानते हैं। पृथिवी पर यज्ञ का मुख्य साधन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्नि ही है (यत्) जो (प्रजानन्) सबों को चेताता हुआ (दूर्णः) अति वेगवान् हो (चराति) सर्वत्र विद्यमान है। अथवा विद्युत् रूप होकर वही अग्नि सब को चेताता हुआ बड़े वेग से विचरण करता है।

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद्द्वितीयं परिजातवेदाः।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः॥ १॥
विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद् विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ॥ २॥
ऋ० १०-४५॥

प्रथम यह अग्नि द्युलोक में आदित्यरूप से प्रकाशित हुआ। तब द्वितीय पृथिवीरूप से वह अग्नि मनुष्य हितार्थ प्रकट हुआ। तत्पश्चात् तृतीय अग्नि अन्तरिक्ष में मेघों में व्याप्त हुआ। इस अग्नि को ज्ञानवान् पुरुष सदा प्रदीप्त कर यज्ञादि कर्म साधते हैं। १। अग्नि के जो अग्नि, वायु, आदित्य तीनरूप पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक में वर्तमान हैं उन्हें हम जानते हैं अग्नि के जो बहुत स्थान 'गार्हपत्य आहवनीय और अन्वाहार्यपचन' आदि हैं वे भी हम को विदित हैं। अग्नि का जो परमगूढ़ तत्त्व है वह भी विदित है। अग्नि जहां से हुआ है वह भी विज्ञात ही है। २। इन दोनों ऋचाओं में अग्नि की व्यापकता तीनों स्थानों में वर्णित है। इस के तीन स्थान कहे गये हैं:-

तमाहवनीयश्च गार्हपत्यश्च दक्षिणाग्निश्च।
यज्ञश्च यजमानश्च पशवश्चानुव्यचलन्॥ अथर्व० १५। ६॥

इस मंत्र में तीन अग्नि की भी चर्चा आती है। वेद में अनेक ऋचाएं इस सम्बन्ध में आई हैं अब त्रिनयन वा त्रिनेत्र शब्द पर बिचार कीजिये। अग्नि ही त्रिनयन है 'त्रिषुस्थानेषु नयनं प्रणयनं स्थापनं यस्यसः त्रिनयनः' तीन स्थानों में जिस का स्थापन हो वह त्रिनयन। अग्नि पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक तीनों स्थानों में स्थापित है इस हेतु यह 'त्रिनयन' है। यद्वा 'त्रिषुस्थानेषु आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणेषु कुण्डेषु नयनं प्रापणं यस्य सः त्रिनयनः' आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिण अथवा अन्वाहार्य पचन कुण्डों में जिस का प्रापण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो वह त्रिनयन। यज्ञस्थाला में तीनों कुण्डों में अग्नि को स्थापित करते हैं। इस हेतु अग्नि त्रिनयन है। 'यद्वा त्रयाणां नयनानां ज्योतिषा मग्निवाय्वादित्यानां समाहार स्त्रिनयनम्' अग्नि, वायु, सूर्य्य रूप तीन नयन अर्थात् तीन ज्योतियों का जो समाहार वह त्रिनयन। अर्थात् तीन अग्नि। "त्रीणि ज्योतींषि" सचते सषोडसी" यद्वा 'त्रीन् लोकान् नयति निर्वाहयति। यद्वा त्रयाणां लोकानां नयनं ज्योतिः प्रदानेन नयन भूतम्"। तीनों लोकों का निर्वाह यही करता है। इस हेतु अग्नि त्रिनयन है। यद्वा ज्योति देकर तीनों लोकों का मानों यही नयन=नेत्र है। इस हेतु यह त्रिनयन है। यहां यह विचार की बात है कि सूर्य्य रूप अग्नि सबों का साधारण नयन है। तीनों लोकों में यही ज्योति पहुंचा रहा है। इस हेतु सब प्राणी देखते हैं। यदि सूर्य्य न होता आंखें रहते हुए भी हम लोग अन्ध बनजांय। इस हेतु मुख्यतया अग्नि ही नयन है अतः अग्नि ही त्रिनयन है। यद्वा। एक यह भी बहुत दिनों से नियम चला आता है कि ब्रह्मचर्य गृहस्थ और वानप्रस्थाश्रम में अग्नि अर्थात् अग्निहोत्रादि सकल कर्म का सेवन रहता है परन्तु चतुर्थ संन्यासाश्रम में अग्नि का त्याग होता है। अतः अग्नि तीन ही आश्रमों में जाता है। "त्रिषुआश्रमेषु नीयते प्राप्यते स त्रिनयनः" अतः अग्नि त्रिनयन है। इत्यादि अनेक कारण हैं जो हमे बतलाते हैं कि अग्नि त्रिनयन है। इस पक्ष में नयन शब्दार्थ नेत्र आंख नहीं 'नी' धात्वर्थ केवल प्रापण है अर्थात् पहुंचाना 'णीञ् प्रापणे' नी To carry इस से नेता नायक प्रणयन इत्यादि शब्द बनते हैं।

नयन=दृष्टिः—परन्तु नयन शब्द का 'दृष्टि' आंख भी अर्थ होता है। इस कारण जब अग्निस्थानीय रुद्र देव कल्पित हुए तो इन को तीन नयन= आंखें दी गईं। अब आप विचार सकते हैं कि महादेव त्रिनेत्र (१) वा त्रिनयन क्यों कर हुए। व्यर्थक शब्द ही कारण हैं। अग्नि पक्ष में नयन का प्रापण आदि अर्थ है। महादेव पक्ष में दृष्टि अर्थ है जिस हेतु प्रधानतया

(१) त्रिपुरघ्नं त्रिनयनं त्रिलोकेशं महौजसम्। महाभारत ॥ १४। ८। २७॥
ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत्प्रभुः। मत्स्यपुराण ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महादेव आग्नेय स्थानीय है इस हेतु इस में नयन की ही विशेषता दी गई है। क्योंकि आग्नेय शक्ति से अधिक लाभ नयन को ही प्राप्त होता है। इत्यादि ऊहनीय हैं।

'रुद्र और त्रिसङ्ख्याकत्व'

महादेव 'त्रिनयन' है। यह वर्णन अभी होचुका। त्रिनयन में 'त्रि' यह संख्या विषम है। अर्थात् १, ३, ५, ७, ९, ११, १३ आदि संख्याएं विषम और २, ४, ६, ८, १०, १२, १४ आदि सम कहलाती हैं। यह विषमता महादेवजी के साथ अनेक प्रकार से लगी हुई है। इन का चन्दन त्रिपुण्ड्र है (१)। महादेव के ललाट पर त्रिरेखा युक्त चन्दन लगाया जाता है। महादेव की पूजा जिस बिल्वपत्र से होती है वह भी त्रिदल युक्त है इसका नाम ही त्रिपत्र है। पुराणों में बिल्वपत्र से ही (२) महादेव की पूजा का विशेष विधान है। इस से बहुत प्रसन्न रहते हैं। वह बिल्वपत्र तीन दलों से संयुक्त होता है। माला इन का रुद्राक्ष कहा गया है। रुद्राक्ष का बीज तीन रेखाओं से संयुक्त रहता है। इन का अस्त्र त्रिशूल है जिस में तीन शूल रहते हैं। इत्यादि महादेव के साथ संख्याकृत विषमता लगी हुई है। दशा की हीनता का भी नाम विषम है। दशा की भी विषमता महादेव के साथ है। नग्नत्व, वा दिगम्बरत्व, श्मशानवासित्व, विषभक्षणत्व, भूत-प्रेत-सहायकत्व आदि। परन्तु इन के अन्यान्य भी कारण हैं जिस का कुछ पीछे सर्पप्रकरण में वर्णन हुआ है आगे भी कुछ करेंगे।

"रुद्र और त्र्यम्बक"

अव रुद्र मदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः

(१) विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विनारुद्राक्षमालया। पूजिताऽपि महादेवो नस्यात्तस्य फलप्रदः। तस्मान्मृदापिकर्तव्यं ललाटेऽपित्रिपुण्ड्रकम्। त्रिर्यग्रेखाः प्रदृश्यन्ते ललाटे सर्वदेहिनाम्। तथापि मानवा मूर्खा न कुर्वन्ति त्रिपुण्ड्रकम्। इत्यादि व्यामोह इसी अज्ञानता के कारण चल पड़ा है॥

(२) ऊर्ध्वपत्रं हरोज्ञेयः पात्रं वामं विधिः स्वयम्। अहं दक्षिणपत्रश्च त्रिपत्रदलमित्युत। यह बिल्वपत्र का माहात्म्य है। तीनों पत्र तीन देव हैं। अज्ञानता का प्रवाह कैसा प्रबल है॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रेयसस्करद्यथानो व्यवसाययात् ॥ ५८ ॥ भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम् । सुखं मेषाय मेष्यै ॥ ५९ ॥ यजु० ३ ॥

अर्थ :—(त्र्यम्बकम्) त्रिलोक-पिता (रुद्रम्) दुःखनाशक (देवम्) परमात्मदेव को हम लोग (अव+अदीमहि) अच्छे प्रकार सेवन करें (येन) जिस सेवन से प्रसन्न हो कर वह रुद्रदेव (नः) हम को (वस्यसः+करत्) अतिशय-निवासी अर्थात् अच्छे गृहस्थ बनावें । (यथा+नः) जिस से हम को । (श्रेयसः+करत्) अत्यन्त श्रेष्ठ बनावें (यथा+नः) जिस से हम को (व्यवसाययात्) व्यवसायी बनावें । अव+अदीमहि । अद भक्षणे । दा दाने । दीङ् क्षये । डुदाञ् दाने । इत्यादि अनेक धातु से 'अदीमहि' प्रयोग हो सकता है । उपसर्ग के लगने से अर्थ बदल जाता है । त्र्यम्बक=त्रि+अम्बक । 'अम्बा एव अम्बकः' अम्ब नाम पिता का है । स्वार्थ में 'क' प्रत्यय है । 'अम्बा' शब्द का प्रयोग माता अर्थ में आज कल भी विद्यमान है । अमरकोश कहता है । 'अम्बा-माताऽथवालास्यात्' अम्बा नाम माता का है । पाणिनि सूत्र मे 'अम्बा' आया है 'अम्बार्थनद्योर्ह्रस्वः' ॥ ७ । ३ । १०७ ॥ अम्बार्थ पद से मात्रर्थ का ग्रहण है हे अम्ब ! हे अक्क ! हे अल्ल ! इत्यादि । अम्बा का पुलिङ्ग अम्ब होगा । इस से सिद्ध होता है कि अम्ब नाम पिता का है । अतः 'त्रयाणां लोकानां अम्बकः पिता त्र्यम्बकः' तीनों लोकों का जो पिता वह त्र्यम्बक । यद्वा । अम्ब गतौ । 'त्रींल्लोकान् अम्बति गच्छति व्याप्नोति जानाति वा त्र्यम्बकः' तीनों लोकों में जो व्यापक हो । यद्वा तीनों लोकों वा कालों को जानता हो । यद्वा । "अम गतौ । अमति येन ज्ञानेन तदम्बं त्रिषु कालेषु एकरसं ज्ञानं यस्यतम्" तीनों कालों में एक रस ज्ञान युक्त ।

सायणाचार्य्य—'त्र्यम्बकं यजामहे' (ऋ० ७ । ५९ । १२) इस ऋचा के भाष्य में त्र्यम्बक शब्द का अर्थ 'त्रयाणां ब्रह्म विष्णु रुद्राणाम् अम्बकं पितरम्' ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का पिता करते हैं । इस से सिद्ध होता है कि 'अम्बक' पिता का नाम है । और यदि यह रुद्र सम्बन्धी मन्त्र होता तो सायण ने उपरोक्त अर्थ कैसे किया ॥ ५८ ॥ आगे गृह पशुओं के लिये प्रार्थना है हे भगवन् ! आप (भेषजम्+असि) औषधवत् सर्वोपद्रव निवारक हैं इस हेतु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारे (गवे+अश्वाय+भेषजम्) गाय और अश्व के लिये ओषध दीजिये (पु. रुषाय+भेषजम्) पुरुष के लिये भेषज दीजिये (मेषाय+मेष्यै+सुखम्) भेडा और भेड को सुख दीजिये ॥ ५९ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् । उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् । (१) त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम् । उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ॥ यजु० ३ । ६० ॥

त्र्यम्बकम् से मामृतात् तक ऋग्वेद ७ । ५९ । १२ में भी है । सायण इस का भाष्य यों करते हैं:—

त्रयाणां ब्रह्मविष्णुरुद्राणामम्बकं पितरं यजामहे इति शिष्यसमाहितोवसिष्ठोब्रवीति । किं विशिष्टमित्यत आह । सुगन्धिं प्रसारितपुण्यकीर्तिम् । पुनः किं विशिष्टं पुष्टिवर्धनं जगद्बीजमुरुशक्तिमित्यर्थः । उपासकस्य वर्धनं अणिमादिशक्तिवर्धनम् । अतस्तत्प्रसादादेव मृत्योर्मरणात्संसाराद्वा मुक्षीय मोचय । यथा बन्धनात् उर्वारुकं कर्कटीफलं मुच्यते तद्वन्मरणाद्वा मोचय किं मर्यादीकृत्य अमृतात् सायुज्यमोक्षपर्य्यन्तमित्यर्थः ।

(सुगन्धिम्) जिस की पुण्यकीर्ति सर्वत्र विस्तृत है (पुष्टिवर्धनम्) जो विविध आरोग्य धन सम्पत्ति आदि का वर्धक है ऐसा जो (त्र्यम्बकम्) त्रिलोकी पिता परमात्मा है (यजामहे) उसी को हम सब पूजें । हे भगवन् ! (उर्वारुकम्+इव+बन्धनात्) जैसे फल परिपक्व होने पर अपने बन्धन से नीचे गिर पड़ता है वैसे ही मैं (मृत्योः) मृत्यु से (मुक्षीय) छुट जाऊं । परन्तु (अमृतात्) अमृत से (मा) नहीं अर्थात् अमृत स्वरूप आप से कदापि भी पृथक न होऊं । इतनी सब के लिये प्रार्थना है आगे केवल स्त्री के लिये प्रार्थना कही गई है (सुगन्धिम्) जो कुसुमादिवत् अत्यन्त सुखकर है (पतिवेदनम्) और जो हमारे स्वामी की भी सर्व दशा को जानने वाला है । ऐसे (त्र्यम्बकम् यजामहे) त्रिलोकी पिता को हम अवश्य पूजें । हे भगवन् ! (उर्वारुकम्+इव+बन्धनात्) बन्धन से परिपक्व फल के समान (इतः) इस मातृ पितृ गृह से

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(मुक्षीय) हम को पृथक् कीजिये । परन्तु (अमुतः) उस स्वामीगृह से (मा) नहीं । हे विद्वानो ! ऐसे २ स्थानों में त्र्यम्बक पद से त्रिनयनधारी व्यक्ति विशेष अर्थ करना सर्वथा अनुचित है ।

रुद्र और पञ्चवक्त्रः—कहीं २ महादेव के पांच मुख माने गये हैं। प्रत्येक मुख में तीन २ नेत्र । यथा "एकैकवक्त्रं शुशुभे लोचनैश्च त्रिभिस्त्रिभिः। बभूव तेन तन्नाम पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः । पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् । इत्यादि" इस का भी अग्नि ही कारण है । उपनिषदों में तथा वेदान्त में पांच अग्नि का विस्तार पूर्वक वर्णन है वे पांच अग्नि ये हैं:—

(१) असौ वाव लोकौ गौतमाग्निः । तस्यादित्य एव समित् । (२) पर्जन्यो वाव गौतमाग्निः । तस्य वायुरेव समित् । (३) पृथिवी वाव गौतमाग्निः । तस्याः संवत्सर एव समित । (४) पुरुषो वाव गौतमाग्निः । तस्य वागेव समित् । (५) योषा वाव गौतमाग्निः ॥ छान्दोग्य० उ० प्रपाठक ५ ॥ द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, पुरुष और स्त्री पांच अग्नि हैं । ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुधा कहागया है कि "अग्निर्वै देवानां मुखम्" अग्नि ही देवों का मुख है । परन्तु विशेषतया सृष्टि-प्रकरण में पांच अग्नि उक्त हैं । इस कारण मानो आग्नेय देवता के ये पांच मुख हैं। अतः अग्निस्थानीय महादेव के भी पांच मुख कल्पित हुए ।

रुद्र और दो रूपः—जैसे विष्णु के शेषशायी चतुर्भुज लक्ष्म्यादि सहित एकरूप और दूसरा प्रस्तर शालग्रामरूप ये दो रूप माने, पूजे जाते हैं । वैसे ही महादेव को पञ्चवक्त्र, त्रिनेत्र, वृषभारूढ, पार्वत्यादि सहित एकरूप और प्रस्तर नर्म्मदेश्वर पार्थिव दूसरा रूप है । इस में सन्देह नहीं कि महादेव के साथ अनेक उपद्रव हैं । जिस प्रस्तर की आज सर्वत्र पूजा होती है वह यथार्थ में विद्युत् का प्रतिनिधि है इसी हेतु इनकी शान्ति के लिये सर्वदा इन के ऊपर पानीय गिरते रहते हैं । इन की पूजा विशेष कर जल से ही होती है । आप ने शिव मन्दिर में देखा होगा कि इन के ऊपर घड़े के घड़े पानी डाले जाते हैं । इस से सिद्ध है कि यह विद्युत् के प्रतिनिधि हैं । इस भाव को लोग भूलकर इस शैव-प्रस्तर के विषय में अश्लील कथाएं भक्तों ने बनाली हैं । और इसी हेतु इस प्रस्तर पर चढ़ी हुई वस्तु अग्राह्य अखाद्य मानी गई हैं । कैसे शोक की बात है । धीरे २ कहां तक कथा बढ़जाती है ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'रुद्र और एकादश मूर्ति'

आप लोगों ने पार्थिव शिव पूजा अवश्य की होगी एकादश रुद्रों की यह पूजा कहलाती है। दश मूर्तियां कुछ पतली बनाई जातीं और पांच २ का भाग कर दो पक्तियों में स्थापित होती हैं। एक मूर्ति स्थूल बनाई जाती जो उन दोनों पंक्तियो के आगे स्थापित की जाती है। इस एकादश रुद्रों की पूजा क्यों होती है? ये एकादश कौन हैं? संहर्ता महादेव तो एक ही है पुनः येएकादश कहां से आये। उ० दश प्राण और एक आत्मा इन ग्यारहों का एक नाम रुद्र है क्यों कि जब ये शरीर से निकलने लगते हैं तो परितः उपविष्ट परिवारों को रुला देते हैं जिस हेतु ये रुलाते हैं। अतः ये रुद्र कहाते हैं

यथा—कतमे रुद्राइति दशेमे पुरुषे प्राणाः आत्मैकादशः ते यदाऽस्मात् शरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्ति। अथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्मादुद्रा इति" बृ० उ० ३। ९। ४॥

इसी हेतु इन के स्थान में एकादश रुद्र की पूजा होती है। जो एक स्थूल मूर्ति पृथक रहती है वह आत्मा का और पांच२की जो पंक्तियां रहती हैं वे पांच२ प्राणों के प्रतिनिधि हैं। जिस कारण इनका नाम रुद्र है अतः महादेव के साथ इनकी पूजा लगाई गई है।

"रुद्र और अष्टमूर्ति"

ओं सर्वाय क्षितिमूर्तये नमः। ओं भवाय जलमूर्तये नमः। ओं रुद्राय अग्निमूर्तये नमः। ओं उग्राय वायुमूर्तये नमः। ओं भीमाय आकाशमूर्तये नमः। ओं पशुपतये यजमानमूर्तये नमः। ओं महादेवाय सोममूर्तये नमः। ओं ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः। अथाग्निः रविरिन्दुश्च भूमिरापः प्रभञ्जनः। यजमानः खमष्टौच महादेवस्य मूर्तयः। अवेहि मां किङ्करमष्टमूर्तेः। इत्यादि।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, यजमान, सोम, सूर्य्य ये आठों महादेव की मूर्तियां मानी जाती हैं। और इन के देवता क्रम से सर्व, भव, रुद्र उग्र, भीम, पशुपति, महादेव, ईशान कहे गये हैं। यहां शतपथ ब्राह्मण षष्ठकाण्ड

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तृतीय ब्राह्मण के प्रमाण देकर पूर्व में कुछ वर्णन कर चुके हैं और वहां दिखलाया है कि अग्नि की व्यापकता का यह वर्णन है। यहां पर यह वर्णन है कि भगवान् ने अग्नि को उत्पन्न किया यह अग्नि कहने लगा कि मेरा नाम करो। भगवान् ने उस को रुद्र नाम दिया। पुनः कहने लगा कि मैं इस में अधिक हूं और नाम कीजिये। इस प्रकार जब आदित्यसूचक ईशान नाम दिया है तब इस ने कहा कि बस मैं इतना ही हूं। इस से अधिक नहीं। यह सिद्ध करता है कि एक महान् अग्नि है जो पृथिवी से लेकर सूर्य पर्यन्त कार्य कर रहा है इसी हेतु पृथिवी से लेकर सूर्य तक आठों नाम समाप्त हो जाते हैं।

"अष्टमूर्ति"

इसी का नाम इङ्गलिश भाषा में (Electricity) है इस में सन्देह नहीं कि यह आग्नेय शक्ति ही मुख्य पदार्थ है जो जगत को चला रही है। इसी हेतु आग्नेय शक्ति स्थानीय रुद्र में ये आठों गुण स्थापित किये गये हैं। इस में एक अन्य भी कारण प्रतीत होता है। वसु आठ होते हैं। और वसु पृथिवी-देव माने जाते हैं मुख्यतया अग्नि ही पृथिवी देव। वायु अन्तरिक्ष देव और आदित्य द्युलोक देव हैं। इस हेतु वसुयों के स्थान में भी रुद्र देव ही बनाये गये। इस में प्रमाण—

कतमे वसव इति। अग्निश्च, पृथिवीच, वायुश्च, अन्तरिक्षश्च, आदित्यश्च, द्यौश्च, चन्द्रमाश्च, नक्षत्राणि च एते वसवः। एतेषु हीदं वसु सर्वं हितमिति तस्माद्वसव इति। बृ० उ० ३। ९। ३। ब्रह्मवादिनोवदन्ति यद्वसूनां प्रातः सवनं रुद्राणां माध्यन्दिनं सवनमादित्यानाञ्च विश्वेषाञ्च देवानां तृतीयसवनम्। छान्दोग्य उपनिषद् २। १४।

अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा, नक्षत्र, ये आठ वसु हैं। अन्यान्य प्रकार से भी वर्णन पाया जाता है। वसुवों के प्रातः सवन। रुद्रों के लिये माध्यन्दिन सवन और आदित्यों के लिये तृतीय सवन।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"रुद्र और रुद्र की शक्तियां"

रुद्र और पार्वती—महादेव की अनेक शक्तियां वर्णित हैं । सती, पार्वती, काली, अम्बिका, दुर्गा, भवानी, रुद्राणी, मृडानी, गौरी आदि । मैं कतिपय शक्तियों का संक्षेप से निरूपण करता हूं । मैंने बारम्बार आप लोगों से कहा है कि 'पर्वत अद्रि, ग्रावा गिरि आदि नाम वैदिक भाषा में मेघ के भी हैं । निघण्टु १-१० देखिये । अब आप समझ सकते हैं कि **पार्वती** महादेव की पत्नी क्यों मानी गई है । "पर्वते मेघे भवः पार्वती । पर्वतस्य मेघस्यापत्यं स्त्री पार्वती विद्युद्वा । एवं गिरिजादयः" पर्वत जो मेघ उस में जो होवे अथवा मेघ की जो कन्या उसे **पार्वती** कहते हैं । मेघ की कन्या कौन है ? विद्युत् । विद्युत् ही के नाम पार्वती गिरिजा आदि हैं । क्योंकि वह पर्वत (मेघ) से उत्पन्न होती है । यह विद्युत वज्र-देवता की शक्ति है । अतः वज्रस्थानीय महादेव की पत्नी पार्वती मानी गई है । पृथिवी पर पर्वतों में श्रेष्ठ हिमालय है । और जैसे मेघ से जलधारा गिरती है । वैसे इस हिमालय से गङ्गा यमुना आदि अनेक धाराएं निकलती रहती हैं । पुनः जबतक मेघ में पानीय रहेगा तब ही विद्युत् उस से उत्पन्न होगी । हिमालय में हिम रूप पानीय सदा रहता है । इन कारणों से भूमिस्थ हिमालय की कन्या पार्वती देवी कथित है ।

रुद्र और काली :—इसका भी कारण अग्नि है । "काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता याच सुधूम्रवर्णा । स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इतिसप्त जिह्वा" । मुण्डकोपनिषद में लिखा है कि काली, कराली मनोजवा, सुलोहिता सुधूम्रवर्णा, स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी ये सात अग्नि की जिह्वाएं हैं । जब अग्नि के स्थान में एक रुद्रदेव कल्पित हुए तो जो वहां जिह्वाएं थीं वे यहां वनिताएं (स्त्रियां) कल्पित हुईं । और जिस कारण काली यह नाम अग्नि-जिह्वा का है इसी हेतु कालीदेवी की मूर्ति अति लम्बायमान जिह्वा-संयुक्त ही बनाई जाती है । जिह्वा की विचित्रता वा विशेषता आप किन्हीं देवियों में नहीं देखेंगे । कारण इस का यही है कि काली नाम ही जीभ का है । और अग्नि में प्रक्षिप्त प्रथम आहुति से धूम्र संयुक्त काली ज्वाला निकलती है । अतः काली देवी की मूर्ति अति कृष्ण-वर्ण मानी गई है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"रुद्र और गौरी"

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी सा चतुष्पदी। अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्। ऋ. १। १६४। ४१

इस मन्त्र पर यास्क लिखते हैं "गौरीरोनतेर्ज्वलतिकर्म्मणः। माध्यमिकावाक् गौरी"। भाव यह है मेघ में जो महा गर्जन होता है उसका नाम गौरी है। अथवा वाणी मात्र का नाम गौरी है। इस ऋचा के भाष्य में सायण लिखते हैं—"गौरीः गरणशीला माध्यमिका वाक्" अथवा गरणशीला शब्द ब्रह्मात्मिका वाक्'। इस सब का भाव यही है कि वाणी का नाम गौरी है। मदच्युते क्षेति सादने सिन्धोरूर्मौ विपश्चित्। सोमो गौरी अधिश्रितः। ऋ. ९। १२। ३। इस ऋचा में भी गौरी शब्द का अर्थ वाणी ही सायण करते हैं। वाणी के नाम में भी गौरी शब्द का पाठ आया है। निघण्टु १। ११ देखो। अब आप देखें माध्यमिका (मेघस्थ) वाक् भी मेघस्थ अग्नि की शक्ति है। जब मेघ से अतिवेगवान् हो वज्र-देव निकलते हैं प्रायः तब ही उसके साथ गौरी (अति गर्जन) होती है। अतः गौरी भी अग्नि की शक्ति है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है। कि 'तेजोमयीवागिति' वाणी तेजोमयी है। इस हेतु अग्नि स्थानीय रुद्र की पत्नी गौरी देवी हैं। गौरवर्णा स्त्री को भी गौरी कहते हैं। विद्युत् गौर वर्ण ही दृष्टि गोचर होती है अतः विद्युत् अर्थ में 'गौरी' शब्द का प्रयोग प्रायः आता है। इसी हेतु यहां भी पार्वतीजी के विशेषण में गौरी पद आता है

"रुद्र और अम्बिका"

महादेव की शक्ति एक अम्बिका देवी भी हैं। "अपर्णा पार्वती दुर्गा मृडानी चण्डिकाम्बिका अमरकोश। पुराण तंत्रों में इनकी बहुत चर्चा है। परन्तु यजुर्वेद भाष्यकर्ता महीधर अम्बिका को 'रुद्र-भागिनी' कहते हैं यथाः—

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहा। एष ते रुद्र भाग आखुस्ते पशुः। यजु० ३। ५७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस ऋचा का भाष्य महीधर इस प्रकार करते हैं। "जो सैंकड़ों विरोधियों को रुलावे वह रुद्र। हे रुद्र! आप अपनी भगिनी अम्बिका के साथ हम लोगों से प्रदीयमान पुरोडाश ग्रहण करें। उस पुरोडाश का सेवन करें। यह हवि सुहुत होवे। हे रुद्र! यह पुरोडाश आप का ग्रहणीय है। आप के लिये मूषिकपशु समर्पित हैं"। महीधर यहां यह भी कहते हैं कि "रुद्र की अम्बिका बहन है। इसी के साथ इसको यह भाग होता है। जो यह रुद्र नामक क्रूर देव है। वह जब अपने विरोधी को मारना चाहता है तब इसी क्रूर भगिनी अम्बिका को साधन बना अपने विरोधी को मारता है। वह अम्बिका शरद रूप धर ज्वरादि उत्पन्न कर उस विरोधी को मार डालती है" पुनः आगे कहते हैं। "आखुदानेन तुष्टो रुद्रस्तयाम्बिकया यजमान-पशून् न मारयतीत्यर्थः" चूहे के दान से संतुष्ट रुद्र उस अम्बिका से यजमान पशुवों को नहीं मरवाता है। क्या ही महीधर का विलक्षण अर्थ है। पुराण वा तंत्र तो कहते हैं कि अम्बिका देवी रुद्र की शक्ति और मूषिक गणेशका वाहन है परन्तु महीधर उलटा ही अर्थ करते हैं। इस मंत्र का यथार्थ अर्थ आचार्य्य (दयानन्दसरस्वती) ने अपने यजुर्वेदभाष्य में किया है। यद्वा। अध्यारोपकर अथवा पुरुषादिव्यत्यय से भी अर्थ होगा यथा—**स्वसाः**—केवल भगिनी का ही नाम स्वसा नहीं है। वेद में साथ रहनेवाले वा गमनकरने वाले पदार्थका नाम स्वसा है। "मातुर्दीधिषु मन्त्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम" ६।५५।५। इस मंत्र की व्याख्या में यास्क कहते हैं "उषसमस्य वसारमाह साहचर्य्याद्रसहरणाद्वा" निरु० ३—१६ सूर्य्य की स्वसा उषा (प्रातःकाल) है क्योंकि दोनों साथ रहते हैं। सूर्य्य की कोई बहिन नहीं पुनः प्रातःकाल अर्थात् उषा इसकी स्वसा कैसे हुई। इससे सिद्ध है कि मनुष्य की बहिन के समान यह स्वसा नहीं। **अम्बिकाः**—जलके समूह का नाम 'अम्बिका' है अर्थात् मेघ धारा। अम्बूनां समूहः अम्बिका। **आखुः**—आशु शीघ्र कार्य्य करने वाला। अथवा खेत के खोदने आदि कार्य्य करने वाला। **पशुः**—यह स्मरण रखनेकी बात है कि रुद्र का एक नाम **पशुपति** है। क्योंकि जलदेकर पशुओं की यह रक्षाकरता है रुद्र नाम पर्जन्य देव वज्र का है। अब सम्पूर्ण मंत्र का यह अर्थ हुआ (रुद्र) हे पर्जन्य देव (एषः+ते+भागः) यह पृथिवी आप का भाग है। इस हेतु आप (स्वसा) साथ गमन करने वाली (अम्बिकया) शुद्ध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जलधारा के (सह) साथ (तम) उस पृथिवी स्वरूप भागका (जुषस्व) सेवन अर्थात् रक्षण करें। (रुद्र) हे रुद्र ! निश्चय (एषः+भागः+ते) यह पृथिवी आपका ही भाग है। केवल पृथिवी ही नहीं किन्तु (आखुः) खोदने आदि व्यापार करने वाले (पशुः) पशु भी (ते) आपके ही हैं। जाति में यहां एक वचन है। (स्वाहा) ईश्वर की आज्ञा प्रतिपालित होवे। अर्थात् ईश्वर की जो यह आज्ञा है कि पर्जन्य जल से पृथिवी का पालन करे। विविध ओषधि उत्पन्न करें उन से पशु पुष्ट हों गृहस्थ कार्य्य सम्पादन-क्षम होवें। यह सब तब ही हो सकता है जब पर्जन्य देव बरसें। रुद्रसे पशुरक्षा के लिये अनेक प्रार्थना हैं। और अन्यत्र कहीं उक्त नहीं हैं कि रुद्र का चूहा भाग है। इस हेतु यहां यौगिक अर्थ करना ही सर्व सिद्धान्त है। पुनः—

प्राणाय स्वाहा। अपानाय स्वाहा। व्यानाय स्वाहा। अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन। समस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम्। यजु० २३। १८॥

इस मन्त्र में अम्बा अम्बिका अम्बालिका शब्द क्रमशः माता पितामही प्रपितामही वाचक है। आचार्यकृत भाष्य देखिये अम्बा शब्द से भी अम्बिका बनता है माता अर्थ में भी इसका बहुधा प्रयोग आया है।

रुद्र और सती:—सती की आख्यायिका बड़ी विलक्षण है। दक्ष प्रजापति की यह दुहिता कही गई हैं। महादेवजी से विवाह हुआ। अपने पिता के अनुचित व्यवहार से वह सतीदेवी यज्ञ कुण्ड में भस्म होगई। पुनः हिमालय पर्वत की कन्या होकर महादेव की अर्धाङ्गिनी हुई। इतना ही कथा का सारभाग है। हेविद्वानो ! ऐसे स्थलों में दक्षनाम सूर्य्य का ही है। "आदित्यो दक्ष इत्याहुः। आदित्यमध्येच स्तुतः। निरु० दै० ५। २३। यास्काचार्य्य कहते हैं दक्ष नाम सूर्य्य का है। द्वादश आदित्यों में एक दक्ष आता है। निपुण, तीक्ष्ण को दक्ष कहते हैं। अर्थात् ग्रीष्म ऋतु का जो सूर्य्य है। उस का नाम दक्ष है। सूर्य्य भगवान् पर्जन्यदेव रुद्र को अपनी उष्णता रूपा सती शक्ति (पुत्री) देते हैं। कभी कभी बैशाख ज्येष्ठ में भी उष्णता के योग से मेघ और उस में विद्युत होती है। यही सती देवी का रुद्र के साथ स्वल्प काल निवास है। सूर्य्य दिन दिन मेघ शोषण करने में परम दक्ष होते जाते हैं। जगत को प्रचण्ड

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तथा तपाना आरम्भ करते हैं। आकाश सर्वथा शुष्क होजाता। सूर्य्य के कारण से प्रथम मेघ बना था और विद्युत उत्पन्न हुई थी वह रुद्र की सती देवी थी और इसी से रुद्र देव की प्रसन्नता थी। अब सूर्य्य तो जगत के कल्याणार्थ ही तापन रूप यज्ञ रचता है। परन्तु इस यज्ञ से विद्युत की हानि हुई। क्योंकि मेघ ही नहीं रहा पुनः विद्युत रहे कहां। मेघ के अभाव से विद्युत्पति रुद्र का भी निरादर हुआ। मानो वह मेघस्थविद्युदेवी दक्ष (सूर्य्य) के तापन रूप यज्ञ में पति का निरादर देख भस्म हो गई। एक बात यहां स्मरण रखनी चाहिये कि जिस समय सूर्य्य पृथिवी को तपाना आरम्भ करता है। उस समय पृथिवी अति उष्ण होजाती है। अतः अग्नि दक्ष के तापन रूप यज्ञमें एक प्रकार से आजाता है। परन्तु गर्जन करने वाला मेघ देव रुद्र नहीं आता। उस ग्रीष्म समय में रुद्र का नहीं रहना यही दक्षकृत रुद्र का निरादर है। और यह निरादर सूर्य्य के कारण से ही हुआ है। इस हेतु सती देवी मानों भस्म हो जाती है। मेघ में विद्युत का न होना ही सती का भस्म होना है। अब पुनः ग्रीष्म ऋतु के वीतने पर वर्षा आई। जो सती देवी (विद्युत) भस्म हो गई थी वह पुनः पर्वत (मेघ) में उत्पन्न हुई। अर्थात् पुनः मेघमें विद्युदेवी प्रकाशित होने लगी अब रुद्र अर्थात् पर्जन्य-देव उस विद्युदेवी को अपने शिरपर लेकर पृथिवीपर भ्रमण करना आरम्भ करते हैं। जहां २ सती देवी का अंग गिरता है वह पवित्र स्थान होता जाता है अर्थात् जहां २ वृष्टि होती है निःसन्देह वह स्थान पवित्र होता है। वर्षाऋतु के अनन्तर ग्रीष्म होना और ग्रीष्म के पश्चात् पुनः वर्षाहोना यह जो दृश्य है। यही सती का भस्म होना और जन्म लेना है। हे शब्द तत्त्ववित्! आप लोग इस दृश्य को अच्छे प्रकार विचारें।

"रुद्र और अर्धाङ्गिनी"

यद्यपि विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र आदि सब पौराणिक देवों की शक्तियां हैं। इस में सन्देह नहीं। परन्तु रुद्र देव की शक्ति की बड़ी विलक्षणता है। आप देखते हैं कि एक ही शरीर में आधा भाग स्त्री का और आधा भाग पुरुष का रहता है। भूषण आदि भी इसी के अनुसार सजाये जाते हैं। इसी हेतु रुद्र को अर्धनारीश्वर आदि नामों से पुकारते हैं। तन्त्रसार में कहा है। यथाः-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नील प्रवाल रुचिरं विलसत् त्रिनेत्रम्
पाशाङ्कुशोत्पल कपालक शूल हस्तम् ।
अर्धाम्बिकेशमनिशं प्रविभक्त भूषम्
बालेन्दु बद्ध मुकुटं प्रणमामि रूपम् ॥

पुनः—अष्टमी नवमी युक्ता नवमी चाष्टमी युता ।
अर्धनारी ईश्वरप्राया उमा माहेश्वरी तिथिः ॥

इस का कारण क्या है ? अन्य देवों का ऐसा रूप क्यों नहीं ? । क्योंकि शक्तियां सबों की हैं । क्या महादेव ही अपनी पत्नी को अधिक मानते हैं ? । उ० उस में भी अग्नि ही कारण है । देखिये । वायु एक स्वतन्त्र देव प्रतीत होता है सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र, पृथिवी, जल आदि सब ही एक २ स्वतन्त्र दीखते हैं । परन्तु अग्नि देव स्वतन्त्र नहीं । काष्ठ, पत्थर, मेघ से अग्नि पृथक् नहीं इन के ही अभ्यन्तर लीन है । दीयासलाई में अग्नि भरी हुई है । बारूद में विद्यमान है काष्ठ के संघर्ण से अग्नि प्रकट होती है । मेघ से लपकती है । परन्तु स्वतन्त्र अग्नि नहीं यदि काष्ठादि पदार्थ नहो तो अग्नि का अस्तित्व ही नहीं रहेगा । इस से यह सिद्ध होता है कि अग्नि देव अन्यान्य शक्ति के साथ ही कार्य्य कर सकते हैं । क्षणमात्र भी अन्यान्य शक्ति से वियुक्त होकर अग्नि देव नहीं रह सकते । इसी कारण विवेकशीलपुरुषो ! अग्नि स्थानीय रुद्र देव अर्धनारी और अर्धपुरुष माने गये हैं । कैसी विलक्षण रुद्र की सृष्टि है । निःसंशय रुद्र रचयिता ने बड़ी २ युक्तियां और दृश्य वर्णन किये हैं ।

रुद्र और रोदसी । रथन्तु मारुतं वयं श्रवस्यु मा हुवामहे । आ यस्मिन् तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी । निरु० दै० ५ । ५० ॥

इस मन्त्र की व्याख्या में "रोदसी रुद्रस्य पत्नी" रुद्र की पत्नी का नाम रोदसी है ऐसा यास्काचार्य्य कहते हैं । विद्युत् का नाम रोदसी है । रुद्र की ही शक्ति विद्युत् है । पत्नी पालयित्री शक्ति का नाम है । वेदों में एक रोदसी वचन प्रयोग बहुत आया है । इसी प्रकार रुद्राणी भवानी आदि शब्दों की संगति स्वयं करलेवें

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"रुद्र और चन्द्र"

वैदिक भाषा में चन्द्र वाचक जितने चन्द्र, चन्द्रमा, सोम आदि शब्द हैं वे सब सोमलता वाचक भी हैं। दो पदार्थों के एक नाम होने से अर्वाचीन संस्कृत भाषा में बड़ा गड़ बड़ हुआ ह। जहां वर्णन है कि सोम वा चन्द्र ओषधियों का अधिपति है वहां लोगोंने सोम चन्द्रादि शब्दके ग्रह-चन्द्रमा का ग्रहण किया है। परन्तु यह बड़ी भूल की बात है। ऐसे २ स्थल में चन्द्रादि पद से सोमलता का ग्रहण है। ओषधियो में सर्व श्रेष्ठ होने से ओषधिपति ओषधीश्वर आदि सोमलताही कहलाती है। न कि ग्रहचन्द्रमा। रुद्र के शिर पर जो चन्द्रमा की मूर्ति बनाई जाती है वह यथार्थ में सोमलता का सूचक है। और सोम पद से सम्पूर्ण वनस्पति का तैलादिशब्दवत् ग्रहण है। इसी हेतु महादेव का एक नाम पशुपति है। शतपथ कहता है। "ओषधयो वै पशुपतिः। तस्माद् यदा पशव ओषधीलभन्ते अथ पतीयन्ति। ९। ३। १२ ओषधि ही पशुपति है। जब पशु ओषधि पाते हैं। तब ही स्वामी के कार्य्य क्षम होते हैं। अब आप समझ सकते हैं कि महादेव के साथ चन्द्रमा क्यों है ? महादेव पर्जन्य देव हैं। वह अपनी वर्षा से विविध गोधूम यव वनस्पति आदि खाद्य वस्तु द्विपद चतुष्पद के लिये पैदा किया करता है। मेघ का यह महान् यश है अतः पर्जन्य देव स्थानीय महादेव के शिर पर यशः स्वरूप चन्द्रमा शोभित है। वेद में सोम रुद्र शब्द बहुधा इकट्ठा प्रयुक्त हुआ है यथा :—

सोमारुद्राधारयेथामसुर्यं प्रवामिष्टयो रमश्नुवन्तु।
दमे दमे सप्तरत्ना दधाना शन्नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १ ॥
सोमारुद्रा वि वृहतं विषुची ममीवा यानो गयमाविवेश।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचै रस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥२
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु कृतमेनो अस्मत् ॥ ३ ॥
तिग्मायुधौ निग्महेती सुशेवौ सोमारुद्रा विह सुमृलतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतं नः सुमनस्यमाना॥४॥
ऋ० ॥ ६ ॥ ७४ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रुद्र और मरुत:—वेदों के कई एक स्थल में मरुत् को रुद्रपुत्र कहा है वेदार्थ दीपिका में भी कहा है कि "अजीजनन्मरुतः पृश्निपुत्रा रुद्रस्य पुत्रा अपितेबभूवुः। रौद्रेषु सुक्तेष्वथ मारुतेषु कथाद्वयंश्रूयते तत्र तत्र" । आग्नेय शक्ति से मरुत उत्पन्न होता है। अतः। यह रुद्रपुत्र माना जाता है।

रुद्र और सुवर्णादि धातु-सुवर्ण रजत ताम्र लोह आदि समग्र धातु आग्नेय शक्ति के कारण से ही बनते हैं। अतएव पुराणों में महादेव से इन की उत्पत्ति मानी है। इस में जो अश्लील कथा कहते हैं वे सब महा मिथ्या हैं। विष्णु जब मोहिनी रूप धारण कर रुद्र को लुभाते हैं तब उस के पीछे २ रुद्र दौड़ते हैं। इस का भाव यह है कि विष्णु अर्थात् सूर्य्य अपनी शक्ति से जब मोहिनी रूप अर्थात् विद्युद्रूप फैलाता है। तब इस के साथ रुद्र का रहना आवश्यक है। यह भाव न समझ कर अवाच्य कथा का वर्णन कर अपने देव को कुत्सित बनाते हैं। हे विद्वानो! विचारो!

रुद्र प्रस्तर और जलमय पूजा। जैसे विष्णु ब्रह्मा की मूर्ति सर्वावयव-सम्पन्न बना कर लोग पूजते पुजाते हैं। तद्वत् शिव की पूजा नहीं देखते। काशी, वैद्यनाथ आदि स्थानों में केवल लम्बायमान हस्तपादादि रहित प्रस्तर की पूजा होती है। इस में सन्देह नहीं कि जिस समय विष्णु की पूजा शालग्राम में होने लगी उसी समय नर्मदेश्वर की वा शैव प्रस्तर की पूजा चली है। इस के पूर्व त्रिनयन, पञ्चवक्त्र, भस्म विभूषित वृषभारूढ इत्यादि अनेक विशेषण संयुक्त और पार्वती सहित महादेव की पूजा चली थी। इस शैव-प्रस्तर की पूजा प्रचलित होने का भी कारण सहजतया विदित हो सकता है। पौराणिक समय में सब देवों की पूजा पृथक्२ होने लगी थी। सब ही चेतन देव माने जाते थे। मेघ के गर्जन और विद्युत् के पतन से लोग बहुत कम्पायमान होते थे। विद्युत् का अधिष्ठातृ देव रुद्र माना जाता था। प्रत्यक्ष ही रुद्र देव को अग्नि से जाज्वल्यमान देखते थे। अब भी देखते हैं। लोग विचारने लगे कि इस देव की शान्ति कैसे हो सकती है। इस से हमारी बड़ी हानि होती है। लोगों ने स्थिर किया कि अग्नि की शान्ति जल से होती है। इसी कारण आप शैव प्रस्तर की पूजा में यह विशेषता देखेंगे कि ब्राह्मण लोग प्रतिक्षण इस के ऊपर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जल गिराते ही रहते हैं। प्रसिद्ध २ मन्दिरों में यह नियम है कि किसी बड़े पात्र की पैंदी में छेद कर और उस में पानी भर शिव प्रस्तर के ऊपर लटका देते हैं। उस छेद से बूंद २ पानी दिन भर प्रस्तर पर गिरता रहता है। आप ने सब देवों की पूजा देखी होगी। परन्तु शैव प्रस्तर की पूजा विशेष कर जल से ही होती है। जो जाता है वह इस के ऊपर खूब पानी चढ़ाया करता है भारतवर्ष में जितने मन्दिर हैं उन में जल का ही दृश्य अधिक है। और होना भी चाहिये। यह पूजा ही हमें सूचित करती है कि यह प्रस्तर वज्र-स्थानीय है। जब वज्र मेघ से निकल बड़े जोर से चिल्लाता हुआ दौड़ता है तो उस समय इस का रूप अत्यन्त जलता हुआ अति लम्बायमान लोह दण्डसा प्रतीत होता है। हस्तादि अवयव नहीं दीखते। अतएव लोगों ने रुद्र देव की मूर्ति लोह दण्ड के समान ही बना प्राण प्रतिष्ठा दे पूजने लगे। यह शैव प्रस्तर केवल विद्युदेव का ही प्रतिनिधि है। परन्तु पीछे इसका भी भाव भूल गये। इस को कुछ और ही मानने लगे। और अनेक प्रकार की कथायें गढ़लीं। हे विवेकी जनो! परन्तु वे सब ही मिथ्या हैं। रुद्रदेव-सृष्टिकर्ता ने इस प्रस्तर को वज्र का प्रतिनिधि बनाया था। यदि ऐसा न हो तो इस प्रस्तर के साथ जल का बखेड़ा इतना क्यों लगाया जाता। इस से सिद्ध है कि यह प्रस्तर वज्र प्रतिनिधि है। इत्यलम्।

रुद्र और पार्थिव पूजा—आप देखते हैं कि मृत्तिका (मिट्टी) की मूर्ति बना बना कर प्राणप्रतिष्ठा दे प्रतिदिन महादेव की पूजा करते हैं। महादेव की पूजा में इसी का माहात्म्य है। अन्य देव की मृत्तिकामयी मूर्ति बनाकर आह्निक पूजा नहीं होती। इस का कारण यह है कि अग्नि पृथिवी का भी देव माना जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में इस का बहुत वर्णन है इस हेतु प्रतिदिन मृत्तिका की मूर्ति बना कर लोग पूजते हैं।

रुद्र और त्रिशूल—मैंने आप लोगों को सिद्ध कर दिखला दिया है कि यह रुद्रदेव केवल विद्युत् वज्र वा अशनि के ही स्थान में नहीं किन्तु समस्त आग्नेय शक्ति की जगह में सृष्ट हुआ है। इसी विद्युत् का नाम इंगलिश में Lighting है और जो सर्वव्यापक अग्नि शक्ति है उस का नाम Electricity

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस में सन्देह नहीं कि लाइटनिंग और इलेक्ट्रिसिटी दोनों एक वस्तु हैं । विद्युत् जहां गिरती है वहां सब पदार्थ नष्ट भ्रष्ट दग्ध हो जाते हैं यह प्रत्यक्ष है। इस आपत्ति से बचने के लिये प्राचीन विद्वानों ने यह उपाय निकाला था कि धातु निर्म्मित त्रिशूल यदि बड़े २ मकानों में लगाए जांय तो मकानों की बड़ी रक्षा हो सकती है । यह त्रिशूल विद्युत् आकर्षक होता है । अब आप देख सकते हैं कि महादेव के साथ त्रिशूल क्यों कर माना गया है ? जिस हेतु महादेव विद्युदेव हैं अतः इन के साथ त्रिशूल है । यह दिखलाता है कि यदि विद्युत् से रक्षा चाहते हो तो अपने २ मकानों में धातु रचित त्रिशूल लगाओ । आज कल माना जाता है कि फ्रैंकलिन नाम के विद्वान् ने इस जगदुपकारी वस्तु को प्रकाशित किया है । परन्तु हमारे यहां पहले से ही यह विद्या विद्यमान थी ।

Franklin turned his discovery to great practical account. He suggested that buildings should have lightning conductors, made of metal, through which lightning would pass without any injury to the buildings. The conductors project a little above the buildings, and are pointed to attract the lightning. They are fastened to the buildings by the grass-roads, through which the lightning can not pass, and thus it is conducted safely to the ground.

In some parts of Iudia thunderstorms are frequent and violent. Every year hundreds of lives and much valuable property are preserved through the invention of Franklin.

रुद्र और नग्नत्व—नग्न रहना यह न शास्त्रीय और न पौराणिक सिद्धान्त है। प्रतीत ऐसा होता है कि जब देश में जैनधर्म्म की परमोन्नति होने लगी और योगाचारी आदि जैनाचार्य्यों ने जब दिगम्बर पथ चलाया। अज्ञ लोग इस को सिद्ध मानने लगे उस समय पौराणिकों ने भी विवश हो कर अपने देव को नग्न बनाया । पहले से ही महादेव का वेष जैन योगी के समान था ही। व्याघ्रचर्म्म, विभूति सर्प, श्मशान अर्धाङ्ग आदि उपाधियां विद्यमान ही थीं पीछे इन में एक और नग्नत्व विशेषण बढ़ा दिया तब से ही महादेव नग्न माने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गये। अन्यथा महादेव तो कृत्तिवासा थे पुनः नग्न कैसे हुए इस प्रकार दिन दिन इन के साथ उपाधि बढ़ती ही गई। भैरव भी इन के गण हैं। भयङ्कर जिस का रव (नाद) हो। यह मेघ है। यही भैरव है। कार्तिकेय इन के पुत्र हैं। यह सेनापति कहे गये हैं। मेघों के जो अनेक झुण्ड हैं। वे ही यहां सेनाएं हैं। मानों इस कादम्बिनी (मेघमाला) को अपने वश में कर के यथास्थान में जो ले जांय और तत् तत् स्थान में पानी बरसा कर पदार्थरूप देवों को लाभ पहुंचावें। वे ही कार्तिकेय हैं। गणेश भी महादेवके पुत्र कहेगये हैं। यह गजानन हैं जिसने मेघों को पर्वत पर और समुद्रों में लटकते देखा है उन्हें बोध हो सकता है कि महादेव पुत्र गणेश क्यों माने गये हैं। वे मेघ हस्ती के समान पर्वतों पर प्रतीत होते हैं और उसी प्रकार सूंड़ लटकाए हुए भासित होते हैं। ये मेघ ही तो गण हुए। उन के जो ईश वे गणेश हैं। यह भी मेघ का ही वर्णन है इसी प्रकार त्रिपुरदहन आदि की भी संगति आप लोग स्वयं लगा सकते हैं। गणेशादिकों का निरूपण अन्यत्र दिखावेंगे। यहां ग्रन्थ के विस्तारभय से इन सबों का वर्णन अभी नहीं किया है। रुद्र सम्बन्धी जितनी ऋचाएं हैं उन का भी अर्थ अन्यत्र प्रकाशित करेंगे। यजुर्वेद षोड़साध्याय सम्पूर्ण रुद्र-सूक्त है। आधिदैविक पक्ष में यह सब वर्णन विद्युद्देव का होता है आधिभौतिक पक्ष में राजा आदि के वर्णन में घटता है। विद्यत् एक विशेष पदार्थ है। विचारने से यही प्रतीत होता है कि आत्मा और परमात्मा को छोड यही एक मुख्य पदार्थ है। वेद ईश्वर-विभूति को दिखलाता है विद्युत् एक जाग्रत विभूति है अतः इस का एक अध्याय में वर्णन आया है। हे रुद्रदत्तादि विद्वानो ! ईश्वर की विभूति देख ज्ञान प्राप्त कीजिये।

'उपसंहार'

इस प्रकार हम देखते हैं कि अग्नि, वायु और सूर्य्य ये ही तीन देव मुख्य हैं। यास्क कहते हैं 'तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्षस्थानः। सूर्य्यो द्युस्थानः'। तीन देवता हैं पृथिवी पर अग्नि। अन्तरिक्ष में वायु। और द्युलोक में सूर्य्य। इन ही तीन देवो के स्थान में रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु कल्पित हैं। परन्तु हे विद्वानो ! आप देखते हैं कि इन तीनों देवों के चलाने वाला भी कोई एक अन्य महान् देव है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'यो देवेष्वधि देव एक आसीत्'
'द्यावाभूमी जनयन् देव एकः'
'त्रीणि ज्योतींषि सचते स षोड़सी'

वही हम मनुष्यों का पूज्य देव है। हे धीर पुरुषो ! इस प्रकार ब्रह्म की चिन्तन आप लोग करें और मिथ्या ज्ञान को त्यागें। ब्रह्म निरूपण कभी पुनः विस्तार से सुनाऊंगा।

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ ! त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनञ्जय ! ॥ गीता ॥

हे विद्वानो ! क्या आप लोगों ने इसका एकाग्रचित्त से श्रवण किया ? क्या आप लोगों का भ्रम नष्ट हुआ ?

विद्वांसऊचुः—'नष्टो मोहःस्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत !
स्थितोऽस्मिगतसन्देहः करिष्ये वचनंतव'। गीता।

हे मान्यवर ! हमारा मोह नष्ट हुआ। स्मृति प्राप्त हुई। अब हम लोग सन्देह रहित हुए। यह सब कुछ आपकी कृपा से हुआ। आज से आपका वचन स्वीकार करेंगे। विद्वानो ! हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। आइये ईश्वर की प्रार्थना और सत्य की महिमा गाते हुए इस प्रसंग को समाप्त करें।

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुहुत स्तवेद् विष्णो! बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मां धेहि परमे व्योमन्। अथर्व। १७। १। १९।

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधी वीरुध आ विवेश। य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये। अथर्व। ७। ८७। १।

आप इन्द्र, महेन्द्र, आलोक, प्रजापति हैं। आप के लिये ही यज्ञ करते हैं। हे भगवन् ! आप ही सब से बलवान् हैं। आपकी शरण में हम बद्धाञ्जलि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपस्थित हैं। आप ऐहलौकिक सुख भुगाकर पश्चात् अमृत प्रदान करें। जो व्यापी न्यायकारी ईश्वर अग्नि, जल, ओषधियों और वनस्पतियों में व्यापक है जिसने सम्पूर्ण विश्व रचा है उसी प्रकाश स्वरूप न्यायकारी देव को नमस्कार होवे।

"सत्य की महिमा"

१- सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत्। ऋ० ७। १०४। १२।

अर्थः-(चिकितुषे) ज्ञानी चेतन (जनाय) जन के लिये (सुविज्ञानम्) यह सुविज्ञान अर्थात् जानने योग्य है कि (सत्+च+,,असत्+च) सत् और असत् दोनों (वचसी) वचन (पस्पृधाते) परस्पर एक दूसरे को दबाने की इर्षा करते हैं परन्तु (तयोः) उन दोनों में (यत्+सत्यम्) जो सत्य है और (यतरत्) उन दोनो में जो (ऋजीयः) अतिशय ऋजु अकुटिल है (तद्+इत्) उसीको (सोमः) भगवान् अथवा राजमन्त्री (अवति) रक्षा करते हैं और (असत्+आ+हन्ति) असत् का सर्वथा हनन करते हैं॥ १॥

२- न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्। हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्त मुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते। ७। १०४। १३।

अर्थः—(सोमः) भगवान् (वै+उ) निश्चय ही (वृजिनम्) पापीको (न+हिनोति) नहीं छोड़ते है और (न) न (क्षत्रियम्) पापी क्षत्रिय को छोड़ते हैं और (मिथुया) मिथ्या वचन (धारयन्तम्) धारण करते हुए अर्थात् असत्य-भाषी जन को नहीं छोड़ते हैं (रक्षः+हन्ति) उस पापी राक्षस को घात करते हैं (असद्+वदन्तम्) असत्य बोलते हुए को (आ+हन्ति) पूर्ण दण्ड देते हैं (उभौ) राक्षस और मिथ्या भाषी दोनों जन (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (प्रसितौ) बन्धन में (शयाते) रहते हैं। षिञ् बन्धने इस धातु से प्रपूर्वक 'प्रसिति' बनता है॥२॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३- यदि वाह मनृतदेव आस मोघं वा देवाँ,अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम्।
७। १०४। १४।

अर्थः—(अग्ने) हे प्रकाश देव ! (जातवेदः) सम्पूर्ण विश्व भुवन के जानने वाले ईश्वर! (यदि+वा) यदि (अहम्) मैं (अनृत-देवः) मिथ्यादेवोपासक (आस) हूं (वा) अथवा (मोघम्) निष्फल ही (देवान् +अपि+ऊहे) देवों के निकट प्राप्त होता हूं। हे भगवन् ! यदि ऐसा मैं हूं तब मेरे ऊपर आपकी अकृपा हो परन्तु ऐसा मैं नहीं हूं। हे देव ! इस हेतु (अस्मभ्यम्) हमारे ऊपर (किम्+हृणीषे) क्यों आप क्रोध करते हैं। हे भगवन्!(ते) वे (द्रोघवाचः) मिथ्याभाषी जन (निर्ऋथम्) नाश को (सचन्ताम्) प्राप्त होवे ॥ अनृतदेव= जिसका देव मिथ्या हो। निर्ऋथ=हिंसा। अतः हम लोग कल्पित मिथ्या देव की उपासना छोड़ परमात्मा की उपासना सदा किया करें जिससे कि इनके कोप में न पड़ें। आइये अन्त में पुनः उस परमगुरु स्वामी श्रीमद्दयानन्द को बारम्बार नमस्कार करें जो हम सबों को अन्धकार से पार करते हैं।

"ते त मर्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं
पारं तारयसीति। नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः।
'त्रींणि ज्योतींषि सचते स षोडशी'

इति मिथिला-देश-निवासि-शिवशङ्कर-शर्म-कृते
त्रिदेवनिर्णये रुद्र-निर्णयः समाप्तः।
त्रिदेवनिर्णयश्च समाप्तः।

द्वितीयः समुल्लासः समाप्तः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha
All rights reserved.

* ओ३म् *

वेदतत्त्व प्रकाश

(३)

जाति-निर्णय

जिसको

छान्दोग्योपनिषद्भाष्यकार पञ्जाबाऽऽर्य्यप्रतिनिधिसभोपदेशक काव्यतीर्थ श्रीमान् पण्डित शिवशङ्करजी ने रचा ।

और

श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब की आज्ञानुसार

सद्धर्म्म प्रचारक यन्त्रालय, जालन्धर शहर

में

पं० अनन्तराम शर्म्मा के प्रबन्ध से

मुद्रित हुआ ।

प्रथमवार १००० } संवत् १९६४ । सन् १९०७ { मूल्य १) रुपया

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विज्ञापन ।

पञ्जाब आर्य्यप्रतिनिधिसभा स्थापित आर्य्य पुस्तक प्रचार विभाग की ओर से ४० ट्रैक्ट भिन्न २ विषयों पर उर्दू में मुद्रित हो चुके हैं इन के अतिरिक्त इंग्रेज़ी और आर्य्यभाषा में निम्न लिखित पुस्तक छप चुके हैं जो देखने योग्य हैं:-

	मूल्य
१--वैदिकधर्म्म का महत्त्व	-)
२--आर्य्यों के नित्यकर्म्म	-)॥
३--माण्डूक्य उपनिषद् पं० गुरुदत्तकृत व्याख्या का आर्य्यभाषा में अनुवाद	=)
1.--Beauties of Vedic Dharma	0-1-3
2.--True Pilgrim's Progress	0-1-6

वैदिकधर्म्म का सेवक-

वज़ीरचन्द

अधिष्ठाता आर्य्य-पुस्तक-प्रचार,

जालन्धर शहर (पञ्जाब)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातिनिर्णय की विषय सूची।

	पृष्ठ
शङ्का	१
सब वर्णों के लिये समान प्रार्थना	९
आर्य्य, दस्यु और दास शब्द	१३
प्रश्न	२८
समाधान	२९
धर्म की महिमा	३३
सत्य की महिमा	३३
दस्यु शब्द और महाभारत	३४
मनुस्मृति और दस्यु	३७
ऐतरेय ब्राह्मण और दस्यु	३७
वेदों में दस्यु शब्द का पता	३८
दास शब्द पर विचार	४०
दास धातु और वेद	४०
दास शब्द के प्रयोग	४२
दास शब्दार्थ की उन्नति	४५
दास शब्द से शूद्र शब्द का सम्बन्ध	४६
अन्यान्य ग्रन्थों में आर्य्य शब्द	४८
वेदों में आर्य्य शब्द का पता	५२
प्रथम प्रश्न का समाधान	५२
राक्षस किस को कहते हैं	५४
नास्तिक वाचक कीकट और प्रमगन्द श०	५८
रावणादिकों का इतिहास	६०
जाति शब्द विचार	६१
सामान्य जाति	६२
मनुष्य एक जाति है	६२-७२

	पृष्ठ
इस में–	
क–सांख्य का प्रमाण	६८
ख–महाभारत का प्रमाण	६८
ग–बृहदारण्यकोपनिषद् का प्रमाण	६९
घ–वाल्मीकि रामायण का प्रमाण	६९
ङ–भागवत का प्रमाण	७०
अध्यारोपित जाति	७२
वर्ण शब्द का प्रयोग वेद से, ब्राह्मण ग्रन्थों से, महाभारत से	७३-७६
वेद में अनेक वर्णों के नाम	७६
खेती करना आदि व्यवसाय प्रकरण	८३
राज कर्तव्य हल चालन	८४
कृषि और चर्षणि	८६
कृषि कर्म्म प्रचारार्थ आज्ञा	८६
खेती और जनक महाराज	८७
खेती और पृथु महाराज	८७
खेती और विद्वान् आचार्य्य आदि	८७
ऋग्वेद का एक सूक्त	८८
चीन देश का राजा और हल चलाना	९१
वस्त्र वयन (कपड़ा बुनना)	९२
ऋषि और मेषलोम से वस्त्र वयन	९३
विद्वान् और वस्त्र वयन	९३
जुलाहे का व्यवसाय	९४
स्त्री और वस्त्रनिर्माण	९४
वस्त्रवयन प्रचारार्थ पाठशाला	९७
चीनदेश की महारानी और वस्त्र बुनना	९८

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रथकार, स्वर्णकार, कुम्भकार आदि ९९
तक्षा का आश्चर्य्यजनक कार्य्य १००
यज्ञ में भाग लेना १००
वृद्ध माता पिता को युवा बनाना १०१
चमड़े से गौ बनाना १०१
तक्षा की प्रशंसा १०२
तक्षा के लिये धीर आदि शब्द १०३
किला वगैरह बनाना १०४
अनेक प्रकार के वर्त्तन बनाना १०४
वस्त्र वयन १०५
खिलौने १०६
घड़े की चर्चा १०७
कूप की चर्चा १०७
चर्म्म की चर्चा १०८
कम्बल की चर्चा १०८
कुरसी आदि की चर्चा १०८
सहस्र खंभों से युक्त भवन १०९
प्रस्तर निर्मित शतपुर १०९
लोह निर्मित अनेक नगर १०९
समुद्र यात्रा ११०
वाणिज्य की चर्चा ११३
वाणिज्य के निमित्त राज रक्षा ११४
मल्लाह का पेशा ११५
दिव्य नौका की चर्चा ११५
शतारित्र युक्त नौका ११६
नापित ११८
स्वर्णकार, लोहकार ११८
एक ही मन्त्र में अनेक धातुओं के नाम ११९
अथ पोष्य पशु वर्ग प्रकरण:—
वेद में गोपशु की प्रशंसा १२०
गोपशु चारण १२१
ऋषि कर्तृक गोपोषण १२१
गौ के कारण वसिष्ठ और विश्वामित्र का युद्ध १२२
गौ आदि पशुओं के लिये प्रार्थना १२३
घोड़ा ऊंट आदि १२४
गर्दभ प्राप्ति के लिये प्रार्थना १२५
महाभारत और गदहे १२५
रासभ वाहन १२५
पारस्कर गृह्यसूत्र और ऊंट गदहे १२६
खच्चर की चर्चा १२६
चर्म्म की चर्चा १२७
बोझ ढोने वाला कुत्ता १२८
मन्त्री आदि सहित गजस्कन्धारूढ राजा १२८
ऋग्वेद १० । १०१ सूक्त का अर्थ १२९
मनुष्य में अनेक वर्ण कैसे उत्पन्न हुए? १३६
मानवाऽऽर्य्यसभा १४३
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् व्याख्याप्रकरण:—
प्रश्नोत्तर १४६
"ब्राह्मणोऽस्य" का अभिप्राय १४९
'ब्राह्मणोऽस्य' और शतपथादि १५४
" मनुस्मृति १५५
" महाभारत १६३
" रामायण १६९
भागवत और सृष्टि प्रकरण १७३
विष्णु पुराण " १७७
मुखज और बाहुज आदि शब्द १७९
ऋग्वेद और सृष्टि १८२
यजुर्वेद और सृष्टि १८३
अथर्व वेद और सृष्टि १८६
शतरूपा और मनु १९७
विष्णुपु० भागवतपु० और शतरूपा १९२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेद और मनु १९५
शतपथादि ब्राह्मण और मनु २०५
मनु और मत्स्य २०६
महाभारत २०९
पंचमानवादि शब्द २२२
निघण्टु में यदु आदि शब्द २२९
महाभारत में यदु आदि पांच वंश २३०
गीता और पांचजन्य शब्द २३५
पंचमानव पर आधुनिक विद्वानों की सम्मति २३५
द्वितीय प्रश्न समाधान २३६
तृतीयादि प्रश्न समाधान प्रकरण
ऐतरेयादि ऋषि और वर्ण परिवर्तन १४९
पृषध्र, करूष, नाभाग, धृष्ट, अग्नि वैश्य आदि शब्द २५१-२५२
एक २ पुरुष के चारों वर्ण के पुत्र २६०
व्रात्य और शूद्र २६१
वृषल आदि शूद्रवाचक शब्द २६३
चतुर्थ प्रश्न का समाधान २६५
पंचम प्रश्न का समाधान २६७
षष्ठ प्रश्न समाधान २६७
व्रात्य संस्कार २६७
व्रात्य सन्तान का उपनयन संस्कार २६८
सत्य काम जाबाळ और उपनयन २६८
ब्राह्मणी वर्णव्यवस्था २७०
जाति परिवर्तन २७१
वाल्मीकि रामायण और शूद्र २७३
पुराण और शूद्र २७६
सूत जी पौराणिक २७६
अवतार आदि और शूद्र २७७
वेद और शूद्र २८१
शूद्रों का यज्ञों में अधिकार २८५
तप से शूद्रम् २८७
जानश्रुति पौरायण २८८
प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण है २८९
प्रत्येक मनुष्य को चारों वर्ण होना चाहिये २९०
क्षत्रिय और वेद २९२
राजा की योग्यता २९४
वेद और वैश्य वर्ण १९६
विवाह २९७
अनुलोमविवाह ३००
प्रतिलोम विवाह ३०२
सूत जाति वर्णन ३०२
महाभारत और सूत पुत्र ३०३
पुराण और सूत ३०४
भिन्न वर्णों में सम्बन्ध ३०५
स्पर्श दोष ३०६
निषाद जाति का अन्न ३०९
संन्यासिओं के खान पान ३११
सप्तम प्रश्न का समाधान ३१४
परिशिष्ट प्रकरण ३१५
वज्र सूचिकोपनिषदादि ३१९
पशु और वृक्षादिकों में वर्ण ३२७
उपसंहार ३२८

* इति *

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

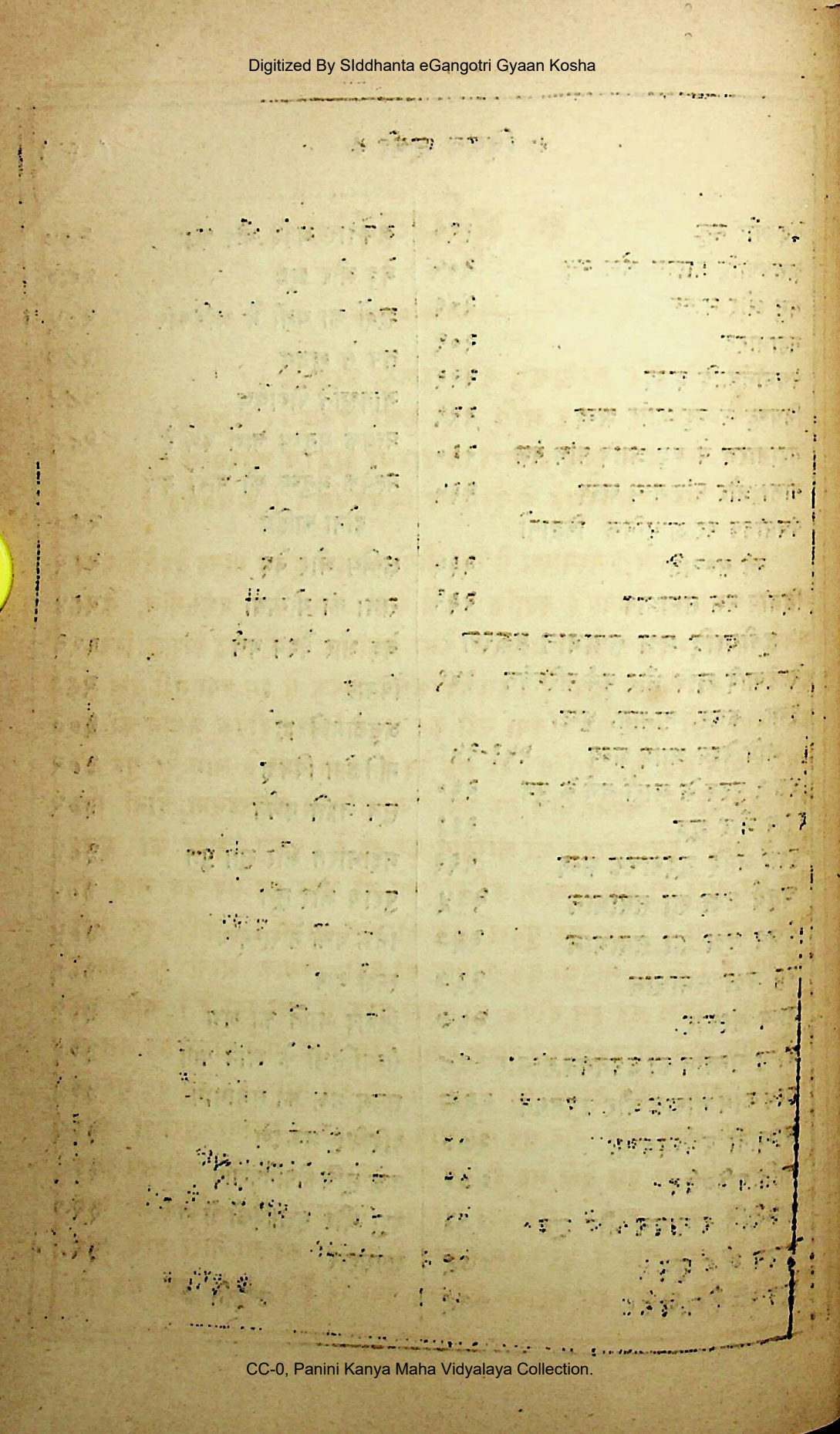

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

* भूमिका *

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् । (यजुर्वेद)
प्रियं मा दर्भं कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च ।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते । (अथर्ववेद)

विवेकि पुरुषो ! परमात्मा ने हम लोगों को इस दुर्लभ मानव देह देके परम अनुग्रह प्रकाशित किया है क्योंकि इस में कैसा उत्तम, कैसा प्रशंसनीय, कैसा अनर्घ, कैसा अद्भुत, कैसा उज्ज्वल, कैसा प्रकाशक, कैसा शुद्ध विशुद्ध, विवेक रूप एक महादीपक दिया है । इस विवेकरूप दीपक से हम क्या नहीं देख सकते ? क्या नहीं जान सकते ? क्या नहीं कर सकते ? परन्तु दीपक जलाने को सुचतुर सयान एक गुरु चाहिए । वह गुरु वेद है । बहुत दिनों से लोग वेद गुरु को त्याग कुग्रन्थों को अपना धर्म्म गुरु बना "अन्धा अन्धे का रहनुमा, दोनों गए कुए में समा" इस कहावत को चरितार्थ कर रहे हैं । परन्तु "सुबह का भूला शाम घर आवे तो उसे भूला न कहिए" अब भी अगर हम सब चेत जांय तो आशा प्रत्याशा है । वेद गुरु पुनरपि हम को मिल जायँगे । ये कहीं दूर नहीं चले गए हैं । परन्तु अविद्या-रूप कोयल की बड़ी विशाल खानों से अज्ञान रूप धुंआं निकल कर इस दीपक को चारों तरफ से दबा रहा है । यदि इस में वेद-गुरु सूर्य्य की उपदेशरूप तीक्ष्ण गरमी पहुंच जाय तो वे कोयले झट जल के भस्म हो जायं और दीपक चारों ओर प्रकाश देने लगे । इस हेतु वेद गुरु के समीप आप लोग आवें और सब को त्यागें । चाहें आप शास्त्रों पुराणों और भाषा के ग्रन्थों से पूछ देखें सब ही वेद वेद पुकारते हैं । तब क्यों नहीं सब छोड़ वेद गुरु के निकट जायं । "सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः" परन्तु अविवेक के मारे "आंख के अन्धे गांठ के पूरे" ऐसे मनुष्य ही "सांच कहे सो मारा जाय, झूठ कहे सो लड्डू खाय" इस कहावत को सत्य बना रहे हैं । अन्यथा वेद गुरु को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छोड़ कौन अज्ञानी कुग्रन्थ गुरु के निकट पहुंच "अन्धे के आगे रोवे, अपने दीदे खोवे" की भाँति इधर उधर भटकता फिरता है। थोड़ी देर तक सब पक्ष पात त्याग विवेक पर भार दे आप सोचें तो। इस समय आपका देश पृथिवी पर के प्रसिद्ध २ सब देशों के पुरुषों से भरा हुआ है। बम्बई आदि बड़े २ शहरों में निवास करते हुए अग्नि देवोपासक पारसी लोग आप के साक्षात् एक मुना हैं। मुहम्मद महोदय के उपदेश पर चलने वाले मुसलमान तो छोटे से छोटा भी ग्राम नहीं जहां वे आप के पड़ौसी न हों। उन के साथ कौनसा व्यवहार बाकी है। वे आप के उपनयन विवाह आदि शुभ कर्म्म में और आप उन के शुभ कर्म्म में मिलते जुलते रहते ही हैं। एक-ग्राम-निवासी हिन्दू, मुसलमान आपस में बाबू, भाई, काका, चाचा, मा, बहिन, मामी, मौसी आदि शब्द से परस्पर पुकारते हैं। इन मुसलमानों से कैसा हमारा घनिष्ठ और अटूट सम्बन्ध है आप लोग सब कोई जानते ही हैं। यह भी आप को स्मरण रहे कि ये एक दिन आपके समान ही द्विज थे। बादशाही आने पर ये किसी कारणवश मुसलमान हुए इस कारण इन को द्विज बनने का सब से पहला हक़ है। योरोप-निवासी ईसा-मसीह के शिष्य आप के शासक ही हैं। इन के अतिरिक्त चीनी, जापानी, मिस्री आदि अनेक द्वीप द्वीपान्तर के मनुष्य आज व्यापार के लिए आप के देश को शोभित कर रहे हैं। आप इन सबों पर एक दृष्टि दौड़ावें और यह भी ध्यान में रक्खें कि ये अपने २ देश में कोटियों नर नारियें बसते हैं। अब मैं पूछता हूं कि भगवान् ने इनमें चारों वर्णों को उत्पन्न किया है वा नहीं। इन के देशों में आप के समान ही पशु पक्षी आदि पदार्थ देखते हैं तो क्या चारों वर्ण नहीं देखे? पुनः इन में से क्या कोई महात्मा पुरुष नहीं निकलते? आप किन्हीं २ महात्मा मुसलमानी फकीरों को देख क्या उन्हें आदर नहीं करते? उन्हें ईश्वर-भक्त नहीं मानते? इस में सन्देह नहीं कि आपका आत्मा तो उन से सम्बन्ध जोड़ लेता है परन्तु आप स्वयम् लोक से डर के उन से विमुख रहते हैं। मैं कहता हूं कि आप ईश्वर से डरें मनुष्य से नहीं। आज योरोप निवासिनी श्रीमती अनुवसन्ती (एनीबेसेण्ट) देवी की पूजा सहस्रों विद्वान् द्विज नहीं कर रहे हैं। पारसी होने पर भी श्रीमान् दादा भाई नारोजी को क्या आज लक्षों द्विज शिर पर नहीं धरते हैं। उन की

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देदीप्यमान जीती जागती मूर्त्ति को देख भक्ति उत्पन्न नहीं होती ? क्या अङ्गरेज़ होने पर श्रीमान् महोदय काटन साहब को आप लोगों ने जातीय सभा में सिर ताज नहीं बनाया ? क्यों ! ऐसा क्यों !! निःसन्देह गुण की पूजा होती है। गुण ही मनुष्य को बड़ा करता है। हीरा भी पत्थर ही है परन्तु वह मुकुट में खचित होता है। क्या आप मनुष्य सन्तान को पशु पक्षी से भी नीच निकृष्ट मानेंगे ? गाय, भैंस, बकरे, हरिण, शुक, पिक से घृणा नहीं रखते। फिर मनुष्य तो शिक्षा पा उच्च शुद्ध पवित्र आत्मदर्शी तक हो सकता है। यदि विदेशी वा स्वदेशी मुसलमान, अङ्गरेज़, जापानी, चीनी, आदियों में कोई त्रुटि देखते हैं तो उस को दूर कीजिए। वह त्रुटि कैसे जा सकती है ? निःसन्देह घृणा से नहीं, वैर भाव से नहीं, पृथक् रहने से नहीं; किन्तु अपने में मिलाने से। यही एक उपाय है। संग से सब सुधरता है। आप अपने सङ्ग से उन्हें सुधारिए, यदि शुद्धि की आवश्यकता हो तो "गायत्री" मन्त्र दे शुद्ध कीजिए। आप गङ्गा से पञ्चगव्य से सूर्य्य चन्द्रादि देवता से सब से बड़े हैं। देखिये आप किन के सन्तान हैं। सब देवी देव जिन के निकट हाथ जोड़ खड़े रहते हैं। इस हेतु आप सब से बड़े हैं परन्तु आप अपने को भूले हुए हैं। किसी ने कहा है कि "देवाधीनं जगत्सर्वं, मन्त्राधीनाश्च देवताः। ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीनास्तस्माद्ब्राह्मण देवताः। (तस्माद्विप्रास्तु देवताः)" ठीक है कि पृथिवी, अग्नि, वायु मेघ विद्युत सूर्य्य, चन्द्र इत्यादि देवों के अधीन जगत् है। पृथिवी अन्नों से, अग्नि गरमी से, वायु प्राण से, सूर्य्य प्रकाश से, इस प्रकार सब ही देव इस पृथिवी पर के स्थावर जङ्गम जीवों की सेवा कर रहे हैं। परन्तु वे पृथिवी सूर्य्यादि देव किस के अधीन हैं ? निःसन्देह वे मन्त्र अर्थात् वेद के अधीन हैं। क्योंकि वेदों के अध्ययन अध्यापन से इन सूर्य्यादि देवों के तत्त्व जान किस से किस प्रकार और कौन काम लेना चाहिए यह सब भेद वेदवित् पुरुषों को मालूम होने लगता है। तब उस २ देव से वह २ कार्य्य लेना आरम्भ करते हैं। आज योरोप निवासी अग्नि से वायु से बिजुली से सूर्य्य से समुद्रादि देवों से काम काज ले रहे हैं। गमार से गमार भी पृथिवी देवी से कुछ न कुछ काम ले ही लेता है। परन्तु जितना ही वेद के द्वारा इन का तत्त्व जानेगा उतना ही अधिक काम ले सकता है। इस कारण कहा है कि ये सब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देव मन्त्र अर्थात् वेदों के अधीन हैं और वे वेद ब्राह्मणों के अधीन हैं । इस कारण ब्राह्मण देवता हैं । इसी कारण ब्राह्मण को भूदेव भूसुर कहते हैं। अब आप आँख खोल देखें यदि आप देव हैं तो देवता के समान कार्य्य भी आप को करना चाहिए । क्या सूर्य्य अपने प्रकाश को चाण्डाल पर से हटा लेता है? क्या गङ्गा यवन म्लेच्छ को अपने में नहाने नहीं देती ? क्या पृथिवी माता म्लेच्छ के खेतों में अन्न नहीं उपजाती ? इसी प्रकार ब्राह्मण को तो किसी से घृणा नहीं करनी चाहिए । जिस ने घृणा की वह ब्राह्मण देवता नहीं । अग्नि सूर्य्यादिवत् ब्राह्मण को उचित है कि सब को बराबर समझें । सब से पूजा लें सब का प्रसाद ग्रहण करें। अपने आगमन और सत् उपदेश से सब को शुद्ध पवित्र करते रहें । यदि आप अपने को सामान्य मनुष्य ही मानते हैं तो मनुष्य २ सब समानहैं । यदि अपने को ब्राह्मण समझते हैं तो आप देवता हैं फिर देवता के समान ही कार्य्य भी कीजिये, यदि पण्डित समझते हैं तो "विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । शुनि चैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः" । "आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः" । आप कैसे ही समझें आप को सब से समान वर्ताव करना पड़ेगा । तब ही आप का बड़प्पन है तब ही श्रेष्ठता है ।

पुनरपि आप देखें आप किस से घृणा करते हैं क्या इस शरीर से ? यह तो जड़ है । नहाने धोने से इस की शुद्धि हो जाती है, फिर सब का देह पञ्चभूतों से बना हुआ है । आधि, व्याधि, मरना, जीना, बाल्य, यौवन, वार्धक्य सबका तुल्य है । तब क्या जीवात्मा से घृणा करते हैं ? यह तो अनेक देहों में घूमता ही रहता है आप का भी आत्मा किसी अन्य देह को छोड़ यहां आया है । आत्मा सदा शुद्ध बुद्ध है । तब क्या कुत्सित कर्म्म से घृणा करते हैं ? यह आप के हाथ में है। शिक्षा उपदेश से कुत्सित कर्म्मों को शुद्ध कर सकते हैं । विवेकि पुरुषो ! मैंने बहुत कुछ आप लोगों से कह सुनाया । अब केवल विवेक को जागृत और शुद्ध करें । उसी दीपक की सहायता से आप को सब कुछ सूझने लगेगा इसी हेतु पांच प्रकरणों से सुभूषित 'जाति निर्णय' नामक ग्रन्थ लिख, सुना आप विद्वानों को ही समर्पित किया है अब मैंने आप लोगों को क्या सुनाया यदि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस को अति संक्षेप से सुना जाय तो मुझे विश्वास होगा कि आप लोगों ने दत्त चित्त हो मेरे कथन को श्रवण किया । यह सुन उन सब विद्वानों की सम्मति से तर्कपञ्चानन शास्त्री कहकर सुनाने लगे—आप ने हम लोगों पर कृपा कर इस में ३३६ ऋचाएं और मन्त्र कह इन के पृथक् २ पद, पदार्थ, व्याख्यान, भाष्य और गूढ़ाशय सुनाए हैं और महाभारत, रामायण मनुस्मृति, भागवतादि पुराण और बृहद्देवता प्रभृति अनेक ग्रन्थों के ४०८ श्लोकों के प्रमाण दिए हैं इस के अतिरिक्त शतपथादि ब्राह्मणग्रन्थों के लाट्यायन आदि श्रौतसूत्रों के, आपस्तम्बादि गृह्यसूत्रों के, छान्दोग्यादि उपनिषदों के, वेदान्त प्रभृति षट्शास्त्रों के, पाणिनि व्याकरणादि अङ्गों के इत्यादि २ अनेकानेक मान्यग्रन्थों के प्रमाणों से भूषित कर अमृतपान करवाया है। वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में जितने गूढ़ से गूढ़ प्रश्न हो सकते हैं इस में किए गए हैं और उन के समाधान भी सप्रमाण सयुक्ति सुनाए है।

प्रथम प्रकरण पृष्ठ १ से ८३ तक यह आर्य्य, दस्यु, दासादि निर्णय प्रकरण है। १ प्रथम पृष्ठ से ८ वें पृष्ठ तक ७ प्रश्न कर सामान्य प्रार्थना सुना आर्य्यादि शब्दों का व्याख्यान आरम्भ किया है। १—वेदों के पढ़ने वालों को सब से प्रथम आर्य्य दस्यु और दास इन तीन शब्दों पर बड़ी शङ्का होती है इस कारण प्रथम सामान्य रीति से ऋग्वेद की २७ ऋचाओं के व्याख्यान कर उत्तर कह पुनः इन तीनों शब्दों पर बहुत से वेद शास्त्रों के प्रमाण दे सिद्ध किया है कि व्रती आस्तिक सज्जन आदि श्रेष्ठ गुणधारी पुरुष को आर्य्य और इस के विपरीत पुरुष को दस्यु वा दास कहते हैं। इसी प्रसंग से राक्षस आदि शब्दों पर भी विचार किया गया है। २—इस अवस्था में इस समाधान के अभ्यन्तर एक दूसरी ही शङ्का उपस्थित होती है कि तब आज कल शूद्र को 'दास' क्यों कहते हैं क्योंकि 'शूद्र' तो नास्तिक नहीं होता और यह समाज का एक मुख्य अङ्ग है। इस पर 'दास' शब्द के अर्थ की क्रमोन्नति और 'शूद्र' शब्द के अर्थ की धीरे २ अवनति पृष्ठ ४५ से आरम्भ कर कही है। ३—पुनः जैसे पशुओं, पक्षियों, जलचरों, वृक्षों में इत्यादि २ सब वस्तुओं में भिन्न २ जातिएं पाई जाती हैं वैसे ही मनुष्य में भी ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चार जातिएं भिन्न २ हो सकती हैं ऐसी शङ्का जगत् के देखने से उपस्थित होती है। इस पर सांख्य शास्त्र, रामा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण, महाभारत, भागवत आदि के अनेक प्रमाणों और बड़ी २ युक्तियों से मनुष्य में "एक ही जाति पाई जाती है" यह ६१ पृष्ठ से आरम्भकर सिद्ध किया गया है। ४–पुनः इसी के अन्तर्गत वैदिकों को यह सन्देह उपस्थित हो सक्ता है कि "पञ्च जन" "पञ्चमानव" आदि शब्दों से तब आशय क्या लिया जायगा इस का उत्तर दूर चल के २२२ पृष्ठ से दिया है। ५–पुनः इसी के अभ्यन्तर "यदि मनुष्य में एक ही जाति है तब पाणिनि मन्वादि महर्षियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों के लिये पृथक् २ जाति शब्द के प्रयोग क्यों किए हैं ऐसी शङ्का होती। इस का समाधान ६१ पृष्ठ से आरम्भ कर कहा है। इसी के प्रसंग से 'जाति' 'वर्ण' शब्दों के प्रयोग और इतिहास कहते हुए भिन्न २ व्यवसायियों (*Professional*) के १७२ नाम गिना के प्रथम प्रकरण को समाप्त किया है।

द्वितीय प्रकरण। ८३ से १४५ तक। यह व्यवसाय (*Profession*) सम्बन्धी है। इस में १४ ऋचाओं के प्रमाण अर्थ सहित कहे गये हैं। ६–प्रथम प्रकरणस्थ व्यवसायियों (*Professional men*) के नाम सुन स्वभावतः यह सन्देह उत्पन्न होता है कि वेदों में किन २ व्यापार, वाणिज्य, व्यवसाय, कला कौशल आदिकों की और किन किन पोष्य पशुओं की चर्चा है। वे व्यवसायी आजकल के मान ही क्या नीच, निकृष्ट, सभ्यसमाज से पृथक् माने जाते हैं या इन का कुछ विशेष सत्कार कहा है। इस सन्देह के निवारणार्थ बढ़ई, लोहार, सुनार, चमार, नाई, धोबी, जुलाहे इत्यादि व्यवसायियों की और गौ से लेकर गदहे तक पशुओं की चर्चा वेदों से दिखलाई गई है और नदियों से लेकर समुद्र तक की यात्रा, कृषिकर्म, प्रस्तर और लोहनिर्मित नगर, राजकीय प्रासाद (*Palace*) सभा भवन आदि अनेक कला कौशल की वार्ताओं को कहते हुए सिद्ध किया गया है कि व्यवसाय के कारण किसी को ऊंच वा नीच वेद नहीं मानता। प्रत्युत वेद कहता है कि इन सब व्यवसायों को विद्वान्, मनीषी, ज्ञानीजन करें ऋषि और राजा को भी खेत करने, कपड़े बुनने आदि व्यवसाय के लिये आज्ञा है एवं बड़े २ कुलीन गृह की देवियों को भी सूत कातने, कपड़ा बुनने बेल बूटा लगाने याने जुलाहे और दर्जी के काम करने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के लिये आज्ञा है। इस प्रकार एक २ गृह में अनेक २ व्यवसायियों के होने के प्रमाण देते हुए आवश्यकता के अनुसार धीरे २ व्यवसाय और व्यवसायियों की समुन्नति दिखलाते हुए। अन्त में मानवाऽऽर्य्य सभा की चर्चा करते हुए इस प्रकरण को समाप्त किया है।

तृतीय प्रकरण पृष्ठ १४६ से २४६ तक। यह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् व्याख्या प्रकरण है"। ७—अब यदि मनुष्य में एक ही जाति है तो इन के व्यवसाय और कर्म्म भिन्न २ कैसे हुए औ "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" का क्या अर्थ होगा? धर्म्मशास्त्र और पुराणादिके सब ही ग्रन्थ कहते हैं कि मुख से ब्राह्मण की, बाहु से क्षत्रिय की, ऊरु से वैश्य की और पैर से शूद्र की उत्पत्ति हुई है इस की क्या गति होगी। इस महती आशङ्का की निवृत्ति के हेतु १०० से अधिक पृष्ठ लिखे गए हैं प्रथम अनेक प्रमाणों और युक्तियों से वेद का यथार्थ अर्थ करके मन्वादि धर्म्मशास्त्रों की संगति लगाते हुए सिद्ध किया गया है कि मनुस्मृति, महाभारत, रामायण, भागवत विष्णुपुराण आदिक कोई भी ग्रन्थ ब्रह्मा के मुखादिक अङ्ग से ब्राह्मणादिक की उत्पत्ति नहीं मानता इस की सिद्ध के हेतु उपर्युक्त सब ग्रन्थों से सृष्टिप्रकरण दिखलाया गया है। और उस की समीक्षा की गई है। ८—मनु और प्रजापति—इसी सृष्टिप्रसङ्ग से मनु और प्रजापतियों के विषय में भिन्न २ रोचक मत प्रदर्शित हुए हैं। मनुस्मृति पृ० १५५ के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र विराट् और विराट् के पुत्र मनु हैं और प्रजापतियों की संख्या १० है। पृ० १६३ से महाभारत के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप कश्यप के पुत्र आदित्य, और आदित्य के पुत्र मनु हैं और प्रजापतियों की संख्या कहीं ६ कहीं ७ और कहीं २७ है। पृ० १६२ रामायण के अनुसार एक स्थल में मनुजी महाभारत के समान हैं; परन्तु दूसरी जगह बड़ा विचित्र वर्णन है। रामायण कहता है कि मनु एक स्त्री का नाम है वह कश्यप की धर्म्म-पत्नी थी इस से सकल मनुष्य हुए। पृ० १७३ से भागवत के अनुसार ब्रह्मा के पुत्र मनु हैं। प्रजापतियों की संख्या कुछ निश्चित नहीं। कहीं कहीं प्रथम चार पुत्रों का कहीं कहीं १० का कहीं इससे अधिक का वर्णन है। ऐसा ही विष्णुपुराण को जानिये। ९—इस प्रकार समीक्षा करने से सब को विदित होगा कि मनुजी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को लोगों ने क्या २ बनाया है। मनुस्मृति पृ० १९७ में कहती है कि मरीचि के पिता मनु हैं; परन्तु इस के विपरीत महाभारत कहता है कि मनुजी के पिता मह मरीचि हैं। रामायण मनु को स्त्री बनाता है। पुनः भागवत, विष्णुपुराण आदि मनु और मरीचि दोनों को सहोदर भ्राता मानता है। इत्यादि अनेक विषयों के वर्णन इस सृष्टि प्रकरण में विद्यमान हैं। बडे ध्यान से इन्हें विचारना चाहिये। १०—परन्तु यथार्थ में मनु कौन है? वेदों में इस की वार्ता कुछ है या नहीं इस पर पृ० १९४ से २०५ तक वेद की २५ ऋचाएं कही गई हैं और सिद्ध किया गया है 'मनु' यह नाम मनुष्यमात्र का और श्रेष्ठ पदवी का है। ११—पुनः शतपथादिक ग्रन्थों के अनुसार २०५ से २२२ तक मनु के विषय में बहुत कुछ निरूपण किया गया है। और पृ० १९० से १९४ तक मनु और शतरूपा क्या वस्तु है? यह अच्छे प्रकार कहा है। पुनः "पञ्चजन" शब्द पर २२२ से २३६ तक बृहद् व्याख्यान कहा है। इस के अतिरिक्त अन्यान्य अनेक शंका समाधानों को वर्णन करते हुए और द्वितीय प्रश्न के उत्तर के साथ यह प्रकरण समाप्त किया गया है।

चतुर्थ प्रकरण पृ० २४६ से ३०० तक। यह एक तरह से संकीर्ण है। इसमें अनेक विषय प्रतिपादित हैं। १२—सन्देह होता है कि ब्राह्मण शूद्रादिकों को जब वेद समान मानता है तो मन्वादि धर्म्मशास्त्रोंमें शूद्रों को यज्ञोपवीत निषेध क्यों? पुनः जब वेद के अनुसार एक २ गृह में चारोंवर्णों के मनुष्य थे तो पीछे विभाग कैसे हुए? इत्यादि सन्देह उत्थित होते हैं। इस के लिये मन्वादि धर्म्मशास्त्रों की वर्णव्यवस्था की रीति विस्तार पूर्वक दर्शाई गई है और उन की संगति लगाई गई है। जब वंशानुगत वर्णव्यवस्था चली है तब भी वर्ण-परिवर्तन और उन के अनेक उदाहरण ऐतरेय, कवष, सत्य काम, पृषध्र, करूष, नाभाग, धृष्ट, अग्निवेश्य, रथीतर, हारीत, शौनक, गृत्समद, वीतहव्य आदि के दिये गए हैं। १४—एवं वेदों में जिस को दास वा दस्यु कहा है उन्हीं को मन्वादि ग्रन्थों में व्रात्य वा शूद्र कहा है यह घटना कैसे घटी। इस का क्या इतिहास है। इत्यादि सन्देह निवारणार्थ व्रास और शूद्र, शूद्र वाचक अन्यान्य शब्दों पर बहुत कुछ निर्णय किया गया है। वास्तव में इस तत्त्व को विना जाने हुए वर्ण व्यवस्था की क्रमोन्नति अवनति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को कोई जान ही नहीं सकता है। १४-इस पतितावस्था में भी शूद्रों को कौन२ अधिकार थे इस विषय का वर्णन रामायण पुराणादिकों से विस्तार पूर्वक कहा गया है। पुनः वेदों से लेकर आधुनिक ग्रन्थ पर्य्यन्त शूद्रों के विषय में क्या २ कहते हैं। वेदों में शूद्र शब्द के पाठ कितने बार और कहां २ हैं। वेदों में शूद्र शब्द के यथार्थ अर्थ क्या हैं? इत्यादि भूरि २ अर्थों का प्रतिपादन आपने हम लोगों को सुनाया है। व्रात्य संस्कार, व्रात्य पुत्रोपनयन, सत्यकाम जाबाल, पौत्रायण ज्ञानश्रुति इत्यादि विषय सुनाये हैं। १५-पुनः जब यह शरीर ही चारों वर्णों से बना हुआ है तब प्रत्येक मनुष्य चारों वर्ण है और प्रत्येक को चारों वर्ण होना चाहिये भी इस को दिखलाते हुए ब्राह्मण और शूद्र के यथार्थ लक्षण सुनाए हैं। १६-प्रजाओं से वृत (चुना हुआ) ही राजा हो सकता अन्य नहीं, एवं क्षत्रिय, राजा, सम्राट् आदि शब्दों के अर्थ कहते हुए क्षत्रिय का वर्णन किया है। पुनः वैश्यों का वाणिज्य, गण (Company) के साथ होता था इस के प्रमाण सुनाए गए हैं। इस के पश्चात् अनुलोम, प्रतिलोम विवाह विस्तार से उदाहरण इतिहास प्रमाणों सहित वर्णन करते हुए परस्पर स्पर्शास्पर्श (छूआ छूत) और सहभोजिता का वर्णन कह सुनाया है। इस में सन्देह नहीं कि इस निर्णय के ऊपर हम लोगों को बहुत ध्यान देना चाहिए। यह भूरि भूरि प्रमाणों और युक्तियों से अलंकृत है सप्तम प्रश्न के समाधान के साथ यह समाप्त होता है।

पंचम परिशिष्ट प्रकरण पृष्ठ ३१५ से ३३२ तक है। यह कैसा रोचक है सो हम सब स्वयं अनुभव करते हैं। इस के श्रवण से निखिल सन्देह दूर हो गए। आपने बृहदारण्यक वज्रसूची आदि अनेक ग्रन्थों के प्रमाण दे हम लोगों को गुण-कर्म्मानुसार वर्णव्यवस्था के मानने में सुदृढ़ और पूर्ण विश्वासी कर दिया है। अब से हम सब इसी के अनुसार वर्ण मानेंगे और इस के प्रचार के लिए भी पूर्ण प्रयत्न करेंगे। मैंने संक्षेप सुनाने में बहुत से विषयों का वर्णन नहीं किया। हम लोगों ने दत्तचित्त से श्रवण किया और प्रत्येक अर्थ जिह्वा के अग्र पर विद्यमान है इस के प्रमाण के लिये आपकी आज्ञा पा किञ्चिन् मात्र निवेदन किया है। एवमस्तुः। अन्त में एक यह शङ्का होती है उसे भी कृपा कर दूर कीजिए। पृष्ठ ८८ में "क्षेत्रस्य पतिना वयम्" इस मन्त्र पर आपने कहा है कि वामदेव ऋषि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहते हैं सो कैसे? क्योंकि यह वेदमन्त्र है। वामदेव कैसे कहेंगे?। समाधान सुनिए "अग्निमीडे पुरोहितम्" मैं अग्नि (ईश्वर) की स्तुति करता हूं। यह इस का अर्थ है। मैं कौन? यह प्रश्न होता है। जो प्रार्थना करे वही यहां "मैं" है। अब यदि यह कहा जाय कि मैं शिवशङ्कर ईश्वर की स्तुति करता हूं तो क्या कोई क्षति होगी? नहीं। पुनः "संगच्छध्वं सम्वदध्वम्" सब कोई साथ मिल सब परस्पर सम्वाद करो, यह इस का अर्थ है। इस का कहने वाला ईश्वर है। इस में सन्देह नहीं, परन्तु इस मन्त्र के तत्त्व जानने वाले ऋषि अब मनुष्यों को उपदेश देते हैं कि मनुष्यो! साथ मिलो साथ २ सम्वाद करो। यहां पर यदि यह कहा जाय कि वामदेव ऋषि उपदेश देते हैं कि ऐ मनुष्यो! मिलो सम्वाद करो तो क्या कोई क्षति होगी? नहीं। जैसे विवाह आदि में कोई मन्त्र कन्या और कोई वर पढ़ता है इसी प्रकार सर्वत्र जानें। वेद ईश्वर प्रदत्त है। समय २ के मानवीय प्रयोजनों का वर्णन है इसी हेतु प्रथम मध्यम उत्तम तीनों पुरुषों के साथ वर्णन आता है। इति। इस के अन्त में आप लोग यह स्मरण रक्खें।

सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्य मभि हर्यत जातं वत्स मिवाघ्न्या। अथर्व०।

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्म्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद्द्विजः॥ महाभारत॥

ओ३म् शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

इति जाति-निर्णयस्य भूमिका समाप्ता।

जालन्धर नगर
ता० ११-१०-१९०७ ई०

जगन्मङ्गलाभिलाषी-
काश्चित् शिवशङ्करः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

वेद-तत्त्व-प्रकाश

* तृतीय समुल्लास *

जाति-निर्णय ।

? शङ्का—वेदों के अध्ययन से हम लोगों को प्रतीत हुआ है कि पशु, पक्षी, जलचर, वनस्पति प्रभृतिवत् मनुष्यों में भी अनेकविध जातियां हैं। वेदों में आर्य्य और दस्यु जाति की चर्चा बहुत आई है। वे दोनों भिन्न २ प्रतीत होती हैं। अनेक स्थलों में प्रार्थना आती है कि दस्यु वा दास को विनष्ट करो। इन का धन छीन कर हम आर्य्यों को दो। वे बड़े धनाढ्य हैं। उन्हें मारो इत्यादि यथाः—

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुप शाकेभिरिन्द्र (१) ॥
ऋ० १। ३३। ४ ॥

हे इन्द्र ! अकेलाही आप वज्र से धनी दस्यु का हनन करें। पुनः—

शतमश्मन्मयीनां पुराभिन्दो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥
ऋ० ४। ३०। २० ॥

(१) इन ऋचाओं के प्रत्येक पद का अर्थ अगे किया जायगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अश्वापयद्भीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः। दासानामिन्द्रो मायया॥ ऋ० ४। ३०। २१॥

इन्द्र देव ने दिवोदास महाराज के ऊपर प्रसन्न हो शम्बर नामक दस्यु के पाषाण निर्म्मित सैकड़ों नगरों का विध्वंस कर दिया। दभीति राजा से प्रसन्न हो इन्द्र देव ने कपट से ३०००० तीस सहस्र दस्यु विविध हननास्त्र से मार गिराये। इस से यह भी प्रतीत होता है कि दुर्ग, किला, सेना आदि सब राज्य सामग्री इन दासों वा दस्युओं के निकट थी। इस हेतु वे भी शिष्ट और सभ्य थे। परन्तु इन के ऊपर आर्य्यों का इतना क्रोध था कि एक स्थल में प्रार्थना करते हैं कि इन की स्त्री को भी मारो। यथाः-

इन्द्रं जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियम्। मायया शाशदानाम्॥ ऋ० ७। १०४। २४॥

इन्द्र! पुरुष या स्त्री दोनों मायावी का संघात करो। पुनः एक स्थल में कहते हैं कि इन की गायें छीन लोः-

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति घर्मम्। आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः॥ निरुक्त नैगमकांड ३२॥

हे इन्द्र मघवन्! कीकट अर्थात् अनार्य्य देशों में तेरी गायें क्या करती हैं न आप के लिये दूध देतीं न यज्ञोपयोगी होतीं और उस देश के राजा प्रमगन्द के नीच शाखा सम्बन्धी पुत्र पौत्रादिकों के धन भी हमारे लिये लेदीजिये इस से सिद्ध होता है कि दस्यु और आर्य्य दो जातियां बड़ी प्रबल और परस्पर युद्ध करने वाली थीं।

२ शङ्का-पुनः आगे चल कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चार वर्ण देखते हैं इन में ब्राह्मण की श्रेष्ठता और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की नीचता पाई जाती है।

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठाय महते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय । इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा । यजु०९।४०॥

अर्थः-हे इन्द्रादि देव ! इस राजा को शत्रु रहित करके कर्म्म में प्रेरणा कीजिये । महती क्षेत्र-पदवी के हेतु, महाती श्रेष्ठता के हेतु, महान् मनुष्य राज्य के हेतु, अमुक राजा के पुत्र, अमुक राज्ञी के पुत्र इस की (जो सिंहासन पर बैठने वाला है) रक्षा आप लोग करें, ऐ प्रजाओ ! ये आप लोगों के राजा हैं । इन की आज्ञा को मानो । परन्तु हम ब्राह्मणों का राजा सोम अर्थात् चन्द्रमा है ये नहीं । इस मंत्र से विस्पष्ट सिद्ध होता है कि ब्राह्मणों का राजा क्षत्रिय नहीं हो सकता । इस से ब्राह्मण की श्रेष्ठता सूचित होती है । और भी जहां चारों वर्णों के नाम आते हैं वहां प्रथम ब्राह्मण शब्द आता है इस से भी ब्राह्मण की श्रेष्ठता और भिन्न जाति प्रतीत होती है पुनः एक स्थल में उपदिष्ट है कि:-

यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यञ्चौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ यजु०२०।२५॥

मैं उस लोक को पुण्य पवित्र जानता हूं जहां ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों जातिएं मिलकर कार्य्य करती हैं । यहां वैश्य शूद्र के नाम नहीं आये । क्योंकि राज्याधिकारी क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय ही होते थे । पुनः ब्राह्मण की श्रेष्ठता अथर्ववेद में बहुत गाई गई है यथाः-

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः । अ०५।१८।६॥

ब्राह्मण अहन्तव्य हैं क्योंकि अग्नि के समान हैं इन के दायाद चन्द्रमा हैं और इन की कीर्ति के रक्षक इन्द्रदेव हैं । पुनः-

तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति ।
यो ब्राह्मणस्य सङ्गनमभि नारद मन्यते ॥ अ० ५ । १९ । ९ ॥

हे नारद ! उस मनुष्य को वृक्ष भी छाया नहीं देते हैं जो ब्राह्मण का अ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पमान करते हैं इत्यादि। हम क्या कहें आप स्वयं जानते हैं कि अथर्ववेद में ब्राह्मण की कहां तक प्रशंसा है इस से विस्पष्ट प्रतीत होता है कि ब्राह्मण एक भिन्न सर्वोच्च श्रेष्ठ जाति है। पुनः—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ यजु०३१।११॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥ अथर्व०१९।६।६॥

इत्यादि मंत्र भी जाति-भिन्नता के प्रतिपादक हैं।

३ शङ्का—अब वेद को छोड़ नीचे आइए। शतपथ, गोपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेदानुकूल ही हैं यथा:—

ब्रह्मैव वसन्तः। क्षत्रं ग्रीष्मः। विडेव वर्षाः। तस्माद्ब्राह्मणो वसन्त आदधीत। ब्रह्म हि वसन्तः। तस्माद् क्षत्रियं ग्रीष्म आदधीत। क्षत्रं हि ग्रीष्मः। तस्माद्वैश्यो वर्षास्वादधीत। विड्डिवर्षाः॥ शतपथ कां०२।८॥

ब्राह्मणो वैष राजन्यो वा वैश्यो वा ते हि यज्ञियाः। शतपथ ब्रा० कां० ३।१॥

इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। जिन से सिद्ध होता है कि शूद्र यज्ञ का भी अधिकारी नहीं। उपनयनसंस्कार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन वर्णों का ही उक्त है। इस से भी सिद्ध होता है कि पहिले भी जाति-भेद माना जाता था।

४ शङ्का—छवों शास्त्रों में सर्व-श्रेष्ठशास्त्र वेदान्त माना गया है इस में शूद्रों के लिये वेदों के अध्ययन, श्रवण दोनों ही निषिद्ध हैं। यथा:—

अवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधात्स्मृतेश्च। सू० १।३।३८॥
इस के भाष्य में श्रीशङ्कराचार्य्य लिखते हैं कि:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रवणप्रतिषेधस्तावद्-अथास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रप्रतिपूरणम्। पशु ह वा एतद् श्मशानं यच्छूद्रः। तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यञ्च।

शूद्र यदि वेद सुने तो इस के कानों को रांग और लाख से भर देवें। शूद्र श्मशान के समान है। इस हेतु इस के निकट वेद नहीं पढ़ना चाहिये। मनुजी कहते हैं:—

न शूद्रे पातकं किञ्चिन्नच संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्म्मे स्ति न धर्म्मात् प्रतिषेधनम् ॥ १२६ ॥

शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्य्यो धनसञ्चयः। शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥ १२८ ॥ मनु० १२ ॥

न शूद्र को कोई पातक लगता है न उस के लिये कोई संस्कार है। न उस को धर्म्म में अधिकार है। और धर्म से प्रतिषेध भी नहीं है॥ १२६ ॥शूद्र समर्थ होने पर भी धनसञ्चय न करे क्योंकि धनको पाके ब्राह्मण की ही बाधा किया करता है इत्यादि।

५ शङ्का—वैयाकरण शिरोमणि वेदविद् महर्षि पाणिनि के व्याकरण देखने से भी प्रतीत होता है कि जाति-भेद अनादिकाल से चला आता है पाणिनि कहते हैं:—

प्रत्यभिवादेऽशूद्रे ॥ ८। २। ८३ ॥

अशूद्रविषये प्रत्यभिवादे यद्वाक्यं तस्य टेः प्लुतः स्यात्। सचोदात्तः। अभिवादयेदे वदत्तोऽहम्। भो आयुष्मानेधि देवदत्त ३। इत्यादि।

अभिवाद=नमस्कार। प्रति+अभिवाद=आशीर्वाद। सूत्र कहता है कि अशूद्र विषयक प्रत्यभिवाद में जो वाक्य है उसका 'टि' प्लुत हो जायगा। परन्तु शूद्र के प्रत्यभिवाद में टि का प्लुतत्व नहीं होगा। इससे सिद्ध होता है कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चारों वर्णों में अभिवादन और प्रत्यभिवादन की रीति भी भिन्न २ थी। पुनः—

शूद्राणामनिरवसितानाम् ॥ २ । ४ । १० ॥

अबहिष्कृतानां शूद्राणां प्राग्वत् । तक्षायस्कारम् । पात्रा-द्बहिष्कृतानान्तु चाण्डालमृतपाः ।

इस से विदित होता है कि शूद्र दो प्रकार के होते हैं। एक अबहिष्कृत और दूसरे बहिष्कृत। जो आर्य्यों में मिल गये जैसे तक्षा अयस्कार आदि ये अनिरवसित (अबहिष्कृत) और जो आर्य्यों में नहीं मिलाये गये हैं जैसे चाण्डाल मृतप आदि। ये निरवसित कहलाते हैं। व्याकरण के अनुसार द्वन्द्व समास में इनका प्रयोग भी भिन्न २ होता है।

६ शङ्का—आप लोग 'जाति' शब्द से बहुत डरते हैं परन्तु हम लोग चकित होजाते हैं कि जो मनुष्य पाणिनि को महर्षि और प्रमाणिक मानता है वह कैसे कह सकता है कि पाणिनि जाति नहीं मानते थे। अथवा इनके समय में जाति विभाग नहीं था महर्षि पाणिनि जाति की चर्चा बहुधा करते हैं। यथाः—

ब्राह्मोऽजातौ ॥ ६ । ४ । १७१ ॥

योगविभागोऽत्र कर्तव्यः । ब्राह्म इति निपात्यते । अनपत्येऽण् । ब्राह्मं हविः । ततो जातौ । अपत्ये जातावण् ब्रह्मणष्टिलोपो न स्यात् । ब्रह्मणोऽपत्यं ब्राह्मणम् ॥

क्षत्राद् घः ॥ ४ । १ । १३८ ॥

क्षत्रियः । जातावित्येव चत्रिरन्यः । शूद्राचामदृत्पूर्वा जातिः । इत्यादि ॥

मनुजी भी जाति शब्द का प्रयोग करते हैं। यथाः—

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णा द्विजातयः ।
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रोनास्ति तु पञ्चमः ॥ म० १० । ४ ॥
चत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवतिजातितः॥ म० १० । ११

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुचिरुत्कृष्ट शुश्रूषुर्मृदु वागनहङ्कृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥मनु ०९।३३५॥

मनुस्मृति और अन्यान्य धर्म्मशास्त्रों में जाति और वर्ण ये दोनों शब्द एकार्थ में प्रयुक्त हुए हैं। पुनः आप मनुष्यों में भिन्न-जाति मानने में क्यों सन्देह करते हैं।

यहां तक मैंने वेद शास्त्रानुसार आप से निवेदन किया अब आप दो चार युक्तियां भी सुनिये।

७ शङ्का–(क) कर्म्मानुसार सृष्टि आप, हम दोनों मानते हैं। इस अवस्थामें स्वीकार करना पड़ेगा कि सृष्टि की आदि में भी अपने२ कर्म्म के अनुसार पशु, पक्षी आदि के समान ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भी उत्पन्न हुए होंगे। इसमें आस्तिकों को सन्देह ही क्या हो सकता है। (ख) जब कर्म के अनुसार कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र हुए तो इस अवस्था में ब्राह्मण शूद्र और शूद्र ब्राह्मण नहीं होसकता। जैसे त्रिकाल में भी घोड़ा हाथी नहीं होता और हाथी घोड़ा नहीं। अतः ब्राह्मण को शूद्र बनाना और शूद्र को ब्राह्मण बनाना यह भी साहसमात्र ही है। (ग) पुनः हम देखते हैं पशुओं में; पक्षियों में; जलचर मत्स्यादिकों में तथा इन वृक्षादि जड़ वस्तुओं में भी भिन्न२ जातियां ईश्वर ने बनाई हैं। तो क्या मनुष्यों में ही एक-जाति बनावेंगे? इस मनुष्य-जाति को अन्यान्य जाति के समान अनेक करनें में क्या ईश्वर को किसी ने रोक लिया! जब संसार में एक-जाति किसी वस्तु को नहीं देखते हैं तो मनुष्य में ही केवल एक-जाति मानकर कैसे सन्तोष करलें। कोई उदाहरण इस में आप देवें। यदि उदाहरणाभाव है तो आप को स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्यों में भी भिन्न२ जातियां हैं। (घ) पुनः एक२ जाति में भी भिन्नता साक्षात् देखते हैं। यद्यपि सर्प एक-जाति है, वानर एक जाति है तथापि इन में सैकड़ों जातिएं पाई जाती हैं इसी प्रकार जड़ पदार्थ में भी। यद्यपि ब्राह्मण एक जाति है परन्तु इस में पचासों भेद विद्यमान हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण एक-जाति है परन्तु इन में अनेक भद विद्यमान हैं इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों में भी जानिये। जब आप एक-जाति वाले सर्पादिकों के भेद का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(८) ॥ ॥ ॥

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"प्रार्थना स्तुति"

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्वन्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश।
य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये॥
अथर्व० ७। ८७॥

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ यजु० १८।४८॥

जो न्यायकारी देव, अग्नि में, जल के अभ्यन्तर, ओषधियों में और वीरुधों में व्यापक है। जिस ने सम्पूर्ण स्थावर और जंगम कल्पित किये हैं। उस प्रकाशरूप न्यायकारी देव को सहस्रशः नमस्कार हो। हे भगवन्! हमारे ब्राह्मणों में, राजाओं में, वैश्यों में तथा शूद्रों में ज्योति दीजिये। हे जगदीश! मैं भी उस ज्योति का भिक्षुक हूं कृपा करो अजस्र ज्योति प्रदान करो कि हम आप की विभूति देख सकें और सत्यासत्य समझ सकें।

"सब वर्णों के लिये समान प्रार्थना"

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम्॥ यजु० १८। ४८॥

अर्थः—हे परमेश्वर! (नः) हमारे (ब्राह्मणेषु) ब्राह्मणों में (रुचम्) प्रकाश (धेहि) स्थापित कीजिये (नः) हमारे (राजसु) राजाओं में (रुचम्+कृधि) प्रकाश स्थापित कीजिये (विश्येषु+शूद्रेषु) हमारे वैश्यों और शूद्रों में (रुचम्) तेज स्थापित कीजिये और (मयि) मुझ में (रुचा) प्रकाश के साथ (रुचम्) प्रकाश अर्थात् अविच्छिन्न प्रकाश (धेहि) स्थापित कीजिये। स्वामीजी (श्रीमद्दयानन्द सरस्वती) रुचम्=प्रेम, प्रीति अर्थ करते हैं। महीधर रुचम्=दीप्तिम्। धेहि=आरोपय। विश्येषु=वैश्येषु।

यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये। यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयं यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि॥
यजु० २०। १७॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थः-(यद्+एनः) जो अपराध (वयम्) हमने (ग्रामे) ग्राम में (यत्) जो अपराध (अरण्ये) अरण्य में (सभायाम्) सभा में (यत्) जो पक्षपातादि (इन्द्रिये) इन्द्रिय विषय में (यत्) जो परापवादादि अपराध (शूद्रे) शूद्र के विषय में और (अर्य्ये) वैश्य के विषय में (यत्+यत्) जो २ अपराध वा पाप (चकृम) किया है और (एकस्य+अधि) सब से बढ़कर (धर्म्मणि) धर्म्म विषय में धर्म्मलोपादि रूप (यद्) जो पाप किया है। हे भगवन् ! (तस्य) उस सबका (अवयजनमसि) आप नाश करने वाले हैं। स्वामीजी का भाव यह है कि हे विद्वन् ! ग्रामादिकों में जो हम अपराध करते हैं वा करनेवाले हैं उस सब के आप छुड़ाने के साधन हैं। इस से महाशय हैं। अर्य्य=स्वामी वा वैश्य। अर्य्यः स्वामिवैश्ययोः ॥ पाणिनिसू० ३ । १ । १०३ ॥

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यता मुप मादो नमतु ॥ यजु० २६ । २ ॥

अर्थ :—ईश्वर मनुष्यमात्र से कहता है कि (यथा) जैसे दया के वश हो कर लोगों के उपकारार्थ (इमाम्) इस (कल्याणीं) कल्याणी (वाचम्) चारों वेदरू-पवाणी का इस संसार में (जनेभ्यः) सब मनुष्यों के लिये मैं (आ+वदानि) उपदेश देता हूं, इसी प्रकार आप सब भी इस कल्याणी वेद वाणी का उपदेश किया कीजिये। किस किस को मैं उपदेश देता हूं सो आगे नाम गिन कर कहते हैं (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण और राजाओं के लिये (शूद्राय+च+अर्य्याय+च) शूद्र और वैश्यों के लिये अर्थात् मनुष्यमात्र के लिये और (स्वाय+च+अरणाय) जो मेरे प्यारे हैं और अरण=दस्यु दासादि चोर डाकू हैं उन को भी मैं उपदेश देता हूं। वे पापी दुराचारी भी सुधरें। ऐ मनुष्यो ! मुझको तुम मत त्यागो इसी से तुम्हारा कल्याण है परन्तु तुम मुझे त्याग कर कल्याण चाहते हो सो नहीं होगा। इस प्रकार पिता पुत्र के समान भक्तवत्सल ईश्वर समझाता है। ऐ मनुष्यो ! (देवानाम्) तुम में जो बड़े विद्वान् हैं उन का (प्रियः+भूयासम्) मैं प्रिय होऊं तथा (दक्षिणायै+दातुः) दक्षिणा देने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाले धनाढ्य जो हैं उन का भी मैं प्रिय होऊं (इह) इस मर्त्यलोक में (अयम्+मे+कामः) यह मेरी इच्छा (समृध्यताम्) पूर्ण होवे (अदः) यह मेरा वाक्य=वचन (मा+उप+नमतु) व्यर्थ न जाय। देखा जाता है कि कुविद्वान् और धनाढ्य पुरुष प्रायः ईश्वर की आज्ञा प्रतिपालन नहीं करते हैं। वे समझते हैं कि हम निज पुरुषार्थ से विद्या वा धन उपार्जन करते हैं। इस में ईश्वर का क्या है। दान भी अश्रद्धा से वे देते हैं परन्तु ऐसा करने से उन की पीछे बड़ी हानि होती है अतः ईश्वर मनुष्य पर दया कर के कहता है कि मैं उन का भी प्रिय बनूं। ताकि भविष्यत् में उन्हें हानि न पहुंचे। ईश्वर ने जीव को स्वतंत्र किया है अतः कहता है कि यह कामना मेरी पूर्ण हो, मेरा वचन भग्न न होवे अन्यथा ईश्वर जो चाहता सो करता ॥

प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च। यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ अथर्व १९।३२। ८ ॥

अर्थ :—(दर्भ) हे दुष्टों के विदारक शिष्टों के संरक्षक देव! (ब्रह्मराजन्याभ्याम्) ब्राह्मण क्षत्रिय के लिये (शूद्राय+च+अर्य्याय+च) शूद्र और वैश्य के लिये अर्थात् सब के लिये (मा+प्रियम्) मुझ को प्रिय (कृणु) करो (यस्मै+च) हे भगवन्! जिस के लिये (कामयामहे) कामना करते हैं अर्थात् (सर्वस्मै+च+विपश्यते) सब ही द्रष्टा पुरुष का प्रिय मुझे बनाओ। पुनः—

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु। प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्य्ये ॥ अथर्व १९। ६२। १

अर्थ :—हे भगवन्! (देवेषु) देव अर्थात् ब्राह्मणों में (मा+प्रियं+कृणु) मुझ को प्रिय बनावें। (राजसु+प्रियं+मां+कृणु) राजाओं में मुझ को प्रिय बनावें। (सर्वस्य+पश्यतः) सब देखने वालों में मुझे प्रिय बनावें। (उत+शूद्रे+उत+अर्य्ये) शूद्र और वैश्य में मुझे प्रिय बनावें।

विवेकी पुरुषो! मैंने यहां वेदों से पांच मंत्र उद्धृत किये हैं। इस वैदिक आज्ञा पर आप लोग ध्यान देवें। सबों के लिये एक सी प्रार्थना है। क्या ब्रा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य क्या शूद्र इन चारों में प्रकाश स्थापित करो। यदि शूद्र निकृष्ट अधम धर्म-विहीन माना जाय तो इस के लिये ऐसी प्रार्थना क्यों! तब तो ऐसी प्रार्थना होनी चाहिये थी कि शूद्रों को मेरा दास बनाओ। पुनः "यद्ग्रामे" इस मंत्र में कहा गया है कि शूद्र और वैश्य के निकट मैंने जो अपराध किया उसे भी आप क्षमा कीजिये। आज कल तो धर्म्मशास्त्र के अनुसार शूद्रों के घात करने करवाने में भी कोई अपराध नहीं माना जाता। परन्तु वेद कहता है कि सब अपराध बराबर ही है। पुनः "यथेमांवाचम्" इस मंत्र के द्वारा सम भावसे वेदरूप कल्याणी वाणी का उपदेश सब को देता है। आज कल शूद्रों को वेद पढ़ना सुनना सब ही मना है। परन्तु यहां विपरीत देखते हैं। स्वयं भगवान् कहता है कि मेरी वाणी सब में पहुंचाओ। हे विद्वानो! इस प्रकार आप देखते हैं वेदों में शूद्रों का दरजा नीच नहीं है। क्या आप इतने बुद्धिमान् और तार्किक शिरोमणि हो कर भी इस में सन्देह मानते हैं। क्या यथार्थ आप मनुष्यों में पशुवत् जातिभेद मानते हैं। इन में जातिभेदक लक्षण क्या पाते हैं?। जैसे पशुओं में हाथी से घोड़ा एक भिन्न वस्तु है यह प्रत्यक्षतया भासता है कि हाथी को शुण्ड (सूंढ़) है घोड़े को नहीं। हाथी का शरीर, गर्जन, चलन, भोजन आदि सब ही घोड़े से भिन्न है। आप इसीप्रकार कोई उदाहरण लेलेवें। आप विषम उदाहरण लेते हैं इस हेतु शङ्का में पड़े हुए हैं। आप कहते हैं कि जैसे गदही गाय नहीं होती वैसे ही शूद्र ब्राह्मण नहीं हो सकता है। आप सोचें आप का यह उदाहरण विषम है क्योंकि प्रत्यक्ष में गाय के जैसे रूप रंग चलन कर्म स्वभाव प्रकृति हैं वैसे गदही के नहीं एक बालक भी गाय और गदही को देख कर कह सकता है कि ये दोनों दो जाति के हैं। क्या ऐसा ही भेद आप को ब्राह्मण और क्षत्रिय में प्रतीत होता है। हे विद्वानो! आप लोग स्वयं विचार करें मैं आगे इस को पुनः निरूपण करूंगा। आप लोग कहगें कि आर्य्य दस्यु का निर्णय छोड़ अन्य विषय में चले गये। आप यह भी कदाचित् कहेंगे कि आपने जो वेदों के पांच उदाहरण दिये हैं। उस में तो चारों वर्ण प्रायः बराबर ही मानेगये हैं। परन्तु वेदों के पचासों स्थलों में यह जो आता है कि दास वा दस्यु को मारो निकालो ये काले हैं। आर्य्य की रक्षा करो दस्यु को सूर्य्य-ज्योति भी प्राप्त न होवे। आर्य्यों को पूर्ण ज्योति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दो। इस से विस्पष्ट सिद्ध होता है कि आर्य्यों की अपेक्षा दस्यु वा दास निकृष्ट जाति हैं। उसी को आज शूद्र कहते हैं। वेदों में जैसी आज्ञा है वैसी हम आज वरतते हैं इत्यादि। इस में सन्देह नहीं की दस्यु और आर्य्य शब्द के ऊपर प्रथम विचारना है। हम यहां प्रथम आर्य्य और दास सम्बन्धी अनेक ऋचाओं का अर्थ सहित उल्लेख करते हैं। आप लोग ध्यान से इन ऋचाओं को विचारें आपको मालूम हो जायगा कि आर्य्य वा दस्यु वा दास किस को कहते हैं। शूद्र को दास वा दस्यु नहीं कहते ॥

'आर्य्य, दस्यु और दास शब्द'

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेन एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र। धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ऋ०१।३३।४॥

अर्थः-(इन्द्र) हेशूरवीर नरेन्द्र ! (उपशाकेभिः) विविधशक्तियों से संयुक्त आप (एकः+चरन्) एकाकी विचरण करते हुए (घनेन) वज्र समान अस्त्र से (हि) निश्चय ही (धनिनम्) धनिक (दस्युं) चोर डाकू आदि दुष्ट प्राणी का (वधीः) वध कीजिये और (सनकाः) अधर्म्म से औरों के पदार्थ छीनने वाले मनुष्य (ते) आप के (धनोः+अधि) धनुष के ऊपर (व्यायन्) आते हुए (विषणुक्) सब प्रकार से (प्रेतिम्) मरण को (ईयुः) प्राप्त होवें। वे कैसे सनक हैं (अयज्वनाः) यज्ञादि शुभ कर्म्म विरहित। स्वामिजी-दस्यु=बल और अन्याय से दूसरों के धन को हरने वाले दुष्ट। धनुष। आज कल 'धनोः' रूप नहीं होगा। किन्तु 'धनुषः' होगा। प्रेति=प्रेत=मरण ॥

यहां देखते हैं कि 'अयज्वा' विशेषण आया है। जो यज्ञ करने वाले नहीं। यज्ञ नाम समस्त शुभ कर्म्म का है। जो शुभ कर्म्म नहीं करेगा वह अवश्य चोर डाकू नास्तिक व्यभिचारी कितव धूर्त्त होगा। ऐसे पुरुषों का शासन करना राजा का परम धर्म्म है। सायण 'दस्यु' शब्द का 'चोर' अर्थ करते हैं। उपक्षयार्थक 'दस' धातु से बनता है जो प्रजाओं में क्षय अर्थात् विनाश पहुंचाया करे। ऐसे को यदि दण्ड न दिया जाय तो प्रजा में कैसे शान्ति हो सकती है। इस से 'दस्यु' कोई भिन्न जाति सिद्ध नहीं होती। एवमस्तु ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परा चिच्छीर्षा वव्रजुस्ते इन्द्रा यज्वनो यज्वभिः स्पर्धमानाः। प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ऋ० १। ३३। ५ ॥

परा। चित्। शीर्षा। वव्रजुः। ते। इन्द्र। अयज्वानः। यज्वभिः। स्पर्धमानाः। प्र। यत्। दिवः। हरिवः। स्थातः। उग्र। निः। अव्रतान्। अधमः। रोदस्योः ॥

अर्थः—जो दस्यु=दुष्ट जन स्वयं (अयज्वानः) वैदिक यज्ञों के विरोधी हैं अथवा शुभ कर्म्म रहित हैं। परन्तु (यज्वभिः+स्पर्धमानाः) यज्वा=शुभ कर्म्म करने वालों के साथ द्वेष रखने वाले हैं। (इन्द्र) हे राजेन्द्र ! नराधिपते आप की रक्षा के प्रताप से (ते) वे दस्यु अयज्वा पुरुष (शीर्षा) अपने शिरों को (परा+चित) पराङ्मुख कर के ही (वव्रजुः) भाग जाते हैं (हरिवः) हे प्रशस्त घोटक-युक्त (प्र+स्थातः) हे युद्ध स्थल में सदा प्रस्थान करने वाले हे (उग्र) प्रचंड राजेन्द्र ! आप ने (यत्) जो द्युलोक से अर्थात् बहुत दूर स्थान से और (रोदस्योः) पृथिवी और अन्तरिक्ष से अर्थात् सर्वत्र से (अव्रतान्) शुभ कर्म्म रहित चोर डाकू आदि विघ्नकारी पुरुषों को (नि+अधमः) निःशेषतया निकाल बाहर किया है इस हेतु आप प्रशंसनीय हैं (१) ॥

यहां 'दस्यु' के विशेषण में 'अयज्वा' और 'अव्रत' दो शब्द आए हैं और कहा जाता है कि ये दस्यु यज्ञ करने वाले के साथ स्पर्धा अर्थात् ईर्षा करते हैं। इस से सिद्ध है कि एक तो यज्वा व्रती आस्तिक हैं। और दूसरा अयज्वा, अव्रती और नास्तिक हैं। व्रत नाम नियम का है। क्या सामाजिक क्या धार्म्मिक क्या राजकीय क्या ईश्वरीय इन में से किसी नियम को जो नहीं पालता है वह अवश्य प्रजा में उपद्रवी होगा। इस हेतु वह नीच है। इसी को आज कल 'असुर' कहते और आर्य्य को देव कहते हैं। ऐसे नीच पुरुष निज समाज

(१) वृजी, वर्जने। हरिवः=हरिवान् का सम्बोधन में हरिवः। अधमः=धमा शब्दाग्निसंयोगयोः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में से ही उत्पन्न होते हैं क्या आज कल हम में ऐसे नहीं हैं ॥

त्वमेतान् रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे । अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः ॥ ऋ० १।३३।७॥

त्वम् । एतान् । रुदतः । जक्षतः । च । अयोधयः । राजसः । इन्द्र । पारे । अव । अदहः । दिवः । आ । दस्युम् । उच्चा । प्र । सुन्वतः । स्तुवतः । शंसम् । आवः ।

अर्थः—(इन्द्र) राजेन्द्र ! आप (रुदतः) रोते हुए । (जक्षतः+च) और खाते हुए वा हंसते हुए (एतान्) इन दुष्टों को (रजसः+पारे) लोक के पार अर्थात् बस्ती के पार (अयोधयः) युद्ध करके भगा देवें और (दस्युम्) चौरादिपति दस्यु को (दिवः+आ) द्युलोक से लाकर अर्थात् बहुत दूर स्थान से भी लाकर (उच्चा) बड़े उत्कर्ष के साथ (अव+अदहः) दग्ध कीजिये । और इस प्रकार उपद्रवों को शान्त कर (प्र+सुन्वतः) यज्ञ करने और (स्तुवतः) ईश्वर के गुण गाने वाले मनुष्यों की (शंसम्) स्तुति की (आवः) रक्षा कीजिये । जक्ष="जक्ष भक्ष हसनयो" जक्ष धातु का हंसना और खाना अर्थ है । रजस=लोक, पृथिवी अन्तरिक्षादि । षुञ् अभिषवे । अभिषवः स्वपनं पीडनं स्नानं सुरासंधानम् । षुञ् धातु का अभिषव अर्थ होता है । स्नान करना, निचोड़ना, नहाना, और मद्य बनाना इतना अर्थ अभिषव का होता है । इसी से सोम, सुरा, सुत, अभिसुत, प्रसुत, अभिषेक, सुन्वत आदि शब्द बनते हैं । शंस=शंसु स्तुतौ प्रशंसा शस्त्र आदि शब्द बनते हैं । वैदिक भाषा में 'शस्त्र' नाम स्तोत्र का भी बहुधा आया है । 'अव' धातु अनेकार्थक है । प्रायः रक्षार्थ में इस का प्रयोग बहुत होता है ।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ ॥
ऋ० १ । ५१ । ५ ॥

त्वम् । मायाभिः । अप । मायिनः । अधमः । स्वधाभिः । ये । अधि ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुम्ना । अजुह्वत । त्वम् । पिप्रोः । नृ+मनः । प्र । अरुजः । पुरः । प्र । ऋजिश्वानम् । दस्यु+हत्येषु । आविथ ॥

अर्थ :—हे राजेन्द्र ! (त्वम्) आप ने (मायाभिः) प्रकृष्ट बुद्धियों से (मायिनः) छली कपटादि युक्त अयज्वा अव्रती दस्युवों को (अप+अधमः) कम्पायमान करें (ये) जो (स्वधाभिः) विविध अन्नों से (अधि+शुम्ना) मुख में ही (अजुह्वत) हवन करते हैं अर्थात् जो यज्ञ न कर के केवल अपने उदर को पूर्ण करने में ही लगे रहते हैं उन दुष्टों को दूर करें (नृमण+नृ+मनः) मनुष्यों की रक्षा में सदा मन रखने वाले राजन् ! (त्वम्) आप (पिप्रोः) पिप्रु= उपद्रव अशान्ति अज्ञानता नास्तिकता फैलाने वाले जनों के (पुरः) नगर को (प्र+अरुजः) भग्न करें और (दस्यु हत्येषु) जिन संग्रामों में दुष्टों का हनन होता है उन दस्युहत्य संग्रामों में (ऋजिश्वानम्) ऋजु=सरल प्रकृति पुरुषों की (आविथ) रक्षा कीजिये । माया=प्रज्ञा, बुद्धि कपट आदि । धमति गति कर्म्मेति यास्कः धम=जाना । स्वधा=अन्न । शुम्ना=मुख । पिप्रुः=पृ पालन पूर्णयोः । जो दुःख से जगत को पूरित करे । नृमणः । नृषुमनो यस्य स नृमणाः । अरुजः रुजोभंगे । ऋजिश्वानम् । ऋजुअश्नते प्राप्नोति ऋजिश्वा । दस्युहत्येषु= हन्तर्हिंसागत्योः । दस्यूनांहत्यायेषु संग्रामेषु । आविथ=अवरक्षणे ॥

इस ऋचा में विस्पष्ट कहा गया है कि जो अपने मुख में ही हवन करते हैं अर्थात् जो दान, यज्ञ, परोपकार आदि शुभ कर्म्मों से विरहित हैं । ऐसे आदमी अवश्य असुर होते हैं । कौषीतकी ब्राह्मण में उक्त है 'असुरा वा आत्मन्यजुहवु रुद्रातेग्नौ ते पराभवन्' । असुरगण शरीर में ही हवन करते थे । अतः वे परास्त हुए । पुनः वाजसनेयियों ने कहा है 'देवाश्चहवा असुराश्चास्पर्धन्त । ततो हासुराअभिमानेन कस्मै च न जुहुम इति स्वेष्वेव आस्येषु जुह्वतश्चेरुस्ते पराबभूवुः इति' । देव और असुर परस्पर ईर्षा करने लगे । असुर गण अभिमान से किसी की पूजा स्तुति हम नहीं करेंगे यह मन में ठान अपने ही मुख में हवन करते हुए विचरण करने लगे । इस हेतु अन्त में ये परास्त हुए । सायण ने अपने भाष्य में इन वाक्यों को उद्धृत किया है । वैदिक और ब्राह्मण दोनों वाक्य एक प्रकार के हैं । इस से सिद्ध होता है कि वेद के दस्यु वा दास ब्राह्मण ग्रन्थों के

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

असुर हैं। परन्तु असुर कोई जाति विशेष नहीं जो दानादि न करे वे असुर हैं अतः दास वा दस्यु की भी कोई भिन्न जाति नहीं। इसी सूक्त की नवम ६ ऋचा में अनुव्रत और अपव्रत दो शब्द आये हैं जिस को आज कल क्रम से आस्तिक और नास्तिक कहते हैं। नवम मंत्र का अर्थ आगे देखिये।

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वा विथा रन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् महान्तं चिदर्बुदम् नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ १।५१।८ ॥

त्वम् । कुत्सम् । शुष्ण+हत्येषु । आविथ । अरन्धयः । अतिथि+ग्वाय । शम्बरम् । महान्तम् । चिद् । अर्बुदम् । निः । क्रमीः । पदा । सनात् । एव । दस्यु+हत्याय । जज्ञिषे ।

अर्थ :—हे राजेन्द्र ! (शुष्ण+हत्येषु) प्रजाओं के शोषण करने वालों की हत्या हो जिन संग्रामों में उन में (त्वम्) आप (कुत्सम्) ब्रह्मज्ञानी ऋषि की (आविथ) रक्षा करते हैं और (अतिथिग्वाय) अतिथि के सेवक लोगों के कल्याणार्थ (शम्बरम्) शम्=कल्याण के रोकने वाले दुष्टों को (अरन्धयः) नष्ट कर देते हैं। और (महान्तम्+चित्) महान् से महान् (अर्बुदम्) दुष्ट को (पदा+नि+क्रमीः) पैर से चूर्ण कर देते हैं। हे राजेन्द्र ! (सनाद्+एव) सदा से ही (दस्यु+हत्याय) दस्यु-हनन-संग्राम के लिये ही आप (जज्ञिषे) उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रजाके विघ्नों की शान्ति करने के लिये ही राजा बनाए जाते हैं। शुष्ण=शोषयिता-शोषण अर्थात् दुःख देने वाला। अतिथिगु अतिथि गन्तव्य। जिस के निकट अतिथि जांय। अरन्धयः रध हिंसासंराध्योः शुष्णहत्य और दस्युहत्य ये शब्द सूचित करते हैं कि राजा को उचित है कि दुष्टों के संहार के लिये पृथक् सेना और पृथक् न्यायालय बनावे। और उन का नाम 'दस्युहत्य' रक्खे। जिस में दस्युओं का न्याय हुवा करे।

विजानीह्यार्य्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥७॥

वि । जानीहि । आर्य्यान् । ये । च । दस्यवः । बर्हिष्मते । रन्धय । शा-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत् । अव्रतान् । शाकी । भव । यजमानस्य । चोदिता । विश्वा । इत् । ता । ते । सधमादेषु । चाकन ।

अर्थः—हे परमैश्वर्य्य शालिन् ! भगवन् ! आप (आर्य्यान्) आर्य्य अर्थात् यज्ञानुष्ठानकर्त्ता, धर्म्मात्मा, शिष्ट, विद्वान् पुरुषों को (विजानीहि) अच्छे प्रकार जानते हैं (च) और (ये+दस्यवः) जो दस्यु अर्थात् यज्ञादि व्रतरहित अनाचारी और निरपराध मनुष्यों के हिंसक हैं उनको भी आप जानते हैं । हे भगवन् ! (बर्हिष्मते) यज्ञादि शुभ कर्म्म के अनुष्ठान करने वाले के लिये आप (अव्रतान्) उन कर्म्म विरोधी अव्रती दस्युओं को (रन्धय) नष्ट करो अथवा यजमान के वश में करो । और (शासत्) उन का शासन अच्छे प्रकार करो । हे भगवन् आप (शाकी) सर्वशक्ति-सम्पन्न हैं इस हेतु (यजमानस्य) यज्ञानुष्ठानकर्त्ता के (चोदिता+भव) प्रेरक होओ । हे व्रतपते ! (ते) आप के (ता) उन (विश्वा+इत्) सब ही व्रतरूप नियमों के (सधमादेषु) यज्ञ-स्थानों में प्रतिपालन के हेतु सदा (चाकन) चाहता हूं । सायण= दस्यु=अनुष्ठाताओं का उपक्षयिता शत्रु । बर्हिष्मान्=यज्ञानुष्ठाता । शासत्= शासु, अनुशिष्टौ । रन्धय=रध हिंसासंराध्योः । सधमादः=सहमाद्यन्तेषु इति सधमादायज्ञाः । चाकन=कनी दीप्तिःकान्ति गतिषु । दीप्ति कान्ति और गति इन तीन अर्थों में कन् धातु आता है ।

अनुव्रताय रन्धयन्नपव्रताना भूभिरिन्द्रःश्नथयन्ननाभुवः॥१०५१।९॥

अर्थः—(इन्द्रः) नरेन्द्र राजा आप (अनुव्रताय) शुभकर्म्म करने वाले आस्तिक के कल्याण के हेतु (अपव्रतान्) व्रत रहित पुरुषों का (रन्धयन्) हनन करते हुए और (आभूभिः) आभू अर्थात् स्तुति करने वालों के साथ द्वेष रखने वाले (अनाभुवः) अनाचारी ईश्वर-गुण-गान रहित अनाभुओं को (श्नथयन्) शासन करते हुए वर्तमान हैं । आभू=आभि मुख्येन भवन्तीति आभुवः स्तातारः सायण कहते हैं कि आभू और अनाभू ये परस्पर विपरीत शब्द आये हैं ।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा। अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योति श्चक्रथुरार्य्याय॥ १ । ११७ । २१ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थः-(दस्रा) दुष्टों के संहार करने वाले (अश्विनौ) हे राजन् ! तथा हे महाराणी ! (वृकेण) भूमि के विदारने वाले लाङ्गल से भूमि को चीर कर उस में (यवम्) जौ अर्थात् सब प्रकार के धान्य को (वपन्ता) बोते हुए और (मनुषाय) मनन करने वाले विद्वानों को (इषम्) अन्न (दुहन्ता) देते हुए और (दस्युं चोर, डाकू, दुष्ट, व्यभचारी, कितव आदि और प्रजा में अशान्ति डालने वाले पुरुष को (वकुरेण) अग्निवत् भासमान अस्त्र शस्त्र से (अभि धमन्ता) वध करते हुए इस प्रकार तीन प्रकार के कार्य्य करते हुए आप दोनों सदा (आर्य्याय) आर्य्य के लिये (उरु+ज्योतिः) बहुत प्रकाश (चक्रथुः) किया करते हैं। यास्क= "वृकोलाङ्गलं भवति" (नि० ६ । २५) लाङ्गल का नाम वृक है "वकुरो भास्करो भयङ्करो भासमानो द्रवतीति"। बकुर एक अस्त्र का नाम है जिस में आग्नेय पदार्थ अधिक हों और जो भयङ्कर हो और जो आग से जलता हुआ दौड़े। तत्कावश्विनौ द्यावा पृथिव्यौ इत्येके। अहोरात्रावित्येके। सूर्य्याचन्द्रमसावित्येके। राजानौ पुण्यकृतौ इति ऐतिहासिकाः। (नि० १२-१) द्यावापृथिवी, अहोरात्र, सूर्य्य, चन्द्र और पुण्यवान् राजा रानी इन चारों जोड़ों को 'अश्विनौ' अश्वी कहते हैं। स्वामी जी 'आर्य्य' शब्दार्थ ईश्वर पुत्र करते हैं, अर्थात् ईश्वर के पुत्रवत् वर्तमान मनुष्य, सायण धमनिवधकर्म्मा। धम=वध करना ॥

इन्द्रः समत्सु यजमान मार्य्यं प्रावद् विश्वेषु शतमूतिराजिषु स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु । मनवे शासदव्रतान् त्वचंकृष्णामरन्धयत् । दक्षन्नविध्वं तृषाण ओषति न्यर्शसानमोषति ॥ १ । १३० । ८ ॥

अर्थः-(शतमूतिः) अनेक प्रकार से रक्षक (इन्द्रः) महाराज नरेन्द्र । (विश्वेषु) सब (समत्सु) साधारण संग्राम (आजिषु) स्पर्धा निमित्तक संग्राम और (स्वर्मीळ्हेषु) सुख प्राप्ति हेतुक (आजिषु) महासंग्राम इन तीनों प्रकार के संग्रामों में (यजमानम्+आर्य्यम्) यज्ञ करने वाले आर्य्य को (प्र+अवत्) अच्छे प्रकार रक्षा करें और (मनवे) सकल मनुष्यों के लिये अर्थात् प्रजा मात्र के कल्याणार्थ (अव्रतान्) नियम के न पालने वाले मनुष्यों को (शासत्) दण्डादिकों से शासन करें (कृष्णम्+त्वचं) काले चर्म्म अर्थात्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दुष्ट कर्म्म से जिन का अन्तःकरण और बाहर दोनों काले होगये हैं ऐसे पुरुषों को (अरन्धयत्) वध करें और (न) मानों (विश्वम्) सब दुष्टों को (धक्षत्) दग्ध करें और (ततृपाणम्) हिंसा करने के इच्छुक पुरुष को (ओषति) भस्म करें तथा (अर्शसानम्) हिंसा करते हुए दुष्ट को (नि+ओषति) जड़ मूल से भस्म करें। यहां समत् और आजि ये दोनों संग्राम के नाम हैं। स्वमींढ स्वः = सुख, मीढ=मिह सेचने। सेचन। जिस में सुख का सेचन हो। विना दुष्टों के संहार से जगत में सुख नहीं होता। इस हेतु संग्राम के विशेषण में 'स्वमींढ' आया है। ततृपाणम् = हिंसकम्। अर्शसानम् = हिंसारुचिम्। सा०। वेद में 'न' शब्द यथा इव अर्थमें भी आता है। इस ऋचाका अर्थ स्वामीजी का प्रायः ऐसा ही है यहां 'कृष्णत्वक्' शब्द आया है। जिस का अर्थ 'काला' 'चमरा' होता है। यहां अलङ्कार से इस शब्द का प्रयोग है। यहां शरीर के चर्म्म से प्रयोजन नहीं है। आन्तरिक दुष्ट भाव को सूचित करता है। आज कल भी जो बड़ा दुष्ट होता है। उस को लोग कहते हैं कि इस का हृदय काला, इस का मन काला इत्यादि।

ससानात्याँ उत सूर्य्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम्। हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वीदस्यून् प्रार्य्यं वर्णमावत् ॥ऋ० ३।३४।९॥

ससान। अत्यान्। उत। सूर्य्यम्। ससान। इन्द्रः। ससान। पुरुभोजसम्। गाम्। हिरण्ययम्। उत। भोगम्। ससान। हत्वी। दस्यून्। प्र। आर्य्यम्। वर्णम्। आवत्।

अर्थः—मनुष्यों के हित के हेतु (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य सम्पन्न जगदीश (अत्यान्) विविध पदार्थ (ससान) देता है क्या २ देता है सो आगे कहते हैं (उत) और (सूर्य्यम्) पृथिवी का धर्ता पोषक प्रकाशक सूर्य्य को (ससान) देता है (उत) और (हिरण्ययम्+भोगम्) सुवर्ण युक्त विविध भोग को (ससान) देता है इस प्रकार (दस्यून्) दुष्ट चोर डाकू आदिकों को (हत्वी) मार कर (आर्य्यम्+वर्णम्) श्रेष्ठ वर्ण अर्थात् उत्तम मनुष्यों को (प्र+आवत्) अच्छे प्रकार रक्षा करता है। ससान=षणु दाने। लिट् का रूप है। हिरण्ययम् हिरण्य शब्द से विकारार्थ में 'मयट् प्रत्यय हो कर हिरण्यय बनता है। हत्वी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदमें 'हत्वा' के स्थान में 'हत्वी' भी बनता है। आर्य्यम् उत्तमम्। वर्णम् "त्रैवर्णिकम्"। आर्य्य का उत्तम और वर्ण का त्रैवर्णिक अर्थ सायण करते हैं। परन्तु सायण का यह अर्थ अशुद्ध है। 'कृष्णत्वक्' के विरुद्ध 'आर्य्य वर्ण' शब्द आया है। जैसे मलिनात्मक पुरुष को कृष्ण कहते हैं वैसे शुद्धाचारी शुद्धात्मा साधु सज्जन को शुक्लवर्ण कहते हैं। इसी हेतु आज कल भी यश, प्रताप आदि का वर्ण श्वेत और पाप का कृष्ण वर्ण माना गया है। श्रीस्वामी जी वर्ण का अर्थ 'स्वीकर्त्तव्यः' करते हैं। इस में सन्देह नहीं कि 'वर्ण' का अर्थ आज लोग भूल गये। वृञ् वरणे धातु से वर्ण शब्द बनेगा जिस को सब कोई स्वीकार करें। सभ्य साधु सज्जन को सब कोई स्वीकार करते हैं अतः आर्य्य और वर्ण दोनों ही शब्द विशेषण हैं आर्य्य=उत्तम-कर्म्म-स्वभावयुक्त धार्मिक। वर्ण स्वीकार करने योग्य पुरुष।

अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय। अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनुकेतमायन्॥ ४। २६। २॥

अर्थ :-ईश्वर कहता है (अहम्) मैं (आर्य्याय) आर्य्य को (भूमिम्) भूमि (अददाम्) देता हूं (दाशुषे+मर्त्याय) दान शील मनुष्यों को (अहम्) मैं (वृष्टिम्) वृष्टि देता हूं (अहम्) मैं (वावशानाः+अपः) सुखकारी जल (अनयम्) लाता हूं। हे मनुष्यो! (मम+केतम् अनु) मेरे संकल्प के अनुसार (देवासः) सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र वायु पृथिवी आदि देव (आयन्) चलते हैं॥

उत त्या सद्य आर्य्या सरयोरिन्द्र पारतः। अर्णाचित्ररथा वधीः॥ ४। ३०। १८॥

अर्थ :-(इन्द्र) राजन्! (उत) और आप (सा=सौ) उन (आर्य्या =आर्य्यौ) श्रेष्ठ कन्या और बालक को (सरयोः) सरयु नदी के (पारतः) पार में (सद्यः) शीघ्र (अवधीः) शिक्षा दिलावें। कैसे कन्या पुरुष (अर्णा+चित्ररथौ) जिन के शील स्वभाव बुद्धि अच्छी हों। सायण इस का अर्थ यह करते हैं कि सरयु नदी के पार में बसते हुए आर्याभिमानी अर्ण और चित्ररथ नाम के दो राजाओं का हनन आप ने किया है। परन्तु यह अर्थ उचित नहीं। इन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिंसागत्योः। हिंसा और गति दोनों अर्थ 'हन्' धातुके होते हैं। गति नाम गमन ज्ञापण ज्ञान अर्थात् गति नाम ज्ञान का है 'आर्या' यह द्विवचन है। आर्यश्च आर्य्या च आर्यौ। वेद में 'आर्य्यौ' का 'आर्य्या' हो जाता है। सरयु=सरति सर्वदैव गच्छति इति सरयुः। जो सर्वदा चले उसे सरयु कहते हैं। अर्ण+चित्र रथ। कोमल प्रकृति को 'अर्ण' कहते हैं अथवा अर्ण नाम जल का है। जैसे जल सब का प्रिय है वैसा सर्व प्रिय बालक। चित्ररथ। रथ=रमण, क्रीड़ा। चित्र विचित्र क्रीड़ा शील बालक। अर्थात् राजा को उचित है सर्वदा बहने वाली नदी के तट पर कन्या और बालक की पाठशाला बनाकर शिक्षा के द्वारा विज्ञान फैलाया करे।

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः। इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्य्यः॥ ५। ३४। ६॥

अर्थः—(समृतौ) संग्राम में (वि+त्वक्षणः) शत्रुओं को चूर्ण करने वाला (चक्रम्+आसजः) चक्रास्त्रसज्जयिता (असुन्वतः+विषुणः) अयज्वाओं से पराङ्मुख (सुन्वतः) और यज्वाओं का (वृधः) वर्धयिता (विश्वस्य+) विश्व=सब का (दमिता) शिक्षक (विभीषणः) भयङ्कर (आर्य्यः) आर्य्य (इन्द्र) राजेन्द्र अर्थात् आर्य्य राजा (दासम्) दुष्टों को (यथा+वशम्) धीरे २ अपने वश में (नयति) लाता है। लावें॥ त्वक्षु=तनूकरणे। त्वक्ष तनूकरना। सम्-इति=सम्=ऋति। जिसमें सम्यक् प्रकार से अर्थात् बड़े समारोह से ऋति गमन हो उसे 'समृति' कहते हैं। षुञ्=अभिषवे। इससे 'सुन्वन्' बनता है। सुन्वन=यजमान। यहां विस्पष्ट है कि आर्य्य राजा अयज्वा को अपने वश में लावे।

त्वं ह नु त्यद दमायो दस्यूँ रेकः कृष्टी रवनोरार्य्याय। अस्ति-खिन्नु वीर्य्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः॥ ६। १८। ३॥

अर्थः—ज्ञानी जन राजाको उपदेश देते हैं हे नरेन्द्र! (ह) निश्चय (नु) शीघ्र ही (सद=त्वम) प्रजाओं में प्रसिद्ध होकर आपने (दस्यून्+अदमायः) दुष्टों का दमन किया और (एकः) अकेले आपने (आर्य्याय) शिष्टजन को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(कृष्टीः) बहुतसे धन भूमि (अवनोः) दिये हैं। इस प्रकार से आप सदा दुष्ट निग्रह शिष्ट परिग्रह करते ही रहते हैं परन्तु (ते) आपके (वीर्य्यम्) मंत्री, सेना, कोश, हस्ती, गज, अश्व, शस्त्र, आदि बल (अस्ति+स्वित्+नु) हैं? अथवा (न+स्वित्+अस्ति) नहीं हैं (तत+तत्) इस उस विषय की खबर (ऋतुथा) ऋतु ऋतु में (विवोचः) कहा करें अर्थात्—ऋतुथा प्रत्येक ऋतु में राजाको अपनी सभा में खबर देनी चाहिये कि अब कोश सेना आदि की यह दशा है।

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्य्याय बृहतीमृधाम्। यया दासान्यार्य्याणि वृत्रा करो वज्रिन् सुतुका नाहुषाणि ॥६।२२।१०॥

अर्थः—राजा के लिये उपदेश है [इन्द्र] हे राजेन्द्र! [नः] हम प्रजाओं के [शत्रुतूर्य्याय] शत्रुओं के नाशार्थ आप [बृहतीम्] बहुत [अमृधाम्] अक्षय अहिंसनीय [संयतम्] संगत इकट्ठी होने वाली [स्वस्तिम्] सेनादिधन सम्पत्ति को [आ] चारों तरफ़ से इकट्ठा कीजिये [यया] जिस सेनादि सम्पत्ति से आप [दासानि] दुष्टों को [आर्य्याणि] शिष्ट [करः] कर सकें [वज्रिन्] और हे वज्रधारी राजन्! [नाहुषाणि+वृत्रा] मनुष्य सम्बन्धी विघ्नों को [सुतुकानि] थोड़े कर सकें। यहां पर भी शिक्षा है कि दास को आर्य्य बनावो। नहुष नाम मनुष्य का है निघण्टु देखो॥

आभिः स्पृधो मिथती रिषण्यन्नभिमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र। आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्य्याय विशोऽवतारीदासीः॥ ६। २५। २॥

अर्थः—(इन्द्र) हे राजेन्द्र सम्राट्! (आभिः) इन सामग्रियों से (मिथती) संग्राम करने वाली (स्पृधः) सेनाओं को (अरिषण्यन्) बचाते हुए आप (अभित्रस्य) शत्रु के (मन्युम्) क्रोध को (व्यथय) नष्ट कीजिये और (आर्य्याय) शिष्ट जन के लिये (अभियुजः) चारों तरफ उपद्रव मचाने वाली (विषूचीः) और चारों ओर फैलने वाली (दासीः) परम दुष्ट (विशः) प्रजाओं को (अवतारीः) अच्छे प्रकार ताड़न कीजिये।

CC-0. Omkanya Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस मंत्र में विस्पष्ट पद है 'दासी विश' हिंसक प्रजाएं जितनी हैं उन सबों का संहार करो। 'दासी' यह पद 'विश' का विशेषण है।

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्राण्यार्य्या च शूर। वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरापृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ६। ३३। ३॥

त्वम्। तान्। इन्द्र। उभयान्। अमित्रान्। दासा। वृत्राणि। आर्य्या। च। शूर। वधीः। वना+इव। सुधितेभिः। अत्कैः। आ। पृत्सु। दर्षि। नृणाम्। नृतम ॥

अर्थः—हे [इन्द्र] ऐश्वर्य्य शालिन् राजन्! [त्वम्] आप [तान्+उभयान्] उन दोनों प्रकार के [अमित्रान्] शत्रुवों को [वधीः] नष्ट करें। वे दो प्रकार के शत्रु कौन हैं? जो [दासा] प्रजाओं में उपद्रव मचाने वाले बाह्य शत्रु और [आर्य्या] आर्य्यकृत [वृत्राणि] आन्तरिक अज्ञान इन दोनों का नाश करें [नृणाम्+नृतम] मनुष्यों के उत्तम नायक [शूर] शूर राजन्! आप (वना+इव) जैसे वन में कुठारादिकों से वृक्षों को काटते हैं तद्वत आप [पृत्सु] संग्रामों में [सुधितेभिः] अच्छे बनाए हुए [अत्कैः] निज आयुधों से [दर्षि] अन्यान्य उपद्रवों का भी नाश करें। विविध सेना और रक्षणादि उपायों से बाह्य उपद्रवों की और विद्यादि शुभ कर्म्म के प्रचार से आन्तरिक अथवा आर्य्यकृत उपद्रवों की शान्ति किया कीजिये। दास—उपक्षयिता। कर्म्म विरोधी। ज्ञान के क्षय करने वाले। अथवा प्रजा के धन के क्षय करने वाले अज्ञानी। अथवा हिंसक। वृत्र—आवरक आवरण करने वाले अज्ञान यहां 'वृत्र' शब्द नपुंसक बहु वचन है। अतः अज्ञानार्थ है। आर्य्य—यह यहां वृत्र का विशेषण भी हो सकता है। क्योंकि अज्ञान भी बहुत बड़ा है। शीघ्र इस का नाश नहीं होता। अथवा आर्य्यों में जो वृत्र अज्ञान उसे आर्य्य वृत्र कहते हैं॥

हतो वृत्राण्यार्य्या हतो दासानि सत्पतिः। हतो विश्वा अपद्विषः ॥ ६। ६०। ६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हतः । वृत्राणि । आर्य्या । हतः । दासानि । सत्पती । हतः । विश्वा । अप । द्विषः ॥

अर्थः—राजा और अमात्य मिल कर (आर्या) आर्य्यकृत (वृत्राणि) उपद्रवों को (हतः) नष्ट करते हैं (सत्पती) सज्जन पुरुषों के पालन करने वाले के राजा और मंत्री (दासानि) दासकृत उपद्रवों को (हतः) नष्ट करते हैं। इस प्रकार (विश्वा+द्विषः) सब शत्रुओं को (अप+हतः) नष्ट करते हैं। हन् हिंसा गत्योः । हन्ति, हतः । यहां हतः द्विवचन है ॥

यद्यपि आर्य्य नाम श्रेष्ठ और दास नाम दुष्ट का है। कभी २ विद्वान् धार्मिक पुरुष से भी अन्याय हो जाता है। आज कल भी यही रीति देखते हैं अतः ईश्वर आज्ञा देता है कि यदि विद्वान् श्रेष्ठ पुरुष से भी भूल हो जाय तो राजा मंत्री और राजसभा को उचित है कि इन को भी दण्ड देवे। तब ही प्रजा में शान्ति रह सकती है ॥

त्वे असुर्य्यं वसवोन्यृण्वन् क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त। त्वं दस्यूँ रोकसोऽग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्य्याय ॥ ७-५-६ ॥

अर्थ :—[मित्रमहः] हे मित्रों के पूजयिता [अग्ने] अग्ने मंत्रिन्! [त्वे] आप की सहायता के निमित्त [वसवः] वसु नाम के कार्य्य सम्पादक राज्याधिकारी गण [असुर्य्यम्] विविध उपायों की [नि+ऋण्वन्] आयोजना करते हुए [हि] निश्चय, नियम पूर्वक वे [ते] आप के [क्रतुम्] कार्य्य को अथवा आप की आज्ञा को [जुषन्त] सेवन करते हैं। इस हेतु निर्भय हो कर [त्वम्] आप [ओकसः] प्रत्येक स्थान से [दस्यून्] दुष्ट=कर्म्म रहित पुरुषों को [आजः] दूर फैंक दीजिये और इस प्रकार [आर्य्याय] शिष्ट जन के लिये [उरु+ज्योतिः] बहुत प्रकाश [जनयन्] उत्पन्न करते हुए आप सदा अपने कार्य्य में निर्भर रहें। असुर्य्यम्=असुर=वीर तत्सम्बन्धी असुर्य्य ॥

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः। आ योऽयत सधमा आर्य्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन् युधा नॄन् ॥ ७ । १८ । ७ ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ :—[पक्थासः] पक्थ [भलानसः] भलाना [अलिनासः] अलिन [विषाणिनः] विषाणी [शिवासः] शिव ये सर्व प्रकार के मनुष्य [आभनन्त] अच्छे राजा की कीर्त्ति को गावें [यः] जो राजा [सचमाः] सभा की आज्ञा को मानते हुए [तत्सुभ्यः] हिंसक दुष्ट पुरुषों से रक्षा कर के [आर्य्यस्य] शिष्ट पुरुष के [गव्या] पदार्थों को [आ+अनयत्] सर्वदा लाया करता है और [नृन्] दुष्ट मनुष्यों को [युधा] युद्ध के द्वारा [अजगन्=अजगत्] शासन किया करते हैं ॥ पक्थ=पाचक यज्ञादि कर्म्म में पाक करके लोगों को सत्कार करने वाले । भलाना=वाग्मी, भद्रमुख प्रिय भाषण करने वाले सदा सुप्रसन्न । अलिन=तपस्यादि से रहित विलासी पुरुष । विषाणी=विषाण=शृंग=सींगधारी अर्थात् मलिन । शिव=मंगल मूर्ति । सचमा=सच+मा, सच=साथी । मा मानना । साथियों को मानने वाला अर्थात् सभा की आज्ञा मानने वाला । भनन्त । भनतिः शब्दकर्म्मा ।

य ऋक्षादंहसो मुचद् यो वाऽऽर्य्यात्सप्त सिन्धुषु । वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥ ८ । २४ । २७ ॥

अर्थः—[यः] जो परमात्मा [ऋक्षात्+अंहसः] भालू स्वरूप पाप से [मुचत्] छुड़ाता है [वा] और [यः] जो [सप्तसिन्धुषु] सर्पण शील नदियों के तट पर यज्ञादि करने वालों को [आर्य्यात्] आनन्द पहुंचाता है । हे [तुविनृम्ण] आनन्दस्वरूप धनसम्पन्न परमेश्वर ! आप [दासस्य] जगत के क्षय करने वाले मनुष्यों के [वधः] वध साधन अस्त्रादिकों को [नीनमः] नमाओ अर्थात् दूर करो । सायणः—ऋन मनुष्यान् क्षणोतीति ऋक्षः । मनुष्य के हिंसक राक्षस को ऋक्ष कहते है । आर्य्यात् = सायण कहते हैं कि आर्य्यात् क्रिया पद है । ऋ गतिप्रापणयोः=गत्यर्थक और प्रापणार्थक 'ऋ' धातु से आशीर् लिङ् में बनता है । सप्त = सर्पणशीलासु । बहने वाली । यहां सायण भी 'सप्त' शब्द का अर्थ पक्षान्तर में सर्पण शील ही करते हैं । तुविनृम्ण । बहुधनेन्द्र । दास = उपक्षयिता । नीनमः = नमय ।—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन् व्रतान्यादधुः । उपो सु जातमार्य्यस्य वर्धनमग्निं नक्षंत नो गिरः ॥ ८ । १०३ । १ ॥

अर्थः—[गातुवित्तमः] गायकों के भावका परमज्ञाता वह परमात्मा साधकों के हृदय में [अदर्शि] दृष्टि गोचर होता है । [यस्मिन्] जिस के निमित्त [व्रतानि+आदधुः] व्रत धारण करते हैं । ऐसे [अग्निम्] प्रकाशक और [उपो] हृदय के समीप [सु+जातम्] सुप्राप्त [आर्य्यस्य+वर्धनम्] आर्य्य को बढ़ाने वाले परमात्मा को [नः+गिरः] हमारी स्तुतिएं [नक्षंत] प्राप्त हों । नक्ष गतौ ।

या नो दास आर्य्यो वा पूरुष्टुताऽदेव इन्द्र युधिये चिकेतति । अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान् वनुयाम संगमे ॥ १० । ३८ । ३ ॥

अर्थः-[पूरु+स्तुत] हे बहुस्तुत [इन्द्र] परमेश्वर ! [यः] जो [दासः] दुष्ट [वा] अथवा [आर्य्यः] शिष्ट पुरुष [अदेवः] देव रहित=यज्ञादि शुभ कर्म्मरहित अथवा आपकी स्तुति प्रार्थनादि से पराङ्मुख नास्तिक हैं और ऐसे पुरुष यदि [नः] हम लोगों से [युधये+चिकेतति] युद्ध करने की इच्छा करें तो हे भगवन् [ते+शत्रवः] वे देवरहित शत्रु [अस्माभिः] हमारे साथ [सुसहाः+सन्तु] अभिभव को प्राप्त होवें । और [त्वया] आप के द्वारा [वयम्] हम [संगमे] संग्राम में [तान्+वनुयामः] उन को नष्ट करें ।

वयो न वृक्षम्.....विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्य्यम् ॥ १० । ४३ । ४ ॥

ईश्वर आर्य्य ज्योति अर्थात् उत्तम ज्योति मनुष्य को देवें । यहां सायण 'आर्य्यम् प्रेर्यम्' आर्य्य शब्द का अर्थ प्रेर्य्य करते हैं ।

अहमत्कम्.....न यो रर आर्य्यं नाम दस्यवे ॥ १० । ४९ । ३ ॥

[यः] जो मैं [दस्यवे] दस्यु को [आर्य्यं] आर्य्य नाम वा श्रेष्ठ नाम [न+ररे] नहीं देता हूं ॥

समज्या पर्वत्या वसूनि दासा वृत्राण्यार्य्या जिगेथ ॥ १० । ६९ । ६ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थः—(अज्या) मनुष्य हितकारी (पर्वत्या) पर्वतोद्भव (वसूनि) विविधरत्नादि धनको (सम्+जिगेथ) आपने जीता है और (दासा) दासकृत और (आर्य्या) आर्य्यकृत उपद्रवों को आपने शान्त किया है ।

यस्ते मन्योऽविधद् वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् । साह्याम दासमार्य्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥ १० । ८३ । १ ॥

अर्थः—(मन्यो) हेक्रोध ! (यः) जो पुरुष (ते) तुम्हारा (अविधत्) सेवन करता है (वज्र+सायक) हेवज्रवत् कठोर और बाणवत् तीक्ष्ण वध करने वाले मन्यु ! वह पुरुष (सहः) बाह्यबल और (ओजः) शारीरिक बल (विश्वम्+आनुषक्) सब बल को सर्वदा (पुष्यति) पुष्ट करता है और (युजा) सहायक (सहस्कृतेन) बलोत्पादित (सहस्वता) बलवान् (त्वया) आप के सहायक होने से (दासम्+आर्य्यम्) दासकृत और आर्य्य कृत उभयविध शत्रु को (साह्याम) अभिभव करते हैं ।

प्रश्न—इन ऋचाओं के श्रवण से हम लोगों को एक और भी सन्देह उत्पन्न होता है आप कहते हैं कि आर्य्य और दस्यु अथवा दास दो वर्णोंके नाम नहीं है । किन्तु शिष्ट और दुष्ट का नाम क्रमसे आर्य्य और दास है अब हम पूछते हैं अनेक मंत्रों में कहा गया है कि दस्यु अव्रती अयज्वा है अतः ये दण्डनीय है। और आर्य्य व्रती यज्वा है अतः ये रक्षणीय हैं । इस से सिद्ध हुआ कि धार्म्मिक को आर्य्य और पापी को दस्यु कहते हैं । तब इस अवस्था में इसः—

"यो नो दास आर्य्यो वा पूरुष्टुताऽदेवः"

ऋचा में आर्य्य को अदेव कैसे कहा गया है क्योंकि जो 'अदेव' होगा वह तो दास ही होगा । पुनः आर्य्यको कभी 'अदेव' नहीं कहना चाहिये । पुनः—

'हतो वृत्राण्यार्य्या हतो दासानि सत्पतिः'
'त्वं तां इन्द्रोभयाँ अमित्रान् दासा वृत्रार्य्या च शूर'

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन ऋचाओं में कहा जाता है कि आर्य्य कृत और दास कृत दोनों उपद्रवों का शासन राजा वा मंत्री करता है आर्य्यकृत उपद्रव कैसे ? जो उपद्रव करेगा वह आर्य्य ही नहीं वह तो दास वा दस्यु है। पुनः "यया दासा न्यार्य्याणिव्रताकरः" इस में कहा गया है कि दास को आर्य्य बनाओ। जो दुष्ट होगया है उस को शिष्ट बनाना कैसे। ये ऋचाएं सिद्ध करती हैं कि ये आर्य्य और दस्यु दो वर्ण पृथक् २ थे दस्यु को वस करने के हेतु सदा यत्न किया करते थे। आर्य्य लोग में कोई २ 'अदेव' नास्तिक हो जाते होंगे। राजसभा उस को भी दबाने के लिये कोशिश करती होगी। इसी प्रकार जैसे आज कल भी ब्राह्मण लोग नास्तिक वा उपद्रविक हो जाते हैं तद्वत आर्य्य भी कभी २ उपद्रव करना आरम्भ करते थे। जैसे वसिष्ठ विश्वामित्र परशुराम और सहस्रबाहु राजादि आर्य्य होने पर भी परस्पर युद्ध किया करते थे।

समाधानः—ऐ विद्वानो ! आप अच्छी तरह विचारें "अदेव" पद देख कर आप को सन्देह उत्पन्न हुआ। आप लोगों ने अपने सन्देह का आप ही कुछ समाधान भी किया है। "आर्य्य" शिष्ट को कहते हैं इस में सन्देह नहीं। जैसे जो अध्ययन करके एक वार पण्डित बन गया क्या वह पुनः दुराचार नहीं कर सकता। यदि पण्डित दुराचारी हो तो उस के लिये भी यह कहा जायगा कि जो पण्डित "अदेव" हो उसे दण्ड दो। पण्डित होने पर भी उस के साथ "अदेव" विशेषण लग सकता है। इसी प्रकार आर्य्य के साथ भी समझें और यह मनुष्य का स्वभाव ही है कि अच्छा बुरा दोनों हुवा करता है। जैसे गुरु आचार्य आदि भी अपराध कर बैठते हैं वैसे आर्य्य बनने पर भी पश्चात् दुराचारी बनने की सम्भावना है। यहां ईश्वर तुल्य भाव से उपदेश देता है कि क्या आर्य क्या दास दुष्ट होने से दण्डनीय हैं।

दुष्ट तो दुष्ट ही है॥ अच्छा भी कभी २ कुकर्मी बन जाता है इस में सन्देह की कौन बात ? जब "स्वधाभिर्ये अधिशुस्रावजुह्वत" 'वे मायावी अपने ही मुख में हवन करते हैं' ऐसा वर्णन मन्त्र स्वयम् करता है और इसी के अनुकूल कौपीतकी और वाजसनेयी भी हैं "असुरा वा आत्मन्य जुह्वुरुद्रातेऽग्नौ। ते पराभवन्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देवाश्च ह वा असुराश्चास्पर्धन्त । ततो हासुरा अभिमानेन न कस्मैचन जुहुम इति स्वेष्वेवाऽऽस्येषु जुह्वतश्चेरुस्ते परावभूवुरिति" इत्यादि प्रमाण प्रस्तुत करते हुए। यहां आप देखते हैं कि दस्यु के स्थान में असुर शब्द प्रयुक्त हुआ। परन्तु असुर कोई आर्य्य से पृथक् जाति नहीं। जो दुष्ट नास्तिक अकर्म्मण्य हुए वे भी असुर नाम से व्यवहृत होने लगे। अतः दास वा दस्यु भी कोई भिन्न जाति नहीं

प्रश्न—सत्यमहं गभीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः।
न मे दासो नार्य्यो महित्वा व्रतं मीमाय यदहं धरिष्ये॥
अ० ५। ११। ३॥

अर्थ—ईश्वर कहता है कि [सत्यम्] सत्य है इस में अणुमात्र भी तुम सन्देह मत करो [काव्येन] स्वाभाविक ज्ञान से [अहम्+गभीरः] मैं गम्भीर हूं [सत्यम्] यह सत्य है कि [जातेन] सर्व प्राणी के साथ वर्त्तमान मैं [जातवेदाः] सब जात=भूत=प्राणी मात्र को जानने वाला हूं। हे मनुष्यो! तुम सत्य जानो [यद्+व्रतम्] जिस नियम को [अहम्+धरिष्ये] मैं स्थापित करूंगा [मे] उस मेरे व्रत को [महित्वा] अपनी महिमा से [न+दासः] न तो दास और [न+आर्य्यः] न आर्य्य [मीमाय] तोड़ सकेगा।

यहां पर ईश्वर कहता है कि मेरे नियम को न दास और न आर्य भग्न कर सकता है। यहां यदि दास शब्द का केवल दुष्ट अनाचारी चोर आदि अर्थ हो तो ईश्वर का कथन असत्य हो जायगा क्योंकि दुष्ट चोर तो ईश्वर के नियम को भग्न ही कर रहा है। अतः दास और आर्य्य दो जातियें हैं।

समाधानः-ईश्वरीय नियमको कोई भी भग्न नहीं कर सकता, क्या चोर भूखा रह सकता है। सोए बिना अपना स्वास्थ्य रख सकता है। ज्वरादि से पीड़ित नहीं होता अग्नि उसे नहीं जलाती। श्वास प्रश्वास बिना निर्वाह कर सकता है। यदि यह सब नहीं करसकता है तो वह ईश्वरीय नियम को भग्न नहीं कर सकता। अब रह गया चोरी डकैती आदि कुकर्म सेवन, सो ईश्वर का नियम नहीं; किन्तु यह आज्ञा है कि कुकर्म सेवन मत करो। सत्य बोलो धर्म करो अधर्म त्यागो इत्यादि। मनुष्य को ईश्वर ने स्वतन्त्र बनाया है अतः आज्ञा भंग कर सकता है। नियम भंग नहीं। यहां ही कहा गया है। यथाः—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न त्वदन्यः कवितरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन्।
त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ सचिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥
५।११।४॥

हे वरणीय ! हे अन्नादिक प्रदान से जगत् पालक ईश ! आप से बढ़ कर कोई कवितर नहीं, मेधा से कोई धीरतर नहीं, समस्त भुवन को जानते हैं। हे भगवन् आपसे मायावी भी डरता है। यहां साफ कहा गया है कि मायावी भी ईश्वर से डरता है। परन्तु मनुष्य से न डरकर मनुष्यों में मायावी उपद्रव किया करता है। जिस से प्रजा में बड़ी हानि हुआ करती हैं इसी कारण यहां भी यह प्रार्थना है:—

तत् ते विद्वान् वरुण प्रब्रवीम्यधो वचसः पणयो भवन्तु नीचैर्दासा उपसर्पन्तु भूमिम् ॥ अथर्व ५।११।६॥

हे वरणीय पूज्यदेव ! मैं प्रजाओं की सब दशा जानता हुआ आप से निवेदन करता हूं कि आप की कृपा से इन दुष्ट व्यवहार शील पुरुषों का वचन नीच होवे। ये दास नीच भूमि को जांय। प्रजाओं में उद्वेगकारी और दुष्ट जनों का वर्णन है।

आप लोग यहां इतना और जानें कि ईश्वर की ऐसी इच्छा है कि ईश्वर-विमुख कोई मनुष्य न होवे। ईश्वर राजा को बराबर आज्ञा देता है कि जो चोर नास्तिक है जो सज्जन पुरुष को अकारण क्षति पहुंचाया करता है जो प्रजाओं में अशान्ति फैलाता है। उस का शासन करो। बहुत सी ऋचाएं ऐसी हैं जिन में दास वा दस्यु पद नहीं आया है किन्तु 'ब्रह्मद्विट्' शब्द का प्रयोग है इस ब्रह्मद्विट् के लिये भी दासवत् ही आज्ञा है। ईश्वर, वेद, ब्रह्मवित् और तपस्या आदि अर्थ में ब्रह्म शब्द आता है। इन सबों का जो द्वेषी हो उसे ब्रह्म द्वेषी वा 'ब्रह्मद्विट्' कहते हैं। इस में प्रमाण:—

उदृहः रक्षः सहमूलमिन्द्र वृश्चा मध्यं प्रत्यग्रं शृणीहि।
आ कीवतः सललूकं चकर्थ ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥
ऋग्वेद ३।३०।१७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्य्य शालिन् राजन् ! आप (रक्षः) राक्षस को (उद्बृह) नष्ट करो (सहमूलम्) जड़ मूल से उसे काट डालो (मध्यम्) उस के मध्यभाग को काट दो (प्रत्यग्रम्) प्रत्येक अग्रगामी को (शृणीहि) हनन करो (सललूकम्) उस पापी को (आकीवतः) बहुत दूर (चकर्थ) कर दो इस प्रकार हे राजन् ! (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर, वेद, वेदज्ञ पुरुष और तपस्यादि शुभकर्म इन सबों से द्वेष करने वाले दुष्ट पुरुष के लिये (तपुषिम्) तापक=तपा कर घात करने वाले (हेतिम्) आयुध (अस्य) फेंको । उद्+बृह=बृह बृहू उद्यमने । शृणीहि= शृ हिंसायाम् । कीवतः=कियतः । सललूकम्=सृ गतौ । तपुषिम् =तप संतापे । हेतिम्=हन हिंसागत्योः । अस्य=असु क्षेपणे लोटिरूपम् ।

इन्द्रासोमा नमघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्त मनवायं किमीदिने ॥
ऋ० ७ । १०४ । २ ॥

अर्थः—[इन्द्रासोमा] हे राजन् तथा सौम्य मन्त्रिन् ! [अघशंसम्] सर्वदा पाप की चर्चा करने वाले [अघम्] पापी को आप दोनों मिलकर [अभि] हरएक प्रकार से नष्ट करें [तपुः] जगत् के तपाने वाला वह [ययस्तु] क्षयको प्राप्त हो । अथवा आप दोनों से संतप्यमान होकर क्षय को प्राप्त हो । यहां दृष्टान्त देते हैं- [अग्निवान्+चरुः+इव] अग्नि संयुक्त चावल के समान वह गल पच जाय । हे राजन् तथा मन्त्रिन् ! [ब्रह्मद्विषे] ब्रह्म द्वेषी [क्रव्यादे] मांसभक्षक [घोरचक्षसे] भयङ्कर रूपवाले [किमीदिने] कुटिल पिशुन मनुष्य के निमित्त आप दोनों [अनवायम्] सर्वदा [द्वेषः+धत्तम्] द्वेष धारण करें । अघशंस=अघ=पाप, शंस=कहने वाला पाप की ही प्रशंसा करने वाला । अघ=पाप, पापी । जैसे पाप शब्द का अर्थ पाप और पापी दोनों होता है तद्वत् । क्रव्याद=क्रव्य+आद, क्रव्य=मांस, आद =भक्षक अर्थात् मांसभक्षक । किमीदी=किमिदानीं किमिदानीम्=आज क्या है आज क्या है इस प्रकार से जो करता फिरता है उसे 'किमीदी' कहते हैं ।

यहां पर आप लोग देखते है कि जो दण्ड दस्यु और दास के लिये है वही दण्ड इस राक्षस, क्रव्याद ब्रह्मद्वेषी पिशुनके लिये भी है । परन्तु आप लोग अच्छे प्रकार जानते हैं कि राक्षस वा क्रव्याद वा ब्रह्मद्वेषी वा किमिदी [पिशुन=चुगला]

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कोई जाति विशेष नहीं। आज हम लोगों में भी बहुत से राक्षस विद्यमान हैं। बहुत से लोग क्रव्याद हैं। बहुत से ब्रह्म द्वेषी हैं। इस से सिद्ध है कि आर्य्य और दस्यु दो जाति नहीं। वेदों में विस्पष्ट कहा गया है कि अनेक अधार्मिक राजा मिल एक धार्मिक राजा को परास्त नहीं कर सकते।

"धर्म्म की महिमा"

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः।
सत्या नृणा मद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन् देवहूतिषु॥
७।८३।७॥

अर्थः—[अयज्यवः] अयज्यु अर्थात् यज्ञ विरहित अर्थात् अधार्मिक [दश-राजानः] दश राजा [समिताः] सम्मिलित होकर भी [सुदासम्] एक धार्मिक राजा से [इन्द्रावरुणा] हे राजन् तथा हे मन्त्रिन्! [न+युयुधुः] युद्ध नहीं कर सकते अर्थात् परास्त नहीं कर सकते। क्योंकि [अद्मसदाम्+नृणाम्] यज्ञ करने वाले मनुष्यों की [उपस्तुतिः] स्तुति प्रार्थना [सत्या] सत्य होती हैं और [एषाम्] इन यज्वा मनुष्यों के [देवहूतिषु] देव यज्ञों में [देवाः+अभवन्] देव अर्थात् बड़े बड़े विद्वान् सम्मिलित होते हैं उन विद्वानों की शिक्षा से यज्वाओं का अभिभव कदापि नहीं होता।

हे विद्वानो! आप देखते हैं कि धर्म का कैसा प्रभाव होता है। ईदृग् वैदिक आज्ञा को देख कर आर्यराजा सदा ब्रह्मद्वेषी को विनष्ट किया करें। यह शिक्षा वेद से लेनी चाहिये। वेदों में सत्यासत्य के विषय में बहुत कुछ कहा गया है सत्य का विजय असत्य का नाश सदा हुआ करता है।

"सत्य की महिमा"

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यसत्॥
ऋग्वेद ७।१०४।१२॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थः—[चिकितुषे+जनाय] विद्वान् चेतन जन के लिये [सुविज्ञानम्] यह सुविज्ञान है अर्थात् जानने योग्य है कि [सत्+च] सत् और [असत्+च] असत् ये दोनों परस्पर [पस्पृधाते] ईर्ष्या रखते हैं। सत् असत् को, असत् सत् को दबाना चाहता है। परन्तु [तयोः] उन दोनों में [यत्+सत्यम्] जो सत्य है और [यतरत्] दोनों में जो [ऋजीयः] ऋजुतम अत्यन्त ऋजु अकुटिल है [तत्+इत्] उसी को [सोमः] ईश्वर अथवा राजमन्त्री [अवति] सदा रक्षा करता है और [असत्+हन्ति] असत् का हनन करता है।

"दस्यु शब्द और महाभारत आदि"

अब मैंने अनेक उदाहरण वेदों से लेकर आप लोगों को सुनाये आर्य्य और दस्यु शब्द के ऊपर अब अधिक विचार करना उचित नहीं। मैं आगे आप लोगों को सुनाऊंगा कि पशु पक्षी प्रभृति के समान मनुष्यों में जाति की अनेक प्रकारता नहीं हैं। मनुष्य की सृष्टि भगवान ने एक ही प्रकार की की है। हां ? इस में सन्देह नहीं, कि इनके वंश विविध हैं। जिस को 'पंचमानव' शब्द के ऊपर दिखलाऊंगा। अभी आप लोगों ने देखा है कि श्रेष्ठ, यज्वा, व्रती, ब्रह्मविद्, सज्जन, धार्म्मिक-शूरवीर को आर्य्य और नीच अयज्वा, अव्रती, ब्रह्मद्वेषी, असज्जन, अधार्म्मिक-शूरवीर क्रव्याद को दस्यु वा दास कहते हैं। वेदों में ये लक्षण देख श्रेष्ठ पुरुषों ने अपना नाम आर्य और दुष्ट पुरुषों का नाम 'दस्यु' वा 'दास' रक्खा। तब से ये दोनों शब्द योग रूढ़ि के समान प्रयुक्त होने लगे। क्रमशः इन शब्दों के प्रयोग में बहुत अन्तर होता गया। बहुत काल के पश्चात् ये जातिवाचक शब्द बन गये। जो लोग इस 'भारत खण्ड' में आकर निवास करने लगे वे अपने सम्पूर्ण वंश को 'आर्य्य' और अपने से भिन्न अन्यान्य देश वासी को 'दस्यु' कहने लगे और ये आर्य्य लोग जिन को युद्ध में परास्त करते थे। बहुतों को तो आर्य्य ही बनालेते थे और बहुत से पुरुषों को सेवक के समान रखने लगे। उन सेवकों को 'दास' नाम से पुकारते थे। यहां यह स्मरण रखना चाहिये ये दास उस समय में भी कदापि शूद्र नहीं कहलाते थे। परन्तु यह सब लीला बहुत पीछे होने लगी है। ऋषियों के समय में यह एक साधारण नियम था कि दुष्ट से दुष्ट

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुष यदि सुधर जाय तो वह 'आर्य्य' कहलावे है क्योंकि कई एक मन्त्रों में आपने देखा है कि ईश्वर आज्ञा देता है कि इनको भी आर्य्य बनाओ। एवमस्तु 'दस्यु' शब्द के प्रयोग के ऊपर अब ध्यान दीजिये। यद्यपि कोश और अनेक प्रयोगों में 'दस्यु' शब्द आज भी प्रायः 'चोर' के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है और वैदिकार्थ करीब २ यही है। तथापि आर्य्य भिन्न जांगलिक पुरुषों में भी इस का प्रयोग अधिक होने लगा। जैसा कि आगे के प्रकरण से विदित होगा:-

विजित्य चाहवे शूरान् पार्वतीयान् महारथान्।
जिगाय सेनया राजन् पुरं पौरव रक्षितम् ॥ १५ ॥
पौरवं युधिनिर्जित्य दस्यून् पर्वतवासिनः।
गणानुत्सवसंकेतानजयत् सप्त पाण्डवः ॥ १६ ॥
....
ततः परमविक्रान्तो वाह्लीकान् पाकशासनिः।
दरदान् सह कम्बोजैरजयत्पाकशासनिः ॥ २३ ॥
प्रागुत्तरां दिशं ये च वसन्त्याश्रित्य दस्यवः।
निवसन्ति वने ये च तान् सर्वानजयत् प्रभुः ॥ २४ ॥
महाभारत सभापर्व। अ० २७ ॥

यहां अर्जुन के दिग्विजय का प्रकरण है। अर्जुनने महारथी पर्वत निवासी पार्वतीय शूरों को जीत तब पौरव रक्षित नगरी का विजय किया ॥१५॥ पौरव और पर्वत निवासी 'दस्युओं' को जीत सात दल इकट्ठे उत्सव संकेतनामक सैन्यों को जीता। तब वाह्लीक और कम्बोजों के साथ दरदों को जीता ॥२३॥ तत्पश्चात् पूर्वोत्तर दिशा के आश्रित जो दस्यु लोग उन्हे भी जीता।

यहां उत्सवसंकेत, पाण्डु, कम्बोज, वाह्लीक आदि के समान ही 'दस्यु' शब्द का प्रयोग है॥

मान्धातोवाच।

यवनाः किराता गान्धाराश्चीनाः शबर बर्बराः।
शकास्तुषाराः कङ्काश्च पह्लवाश्चान्ध्र मद्रकाः ॥ १३ ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पौण्ड्राः पुलिन्दा रमठाः काम्बोजाश्चैव सर्वशः ।
ब्रह्मक्षत्र प्रसूताश्च वैश्याः शूद्राश्च मानवाः ॥ १४ ॥
कथं धर्माश्चरिष्यन्ति सर्वे विषयवासिनः ।
मद्विधैश्च कथं स्थाप्याः सर्वेवै दस्युजीविनः ॥१५॥
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं भगवंस्तद्ब्रवीहिमे ।
स्वंबन्धु भूतोह्यस्माकं क्षत्रियाणां सुरेश्वर ॥ १६ ॥
महाभारत शान्तिपर्व अ० ६५ ॥

राजा मान्धाता इन्द्र से पूछते हैं कि यवन, किरात, गान्धार, चीन, शवर, बर्बर, शक, तुषार, कङ्क, पह्लव, अन्ध्र, मद्रक, पौण्ड्र, पुलिन्द, रमठ, और काम्बोज, तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, ये सब कैसे धर्म्म करेंगे, और दस्यु जीवी पुरुषों की स्थापना हम कैसे कर सकते हैं आप कृपा कर यह विषय मुझे सुनावें ।

यहां यद्यपि यवनादिकों से दस्यु को पृथक् रक्खा है । परन्तु देखने से प्रतीत होता है कि 'दस्युजीवी' शब्द विशेषण है अर्थात् यवनादि से लेकर शूद्र पर्यंत सब ही दस्युजीवी अर्थात् नास्तिक होगये हैं । इनकी रक्षा कैसे हो सकती है । ऐसा भाव प्रतीत होता है ।

ब्राह्मणो मध्यदेशीयः कश्चिद्वै ब्रह्मवर्जितम् ।
ग्रामं वृद्धियुतं वीक्ष्य प्राविशद्भैक्ष्यकांक्षया ॥ ३० ॥
तत्र दस्युर्धनयुतः सर्व वर्णविशेषवित् ।
ब्राह्मण्यः सत्यसन्धश्च दाने च निरतोऽभवत् ॥ ३१ ॥
प्रादात्तस्मै च विप्राय वस्त्रञ्च सदृशं नवम् ।
नारीञ्चापि वयोपेतां भर्त्रा विरहितां तथा ॥ ३२ ॥
एतत्सम्प्राप्य हृष्टात्मा दस्योः सर्व द्विजस्तथा ।
तस्मिन् गृहवरे राजन् तया रेमे स गौतमः ॥ ३४ ॥
महाभारत शान्तिपर्व १६८ ॥

मध्यदेशीय कोई ब्राह्मण किसी ग्राम को ब्राह्मण रहित परन्तु धन सम्पत्ति-संयुक्त देख भिक्षार्थ उस ग्राम में पैठा । वहां एक 'दस्यु' बड़ा धनाढ्य सर्व

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्णों के धर्मों को अच्छे प्रकार जानने वाला, ब्राह्मण्य, सत्यप्रतिज्ञ और दान में रत था। इस दस्युने उस ब्राह्मण को नवीन पाढ़दार वस्त्र और एक विधवा स्त्री दी। वह ब्राह्मण उसी दस्यु के गृह पर रहने लगा इत्यादि इस ब्राह्मण के बारे में बृहत् कथा है ॥

यहां पर देखते हैं कि 'दस्यु' परम धर्मात्मा पुरुष है। इस को 'आर्य्य' न कह कर 'दस्यु' कहा है। इस से सिद्ध है कि जांगलिक मनुष्यों को पीछे दस्यु कहने लग ॥

"मनुस्मृति और दस्यु,,

मुखबाहूरुपज्जानां या लोके जातयो बहिः।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वे ते दस्यवः स्मृताः ॥ म०१०।४५ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों से भिन्न जो वर्ण हैं। क्या वे म्लेच्छ भाषा बोलते हों या आर्य भाषा वे सब दस्यु हैं। इस से सिद्ध है कि चतुर्वर्ण के अतिरिक्त जितने अन्यान्य पृथिवीस्थ मनुष्य हैं वे मनु के अनुसार "दस्यु" हैं इत्यादि कई एक स्थलों में मनुने दस्यु की चर्चा की है। इस से आप लोगों के उस प्रश्न का भी उत्तर होगया। आप लोगों ने जो यह कहा था कि वैदिक 'दस्यु' को हम लोग 'शूद्र' कहते हैं। सो इस से सिद्ध नहीं होता। शूद्र से 'दस्यु' भिन्न हैं ॥

"ऐतरेय ब्राह्मण और दस्यु,,

तद् ये ज्यायांसो न ते कुशलमेनिरे। तानन्व्यजहार अन्तान् वः प्रजा भक्षीष्टेति। त एते अंध्राः पुण्ड्राः शवराः पुलिन्दाः मूतिबा इत्युदन्त्या बहवो वैश्वामित्रा दस्यूनां भूयिष्ठाः ॥ ऐतरेय ब्रा० ७। १८ ॥

विश्वामित्र के अनेक पुत्र थे। किसी कारणवश उन्होंने शुनःशेप को भी अपना दत्तकपुत्र बनाया था। उस को दत्तकपुत्र बना कर विश्वामित्र ने सब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुत्रों से कहा है कि हे पुत्रो ! इसी को आप सब भाई ज्येष्ठ मानो। परन्तु विश्वामित्र के ज्येष्ठ पुत्र ने इस को कुशल नहीं माना। इस प्रकार आज्ञा भङ्ग करते हुए उन पुत्रों से विश्वामित्र ने कहा कि तुम्हारे सन्तान नीच जाति को प्राप्त होवें। वे ये अन्ध्र, पुण्ड्र, शवर, पुलिन्द, मूतिवा आदि नीच जाति के मनुष्य हुए। विश्वामित्र की सन्तान इस प्रकार दस्युओं में अधिक हैं॥

इस से वैदिक सिद्धान्त ही सिद्ध होता है अर्थात् जो अनाचारी हुए वे आर्य्यों से निकल कर विरुद्ध पक्ष ले अनार्य अन्ध्र प्रभृति नाम से प्रसिद्ध होने लगे। और इसी हेतु यह भी सम्भव है कि इन के पास धनधान्य बहुत हों क्योंकि वे आर्य से 'दस्यु' बने हैं।

ऋग्वेद में आये हुए 'दस्यु' शब्द के प्रयोगों को यहां क्रम से मण्डल, सूक्त और मन्त्र के पता सहित लिखते हैं यथाः—

दस्यवः= १-५१-८
दस्यवि= ८-६-१४
दस्यवे= १-३६-१८
१-१०३-३
८-५१-२
८-५६-२
९-६२-५
१०-४६-३
१०-१०५-७
८-५५-१
८-५६-१
दस्युः= २-११-१८
४-१६-६
१०-२२-८
दस्युहना= ४-१६-१०
दस्युजूताय=६-२४-८
दस्युतर्हणा=६-४७-२
दस्युभ्यः= ६-३८-१
१०-४८-२
दस्युम्= १-३३-४
१-३३-७
१-३३-९
१-५३-४
१-५६-६
१-११७-२१
१-१७५-३
२-१५-६
५-४-६
८-३०-६
६-१४-३
७-१६-४
८-५०-८

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दस्युम्= ८-७०-११
९-४१-२
१०-७३-५

दस्युहत्याय=१-५१-६
१-१०३-४
१०-९५-७

दस्युहत्ये= १०-२९-७
१०-१०५-११

दस्युहत्येषु=१-५१-६

दस्युहनम्= १०-४७-४

दस्युहन्तमम्=६-१६-१५
८-३९-८
१०-१७०-२

दस्युहा= १-१००-१२
६-४५-२४
८-७६-११
८-७७-३
१०-८३-३

दस्यून्= १-६३-४
१-७८-४
१-१००-१८
१-१०१-५
२-११-१६
२-१३-६
२-२०-८
३-२६-९
३-३४-६

दस्यून= ३-३४-९
४-१६-१२
४-२८-३
४-२८-४
५-७-१०
५-१४-४
५-२६-१०
५-३१-५
६-३१-७
७-७०-३
८-१८-३
८-२३-२
६-२६-६
७-५-६
७-६-३
८-१४-१४
१०-५५-८
१०-८३-६
१०-९९-८

दस्योः= १-१०४-५
१-११७-३
२-१२-१०
३-४६-२
६-३१-४
८-९८-६
९-८८-४

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"दास शब्द पर विचार,,

यद्यपि 'दस्यु, शब्द के साथ इसका भी विचार हो चुका है। और उन्हीं प्रमाणों से सिद्ध होचुका है कि दास और और दस्यु शब्द प्रायः एकार्थक हैं। तथापि इस पर पृथक् करके इस हेतु मीमांसा करने की आवश्यकता हुई है कि वैदिक अर्थ इस का अब नहीं रहा इस के अर्थ में बहुत उन्नति हुई है। देश में साधु सन्त तुलसी दास सूरदास जैसे विद्वान् भी दास कहलाने लगे और विशेष कर शूद्र शब्द के साथ इस का बड़ा सम्बन्ध हुआ है। यहां तक कि शूद्रों के नाम करण में 'दास' शब्द जोड़ कर नाम रखने की विधि आधुनिक धर्म शास्त्रों में देखते हैं और ब्राह्मणातिरिक्त क्षत्रियादि वर्णोंके लिए भी दासत्व कहा गया है। अर्थात् सेवकार्थ में इसका प्रयोग अब हो गया है। जैसे कि राजा के दास दासी। परन्तु वेदानुसार इस का अर्थ न सेवक और न शूद्र किन्तु चोर, डाकू, नास्तिक आदि निकृष्ट अर्थ हैं। अब हमें परीक्षा करनी चाहिए कि वैदिक समय में यह क्या भाव रखता था। पहले मैं 'दास, इस शब्द के प्रयोग न देकर जिस धातु से यह सिद्ध होता है उस के दो एक प्रयोग देते हैं जिस से विस्पष्टतया प्रतीत हो कि यथार्थ में इस का क्या अर्थ है।

"दास धातु और वेद,,

मा वीरो अस्मन्नर्यो विदासीत्। ऋ०। ७। १। २१॥

मा=नहीं। वीर=वीर। अस्मत्=हम से। नर्य=नर-हितकारी। वि=विशेष। दासीत्=क्षय होवे। (१) सायण—"अपि च अस्मत् पृथग् भूतः अस्माकं वा षष्ठ्यर्थे पञ्चमी। वीरः पुत्रः नर्यो नरहितः माविदासीत् मोपक्षीयेत"

(१) अब यहां से आगे वैदिक शब्दों के विभक्ति रहित अर्थ पहले हो लिख देवेंगे ताकि जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें भी पद और पदार्थ मालूम हो। विभक्ति रहित का तात्पर्य्य यह है कि जैसे आत्मा शब्द के आत्मा, आत्मानौ, आत्मनो, आत्मने आदि पद होते जाते हैं। अब यदि हम केवल 'आत्मने, का अर्थ करदें तो जो संस्कृत नहीं जानते हैं उन्हें यह कौन शब्द है ऐसा प्रतीत नहीं होगा। अतः प्रथम विभक्ति रहित अर्थ कर के पुनः विभक्ति सहित अर्थ करेंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अस्मत्) हम से पृथक् हो के हमारा (वीरः) वीर पुत्र जो (नर्यः) मनुष्य हितकारी है (मा+वि+दासीत्) वह क्षय को प्राप्त न होवे ।

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने । ६ । ५ । ४ ॥

यः=जो । नः=हम को । सनुत्य=अन्तर्हित छिपा हुआ । अभिदासत्=हिंसा करता है, दुःख देता है ! अग्नि=प्रकाश स्वरूप देव । सायण आह–"यः शत्रुः सनुयः अन्तर्हितदेशे वर्तमानः सन् । नो अस्मान् अभिदासत् उपक्षयति बाधते" । (यः) जो शत्रु (सनुत्यः) छिप के (नः) हम को (अभि+दासत्) नष्ट करना चाहता है । हे देव ! उसे आप नष्ट करें ।

यो नः कदाचिदभि दासति द्रुहा । ७ । १०४ । ७

य=जो । नः=हमको । कदाचित्=कभी । अभिदासति=हिंसा करना चाहता है । द्रुह=द्रोह । सायण आह—द्रुहा द्रोहेण युक्तो नोऽस्मान् कदाचिदपि अभिदासति अभिहन्ति तस्मै इत्यादि ।

(यः) जो पुरुष (कदाचिदपि) कभी भी (द्रुहा) द्रोह से युक्त होकर (नः) हम को (अभिदासति) हनन करना चाहता है । उसे कल्याण न हो ।

उपस्ति रस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥१०।८७।२३॥

उपस्ति=अधःपाती । अभिदासति=हनन करना चाहता है । (अस्माकम्) हमारा (सः) वह शत्रु (उपस्तिः+अस्तु) अधः शायी होवे अर्थात् उस का अधःपतन होवे (यः) जो (अस्मान्+अभिदासति) हमको हनन करना चाहता है ।

'अभिदासति' प्रायः अभि पूर्वक 'दास' धातु का प्रयोग हिंसा ही अर्थ में आता है । इस प्रयोग से विदित होता है कि 'दास' धातु का अर्थ अच्छा नहीं है 'दस' धातु से भी 'दास' बन सकता है ! अतः उसके भी प्रयोग लिखते हैं ।

"दस धातु,,

उतो रयिः पृणतो नोपदस्यति । १० । ११७ । २ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उतो=और । रयि=धन । पृणत=देता हुवा । न=नहीं । उपदस्यति=क्षीण होता है, घटता है । सायण आह—"उतो उत शब्दस्त्वप्यर्थे पृणतः प्रयच्छतः पुरुषस्य रयिः धनं नोपदस्यति न उपक्षीयते दसु उपक्षये दैवादिकः पृणदाने तौ दादिकः" (उतो) और (पृणतः) दान देते हुए पुरुष का (रयिः) धन (न+उप+दस्यति) क्षीण नहीं होता है ।

नास्यराय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथा ॥ ऋ० ५ । ५४ । ७ ॥

न=नहीं । अस्य=इस का रै=धन । ऊति=रक्षा । (अस्य) इस को (रायः) पुत्र, पौत्र, पशु, हिरण्यादि धन (न+उपदस्यन्ति) नष्ट वा क्षीण नहीं होते (नः+ऊतयः) और न इस की रक्षा ही नष्ट होती (यं ऋषिम्) जिस ऋषि (वा+राजानम्) वा राजा को (सुषूदथ) आप प्रेरणा करते हैं ।

इत्यादि उदाहरण में 'दस, धातु का अर्थ उपक्षय होता है । अर्थात् क्षीण होना 'दस, धातु से भी दास बनता है । अब साक्षात् 'दास, शब्द के प्रयोग कहते हैं । पहले के साथ भी इस को मिलावें ।

"दास शब्द के प्रयोग,,

यो दासं वर्ण मधरं गुहाकः । २ । १२ । ४ ॥

दास=उपक्षयिता । वर्ण=वर्ण,रंग,रूप । अधर=नीच । गुहा=गह्वर । अकः=किया है । सायण—"यश्च दासं वर्णं दासमुपक्षयितारं अधरं निकृष्टमसुरं गुहा गुहायां अकः अकार्षीः" (यः) जो (दासम्+वर्णम्) उपक्षयकारी=विनाशकारी वर्ण को (अधरम्) नीच करके (गुहा+अकः) अन्धकार स्थान में कर दिया है । अर्थात् जगत् के विघ्न-कारी पुरुष को दण्ड देकर अन्धकार स्थान में राजा रखता है । सायण दास का असुर अर्थ करते हैं ।

यथा वशं नयति दास आर्यः । ५ । ३४ । ६ ।

आर्य लोग दास को अपने वश में लाते हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अवगिरेर्दासं शम्बरं हन् । ६ । २६ । ५ ।

सायण आह–"तथा त्वं दासं यज्ञादिकर्म्मणा मुपक्षयितारं गिरेः पर्वतादभि-र्गतं शम्बरमसुरम् अवहन् अवाबधीः"। आपने (शम्बरम्) कल्याण के अवरो-धक (दासम्) यज्ञादि कर्म के विरोधी दास को (गिरेः) पर्वत से भी पृथक् कर (अव+हन्) हनन किया है। सायण 'दास' का अर्थ यज्ञादि कर्म्मों का उपक्षयिता अर्थात् विनाशयिता (विनाश करने वाला) करते हैं। यज्ञ के वि-नाश करने वाला नास्तिक के सिवाय कौन होता है।

दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धयः । ७ । १९ । २ ।

शुष्ण=प्रजाओं के धनका शोषण करनेवाला। कुयव–पृथिवी पर उपद्रावक। हे राजन्! आप (यत्) जब (दासम्) दास। (शुष्णम्) शुष्ण और (कुयवम्) कुयव इत्यादि दुष्ट पुरुषों को (नि+अरन्धयः) अतिशय वश में ले आए हैं।

वृत्रेव दास वृत्रहा रुजम् । १० । ४६ । ६ ।

(वृत्रहा) विघ्नों का नाश करने वाला मैं (वृत्रा+इव) विघ्न वा पाप स्व-रूप (दासम्) उद्वेगकारी पुरुष को (अरुजम्) सदा भग्न किया करता हूं। यहां साक्षात् पाप स्वरूप में दास शब्द का प्रयोग है।

ऋधक् कृषे दासं कृत्व्यं हथैः । १० । १९ । ७ ॥

ऋधक्=पृथक्। कृषे करता हूं। कृत्व्य=इन्तव्य। हथ=हननास्त्र। (कृत्व्यम्) हनन योग्य (दासम्) दास को (हथैः) विविध हननास्त्र से (ऋधक्+कृषे) पृथक् करता हूं।

इत्यादि अनेक मन्त्र हैं जिन से सिद्ध होता है कि "दास" कोई ऐसा नीच पुरुष होता है जो सर्व काल में हिंसनीय और दण्डनीय है। अब इसके सम्बन्धी के विषय में सुनिए।

उत दासस्य वर्चिनः सहस्राणि शतावधीः । अधि पञ्च प्रधीरिव । ४ । ३० । १५ ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वर्ची=अस्तधारी । प्रधि=शंकु=खूंटी ।

आपने (उत) और (दासस्य) दुष्ट पुरुष के सम्बन्धी (वर्चिनः) अस्त्र शस्त्र धारी (पंच+शता) ५०० सौ और (सहस्राणि) सहस्रों पुरुषों का (प्रधीन्+इव) शंकु के समान (अधि+अवधीः) अत्यन्त हनन किया हैं । जैसे छोटी छोटी खूटियों को विना परिश्रम तोड़ डालते हैं । वैसे ही आपने दासों को तोड़ फोड़ किया है ।

अस्रापयद्दभीतये सहस्रा त्रिंशतं हथैः ।
दासाना मिन्द्रो मायया । ४ । ३० । २१ ।

अस्रापयत्=हनन किया है । दभीति=भय दान । हथ=हननास्त्र । माया=प्रज्ञा, बुद्धि ॥

(इन्द्रः) राजाने (मायया) बुद्धि से (दभीतये) भय दिखलाने के हेतु (त्रिंशतम्+सहस्रा) ३०००० तीस सहस्र (दासानाम्) दासों को (हथैः) विविध हननास्त्रों से (अस्रापयत्) हनन किया है ॥

दभीति=भीतिद=भीतिदान । भीतिद होना चाहिये परन्तु वेद में उलटा भी होजाता है । स्रापू=हिंसा करना मारना इत्यादि अर्थ यहां है । या मारकर सुला दिया है ऐसा भी अर्थ हो सकता है ।

इन्द्राग्नी नवतिं पुरो दासपत्नी रधूनतम् ।
साक मेकेन कर्म्मणा । ३ । १२ । ६ ।

नवति=९० । पू=नगरी । दासपत्नी=दासों से पालित । अधूनतम्=कम्पायमान किया । साकम्=साथ ॥

(इन्द्राग्नी) हे राजन् ! तथा हे मन्त्रिन् ! आप दोनों ने (एकेन+कर्म्मणा+साकम्) केवल एक ही उद्योग के साथ (दासपत्नीः) दासों से पालित (नवतिम्+पुरः) ९० नगरों को (अधूनतम्) कंपा दिया है सायण दासपत्नी का अर्थ करते हैं "दासयन्ति उपक्षयन्तीति दासाः उपक्षयितारः

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शत्रवः । तेपतयः पालका यासां ता दासपत्नीः । दसुउपक्षये । दासयतीतिदासः पचाद्यजन्तः । जो क्षय करे उसे दास कहते हैं । उपक्षयार्थक ण्यन्त 'दस' धातु से 'दास' को सायण सिद्ध करते हैं ।

उन उदाहरणों से आप विचारें कि वैदिक समय में दास शब्द के क्या अर्थ थे । जितना ही विचारेंगे उतना ही प्रतीत होगा कि आज कल इस शब्द के अर्थ में वैदिक समय से बहुत अन्तर पड़गया है । निःसन्देह, 'दास' और 'दस्यु' वैदिक समय में एकार्थक थे ।

दास शब्दार्थ की उन्नति ।

इस में सन्देह नहीं कि यह 'दास' शब्द हमें एक गूढ़ इतिहास प्रकाशित कर रहा है । और अच्छे प्रकार बतलाता है कि शूद्र के साथ इस का क्यों प्रयोग होने लगा, आप अभी देखा है कि दुष्ट, उपद्रवी, उपक्षयिता, अधार्मिक पुरुष का नाम दास है । वेद में ईश्वर की ओर से आज्ञा है कि ऐसे पुरुषों को निर्मूल करो, अपने वश में लाओ, इन्हें आर्य्य बनाओ इत्यादि । वेदों में लक्षण देख ऐसे दुष्टों को ऋषियों ने 'दास' नाम दिया । जब आर्य्य लोगों की उन्नति हुई उस समय इन दासों को पकड़ पकड़ के अपनी सेवा में रखने लगे । यह स्वाभाविक बात है कि विजयी पुरुष परास्त वा पराजित पुरुषों को अपने काम में लाया करते हैं । सेवक बनाने पर भी इन का नाम दास ही रक्खा । जब भारत वर्ष में ऐसे उपद्रवी आदमी नष्ट होने लगे अथवा आर्यों के आश्रित होगये, युद्ध करने वाले कोई न रहे । और जो रहे वे आर्यों के सेवक बन गये । इस अवस्था में धीरे २ इस शब्दके प्राचीन अर्थ भी भूलते गये । जिस हेतु वे दास सेवा में पहले से ही नियोजित किये गये थे अतः इसका अर्थ भी 'सेवक' हो गया * उस समय से इस शब्दका प्रधान अर्थ सेवक ही रह गया । सेवा नम्रता के साथ होती है । स्वामी के अधीन रहना पड़ता है । उस

* नोट-भृत्ये दासेर, दासेय, दास, गोप्यक, चेटकाः । नियोज्य, किंकर, प्रेष्य, भुजिष्य, परिचारकाः । अमर० । शूद्रवर्ग ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

की आज्ञा-पालन में तत्परता दिखानी होती है। इस हेतु सेवक के समान आज्ञा कारी सर्वसाधारण पुरुष में भी दास शब्द का प्रयोग होने लगा। जिस हेतु ईश्वर महान् स्वामी है उसकी सेवा में जो रहे वे भी अपना नाम 'दास, रखने लगे। और इस प्रकार जहां सेव्य सेवक की अति प्रीति वा अति भक्ति प्रदर्शित हुई है वहां वहां 'दास, शब्द का प्रयोग करने लगे। इस प्रकार चोर डाकू नास्तिक अव्रती, असुर आदि अर्थ रखने वाला 'दास, शब्द अत्युत्तम अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। आहा! इस शब्द के अर्थ में कैसी प्रशंसनीय उन्नति हुई है। यह शब्द तुलसी दासादि महात्मा पुरुष के साथी बन पूज्य हो गया।

'दास शब्द से शूद्र शब्द का सम्बन्ध,

परन्तु इस शब्द के विचार के साथ २ मुझे अत्यन्त शोक भी होता है कि शूद्र के साथ इस का क्यों सम्बन्ध लगाया गया। मैं आगे दिखलाऊंगा कि शूद्र शब्द का अर्थ वेदानुसार निकृष्ट नहीं है। शूद्र शब्द बहुत उत्तम अर्थ रखता था। चारों वेदों में आप ढूंढ़ जाइये एक भी वाक्य ऐसा नहीं मिलेगा कि जिस में दासवत् कहा गया हो कि शूद्रों को नष्ट करो वा शूद्रों को अपने वश करो, ये बड़े दुष्ट, पापी, नीच, कर्म्म हीन, अव्रती है इत्यादि। किन्तु इसके विरुद्ध हम आप लोगों को दिखला चुके हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों के लिये समान ही प्रार्थना आशीर्वादादि आए हैं। शूद्र आर्य्य है। परन्तु दास अनार्य्य। शूद्र वर्ण। परन्तु दास कोई वर्ण नहीं। शूद्र व्यवसायी। परन्तु दास चोर डाकू। शूद्र पूज्य, मान्य, यज्ञार्ह। परन्तु दास हन्तव्य। व्यवहार चलाने के लिये शूद्र एकअंग है। परन्तु दास सब अंगों के नाश करने वाला। इत्यादि वेद के अध्ययन से इन दोनों शब्दों में महान् भेद प्रतीत होता है।

तथापि मैं नहीं कह सकता कि इतना भेद होने पर भी आज शूद्र शब्द का अर्थ इतना क्यों गिर गया। और एक आश्चर्य यह देखते हैं कि शूद्र शब्द के सुनने से जितनी घृणा उत्पन्न होती है उतनी दास शब्द के सुनने से नहीं। बल्कि दास शब्द के श्रवण से कुछ भी घृणा न उत्पन्न हो कर एक अच्छा भाव प्रतीत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता है। जैसे विदुर आदि दासी पुत्र हैं। अब आप लोग विचार सकते हैं कि निस्सन्देह जो अर्थ दास शब्द का प्रथम था आज वही अर्थ प्रायः शूद्र शब्द का है और जगत में इस प्रकार का परिवर्तन होता रहता है। कारण ये हैं कि बहुत समय के अनन्तर शूद्र शब्द का अर्थ सर्वथा विस्मृत हो गया और जिस कारण से बहुत से आर्य पुरुषों ने स्वयम् शूद्र का कार्य्य अपने शिर पर उठाया था वे कारण भी लोगों को स्मरण नहीं रहे और एक यह भी महान् परिवर्तन हुआ कि धीरे २ वे पराजित दास गण भी शूद्र के कार्य करने में तत्पर हो गये वा लगाए गए। इस प्रकार ये दोनों मिल कर एक ही शूद्र वर्ण बने रहे। जिस कारण दासापेक्षा प्रथम से शूद्र प्रधान थे अतः शूद्र नाम तो प्रधान और "दास" यह नाम गौण हो गया। जैसे ये दोनों बहुत दिनों के पीछे मिल कर एक हो गए वैसे ही शूद्र और दास शब्द के प्रयोग भी एक हो गए अर्थात् इन के प्रयोग में कुछ भी भेद नहीं रहा शास्त्र के कथनानुसार चार ही वर्ण हैं। शुश्रूषा करने वाले सेवक आजकल शूद्र हैं। परन्तु यथार्थ में शुश्रूषु दास ही थे। शूद्र नहीं। जिस शुश्रूषा के कारण दास शब्द का अर्थ सेवक हुआ था। परन्तु वे दास अब पृथक् नहीं रहे। सब शूद्र ही कहाने लगे। इन का विशेष कार्य सेवा थी। सेवा करने वाले के लिए 'दास, शब्द का प्रयोग खूब प्रचलित हो चुका था। आज भी सेवक को दास दासी कहते हैं इस कारण शूद्र वर्णों के नाम के साथ दास शब्द का प्रयोग करने लगे। परन्तु यह सब वेद विरुद्ध बात है अतः यह सर्वथा त्याज्य है। शूद्र वर्ण के साथ कदापि भी दास शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिए। प्रयोग के विषय में मनुस्मृति का प्रमाण।

शर्मवद् ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षा समन्वितम्।
वैश्यस्यपुष्टि संयुक्तं शूद्रस्य प्रैष्य संयुतं। मनु० २। ३२॥

ब्राह्मण के नाम के साथ शर्म्मा, राजा के वर्म्मा, वैश्य के पाल वा भूति और शूद्र के दास शब्द का प्रयोग होना चाहिए। ऐसा मनु जी कहते हैं इस की टीका में कुल्लूक भट्ट लिखते हैं यथाः—

तथाच यमः। शर्मा देवश्च विप्रस्य वर्मा त्राता च भूभुजः। भूतिर्दत्तश्च वै-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत् । विष्णु पुराणेप्युक्तम् शर्मवद् ब्राह्मणस्योक्तं वर्म्मेतिक्षत्र संयुतम् । गुप्त दासात्मकं नाम प्रशस्तं वैश्य शूद्रयोः ।

यमस्मृति में लिखा है कि विप्र के नाम के साथ शर्म्मा और देव । राजा के साथ वर्म्मा और त्राता । वैश्य के साथ भूति और दत्त । शूद्र के साथ दास। विष्णु पुराण में भी कहा है कि ब्राह्मण का नाम शर्म्म संयुक्त । क्षत्रिय का वर्म्म युक्त । वैश्य का गुप्त युक्त । और शूद्र का दास संयुक्त नाम रक्खे इति ।

अन्यान्य ग्रन्थों में आर्य्य शब्द ।

वेदों में 'आर्य्य' शब्द के श्रेष्ठ आस्तिकादि अर्थ देख ऋषियों ने अपने वंशजों के लिये 'आर्य्य' नाम रक्खा । ये ऋषि सन्तान जहां जहां गये वे इसी नाम से पुकारे जाते रहे । भारतवासी आर्य्यों में वेदों का पठन पाठन सदा बना रहा इस हेतु इन में इस नाम का लोप नहीं हुआ । जो आर्य्य योरोप प्रभृति महाद्वीपों में जा बसे उनमें संस्कृत न रहने से धीरे २ इस नाम को भूलगये यहां पर भी मुसल्मान के समय से यहां के लोग आर्य्य के स्थान में हिन्दू कहाने लगे । आज कल योरोपनिवासी भारतवासियों को 'इण्डियन' कहते हैं इस प्रकार भारतवासी ऋषियों ने अपने को 'आर्य्य' और जिस देश में प्रथम आ बसे उसका नाम 'आर्य्यावर्त्त' रक्खा । वेद से लेकर अभी तक इस शब्द का अर्थ पूर्ववत् ही प्रायः चला आया है । संस्कृत में प्रायः कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं जहां आर्य्य शब्द के प्रयोग न हों इस के प्रयोग अनेक प्रकार के मिलते हैं । ये दो चार उदाहरण यहां दिये जाते हैं । वेदों से अनेक उदाहरण पूर्व में लिखे गये हैं ।

शवतिर्गतिकर्म्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते ।
विकार मस्याऽऽर्य्येषु भाषन्ते शव इति ॥ नि० २ । २ ॥

यास्काऽऽचार्य्य कहते हैं कि 'शव' धातु गत्यर्थक है । केवल धातु का प्रयोग कम्बोज लोगों में होता है । परन्तु इस धातु का विकार अर्थात् इस से बना हुआ 'शव' शब्द आर्य्यों में प्रयुक्त होता है । शव = मुर्दा ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इससे सिद्ध है कि 'आर्य्य' यह सम्पूर्ण भारतवासियों का नाम है। क्योंकि कम्बोज के मुकाबिले में यहां आर्य्य-शब्द प्रयुक्त हुआ है। पुनः—

जातो नार्यामनार्य्यायामार्यादार्यो भवेद्गुणैः।
जातोऽप्यनार्य्यादार्य्यायामनार्य्य इति निश्चयः॥ मनु० १०। ६७॥

जातः। नार्य्याम्। अनार्य्यायाम्। आर्य्याद्। आर्य्यः। भवेद्। गुणैः। जातः। अपि। अनार्य्यात्। आर्य्यायाम्। अनार्य्यः। इति। निश्चयः॥

(आर्य्यात्) आर्य्य से (अनार्य्यायाम्+नार्य्याम्) अनार्य्या नारी में अर्थात् दस्यु आदि की अनाड़ी स्त्री में (जातः) उत्पन्न हुआ बालक (गुणैः) गुणों से अर्थात् यदि उसमें अच्छे गुण होवें तो वह (आर्य्यः+भवेत्) आर्य्य कहलावेगा परन्तु (अनार्य्यात्) दस्यु वा दास से (आर्य्यायाम्+अपि) आर्य्या स्त्री में भी (जातः+) उत्पन्न हुआ बालक (अनार्य्यः+इति निश्चयः) अनार्य्य ही है। यह निश्चय है।

इस से भी सिद्ध होता है कि 'आर्य्य' शब्द पीछे जातिवाचक होगया। इस से यह भी स्पष्ट है कि आर्य्य लोग दस्यु वा दास की कन्या से विवाह करते थे और उन के सन्तान 'आर्य्य' ही कहलाते थे। किन्तु अपनी कन्या अनार्य्यों को नहीं देते थे। 'आर्य्यावर्त' शब्द भी सिद्ध करता है कि यहां के लोग अपने को 'आर्य्य' नाम से पुकारते थे क्योंकि आर्य्यों के निवासस्थान का नाम 'आर्य्यावर्त' है। मनुस्मृति में आर्य्यावर्त की सीमा इस प्रकार कही गई है।

आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमुद्रात्तुपश्चिमात्।
तयोरेवान्तरंगिर्य्यो रार्य्यावर्तंविदुर्बुधाः॥ मनु० २। २२॥

पूर्व और पश्चिम समुद्रों के और हिमालय और विन्ध्याचल के बीच की भूमि का नाम आर्य्यावर्त है। कुल्लूकभट्ट टीकाकार आर्य्यावर्त शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार करते हैं यथा-"आर्य्या अत्रावर्तन्ते पुनःपुनरुद्भवन्तीत्यार्य्यावर्तः"। यहां पर आर्य्य लोग पुनः पुनः उत्पन्न होते हैं। अतः इस का नाम आर्य्यावर्त है। इस आर्य्यावर्त में रहने वाले को 'आर्य्यावर्तनिवासी' कहते हैं। यथा:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निषादो मार्गवं सूते दासं नौकर्म्मजीविनम् ।
कैवर्त्तमिति यं प्राहुरार्य्यावर्त-निवासिनः ॥ १० । ३४ ॥

शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से उत्पन्न निषाद कहलाता है । वह निषाद अयोगवी स्त्री में 'दास' नामक नौका-कर्म्म-जीवी को उत्पन्न करता है । जिस को आर्य्यावर्त-निवासी 'कैवर्त्त' कहते हैं । कैवर्त्त=मल्लाह=मत्स्यघाती ॥

वाचस्पत्य कोश में 'आर्य्य शब्द' के ऊपर लिखा है कि स्वामी, गुरु, सुहृद, श्रेष्ठकुलोत्पन्न, पूज्य, श्रेष्ठ आदि अनेक अर्थ में आर्य्य शब्द आता है। 'ऋ' धातु से ण्यत् प्रत्यय होने पर इस की सिद्धि होती है । "कर्तव्यमाचरन् कार्य्यमकर्तव्यमनाचरन् । तिष्ठति प्रकृताचारे स वा आर्य्य इति स्मृतः" कर्तव्य कार्य्य को करता हुआ अकर्तव्य को न करता हुआ अपने प्रकृताचार में सदा स्थित पुरुष आर्य्य कहाता है ॥

'वृत्तेन हि भवत्यार्य्यो न धनेन न विद्यया' ।

उत्तम सदाचार से पुरुष 'आर्य्य' होता है । धन वा विद्या से नहीं ।

शाकुन्तल, उत्तर रामचरित, वेणीसंहार आदि नाटकों में आर्य्य शब्द के बहुत प्रयोग रहते हैं । नाटकों के लिये अनेक नियम बने हुए हैं कि 'आर्य्य' शब्द के प्रयोग कैसे करने चाहिये । इस के दो एक नियम ये हैं:—

राजन्नित्यृषिभिर्वाच्यः सोऽपत्यप्रत्ययेन च ।
स्वेच्छया नामभिर्विप्रैर्विप्र आर्य्येति चेतरैः ।
वाच्यौ नटीसूत्रधारौ आर्य्यनाम्ना परस्परम् ।
वयस्येत्युत्तमैर्वाच्यो मध्यैरार्येति चाग्रजः । इत्यादि

ये सब साहित्य दर्पण के वचन हैं । राजा को हे राजन् ! हे राजन्य, हे महाराज इत्यादि शब्दों से ऋषि सम्बोधित करें । विप्र स्वच्छन्दतया विप्र को किसी नाम से पुकारें । अन्य मनुष्य ब्राह्मण को हे 'आर्य्य' यह कह कर पुकारें । नटी और सूत्रधार परस्पर 'आर्य्य' शब्द व्यवहार करें । इसी प्रकार अमात्य को भी 'आर्य्य' कह कर पुकारते हैं । निज पत्नी सदा अपने स्वामी को 'आर्य्य' वा आर्य्यपुत्र कहती है । इत्यादि अनेक नियम हैं ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक छन्द का भी नाम 'आर्य्या' है। आर्य्या छन्द में अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। प्रायः कारिकाएं आर्य्या छन्द में ही ग्रन्थकारों ने लिखी हैं। सांख्य कारिका आर्य्या छन्द में है। सिद्धान्तमुक्तावली भी इसी छन्द में है। इस का लक्षण यह है :—

यस्याः पादे प्रथमे द्वादश मात्रास्तथातृतीयेऽपि।
अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्य्या॥

जिस के प्रथम और तृतीय पाद में १२ मात्राएं और द्वितीय में १८ और चतुर्थ में १५ मात्राएं हों उसे 'आर्य्या' वृत्ति (छन्द) कहते हैं। 'आर्य्यागीति' भी एक वृत्ति का नाम है। इत्यादि छन्दः-शास्त्र देखिये।

तेषां पुरस्ताद्भवन्त्यार्य्यावर्त्ते नृपा नृप॥ भागवत ९।६।५॥

उन में से कुछ आर्य्यावर्त के पूर्व में राजा हुए।

आर्य्यां द्वैपायिनीं दृष्ट्वा शूर्पारकमगाद्बलः॥ भा० १०।७९।२०॥

आर्य्या द्वैपायिनी को देख बलराम जी शूर्पारक देश को चले।

आर्य्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः॥ वाल्मीकि १।१६॥

यहां रामचन्द्र के लिये आर्य्य शब्द आया है॥

अनार्य्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन॥ गीता॥
महाकुल कुलीनाऽऽर्य्य सभ्यसज्जनसाधवः॥ अमर॥
महीतुमार्य्यान् परिचर्य्ययामुहुः॥ माघ॥
आर्य्यो ब्राह्मणकुमारयोः॥ पाणिनि सूत्र॥
आर्य्यव्रतश्च पांचाल्यो न स राजा धनप्रियः॥ महाभारत॥
आर्य्य ईश्वरपुत्रः॥ निरुक्त ९।२९॥

अनेक प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं आप स्वयं विद्वान् हैं। अनेक ग्रन्थ देखे हैं। इस हेतु इस शब्द के ऊपर अधिक विचार न करके अन्य विषय की मीमांसा करें। इसके पहले यह मैं आवश्यक समझता हूं कि ऋग्वेद में आर्य्य

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शब्द का पाठ कहां २ आया है उस को सुना दूं पहले भी आप लोगों से कह चुका हूं। ऋग्वेद में आर्य्य शब्द इस प्रकार आया है :—

क्रमशः मण्डल, सूक्त और मन्त्र की संख्या दी गई है ॥

आर्य्यः=	६-३४-६	आर्य्या=	६-६०-६
	८-५१-९		९-६३-१४
	१०-३८-३		१०-६५-११
	१-१३८-३		१०-६९-६
आर्यम्=	१-१०३-३	आर्य्याः	७-३३-७
	१-१३०-८		१०-११-४
	१-१५६-५	आर्याणि=	६-२२-१०
	३-३४-९		७-८३-१
	९-६३-५	आर्य्यात्=	८-२४-२७
	१०-४३-४	आर्य्यान्=	१-५१-८
	१०-४९-३	आर्य्याय=	१-५९-२
	१०-८३-१		१-११७-२१
	१०-८६-१९		२-११-१८
आर्य्यस्य=	७-१८-७		५-२६-२
	८-१०३-१		६-१८-३
	१०-१०२-१		६-२५-२
आर्य्या=	४-३०-१९		७-५-६
	६-३३-३	आर्य्येण=	२-११-१९

प्रथम प्रश्न का समाधान ॥

आप के प्रथम प्रश्न का बहुत कुछ उत्तर होगया है। अब शेष सुनिये! पूर्वोक्त कथन से आप को अच्छे प्रकार विदित हो गया है कि आर्य्य और 'दस्यु' यथार्थ में दो जातियां नहीं। आप ने यह कहा था कि आर्य्यों का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन पर बड़ा क्रोध था। इन की स्त्री का भी वध करना पाप नहीं समझते थे और ये लोग बड़े धनाढ्य थे अतः ये सभ्य थे। इसी के प्रसंग में आपने कतिपय मन्त्र सुनाये थे। इस सब का समाधान अब सुनिये। प्रथम मैं आप लोगों से यह कहना चाहता हूं कि वेदों में कोई इतिहास नहीं। किसी व्यक्ति विशेष का नहीं किन्तु मनुष्य के स्वभाव का वर्णन है। (वेदों में किसी विशेष पुरुष का इतिहास नहीं है इस को अन्य निर्णय में निरूपण करूंगा) अच्छा बुरा होना मनुष्य का स्वभाव है।

अभी आप को विश्वामित्र और उन के पुत्रों की आख्यायिका ऐतरेय ब्राह्मण से सुनाई है। विश्वामित्र के पुत्र जब दस्यु होगए तब क्या सम्भव नहीं है कि वे लोग धनाढ्य हों। इन के निकट प्रत्येक युद्ध की सामग्री हो। विद्वानो! बात यह है कि आर्य्य ही लोग अवैदिक होने के कारण 'दस्यु' वा अनार्य्य बन गये। इस कारण वे धन्याढ्य एवं दुर्गप्रभृति आयोजनाओं से युक्त थे इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। मनुष्यों का ऐसा स्वभाव होता है कि वह नास्तिक क्रूर दुष्टाचारी बन जाता है॥ इसी स्वभाव को लक्ष्य करके वेदों में सब कुछ वर्णन हैं। वेदों में जो दस्यु वा आर्यों की संख्या का वर्णन है उसका भाव केवल यह है कि मनुष्य प्रायः हिसाब के साथ सबकार्य करता है। जब एक बलिष्ठ पुरुष अपने शत्रु के अनेक दुर्ग सैन्य अश्वादि देखता है तो उससे मुकाबिला करने के लिये अपनी आयोजना को भी उसी के अनुसार बढ़ाता घटाता है। कोई १०००) कोई १००००) कोई १०००००) सेना रखना आरम्भ करता है उसका शत्रु भी उसी प्रकार अपनी आयोजना तयार करता है। इसी प्रकार प्रत्येक वस्तु में जानिये। अब उन मन्त्रों का अर्थ सुनिये उसके साथ २ उन सबों का भी निरूपण होता जायगा।

शतमश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रोव्यास्यत्।
दिवोदासाय दाशुषे॥ ऋग्वेद ४। ३०। २०॥

दिवु धातु का अर्थ द्यूत (जुआ) खेलना भी होता है। दिवु जो द्यूत-क्रीड़ादि व्यसन उसका दास अर्थात् शत्रु उसे दिवोदास कहते हैं। द्यूतक्रीडा (जुआ खेल)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का निषेध वेदमें बहुत आया है। और इसका परिणाम बड़ा भयंकर दिखलाया गया है। ऋ० १०। ३४ सूक्त देखिये। अथवा दिव्=प्रकाश। अदास=अशत्रु 'दिवोऽदास' में दिवः+अदास भी पदच्छेद होता है। शुभ कर्म्म और ज्ञानादि प्रकाश का शत्रु नहीं किन्तु इन सबों का बढ़ाने वाला = अशत्रु। ऐसे पुरुष को 'दिवोदास' कहेंगे। अथवा। दिवः प्रकाशस्य दा दाता इति दिवोदाः परमेश्वरः। दिवोदां परमेश्वरं सनुते भजतेयः स दिवादासः) दिव् जो प्रकाश उसे जो देवे वह दिवोदा अर्थात् परमेश्वर उसको जो भजे वह दिवोदास इत्यादि इस के अनेक अर्थ होंगे। दास का दाता भी अर्थ होता है। परन्तु वैदिक समय में यह अर्थ प्रायः नहीं था।

(इंद्रः) राजा (अश्मन्मयीनाम् पुराम्+शतम्) दुष्ट दस्युओं की पाषाण निर्मित सैकड़ों नगरों को (वि+आस्यत्) तोड़ कर फेंक देवें। ऐसा क्यों करें इस पर कहते हैं (दाशुषे) दाश्वान् अर्थात् विविध सुख देने वाले (दिवोदासाय) और द्यूतादि दुर्व्यसन के निवारण करने वाले पुरुष के हित के लिये। जब तक दुष्ट रहते हैं तब तक जगत् में सुख नहीं पहुंच सकता है और न ज्ञानादि का प्रकाश हो सकता है।

यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि केवल बलिष्ठ वा दुर्गादि सामग्री सम्पन्न होने से ही पुरुष सभ्य नहीं कहाता। पूर्व समय का इतिहास सूचित करता है बड़े बड़े उपद्रवी हुए हैं। किसी किसी मनुष्य का यह संकल्प था कि मैं अपने वश में सम्पूर्ण पृथिवी को करलूं। ऐसे २ पुरुष से बड़ा बड़ा अनाचार और अकथनीय घोर पाप हुआ। लाखों देव मन्दिर तोड़े गये। लाखों सतीत्व नष्ट किये। लाखों सभ्य विद्वान् निरपराध मारे गये हैं। अतः केवल धनादि सम्पत्ति से आर्य्य नहीं कहा था।

"राक्षस किसको कहते हैं"

अब आपने जो स्त्री वध की चर्चा की थी उसका समाधान सुनिये।

इन्द्र जहि पुमांसं यातुधान मुत स्त्रियं मायया शाशदानम्।
विग्रीवासोमूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन् सूर्य्यमुच्चरन्तम्। ७।१०४।२४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जहि=हनन करो । यातुधान=राक्षस । शासदाना=हिंसा करने वाली । विग्रीव=ग्रीवा रहित । मूरदेव=मूर+देव मूर=मारण, हिंसा । देव=क्रीडक । हिंसा को ही जो क्रीडा मानता है ।

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! आप (पुमांसम्+यातुधानम्) पुरुष राक्षस को (उत+मायया+शासदानाम्) और छल कपट से हिंसा करने वाली (स्त्रियम्) स्त्री राक्षसी को भी (जहि) हनन करो (मूरदेवाः) हिंसा प्रिय राक्षस (वि-ग्रीवासः+ऋदन्तु) ग्रीवा रहित होकर नष्ट भ्रष्ट होजांय । हे इन्द्र ! (ते) वे दुष्ट राक्षस (उच्चरन्तम्+सूर्यम्) उदित सूर्य को (मा+दृशन्) मत देखें ।

यहां पर स्त्री पुरुष दोनों प्रकार के राक्षसों के वध करने की आज्ञा पाई जाती है । राक्षस कौन हैं; । इसका पता इसी सूक्त से लगता है । दस्यु के बड़े भाई राक्षस हैं । जो लोग सदा रात्रि में मारना पीटना लूटना आदि कर्म करते हैं । जो कभी२ मनुष्य के मांस भी खाते हैं । जो सदा हिंसा करना ही परमधर्म समझते हैं वे राक्षस हैं । मनुष्यों के निवासस्थान पर आक्रमण करते हैं अतः ये 'यातुधान' कहाते हैं (यातु=आक्रमण करना । धान = धानी जैसे राजधानी) धान वा धानी शब्द एकार्थक है । कच्चे मांस तक खाजाते हैं अतएव इन को क्रव्याद (क्रव्य=मांस । आद=भक्षक) कहते हैं । गदहे के समान चिल्लाते हैं अतः 'राक्षस' अथवा जिनसे अपनी रक्षा की जाय । इनके नामों से ही पता लगता है कि घृणित कर्म करने वाले को राक्षस पिसाच, आदि कहा करते हैं अब यहां कतिपय मन्त्र इस विषय में प्रथम सुनिये ।

प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमपद्रुहा तन्वं गूहमाना । वव्राँ अनन्ताँ अवसा पदीष्ट ग्रावाणो घनन्तु रक्षस उपब्दैः ॥७।१०४।१७॥

प्र=० । या=जो । जिगाति=जाती है । खर्गला=उलूकी=उल्लूपक्षी नक्त=रात्रि । तनू=शरीर, । वव्र=गर्त, खड्डा, खाई, । अनन्त=बहुत । पदीष्ट=गिरे । ग्रावा=पत्थर । उपब्द=उपशब्द=चिल्लाहट ।

[या] जो राक्षसी [नक्तम्] रात्रि में [द्रुहा] द्रोह से युक्त हो [खर्गला+इव] उलूकी के समान [तन्वम्+अप+गूहमाना] शरीर को छिपाती

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुई [प्र+जिगाति] हिंसा करने के लिये निकलती है [सा] वह राक्षसी [अनन्तान्+बबान्] अनन्त खण्डकों में [अव+पदीष्ट] अधोमुख होकर गिरे और [रक्षसः] राक्षसों को [अपव्दैः] चिल्लाहटों के साथ [ग्रावाणः+घ्नन्तु] पत्थर हनन करें ॥

वितिष्ठध्वं मरुतो विक्षिवच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन। वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥ ७। १०४। १७ ॥

मरुत्=बलवान् पुरुष। विट्=प्रजा। वि=पक्षी। रिप्=हिंसा ॥

[मरुतः] हे वायु समान बलवान् रक्षक पुरुषो ! आप लोग [विक्षु] प्रजाओं में [वि तिष्ठध्वम्] विविध प्रकार से रक्षार्थ स्थित होवें। तदनन्तर [इच्छत] दुष्टों के संहार के लिये इच्छा करें [रक्षसः+गृभायत] राक्षसों को पकड़ें। और पकड़ कर [संपिनष्टन] चूर्ण चूर्ण कर देवें [ये] जो [वयः+भूत्वी] उलूक पक्षी के समान होकर [नक्ताभिः] रात्रि में [पतयन्ति] इधर उधर हिंसा के लिये गिरते हैं [ये+वा] और जो [देवे+अध्वरे] प्रदीप्त यज्ञ में [रिपः+दधिरे] हिंसा किया करते हैं।

यहां विस्पष्ट कहा गया है कि यज्ञ के विध्वंसकारी और रात्रि में आक्रमण करने वाले को राक्षस कहते हैं। अब आप विचार सकते हैं कि ऐसे नर नारी का वध क्यों कहा गया है।

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्याविवासताम्। अभीदु शक्रः परशुर्यथावनं पात्रेव भिन्दन् सत एति रक्षसः ॥ ७। १०४। २१ ॥

यातु=हिंसक। पराशर=पराशातयिता, हिंसक। आविवासत्=आता हुआ। परशु=एक प्रकार का शस्त्र, फरसा, (जो शस्त्र परशुराम जी का था)।

(इन्द्रः) परमैश्वर्यशाली राजा (यातूनाम्) उन हिंसक यातुधान राक्षसों का (पराशरः+अभवत्) भी हिंसक है। जो राक्षस (हविः+मथीनाम्) यज्ञों के नाश करने वाले हैं और (अभि+आविवासताम्) सदा आगमने

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सामने आक्रमण करने वाले हैं उन का भी नाश करने वाला राजा ही होता है (परशुः+यथा+वनम्) जैसे वन को परशु-शस्त्र काटता है (पात्रा+इव) और जैसे मिट्टी के पात्रों को मुद्गर चूर्ण करता है तद्वत् (शक्रः) समर्थ वीर पुरुष (सतः+रक्षसः) प्राप्त = आगत राक्षसों को (भिन्दन्) छिन्न भिन्न करता हुआ (अभि+इत्+उ+एति) चारों ओर जाता है । सत् = प्राप्त, । तिर और सत् ये दोनों प्राप्त के नाम हैं । निरुक्त ३ । २० ॥

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥७।१०४।२२॥

उलूकयातु = उलूक के समान गमन करने वाला । शुशुलूकयातु = शुशु = शिशु = बालक । छोटे बच्चे उलूकवत् गन्ता । श्वयातु=कुक्कुरवत् गन्ता कोक = चक्रवाक चकवा । सुपर्ण = श्येन, बाजपक्षी । गृध्र = गीध । दृषत् = पाषाण ।

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! उलूक, छोटे उलूक, कुत्ते, चकवा, बाज और गीध के समान आक्रमण करने वाले जो (रक्षः) राक्षस हैं उन्हें पाषाण से (प्र+मृण) हनन करो ।

इतने वर्णन से आप लोगों को अच्छे प्रकार विदित होगया होगा कि राक्षस वा राक्षसी कौन है । और क्यों इन के वध के लिये आज्ञा है । निःसन्देह महादुष्ट पुरुष को 'राक्षस' कहते हैं । अपने कर्म्म से ही मनुष्य राक्षस बनजाता है। लङ्काधिपति रावण यद्यपि ऋषिकुल का था । कुबेर उसके भ्राता थे । विभीषण समान जिस का भाई था । वह राक्षस कह लाता था । वह हम ही लोगों के समान पुरुष था ; उसके बीस हाथ दश मुखादि का वर्णन केवल निन्दा सूचक है । यथार्थ में दो हाथ और एक ही मुख था । दुष्टता के कारण उस के भयङ्कर रूप का वर्णन किया गया है । परन्तु वह आर्य्य का ही सन्तान था । अपने घृणित कर्म से राक्षस बन गया था । ऐसा भयङ्कर जगत-विनाशक पुरुष वा स्त्री हों । सब को दण्ड देना चाहिये । इसी कारण श्रीरामचन्द्रने शूर्पनखा को दण्ड दिया । इसी सूक्त में दो मन्त्र और हैं जो हमें बतलाते हैं कि कभी भी राक्षस-कर्म्म नहीं करना चाहिये । प्रत्युत इस नाम से भी बड़ी घृणा रखनी चाहिये । यथाः-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदिवाऽऽयु स्ततप पूरुषस्य। अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥ ७। १०४। १५ ॥

(अद्य) आज (मुरीय) मैं मरजाऊं (यदि+यातुधानः+अस्मि) यदि मैं राक्षस हूं। (यदि+वा) और यदि मैं (पूरुषस्य+आयुः) किसी पुरुषकी आयु को (ततप) नष्ट करता हूं। यदि मैं ऐसा हूं तो हे भगवन्! मैं आज ही मरजाऊं। परन्तु यदि मैं ऐसा नहीं हूं तो (यः) जो (मा) मुझ को (मोघम्) व्यर्थ ही (यातुधान+इति+आह) यातुधान = राक्षस कहता है (सः) वह मिथ्या-भाषी (अधा) तब (दशभिः+वीरैः) दशवीर अर्थात् अपने सब बन्धु बान्धवों के साथ (वि+यूयाः) वियुक्त होवे।

यो माऽयातुं यातुधानेत्याह योवा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह। इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तो रधमस्पदीष्ट ॥ ७। १०४। १६

(यः) जो (अयातुम्+मा) अराक्षस मुझ को (यातुधान+इति+आह) यातुधान = राक्षस कहता है (यः+वा) और जो (रक्षाः) राक्षस होने पर भी (शुचिः अस्मि+इति+आह) मैं पवित्र हूं ऐसा कहता है। (तस्य) उस दोनों प्रकार के मनुष्य को (महता+वधेन) महान् वध के साथ (इद्रः) राजा वा परमेश्वर (हन्तु) हनन करे। और (विश्वस्य+जन्तोः+अधमः) समस्त प्राणी में अधम वह पुरुष (पदीष्ट) पतित होवे। अब आप लोगों ने जो कहा था कि दस्यु के ऊपर आर्य्यों का इतना क्रोध था कि उसकी स्त्री का भी वध किया करते थे। उसका उत्तर आप लोगों को मिला। ऐसी दुष्टा रात्रि में छोटे छोटे बच्चों को भी मारकर खाने वाली स्त्री को क्यों नहीं दण्ड होवे। अब आप लोग स्वयं इस पर विचार करें।

'नास्तिक वाचक कीकट और प्रमगन्द शब्द'

अब आपने प्रमगन्दका इतिहास जो सुनाया था उसका समाधान सुनिये।

किन्ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुहे न तपन्ति घर्म्मम्।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः ॥ ऋ० ३ । ५३ । १४ ।

यह भी दस्युओं का वर्णन है। प्रथम 'कीकट' और 'प्रमगन्द' इन दो शब्दों के ऊपर यास्क और सायण का जो अर्थ है वह दिखलाते हैं ॥

कीकटाः किंकृताः किं क्रियाभिरिति प्रेप्सावान् । मगन्दः कुसीदी मांगदो मा मा गमिष्यतीति च ददाति । तदपत्यं प्रमगन्दो ऽत्यन्तकुसीदिकुलीनः । प्रमदको वा योऽयमेवास्ति लोको न पर इति प्रेप्सुः ॥

इसी की टीका सायण करते हैं यथाः—

कृताभिर्यागदानहोमलक्षणाभिः क्रियाभिः किं फलिष्यतीति अश्रद्दधानाः प्रत्युत पिबत खादतायमेव लोकोन पर इति वन्दन्तो नास्तिका कीकटाः इति । द्वैगुण्यादिलक्षणपरिमाणं गतोऽर्थो-मामेवा गमिष्यतीति बुद्ध्या परेषां ददातीति गमन्दो वार्धुषिकः। तस्यापत्यं पुत्रादिः प्रमगन्दः ॥

अर्थात् याग, दान, होमादिक्रिया से क्या फलेगा। खूब खाओं पीवो। यही लोक है परलोक कोई नहीं। ऐसे कहने वाले अविश्वासी नास्तिकों को 'कीकट' कहते हैं। और जो अत्यन्त सूदखोर है उसे प्रमगन्द कहते हैं। यही दोनों का भाव है। यास्काचार्य्य 'प्रमगन्द' का पक्षान्तर में भी नास्तिक अर्थकरते हैं। अब सम्पूर्ण मन्त्र का यह अर्थ हैः—

हे (मघवन्) अन्नादिकों से प्रजाओं के पोषक भगवन्! (कीकटेषु) नास्तिक मनुष्यों में (ते+गावः) तेरी गाएं (किम्+कृण्वन्ति) क्या करती हैं (न+आशिरम्+दुहे) न तो यज्ञार्थ आशिर अर्थात् दूध देती (न+घर्म्मम्+तपन्ति) और न आज्यादि पदार्थ को तपाती है। अर्थात् हे भगवन्! नास्तिक जगदु द्रोहकारी पुरुष को आपने धन किस लिये दिया है। (नः+आभर) वह धन हम लोगों को दो। पुनः (प्रमगन्दस्य) अत्यन्त सूद लेने वाले वा नास्तिक के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(नैचशाखम्) नीचशाखा से प्राप्त अर्थात् नीचकर्म्म से प्राप्त (वेदः) धन (नः+) हमारे लिये (रन्धय) सिद्ध करो ॥

इस के अतिरिक्त ' वधीर्हिदस्युं ' और 'अस्वापयत्' इन दोनों मन्त्रों का अर्थ पीछे कह चुके हैं ॥ अब आप विचार करें कि इस "किंते कृण्वन्ति" मन्त्र से जो अपने आर्य और दस्यु का इतिहास निकाला था और 'ऋमगन्द' एक व्यक्ति विशेष का नाम रक्खा था वह यास्कादि के प्रमाण से सिद्ध नहीं होता है। इन सब प्रमाणोंसे यही सिद्ध होताहै कि आर्य्य और दस्यु दो भिन्न २ जातियां नहीं। जो आजकल नास्तिक 'अस्ति नास्ति दृष्टं मतिः। पाणिनि सू० ४–४–६१' शब्द का अर्थ है ठीक वही अर्थ कीकट शब्द का है। अतः नास्तिकों का संहार विधि वेद में कहा है।

रावणादिकों का इतिहास इस विषय में हमें क्या सूचित करता है ?

मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, पुराणादिकों में कहा गया है कि 'पुलस्त्य' सप्तर्षियों में से एक थे आज कल भी तर्पणीय ऋषियों में पुलस्त्य नाम आता है इसी पुलस्त्य के पुत्र वैश्रवा और वैश्रवा के पुत्र कुबेर, रावण, कुम्भकरण और विभीषण और शूर्पनखा नाम की एक कन्या। इस प्रकार रावण भी आर्य्य ही था। इसी प्रकार कंस क्षत्रिय कुलोद्भव था। दैत्य दानव भी कश्यप के सन्तान थे। इन सब कथाओं का तात्पर्य यही है कि आर्य्यसन्तान में से ही अनार्य्य वा दस्यु वा राक्षस वा दैत्यदानव वा असुर वा अन्यान्य जातियां निकली हैं। इस हेतु इनका धनाढ्य होना आश्चर्यजनक नहीं हैं। और जो कृष्णवर्ण, श्वेतवर्ण, दासवर्ण वा आर्य्य वर्ण आदि शब्द आते हैं वे केवल निन्दा और प्रशंसा सूचक हैं। रावण यद्यपि आर्य्यवंश और गौराङ्ग था तथापि पापी होने के कारण ' कृष्ण वर्ण ' कहा जाता है। अतः कृष्णादिवर्ण पद से भी कुछ निर्णय नहीं कर सक्ते। यदि कहो कि अभी तक भारत वर्ष में कोल भील संथाल किरात प्रभृति वे ही अतिप्राचीन मनुष्य अत्यन्त कृष्णवर्ण पाये जाते हैं और अभी तक काश्मीर प्रभृति देश में आर्य बड़े गौराङ्ग, बीच देश के भी द्विज

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गौर वर्ण ही विद्यमान हैं। उन्हीं गौर कृष्ण दोनों के विषय में वेद कहता हो। तो यह कहना भी उचित नहीं। क्योंकि क्या कृष्ण-वर्ण आर्य नहीं होते हैं। काले आदमी को क्या ईश्वर ने नहीं उत्पन्न किया है। केवल वर्ण के ऊपर आर्यत्व निर्भर नहीं है। क्या विश्वामित्र के पुत्र कृष्ण थे जो 'दस्यु' होगये। वेद के कृष्णवर्ण वा दासवर्ण वा आर्य वर्ण आदि शब्द से कोई लौकिक इतिहास नहीं निकाल सकते। उष्ण प्रधान देश में चिरकाल निवास से मनुष्य का रँग कृष्ण होजाता है। इस देश में रहते रहते आर्य भी काले होगये। अथवा सृष्टि की आदि में अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए। काले गोरे सब रँग हुए। इससे क्या सिद्ध होता है। क्या काले वर्ण को ईश्वर ने ज्ञान नहीं दिया। यदि कहो कि काले वर्ण कोल भील अभी तक अज्ञानी हैं तो क्या गौरवर्ण उत्तर और दक्षिण भाग में महा अज्ञानी विद्यमान नहीं हैं। आज भी हिमालय के पार्श्व में बड़े बड़े अज्ञानी गौराङ्ग जङ्गली आदमी हैं। अंग्रेज़ का इतिहास कहता है कि करीब दो तीन सहस्र वर्ष पहिले ये भी महा अज्ञानी और जङ्गली थे। इससे सिद्ध होता है कि गौर, कृष्ण, दोनों आस्तिक नास्तिक हो सकते हैं। वेद में केवल अवैदिक को दस्यु वा दास वा राक्षस वा पिशाच आदि कहा है। इति

"जाति शब्द पर विचार"

प्रश्न—जाति किस को कहते हैं?

उत्तर—समानप्रसवात्मिका जातिः ॥ न्याय सू० ॥

हम अपने चारों तरफ विविध पदार्थों को देखतेहैं। जल में विविध मत्स्य, मकर, कूर्म, मण्डूक, शुक्ति, शङ्ख आदि जल जन्तु। स्थलभाग में विविध तृण, लता, ओषधि, वृक्षादि स्थावर। सरीसृप=ससर कर चलने वाले सर्प आदि, पिपीलिका=चींटी आदि। तथा बन में रहने वाले सिंह, व्याघ्र, शृगाल, शशक, हरिण आदि अरण्यपशु। ग्राम में मनुष्यों के साथ रहने वाले गौ, महिष, बकरे, भेड़, हय, गज, ऊंट, गदहे, कुत्ते, आदि। आकाश और पृथिवी दोनों पर विचरण करने वाले विविध मक्षिकाएं, दंशक, शुक, पिक, काक, गृध्र, चिल्ल, पारावत, बक आदि। इत्यादि अनेक पदार्थों से यह हमारी पृथिवी भूषित और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परम सुशोभित है। इन सबों के रंग, रूप, आकृति, वेष. स्वभाव आदि परस्पर बहुत भिन्न २ हैं। इन सब पदार्थों को हमारे ऋषियों ने प्रथम उत्पत्तिके अनुसार चार हिस्सों में विभक्त किया है। उद्भिज्ज—जो पृथिवी को फोड़ कर निकते हैं जैसे तृण, लता और वृक्ष आदि। द्वितीय—अण्डज, जो अण्डे से उत्पन्न होते हैं जैसे जलचर मत्स्य और विहग आदि। तृतीय—पिण्डज. जो माता के उदर में कुछ काल निवास कर जन्म लेते हैं जैसे पशु और मनुष्य। चतुर्थ—ऊष्मज=ऊष्मा=शीतोष्णता के योग से जो उत्पन्न होते हैं जैसे यूक, मत्कुण आदि।

सामान्य जाति ॥

अब आप किसी एक स्थान में सब पशुओं को इकट्ठे कर देखें। जब व्याघ्र शृगाल, गौ, भैंस, ऊंट, हाथी इन सबों को देखेंगे तो प्रथम सब में एकसमानता प्रतीत होगी। सबों के चार पैर देख कर कहेंगे कि ये "चतुष्पद" हैं चतुष्पदत्व सब में समान है। पुनः द्वितीय वार देखेंगे तो परस्पर भेद प्रतीत होने लगेगा। हाथी के समान ऊंट नहीं। ऊंट के समान घोड़े नहीं। घोड़े के समान गौ नहीं, इस प्रकार सब में भेद पावेंगे। पुनः तृतीय वार देखेंगे तो गायों में भी एक दूसरे से आकृतिएं भिन्न २ हैं ऐसा प्रतीत होगा। इसी प्रकार पक्षियों, जलचरों और वृक्षों में भी समानता और भिन्नता प्रतीत होगी। अब आप विचारें कि यद्यपि सब पशु चतुष्पद हैं तथापि आकृति और स्वभाव में एक एक झुण्ड परस्पर भिन्न २ हैं। जिन की एकसी आकृति अर्थात् स्वरूप है वे सब 'एक समान' कहलावेंगे। जैसे जितने हाथी हैं वे एक-समान हैं। जितने ऊंट हैं वे एक-समान हैं। इसी प्रकार अन्यान्य पशु। हाथी का झुण्ड ऊंट के झुण्ड से और ऊंट का झुण्ड हाथी के झुण्ड से भिन्न प्रकार प्रत्यक्ष प्रतीत होगा। एक बालक भी कह सकता है कि हाथी से ऊंट भिन्न प्रकार का है।

एक एक समुदाय में इस समानता के दर्शाने वाला जो पदार्थगत धर्म है अथवा स्वरूप अथवा आकृतिगत धर्म वा गुण है इसी का नाम लोगों ने 'जाति' रक्खा है। आप जब हाथियों का एक झुण्ड देखते हैं तो एकसमानता प्रतीत होती है। कोई आप से पूछे कि यह समानता कैसे वा किस ज़रिये से प्रतीत

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होती है तो आप कहेंगे कि इन की आकृति अर्थात् शरीर की बनावट सब की एकसी है इसी से प्रतीत होता है कि यह सब समान है । इसी का नाम समानता अर्थात् 'सामान्य जाति' है । अब आप ध्यान से देखेंगे तो एक हाथी दूसरे से भिन्न प्रतीत होगा । जो भेड़ चराने वाला होता है वह अपनी सब भेड़ों को पृथक् २ पहचान लेता है । क्योंकि हर एक में यत्किञ्चित् अवयव का भेद है । इस का नाम 'व्यक्तिगत भेद' है । अब आप हाथी और ऊंट का एक एक झुण्ड देखें तो इन दोनों में बहुत भेद प्रतीत होगा । और आप कहेंगे कि इस झुण्ड से वह झुण्ड विलक्षण है । इसी का नाम परस्पर जातिगत भेद है । इस प्रकार परस्पर जातिभेद और परस्पर व्यक्तिभेद सर्वत्र विद्यमान है। इस प्रकार पशु, पक्षी और मत्स्य आदि जितने प्राणी हैं और तृण, लता ओषधि वीरुध और वृक्ष आदि जितने स्थावर हैं इन में से कोई छोटे से छोटा उदाहरण लेलीजिये एक जाति से दूसरी जाति पृथक् प्रतीत होगी । गृह में रहने वाली मक्खी और मच्छर देखिये । देखते ही मालूम हो जाता है कि ये दोनों दो प्रकार की जातियां हैं । आम्र और गूलर के वृक्ष के दर्शन मात्र से भिन्न भिन्न २ जातियां प्रतीत होने लगती हैं। इस के अतिरिक्त भिन्न भिन्न जाति के पहचानने की एक यह भी कसौटी है कि आप को केवल एक हाथी वा एक गौ वा एक आम्रफल दिखला दिया गया और कहा गया कि यह हाथी है । अब आप के निकट जितने हाथी लाए जायंगे झट आप कह देंगे कि यह हाथी है । यह घोड़ा है, यह आम्र है । इत्यादि । अर्थात् एक के देखने से उस सब समुदाय का बोध हो जाता है । इस कारण गोजाति, अश्वजाति, गर्दभजाति, आम्रजाति, पिप्पल जाति इत्यादि भिन्न भिन्न जातियां हैं । इसी प्रकार मनुष्य भी एक जाति है ,

'मनुष्य एकजाति है' ॥

जैसे पशु पक्षी वृक्ष आदि में अनेक जातियां हैं और यह प्रत्यक्ष प्रतीत होता है जैसा कि मैंने अभी कहा है वैसे मनुष्यों में अनेक जातियां नहीं हैं । अब इस की परीक्षा कीजिये ।

अब अपनी जाति की ओर आइये । किसी एक देश के बहुत से ब्राह्मण,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों को इकट्ठे कीजिये और इन के कृत्रिम वेष को पृथक् कर के खड़ा कीजिये। क्या प्रतीत होता है। सब में एक समानता ही प्रतीत होगी। यह ब्राह्मण है यह क्षत्रिय है ऐसा बोध देखने से कदापि प्रतीत नहीं होगा क्योंकि आकृति सब की समान है। इस हेतु यह सब ही एक मनुष्य जाति है। पशु आदिवत् भिन्न २ नहीं॥ अब दूसरी तरह से भी परीक्षा कीजिये। आप के सामने कृत्रिम-वेष-रहित एक ब्राह्मण को लाकर कहा गया कि यह ब्राह्मण है। अब दूसरा ब्राह्मण आपके समीप लाया गया। बिना पूछे हुए क्या आप कह सकते हैं कि यह भी ब्राह्मण है। कदापि नहीं। परन्तु पशुओं में जब एक हाथी को देख लेता है तो फिर दूसरे हाथी को देख कर पूछना नहीं पडता है कि यह कौनसा पशु है। देखते ही कह देता है कि यह हाथी है। परन्तु मनुष्यों में ऐसा नहींहै। इस हेतु मनुष्यों में ब्राह्मणादि भिन्न२ जाति नहीं। लोक में भी देखा जाता है कि जब कहीं मनुष्य दो चार इकट्ठे हुए तो पूछते हैं कि आप किस वर्ण के हैं। बतलाने पर मालूम होता है कि यह अमुक वर्ण का है।

हाथी और ऊंट अथवा गौ और घोड़े में जैसा परस्पर जातिगत भेद है। क्या वैसा ही भेद ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों में देखते हैं। कदापि नहीं। वैसा भेद इन चारों में नहीं। ये चारों एक समान ही देख पड़ते हैं। इस कारण पशु पक्षी आदि के समान इन चारों में परस्पर जातिगत भेद नहीं है ऐसा अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। अतः मनुष्य एकजाति है इस में सन्देह नहीं। यदि आप कहें कि यद्यपि हम लोगो को इन में भेद नहीं प्रतीत होता है परन्तु जो योगी हैं उन्हे इस सूक्ष्म भेद का पता लगता होगा। तो यह कहना ठीक नहीं। जिस में भेद है ही नहीं उस की प्रतीति क्या होगी। गदहे की सींग की प्रतीति किसी को नहीं हो सकती। जाति भेद के पहिचान के लिये अन्यान्य भी कारण हैं उन पर ध्यान दीजिये यथा।

जाति भेद पहिचान के अन्यान्य कारण।

१—जो यथार्थ में भिन्न जातियां हैं वे परस्पर एक दूसरे के कार्य को नकल नहीं कर सकती जैसे मकड़ी जैसा जाला बनाती है। वैसा अन्यान्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कीट नहीं बना सकता। मधुमक्षिका के समान अन्यान्य मक्षिका मधु नहीं बना सकती। घोड़े की चाल और उसकी हिनहिनाहट का नकल गौ नहीं कर सकती। इत्यादि। परन्तु बाल्यावस्था से यदि एक शूद्रबालक अच्छे प्रकार शिक्षित हो तो ब्राह्मण के समान पूजा पाठ कर और करवा सकता है। आज कल भी बहुत से शूद्र साधु बन ब्राह्मणवत् ही कर्म्म करता है इस कारण मनुष्य में जाति भेद नहीं।

२—जो यथार्थ में भिन्न जातियां हैं वे परस्पर बदल नहीं सकती हैं जैसे लक्षों उपाय करने पर भी सहस्रों विद्वान् मिल कर हाथी को गदहा नहीं बना सकते। परन्तु मनुष्यों में देखा जाता है कि ब्राह्मण शूद्र ही नहीं किन्तु म्लेछ यवन तक बन गये हैं और बनते जातेहैं। इसके अनेक उदाहरण आगे लिखेंगे। अनेक ब्राह्मण मुसल्मान और क्रिस्तान होगये हैं। इस देश में मुसल्मान के राज्यके समय अनेक ब्राह्मण क्षत्रियादि मुसल्मान बनालिये गये आज वे ब्राह्मणों से बड़ी शत्रुता कर रहे हैं। इस हेतु भी मनुष्यों में अनेक विध जाति भेद नहीं।

३—जो सच मुच भिन्न जातियां हैं उनमें परस्पर एक दूसरे से सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती है। हथिनी से घोड़े की वा घोड़ी से हाथीकी न तो प्रीति होगी और न सन्तान उत्पन्न कर सकेंगे इसीप्रकार शुकी से काक प्रीति नहीं करेगा। परन्तु मनुष्यों में शूद्रा से ब्राह्मण और ब्राह्मणी से शूद्र प्रीति करता है और सन्तान भी उत्पन्न करलेता है। महाभारत में कथा बहुत सी हैं। व्यास से दासीशूद्री में विदुर उत्पन्न हुए। सहस्रों क्षत्रियांओं में ब्राह्मण से सन्तान उत्पन्न हुए हैं। और वे सब क्षत्रिय हुए हैं। आगे इनके उदाहरण महाभारत से देवेंगे। मनु जी ने भी कहा है कि ब्राह्मण का विवाह चारों वर्णों में हो सकता है। यदि ये चारों चार जातियों के होते तो ऐसा अनर्थ और विपरीत आज्ञा मन्वादि धर्म्म शास्त्रों में कैसी पाई जाती। अतः मनुष्य एक जाति है।

यदि कहो कि गर्दभ जाति और अश्वजाति ये दोनों भिन्न २ होने पर भी इन दोनों से सन्तान होता है जिस को अश्वतर वा खच्चर कहते हैं॥ ठीक है, परन्तु आप देखते हैं कि इन दोनों के योग से जो सन्तान होता है वह तीसरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकार का हो जाता है। और आगे इसका वंश नहीं चलता है। और जो अश्व-जाति यथार्थ में अश्व नहीं है परन्तु समान प्रतीत होती है उसी से सन्तान होते हैं। परन्तु मनुष्य में ब्राह्मण क्षत्रिय जाति के योग से जो सन्तान होता है वह तीसरे प्रकार का नहीं होता है। और आगे सन्तान भी चलता है अतः यह उदाहरण ठीक नहीं।

४—ईश्वर ने अश्वजाति, गजजाति, गोजाति आदि के प्राणियों को प्रायः सर्वत्र उत्पन्न किया। इसी प्रकार मनुष्य जाति भी सर्वत्र पाई जाती है। परन्तु जैसे गौ, भैंस आदि में सर्वत्र ही जाति-भेद विद्यमान है। वैसे ही योरोप अफ्रिका अमेरिका आदि सर्व द्वीपस्थ मनुष्य में भी आर्यावर्त के समान मनुष्य में जाति-भेद अन्यत्र कहीं नहीं है। अतः मनुष्य में जाति भेद नहीं यह सिद्ध होता है।

५—सब से बढ़ कर हमारा वेद और शास्त्र मनुष्य में एक ही जाति मानता है ब्राह्मणादि भिन्न २ जाति का स्वीकार नहीं करता है। पुराण भी इसी बात को मानता है इस हेतु मनुष्य में जाति-भेद मानना सर्वथा वेद शास्त्र विरुद्ध है। इस हेतु त्याज्य है। इस के उदाहरण आगे देवेंगे। हे विद्वानो! कैसा अन्धकार देश में फैला है कि वेद, शास्त्र और प्रत्यक्ष विरुद्ध विषय को अन्धाधुन्ध सब कोई मान रहे हैं।

६—ब्राह्मण क्षत्रियादि चारों वर्णों के चार लक्षण कहे गये हैं। यदि वे चार भिन्न भिन्न जातियां होतीं तो वैसे लक्षण नहीं कहे जाते। शमदमादि ब्राह्मण के, शौर्य्य तेज आदि क्षत्रिय के, कृषि गोरक्षा आदि वैश्य के, परिचर्य्या आदि शूद्र के लक्षण गीता बतलाती है। इस से सिद्ध है कि जिस में ये शम दम स्वभावतः पाया जाय वह ब्राह्मण। जिस में शूरता वह क्षत्रिय इत्यादि॥ ये गुण किसी खास जाति वा वंश के ऊपर निर्भर नहीं हैं। और इसप्रकार की व्यवस्था द्वीप द्वीपान्तरस्थ सर्व मनुष्य में संचारित हो सकती है। इस कारण से भी मनुष्य में जाति भेद नहीं।

७—यदि आप कहो कि गौर वर्ण ब्राह्मण, रक्तवर्ण क्षत्रिय, पीतवर्ण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वैश्य और कृष्णवर्ण शूद्र होते हैं अतः ये चारों भिन्न जातियां हैं। (१) तो यह भी कहना उचित नहीं क्योंकि क्या ब्राह्मण कृष्णवर्ण नहीं हैं ?। मद्रासी सब ही ब्राह्मण कृष्णवर्ण के हैं। और काश्मीरी सब ही शूद्र श्वेतवर्ण के हैं। इंगलेण्ड आदि शीतप्रधान द्वीप में सब ही श्वेतवर्ण और उष्णप्रधान देश में सबही कृष्णवर्ण के हैं इस हेतु यह लक्षण ठीक नहीं। "श्वेतवर्ण ब्राह्मण का" इसका अर्थ नहीं है कि जो रँग में श्वेत हो वह ब्राह्मण किन्तु जो श्वेत अर्थात् सात्त्विक गुण से युक्त हो वह ब्राह्मण इत्यादि वर्णन आगे देखिये।

८—इत्यादि अनेक कारण जाति भेद के होते हैं। इन चार वर्णों में इस प्रकार का एक भी भेद आप नहीं पावेंगे। फिर योगी को वह भेद कहां से प्रतीत हो सकता। यदि आप कहैं कि जब कर्ण जी परशुराम से विद्याऽध्यन को गये और जब एक भयङ्कर कीट से व्यथित और रुधिराक्त-शरीर होने पर भी कर्ण ने गुरु की सेवा नहीं त्यागी और न गुरु को कुछ सूचना दी। परशुरामजी ने जब उठ कर इस भयानक व्यापार को देखा तो उन्हें झट प्रतीत हो गया कि यह कोई क्षत्रिय कुमार है ब्राह्मण नहीं ! इस से मालूम होता है कि योगी को सूक्ष्म भेद प्रतीत हो जाता है। उत्तर सुनिये—यदि योगी को जाति प्रतीत होती तो प्रथम ही क्यों नहीं होगई जब इन्हों ने कर्म्म देखा तब उन्हें प्रतीत हुआ कि यह साहसी को क्षात्र कुमार है। इस में सन्देह नहीं जो जन्म से ही मारने काटने का पूरा निरन्तर अभ्यास करेगा वह अवश्य ही घोर साहसी बन जायगा। जो ऐसा साहसी बनेगा वह अवश्य कर्म्म से क्षत्रिय है। मैं भी इसको स्वीकार करता हूं। कहीं२ जो यह लिखा है कि कोई पुरुष हाथ में खड्ग, कोई लेखनी, कोई पुस्तक, कोई तुला आदि लेकर ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुआ सो यह सब मिथ्या कपोल कल्पित है। और वेद विरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य और अश्रद्धेय है अतः मनुष्य में जाति भेद नहीं। इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र को चार भिन्न भिन्न जाति मानना सर्वथा अज्ञानता की बात है।

(१)—ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियाणां च लोहितः। वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा ॥ महाभारत शान्तिपर्व ॥ १८८। ५ ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'मनुष्य एक जाति है'

इस में

'सांख्यशास्त्र का प्रमाण'

(१) अष्ट विकल्पो दैव स्तैर्यग्योनश्च पञ्चधा भवति ।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥ कारिका ॥५७॥

इस पर वाचस्पति मिश्र की व्याख्याः—

ब्राह्मः । प्राजापत्यः । ऐन्द्रः । पैत्रः । गान्धर्वः । याक्षः । राक्षसः । पैशाचः इत्यष्टविधो दैवः सर्गः । तैर्य्यग्योनश्च पञ्चधा भवति । पशु, मृग, पक्षि, सरीसृप, स्थावराः । मानुष्यश्चैकविधः । ब्राह्मणत्वाद्यवान्तरभेदाऽविवक्षा संस्थानस्य चतुर्ष्वपि वर्णेष्वविशेषादिति ।

ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैत्र, गान्धर्व, याक्ष, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकार देवयोनि हैं । तिर्यग्-योनि पांच प्रकार के हैं—पशु, मृग, पक्षी, सर्प और स्थावर । ब्राह्मणादि चार वर्णों में किसी प्रकार का पृथक्त्व नहीं है इस हेतु ब्राह्मण आदि अवान्तर भेद न मान कर मनुष्ययोनि एक ही प्रकार का माना है ।

इस सांख्यकारिका में 'मानुष्यश्चैकविधः' मनुष्य एकही प्रकार का है यह विस्पष्ट वर्णन है । पुनः "दैवादिभेदा" इस सांख्य ३।४६ सूत्र की व्याख्या में विज्ञानभिक्षुक कहते हैं कि "मानुष्यसर्गश्चैकप्रकारः" मनुष्य जाति एकही प्रकार की है ।

'महाभारत का प्रमाण'

(२) न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥१०॥
काम-भोग-प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः ।
त्यक्त-स्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजा क्षत्रतां गताः ॥ ११ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गोभ्योवृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः ।
स्वधर्म्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥१२॥
हिंसानृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्मोपजीविनः ।
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्तेद्विजाः शूद्रतां गताः ॥१३॥
शान्तिपर्व ॥ अ० १८८ ॥

आदि सृष्टि में सब ब्राह्मण ही थे । कोई वर्ण विभाग नहीं था । कर्म्म से क्षत्रियादि वर्ण ब्राह्मण ही बनता गया । जो ब्राह्मण कामभोगप्रिय, तीक्ष्ण, क्रोधी, साहसप्रिय और युद्ध करने से सदा रक्ताङ्ग हुए वे क्षत्रिय गिने गये । जो ब्राह्मण गोवृत्ति का अवलम्बन कर कृषि-कर्म्म में निरत हुए वे वैश्य और जो हिंसा अनृतादि में संलग्न हुए वे शूद्र कहाये ।

इससे भी सिद्ध होता है कि मनुष्य एक जाति के हैं । कर्म्म के द्वारा भिन्न भिन्न वर्णों में विभक्त हुए ।

'बृहदारण्यकोपनिषद् का प्रमाण'

(३) ब्रह्म वा इदमग्र आसीदेकमेव तदेकं सन्न व्यभवत् । तच्छ्रेयो-रूप मत्यसृजत क्षत्रम् ॥११॥ स नैव व्यभवत् स विशमसृजत ॥१२॥ स नैव व्यभवत् स शौद्रं वर्णमसृजत ॥ १३ ॥ बृ० उ० १ । ४ ॥

प्रथम एकही ब्राह्मण वर्ण था । एक होने के कारण उसकी वृद्धि नहीं हुई इस हेतु अपने से भी उत्तम क्षत्रिय वर्ण को उत्पन्न किया । उससे भी वृद्धि नहीं हुई तब वैश्य वर्ण बनाया । उस से भी उन्नति नहीं हुई तब शूद्र वर्ण बनाया । इससे भी यही सिद्ध होताहै कि प्रथम एक ही वर्ण था धीरे धीरे क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण बनते गये ।

'वाल्मीकिरामायण का प्रमाण'

(४) अमरेन्द्र मया बुध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो ।
एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा॥२०॥उत्तरकाण्ड

हे अमरेन्द्र! मैंने प्रथम बुद्धिपूर्वक प्रजाएं सृष्ट कीं। सब ही प्रजाएं एक वर्ण थीं। सब की एक भाषा थी। सब कोई एक-रूपा थीं। इनके दर्शन वा लक्षण में कोई विशेषता नहीं थी।

'भागवत का प्रमाण'

(९) सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषाञ्च यः ॥ १८ ॥
वनस्पत्योषधिलता त्वक्सारा वीरुधोद्रुमाः ॥ १९ ॥
तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टविंशतिधा मतः।
अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० ॥
गौरजो महिषः कृष्णः शूकरो गवयो रुरुः।
द्विशफा पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २१ ॥
खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरीतथा।
एते एकशफाः क्षत्तः शृणुपञ्चनखान् पशून् ॥ २२ ॥
श्वा सृगालो वृकोव्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ।
सिंहःकपिर्गजः कूर्म्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥
कंक गृध्रवटश्येन भास भल्लूक बर्हिणः।
हंस सारस चक्राह्व काकोलूकादयः खगाः ॥ २४ ॥
भागवत। ३। १०॥

अब सप्तम सर्ग का वर्णन करते हैं। स्थावर छः प्रकार के हैं। वनस्पति, ओषधि, लता, त्वक्सार, वीरुध और द्रुम ॥ १९ ॥ अब अष्टम सर्ग कहते हैं। तिर्यग् जातियों के अट्ठाईस प्रकार हैं। ये सब अज्ञानी, तामसी, घ्राणज्ञ और इन के मन में सुख दुःख का परिणाम चिरकाल तक नहीं रहता है। वे ये हैं—बैल, बकरी, भैंस, हरिण, शूकर, नीलगौ, रुरु (एक प्रकारका मृग), मेंढ़ा और ऊंट। ये दो खुर वाले पशुओं की जाति हैं ॥ २१ ॥ हे विदुर जी! गर्दभ, घोड़ा, खच्चर, गौर (एक प्रकार का मृग) शरभ और चमरी (वनगौ)। यह एक खुर वाले पशुओं की जाति हैं। अब पांच नखवाले पशुओं का भेद कहता हूं सुनिये

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

॥ २२ ॥ कुत्ता, गीदड़, भेड़िया, बाघ, बिलार, खरगोश, साही, सिंह, बानर, हाथी, कछुआ और गोह ये बारह पांच नख वाले पशु हैं। मगर आदि जलचर औरकंक, गृध्र, बाज, शिकरा, भास, भल्लूक, मोर, हंस, सारस, चकवा, काक, उलूक आदि पक्षी यह जलचर और थलचर मिल कर तिर्यग् जाति का एक भेद है। इत्यादि अनेक विध सृष्टि कह कर अब मनुष्य सृष्टि कहते है। सुनिये!

अर्वाक् स्रोतस्तु नवमः चत्तरेव विधोनृणाम्।
रजोधिकाः कर्म्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥२५॥ स्कन्ध ३।१०॥

हे विदुर! मनुष्यों की एक ही प्रकार की सृष्टि है। वह नवम है। यह नीचे गति वाला है। रजोगुण इस में अधिक है। कर्म्मपरायण, और दुःख में सुख मानने वाला है।

यहां पर देखते हैं पुराण शिरोमणि भागवत भी मनुष्य की जाति एक प्रकार मानता है। यदि इस में चार वा अधिक प्रकार होते तो यहां इन को पशुआदिवत् गिनाते; परन्तु यहां नहीं गिनाया अतः इसके सिद्धान्त के अनुसार भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ये भिन्न जातिएं नहीं हैं। आगे इन ही विषयों का अधिक वर्णन रहेगा अतः यहां अधिक प्रमाण सुनाने की आवश्यकता नहीं। हे भारतवर्षीय विद्वानो! हम लोगों को हठ, दुराग्रह, पक्षपात को छोड़ कर विचार करना चाहिये। वेदों से जो सिद्ध हो उसे शिर पर चढ़ाना चाहिये। आज कल की भयंकर रीति यह देखते हैं कि लौकिक व्यवहार देख कर शास्त्र का निर्णय करना चाहते हैं। लोक से डरते हैं। वेदों से नहीं। इस में सन्देह नहीं कि अज्ञानीजन नहीं समझते हैं। इन की संख्या अधिक है। परन्तु अज्ञानी पुरुषों से क्यों भय करना चाहिये। मनुष्यमात्र हम एक हैं। परस्पर प्रेम करें। परस्पर सम्बन्ध जोड़ें। एक दूसरे के लिये प्राण अर्पण करें। कर्म्म से मनुष्य नीच होता है। जन्म से कदापि नहीं। अतः हे विद्वानो! वेदशास्त्र विरुद्ध सामाजिक नियम को अवश्य ही तोड़ देना चाहिये। इति।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'अध्यारोपित जाति'

शङ्का:=तब महर्षि पाणिनि और मनुस्मृति आदि ग्रन्थ इन चारों को चार जातिएं कैसे मानते हैं।

उत्तर=जब अनेक प्रमाणों से और प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध है कि मनुष्य एक जाति है तब हम कैसे कह सकते हैं कि ये चारों पशुवत् भिन्न भिन्न जातियों के हैं। अब बात यह रह गई कि पाणिनि प्रभृति आचार्य्यों ने इन में भिन्न जाति कैसे मानी। इस का उत्तर सुनिये—इन लोगों ने मनुष्यों में वास्तविक जाति-भेद नहीं माना है। अध्यारोपित जाति भेद माना है अर्थात् जैसे कोई कवि वृक्ष में चेतनपुरुषत्व का आरोप कर के कहता है कि हे वृक्ष! मेरी बात सुन! तू मुझे फल दे। तेरी सुन्दरता देख मैं मोहित हूं इत्यादि। यथार्थ में वृक्ष चेतन पुरुष नहीं; किन्तु इस में चेतनता का अध्यारोप अर्थात् कल्पना की गई है तद्वत् मनुष्य में जाति भेद नहीं; परन्तु कल्पित जाति भेद माना है।

कल्पित जाति भेद क्यों माना है? यह प्रश्न उत्थित हो सकता है। इस पर किञ्चित् ध्यान देने से इस के कारण का बोध हो सकता है। देश में जब अनेक प्रकार के व्यापार आवश्यकतानुसार फैलने लगता है तब एक एक कार्य्य को अनेक अनेक मनुष्य करने लगते हैं। जब भूषण की आवश्यकता बढ़ी तो सहस्रों मनुष्य भूषण बनाने लगे उन की यही वृत्ति (जीविका) हुई। जब लोहों को प्रयुक्त करने लगे और इस की आवश्यकता बढ़ी तो इसी कार्य को लाखों करने लगे. इसी प्रकार अन्यान्य व्यापार में समझिये। ये लोग स्वर्णकार, लोहकार आदि नाम से प्रसिद्ध हुए। अब कर्म्म के अनुसार जितने लोहकार एक स्थान में कार्य्य कर रहे हैं वे कर्म्मवश एकसमान प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार जो लोग कपड़े बुन रहे हैं वे तन्तुवाय एक समान प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार स्वर्णकार रथकार आदिकों को भी जानो। हम पीछे कह आए हैं कि समान बुद्धि के उत्पादक जो आकृतिगत-धर्म्म है वह 'जाति' कहलाती है। क्यों कि गौतमाचार्य्य कहते हैं—"समानप्रसवात्मिका जातिः" जैसे एक हाथी के देखने से सकल हाथी का बोध हो जाता है। वैसे ही कर्म्मवश मनुष्य में भी एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समानता प्रतीत होती है। जब वह कार्य्य करता रहता है। उदाहरण के लिये लोहकार को ले लीजिये। एक आदमी को लोह का काम करते हुए देख "यह लोहकार है" यह मन में निश्चय कर जिस जिस को लोह सम्बन्धी कार्य्य करते हुए आप देखेंगे झट से आप कहेंगे कि यह लोहकार है। इस प्रकार सब लोहकार में समान बुद्धि का उत्पादक एक धर्म्म है अतः लोहकार भी एकजाति है। परन्तु अब लोहकार को कहीं आप ने अन्यत्र देखा जहां वह स्नान वा पूजापाठ कर रहा है वा गमन कर रहा है वहां उसे देख "यह लोहकार है" ऐसी बुद्धि आपको उत्पन्न नहीं होगी। इस से क्या सिद्ध हुआ? मनुष्य में जो जाति है वह कर्म्मगत है। आकृतिगत नहीं जब कर्म्म करता रहता है तब वह लोहकार प्रतीत होता अन्यत्र नहीं। परन्तु पशु सर्वत्र एक समान ही प्रतीत होंगे। इस कारण मनुष्य में 'जाति' अध्यारोपित है। वास्तविक नहीं। इसी अध्यारोपित जाति को पाणिनि प्रभृतियों ने मान कर शब्दों की सिद्धि की है॥

आज कल इसी अध्यारोपित-जाति शब्द का सर्वत्र प्रयोग होता है। बोल चाल में जैसा प्रयोग होजाता है वैसा बरतना ही पड़ता है। इसी नियम के अनुसार प्रत्येक-देश निवासियों में भी जाति शब्द का प्रयोग होने लगा। क्योंकि प्रत्येक देश के मनुष्यों में अशन, वसन, आचरण, बैठना, उठना सामाजिक व्यवहार आदि प्रायः सर्व कर्म कुछ कुछ भिन्न होगये हैं। अङ्गरेज़ों के जो धर्म्म, वस्त्रादि-परिधान, विवाह रीति, भोजन की विधि आदि हैं भारतवासियों के वैसे नहीं। एवं देश भेद से रूप में भी बहुत भेद है। वे गौराङ्ग हैं। भारत में उष्णता की अधिकता के कारण अनेक वर्ण के हैं। कोई गौर, कोई श्याम इत्यादि। इस से भिन्न भिन्न जातीयता प्रतीत होती है। परन्तु वास्तव में भिन्न जातीयता नहीं।

'वर्ण शब्द का प्रयोग'

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार 'वर्ण' कहलाते हैं। जाति नहीं। क्योंकि चारों वेदों में इन चारों के लिये 'जाति' शब्द का प्रयोग नहीं है। वेदों के अनुसार मनुष्यमात्र प्रथम दो भागों में विभक्त हुए हैं। आर्य्य और दस्यु।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुभ कर्म्म करने वाले आर्य्य और दुष्टकर्म करने वाले दस्यु वा दास । आर्य्य और दस्यु दोनों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग वेद में आया है ॥

"वर्ण शब्द और वेद"

ससानात्याँ उत सूर्य्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।
हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून् प्राऽऽर्य्यं वर्णमावत् ॥
ऋ० ३ । ३४ । ६ ॥

इस जगत् में (इन्द्रः) परमात्मा ने मनुष्यों के लिये (अत्यान्) हय प्रभृति पशु (ससान) दिये हैं (उत+सूर्य्यम्) प्रकाश के लिये सूर्य्य (ससान) दिया है (पुरुभोजसम्+गाम्) अनेक भोज्य पदार्थ संयुक्त पृथिवी (ससान) दी है । इस के अतिरिक्त (उत+हिरण्ययम्+भोगम्) सुवर्णादि युक्त भोग्य वस्तु दी है और वह परमात्मा (दस्यून्) दुष्ट चोर डाकू को (हत्वी) हननकर (आर्य्यम्+वर्णम्) आर्य्य वर्ण को (प्र+आवत्) सदा रक्षा किया करता है । दानार्थक 'षणु' धातु से ,ससान' बनता है 'प्राऽऽर्य्यम्' में 'प्र+आर्य्यम्' दो शब्द हैं ॥

यहां 'आर्य्य, वर्ण' शब्द आया है । आर्य्य नाम श्रेष्ठ, याज्ञिय, वैदिक, व्रती आस्तिक आदि धार्मिक पुरुषका है । ऐसे 'आर्य पुरुष' के लिये 'वर्ण'शब्द का प्रयोग देखते हैं ।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः ।
श्वघ्नीव यो जिगीवाँल्लक्षमाददर्य्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः ॥
ऋ० २ । १२ । ४ ॥

(येन) जिस ने (इमा+विश्वा) इस विश्व को (च्यवना+कृतानि) नम्र बनाया है । अर्थात् जिस राजा ने शिक्षा के द्वारा मनुष्यों को नम्रीभूत किया है । और जो शिक्षा के अधीन नहीं हुए ऐसे जो (दासम्+वर्णम्) जगत् में अशान्ति फैलाने वाले उपक्षयिता नास्तिक वर्ण हैं उन को (यः) जिसने (अधरम्) नीचे करके (गुहा+अकः) गह्वर में स्थापित किया और (यः) जो (श्वघ्नी+इव) मृग के मारने वाले व्याध के समान (लक्षम्) लक्ष्य को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(जिगीवान्) जीतता है। और (अर्यः) प्रजाओं का स्वामी वह राजेन्द्र (पुष्टानि) पुष्टकारी वस्तुओं को सदा (आदत्) प्रजा के सुख के लिये ग्रहण किया करता है (जनासः) हे मनुष्यो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र अर्थात् हम लोगों का राजा है ॥

यहां पर भी "दास" के साथ वर्ण शब्द का प्रयोग हुआहै। वर्ण शब्द का अर्थ 'चुनने वाला' है। अपनी अपनी मति से मनुष्य अपनी अपनी जीविको पाय चुना करता है। किसी ने अच्छा व्यवसाय चुना किसीने बुरा व्यवसाय। इन दोनों प्रकारकेमनुष्यों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग वेद में देखते है। परन्तु इनके लिये 'जाति' शब्द का प्रयोग कहीं भी उक्त नहीं हैं। अतः वेदानुसार मनुष्यों में भिन्न २ व्यवसायी को वर्ण शब्द द्वारा व्यवहार करना सर्वथा उचित है।

'वर्ण शब्द और ब्राह्मण ग्रन्थ'

सर्वं हेदं ब्रह्मणा हैव सृष्टम्। ऋग्भ्यो जातं वैश्य वर्णमाहुः।
यजुर्वेदं क्षत्रियस्याहुर्योनिम्। तैत्तिरीय ब्रा० ३।१२।९।४॥
दैव्यो वै वर्णो ब्राह्मणः। तैत्तिरीय ब्राह्मण १।२।६।७
स शौद्रं वर्णमसृजत। शतपथ ब्राह्मण १४।४।२।२३॥

ब्राह्मण ग्रन्थों से यहां केवल तीन वचन उद्धृत किये हैं। ये वचन भी ब्राह्मणादिकों के लिये 'वर्ण' शब्द का प्रयोग करते हैं। 'जाति' शब्द का नहीं।

'वर्ण शब्द और महाभारत'

कृते युगे समभवन् स्वकर्म्म-निरताः प्रजाः।
समाश्रयं समाचारं समज्ञानञ्च केवलम् ॥ १८ ॥
तदा हि समकर्म्माणो वर्णा धर्म्मानवाप्नुवन्।
एकवेदसमायुक्ता एकमन्त्र विधिक्रियाः ॥ १९ ॥
कृते युगे चतुष्पादश्चार्तुवर्ण्यस्य शाश्वतः।
एतत्कृतयुगं नाम त्रैगुण्य परिवर्जितम् ॥ २२ ॥

महाभारत वनपर्व।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्म मिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥
शान्ति पर्व १८८ । १० ॥

इत्यादि अनेक स्थलों में ब्राह्मणादि मनुष्य के लिये 'वर्ण' शब्द का ही प्रयोग आता है । जाति शब्द का नहीं । आगे उद्धृत श्लोकों में वर्ण शब्द के अनेक प्रयोग देखेंगे । लोक में भी चार वर्ण और चार आश्रम कहते सुनते है। चार जाति और चार आश्रम कोई नहीं कहता ।

'वेद में अनेक वर्णों के नाम'

यजुर्वेद ३० वें अध्याय में ब्राह्मणादि अनेक नाम आए हैं उन का अर्थ सहित यहां लेख करते हैं । यथा :—

(५) १-ब्राह्मण=(१) ब्रह्मपुत्र अर्थात् वेद, ईश्वर, व्रत, तप, यज्ञादि के तत्त्व जानने वाला ।

२-राजन्य=राजपुत्र अर्थात् शौर्य्य, वीर्य्य, प्रतापादि से शोभायमान।

३-वैश्य=वैश्यपुत्र अर्थात् व्यवसाय के लिये सर्वत्र वायुवत् प्रवेश करने वाला ।

४-शूद्र=कठिन से कठिन दुःसाध्य शारीरिक कर्म्म में सदा तत्पर (तपसे शूद्रम्) ।

५-तस्कर=चोर ।

६-वीरहा=वीरों को मारने हारा ।

७-क्लीब=नपुंसक ।

८-अयोगू=लोहे के हथियारविशेष के साथ चलने हारा । अयस्=लोहा । गू=गन्ता ।

९-पुँश्चलू=पुरुषों के साथ चलायमानचित्तवाली व्यभिचारिणी स्त्री (पुंश्चली, स्वैरिणी) ।

(१) यजुर्वेद ३० वें अध्याय के पञ्चम मंत्र से नामों की गणना आती है । एक मंत्र को छोड़ प्रत्येक मंत्र में दश दश नाम आए हैं ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१०-मागध=अपनी कविता से लोगों के चित्त को मादक बनाने हारा (मादयतीति मागधः)।

(६) ११-सूत=विविध-प्रतिभा-युक्त, विचित्र काव्यरचयिता (सूते जनयति काव्यादिकं यः स सूतः)।

१२-शैलूष=गाने हारा नट।

१३-सभाचर=सभा में विचरने हारा सभापति।

१४-भीमल=भयङ्कर कार्य्य करने हारा।

१५-रेभ=स्तुति करने हारा।

१६-कारि=उपहासकर्ता।

१७-स्त्रीषख=स्त्री से मित्रता करने हारा (स्त्री+सखा)।

१८-कुमारीपुत्र=विवाह से पूर्व व्यभिचार से उत्पन्न बालक।

१९-रथकार=विमानादि बनाने हारा।

२०-तक्षा=महीन काम करने हारा बढ़ई।

(७) २१-कौलाल = कुम्हार का पुत्र अर्थात् मृत्तिकाओं के विविध पात्रों का निर्माता (कुं पृथिवीं लालयति, पात्रैर्मनुष्यकुलमलंकरोतीति वा)।

२२-कर्म्मार=उत्तम शोभित काम करने हारा (कर्म्माणि अरङ्करोतीति)

२३-मणिकार = मणि बनाने वाला।

२४-वप = विद्यादि शुभगुणों का बोने वाला (विप्र, मेधावी)।

२५-इषुकार = बाणकर्ता।

२६-धनुष्कार = धनुष्कर्ता।

२७-ज्याकार = प्रत्यञ्चा बनाने वाला।

२८-रज्जुसर्ज = रज्जु (रस्सी) बनाने वाला।

२९-मृगयु=व्याध, (मृगं कामयते मृगयुः)।

३०-श्वनी=कुत्ते पालने हारा (श्वानं कुक्कुरं नयतीति श्वनीः)।

(८) ३१-पौञ्जिष्ठ=धानुक।

३२-नैषाद=निषादपुत्र (निषीदति निषद्यकर्म्म करोति वा)।

३३-दुर्म्मद=दुष्ट, अभिमानी।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३४-व्रात्य = संस्कार-रहित मनुष्य ।
३५-उन्मत्त = उन्माद रोग वाला ।
३६-अप्रतिपद = संशयात्मा ।
३७-कितव = जुआरी, धूर्त्त ।
३८-अकितव = जुआ न करने हारा ।
३९-विदलकारी = पृथक् २ टुकड़ों को करने हारा ।
४०-कण्टकीकारी = कांटे बोने वाली स्त्री ।
(९) ४१-जार = व्यभिचारी (जारयति-विनाशयति धर्म्मं यौवनम्वा)।
४२-उपपति = दूसरा व्यभिचारी पति ।
४३-परिवित्त = छोटे भाई के विवाह होने में विना विवाह का ज्येष्ठ भाई ।
४४-परि-विविदान = ज्येष्ठ भाई के दाय को न प्राप्त होने में दाय को प्राप्त हुआ छोटा भाई ।
४५-एदिधिषुःपति = ज्येष्ठ पुत्री के विवाह के पहिले विवाहित हुई छोटी पुत्री का पति
४६-पेशस्कारी = शृङ्गार विशेष से रूप करने हारी व्यभिचारिणी।
४७-स्मरकारी = कामदेव को चेतन-करने हारी दूती ।
४८-उपसद = साथी ।
४९-अनुरुध = रोकने वाला ।
५०-उपदा = नज़र, भेट वा घूंस देने हारा ।
(१०) ५१-कुब्ज = कुबड़ा ।
५२-वामन = छोटा मनुष्य ।
५३-स्राम = जिसके नेत्र से निरन्तर जल निकलता हो ।
५४-अन्ध = अन्धा ।
५५-वधिर = बहिरा ।
५६-भिषज = वैद्य ।
५७-नक्षत्र-दर्श = नक्षत्र देखाने हारा गणितज्ञ ।
५८-प्रश्नी = प्रशंसित प्रश्नकर्ता ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५९-अभिप्रश्नी = सब ओर से प्रश्न करने हारा।
६०-प्रश्न-विवाक = प्रश्नों को विवेचन कर उत्तर देने वाला।
(११) ६१-हस्ति-प=हाथियों का रक्षक (हस्ति+प)
६२-अश्व-प=घोड़ों का रक्षक (अश्व+प)
६३-गो-पाल=गौओं का रक्षक (गाः पालयतीति)
६४-अवि-पाल=गड़रिया (अविं मेषजातिं पालयतीति)
६५-अज-पाल=बकरे बकरियों का रक्षक (अजंपालयतीति)
६६-कीनाश=खितिहर
६७-सुराकार=सोमरस को निकालने वाला।
६८-गृह-प=घरों का रक्षक (गृह+प)
६९-वित्त-ध=धन धारण करने हारा (वित्तं दधाति)
७०-अनुचत्ता=अनुकूल सारथी।
(१२) ७१-दार्वाहार=काष्ठों को पहुंचाने वाला (दारु+आहार)
७२-अग्न्येध=अग्नि के दीप्ति करने हारा (अग्नि+इन्धी दीप्तौ)
७३-अभिषेक्ता=अभिषेक = राजतिलक करने वाला
७४-परिवेष्टा=परोसने वाला
७५-पेशिता=विद्या के अवयवों को जानने वाला
७६-प्रकारिता=फेंकने वाला
७७-उपसेक्ता=उपसेचन करने हारा।
७८-उपमन्थिता=ताडनादि से पीड़ा देने हारा दुष्ट।
७९-वासः पल्वूली=वस्त्रों की शुद्ध करने वाली धोविन।
(१३) ८०-रजयित्री=उत्तम रँग करने वाली रँगरेजिन।
८१-स्तेनहृदय=चोर के तुल्य छली कपटी।
८२-पिशुन=चुगिल।
८३-क्षत्ता=सारथी वा ताड़ना से रक्षा करने हारा।
८४-अनुक्षत्ता=अनुकूल सारथी।
८५-अनुचर=सेवक।
८६-परिस्कंद=सब ओर से वीर्य्य सेचने वाला।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

८७-प्रिय-वादी=प्रिय बोलने वाला ।
८८-अश्व-साद=घोड़ों को चलाने वाला ।
८९-भागदुघ=अंशों को पूर्ण करने हारा ।
९०-परिवेष्टा=परसोने वाला ।
(१४) ९१-अयस्ताप=लोह वा सुवर्णतपाने वाला (अयस्+ताप)
९२-निसर=निश्चित रूप से चलने वाला ।
९३-योक्ता=योग करने हारा ।
९४-अभिसर्ता=सम्मुख चलने वाला ।
९५-विमोक्ता=दुःख से छुड़ाने वाला ।
९६-त्रिष्ठी = जल, स्थल, आकाश, तीनों स्थानों में विमानादि के साथ रहने वाला ।
९७-मानस्कृत = मन से विचार करने में प्रवीण ।
९८-आञ्जनी-कारी = नेत्र में अंजन लगाने वाली स्त्री ।
९९-कोशकारी = करवालादि कोश करने वाली ।
१००-असू = मृतवत्सा स्त्री ।
(१५) १०१-यमसू=यमल प्रसव करने वाली स्त्री (यमौसूते)
१०२-अवतोका=अपुत्रा स्त्री ।
१०३-परम्पायिणी=क्रम से पुत्र कन्या उत्पन्न करने वाली ।
१०४-अविजाता=ब्रह्मचारिणी कुमारी ।
१०५-अतित्वरी=अत्यन्त चलने वाली (अत्यन्त कुलटा)
१०६-अतिष्कद्वरी = अतिशय कर जानने वाली ।
१०७-विजर्जरा = वृद्धा स्त्री ।
१०८-पलिक्नी=श्वेत केश वाली स्त्री ।
१०९-अजिनसन्ध = नहीं जितने वाले पुरुषों से मेल रखने वाला ।
११०-चर्म्मम्न = चर्म्मकार (चर्म्माणि मनाति अभ्यस्यति, निर्माति) चर्म्म+म्न । म्नाअभ्यासे ।
(१६) १११-धैवर = धीवर का लडका (धिया बुद्धया वरः)
११२-दाश=सेवक, धीवर ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

११३-वैन्द=निषाद का पुत्र ।
११४-शौष्कल=मछियों से जीने वाला ।
११५-मार्गर=व्याध का पुत्र ।
११६-कैवर्त=जल में नौका चलाने वाला ।
११७-आन्द=बान्धने वाला ।
११८-मैनाल=मीन ग्राहीसन्तान ।
११९-पर्णक=भील ।
१२०-किरात=किरात ।
१२१-जभ्भक=नाश करने वाला ।
१२२-किम्पूरुष=छोटे जंगली मनुष्य । (१)
(१७) १२३-पौल्कस = भंगी का पुत्र ।
१२४-हिरण्यकार = सुवर्ण बनाने हारा सुनार ।
१२५-वाणिज=बनिया का पुत्र ।
१२६-ग्लावी = हर्ष को नष्ट करने हारा ।
१२७-सिध्मल = रोगी ।
१२८-जागरण = जागने वाला ।
१२९-स्वपन = सोने वाला ।
१३०-जन-वादी = स्पष्टवक्ता ।
१३१-अप्रगल्भ = प्रगल्भता शून्य ।
(१८) १३२-प्रच्छिद = अधिक छेदन करने वाला ।
१३३-कितव = जुआरी ।
१३४-आदिनवदर्शी = प्रारम्भ में ही नवीन दोष दर्शी (आदि+नव+दर्शी)
१३५-कल्पी = कल्पना वाला ।
१३६-अधिकल्पी = अधिक कल्पना करने हारा ।
१३७-सभास्थाणु = सभा में स्थिर रहने वाला सभ्य ।

(१) इस मन्त्र में १२ नाम आए हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१३८-गोव्यच्छ = गौ को ताडन करने हारा ।
१३९-गोघात = गोवों को मारने हारा ।
१४०-भिक्षमाण = भीख मांगता ।
१४१-चरकाचार्य्य = भक्षकों का आचार्य्य ।
१४२-सैलग = दुष्ट का पुत्र ।
(१९) १४३-अर्तन = प्रापक ।
१४४-भष = परिभाषक ।
१४५-बहु-वादी = बहुत बोलने वाला ।
१४६-मूक = गूंगा ।
१४७-आडम्बराघात = हल्ला गुल्ला करने वाला ।
१४८-वीणावाद = वीणा बजाने वाला ।
१४९-तूणव-ध्म = तूणव बाजे बजाने वाला ।
१५०-शङ्ख-ध्म = शंख बजाने वाला ।
१५१-वन-प = वन रक्षक ।
१५२-दाव-प = वनदाह रक्षक ।
(२०) १५३-पुंश्चलू = व्यभिचारिणी स्त्री ।
१५४-कारी = विक्षेपक, फेंकने हारा ।
१५५-शावल्या = कबरे मनुष्य की कन्या ।
१५६-ग्रामणी = ग्रामनायक (ग्रामं नयति)
१५७-गणक=गणितविद् ।
१५८-अभिक्रोशक = पुकार ने हारा ।
१६९-वीणावाद = वीणा बजाने हारा ।
१६०-पाणिघ्न = हाथ से ताल बजाने वाला । (पाणिं हन्ति)
१६१-तूणव-ध्म = तूणव बजाने वाला ।
१६२-तल-व = हस्तादि ताल बजाने वाले ।
(२१) ७६३-पीवा=स्थूल ।
१६४-पीठसर्पी=विना पगों का । हाथ में खड़ाऊं ले कर सरसर कर चलने वाला ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

१६५-चाण्डाल=चाण्डाल ।
१६६-वंशनर्ती=बांस पर नाचने वाला नट ।
१६७-खखाति=गंजा ।
१६८-हर्य्यक्ष=वानर की सी छोटीआंख वाला ।
१६९-किर्मिर=कबर-रंग वाला ।
१७०-किलास=थोड़ा खोता वर्ण ।
१७१-शुक्लपिङ्गाक्ष=पीतनेत्र ।
१७२-कृष्णपिङ्गाक्ष=कृष्णनेत्र ।

इति प्रथममार्य्यदस्युदासादि-शब्दनिर्णयप्रकरणं समाप्तम् ।

अथ

'खेती करना आदि व्यवसाय प्रकरण'

देश में प्रायः लोग समझते हैं कि खेती करना, लोह से कुठार (कुल्हर) वाशी (बशला) कुदाल वगैरह गढ़ना, काठ से हल, युग (जूआ) गाड़ी, रथादि तैयार करना, मिट्टी से अनेक बर्त्तन गढ़ना, कांसे पीतल आदि से बर्त्तन बनाना, सूतों से कपड़ा बुनना, चमड़ों के विविध जूते वा वस्त्र वा युद्ध में पहनने के हेतु अनेक प्रकार के वर्म्म सीना और चमड़े के तन्तु से ज्या (प्रत्यञ्चा धनुष की रस्सी) सुसज्जित करना, चक्की पीसना, अपने कार्य्य के लिये ढोना, खाई, नहर, कूप, तालाब आदि खोदना, सड़क बांधना वगैरह कर्म्म नीच पुरुषों के हैं। और प्रत्यक्ष देखते है कि इन सब व्यवसायों के करने वाले आज नीच निकृष्ट अस्पृश्य अदृश्य माने जाते हैं। और सभ्य समाज में वे किसी प्रकार से सम्मिलित नहीं किए जाते। ये परिश्रम-शील पुरुष जिन के अधीन समाज के जीवन, शोभा, सुन्दरता है अति घृणित और नीच बना दिये गये हैं। इन से यज्ञोपवीत छीन लिया गया। कर्म्म-करना निषेध किया गया। इस प्रकार ज्यों ज्यों इन का सम्बन्ध उच्च वर्णों से छूटता गया त्यों त्यों ये गिरते गये। मद्यादि सेवन से, शौचादिक के त्याग से और विद्या के अध्ययन अध्यापन न

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने से ये सब निःसन्देह आज बहुत नीचे गिरे हुए हैं। इन के कर्म्म, धर्म्म, देव, पितर, भजन, बैठना उठना सब ही उच्च वर्णों से भिन्न २ हो गये। मैं इस प्रकरण में आप लोगों को सुनाना चाहता हूं कि कोई व्यवसाय वेदानुसार निकृष्ट नहीं। ब्राह्मण ऋत्विक् राजा प्रभृति भी इन व्यवसायों को बड़े आनन्द से किया करतेथे। आप यह समझें कि समाज की शोभा के निमित्त वा जीवन निर्वाहार्थ जिन जिन व्यवसायों की आवश्यकता थी उन को सब कोई कुछ न कुछ अवश्य किया करते थे। विशेष कर ब्राह्मण और राजा को आज्ञा थी कि उन व्यवसायों को तुम कभी २ किया करो जिससे साधारण प्रजाओं में घृणा नहो। एवमस्तु अब आप वेदों की ऋचा सुन कर स्वयं मीमांसा करें।

'राजकर्तव्य हलचालन'

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेण धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्य्याय ॥१।११७।२३॥

यवम्। वृकेण। अश्विना। वपन्ता। इषम्। दुहन्ता। मनुषाय। दस्रा। अभि। दस्युम्। बकुरेण, धमन्ता। उरु। ज्योतिः। चक्रथुः। आर्याय॥

अर्थ=(दस्रा+अश्विना) हे दर्शनीय राजन्! तथा मन्त्रिन्! आप दोनों (वृकेण) लाङ्गल=खेती करने के कर्षक यन्त्र से (यवम्+पवन्ता) यव (जौ) अनेक प्रकार के अन्नों को बोते हुए और उस बोनाई से (इषम्+दुहन्ता) अन्नों को पृथिवी से दुहते हुए तथा (बकुरेण) बकुरनामकअस्त्र से (दस्युम्+अभि+धमन्ता) दुष्टों को नाश करते हुए इस प्रकार इन तीन प्रकार के कर्म्मों से (आर्याय+मनुषाय) आर्य मनुष्य के लिये (उरु+ज्योतिः) बहुत प्रकाश (चक्रथुः) कर रहे हैं इस हेतु, आप दोनों परम प्रशंसनीय है।

यास्क 'बकुरो भास्करो भयङ्करो भासमानो द्रवतीतिवा' जो अस्त्र जलता हुआ दौड़े जैसे बन्दूक तोप आदि उसे बकुर कहते हैं। 'वृको लाङ्गलं भवति' 'लाङ्गल का नाम यहां वृक है। निरुक ६। २५। और २६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निरुक्तमें इस ऋचा का उदाहरण आया है। वृक नाम यहां हल के लांगल का है। इस में विस्पष्ट वर्णन है कि राजा और मन्त्री दोनों मिलकर कभी २ खेती करें ताकि प्रजाएं इस कर्म को नीच न समझें और इस व्यवसाय के करने वाले भी निकृष्ट न माने जांय। कदाचित् आप कहेंगे कि यहां 'अश्विनौ' पद से देवता का ग्रहण होता है राजा मन्त्री का नहीं। सुनिये 'अश्विनौ' किस को २ कहते हैं—"तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके अहोरात्रावित्येके सूर्याचन्द्रमसावित्येके राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः" इस प्रमाण से सिद्ध है कि धर्मात्मा राजा मन्त्री जोड़े का भी नाम 'अश्विनौ' है। और देवता भी शुभ-गुण-सम्पन्न मनुष्य ही कहाते हैं। खेत करने वाले को देवता की पदवी दी गई है। यह इन की प्रशंसा है।

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः।
ता वां मद्यसुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्रस्तुवीमहि ॥८।२२।६॥

(दिवि) द्युलोक में जैसें मनुष्य के सुख के लिये सूर्य्य चन्द्र कार्य्य कर रहे हैं तद्वत् आप दोनों राजा मन्त्री (मनवे) मनुष्य के लिये (पूर्व्यम्) नवीन वस्तु (दशस्यन्ता) देते हुए (यवम्) जौ अर्थात् सब प्रकार के धान्य (वृकेण) लाङ्गल से (कर्षथः) उत्पन्न करते हैं। इस हेतु (अश्विनौ) हे राजा! तथा मन्त्री (अद्य) आज (शुभस्पती) शुभकर्म्म के पालन करने वाले अथवा जल के रक्षक (ता+वाम्) आप दोनों को (सुमतीभिः) शोभनमति अर्थात् स्तोत्रों से (प्रस्तुवीमहि) हम लोग स्तुति करते हैं। अर्थात् आप के गुण गाते हैं॥

शुभः+पती = जल के रक्षक राजा को इस हेतु यहां कहा गया है कि खेत जल से ही होता है। यदि जल का प्रबन्ध राजा न करे तो खेती होना कठिन है। राजपूतानें और पञ्जाब आदि देश में आज कल भी जलार्थ राजाओं का बड़ा प्रबन्ध देखा जाता है। अन्यान्य कर्म के साथ किसानी भी एक कर्त्तव्य कर्म्म राजा के लिये विहित था। पौराणिक समय में भी जनक और पृथु महाराज आदि की कथा कर्षणवृत्ति राजकर्त्तव्य सूचित करती है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'कृष्टि और चर्षणि'

मनुष्य के नाम में कृष्टि और चर्षणि ये दो नाम आते हैं 'कृष् विलखने' कृष् धातु से ये दोनों शब्द बने हैं। पृथिवी को हलादि यन्त्र से चीरना फाड़ना अर्थ 'कृष्' धातु का है इसी अर्थ में इस के प्रयोग बहुत आते हैं इसी हेतु खेत से जीने वाले किसान के नाम आज कल कर्षक, कृषक और कृषीवल आते हैं (१) जब मनुष्यमात्र के नाम (निघण्टु २-३) कृष्टि और 'चर्षणि' है। तो क्या राजा और ब्राह्मण मनुष्य में नहीं।

'कृषि कर्म्म प्रचारार्थ आज्ञा'

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽनु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहा दुत्तरा मुत्तरां समाम् ॥ ऋ०४।५७।४ ॥

(इन्द्रः) जो राजा हो वह (सीताम्+निगृह्णातु) लांगल को पकड़े और (ताम्+अनु) पीछे उस सीता को अर्थात् हल सम्बन्धी खेती क्रिया को (पूषा) मन्त्री वगैरह (नि+यच्छतु) नियम में चलावें (उत्तराम्+उत्तराम्+समाम्) प्रत्येक आगामी वर्ष में। इस प्रकार (सा+पयस्वती+दुहात्) वह दूध देने वाली होवे ॥

भाव यह है कि प्रथम, वर्ष के आरम्भ में कम से कम एक आध दिन स्वयं राजा हल को पकड़ कर चलावें। पीछे मन्त्री आदि प्रबन्धकर्ता पुरुष प्रजाओं के बीच इस क्रिया को फैलाने के लिये पूरा यत्न करें। ऐसा न हो कि किसी हल बैल बीज पानी आदि के अभाव से खेती करना बन्द होजाय। खेती से ही गाय भैंस बकरी भेंड़ी घास बूसे खातीहैं और सब दूध देतीहैं। मनुष्य मात्र का जीवन इसी के अधीन है इस प्रकार खेती दूध देने वाली प्रत्येक वर्ष हुआ करती है। इस ऋचा के द्वारा ईश्वर ने राजा को हल चलाने की आज्ञा देकर कृषि विद्या प्रचारार्थ आज्ञा दी है।

(१) क्षेत्राजीवः कर्षकश्च कृषिकश्च कृषीवलः॥ अमर २।९।६॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यदि कोई कहे कि इन्द्र नाम तो देवों के राजा का है। सुनिये मैं कहचुका हूं कि 'देव' मनुष्य भी होते हैं। और ऐसे २ स्थान में इन्द्र पद से 'राजेन्द्र' का ग्रहण होता है। जिस के पक्ष में देवराज ही अभीष्ट है। उस पक्ष में भी कोई क्षति नहीं। जब 'देवराज' खेती करतेहैं तो मनुष्य राजाओं की क्या गिनती है। इस से तो खेती की और भी प्रशंसा होती है।

खेती और जनक महाराज—'अथ मे कृषतः क्षेत्रं लाङ्गला दुत्थिता ततः। क्षेत्रं शोधयता लब्धा नम्ना सीतेति विश्रुता' ॥ रामायण' १। ६६। १४ बालकाण्ड रामायण में जनक महाराज स्वयं कहते हैं कि हल चलाते हुए मुझे यह सीता मिली, इस कथा का भाव जो कुछ हो परन्तु राजा को हल चला कर खेत करने का पता इससे अवश्य लगता है। यदि उस समय क्षेत्र-कर्षण राजा को निषेध रहता तो ऐसा इतिहास कभी नहीं लिखा जाता॥ अतः 'सीता' यह नाम और सीता-जनक-चरित्र पूर्णतया दृढ़ करता है कि क्षेत्र-कर्षण और कृषीवल दोनों निकृष्ट नहीं माने जाते थे।

खेती और पृथु महाराज—पृथु महाराज के चरित्र में यद्यपि बहुत अन्तर पड़गया है। और इस के साथ बहुत ही अत्युक्ति की गई है। परन्तु यह इतिहास सूचित करता है कि पृथिवी पर अन्न उत्पन्न करने के लिये राजा अनेक उपाय किया करते थे। ऋषि, ब्राह्मण, राजा प्रजा सब मिल कर खेती विद्या की बढ़ती में तत्पर थे। भागवत चतुर्थस्कन्ध सप्तदशाध्याय में लिखा है कि अन्न विना भूखों मरती हुई प्रजाएं पृथु के समीप आ जोर से चिल्ला उठीं कि आप हम सबों की रक्षा करें अन्न विना सब मरती जातीं हैं। तब पृथु महाराज धनुर्बाण ले पृथिवी के पीछे चले। पृथिवी वशी भूत हुई और उससे सारे खाद्य पदार्थ दुहे। भाव इसका केवल यह है कि खेती के लिये राजा प्रजा ऋषि मुनि सबही उद्यत रहते थे।

'खेती और विद्वान् आचार्य्य आदि'

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥ ऋ०। १०। १०१। ४॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सीर = हल । युग = जुआ । सुम्न = सुख ।

(धीराः) धीमान् क्षेत्रविद्यावित् (कवयः) कृषिकर्म्म जानने वाले विद्वान् (सीरा+युञ्जन्ति) हल में बैल जोतते हैं और (युगा) युगों को (पृथक्+वितन्वते) पृथक् २ विस्तार करते हैं । किस हेतु ? (देवेषु+सुम्नया) मनुष्यों में सुख पहुंचाने के हेतु ॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपते ह बीजम् ॥ १०।१०१।३

हे विद्वानो ! (सीरा+युनक्त) हलों को बैलों से युक्त करो (युगा+वि तनुध्वम्) युगों को विस्तार करो । [कृते०] हल से तैयार खेत में बीज बोओ । इत्यादि अनेक ऋचाएं विद्वान् आचार्य, कवि, धीर प्रभृतियों को भी हल चलाने की आज्ञा देती हैं । पीछे आचार्यों ने इसका अनुकरण भी किया है यथाः—

खेती और धौम्य ऋषिः—महाभारत-आदि पर्व तृतीयाध्याय में लिखा है कि कोई एकधौम्य नामक ऋषि थे । उनके उपमन्यु, आरुणि, और वेद तीन शिष्य थे । " स एकं शिष्य मारुणिं पाञ्चाल्यं प्रेषयामास गच्छ केदारखण्डं बधानेति । 'आदिपर्व' ३ । २४ । उन्हों ने एक शिष्य पाञ्चाल्य आरुणि से कहा कि जा खेत के पानी को बांध आ । परन्तु वह वहां जाकर खेत न बाँध सका । इस हेतु पानी बहने के पनाले में पड़ रहा । गृह पर उसे न देख धौम्य ऋषि वहां जा शिष्य का चरित्र देख अति प्रसन्न हुए हैं । वह शिष्य पीछे "उद्दालक" नाम से जगत् विख्यात हुआ । यह आख्यायिका धौम्य ऋषि का खेत करना सूचित करती है । इस के आगे कृषिकर्म्म सम्बन्धी एक सूक्त ही सुनाते हैं ।

'ऋग्वेद ४ । ५७ सम्पूर्ण सूक्त'

क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि ।
गामश्वं पोषयित्न्वा स नो मृलातीदृशे ॥ १ ॥

वामदेव ऋषि सब को उपदेश देते हैं कि हे मनुष्यो ! (वयम्) हम सब कोई (हितेन+इव) परम मित्र के समान (क्षेत्रस्य+पतिना) खेत के स्वामी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

के साथ होकर ही (जयामसि) विजय पाते हैं। अर्थात् खेत करने वाले पुरुष हम लोगों को त्रिविध अन्न पहुंचाते हैं तब ही हम लोग प्रत्येक कार्य्य को करने में समर्थ होते हैं। (सः) वह क्षेत्रपति (गाम्+अश्वम्) गौ, बैल और अश्व (पोषयित्नु) और पुष्टिकारक अन्यान्य पदार्थ (आ) सब तरह से हम लोगों को पहुंचाते हैं। जिस हेतु (ईदृशे) ऐसे ऐसे कार्य्यों में खेतिहर किसान (नः+मृलाति) हम को सुख पहुंचाते हैं इस कारण क्षेत्रपति सदा आदरणीय है।

क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मिं धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्चुतं घृतमिव सुपूत मृतस्य नः पतयो मृलयन्तु ॥ २ ॥

अब क्षेत्रपति की ओर देख कर वामदेव ऋषि कहते हैं कि (क्षेत्रस्य+पते) हे क्षेत्रस्वामिन् ! (धेनुः+इव+पयः) जैसे गौ दूध देती है वैसे ही (अस्मासु) हम लोगों के निमित्त (मधुमन्तम्) मीठी (ऊर्मिम्) जल धारा (धुक्ष्व) दो अर्थात् मीठा जल के लिये भी उपाय किया करो (मधुश्चुतम्+घृतम्+इव+सुपूतम्) मधुस्रावी पवित्र घृत के समान (ऋतस्य+पतयः) खेत के मालिक (नः) हम लोगों को (मृलयन्तु) सुख पहुंचाया करें ॥

मधुमती रोषधीर्द्याव आपो मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥ ३ ॥

पृथिवी पर (ओषधीः) जौ, गेहूं धान आदि अन्न (द्यावः) द्युलोकस्थ सूर्य्यादिपदार्थ (आपः) और मेघस्थजल ये (मधुमतीः) सब ही हमारे लिये मीठे होवें (नः) हमारे लिये (अन्तरिक्षम्) आकाशस्थ सब ही पदार्थ (मधुमत्+भवतु) मीठा होवे। (क्षेत्रस्यपतिः+मधुमान्+अस्तु) क्षेत्रपति भी मीठा होवे और हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी से द्रोह न करते हुए (एनम्+अनु+चरेम) क्षेत्रपति के अनुकरण करें। जैसे किसान बड़ी शान्ति और धैर्य्य के साथ खेती करता है। उसी प्रकार हम लोग सब कार्य्य करें।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रा मुदिङ्गय। ४।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(वाहाः) बैल (शुनम्) सुख को प्राप्त होवें । (नरः) खेती करने वाले मनुष्य (शुनम्) सुख पावें (शुनम्+कृषतु+लाङ्गलम्) खेतों में सुख से लांगल चले (शुनम्+वरत्राः) सुख पूर्वक रस्सियां (बध्यन्ताम्) बांधी जांय। (अष्ट्राम्) कोदाल आदि खेत करने की सामग्री (शुनम् , सुख से (उद्+इङ्गय) चलायो ।

शुनासीराविमां वाचं जुषेयां यद्दिवि चक्रतुः पयः । तेनेमा मुप सिञ्चतम् ॥ ५ ॥

हे [शुनासीरौ] सुख से खेती करने वाले नर नारियो ! [इमाम् वाचम्] इस उपदेश-मय वाणी को । [जुषेथाम्] प्रीति पूर्वक सुनो [यद्] जिस [पयः] पानी को [शुनासीरौ] सूर्य्य और वायु [दिवि] आकाश में [चक्रतुः] बनाते हैं [तेन] उस पानी से [इमाम्] इस भूमिको [सिञ्चतम्] सींचो।

अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा ।
यथानः सुभगा ससि यथानः सुफलाससि ॥ ६ ॥

(सुभगे+सीते) हे सुभगे हल सामग्री (अर्वाची+भव) पृथिवी के नीचे चलने वाली होवो । (त्वा+वन्दामहे) तेरी कामना हम करते हैं (यथा) जैसे तू (वः) हमारे लिये (सुभगा+असासि) सुभगा है और (यथा+नः) जैसे हमारे लिये (सुफला) अच्छे अच्छे फल देने वाली (असासि) है । वैसे ही सदा बनी रहो ।

इन्द्रः सीतां निगृह्णातु तां पूषानु यच्छतु ।
सा नः पयस्वती दुहा मुत्तरा मुत्तरां समाम् ॥ ७ ॥

(इन्द्रः) राजा (सीताम्+नि+गृह्णातु) हल के लाङ्गल को पकड़ कर चले (ताम्+अनु) पीछे उसका (पूषा) पोषण कर्ता मन्त्री (यच्छतु) चलावे अर्थात् राजा सीता अर्थात् खेती विद्या को खूब फैलावे और उसके पीछे मन्त्री आदि भी इसी का अनुकरण करें जिस से कि (सा) वह खेती (नः+पयस्वती+दुहाम्) हम लोगों को दूध देने वाली हो (उत्तराम्+उत्तराम्+समाम्) होने वाले वर्ष में वह हमको सुख देने वाली होवे ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
शुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम् ॥८॥

(नः) हम लोगों के लिये (फालाः) लोहे से बनाई हुई भूमि खोदने के लिये फार (शुनम्) अच्छे प्रकार (भूमिम्) भूमि को (वि कृषन्तु) चीर फार करें (कीनाशाः) खेतिहर लोग (वाहैः) बैलों के द्वारा (अभि+यन्तु) खेती के सब काम करें [पर्जन्यः] मेघ [मधुना+पयोभिः] मधुरता से युक्त जल को [शुनम्] सुख से बरसावे [शुनासीरौ] सूर्य्य और वायु [अस्मासु] हमारे निमित्त [शुनम्+धत्तम्] सुख पहुंचावें ॥ ८ ॥

कृषि कर्म्म सम्बन्धी मैंने अनेक ऋचाएं यहां सुनाई हैं। मैं देखता हूं हल-ग्राही पुरुष देश में अतिनिकृष्ट समझे जाते हैं। मिथिला देश में द्विज यदि अपने हाथ से हल चलावें तो वे जाति से निष्काशित होजांय। खेत के सब काम करेंगे। दिन भर खेत खोदेंगे। किरोनी करेंगे। काटना बोना दवाना खलियाना वगैरह में अपना सम्पूर्ण समय लगावेंगे। परन्तु अपने हाथ से हल नहीं चला सकते। इतना मैं अवश्य कहूंगा कि इन कामों में सदा लिप्त रहने से मनुष्य नीच बनजाता है। परन्तु क्या केवल एक ही हल को न छूने से कोई ब्राह्मण बना रह सकता है। नहीं। हल चलाने से क्या होता। बात यह है कि पठन पाठन स्वाध्याय आदि सब शुभ कर्म्म को छोड़ रात दिन केवल भूमि के खोदने में लगा रहना सर्वथा अनुचित है॥ खेती करवानी अवश्य चाहिये। तिरहुत में अभी तक एक विधि चली आती है कि माघ शुक्ल पञ्चमी को ब्राह्मण लोग भी अढ़ाई मोर हल स्वयं अपने हाथ से चलाते हैं। यह सूचित करता है कि यों हल चलाना अनुचित नहीं।

'चीन देश का राजा और हल चलाना'

"चीन देश में किसनई के काम का बड़ा आदर सम्मान किया जाता है। पीकिङ्ग नगर के समीप एक विशेष खेत है जहां बरस में एक बार महाराज और प्रधान लोग एकट्ठे हो के बड़ा सोहार करते हैं। एक बहुत विभूषित हल महाराज के हाथ में दिया जाता है जिस के द्वारा वह तीन कुड़ बनाता है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और हर एक राजकुमार पांच और बड़े २ राजमन्त्री नौकुड़ बनाते हैं। उस स्थान पर एक गाय की बड़ी मूर्ति मट्टी की बनी हुई और उस के पास मट्टी की ऐसी सैकड़ों छोटी २ मूर्ति रक्खी जाती हैं। जब खेत जोता गया तब भीड़ गाय की बड़ी मूर्ति को टुकरा २ कर के और छोटी मूर्ति को लूट कर ले-जाती हैं और उन की मिट्टी को पीस कर अपने २ खेतों में डालती है" ! चीन देश चित्रमाला पृ० ४४

'वस्त्रवयन (कपड़ा बुनना)'

वस्त्र निर्म्माण कर्म्म को आज कल लोग बहुत निन्दनीय मानते हैं। परन्तु मैं पूछता हूं कि भारत वर्ष भर में सब वर्णों के पुरुष कपास पैदा करते हैं। प्रायः सब वर्णों की स्त्रियां चरखा कातती हैं इस प्रकार उत्तम से उत्तम सूत बनालेती हैं ! जब इतने काम करलेती हैं तो वस्त्र बुनने में क्या दोष आगया है। अति शोक की बात है कि बुनाई को बुरी और कताई को अच्छी मानें। हां इतनी बात अवश्य है कि बुनाई के हेतु अनेक सामग्री की आवश्यकता है। जो प्रत्येक मनुष्य नहीं रख सकता है यह सत्य है। परन्तु जो धनिक समर्थ हैं वे रक्खें और इस का व्यापार भी करें इस में क्या क्षति। परन्तु मैं देखता हूं वस्त्र-वयनकर्ता तन्तुवाय (जुलाहे) की एक पृथक् जाति ही भारत में बनी हुई है। और सभ्य समाज में नीच मानी जाती है। इस श्रमजीवी को नीच मानना बहुत ही अनुचित है। यदि यह वस्त्र न बनाये तो शोभा सुन्दरतादि सब ही जाती रहे सब जङ्गली बन जांय।

मैं इस प्रकरण में दिखलाऊंगा कि ऋषि लोगों को भी वस्त्र बनाने की आज्ञा है। और पूर्व समय में रूई कातना बनाना आदि के समान प्रत्येक गृह में देविएं विविध प्रकार के वस्त्र भी अपने हाथ से बुनलेती थीं। यह कर्म्म अनुचित नहीं माना जाता था। जैसे आज कल द्विज भी कम्बल, शाल, दुशाल, पीताम्बर, अनेक प्रकार के कौशेयवस्त्र, खाटिया चारपाय, पर्यङ्क वगैरह बना लेते हैं और इस कर्म्म को अनुचित नहीं मानते हैं। वैसे ही पूर्व समय में सब वर्णों के नर नारिएं सब प्रकार के वस्त्र बुन लिया करते थे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'ऋषि और मेषलोम से वस्त्र वयन'

प्रत्यर्धिर्यज्ञाना मश्वहयो रथानाम् । ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥ ५ ॥ आधीषमाणाया: पतिः शुचायाश्च शुचस्यच । वासोवायोऽवीना मावासांसि मर्मृजत् ॥६ ऋ० १०।२६॥

ऋषि कौन कौन कार्य्य करते हैं इस का संक्षेप वर्णन है । [ऋषिः] ऋषि [यज्ञानाम्+प्रत्यर्धिः] यज्ञों के फैलाने वाले हैं । [रथानाम्+अश्वहयः] रथ सम्बन्धी अश्व विद्या के ज्ञाता । ऐसे [य] जो ऋषि हैं [सः] [मनुर्हितः] वे मनुष्य हितकारी होते हैं और [विप्रस्य+यावयत्सखः] मेधावी विद्वानों के दुःखों के नाश करने वाले सखा हैं ॥ ५ ॥ पुनः (आधीषमाणायाः) बच्चा देने वाली भेंडी [शुचायाः] लोमों से देदीप्यमान भेडी और (शुचस्यच) शुद्ध भेड़ का (पतिः) पालक हैं और (अवीनाम्) भेडियों के बालों से (वासोवायः) वस्त्र बुनने वाले हैं और [वासांसि] बुने हुए अनेक वस्त्रों की [आ+मर्मृजत्] परिशोधन करने हारे हैं ।

अवि=भेंड़ भेड़ी । वास=वस्त्र । यहां विस्पष्ट कहा गया है कि लोग वस्त्र ऋषि लोग निर्माण करते हैं । अनेक ऋचाओं से पता लगता है कि मनुष्यमात्र को बकरी, भेंड़ आदि पशु रखने की आज्ञा है । जब ऋषियों को वस्त्र बुनने की आज्ञा है तब जुलहे को हम क्यों कर घृणित मान सकते हैं ।

'विद्वान् को वस्त्र वयन करना'

सीसेन तन्त्रं मनसा मनीषिण ऊर्णासूत्रेण कवयो वयन्ति । यजु० । १९ । ८० ॥

[मनीषिणः] मननशील पुरुष [सीसेन+तन्त्रम्] सीस = सीसा धातु से [तन्त्रम्] अंगद=भूषणविशेष [वयन्ति] बनाते हैं और [कवयः] विद्वान् पुरुष [ऊर्णासूत्रेण] ऊनी सूत से [तन्त्रम्+वयन्ति+मनसा] विचार पूर्वक पट बनाते हैं ।-'तन्त्रं राष्ट्रेच सिद्धान्ते परच्छन्दाप्रधानयोः । अंगदे कुटुम्बकृत

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तन्तुवाने परिच्छदे ॥ इति ॥ 'तन्त्र' शब्द अनेकार्थ है। यहां विस्पष्ट कहा है कि मनीषी और कवि लोग परिधयभूषण और ऊनीवस्त्रवयन करते हैं। वैदिक और आज कल के सिद्धान्त में कितना भेद होगया है।

"जुलहे का व्यवसाय"

तन्तुं तन्वन् रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान्। अनुल्वणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम्। १०। ५३। ६।

तन्तुम्। तन्वन्। रजसः। भानुम्। अन्विहि। ज्योतिष्मतः। पथः। रक्ष। धिया। कृतान्। अनुल्वणम्। जोगुवाम्। अपः। मनुः। भव। जनय। दैव्यम्। जनम्।

हे मनुष्यो! (रजसः+भानुम्) अनेक रंग के प्रकाशक किरण के समान देदीप्यमान (तन्तुम्+तन्वन्) सूत को बनाते हुए आप (अनु+इहि) पूर्वजों का अनुकरण किया करें और इस प्रकार (धिया+कृतान्) ज्ञान के द्वारा निर्मित [ज्योतिष्मतः पथः] उत्तम पथ अर्थात् वस्त्रादिकनिर्म्माणकर्म्म को [रक्ष] रक्षा कीजिये। और [अनुल्वणम्] शान्ति पूर्वक [जोगुवाम्] जोगू = जुलहों के [अपः] कार्य्य को [वयत] करो। इस प्रकार [मनुः+भवः] मननशील मनुष्य बनो और सदा [दैव्यम्+जनम्] उत्तम स्वभाव के मनुष्य को [जनय] उत्पन्न करो।

"अप" नाम कर्म्म का है। नि० २–१–] 'धी' यह नाम भी कर्म्म का है! "वयत" वेञ् तन्तुसन्ताने 'वे' धातु का प्रयोग बुनाने अर्थ में सदा आता है। इसी हेतु जुलहे को 'तन्तुवाय' कहते हैं, [तन्तुम्+वयतीति] यहां 'जोगू' नाम जुलहे का है॥ इसी शब्द से 'जुलहा' पद निकला है।

'स्त्री और वस्त्र निर्म्माण'

पुनः समव्यद् वितनं वयन्ती मध्या कर्तोर्न्यधाच्छक्मधीरः २।३८।४

पुनः = पुनः पुनः। समव्यत् समिट्टती है। वितत+विस्तीर्ण। वयन्ती =

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कातती हुए सूत बनाती हुई नारी । मध्या = मध्य। कर्तोः = कर्म्म । न्यधात = रखता है । शक्म = शक्य । धीर ।

रात्री [वयन्ती] वस्त्र बुनती हुई नारी के समान [वितत्य] विस्तीर्ण आलोक को [पुनः समव्यद्] पुनः पुनः पूर्ववत् समिटती है । और [धीरः] धीर पुरुष [कर्तोः] कर्म्म [शक्म] जो करने योग्य था उस कर्म्म को [मध्या] बीच में ही [न्यधात्] छोड देते हैं । क्योंकि सन्ध्योपासन का समय उपस्थित हुआ । यह सन्ध्याकाल का वर्णन है ।

'वयन्ती वस्त्रं वयन्ती नारीव' सायण । इस से सिद्ध है कि स्त्रियां वस्त्र बुनती थीं।वेदों में विविध प्रकार से वर्णन आतेहैं। कहीं साक्षात् कहीं परम्परा से। यहां उपमामात्र से दिखलाया गयाहै कि सब नारी को भी वस्त्र वयन करना वेद विहित है । ऐसी उपमा प्रायः वेद आती रहती है यथा—

साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्त वय्येव रण्विते तन्तुं ततं संव्ययन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती । २ । ३ । ६

यहां 'वयी' शब्द का प्रयोग ही कहता है कि स्त्री को कपडा बुनना चाहिये । क्योंकि यह शब्द स्त्री लिङ्ग है ।

विवाह पद्धति में स्त्री को वस्त्र देने के समय एक ऋचा पढ़ी जाती है । इस का यही भाव है कि कातना बुनना सीना पिरोना किनारे में झालर आदि लगाने का कार्य्य स्त्रियां करें। वह यहहै ।

या अकृन्तन्नवयन् याश्चतत्निरे या देवीरन्ताँ अभितो ददन्त। तास्त्वा जरसे संव्ययन्त्वायुष्मतादं परिधत्स्व वासः । अथर्ववेद । १४ । १ । ४५ ।

[याः+देवीः] जिन देवियों ने [अकृन्तन्] प्रथम रूई को चरखे में कातता है । [अवयन्] पीछे वस्त्र वयन किया है और [याश्च] जिन देवियों ने [ततनिरे] उस वस्त्र में अन्य सूत लगा लगा कर (जैसे कि कपडों पर बेल, बूटे लगाये जाते है) विस्तृत किया है [याः] और जिन्हों ने [अभितःअ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्तान्+अददन्त] वस्त्र के चारों कोरों में अन्त अर्थात् झालर आदि दिये है [ताः] वे सब देवियें [जरसे] पूर्णायुःप्राप्त्यर्थ । [त्वा+संव्ययन्तु] तुम को कपड़े से ढाकें [आयुष्मति] हे आयुष्मति कन्ये [इदं+वासः] यह वस्त्र [परि+धत्स्व] पहनो ।

यह अथर्ववेदी ऋचा क्या उपदेश देती है यह विचारने की बात है । मन्त्र में 'देवी' पद आया है शुभ गुणों से युक्त विदुषी धीरा कुलीना स्त्री को देवी कहते हैं । जब कुलीना स्त्री वस्त्र वयन करती है तो अन्यान्य स्त्री की बात ही क्या रही हे विद्वानो ! निःसन्देह वेद को त्याग चलने से ही भारत की यह दुर्दशा प्राप्त हुई है ।

विवाह पद्धति में इस प्रकार पाठ है यथा—

या अकृन्तन्नवयन् याअतन्वत याश्च देवी स्तन्तू नभितोततन्थ । ता स्त्वा देवीर्जरसे संव्ययन्त्वाऽऽयुष्मतीदं परिधत्स्ववासः । अत्र गदाधरकृत भाष्यम् । या देवीः देव्यः इदं वासः अकृन्तन् कर्तितवत्यः । या अवयन् वीतवत्यः वेञ् तन्तुसन्ताने ओतवत्य इत्यर्थः । यास्तन्तून् सूत्राणि अतन्वत प्रोतवत्यः तिर्य्यग् तन्तून् विस्तारितवत्य इत्यर्थः । चकाराद्या ओतान् प्रोतांश्च तन्तूनभित उभयपार्श्वयो रपि ततन्थ तेनुः । तुरीवेमादि व्यापारेण ग्रथितवत्यः । ताः तत्तत्सामर्थ्यदात्र्यो देव्यः स्वकार्य्यरूपवादिदं वासः त्वा त्वां जरसे दीर्घकालनिर्दुष्ट जीवनाय संव्ययस्व परिधापयन्तु । पुरुषादि व्यत्ययश्छन्दसः । अतोहेनाः आयुष्मति ! इदं एतादृशं वास परिधत्स्व । उत्तरीयत्वेन वृणीष्व ॥ पुनः—

ये अन्ता यावतीः सिचो य ओतवो ये च तन्तवः ।
वासो यत्पत्नीभिरुतं तन्नः स्योनमुप स्पृशात् ॥ १४ । २ । ५१ ॥

अन्त = किनारे के झालर आदि । सिच = छींटें, कपड़े के ऊपर बेल बूटे। ओतु = तिरछे सूत । तन्तु = सूत । वास = वस्त्र । पत्नी = पतिव्रता स्त्री । उत = बुना है । स्योन = सुख । उपस्पृश = स्पर्श ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ये+अन्ताः) जो ये अन्त = झालरें हैं । (यावतीः+सिचः) जितनी ये छींटें = बेल बूटे हैं (ये+ओतवः+ये+च+तन्तवः) जो ये ओतु और तन्तु हैं और (यत्+वासः+पत्नीभिः+उतम्) जिस वस्त्र को कुलीना स्त्रियों ने बुना है (तत्+नः+स्योनम्+उपस्पृशात्) वह सब ही हमारे सुखस्पर्शी होवें अर्थात् सुन्दर और कोमल होवें ।

अब क्या सन्देह हो सकता है ?

'वस्त्रवयन-विद्या-प्रचारार्थ पाठशाला'

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥६।९।२॥

तन्तु=सूत । ओतु = टेढ़े सूत । वयन्ति=बनाते हैं । समर = स्थान । अतमान= चेष्टमान ॥

(अहं+तन्तुम्+न+वि+जानामि) मैं सूत नहीं जानता हूं और (न+ओतुम्) वस्त्र बुनने में जो टेढ़े सूत दिये जाते हैं उन्हें भी मैं नहीं जानता हूं और (यम्) तन्तु और ओतु से जिस पट को (समरे+अतमानाः) अपने २ स्थान में परिश्रम करते हुए मनुष्य (वयन्ति) बुनते हैं उसे भी नहीं जानता हूं इस प्रकार (इह) यहां (कस्य+स्वित्+परः पुत्रः) किसी का चतुर पुत्र (अवरेण+पित्रा) अपने अज्ञानी पिता से (वक्त्वाने+वदाति) वचन कहता है ।

अभिप्राय यह है कि कोई श्रमजीवी पुरुष अपने पिता से पूरी शिक्षा न पाकर कहता है कि मैं वस्त्रनिर्माण विद्या भी नहीं जानता जीविकोपाय कैसे करूं । इस प्रकार जीविका का सहज उपाय वस्त्र-निर्माण है यह उपदेश इस ऋचा से दियाजाता है । यदि पिता अपने पुत्र को शिक्षा न दे सके तो अन्यत्र भेजकर इस विद्या का अध्ययन अपने पुत्र को करवावे ! इसकी शिक्षा आगे के मन्त्र में दी जाती है ।

स इत्तन्तुं स वि जानाम्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा ददाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥३॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(सः+इत्+तन्तु+विजानाति) वही आचार्य्य तन्तु को जानता है (ओतुम्) ओतु को भी जानता है। केवल वह जानता ही नहीं किन्तु (सः) वह (ऋतुथा) प्रत्येक ऋतु में (वस्त्रानि+ददाति) वस्त्रनिर्माण-सम्बन्धी वक्तृता भी देता है। क्योंकि (यः+ईं+चिकेत) जो ही इस कर्म को जानता है (तत्) वही अमृतस्य) इस अमृत विद्या वा कर्म्म का (गोपाः) रक्षक होता है पुनः (अवः) वह अवश्य रक्षक होता है (परः) परोपकारी चतुर वह अध्यापक (अन्येन) अन्य दूसरे ज्ञान से (पश्यन्) सबको देखता हुआ (चरन्) व्यवहार करता है। अर्थात् इस के लिये पाठशाला बनी हुई है। वहां इस की वक्तृता ऋतु ऋतु में होती है। जो इस विद्या को जानता है। वही अवश्य इसका रक्षक भी होता है। क्योंकि ज्ञान से सब को वह बराबर देखता हुआ इस विद्या को देने के लिये सब के साथ समान व्यवहार रखता है।

इन दो ऋचाओं से पता लगता है कि वस्त्रनिर्माणविद्या कठिन है परन्तु इसकी इतनी आवश्यकता है कि इसके लिये पृथक् पाठशाला होनी चाहिये जिस में अध्यापक इसकी पूरी शिक्षा दे देश में कल्याण का मार्ग खोलें। २८ कोटि मनुष्य इस भारतवर्ष में आज कल विद्यमान हैं। दरिद्र से दरिद्र पुरुष भी वर्ष में दो चार वस्त्र अवश्य खरीदता है। इस विद्या से रहित देश को भाग्यहीन समझना चाहिये। यह व्यवसाय निर्दोष है। सब को करना करवाना उचित है हे विद्वानो! मैंने अनेक मन्त्र वेद से सुनायेहैं। किसी में क्या इस व्यवसाय की निन्दा है?। यज्ञ में वस्त्र देने के समय मन्त्र क्यों पढ़े जाते हैं?। बृहस्पति देवी आदि पद क्यों आए हैं?। इस सब का यही भाव है कि यह व्यवसाय बड़े बड़े कुलीन पुरुष भी किया करें। क्या आज के लोग ऋषियों से भी बढ़ गए? फिर इस को करते हुए क्यों अपने को नीच मानते हैं अथवा कुलीन पुरुष भी इस को क्यों नहीं आरम्भ करते हैं?।

चीन देश की महारानी और वस्त्र बुनना।

" चीनी कहते हैं कि कौशलेश्वर का बनाना हमारे देश का एक बहुत ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुराना उद्यम है। वे यह भी कहते हैं पहिले पहिल किसी महारानी ने कौशाम्बर को काता और उस से कपड़ा बिना था। और इसी लिये नवें मास का एक दिन स्थापित हुआ जिस में उसकी पूजा की जाती है और जैसे ऊपर वर्णन हुआ है कि महाराजा खेत में जाके हल जोतता है उसी रीति से महारानी अपनी सहेलियों सहित उस दिन को जाती हैं और तूंत की पत्तियों को बटोरती और तन्तु कीटों को खिलाती और उनके कितने कोषों को खोल कर उन से सूत लपेटती हैं। चीन देश चित्रमाला पृ० ५०

'रथकार, स्वर्णकार, कुम्भकार आदि'

अब मैं आप लोगों को रथकार आदि के विषय में कुछ कहना चाहता हूं काष्ठ, धातु, मृत्तिका और चर्म्म आदि पदार्थों से जो लोग विविध गाड़ी, रथ, भाजन, ज्या, धनुष, वर्म्म, यज्ञ पात्रादि निर्माण करते हैं उनका प्राचीन एक नाम 'तक्षा' है। क्योंकि (तक्षूत्वक्षू तनूकरणे) किसी पदार्थ से काट २ कर वस्तु बनाने वाले का नाम 'तक्षा' है। यद्यपि आज कल तक्षा शब्द की प्रवृत्ति केवल 'बढ़ई' में हैं। परन्तु प्राचीन काल में लोहकार, स्वर्णकार, कुम्भकार, चर्म्मकार प्रभृति को भी यहीं नाम दिया जाता था। आगे के वर्णन से यह प्रतीत होगा। आप लोग इस प्रकरण में देखेंगे कि इन श्रमजीवी व्यवसायी रथकार कुम्भकारादिकों की कितनी प्रतिष्ठा वेद में विहित है। इनके लिये धीर, विद्वान् विपश्चित, देव, निपुण, सुन्दर, प्रशंसार्ह, यज्ञिय आदि शब्द आए हैं। इनको ऋषि लोग स्वयं शिक्षा दिया करते हैं। यहां तक एक मन्त्रमें (१) इनकी प्रशंसा आई है कि वे ही ऋषि हैं। वे ही शूर हैं। वे ही वाण के चलानेवाले हैं। जिसको वे बचाते हैं वे ही विजयी होते हैं। इत्यादि। क्यों? इसमें क्या सन्देह है कि ये ऋषि हैं। क्योंकि वेदों के मन्त्रों को देख कर ही उन्हों ने अनेक परमोपयोगी युद्ध की सामग्री से लेकर खाने पीने तक के सारे भाजन वर्तन आविष्कृत किये। नवीन २ वस्तु बना कर दी। यही तो ऋषियों का आदिसृष्टि में मुख्य

(१) स वाज्यर्वा सऋषि र्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः।
स रायस्पोषं सुवीर्यं दध यं वाजो विम्बाँ ऋभवो यमाविषुः ॥४। ३६। ६॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कार्य्य था। अतः इन श्रमजीवी मनुष्यों का वेदानुकूल बड़ा आदर होना चाहिये। आज कल ये भी स्वयं कुछ गिर गये हैं इस का कारण मैं यही समझता हूं कि ये सभासमाज से जितने ही पृथक् किये गये उतने ही गिरते गये। इनकी बड़ी उन्नति करनी चाहिये। अब ऋचाओं पर ध्यान दीजिये।

'तक्षा का आश्चर्यजनक कार्य'

अनश्वो जातो अनभीशु रुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परि वर्तते रजः।
महत्तद्वो देव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवीं यच्च पुष्यथ ॥१॥
मण्डल ४। सू० ३६ ॥

(ऋभवः) हे रथबनाने वाले मनुष्यो! आपकाकाम परम प्रशंसनीय है क्योंकि (रथः) आपका बनाया हुआ रथ (रजः+परिवर्तते) आकाश में भ्रमण करता है। वह रथ कैसा है (अनश्वः जातः) विना घोड़े का। पुनः (अनभीशुः) ग्रग्रहरहित अर्थात् लगाम रहित (उक्थ्यः) प्रशंसनीय (त्रिचक्रः) तीन पहिया युक्त ईदृग् रथ आपने तैय्यार किया है इस हेतु (वः) आप लोगों का (देव्यस्य+प्रवाचनम्) दिव्य आश्चर्य्ययुक्त कर्म्म के प्रख्यात करने वाला (तत्+महत्) वह महान् कर्म्म है (यत्) जिस कर्म्म से (द्याम्+पृथिवीं+पुष्यथ) अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों को पुष्ट करते हैं। अर्थात् आप के बनाए विविध प्रकार के रथ पृथिवी ओ आकाश दोनों में व्यापक हो रहे हैं। इस हेतु आप पूज्य हैं॥१॥ यहां 'अनश्व' 'अनभीशु' आदि शब्द सूचित करता है कि ऐसे रथ बनाए जा सकते हैं जो आकाश में अच्छे प्रकार चल सकें।

रथनिर्माण करना और यज्ञ में भाग लेना।

रथं ये चक्रुः सुवृतं सुचेतसोऽविह्वरन्तं मनसस्परिध्यया।
ताँऊन्वस्य सवनस्य पीतय आ वो याजा ऋभवो वेदयामसि ॥२॥

(ये+सुचेतसः) जो बढ़ई शुद्ध चित्त हो कर (मनसः परि+ध्यया) मन के ध्यान से (सुवृतम्) सुन्दर गोल (अविह्वरन्तम्) टेढ़ा नहीं किन्तु सीधा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(रथम्+चक्रुः) रथ बनाते हैं (वाजाः+ऋभवः) हे विज्ञानी तक्षाओ ! (तान्+ऊ+वः) उन सब लोगों को (अस्य+सोमस्य+पीतये) इस सोम यज्ञ में खाने पीने के लिये (आवेदयामसि) निमन्त्रण देते हैं ॥२॥

'वृद्ध पिता माता को युवा बनाना'

तद्वो वाजा ऋभवः सुप्रवाचनं देवेषु विभ्वो अभवन्महित्वनम् ।
जिव्री यत्सन्ता पितरा सनाजुरा पुनर्युवाना चरथाय तक्षथ ॥३॥

हे (वाजाः+ऋभवः) हे विज्ञानी तक्षाओ ! आप लोग (विभ्वः) विभू=बड़े शक्तिमान् हैं इस हेतु (वः) आप लोगों को (तत्+महित्वनम्) वह माहात्म्य (देवेषु) परम विज्ञानी पुरुषों में (सुप्रवाचनम्+अभवत्) कथन योग्य हुआ । अर्थात् परम विज्ञानी पुरुषों के समाज में भी आप के गुणों की चर्चा होती रहती है । कौन वह कर्म्म है सो कहते हैं । आप के (पितरौ) पिता माता (जिव्री) वृद्ध और (सनाजुरा+सन्ता) अत्यन्त जीर्ण होने पर भी (चरथाय) स्वच्छन्द विचरण करने को (पुनःयुवानौ+तक्षथ) उन को पुनः आप युवा बनाते हैं । (यत्) यह जो आप का कार्य्य है वह प्रशंसनीय है । ३

प्रायः इस वर्णन को सुन कर आप को आश्चर्य्य लगा होगा कि वृद्ध और जीर्ण पुरुष को कोई युवा कैसे बना सकता है । ठीक है । परन्तु सुनिये यह तक्षा अर्थात् खाती का वर्णन है । ये लोग विविध प्रकार के रथ बनाते हैं जो पृथिवी और आकाश दोनों स्थानों में अच्छे प्रकार चलते हैं । अब आप विचार सकते हैं कि खाती अपने पिता माता को कैसे युवा बनाते हैं । परम वृद्ध होने पर भी युवा पुरुष के समान पृथिवी आकाश में खाती के पिता माता रथ पर चढ़ विचरण करते हैं । प्रत्युत युवा पुरुष से भी बढ़ कर सर्वत्र भ्रमण करते हैं । यह केवल खाती विद्या की प्रशंसा दिखलाई गई है ।

'तक्षा का आश्चर्य्य कार्य्य और चमड़े से गौ बनाना'

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्व मृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥४॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे तक्षाओ ! (एकम्+चमसम्) एक ही पानपात्र को (चतुर्वयम्) चार अवयव वाला (कृणुत) बनाओ । और जिस की माता मर गई हो ऐसे वत्स (बच्चे) के लिये (धीतिभिः) अपनी बुद्धि से (गाम्+) नूतन गौमाता को (निः—अरिणीत) अच्छे प्रकार बनाओ । (अथ) तब (देवेषु) देवों में (अमृतत्वम्+आनश) अमरत्व को लाभ करो (वाजाः+ऋभवः) हे विज्ञानी ऋतिओ ! (श्रुष्टी) शीघ्र (वः) आप का (तत्+उक्थ्यम्) वह कर्म्म प्रशंसनीय होवे ।

वर्तन बनाने की किसी विशेष रीति का वर्णन है कि वह पात्र देखनेमें एक प्रतीत हो परन्तु उस में चार हों । अर्थात् एक ही वर्तनको जब चाहें तब दो तीन चार पांच छः सात आठ नौ कार्य्य एकसाथ ले सकें । और चाहें तो उससे एक ही कार्य्य लें । ऐसा वर्तन बनाओ ॥ और चमड़े की माता ऐसी बनाओ कि मृतमातृक बालकों को यह प्रतीत न हो कि यह मेरी माता नहीं है । और उसी माता से उन बालकों को स्तन्यपान भी मिला करे । इत्यादि वस्तु बनाने की शिक्षा यहां पाई जाती है ॥ यहां देखते हैं कि चमड़े का कार्य्य भी तक्षा के ही लिये कहा हैं ।

'तक्षा की प्रशंसा'

स वाज्यर्वा सऋषिर्वचस्यया स शूरो अस्ता पृतनासु दुष्टरः ।
स रायस्पोषं स सुवीर्यं दधे यं वाजो विभ्वाँ ऋभवोयमाविषुः ॥६॥

(सः+वाजी+अर्वा) वही वेगवान् अश्व है (सः+वचस्यया+ऋषिः) वही स्तुतिसमन्वित ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञानी है (सः शूरः+अस्ता) वही अस्त्र फेंकने वाला शूर है (पृतनासु+दुस्तरः) संग्राम भूमि में वही दुस्तर है (सः+रायस्पोषम्+धत्ते) वही धन सम्पत्ति रखता है (सः+सुवीर्य्यम्) वही सुवीर्य्य रखता है (यम्) जिस पुरुष को (वाजाः) ज्ञानी (विभ्वान्) समर्थ और (ऋभवः) काटने में निपुण तक्षागण (आविषुः) रक्षा करते हैं ।

वेद का एक ऐसा नियम देखा जाता है कि जो पुरुष जिस कर्म्म को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता है वह कर्म्म ही साक्षात् उस में अध्यारोप किया जाता है। जैसे अग्नि से पाक और अन्न बनाता है। अतः अग्नि को कहेंगे कि तू पाचक है। तू अन्न बनाने वाला है। इत्यादि। इसी प्रकार तक्षा उत्तम उत्तम रथ आकाश पृथिवीपर विना घोड़े के चलने वाला बनता है अतः तक्षाऽनुगृहीत पुरुष मानों साक्षात् घोड़ा ही है क्योंकि घोड़े के समान दौड़ता है इत्यादि।

'तक्षा के लिये धीर, कवि, और विपश्चित् शब्द'

श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं स्तोमो वाजा ऋभवस्तं जुजुष्टन।
धीरासो हि ष्ठा कवयो विपश्चित स्तानू व एना ब्रह्मणा वेदयामसि॥७॥

हे (वाजाः+ऋभवः) विज्ञानी तक्षाओ! (वः) आप का (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ (दर्शतम्) दर्शनीय (पेशः) रूप (अधि+धायि) सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस कारण (स्तोमः) यह हमारा स्तव है (तम्+जुजुष्टन) इसे सेविये। आप लोग (धीरासः) धीर (कवयः) कवि और (विपश्चितः) विपश्चित=विद्वान् (हि+स्थः) प्रसिद्ध हैं (तान्+वः) उन प्रसिद्ध आप लोगों को एना+ब्रह्मणा इस वाणी से (आवेदयामसि) आवेदन करते हैं। निपुण तक्षा की प्रशंसा करनी चाहिये। उस के यश को बढ़ा चढ़ा कर गाना चाहिये जिस से कि वह उत्साहित हो नवीन कला कौशल और शिल्प विद्या निकाला करे। यह इस से उपदेश है।

एतं वां स्तोम मश्विनावकर्म्मा तक्षाम भृगवो न रथम्।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्य्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः॥१०।३९।१४

(भृगवः+न+रथम्) जैसे भृगुगण अर्थात् बुद्धिमान् तक्षागण सुन्दर सुगठित रथ प्रस्तुत करते हैं तद्वत् (अश्विनौ) हे अश्विनौ हे राजन्! तथा राज्ञि! (वाम्) आप दोनों के निमित्त (एतम्+स्तोमम्) इस स्तोम को (अकर्म) बनाया है (अतक्षाम) अच्छे प्रकार ग्रथित किया है और (मर्य+न+योषणाम्) जैसे विवाह के समय जामाता को देने के हेतु कन्या को भूषणालंकृत करते हैं और जैसे (तनयम्+सूनुम्+न) वंशवृद्धिकर पुत्र को संस्कृत करते हैं तद्वत्

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(दधानाः) यज्ञ कर्म्म करते हुए हम लोग (नि+अमृक्षाम) आप के लिये यह स्तोम संस्कृत करते हैं उसे सुनें । सायण–'रथकारा भृगवः' भृगु का अर्थ रथकार करते हैं । इस से सिद्ध है कि बुद्धिमान् पुरुष का यह कार्य्य है ।

'विद्वान् तक्षा को वाशी और किला वगैरह बनाना'

सतो नूनं कवयः संशिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।
विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्व मानशुः ॥
१० । ५३ । १० ।

(कवयः+विद्वांसः) हे मेधावी विद्वानो ! (नूनम्+सतः) निश्चिन्त होकर वाशी नामक अस्त्र शस्त्रों को (संशिशीत) अच्छे प्रकार तीक्ष्ण करें (याभिः-वाशीभिः) जिन वाशियों से आप लोग (अमृताय) अमृत के योग्य होवें (तक्षथ) उस प्रकार इस कार्य्य को सम्पादन करें हे विद्वानों ! (गुह्यानि+पदा) गुह्य निवास स्थानों किला वगैरह को (कर्तन) बनाओ (येन) जिस से (देवासः) आर्य्य लोग (अमृतत्वम्+आनशुः) अमरत्व को प्राप्त होवें । सायण-संशिशीत=अत्यर्थं तीक्ष्णीकुरुत । सतः=सन्तः ।

यहां भी कवि और विद्वान् शब्द तक्षा के लिये आया है । और गुह्य भवन बनाना भी तक्षा ही का कर्तव्य देखते हैं उस से प्रतीत होता है कि जो मकान बनाने वाले स्थपति अर्थात् राज नाम से प्रसिद्ध हैं वे भी पूर्व समय में तक्षा कहलाते थे ।

'तक्षा को लोहे का परशु और खाने पीने को वर्तन बनाना'

त्वष्टा माया वेदपसा मपस्तमो विभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा । शिशीत नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चा देतशो ब्रह्मणस्पतिः
१० । ५३ । ९

यह [त्वष्टा] बढ़ई=खाती, तखान (१) [मायाः] पात्र निर्म्माण के

(१) तक्षा तु वर्द्धकिस्त्वष्टा रथकारस्तु काष्ठतट् । तक्षा, वर्द्धकि, त्वष्टा, रथकार और काष्ठतट् ये पांच नाम खातो के हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्व कर्म्मों को [वेत्] जानता है। इसी हेतु [अपस्तमः] कर्म्म करने वालों में अति प्रशंसनीय है। और अपनी दूकानों पर [शन्तमा] अतिशय सुखकारी [देवपानानि] विद्वान् लोग जिस में खा पी सकें ऐसे [पात्रा] विविध पात्रों को [विभ्रत्] रखते हुए [नूनम्] निश्चिन्त होकर [परशुम्] 'परशु' नामक शस्त्र को [शिशीते] तीक्ष्ण कर रहा है। वह पात्र कैसा है [स्वायसम्] सु+आयस=सुन्दर लोहे से बना हुआ। [येन] जिस परशु से [एतशः+ब्रह्मणस्पतिः] यह मन्त्रवित् याज्ञिक पुरुष [वृश्चात्] पात्रों को छेदते हैं। सायण=मायाः कर्म्माणि। शिशीते तीक्ष्णयति।

यहां तक्षा के अनेक कर्म्म देखते हैं। थाली, लोटा आदि, देवपानपात्र अर्थात् खाने पीने के पात्र और कुल्हारी, कुदाल, कुठार, वाशी [वसूला] रुखान आदि परशु अर्थात् काटने के विविध लोह निर्मित वस्तुएं बनाने की आज्ञा तक्षा को है। अतः लोहार, कसेरा आदि को भी तक्षा कह सकते हैं।

'तक्ष कर्तृक वस्त्र वयन'

त्वष्टा वासो व्यदधात् शुभे कं बृहस्पतेः प्रशिषा कवीनाम्।
तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्य्यामिव परि धत्तां प्रजया॥
अथर्व० १४। १। ५३॥

(शुभे+कम्) कल्याण के हेतु (बृहस्पतेः) आचार्य्य और (कवीनाम्) इस विद्या में निपुण विद्वानों की (प्रशिषा) उत्तम शिक्षा से (त्वष्टा) खाती (वासः+व्यदधात्) वस्त्र बनाता है। (तेन) उस त्वष्टृकृत वस्त्र से (सूर्य्याम्+इव) उषा के समान (इमाम्+नारीम्) इस परिणीत नारी को (सविता) पुत्रोत्पादक स्वामी और (भगः+च) सेवा करने वाले देवर ये दोनों (प्रजया) प्रजा=सन्तति सहित (परि+धत्ताम्) संवृत=अर्थात् ढांका करें।

भाव इसका यह है कि जैसे आज कल भी किसी किसी कारीगर की वस्तु सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है वैसे ही जिस तन्तुवाय के कपड़े अच्छे सुथर चिकने सुन्दर बनते हों यथाशक्ति यहां से लाकर पत्नी को कपड़ा देवें। इस से लाभ यह है कि उस विद्वान् परिश्रमी तन्तुवाय को लाभ पहुंचने से उसका उत्साह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिन द्विगुणित होता जायगा और भी उत्साह से विद्वानों की शिक्षाग्रहण कर उस विद्या में तरक्की करता रहेगा इसी हेतु यहां 'बृहस्पति' और 'कवि' दो पद आए हैं। और स्त्री जाति की शोभा भी बढ़ती है।

सविता=सूञ्=प्रसवे। स्वामी। भग=भज सेवायाम्। सेवा करने वाले देवर आदि। यहां वस्त्र उपलक्षणमात्र है प्रत्येक आवश्यकीय और प्रयोजनीय पदार्थ से स्त्री का सत्कार किया करें।

'शिशुक्रीडनक' (खेलौने)

य इन्द्राय वचोयुजा ततक्षु र्मनसा हरी।
शमीभिर्यज्ञ माशत। ऋ० १। २०। २॥

(ये) जो खाती (मनसा) मन से अर्थात् प्रीति से (इन्द्राय) क्रीड़ाशील बच्चों के लिये (वचोयुजा) वाणी युक्त (हरी) दो घोड़े (शमीभिः) शमी नामक लकड़ियों से (ततक्षुः) बनाते हैं। वे खाती [यज्ञम्+आशत] यज्ञ में आवें।

वचोयुक्=वाणी से युक्त। घोड़े का खिलौना ऐसा बनावे कि जो ठीक घोड़े के समान हिन हिनावे। 'हरी' यह द्विवचन पद है। प्रायः गाड़ी में दो २ घोड़े जोते जाते हैं। अतः द्विवचन है। जोड़े से तात्पर्य्य है। ऐसी २ जगह में 'इन्द्र' शब्दार्थ शिशु है " अस्मिन्+रमते " जो खिलौने में रत हो।

'पुनः पूर्वोक्त कर्म्मों की चर्चा'

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम्। तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥३॥
युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः। ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥४॥
उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम्। अकर्त चतुरः पुनः ॥ ५ ॥
ऋ० १। २० ॥

उन्हों ने राजा रानी के लिये सर्वतोगामी सुखकर रथ निर्माण किया है एवं क्षीर दोग्धी एक गौ बनाया है ॥३॥ जिनका विचार सत्य है जो ऋजु हैं ऐसे खातियों ने अपने माता पिता पुनः युवा बनाए ॥४॥ विज्ञानी त्वष्टा से निर्मित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नूतन चमस को चार बनाए ॥ ५ ॥ इत्यादि चर्चा १।२०; । १।१११ और ४।३६ इत्यादि सूक्तों में बराबर आती है। ऐसे ऐसे विद्वान् खाती वंशजों का जब से भारत में निरादर होना आरम्भ हुआ तब से ही सारी शिल्प विद्याएं लुप्त हुई।

'कुम्भ (घड़ा) की चर्चा'

शं न आपो धन्वन्याः शमु सन्त्वनूप्याः।
शं नः खनित्रिमा आपः शमु याः कुम्भ आभृताः॥
शिवा नः सन्तु वार्षिकीः॥ अथर्व० । १।६४॥

धन्वनी अर्थात् मरुदेशीय जल। अनूप्य अर्थात् अनूपदेशोद्भव जल, खनित्रिम अर्थात् कूपादिक का जल (जो खोदने से निकले) और नदी तड़ागादि से लाया हुआ कुम्भस्थजल और वर्षा सम्बन्धी जल। ये सब प्रकार के जल सुखदायक होवें।

अपूपपिहितान् कुम्भान् यांस्ते देवा अधारयन्॥ अथर्व०१८।३।६८॥

अपूप के समान मुख वाले घड़े जिन को विद्वान् लोग रखते हैं।

चतुरः कुम्भां श्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना।
अ० ४। २४। ७॥

दूध, दही और जल से पूर्ण चार कुम्भ (घड़े) चार भाग कर देता हूं

'कूप की चर्चा'

यां ते कृत्यां कूपेऽवदधुः श्मशाने वा निचख्नुः।
सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्॥ अथर्व०।५।३७।८॥

उन अज्ञानी जनों ने जिस मलिनता को कूप में स्थापित किया है जिसको श्मशान में गाड़ा है। या भवन में किया है। उन सबों को मैं साफ करता हूं। अर्थात् कूप का जल बहुत साफ रखना चाहिये। उसमें कपड़े वगैरह धोना नहीं चाहिये। श्मशान को भी साफ रखना चाहिये। घर की सफाई तो आवश्यक है। पुनः—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कूप्याभ्यः स्वाहा । यजुः २२-२५ नमः कूप्याय चावट्याय च । यजु० १६ । ३८ । इत्यादि अनेक स्थल में कूप की चर्चा आई है ।

'चर्म की चर्चा'

यं बल्बजं न्यस्यथ चर्म्म चोपस्तृणीथन ।
तदा रोहतु सुप्रजा या कन्या विन्दते पतिम् ॥
अ० १४ । २ । २२ ॥

जिस बल्बज को आप लोगोंने रक्खा है । और जिस चर्म्म को बिछाया है उस पर सुसन्तति वाली कन्या जिस ने पति प्राप्त किया है बैठ जाय ।

उप स्तृणीहि बल्बजमधि चर्मणि रोहिते ।
तत्रोपविश्य सुप्रजा इमं मग्निं सपर्य्यतु ॥ २३ ॥

रोहित चर्म्म के ऊपर बाल्वज को बिछाओ । उस पर बैठ कर यह सुप्रजावती कन्या इस अग्नि को घृतादिक से सत्कार करे । अर्थात् हवन करे ।

आरोह चर्म्मोप सीदाग्नि मेष देवो हन्ति रक्षांसि सर्वा ॥२४॥

हे नारि ! इस चर्म्म पर आरोहण करो । अग्नि के निकट बैठो । यह अग्नि देव सब विघ्नों का नाश करता है ।

'कम्बल की चर्चा'

संभले मलं सादयित्वा कम्बले दुरितं वयम् ॥ १४ । २ । ६७ ॥

उत्तम कम्बल के मैल को साफ कर उस पर बैठें ।

आसन्दी (कुर्सी) आदि की चर्चा ॥

यदाऽऽसन्द्या मुपधाने यद्वोपवासने कृतम् ।
विवाहे कृत्यां यां चक्रु रास्नाने तां नि दध्मसि ॥ १४ । २ । ६५ ॥

आसन्दी (Cushion) उपधान (Chair) और उपवासन (Canopy) आदि में मैल हो तो विवाह के निमित्त इन सबों को जल में साफ करो ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सहस्र खंभों से युक्त अट्टालिका [भवन]

राजाना वनभिद्रुहा ध्रुवे सदस्युत्तमे। सहस्रस्थूण आसाते।२।४१।५।

(राजानौ) राजा तथा अमात्य ये दोनों (अनभिद्रुहा) प्रजाओं से न द्रोह रखते हुए (ध्रुवे) खूब मजबूत (उत्तमे) उत्तम (सहस्रस्थूणे) सहस्रों खंभ वाले (सदसि) सभा भवन में (आसाते) बैठते हैं। राजाच राजाच=राजानौ यह द्विवचन है। अमात्य की भी राजपदवी है। सहस्रस्थूण=स्थूण=स्तम्भ=खंभा। जिस में सहस्रों खंभे हो उसे सहस्रस्थूण कहते हैं। आत उपवेशने। आस=बैठना।

'प्रस्तर निर्मित शत पुर'

शतनश्मन्मयीनां पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे।

(दिवः+दासाय) दिव्=द्यूतक्रीडा। दास=उपक्षयिता अर्थात् द्यूतादि व्यसन के निवारक और (दाशुषे) विद्यादि शुभ गुण प्रदायक (इन्द्रः) राजा शिष्यों को पढ़ाने वाले आचार्यों के लिये (अश्मन्मयीनाम्+पुरां शतम्) प्रस्तर निर्मित शतशः नगर (व्यास्यत्) बनवा कर देवें। जिसमें सुविधा से ब्रह्मचारी गण शिक्षा पा सके (व्यास्यत+वि+असु=क्षेपणे (दाश्वान्=दाश्रु दाने) इस ऋचा का अर्थ पूर्व में भी किया है। देखिये। उपसर्ग से धातु का अर्थ परिवर्तित भी होजाता है। यहां पर प्रस्तर निर्मित सैकड़ों पुरी का वर्णन है

लोह निर्मित अनेक नगर।

तोभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भि रायसीभिर्नि पाहि।७।३।८।

अमित=बहुत। महत्=तेजोयुक्त। आयसी=लोहनिर्मित। अयस्=लोह अयस् से बना हुआ आयस [अग्ने] हे अग्रगामी सेनाध्यक्ष वा महेन्द्र! आप [आयसीभिः पूर्भिः] अनेक लोह निर्मित नगरों से [नः+नि+पाहि] हमारी रक्षा कीजिये। अर्थात् अनेक शहर लोहों के बनवाइये जिसमें शत्रु का डर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किञ्चित् भी न रहे। और न वे नगर किसी प्रकार से भग्न हो सकें. अयम्= नाम सुवर्ण का भी है।

अधा महीन आयस्यनाधृष्टोनृपीतये।
पूर्भवा शतभुजिः ॥ ७। १५। १४ ॥

[अध] अब हे अग्रगामी सेनापते। आप [अनाधृष्टः] अप्रधर्षणीय होकर [नः+नृपीतये] हमारे मनुष्यों की रक्षा के लिये [मही] महती [शत-भुजिः] शतगुणा [आयसी+पूः] लोह निर्मित पुरी के समान [भव] हूजिये।

'समुद्र यात्रा'

आज कल कतिपय अज्ञानी जन कहा करते हैं कि समुद्रयात्रा शास्त्र विहित नहीं है ऐसा कह कर देश में अन्धकार फैलाते हैं और अज्ञानता का बीज बो कल्याण का घात करते हैं। मैं पूछता हूं कि समुद्र-यात्रा क्यों नहीं करनी चाहिये। श्री रामचन्द्र समुद्र में सेतु बांधकर लंका गये थे। अनेक राजा सम्पूर्ण पृथिवी के सम्राट् हुए। समुद्र लंघन किये विना सम्पूर्ण पृथिवी का वि-जय कैसे होसकता है। सप्तद्वीपा वसुमती का राज्य कैसे करते थे। यदि कहो कि इसका जल खारू होने से लोग मरजाते हैं तो यह कहना उचित नहीं। आज समुद्र में सैकड़ों जहाज चल रहे हैं। पानी को पृथिवी बना रक्खा है। वे लोग कैसे जीते हैं। ऐ मनुष्यो! परिश्रमी और शूर वीर बनो। समुद्र से मतडरो। यह तुम्हारा बड़ा धन है। यह तुम्हें लाखों को रोटी देगा। तुम्हें पुकार रहा है। आओ मुझसे धन लो। क्यों नहीं देखते हो। देखो वेद भी आज्ञा देते हैं। यथा—

तुग्रो ह भुज्यु मश्विनोदमेघे रयिन्न कश्चिन्ममृवाँ अवाहाः।
तमूहथुर्नौभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्भिरपोदकाभिः ॥
१। ११६। ३।

तुग्र=उपद्रुत,हत। उग्र=व्यापारशील पुरुष। ह=निश्चय। अश्वी=रात और दिन। उदमेघ=समुद्र। रयि=धन। न=जैसे। कः चित्=कोई। ममृवान्

CC-0. Kurukul Kangri Gurukul Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नृ=मुमूर्षु=मरने वाला । अवाहाः=जाता है । अन्तरिक्षप्रुद्=जल के ऊपर ऊपर चलने वाली । अपोदका=जिस में जल प्रविष्ट नहीं हुआ है ।

(तुग्रः+कश्चित्) रोगादिकों से उपद्रुत कोई (मर्तवान्) मुमूर्षु पुरुष (रयिम्+न) जैसे धन जाता है वैसे ही (तुग्रः) अन्यान्य राजाओं से उपद्रुत कोई राजा (ह) निश्चय कर (भुज्युम्) पालन में समर्थ अपने पुत्र वा सेनाध्यक्षक को विजयार्थ (उदमेघे) समुद्र में (अवाहाः) जाता है अर्थात् समुद्र की यात्रा से उन दुष्टों को दण्ड देने के लिये भेजता है । (तम्) उस सेनाध्यक्ष को सेना सहित (अश्विनौ) रात दिन अर्थात् रात दिन कार्य्य करने वाले मल्लाह लोग (नौभिः+ऊहथुः) सहस्रों नौकाओं से पहुंचाते हैं । नौकाएं कैसी हैं (आत्मन्वतीभिः) आत्मवान् अर्थात् अतिप्रयत्न शील पुरुषों से युक्त । पुनः (अन्तरिक्ष प्रुद्भिः) अतिस्वच्छ होने के कारण जल के ऊपर २ चलने वाली । और (अपोदकाभिः) अच्छी बनावट होने के कारण जिस के भीतर जल नहीं जा सकता है ! ऐसी । अश्विनौ=रात दिन (निरुक्त ६ । १) जैसे 'मंच चिल्लाता है' कहने से मंचस्थ पुरुष का ग्रहण होता है । वैसे ही रात दिन से रात दिन कार्य्य करने वाले पुरुषों का ग्रहण है । (अवाहाः) ओहाक् त्यागे । मर्तवान् मृङ् प्राणत्यागे अन्तरिक्षप्रुत्=प्रुङ्गतौ ।

तिस्रः पक्षस्त्रिरहाऽतिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वनार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षडश्वैः ।।१।११६।४

(तिस्रः+पक्षः) तीन पक्ष (त्रिः+अह) तीन दिन में (अतिव्रजद्भिः) अत्यन्त गमनशील (पतङ्गैः) नौकाओं से (नासत्या) रात दिन परिश्रमी कैवर्तगण (भुज्युम्+ऊहथुः) जगत्पालक सेनाध्यक्ष को तीर पर लेजाते हैं । और वहां से (शतपद्भिः) सौ पैर वाले अर्थात् शतचक्रयुक्त (षडश्वैः) छः घोड़ों से संयुक्त (त्रिभिः+रथैः) तीन रथों से (आर्द्रस्य+समुद्रस्य) आर्द्र समुद्र के (धन्वन्+पारे) जल वर्जित पार में पहुंचाते है ।

अनारम्भणे तदवीरयेथा मनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे [अश्विनौ] रात दिन परिश्रम शील पुरुषो ? आप लोगों ने [समुद्रे] समुद्र में [तत्+अरीरयेथाम्] उस कार्य्य को बड़ी वीरता के साथ किया है अतः आप सब धन्यवादार्थ हैं। समुद्र कैसा है [अनारम्भणे] आलम्बन रहित [अनास्थाने] आस्थान=रहने की जगह, उस से शून्य पुनः [अग्रभणे] हाथ से ग्रहण करने के लिये वृक्षादि शाखा से भी रहित। कौन वह कर्म्म है सो कहते है। [यत्] जो [शतारित्राम्] सैकड़ों अरित्रों से युक्त [नावम्+आतस्थिवांसम्] नौका के ऊपर अपनी सेना सहित स्थिर पूर्वक बैठे हुए [भुज्युम्] सेनाध्यक्ष को [अस्तम्] अपने गृह [ऊहथुः] आपने पहुंचाया। यह प्रशंसनीय कार्य्य आप लोगों का है।

आ यद् रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत् समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्खईङ्खयावहै शुभे कम्॥ ७।८८।७॥

यहां समुद्र के बीच की क्रीड़ा का वर्णन है। सामुद्रिक जहाज के साथ साथ छोटी छोटी नौकाएं भी लगी रहती हैं। जब खेल करने वा मन बहलाने की इच्छा होती है तब उस नौका पर चढ़कर विविध जलक्रीड़ा करते हैं। एक विषय यहां स्मरण रखना चाहिये कि जैसे 'देवदत्त यज्ञदत्त' काल्पनिक नाम आते हैं वैसे ही वर्णन के लिये वेद में यौगिक वरुण, इन्द्र, वसिष्ठ, अत्रि आदि नाम आते हैं। क्योंकि उदाहरण के साथ वर्णन करने से बोध होता है। कल्पना करो कि समुद्र में कई एक मनुष्यों की क्रीड़ा वर्णन करनी है। एक उस में कहता है मुझे बड़ा आनन्द आया। दूसरा कहता है कि आओ मेरी नौका पर चढ़ो। तीसरा कहता है कि तू डूब रहा है तेरी मैं रक्षा करता हूं इत्यादि। जैसा मनुष्य का स्वभाव है। वेद भी ठीक वैसा ही निरूपण करता है। ऐसी जगह में नाम की कल्पना होती है। यहां यह विषय नहीं कि मैं इस को विस्तार से दिखलाऊं परन्तु आप यहां इतना समझें कि वसिष्ठ वरुणादि यौगिक काल्पनिक नाम से वेद में वर्णन है। इस से कोई इतिहास नहीं सिद्ध होता है। इस में मीमांसा शास्त्र का प्रमाण देखिये।

कोई कहता है कि (यद्) जब मैं (वरुणश्च) और मेरा साथी वरुण (नावम्+आरुहाव) दोनों नौका पर आरूढ़ होते हैं और (यद्) जब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समुद्रम्+मध्यम्) समुद्र के बीच (प्र+ईरयाव) नौका को ले जाते हैं और (यद्+अप्सु+अधि) जब पानी के ऊपर (स्नुभिः+चरावः) चलती हुई अन्यान्य नौकाओं के साथ चलते हैं तब उस समय में (प्रेङ्खे) नौकारूप दोला के ऊपर तरङ्गों से ऊंचे नीचे जाते हुए हम दोनों (शुभे+कम्) सुख पूर्वक (प्र+ईङ्खयावहे) बड़ी २ लीला देखते हैं ।

जिन्हों ने सामुद्रिक यात्रा की है उन्हें मालूम है कि कैसे नौका ऊपर नीचे जाती है । हिंडोले से भी बढ़कर आनन्द प्रतीत होता है । बहुत वाक्य उद्धृत कर सुनाने का प्रयोजन नहीं । आप को मालूम होगया कि वेद स्वयं समुद्रयात्रा के लिये आज्ञा देते हैं फिर इस को कौन काट सकता है । अतः समुद्रयात्रा-निवारक अज्ञ हैं इस में सन्देह नहीं । इसी हेतु उनकी बात अमाननीय है ।

वाणिज्य की चर्चा ।

एना धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः । यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग् वङ्कुरापा पुरीषम् ॥५।४५।६॥

[सखायः] हे समान-कर्म्म-साधक मित्रो ! [एत] आओ । आकर [धियम्+कृणवाम] कर्म्म, व्यापार, उद्यम, करें [या+माता] जो उद्योग माता है । अर्थात् माता के समान सुख पहुंचाने वाला है । [यया+मनुः] जिस भी से मनन शील पुरुष [विशिशिप्रम्] हनुरहित शत्रु को [जिगाय] जीतते हैं और [यया+वङ्कुः+वणिक्] जिससे अभिलाषी उत्कण्ठावान् वणिक्= बनिया [पुरीषम्] उदक [आप] प्राप्त करते हैं । कौन कर्म्म वा उद्यम करें सो कहते है । [गोः+व्रजम्] गौ के निमित्त गोष्ठ [अप+ऋणुत] घेरें ।

धी=अपः । अम्नः । दंसः । वेषः । वेपः । विष्टी । व्रत । कर्वर..... धी । शची । शमी, शिमी, शक्ति, शिल्प इत्यादि २६ नाम कर्म्म के हैं निघण्टु २ । १ । अतः वेदोंमें 'धी' शब्दार्थ प्रायः 'कर्म्म' होता है । पुरीष=अर्णाः । क्षोदः । उदम्..... घृत, मधु, पुरीष आदि एक शत नाम जल के हैं निघं० १ । १२ । सायण भी 'पुरीषं पूरक मुदकम्' जल ही अर्थ करते हैं । "वणिक् उदक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्राप्त करता है" इस का भाव यह है कि अपने उद्योग से पृथिवी के अभ्यन्तर से खोद कर पानी निकलता है अथवा जहां २ नदी वा समुद्र है वहां २ जाकर अपने विक्रेय वस्तु को इधर उधर भेजता है। इत्यादि। 'गौप्रधान धन' है अतः इस की प्रशंसा की गई है।

वाणिज्य के निमित्त राजरक्षा।

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्। कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभि रू षु ऊतिभि रश्विनाऽऽगतम् ॥ १। ११२। ११ ॥

[अश्विना] हे राजन् और सेनाध्यक्ष ! आप दोनों [सुदानू] प्रत्येक प्रकार के सहायता रूप दान देने वालेहैं आप दोनों ने [याभिः] जिन विविध रक्षाओं से [दीर्घश्रवसे] दिग्दिगन्तव्याप्त यशस्वी [औशिजाय+वणिजे] इच्छा पुत्र वणिक् के लिये। [मधुकोशः+अक्षरत्] मधुकोश बरसाया है [याभिः] जिन से [स्तोतारम्+कक्षीवन्तम्] स्तुति करने वाले कक्षीवान् अर्थात् 'सार्थ' को [आवतम्] रक्षा की है [ताभिः+ऊ+सु] उसी रक्षाओं से [आगतम्] मेरे निकट भी आवें।

औशिज='वश' कांतौ। इच्छार्थक 'वश' धातुसे 'उशिक्' बनताहै। अर्थात् इच्छा। उशिजः पुत्र औशिजः। इच्छापुत्र को 'औशिज' कहते हैं। जो वणिक् वास्तव में इच्छापुत्र है उस का कोश [खजाना] निःसन्देह मधुमय रहता है। कक्षीवान्=जो एक प्रयोजन के लिये मिल मिल कर व्यापार करते हैं उन्हें 'कक्षीवान्' वा 'सार्थ' कहते हैं। राजा और सेनाध्यक्ष के उद्योग से प्रजाओं की परमवृद्धि होती रहती है। वैश्यों के लिये अनेक स्थल में कहा गया है कि ये लोग कई मनुष्य मिल २ कर वाणिज्य करें। आगे वैश्य प्रकरण में सूचित करूंगा। इसी हेतु यहां 'कक्षीवान्' शब्द का प्रयोग है। शोक की बात यह है कि आज कल के भाष्यकारों ने समस्त वैदिक मन्त्रों को केवल याज्ञिक कर्म्म में लगा कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मल्लाह का पेशा।

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः ।
अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥
॥ १० । ५३ । ८ ॥

सखायः=हे मित्रो ! अश्मन्वती+रीयते=नदी चल रही है । संरभध्वम्=कार्य्य आरम्भ करो । उत्तिष्ठत=उठो । प्रतरत=नदी में तैरो । अत्र=इस नदी में ये+अशेवाः=जो असुखकारी पदार्थ । असन्=हैं । उन्हे । जहाम=छोड़ दें और जो । शिवान्+वाजान्=जो सुखकारी पदार्थ हैं उन्हे लाने के लिये । वयम्+अभि+उत्तरेम । हम सब मिल कर चारों तरफ पार उतरें । सायण=रीयते गच्छति । री गतिरेषणयोः । अशेवाः शेवमिति सुखनाम ये असुखभूताः । अश्मन्वती=नदी ।

दिव्य नौका की चर्चा।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्म्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥
यजुः २१ । ६ ॥

हम लोग [स्वस्तये] कल्याणार्थ [दैवीम्+नावम्] दिव्य नौका पर [आ रुहेम] चढ़ें । कैसी नौका है [सुत्रामाणम्] अच्छे प्रकार से रक्षा करने हारी [पृथिवीम्] बहुत विशाल [द्याम्] जिस में बहुत प्रकाश और अवकाश=जगह है [अनेहसम्] जिस में किसी प्रकार का खतरा नहीं है [सुशर्म्माणम्] जिसके अभ्यन्तर मकान बने हुए हैं । [अदितिम्] अखण्डनीय [सुप्रणीतिम्] सुन्दर चलने वाली [स्वरित्राम्] अच्छी डांड़ों [चप्पे] से युक्त [अनागसम्] दोष रहित [अस्रवन्तीम्] छिद्र रहित । ऐसी नौका है । इस हेतु यह दैवी है । और इसपर चढ़ कर यदि व्यापार के लिये हम लोग प्रस्थान करें तो टूटने डूबने आदि का भय नहीं हो सकता ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सुत्रामा=सुष्ठुत्रायते रक्षति सुत्रामा । सुशर्म्मा=शर्मा=गृह । स्वरित्र=सु+अरित्र=डांड़ । पुनः—

शतारित्रा=१०० डांड़ [चप्पा] युक्त नौका ।

सुनाव मारुहेयमस्रवंती मनागसम् ।
शतारित्रां स्वस्तये ॥ यजुः । २१ । ७ ॥

मैं (सु+नावम्) सुन्दर नौका पर (आ+रुहेयम्) चढ़ूं । कैसी नौका है (अस्रवन्ती) छिद्र रहित (अनागसम्) दोष रहित (शतारित्राम्) १०० शत संख्यक अरित्र अर्थात् डांड़ों=चप्पों से युक्त । किस लिये (स्वस्तये) व्यापारादि कल्याण साधन के लिये ॥ ७ ॥

हिरण्ययी नौरचरद्धिरण्यबन्धना दिवि ।
तत्रामृतस्य पुष्पं देवा कुष्ठ मवन्वत ॥ अथर्व ५ । ४ । ४ ॥
हिरण्ययाः पन्थान आसन्नरित्राणि हिरण्यया ।
नावो हिरण्ययी रासन् याभिः कुष्ठं निरावहन् ॥५॥

हिरण्य नाम सोने और लोहे दोनों का है। 'कुष्ठ' नाम एक जड़ी का है। उसे कुट वा कुटकी कहते हैं यह बहुत लाभ दायक जड़ी (Plant) है। इस की चर्चा अथर्व में अधिक है। समुद्र में हिरण्यबन्धनयुक्त और हिरण्यरचित नौका जारही है। अथवा यह विमान का वर्णन है। आकाश में सुवर्ण रचित नौका रूप विमान जा रहा है। जिस के ऊपर देव अर्थात् वैद्यगण अमृत का पुष्प कुष्ठ नामक औषध लाते हैं ॥ ४ ॥

जिन नौकाओं में मार्ग भी हिरण्य रचित है। अरित्र डांड़ (Oars) भी हिरण्यमय है। नौकाएं (Ship) भी सुवर्ण मय है। जिनसे कुष्ठ को लाते हैं। (१)

(१) नोट-कुष्ठ औषध का वर्णन इस प्रकार अथर्ववेद में है ।

यो गिरिष्व जायथा वीरुधां बलवत्तमः ।
कुष्ठे हि तक्मनाशन तक्मानं नाशयेतितः ॥ १ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेऽधराञ्चः प्र प्लवन्तां छिन्ना नौ रिव बन्धनात्। अथर्व० ३।८।७॥

बन्धन रहित नौका के समान प्रवाह के ऊपर २ वे तैरें।

इस प्रकार 'नाविक' का भी व्यवसाय बहुत देखते हैं। आज कल नौका चलाने वाले 'कैवर्त' 'मल्लाह' धीवर वगैरह भी निकृष्ट माने जाते हैं। ये लोग नदियों से मछली बहुधा निकाला करते हैं। अतः इन को 'मछुआ' भी कहते हैं। बिहार बंगाल में ये अधिक हैं। इसी नौका के ऊपर पूर्व समय वाणिज्य निर्भर था अब भी है। आज भी जहाज के ऊपर सहस्रों पदार्थ एक द्वीप से दूसरे द्वीप में जाते हैं। प्रथम यह व्यवसाय भी आर्य्यों के हाथ में था तब तक उसकी बड़ी उन्नति भी रही। १०० सौ सौ जिसमें डांड़ हों। जो लोहे और सोने से बनाई जाती हों। और जब विलक्षण विलक्षण दैवी नौकाएं रचित हों। जब तक लोगों में पूर्णतया इसकी चाह न हो और इससे अत्यन्त लाभ न होता हो तब तक सुवर्ण आदिक नौकाएं नहीं बनसकती हैं। और न वेद में ऐसी आज्ञा ही हो सकती है॥ परन्तु जब इस व्यवसाय से मुख मोड़ और गमार अज्ञानी के हाथ में दे यहां के लोग इससे घृणा करने लगे तबही जानो इन का शिर फूटा और ये भिखमंगे हुए। कैसी अज्ञानता छागई है कि प्रत्येक व्यवसायात्मिका लक्ष्मी को लात मार कर इन्हों ने देश से निकाला।

सुपर्णसुवने गिरौ जातं हिमवतस्परि।
धनैरपि श्रुत्वा यन्ति विदुर्हि तक्मनाशनम्॥ २॥
उदङ्नातो हिमवतः स प्राच्यां नीयते जनम्।
तत्र कुष्ठस्य नामान्युत्तमानि विभेजिरे॥ ३॥

जो 'कुष्ठ' नाम की जड़ी पर्वतों पर होती है। सब पौधे में जो अति बलवान् होती है। जो ज्वर नाशक है। हिममय प्रदेश के ऊपर वा परे पर्वत के ऊपर होती है। जो इस को ज्वर नाशक जानते हैं वे धन के लिये बेचते हैं। जो प्रायः हिमप्रदेश के उत्तर भाग में हुआ करती है। जो प्राची दिशा के लोग के निकट प्राप्तित होती है। इस के लोग अनेक गुण गाते हैं। इत्यादि अथर्ववेद में इस महौषधि का वर्णन है।

कुष्ठ=a medicinal plant, costus speciosus or aradicus,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्यो ! पुनः वैदिक आज्ञा पर चलो और उसी उत्साह से सुवर्णमयी नौका बनाओ ।

नापित (वारवर) का व्यवसाय

यत् क्षुरेण मर्चयता सुतेजसा वप्ता वपसि केशश्मश्रु ।
शुभं मुखं मा न आयुः प्र मोषीः ॥ अथर्व० ८ । २ । १० ॥

हे नापित ! [यत्] जब [वप्ता] तू केशों के छेदन करने वाले हो कर [मर्चयता] व्यापार वाली [सुतेजसा] शोभनतेजो युक्त [क्षुरेण] छुरी से [केशश्मश्रु] शिर और मुख के रोमों को [वपसि] काटता है उस समय [मुखम्+शुभम्] मुख को शुभ बना [नः+आयुः+मा+प्र मोषीः] हमारे आयु को नष्ट मत कर । सायण=मर्चयता व्यापारयता ।

स्वर्णकार और मालाकार का व्यवसाय

निष्कं वा घा कृण्वते स्रजं वा दुहितर्दिवः ।
त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो ॥
व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः । ८ । ४७ । १५

[दिवः+दुहितः] सूर्य्य की कन्या के समान अर्थात् उषा के समान सब को सुख पहुंचाने वाली हे युवती ब्रह्मचारिणी [निष्कम्+वा+कृण्वते] कनक आदि धातु के निष्क अर्थात् कण्ठ भूषण बनाने वाला स्वर्णकार [वा+घ+ स्रजम्] और माला बनाने वाले माली के निमित्त जो आपने [दुःस्वप्न्यम्] दुष्ट स्वप्न देखा है अर्थात् जो आप उस से विवाह करना चाहती है [सर्वम्] इस सब विषय को [आप्त्ये+त्रिते] तीन आप्त पुरुषों से युक्त सभा में निर्णयार्थ [परि+दद्मसि] पेश करता हूं [वः] आप सभाध्यक्षों की [ऊतयः] रक्षाएं [अनेहसः] निष्पाप होवें, निश्चय ही निष्पाप होवें ।

'लोहकार का व्यवसाय और भस्त्रायन्त्र'

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक् संयन्ति धूमिनः । यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरि यथा ॥ ५ । ६ । ५ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

[अव+स्म] और [यस्य+अर्चयः] जिस अग्नि की ज्वाला [धूमिनः-सम्यक्+संयन्ति] धूम युक्त हो सर्वत्र विस्तृत होती है। इस प्रकार सर्वत्र फैल कर [यद्+ई+त्रितः] जब तीनों स्थान में व्याप्त हो जाती है तब [दिवि+उप+धमति] आकाश में जाकर बहुत अपने को बढ़ाती है। इसमें उपमा देते हैं [ध्माता+इव] जैसे कर्म्मार=लोहकार भस्त्राऽऽदि यन्त्र से [उप+धमति] अग्नि को धौंक कर बढाता है। और [यथा] जैसे [ध्मातरि] ध्माता=लोहकार के निकट ध्मायमान होने पर अग्नि [शिशीते] अपने को स्वयं तीक्ष्ण करता है। यन्ति इण=गतौ। धमति=ध्माशब्दाग्निसंयोगयोः। शिशीते शोतनूकरणे।

'एक ही मन्त्र में अनेक धातुओं के नाम'

अश्माच मे मृत्तिकाच मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यञ्चमेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपुच मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥ यजुः १८। १३ ॥

हे विद्वानो ! इस प्रकार आप देखते हैं कि मनुष्य के सुखकारी सब ही व्यवसाय की आज्ञा वेद में पाई जाती है। सैकड़ों यज्ञपात्र सैकड़ों आयुध अस्त्र शस्त्र सैकड़ों खाने पीने के पात्र इत्यादि प्रयोजनीय सब ही पदार्थ वेद में पाये जाते हैं। मुझे यहां केवल आप लोगों को यह सूचित करना है कि जो लोग यह कहते हैं कि वैदिक समय में इतना झंझट नहीं था वेद तो केवल यज्ञ ही बतलाता है इस हेतु जाति पांति का उस समय बखेड़ा नहीं था वेद का इस से क्या प्रयोजन इत्यादि। परन्तु आप देखते हैं कि मनुष्य जीवन के हेतु सब व्यवसाय की चर्चा है। किसी व्यवसायी की निन्दा नहीं। प्रत्युत बड़ी प्रशंसा है। प्रत्येक व्यवसाय-कविसाध्य विद्वत्कर्तव्य कहा गया है। और इन कामों के करने वाले बहुत उच्च समझे जाते थे। अतः वैसे कहने वालों की भूल है आगे अब कुछ पोष्य पशु के बारे में भी कथ्य है। सो सुनिये।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ पोष्य पशु वर्णन प्रकरण ।

वेद में गोपशु की प्रशंसा ।

आ गावो अगमन्नुत भद्रमक्रन् सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ।६।२८।१

[गावः+आ+अगमन्] मेरे गृह में गायें आवें । [उत+भद्रम्+अक्रन] और शुभ करें [गोष्ठे+सीदन्तु] गोष्ठ में बैठें [अस्मे+रणयन्तु] हमारे बीच रत होवें अथवा आन दुग्ध से हमें वीर बनावें । [इह] यहां [पुरुरूपाः+प्रजावतीः+स्युः] विविध वर्ण की गायें प्रजापती होवें [इन्द्राय] यज्ञ के लिये [पूर्वीः+उषसः] पूर्व उषासें अर्थात् प्रातःकाल [दुहानाः] दूध देने वाली होवें ।

गावो भगो गाव इन्द्रं अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसाचिदिन्द्रम् ।५

(मे) मेरी (गावः) गौ ही (भगः) धन है (गावः इन्द्रः-।-अच्छान्) गौही ऐश्वर्य्य वा इन्द्र है (प्रथमस्य+सोमस्य+भक्षः+गावः) प्रथम सोमरस का भक्ष गौ ही है । अर्थात् सोमरस में प्रथम घृत ही मिलाया जाता है । (जनासः) हे मनुष्यो ! (याः गावः) ये जो गौवें हैं (सः) वे गौवें ही (इन्द्रः) इन्द्र हैं । (इन्द्रम् चित्) इसी इन्द्र को (हृदा+मनसा×इत्) श्रद्धायुक्त मनसे (इच्छामि) इच्छा करता हूं ।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ।३।

(यूयं गावः+मेदयथा) हे गोवो ! आप वृद्धि करें । (कृशम्+चित्) कृशभी (अश्रीरम्+चित्) अमंगल भी शरीर को (सुप्रतीकम्+कृणुथ) दृढ़ाङ्ग बनावें । दूध के कृश स्थूल और कुरूप सुन्दर हो जाता है (गृहं०) गृह को भद्र करें (भद्रवाचः) हे मङ्गल ध्वनि गावो (वः×बृहत×वयः) तुम्हारा महान् यश (सभासु+उच्यते) सभा में वर्णित होता है ६। यह सम्पूर्ण सूक्त गोवर्णन परक है । देखिये ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गौ पशु चारण

आ निवर्त्त निवर्तय पुनर्नइन्द्र गा देहि ।
जीवाभिर्भुनजामहै ॥ १० । ६९ । ६ ।

हे भगवन् ! आप मेरे गृह में आवें । प्रत्येक कार्य में सहायता करें । बारम्बार गायें देवें । जीवनप्रद गौवों से विविध भोगों को आपकी कृपा से भोगें ।

ऋग्वेद १० दशम मण्डम ऊनविंश १९ सूक्त सम्पूर्ण गौ के विषय में वर्णित है । यहां गो-चारणादि का वर्णन है पुनः

अवध्या गौ ।

मा नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गा मनागा मदितिं वधिष्ट ।
८ । १०१ । १५ ॥

स्वयं भगवान् कहते हैं । (चिकितुषे+जनाय+प्रवोचम्) चेतन पुरुष से अर्थात् समझदार जन से मैं कहता हूं कि (अनागाम्) निरपराधी (अदितिम्) अहिंसनीय पृथिवी के सदृश (गाम्) गौ को (मा+ वधिष्ट) मत हनन करो ।

इस प्रकार देखते हैं कि गोधन की अतिप्रशंसा है । यजमान का नाम ही 'गोपति' है । यजुर्वेद की प्रथम ही कण्डिका में गौ की प्रशंसा आई है । और अघ्न्या कहा है । 'गोत्र' यह शब्द ही सूचित करता है कि ऋषि गोरक्षा पर बहुत ही तत्पर थे ।

ऋषि कर्तृक गो-पोषण ।

प्राचीन काल में ऋषि, आचार्य, अध्यापक, गुरु प्रभृति सबही गौवों को अपने २ गृह पर पालन पोषण करते थे इसकी चर्चा सर्वत्र पाई जाती है ।

छान्दोग्योपनिषद् चतुर्थ प्रपाठक में लिखा है कि हारिद्रुमत गोतम ऋषि को ४०० सौ तो दुर्बल गौएं थीं । और मोटी ताज़ी कितनी थीं उस का कुछ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिसाब ही नहीं और उन के शिष्य सत्यकाम जाबाल उन कृशा गौवों को चराया करते थे। (१) जानश्रुति पौत्रायणने १०० एक सहस्र गौवें विद्याप्राप्ति के हेतु रैक्व मुनि को दी थीं। (२) बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है वैदेह जनक महाराज ने ब्रह्मिष्ठ पुरुष को देनेके लिये सुवर्णादि से सुभूषित कर १००० एक सहस्र गौवें एकट्ठी की थीं (३) और कई स्थल में याज्ञवल्क्य ऋषि से जनक महाराज ने कहा है कि मैं आप को एक १००० सहस्र गौएं देता हूं (४) इत्यादि गोवों की चर्चा ब्राह्मण और उपनिषदों में बहुत आती है।

'गौ के कारण वसिष्ठ और विश्वामित्र का युद्ध'

वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड ५२ अध्याय से कथा चलती है कि वसिष्ठ के आश्रम में एक समय विश्वामित्र आए। यथा योग्य सत्कृत होन पर चलने के समय विश्वामित्र महाराज ने ऋषि वसिष्ठ से शवला गौ मांगी और कहा कि इस के बदले में आप को बहुत से हाथी घोड़े रथ आदि पदार्थ देता हूं। इस रत्न को मुझे दीजिये। वसिष्ठ ने नहीं दी। इसी कारण परस्पर महा युद्ध हुआ (१) अन्यान्य पुराणों में भी इस का वर्णन आता है।

महाभारत आदिपर्व ३ तृतीयाध्याय में लिखा है कि (२) आयोद-धौम्य

---

(१) तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाच। इमाः सोम्याऽनुव्रज। छान्दोग्य० ४। ३॥

(२) इदं सहस्रं गवाम्॥ छान्दोग्य ४। ३॥

(३) स ह गवां सहस्रमदरुरोध दश दश पादा एकैकस्याः शृङ्गयोरावद्धा बभूवुः। बृहदारण्यक उ० ३। १।

(४) सोऽहं भगवते सहस्रं ददामि। ४। २॥

(१) गवां शतसहस्रेण दीयतां शवला मम। रत्नं हि भगवन्नेतद् रत्नहारी च पार्थिवः। १। ददामि कुञ्जराणां ते सहस्राणि चतुर्दश। हैरण्यानां रथानां च श्वेताश्वानां चतुर्युजाम्। १८। इत्यादि बालकाण्ड॥ ५३॥

तं चोपाध्यायः प्रषेयामास वत्सोपमन्यो गा रक्षस्वेति। इत्यादि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आचार्य्य के निकट बहुत गौएं थीं। अपने एक शिष्य उपमन्यु को कहा कि हे उपमन्यो! तुम गौवों को चराया करो। वह वैसा ही करने लगा। एकदिन उस शिष्य को मोटा ताज़ा देख कहा कि हे उपमन्यो! तुम अपनी जीविका कैसे करते तुम बड़े पीवान् (मोटे) दीखते हो। भिक्षाकर मैं भोजन करता हूं। शिष्य ने कहा। मुझे विना दिए हुए भिक्षा से जीविका कैसे करते हो। अब से ऐसा मत करना (गुरु ने कहा) तब उस ने भिक्षा मांग गुरु के सामने रखदी। गुरु ने सब ही भिक्षा रखली। पुनः उसे पीवान् देख गुरु ने कहा कि तुम फिर भी पूर्ववत् ही स्थूल हो, कैसे खाते पीते हो। उस ने कहा कि आपको निवेदन करके मैं पुनः भिक्षा मांग लेता हूं। गुरु ने उस को भी निषेध किया। इस प्रकार यहां गुरु और शिष्य की भक्ति का वर्णन है। इत्यादि कथा से सिद्ध है कि पहले ऋषि आदिक भी गाएं रखते थे।

महाभारत विराटपर्व में गोहरण कथा सूचित करती है कि राजा भी बहुत गौएं रखते थे और राजपुत्र भी कभी कभी गोचारण किया करते थे। गुरु वसिष्ठ की गौवों को सूर्य्यवंशी राजपुत्र चराया करते थे यह वार्ता श्रीमद् भागवत नवमस्कन्ध में आती हैं (१) श्रीकृष्णजी की कथाको सब जानते ही हैं।

इस वर्णन से मेरा अभिप्राय यह है कि जो लोग कहते हैं कि गोपालन केवल वैश्यों का कर्म्म है। सो सर्वथा वेद-शास्त्र-विरुद्ध है। और आज कल गोपालक अहीर जाति को लोगों ने इसी हेतु 'शूद्र' बना रखा है यह भी शास्त्र विरुद्ध वार्ता है। गोपालक आभीर 'द्विज' हैं और इन के यज्ञोपवीत आदि कर्म्म होने चाहिये। इति।

'गौ आदि पशुओं के लिये प्रार्थना"

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्।
सुखम्मेषाय मेष्यै॥ यजुः ३। ५९

एक ऋषि कहते हैं कि हे परमात्मन्! आप [भेषजम्+असि] सर्वोपद्रव

(१) पृषध्रस्तु मनोः पुत्रः गोपालो गुरुणा कृतः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निवारक औषध के समान हैं इस हेतु हमारे [गवे+अश्वाय] गौ और अश्व के लिये और [पुरुषाय] मनुष्य के लिये [भेषजम्] सर्वव्याधिनिवारक औषध देवें। [मेषाय+मेष्यै] मेष और मेषी=भेंड, मेंढ़ी के लिये [सुखम्] सुख देवें।

यह मन्त्र शिक्षा देता है कि सब को गौ, बैल, मेष और मेषी रखने चाहियें।

'घोड़े ऊंट आदि'

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुता सन मुष्ट्राणां विंशतिं शता। दश श्यावीनां शता दश पुरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥ ऋ०८।४६।२२ ॥

षष्टिम्। सहस्रा। अश्व्यस्य। अयुता। असनम्। उष्ट्राणाम्। विंशतिम्। शता। दश। श्यावीनाम्। शता। दश। त्रिअरुषीणाम्। दश। गवाम्। सहस्रा ॥

कोई ऋषि कहते हैं कि मैंने (अश्व्यस्य) अश्व सम्बन्धी धन (षष्टिम्+सहस्रा+अयुता) ६०००० साठ सहस्र अयुत (असनम्) प्राप्त किये हैं। और (उष्ट्राणाम्+विंशतिम्+शता) २००० बीससौ उष्ट्र (ऊंट) (श्यावीनाम्+दश-शता) कृष्णवर्ण १००० दशशत बड़वाएं। (त्रिअरुषीनाम्+गवाम्+दशसहस्रा) तीन स्थानों में श्वेत वर्ण वाली १०००० दशशत गायें मुझे प्राप्त हैं ॥

अर्थात् घोडे ६०००० । ऊंट २००० । बड़वाएं १००० । और गायें १००। इससे सिद्ध होता है कि घोडे ऊंट और गायें बहुत रक्खें। और सब कोई रक्खें।

ऊंट की चर्चा

ता मेऽश्विना सनीनां विद्यातं नवानां यथा चिद् वैद्यः कण्वः। शतमुष्ट्राणां ददत् सहस्रा दश गोनाम् ॥ ८। ५। ३७ ॥

(ता+अश्विनौ+मे) मेरे परिश्रमी रात दिन कार्य्य करने वाले पुत्र पौत्र भ्राता आदि जन (नवानाम्+सनीनाम्) नवीन नवीन धनों को (विद्यातम्) जाने=उपार्जन करें (यथा+चित्) जिस परिश्रम से (वैद्यः+कण्वः) हृदय व्यापी सर्व द्रष्टा ईश्वर (उष्ट्राणाम्+शतम्) एक सौ १०० ऊंट (ददत्) देवें और (गोनाम्+दश+सहस्रा) दश सहस्र गौवें देवें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गर्दभ प्राप्ति के निमित्त प्रार्थना ।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम् । शतं दासाँ अति स्रजः ॥ ऋ० ८ । ५६ । ३ ॥

अर्थः—हे सर्वेश्वर ! (गर्दभानाम्+शतम्) एक सौ १०० गदहे (मे) मुझे आप ने दिये हैं (शतम्+ऊर्णावतीनाम्) प्रशस्तलोम वाली एक सौ १०० मेषिएं (भेड़ें) आप ने दी हैं (शतम्+दासान्) एक सौ १०० दास दिये हैं । (अति) इन सबों से बढ कर (स्रजः) मालाएं अर्थात् अनेक भोग वस्तुएं दी हैं ।

'महाभारत और गदहे'

चत्वारस्त्वां गर्दभाः संवहन्तु श्रेष्ठाश्वतर्य्यो हरयो वातरंहाः तैस्त्व याहि क्षत्रियस्यैष वाहो ममैव वाम्यौ न तवैतौ हि विद्धि महाभारत वनपर्व अ० ॥ ९२ । ९३ ॥

राजा शल और वामदेव का सम्वाद है । राजा वामदेव से कहते हैं कि हे वामदेव ! आप के रथ में चार गदहे, अच्छी श्रेष्ठ खच्चरिएं और वात के समान चलने वाले घोड़े सदा वर्तमान रहैं । इन से युक्त हो कर आप जांय । ये दोनों घोडिएं मेरी वाहन रहें ।

अनुशासन पर्व महाभारत मातङ्ग की कथा में आता है कि मातङ्ग एक ऋषि के पुत्र थे । इन की गाड़ी में गदहे जोते जाते थे । इस से सिद्ध है कि पिछले समय में भी गदहे को अपवित्र नहीं मानते थे ।

रासभ-वाहन ।

युञ्जाथां रासभं रथे वील्वङ्गे वृषण्वसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ । ८५ । ७ ॥

[वृषण्वसू] धन देने वाले [अश्विनौ] हे राजा और रानी ! आप दोनों [वील्वङ्गे] दृढाङ्ग [रथे] रथ में [रासभम्] गदहे को [युञ्जाथाम्] जोतैं और जोत कर यज्ञों में [मध्वः+सोमस्य] मधुर सोमरस [पीतये] पीने के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिये प्रस्थान करें। अथवा मधु उत्तम पदार्थ की रक्षा के लिये प्रस्थान करें। निरुक्त में राजा और राज्ञी को 'अश्वी' कहा है। यदि अश्विनी देवता ही आप मानते हैं तब भी, जब देवता ही अपने रथ में गदहे जोतते हैं तो मनुष्य किस गणना में है कि वह गदहे से घृणा करे। अब इससे बढ़कर कौन प्रमाण हो सकता है।

पारस्कर गृह्यसूत्र और ऊंट गदहे।

उष्ट्रमारोक्ष्यन् अभिमन्त्रयते "त्वाष्ट्रोऽसि त्वष्टृदेवत्यः स्वस्ति मां संपारयेति" रासभ मारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोऽसि शूद्रजन्माग्नेयो वैडिरेताः स्वस्ति मा संपारयेति ॥

(पारस्कर गृह्यसूत्र तृतीय काण्ड)

ऊंट पर जब चढ़ने लगे तब यह (त्वाष्ट्रोसि) इत्यादि मन्त्र पढ़े। और जब गदहे पर चढ़ने लगे तब " शूद्रोऽसि " इत्यादि पढ़े ! यहां रासभ पद का अर्थ " खच्चर " भी कहते हैं।

खच्चर की चर्चा।

पूर्व समय में राजा महाराज और ऋषि मुनि आदि भी खच्चरों की सवारी किया करते थे। इसकी चर्चा भी आती है। यथाः—

रायिक इदं सहस्रं गवाम्। अयं निष्कः। अयम् अश्वतरीरथः। इयं जायाः अयं ग्रामः ॥ छा० उ०। ४। २॥

जानश्रुति पौत्रायण 'रायिक' ऋषिसे कहते हैं कि ऋषे ! आपके लिये यह १००० गौएं हैं। यह कण्ठ भूषण। यह खच्चर संयुक्त रथ है, यह जाया। यह ग्राम है ये सब लीजिये और मुझे ब्रह्मज्ञान सिखलावें ॥ इति ॥

मैं नहीं कह सकता कि जब पूर्व समय में राजा और मुनि लोग खच्चर बरताव में रखते थे तो इस को पिछले समय में क्यों बुरा मानने लगे। गदहे का रेंकना (चिल्लाहट) निःसन्देह कुछ कर्कश सुनने में लगता है और इसका रूप भी कुरूप है। इसी हेतु पिछले समय में इसका प्रयोग करना लोगों ने छोड़

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिया हो और इससे काम लेने वाले धोबी अथवा कुम्हार को नीच समझने लगे हों। परन्तु मैं पूछता हूं जब वेद इसके लिये घृणा प्रकट नहीं करता है और ऊपर के वाक्य से सिद्ध है कि धनाढ्य पुरुष गदहे रखते तो किसकी शक्ति है कि इसको अपवित्र और इससे व्यवसाय करने वाले को नीच माने। पुनः मैं पूछता हूं कि भला गदहे का रूप कुत्सित है अतः यह त्याज्य होवे। परन्तु अश्वतर क्योंकर त्याज्य हो सकता। यह देखने में भी सुन्दर और बड़े काम का है आज कल भी राज दरबार में यह बहुत काम देता है। पुनः एक उपनिषद् का नाम ही श्वेताश्वरतर है। एक ऋषि भी श्वेताश्वरतर थे। अतः इससे घृणा की चर्चा नहीं हो सकती है। बिहार बंगाल में धोबी गदहे को रखते। परन्तु राजपुताना आदि स्थान में कुम्हार गदहों से काम करते हैं।

'चर्म की चर्चा'

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्म्माणि म्लातानि। शतं मे बल्वजस्तुका अरुषीणां चतुः शतम् ॥

अर्थः—(शतम्+वेणून्) एकसौ बांस अर्थात् अनेक प्रकार के गृह बनाने के लिये बांस (शतम्+शुनः) सौ कुत्ते (शतम्+म्लातानि+चर्म्माणि) सौ उत्तम चर्म्म (शतम्+बल्बजस्तुकाः) सौ बल्ब से बने हुए पात्र और (चतुः शतम्+अरुषीणाम्) ४०० चार सौ घोड़िएं (मे) मुझ ईश्वरने कृपाकर दिये हैं।

'चर्म्मरचित-वर्म्मधारी वीर'

यो मे हिरण्यसन्दृशो दशराज्ञोऽअमंहत।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्म्मम्ना अभितोजनाः ॥
ऋ० ८। ५। ३८ ॥

अर्थः—कोई राजा कहता है कि (यः) जिस बलवान् सेनापति ने (हिरण्यसन्दृशः) सुवर्णतुल्य (दश+राज्ञः) दशो दिशाओं में वर्तमान राजाओं को (मे) मेरे अधीन (अमंहत) किया है। निःसन्देह उस (चैद्यस्य) वीरपुत्र नायक की (कृष्टयः) सब प्रजाएं (अधस्पदाः+इत्) नीचे वर्तमान

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। और (अभितः) चारों तरफ वर्तमान जितने (जनाः) सिपाही आदि उसके सहायक जन हैं। वे सदा (चर्म्ममनाः) चर्म्म के अभ्यास करने वाले हैं। अर्थात् सदा चर्म्म रचित कवच धारण करने वाले हैं।

'संवाहक [बोझ ढोनेवाला] कुत्ते की चर्चा'

उच्चध्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदंनुतम् ॥८।४६।२८॥

(वायो) हे वायुवत् सतत कार्य शील पुरुष ! (घृतस्नाः) घृतवत् पिघलने वाला (यः स्वराट्) जो स्वयं विराजमान राजा है अर्थात् प्रजा के परिश्रम जानने वाला जो राजा है वह (उच्चध्ये+वपुषि) परिश्रमी शरीर के निकट (अश्वेषितम्) अश्व से प्रेषित (रजेषितम्) गदहे से प्रेषित (शुना+ईषितम्) कुत्ते से प्रेषित करके (प्र+अज्म) धन भेजा करता है (तद्-इदम्+नु+तत्) वह यह सब धन है।

सायण=अश्वेषितं अश्वैः प्रापितम्। रजेषितम् रजःशब्देनोष्ट्रो गर्दभो वोच्यते तेनाप्यानीतम्।

भाव इसका यह है कि विज्ञानी राजा कर्म्मचारी प्रजाके परिश्रम देख यथा योग्य पुरस्कार दिया करे। जो शत्रुओं को परास्त करता है दुष्टों को संहार कर प्रजाओं में शान्ति फैलाता है अथवा अपनी विद्या द्वारा उपकार करता है उस पुरुष के निकट राजा घोड़े गदहे और कुत्ते आदि वाहन पर लादकर धन पहुंचाया करे। इस से सिद्ध है कि कुत्ते पर भी लदनी हो सकती है।

'मन्त्री आदि सहित गजस्कंधारूढ़ राजा'

कृणुष्व पाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवाँ इभेन।
तृष्वी मनुप्रसितिं द्रुणानोऽस्तासि विध्य रक्षसस्तपिष्ठैः॥

हे सेनाध्यक्ष ! आप (पाजाः+कृणुष्व) सेनादि बल को बढ़ाओ। यहां दृष्टान्त देते हैं (न) जैसे व्याध वन में। (पृथ्वीम्+प्रसितिम्) विशाल जाल को विस्तीर्ण करता है तत्समान आप भी सब प्रकार के बल को बढ़ावें। और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अवमान्+राजा+इव+इभेन) जैसे अमात्य मन्त्री आदि से परिवेष्टित हाथी पर आरूढ़ होकर राजा चढ़ाई करता है। वैसे ही आप भी सेनादि से युक्त हो शत्रुओं पर आक्रमण करें और (तृष्वीम्) शीघ्रगामिनी (प्रसितिम्) सेना के (अनुद्रुणानः) पीछे पीछे गमन करते हुए अथवा क्षिप्रकारी सेनारूप जाल से शत्रुओं को मारते हुए। हे सेनाध्यक्ष ! (अस्ता+असि) आप अस्त्र शस्त्र प्रहर्ता हैं। अतः (तपिष्ठैः) तापक आयुध से (रक्षसः+विध्य) राक्षसों को विद्ध करो। पाज=बल (निघण्टु २-९) प्रसितिः=जाल, प्रसितिः प्रसयनात्तन्तुर्वा जाल वा (निरुक्त ६-१२) षिञ् बन्धने। जिस में अच्छी तरह से पक्षी बाँधे जाय उसे प्रसिति' कहते हैं। पृथ्वी=विशाल। अवमान्=अमगतौ भजने शब्दे च। अमन्ति भजन्ति स्वामिनः इति अमाः सेवकास्तेऽस्य सन्तीत्यमवान् (महीधरः) अमा राज्ञा सह वर्तत इत्यमाऽमात्यः। तद्वान्। (सा०) इभ=गज, हाथी। तृष्वी=शीघ्र। द्रुणान=द्रूहिंसायां। इस मन्त्र को यास्काचार्य्य ने भी निरुक्त में दिया है।

ऋग्वेद मण्डल १०। सू० १०१ के १० मन्त्रोंका अर्थ।

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीडाः।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे निह्वये वः ॥१॥

अर्थः—परस्पर परिश्रमीजन कहते हैं कि (सखायः) हे मेरे प्यारे मनुष्यो ! (उद्बुध्यध्वम्) उठो ! (बहवः) बहुत (सनीडाः) समान-निवासी होकर अर्थात् किसी एक ही शाला में बहुत पुरुष इकट्ठे हो और (समनसः) एक मन हो (अग्निम्) अग्निहोत्र के लिये अग्नि को (सम्+इन्ध्वम्) अच्छे प्रकार प्रदीप्त करो। मैं (वः) तुम्हारे कल्याणार्थ (इन्द्रावतः) सूर्य्य वा वायु के सहित (दधिक्राम्) ब्राह्म मुहूर्त (अग्निम्) अग्नि (च) और (देवीम्+उषसम्) उषा देवी को (अवसे) रक्षा के लिये (नि+ह्वये) आमन्त्रित करता हूं।

पृथिवी पर प्रायः पशु पक्षी एवं अन्यान्य प्राणी अपने समय पर सोते और जागते हैं। कुक्कुट ठीक अपने समय पर जाग बैठता है। ब्राह्म मुहूर्त होते ही पक्षिगण कोलाहल मचाने लगते हैं। परन्तु मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो अपने नियम को नहीं पाल सकता अतः इसके लिये बारम्बार सर्व-हितकारी सर्वसुहृद् भगवान् वेदद्वारा चेताते हैं कि तुम अपने समय पर उठकर मेरी प्रार्थना उपासना पूजा किया करो। इस प्रकार इतना उपदेश देकर आगे अब प्रातःकाहिक कर्तव्य बतलाते हैं।

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आतनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्रणयता सखायः॥२॥

(सखायः) हे मेरे प्यारे समान व्यवसायी मनुष्यो ! (मन्द्रा+कृणुध्वम्) उत्तम उत्तम बुद्धि वर्धक ग्रन्थ बनाओ (धियः+आतनुध्वम्) इस प्रकार अपनी २ बुद्धियों का प्रथम विस्तार करो तब (अरित्रपरणीम्) अरित्र (डांड़ oar) की सहायता से पार जाने वाली (नावम्+कृणुध्वम्) नौका बनाओ। (इष्कृणुध्वम्) विविध प्रकार के नौका सम्बन्धी पदार्थ बनाओ (आयुधा+अरं कृणुध्वम्) आयुधों को शाणित और अलङ्कृत करो। हे सखायो ! (प्राञ्चम्) परम प्रशंसनीय (यज्ञम्) संग्राम रूप महायज्ञ को (प्रणयत) रचो॥ २॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात्॥३॥

हे सखायो ! (सीरा+युनक्त) खेती के लिये लाङ्गल योजना करो (युगा+वितनुध्वम्) युगों (जुओं) का विस्तारित करो (इह+कृते+योनौ) यहां प्रस्तुत क्षेत्र में (बीजम्+वपत) बीज बोओ (गिरा) वाणी से प्रशंसनीय (श्रुष्टिः+च) अन्न (सभरा+असत्) फल फूल से भरजाय। (नः) हमारे (सृण्यः) अन्न के सींस (नेदीयः+इत्) शीघ्र ही (पक्वम्+एयात्) पक जांय। ऐसी आशा करो और इसके लिये ईश्वर से प्रार्थना करो।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया॥ ४॥

(कवयः) कविगण (सीरा+युञ्जन्ति) लाङ्गल योजना करते हैं (युगा पृथक्+वितन्वते) युगों (जुओं) की पृथक् २ विस्तारित करते हैं (देवेषु+धीराः)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विद्वानों में भी जो धीर कवि हैं वे (सुन्नया) सुख पूर्वक सर्वगृहस्थ कार्य्य सम्पादन कर रहे हैं। अथवा सुख के लिये विद्वद्गण भी इस कार्य्य का सम्पादन कर रहे हैं।

निराहावान् कृणोतन संवरत्रा दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकं मनुपक्षितम् ॥ ५ ॥

हे सखायो ! (आहावान्) आहाव अर्थात पशुओं के जल पान स्थानों को (निः+कृणोतन) अच्छे प्रकार बनाओ (वरत्रा+संदधातन) मोटी मोटी रस्सियों का आयोजन करो (उद्रिणम्) पूर्ण (सुषेकम्) सींचने योग्य (अनुपक्षितम्) क्षय रहित (अवतम्) गर्त को (वयं+सिञ्चामहै) हम सब सींचें अर्थात इस अगाधजलपरिपूर्ण 'अवत' (कृत्रिमनदी) से जल लेकर भूमि का सेचन किया करें। ऐसा उत्साह करें ॥

इष्कृताहावं अवतं सुवरत्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥ ६ ॥

(इष्कृताहावम्) जिसमें पशुओं के लिये जल-पान-स्थान बनाया गया है (सुवरत्रम्) सुन्दररज्जुसंयुक्त (सुषेचनम्) शोभनोदकोपेत (उद्रिणम्) पूर्ण (अक्षितम्) अक्षीण ऐसा जो (अवतम्) कृत्रिम नदी है उस से मैं (सिंचे) पानी लेकर सींचता हूं। अथवा द्रोण को सींचता हूं। ऐसा परिश्रम तुम भी किया करो।

प्रीणीताश्वान् हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणावाहमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥ ७ ॥

हे सखायो ! [अश्वान्+प्रीणीत] घोटकों को अच्छे प्रकार तृप्त करो [हितम्+जयाथ] क्षेत्र में संस्थापित धान्यादिकों का ग्रहण करो [स्वस्तिवाहम्+रथम्] जो निरुपद्रव धान्यवहन करे एतादृश रथ [इत् कृणुध्वम्] प्रस्तुत करो। [द्रोणावाहम्] एक द्रोण परिमित पशु निमित्त जलाधार [अवतम्] कृत्रिम नदी [अश्मचक्रम] प्रस्तरनिर्मितचक्र और [नृपाणम्] मनुष्य के पीने योग्य [अंसत्रकोशम्] जलाधार पात्र इन सबों को [सिञ्चत] सींचो ॥ ७ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥८॥

हे सखायो! [व्रजम्+कृणुध्वम्] गोष्ठ बनाओ [सः+हि+वः] वही व्रज आप मनुष्यों के लिये [नृपाणः] मनुष्यपानयोग्य स्थान होगा। हे सखायो! [बहुला] बहुत [पृथूनि] और स्थूल [वर्म्म+सीव्यध्वम्] वर्म्म सीवन करो। और [अधृष्टाः] अधर्षणीय दृढ़तर [आयसीः+पुरः] लोहमय अनेक नगर [कृणुध्वम्] बनाओ [वः+चमसः] तुम्हारे खाने पीने के चमस पात्र [मा सुस्रोत्] स्रवित न होवे उस से पानी न चूवे वैसा [तम्+दृंहत] उसे दृढ़तर करो।

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं सुजतां यज्ञियामिह।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः॥९॥

[देवाः] अब गृहस्थ लोग परस्पर कहें और विद्वानों से निवेदन करें कि हे विद्वानो! [वः] आप लोगों की [यज्ञियाम्+धियम्] प्रशंसार्ह बुद्धि को [ऊतये] अपनी रक्षार्थ [आवर्ते] अपनी ओर खींचता हूं। जो बुद्धि [यज्ञियाम्+देवीं+यजताम्] जो बुद्धि आप लोगों को भी प्रशंसनीय यज्ञिय भाग देती है हे विद्वानो! जैसे [यवसा+इव+गत्वी] अच्छे प्रकार घास खा गोष्ठ में जा [मही+गौः] अच्छी गौ [पयसा+सहस्रधारा] सहस्रधार दूध देती है। वैसे ही [सा] आप लोगों की भी वह बुद्धि [नः दुहीयत्] हम को दूध देवें। अर्थात् आप लोग अपनी बुद्धि से ऐसे ऐसी परमोपयोगिनी विद्या निकाला करें जिस से हम प्रजाओं का बहुत कुछ लाभ हो।

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षता रुक्मयन्तीभिः।
परि ष्वजध्वं दशकक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वहिं युनक्त ॥१०॥

पुनः कोई कहता है कि हे मित्रो! आप (द्रोः+उपस्थे) इस काष्ठ के ऊपर (हरिम्+ईम्) इस हर काष्ठ को (आ+सिञ्च) रक्खो तब (अहम्+रुक्मयन्तीभिः वाशीभिः) लोह निर्मित कुठारों से (तक्षत) तुम सब इसका चीरो फाड़ो। और कोई आप में से (उभे+धुरौ) दोनों धुरों को (दश+कक्ष्याभिः)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दश रस्सियों से (परि+स्यजध्वम्) बांधो । तब (वहो) होने वाले दो बैलों की गाड़ी में (युनक्त) संयुक्त करो ॥ १० ॥

अन्त में एक मन्त्र कह कर इस प्रकरण को समाप्त करता हूं ।

अक्षैर्मा दिव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्य्यः ॥
॥ १० । ३४ । १३ ॥

स्वयं सर्वेश्वर कहता है (कितव०) हे द्यूतादिव्यसनी पुरुषो ! व्यसन को त्यागो । गार्हस्थ्यादि शुभ वृत्ति को धारण करो इसी से निखल धन तुम्हें प्राप्त होगा । इति संक्षेपतः ॥

यहां वेदों से ब्राह्मण रथकारादि अनेक नाम, विविध व्यवसाय और विविध पोष्य-पशुओं का वर्णन दिखलाये हैं । इस विषय में अर्थ और टिप्पणिका सहित बहुत सी ऋचायें सुनाई हैं । इन सबों के निरूपण करने का प्रयोजन यहां यह है कि वेद का उपदेश अच्छे प्रकार सब पर प्रकट होजाय । चिन्ता की बात है कि आज कल के संस्कृतज्ञ पण्डित भी वेदों के विषयों से परिचित नहीं हैं । वेद क्या क्या सिखलाते हैं, उन में कौन २ से पदार्थ निरूपित हैं । हमारे व्यवहार, रीति, सदाचार, प्रबन्ध इत्यादि ऐहलौकिक पारलौकिक विषयों में वेद क्या कहते हैं । इत्यादि बातोंओं से विद्वद्गण भी आज कल सुपरिचित नहीं हैं । साधारण जनों की तो बात ही क्या । वे लोग, इस में सन्देह नहीं कि वेदों को पूज्य, ईश्वरीय वाक्य और पवित्र मानते हैं और समझते हैं कि जो वेद पढ़ते पढ़ाते वे हम से श्रेष्ठ, शुद्ध, पवित्र और ज्ञानी हैं इसी हेतु पण्डितों से साधारण जन व्यवस्था पूछा करते हैं । परन्तु यदि कभी किसी पण्डित के निकट जा कोई पुरुष पूछता है कि पण्डित जी महाराज ! कृपाकर इस विषय में वेद क्या कहता है मुझे समझा देवें । इस पर पण्डित लोग इधर उधर की बात कह के उसे सन्तोष देदेते हैं परन्तु वेद की एक भी बात नहीं बतलाते हैं । क्यों कि स्वयं इसको नहीं जानते । परन्तु इसको वे विस्पष्ट नहीं कहेंगे कि मैं वेदार्थ नहीं जानता अतः तेरे प्रश्न का उत्तर नहीं देसकता । प्रत्युत उसे सूचित कर देवेंगे कि मैं वेद के ही वचन कहता हूं । यदि कोई सरल-भाव से पूछे कि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किस वेद का यह वचन और कहां पर है तो पण्डित महाशय प्रथम अत्यन्त क्रुद्ध होंगे। शान्त होने पर मुखविनिःसृत वचन कहीं का क्यों न हो उसे किसी वेद का नाम ले लेंगे और "इति माध्यन्दिनी श्रुतिः" "इति छन्दोगश्रुति" "इति सामवेदे" इत्यादि पद उच्चारण कर अपने हठ को बढ़ाना आरम्भ करेंगे। इस पर यदि किसी जिज्ञासु ने कुछ और पूछा तो कहेंगे कि तुम क्या जानते हो वेद अनन्त हैं। सहस्रों लक्षों इसकी शाखाएं हैं। किसी शाखा में यह होगी इत्यादि अनर्गल प्रलाप करते जायंगे परन्तु न सत्य पर स्वयं आवेंगे न मानेंगे और न किसी को अपने पुरुषार्थ भर सत्य ग्रहण करने देवेंगे। यह अजीब दशा आज भारत की होरही है। इन बातों से देश में बड़ी हानि हुई। वैदिक सिद्धान्त वेदों के पुस्तक में ही रह गये। प्रजाएं विचरी वंचित हुई। वे समझती रहीं कि हम लोग वेदों के सिद्धान्त पर ही चल रहीं हैं। परन्तु शोक कि वैदिक पथ से सहस्रों कोश दूर वे करदी गईं। आज वे इतनी अज्ञानी और अपरिचित हो गई हैं कि वारम्वार समझाने पर भी न तो समझती और न विश्वास ही करतीं। कुछ दिनों से जो धर्म्माभास उनके ग्राम वा देश में चले आरहे हैं उनको ही विश्वास पूर्वक वैदिक धर्म्म मान रहीं हैं। इस प्रकार देशदशा पर यत् किञ्चित् निरीक्षण करने से महान् अन्याय प्रचलित देख पड़ते हैं। इन अन्यायों को रोकने के अभिप्राय से यहां अनेक मन्त्र उद्धृत किये हैं। आप लोगों ने अच्छे प्रकार मन्त्रों को सुना है। आप स्वयं विचारें कि किसी व्यवसाय वा किसी व्यवसायी की कहीं निन्दा वा किसी को व्यवसाय के कारण निन्दित वा नीच कहा गया है। किसी मन्त्र में किसी प्रकार की भिन्नता प्रदर्शित हुई है? आप को अङ्गीकार करना होगा कि यह सब वेद में नहीं है।

अब कोई अज्ञानी यह कहता है कि वेद तो केवल धर्म्म ही सिखलाते हैं। इस गृहस्थाश्रम के बखेड़ों से वेदों का क्या सम्बन्ध। सत्य है कि वेद धर्म्म ही सिखलाते हैं। परन्तु वैदिक धर्म्म क्या है? यह भी तो जिज्ञास्य और विवेचनीय है। क्या हल चला के अन्न उत्पन्न करना कोई पाप है? क्या मिट्टी के विविध वर्तन बनाना कोई नीच कर्म्म है? क्या ईंटें बनाना बनवाना कोई अपराध है? क्या मृत पशु के चर्म्म लेकर अनेक प्रकार के परिधेय वस्त्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वा बैठने के लिये आसन प्रभृति निर्माण करना कोई अधर्म्म है ? इस में सन्देह नहीं कि आजकल के वेदानभिज्ञ पुरुष इन से घृणा दिखलाते हैं । इन के बोध के हेतु ही मैंने अनेक व्यवसाय परक मन्त्र सार्थक सुनाए हैं । जब वैदिकाऽऽज्ञानुसार परम विज्ञानी, धर्म्मात्मा और अतिशुद्ध ऋषि गण ही कृषि कर्म्म से लेकर सोमाश्वमेध पर्य्यंत सकल वैदिक कर्म्माऽनुष्ठान करते करवाते रहे तो हम लोग उन कर्म्मों के करने में क्यों कर लज्जित होवें । पुनः कोई अवेदज्ञ वेदार्थज्ञानाभिमानी जन कहते हैं कि वेद आदि सृष्टि के ग्रन्थ हैं उनमें आधुनिक सभ्यता का वर्णन कहां से हो सकता है। और न उस समय में ऐसे २ सभ्य विवेकी पुरुष ही थे । ऐसे कहने वालों के बोध के हेतु मैंने अनेक सभ्यताओं का दिक् प्रदर्शन मात्र दिया है । सभ्यता क्या है ? यदि बड़े २ नगरों का होना, समुद्रों में भी विशाल २ जहाजों का चलाना, अनेक प्रकार के पहिनने ओढ़ने के वस्त्रादिकों का बनना बनाना, उच्च ३ भवनों का निर्म्माण होना, बहुविध अन्न पशु प्रभृतियों से काम लेना और इन के साथ २ विद्या प्रचार, शिष्टता, समाज संगठन, शत्रु दलन, न्यायालयनिर्माण आदि ही सभ्यता सूचक है तो आप बतलावें कि वेदों में किस चीज का अभाव है । क्या वेदों में सामुद्रिक यात्रा का वर्णन नहीं ? क्या विविध प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की चर्चा वेद नहीं करते हैं ? मैं क्या करूं । मैंने आप लोगों को दिखलाया है कि सोने और लोहे के भी बड़े २ नगर बसाए जाते थे : १०००० दश दश सहस्र से भी अधिक कभी २ लक्षों घोड़े हाथी गौ आदि पशु एक एक पुरुष रखता था । १० दश दश घोड़े से युक्त गाड़ी चलती थी । इतना ही नहीं आकाश पाताल और पृथिवी पर विना घोडे की सहस्रों गाड़ी चलती थी " अनश्वो जातो अनभीशुः " यह मन्त्र क्या सूचित करता है । पुनः इस से बढ़ कर सम्पत्ति का क्या लक्षण हो सक्ता है ॥ मेरी सम्मति से पूर्णतया सभ्यता का लक्षण अथवा मनुष्यता का चिन्ह अथवा विज्ञान का फल अथवा जगत्पिता के परमानुशासन का प्रतिपालन यह है कि मनुष्य मात्र को मित्र की दृष्टि से देखना किसी को जान कर हानि न पहुंचाना । निःस्वार्थ भाव से कार्य्य का आरम्भ करना और ईश्वरीयज्ञानप्राप्ति के हेतु प्रतिक्षण लालसित रहना इस से बढ़ कर कोई अन्य सभ्यता नहीं । वेद इन को अच्छे प्रकार दिखलाते हैं ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्तां मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे"। "संगच्छध्वं संवदध्वं सम्वो मनांसि जानताम्"। "यो माऽयातुं यातुधानेत्याह" "किंस्विदासी दधिष्ठानम्" "त्रीणि पदा निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत्" 'क्वेदानीं सूर्य्यः कश्चिकेत" "अनायतो अनिबद्धः कथायं" इत्यादि अनेक मन्त्रगण उच्चतम सभ्यता के प्रतिपादक हैं।

विशेष कर आप लोगों को इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि जो कुछ व्यवसाय वा वाणिज्य आज कल देखते हैं वेदों में भी इन का अति संक्षेप वर्णन आया है और ऋषि उन सब व्यवसायों को कार्य्य में लाए थे यह भी शतपथादि ग्रन्थों से विदित होता है। ब्राह्मण के कर्म्म से लेकर चर्म्मकार के कर्म्म पर्य्यन्त वेद वर्णन करते हैं। पशुओं में गौ से लेकर गर्दभ पर्य्यन्त पशु पोष्य और कार्य्य वाहक बनाए गए थे गेहूं से लेकर मसूर पर्य्यन्त अन्नों का व्यवहार होगया था। इत्यादि सब ही प्रयोजनीय वस्तु की विद्यमानता देखते हैं। परन्तु कहीं भी मनुष्य में भिन्न २ जाति का वर्णन वा निन्दा वा प्रायश्चित्त आदि का वर्णन वा ब्राह्मण क्षत्रिया से विवाह करे क्षत्रिय ब्राह्मणी से न करे एवं शूद्र ब्राह्मणी वा क्षत्रिया, वा वैश्या कन्या से विवाह न करे, शूद्र स्पृष्ट अन्न ग्रहण नहीं करे। इस प्रकार का पृथक् जातिसूचक वर्णन वेद में नहीं है इस हेतु वैदिक समय इन रोगों से सर्वथा निर्मुक्तथा यह अंगीकार करना ही पड़ेगा। वैदिक समय में कोई जातिभेद नहीं था इस में अणुमात्र सन्देह नहीं। अब प्रश्न हो सकता है कि यह आधुनिक जाति भेद कब से चला। और वैदिक वर्ण व्यवस्था भी कार्य्य में कब से आने लगी। इन सबों का निर्णय आगे के प्रकरण में करेंगे।

प्रश्न—मनुष्य में अनेक वर्ण कैसे उत्पन्न हुए? उत्तर—आवश्यकतानुसार विविध व्यवसायों की वृद्धि होने से मनुष्य में अनेक वर्ण बनते गये। देखिये! इस पर विचारना चाहिये कि क्या सृष्टि की आदि में ही होता, अध्वर्यु, उद्गाता, ब्रह्मा क्षत्रिय, रथकार, इषुकार, स्थपति, चाण्डाल, सूत, मागध, प्रभृति मनुष्य उत्पन्न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुए। या धीरे धीरे ये सब बनते गये। इस आशङ्का का समाधान अथवा इस का निर्णय सहज रीति से हो सकता है यदि थोड़ी देर आदि सृष्टि का चित्त में ध्यान करें। यह स्वीकार करना होगा कि आज कल जितने मनुष्य हैं। आदि में इतने मनुष्य उत्पन्न नहीं किये गये। आजकल की अपेक्षा कुछ थोड़े से मनुष्य उत्पन्न हुए होंगे। अब आंख मूंद कर ध्यान कीजिये कि आदि सृष्टि कैसी हो सकती है? निःसन्देह आज कल के समान उस समय में ग्राम, पल्ली, पुरी, नगर, नगरी भवन, प्रासाद, मन्दिर आदि नहीं बने थे। गौ, बैल घोड़े, हाथी, ऊंट, भेड़ा, भेंड़, बकरे, प्रभृति पशु मनुष्य के अधीन और पोष्य नहीं हुए थे। खेती आरम्भ नहीं हुई थी। सम्पूर्ण पृथिवी नर नारियों से शून्य थी। परन्तु आज कल के समान ही विविध नदीस्रोत स्वच्छन्दतया प्रवाहित थे। समुद्र देव अपने तरङ्ग कल्लोल से प्रकृति देवी की शोभा बढ़ा रहे थे। फल, फूल, कन्द, मूल, अनेक प्रकार के गेहूं, जौ, मसूर, धान प्रभृति ओषधियों से भूमि भरी हुई थी पशु पक्षी और मत्स्यादि जलचर आदिकों का ही सम्पूर्ण राज्य था। अर्थात् जब समस्त सामग्री भूमि पर ईश्वरेच्छा से प्रस्तुत होगई तब मनुष्य सृष्टि का आरम्भ हुआ। जैसे एक गृह में एक ही माता पिता के निज २ कर्म्म संयुक्त भिन्नाकृति अनेक सन्तान हों वैसे ही आदि सृष्टि में उस परम पिता जगदीश की अचिन्त्य, अकथ्य, अगम्य, अज्ञेय, अलौकिक, लीला के वश अनेक मनुष्य निज कर्म्मानुसार इस पृथिवी पर उत्पन्न हुए। आप देखतेहैं कि सब मनुष्य आकृति में एक दूसरे से यत्किञ्चित् भिन्न २ प्रतीत होते हैं एकही पिता के अनेक पुत्र आकृति में अवश्य ही कुछ भेद रखते हैं। परन्तु यह भेद यथार्थ में भेद नहीं। जैसे गौ और हाथी में काक और शुक में मत्स्य और कूर्म्म में भेद है वैसा यह भेद नहीं। इसी प्रकार आदि सृष्टि में आकृतिगत यत्किञ्चित् भेद के साथ अनेक विध सैकड़ों मनुष्य उत्पन्न हुए। दिन दिन इनकी वृद्धि होने लगी। इस में सन्देह नहीं कि आदि सृष्टि में ही अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा इन पूर्वसिद्ध चार ऋषियों के हृदय में चारों वेद प्रकट किये गये और इनके द्वारा मनुष्य समाज में भाषा का प्रचार हुआ। अन्यथा मनुष्य भी पशु के समान अव्यक्तभाषा बोलने वाला ही रहता। परन्तु इसका भी यह तात्पर्य्य है कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्यशरीर की रचना भगवान् ने ऐसी प्रकट की कि इस शरीर के द्वारा जीवात्मा विस्पष्ट भाषा प्रकट कर सकता है। और दिन दिन उन्नति करने में समर्थ हो सकता है। यद्यपि भगवान् ने वेद दिये। तथापि क्या सृष्टि के आदि में सब ही विद्वान् बन गये और सब ही व्यवसाय एक साथही होने लगे। और सब प्रकार के व्यवसायी वर्ण भी तैय्यार होगये? नहीं। ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि मनुष्य का निज पुरुषार्थ निष्फल होजायगा। चार ऋषियों के हृदय में सम्पूर्ण ज्ञान भरा हुआ था। इन के अतिरिक्त और सब अज्ञानी थे। और उन चार ऋषियों को भी ईश्वर सृष्टि के साथ प्रत्येक पदार्थ की तुलना करनी बाकी थी। वेद के द्वारा पदार्थों का बोध था। परन्तु किस पदार्थ को किस नाम से पुकारना होगा इत्यादि उनकी बुद्धि के ऊपर छोड़ा गया था। क्योंकि मनुष्य में जो मनन शक्ति दी है वह भी व्यर्थ न होवे। जैसे एक बुद्धिमान् बालक को पदार्थ विद्या का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ पढ़ा दिया जाय। और एक वाटिका में सब पदार्थ अच्छे प्रकार स्थापित कर उससे कहाजाय कि इस ग्रन्थ में जैसे जिसके गुण वर्णित हैं और लक्षणादि कहे हुए हैं इन्ही के अनुसार इनके नाम रक्खो और इनसे काम लो। वह सुबुद्धिमान् पाठक परीक्षा ले २ कर ग्रन्थानुसार पदार्थों के नाम और प्रयोग स्थिर करने में समर्थ हो सकता है। इसी प्रकार वेद प्राप्त होने पर भी प्रत्येक पदार्थों के नाम और प्रयोग परीक्षा ले लेकर ऋषियों ने स्थिर किये। इसमें सन्देह नहीं कि उन चार ऋषियों के मन में समस्त पदार्थों के बोध का संस्कार पहले से ही था। वेद उन संस्कारों के जागृत करने में उद्बोधक होता गया। अतः उन चारों को पदार्थ परिचय में भी कोई कठिनता नहीं हुई।

वेदों में मनुष्य, मनु, मनुष्, मानुष, विवस्वान्, जगत् आदि मनुष्य के नाम से भी यह सिद्ध होता है कि वेद की सहायता और निज मनन से मनुष्यों ने सब उन्नति की है। मनुष्यादि शब्द का अर्थ हमें सूचित करता है और आज प्रत्यक्ष भासित होता है कि मनन, पूर्वापर विवेक-उत्साहादि गुण सहित और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विस्पष्ट भाषा के साथ मनुष्य उत्पन्न किया गया (१)। वेदों में कहा गया है कि वैदिक ज्ञान सहित ही ईश्वर ने मनुष्य को प्रकट किया (२) इस हेतु पशु पक्षी प्रभृति के समान एकही अवस्था में मनुष्य कदापि नहीं रह सकता। जैसे बालक में धीरे धीरे विज्ञान बढ़ता जाता है वैसे ही आदि सृष्टि में वेद की सहायता से मनुष्यों में सर्वविज्ञान फैलता गया। सब से पहिले स्वभावतः खाने पीने की आवश्यकता का बोध उत्पन्न हुआ। यद्यपि फल फूल कन्द प्रभृति अनेक पदार्थों से ही प्रथम मनुष्य अपना जीवन निर्वाह करने लगा परन्तु उन्नतिमान् होने के कारण अन्न पकाने की भी विधि निकाली। प्रथम अंगिरा अथर्वा दध्यङ् आदि ऋषियों ने इन्हें अग्नि को काम में लाने की विद्या अच्छे प्रकार सिखलाई।

इस प्रकार धीरे धीरे खेती करने की भी आवश्यकता उपस्थित हुई। तदनुसार, कृष्टि, चर्षणि आदि वैदिक नाम रक्खे। परन्तु इस जीवन निर्वाह के साथ २ शरीर को वस्त्रादिक से आच्छादन करने की भी इच्छा उत्पन्न हुई होगी क्योंकि वेद में कहा गया है कि वस्त्र धारण करने वाले श्रेष्ठ सुशोभित होते हैं। संभव है कि प्रथम वल्कल आदि अनायासप्राप्य अकृत्रिम पदार्थ ही उनके वस्त्र भी हुए हों परन्तु वैदिक ज्ञान के द्वारा कृत्रिम वस्त्र बनाने की भी चिन्ता उन्हें उत्पन्न हुई। (३) अब हम अनुमान कर सकते हैं कि जिस समय कोई भी कृत्रिम वस्त्रधारी न हो। और न कोई इस विद्या को जानता ही हो अथवा

(१) मनुष्याःकस्मात् मत्वा कर्म्माणि सोव्यन्ति। मनस्य मानेन सृष्टा मनस्यतिः पुनः मनस्वी भावे। निरुक्त ३।७।

(२) स पूर्वया निविदा कव्यदःऽऽयोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम् ऋ० ।।१६।२। आयु-आने वाले जीव के निमित्त ईश्वर ने पूर्ववत् निविद् = वेद ज्ञान सहित मनुष्य सम्बन्धी इन प्रजाओं को उत्पन्न किया। निविद् का अर्थ वैदिक मन्त्र, ज्ञान आदि होता है। "सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः" यह गीता वाक्य भी इसी अर्थ को दृढ़ करता है।

(३) युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमानः। तं धीरासः कवयः उन्नयन्ति स्वाध्यो मनसः देवयन्तः। ऋग्वेद ।३-८-४।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वस्त्र धारण करने की किसी को चेष्टा भी न हो। परन्तु इस अवस्था में यदि कोई ऋषि वेद से इस विद्या को जान वस्त्र वयन (वस्त्रबुनना) विद्या की शिक्षा देना आरम्भ करें उस समय आप अनुमान कर सकते हैं कि इस के लिये कितनी सामग्री की आवश्यकता हो सकती है। इसी प्रकार अन्यान्य व्यवसाय की भी दशा जानिये। मनुष्य को अपनी रक्षा की भी चिन्ता लगी। चारों तरफ़ व्याघ्रादि मांसाहारी पशु भ्रमण कर रहे थे। इन के बच्चों को कभी कभी खा जाते थे। इस समय इनको अस्त्र शस्त्र की आवश्यकता बढ़ी। इस प्रकार शनैः शनैः अनेक आवश्यकाताएं मनुष्यों को होने लगीं। आप अनुमान कर सकते हैं कि—

रहने के लिये गृहादि एकट्ठे वास के लिये ग्राम नगरादि, खेती के लिये बैल हल आदि, पहनने के लिये वस्त्र, रक्षा हेतु अस्त्र शस्त्र, नदी में पार उतरने को नौका, आने जाने को रथादि व्यवहार के लिये द्युम्न (विविध प्रकार के सिक्के) इस प्रकार अनेक पदार्थों की आवश्यकता दिन दिन बढ़ती गई। प्रथम सब कोई सब कार्य करने लगे अर्थात् जहां तक होता था अपने गृह में वस्त्रादि पदार्थ बनालेते थे जैसे आजकल भी देखते है कि कोई कोई परिवार सब ही योग्य कार्य्य अपने से ही कर लेता है। खेती करता है। अन्नादिकों को उत्पन्न करके बेचता है। विविध पशु पालता है अपने हाथ से गाड़ी रथ बना लेता है लोहे के विविध पात्र गढ़ता है। कोल्हू से वा अन्यान्य उपाय से तेल चुआ लेता है। घृतादि तैयार करता है। कई एक वस्तु से नीमक भी गलालेता है। समय पर अपने शत्रु से लड़ता भी है। पूजा पाठ भी नियम से कर लेता है। पंच बनकर बड़े बड़े झगड़ों को निपटाता है। इसी प्रकार एकही गृह में विविध कार्य्य होते हुए आज भी आप देखतेहैं। बहुत समय तक यही रीति चली आती रही कि प्रायः दिक प्रयोजनीय अन्न, वस्त्र, तेल, घृत, नीमक, लोहादि धातु निर्म्मित अनेक भोज्य भाजन, भूषण आदि पदार्थ अपने २ गृह पर ही सब कोई तैयार कर लिया करते थे परन्तु दिन २ पदार्थों का ज्यों ज्यों अधिक प्रयोग होने लगा। समाज में पुरुषार्थ के अनुसार धनिक, दरिद्र, दक्ष, आलसी सब प्रकार के मनुष्य होने लगे सो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सों व्यवसाय की भी उन्नति होती गई। धनिक पुरुष अपने गृह पर अपने हाथ से वस्त्र भूषणादि प्रयोज्य पदार्थ न बना कर दूसरों से खरीद करने लगे। दरिद्र बेचारे अच्छे अच्छे पदार्थ प्रस्तुत कर उन धनिक पुरुषों के हाथ विक्रय करने लगे। स्त्रियों में भूषण की आवश्यकता बढ़ने पर कोई अलङ्कार गढ़ कर अपनी जीविका करने लगा। कोई रथादि बना कर, कोई विविध प्रकार के सांग्रामिक वर्म्म सीकर, कोई लोहों से बाण तैयार कर, कोई भोजनार्थ विविध पात्र निर्म्मित कर अपना अपना जीवनोपाय करने लगा। परन्तु वैदिक समय में इन सब व्यवसायियों के पृथक् २ वंश वा वर्ण नहीं बने थे। एक ही वंश में अनेक व्यवसायी होते थे। जैसे आज कल भी देखते हैं कि एक ही ब्राह्मण के घर में कोई पाचक, कोई सिपाही, कोई लेखक, कोई वकील, कोई पुरोहित कोई पानी पांडे, कोई खेतिहर, और कोई क्रयविक्रय करने वाला इत्यादिक अनेक विध पुरुष हैं और वे सब मिल इकट्ठे होने पर ब्राह्मण ही कहाते हैं। इसी प्रकार वैदिक समय में लोह, काष्ठ, मृत्तिका, चर्म्म, सुवर्ण, कपास आदिक पदार्थों से व्यवसाय करने वाले लोहकार, धनुष्कार, तक्षा (बढ़ई) कुम्भकार, सुवर्णकार, चर्म्मकार और तन्तुवाय आदि व्यवसायी एक आर्य्य नाम से मिलने पर पुकारे जाते थे और खान पान शादी विवाह सब ही साथ होते थे। क्योंकि एक वंश के सब होते थे॥ और इन का पृथक् २ वंश अभी तक नहीं बना था।

आज कल यह एक व्यवहार देखते हैं कि क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय किसी वंश का कोई पुरुष क्यों न हो और वह नीच से नीच वर्ण के यहां धावक (सिपाही) अथवा पाचक अथवा पानी पिलाने पर नौकर हो अथवा गृह गृह पर मज़दूरी लेकर पानी पहुंचाता हो अथवा इस प्रकार के किसी नीच उपाय से भी अपनी जीविका निर्वाह करता हो तो इस अवस्था में भी वह ब्राह्मण वा क्षत्रिय ही कहालता रहेगा अर्थात् जिस कुल में उस का जन्म हुआ है वही बना रहेगा। इसी प्रकार आज कल विदेशियों के अनेक पुतलीघर व्यवसाय के लिये खुले हुए हैं उन में सब वर्ण के मनुष्य सब काम करते हैं। नीच से नीच

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कर्म्म झाड़ू लगाना पानी भर कर सब को पिलाना आदि करते हैं। परन्तु वे अपनी जाति वा वर्ण से च्युत कभी नहीं माने जाते और न उन्हें कोई अपने वर्ण से पृथक् ही कर सकता। परन्तु यदि वही पुरुष अपने निज गृह पर लोहार बढ़ई वा सुनार वा कुम्हार आदि के कर्म्म कर जीविका करे तो उसे झट वर्ण से पृथक् कर देवेंगे या नीच समझने लगेंगे और दो चार वंश के पीछे वह अपने व्यवसाय के अनुसार लोहार आदि कहलाने लगेगा परन्तु पुतलीघर में जाके वह भले ही सब कर्म्म करे उसे कोई भी पृथक् नहीं करेगा। और न पुतलीघर के व्यवसाय पर उस का कोई नाम ही अलग रक्खा जायगा।

इसका भी कारण क्या है? इसका कारण प्रत्यक्ष है। देशमें जिस२ व्यवसाय (रोज़गार) की सिद्धिके हेतु एक एक वंश वा वर्ण पहले से बना हुआ है। उस २ व्यवसाय में उसी २ वर्ण वा वंशज पुरुष का अधिकार है क्योंकि माध्यमिक (मध्य कालके पुरुष) लोग समझते थे कि एक २ वंशज व्यवसाय रहनेसे कार्य्य उत्तम होगा। उस वंश का उसमें बड़ी निपुणता होती जायगी और उस वंशज को हानि भी न पहुंचेगी। दूसरा—नवशिक्षित वैसा कर सके वा न कर सके। तीसरा—लाभ दायक व्यवसाय को ही सब कोई करना चाहेगा। इस से कितने व्यवसायों के जड़ से विनष्ट होने की संभावना हो सकती है। चौथा—अनवस्थित पुरुष एक में लाभ न देख के दूसरा आरम्भ करेगा, उस में लाभ न देख के तीसरा व्यवसाय करेगा। इस प्रकार किसी किसी को बड़ी हानि पहुंचने की संभावना है इत्यादि अनेक कारण वश यदि कोई पुरुष निज व्यवसाय को छोड़ अन्य व्यवसाय को करने लगे तो वह पतित माना जायगा। और जाति से निकाल भी दिया जा सकता है। परन्तु पाचक वर्ण अभी तक कोई नहीं बना है धावक, लेखक, वाहक, सेवक आदि भी कोई वर्ण अभी तक नहीं है। इस हेतु इस कार्य्य को जो चाहे सो करले वह अपने वर्ण से पतित नहीं होगा।

इसी प्रकार आप समझें कि वैदिक समय में रथकार, लोहकार, स्वर्णकार, प्रभृतिका कोई पृथक् वंश नहीं बना था। एक ही वंश के पुरुष इस कर्म्म को करे दूसरे वंशज इसे न करे ऐसा कोई नियम नहीं था। इस कारण वैदिक स-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मय में आवश्यकतानुसार एक ही वंशके पुरुष भिन्न २ लोहकार, कुम्भकारादि होने पर भी मिलने पर सब समान ही समझे जाते थे। और एक ही आर्य्य नाम से सब पुकारे जाते थे कोई व्यवसाय वंशाऽऽगत नहीं हुआ था। इस प्रकार एक घरवाले भी भिन्न २ व्यवसायी होने पर भी एक ही आर्य्य थे।

"मानवाऽऽर्य्य सभा"

शनैः २ जब मनुष्य-संख्या अधिक बढ़ने लगी संसार में मनुष्य चारों तरफ विस्तीर्ण होगये परस्पर का प्रेम टूटता गया परस्पर भयङ्कर युद्ध होने लगा, एक दूसरे को अन्याय से दबाने लगे उस समय आर्य्यों में एक बृहत् सभा स्थापित हुई। एक पुरुष सभा का सभापति होता था। वह "मनु" इस नाम से पुकारा जाता था। वह वेदतत्त्ववित्, परम ज्ञानी, निष्पक्ष, धर्म्मात्मा, और पृथिवी पर के प्रायः सब वृत्तान्त जानने वाला होता था। इस 'मनु' के अधीन कई एक ऋषि, ऋत्विक् और कई एक राजा होते थे। ऋषियों के साथ प्रत्येक विषय का परामर्श, और ऋत्विक् लोगों से विविध यज्ञ और राजाओं से युद्ध और राज्य प्रबन्धादि कार्य्य लिया करते थे इसी का नाम 'मानवार्य्य सभा' थी। क्योंकि इस में मनु की प्रधानता होती थी मनु सम्बन्धी को 'मानव' कहते हैं प्रजाओं की सम्मति से राजा वे बनाए जाते थे जो प्रजाओं को सदैव प्रसन्न उनके विघ्नों को अच्छे प्रकार नष्ट और शत्रुओं को अपने अधीन कर सकते हों। और इन राजाओं के अधीन बहुत सेनाएं रहती थीं। परन्तु आपको यहां स्मरण रखना चाहिये कि वैदिक समय में राजवंश भी कोई पृथक् नहीं हुआ था। जो प्रजाओं में ही बड़े शूर वीर निर्भय शत्रु दलन में सदा तत्पर और प्राण को तृण समान मानने वाले होते थे वेही राजा बनाए जाते थे और न वे जन्म भर राजा ही बने रहते थे। एक 'मनु' के समय में ही अनेक राजा परिवर्तित होजाते थे। जहां दो चार विजय उन्हों ने किये वे अन्य कार्य्य में लगाए जाते थे और अन्यान्य युवकों को राज्य भार सौंपे जाते थे। जो सब राजाओं का सरदार बनाया जाता था वह 'इन्द्र' और इस के जो साक्षात् मन्त्री होते थे वे 'बृहस्पति' नाम से पुकार जाते थे। इस प्रकार आर्य्यों में 'महाराज' अथवा 'सम्राट्' की 'इन्द्र' और मन्त्री की 'बृहस्पति' पदवी बहुत दिनों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तक रही। देश के प्रत्येक खण्ड में 'राज सभा' और एक २ 'राजा' नियत होता था। वे सब राजे, सम्राट् के अधीन और वह सम्राट् 'मनु' के अधीन रहताथा। इसी प्रकार उस समय ब्राह्मण का भी कोई पृथक् वंश नहीं था। वंश में जो अधिक पढ़ लिख जाता था वही अपने घर का पुरोहित भी होता था। और समय समय पर ऋत्विक् आदि बन बड़े २ यज्ञ भी अपने में करलेता था। जो प्रजाएं अनभिज्ञ होती थीं वे उन्हीं पढ़े पुरुषों को अपने घर लेजाकर धार्मिक संस्कार करवा लिया करती थीं। इस प्रकार मानों जिसका पिता मूर्ख होने के कारण कर्षक वा तन्तुवाय आदि साधारण व्यवसाय से जीविका निर्वाह कर रहा है यदि उसका पुत्र अनूचान और वेदज्ञ बन गया तो वह यज्ञादि कर्म्म करता करवाता बड़े यज्ञों में ऋत्विक् और ब्राह्मण का आसन ग्रहण करता। और यदि विद्वान् का पुत्र विद्वान् न हुआ तो वह किसी अन्य उपाय से अपनी जीविका निर्वाह करता परन्तु वह कभी ऋत्विक् आदि नहीं बनाया जाता। जो पुरुष केवल अपना समय पढ़न पढ़ाने में ही सर्वदा बिताना चाहते थे उनको लोग ब्राह्मण की पदवी देते थे और ये समाज के 'मुख्य' कहाते थे क्योंकि मुखका कार्य्य मुख्यतया पढ़ना पढ़ाना, स्तुति करना करानाआदि भाषण है। वैदिक समय में यही नियम चलता रहा। केवल आर्य्य और दस्यु का भेद था परन्तु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में कुछ भी भेद भाव नहीं था। जैसे आज कल ऋत्विक् पुरोहित होता अध्वर्यु ब्रह्मा आदिका कोई पृथक् वर्ण नहीं है। ब्राह्मण में से जो विद्या पढ़ जाते हैं वेही ऋत्विक् आदि बन जाते हैं वैसी ही वैदिक समय का सुसमाचार है। जो अध्ययन अध्यापन करते थे वे ब्राह्मण जो वीर शत्रु संहारी वे क्षत्रिय जो खेती आदि व्यापार में लगे वे वैश्य जो बहुत न्यून पढ़े परन्तु प्रत्येक शारीरिक कार्य्य में दक्ष वे शूद्र। आज कल भी आप देखेंगे कि अनेक व्यवसाय के पृथक् २ वर्ण अभी तक नहीं बने हैं। मार्दङ्गिक, पाणिवाद वेणुध्म, वीणाद, वार्तावह इत्यादि अर्थात् मृदंग बजा कर जो अपना निर्वाह करे वह मार्दङ्गिक, हाथ से ताल बजाने वाला पाणिवाद, बांसुरी बजाने वाला वेणुध्म, वीणा बजाने वाला वीणावाद, संदेसा लेजाने वाला वार्तावह। इन सबों का पृथक् २. अभी तक कोई वर्ण नहीं है। इसी प्रकार नर्तक, कत्थक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि का भी कोई पृथक् वर्ण नहीं। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, रथकार, तक्षा, सुवर्णकार, निषाद, आदि शब्द रहने से कोई यह न समझे कि ये शब्द वेदों में पाये जाते हैं अतः ये पृथक् २ वर्ण वंशानुगत होवेंगे परन्तु यह अनुमान ठीक नहीं। शब्द रहने से ही किसी विषय की सिद्धि नहीं होती। उस समय के समस्त व्यवहार की परीक्षा करना चाहिये। मैंने यहां अनेक व्यवसायों के उदाहरण वेदों से दिये हैं जिन से आपको प्रतीत हुआ होगा कि वैदिक समय में कोई वंशानुगत वर्ण नहीं था अर्थात् खान्दानी कोई वर्ण व्यवस्था नहीं थी।

कई सहस्र वर्षों तक यही वैदिक नियम चलता रहा। उस समय देश में परम वृद्धि रही। धन धान्य पूर्ण साक्षात् लक्ष्मी, सरस्वती, दोनों देविएं गृह गृह विराजमान थीं। बहुत दिनों के पश्चात् अर्थात् करीब ६००० छः सहस्र वर्ष बीते हैं कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्था कतिपय राजाओं ने स्थापित की। तब से यह अन्याय बढ़ता गया और आज इस भयङ्कर अवस्था तक पहुंच गया है। परन्तु आगे के प्रकरणों से आप को यह विदित होगा कि इस पतित समय में भी बड़े बड़े विद्वानों ने इस वंशानुगत वर्णव्यवस्था को तोड़ने के लिये बड़े २ प्रयत्न किये हैं। मैं इन सबों का आगे निरूपण करूंगा। इस प्रसंग में यह वर्णन करना आवश्यक समझता हूं कि बहुधा अज्ञानी मानते हैं कि ब्रह्मा के मुख से आदि सृष्टि में ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हुए, इस हेतु आदि सृष्टि से ही ये चारों वर्ण पृथक् २ हैं। और इसी कारण एक दूसरा कदापि नहीं हो सकता। शूद्र सदा नीच ही रहेगा क्योंकि पैर से इस की उत्पत्ति है और ब्राह्मण सदा उच्च ही रहेगा क्योंकि मुख से इस की उत्पत्ति है। अर्थात् जन्म से ही ब्राह्मणादिक वर्ण हैं कर्म्म से नहीं। और इस में "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस ऋचा का प्रमाण देते हैं। इस हेतु मैं समझता हूं कि इस ऋचा का प्रथम व्याख्यान करलें तब आगे पुनः चलें

इति द्वितीय व्यवसायादिनिरूपणप्रकरणं समाप्तम्

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथ

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्व्याख्याप्रकरणम् ।

प्रश्न–परब्रह्म परमात्मा के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादि वर्णचतुष्टय उत्पन्न हुआ क्या यह वेदों से सिद्ध नहीं होता ?। उत्तर–नहीं। प्रश्न–तब "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" इस ऋचा का अभिप्राय क्या है ?

उत्तर–इसका अभिप्राय मैं अनेक प्रमाणों के सहित निरूपण करूंगा जिस से आप लोगों का सन्देह सर्वथा मिट जाय और आप सत्यता तक पहुंच जांय। इस हेतु प्रथम आप इस बात पर ध्यान देवें कि यह "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" ऋचा किस अवसर पर कही गई है। इस मन्त्र के पहले एक प्रश्न किया गया है। उस के समाधान में इस ऋचा को कहा है। अब यह विचारणीय है कि प्रश्न के अनुसार ही समाधान भी हुआ करता है। प्रश्न तो कुछ हो और उस का उत्तर कुछ और ही हो "आम्रान् पृष्टः कोदारानाचष्टे" ऐसा कथन केवल अज्ञानी और उन्मत्त का होता है। इस हेतु प्रथम प्रश्न के ऊपर ध्यान दीजिये। प्रश्न यह है।

मुखं किमस्यासीत् किंबाहू किमूरू पादा उच्येते । य०३१।१०॥

इस का अक्षरार्थ यह है। (अस्य) इस का (मुखम्+किम्+आसीत) मुख कौन है "वेद में लिट् लङ् और लुङ् सर्वकाल में होते हैं" "छन्दसि लुङ् लिङ् लिटः ।३।३।६। धात्वर्थानां सम्बन्धे सर्वकालेष्वेते वा स्युः" (किं+बाहू) दोनों बाहु कौन हैं (किम्+ऊरू) दोनों ऊरु कौन हैं। और (पादौ+उच्येते) इस के दो पैर कौन हैं।

ये ही चार प्रश्न हैं। इन में आप देखते हैं कि किसी प्रश्न में नहीं पूछा गया है कि ब्राह्मण किस अंग से उत्पन्न हुए थे क्षात्रियादि किस अङ्ग से उत्पन्न हुए। अब इसी प्रश्न का उत्तर होना चाहिये। सो सुनिये।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांशूद्रो अजायत । यजु० ३१ । ११ ॥

(अस्य+मुखम्+ब्राह्मणः+आसीत्) इस का मुख ब्राह्मण है । (बाहू+राजन्यः+कृतः) दोनों बाहू क्षत्रिय हैं । (यद्+वैश्यः) जो वैश्य है (तद्+ऊरू) वह इस के दोनों ऊरू हैं । (पद्भ्याम्+शूद्रः+अजायत) दोनों पैर शूद्र हैं ।

इस प्रकार अर्थ करने से प्रश्नों का ठीक समाधान हो सकता है । मैं पुनः प्रश्न और उत्तर साथ २ रखता हूं । प्रश्न (१) मुखं किमस्यासीत्–इसका मुख कौन है ? उत्तर–ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्–इस का मुख ब्राह्मण है । प्रश्न (२) किंबाहू इस के दोनों बाहू कौन है ? उत्तर–बाहू राजन्यः कृतः–इस के दोनों बाहु राजन्य (क्षत्रिय) है । प्रश्न (३) किमूरू–इस के दोनों ऊरू कौन हैं ? उत्तर–ऊरू तदस्य यद्वैश्यः–इस के दोनों ऊरू वैश्य हैं । प्रश्न (४) पादा उच्येते–इस के दोनों पैर कौन हैं । उत्तर–पद्भ्यां शूद्रो अजायत । इस के दोनों पैर शूद्र हैं ॥

जो प्रश्न पूछे गये हैं उन के समाधान भी इसी प्रकार हो सकते हैं । अब आप यह विचारें कि "इस का मुख कौन है" ऐसा कोई प्रश्न पूछता हैं । यदि इस का उत्तर यह कहा जाय कि "उस के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ है" तो क्या यह उस प्रश्न का समाधान कहलावेगा । कदापि नहीं । यदि ब्राह्मण कहां से उत्पन्न हुआ । ऐसा प्रश्न रहता और उसके मुख सें ब्राह्मण उत्पन्न हुआ यह उत्तर कहा जाता तो प्रश्न के अनुकूल समाधान समझा जाता परन्तु यहां वैसा प्रश्न ही नहीं । फिर वैसा समाधान कैसे किया जाय ।

प्रश्न–"इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" इतिहास पुराणादिकों नें जैसा वेदों का तात्पर्य वर्णन किया हो । वैसा ही वर्णन करना चाहिये सब इतिहास पुराण कहते हैं कि ब्राह्मणादि चारों वर्ण ब्रह्मा के मुखादिक अंगों से उत्पन्न हुए हैं फिर इस के विरुद्ध अर्थ आप कैसे करते हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समाधान—वेद के अनुसार इतिहास पुराणों को वर्णन करना चाहिये अथवा इतिहास पुराण के अनुकूल वेद को लगाना चाहिये। महाशयो! आप यह तो सोचें कि यदि इतिहास पुराण कहीं भूल कर गयें हो तो उन की जाँच कैसे हो सकती है। क्या उसी भूल के अनुसार ही वेद का भी अर्थ कर देवेंगें? नहीं। वेद ही सब का परीक्षक है। वेद से जो अर्थ सिद्ध हो वही मानना चाहिये। इस के विपरीत सर्वथा त्याज्य है। मीमांसाशास्त्र कहता है कि "विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्" वेद से विरुद्ध अर्थ सर्वथा त्याज्य है। मैंने अनेक स्थलों में कहा है कि इन ग्रन्थों में बहुत भूलें इस लिये होती गई हैं कि पीछे से सम्प्रदायी लोग बहुत नवीन २ वाक्य मिलाते गये। इन इतिहास पुराण ग्रन्थों का इस हेतु असली स्वरूप का पता सब को नहीं लगता। परन्तु विचार पूर्वक यदि इन का अध्ययन किया जाय तो विद्वानों को बहुत कुछ पता लग जाता है। प्रथम आप यह समझें कि ये भागवतादि पुराण दिन दिन बनते गये हैं यहां तक कि बादशाह अकबर के समय तक पुराण लोग बनाते रहे हैं। इस प्रकार महाभारत आदि में भी बहुत से क्षेपक हैं। परन्तु वेदों को यहांके लोग अक्षर अक्षर कण्ठस्थ रखते थे, हज़ारों लाखों ब्राह्मण कण्ठस्थ ही वेदों को पढ़ाया करते थे इस हेतु कोई सम्प्रदायी एक अक्षर भी इन में मिला नहीं सके। और इसी कारण सब ग्रन्थ और आचार्य्य चेताते आए हैं कि जैसा वेद कहता है वैसा ही करो। क्योंकि ग्रन्थ बनाने वाले स्वयं समझते थे कि इन ग्रन्थों में लोग बहुत कुछ मिला सकते हैं क्योंकि इन को नियम पूर्वक सब कोई कण्ठस्थ नहीं करते वेदों को सम्पूर्ण भारतवासी एक सिरे से दूसरे सिरे तक विधि पूर्वक श्रद्धा विश्वास से अभ्यस्त किया करते हैं। इस हेतु वेदों में क्षेपक होने की कोई भी आशङ्का कदापि नहीं हो सकती। इसी कारण निखिल ग्रन्थकार अपने अपने ग्रन्थों में चेताते गये हैं कि वेदानुकूल चलो। जब यह बात स्थिर है तो हमें वेदों पर ही पूर्ण विश्वास रख कर सब निर्णय करना चाहिये। मैं आप लोगों से यह भी कहना चाहता हूं कि मैं आगे सिद्ध कर दिखलाऊँगा कि लोगों ने इतिहास पुराणों का भी आशय नहीं समझा है। और किसी पुराण से भी सिद्ध नहीं होता है कि ब्रह्मा के मुखादिकों से ब्राह्मणादि वर्ण हुए॥ एवमस्तु आगे चलिये।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(१) ब्रह्मा से यह सारी सृष्टि हुई यह वेद का सिद्धान्त नहीं । (२) ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों का पौराणिक भाव क्या है इस को "त्रिदेव निर्णय' नामक ग्रन्थ में दिखलाया है वहां ही देखिये । (३) वेदों के ऊपर टिप्पणिका करनें वाले ऐतरेय, शतपथ, ताण्ड्य और गोपथादिं ब्राह्मण ग्रन्थों में मुखादिक से उत्पत्ति का वर्णन कहीं भी नहीं है । (४) जैसे आधुनिक ग्रन्थों में ब्राह्मण के लिये अग्रज, मुखज, आस्यज आदि, क्षत्रिय के लिये बाहुज, करज आदि, वैश्य के लिये ऊरुज, मध्यज, आदि, और शूद्र के लिये पादज चरणज जघन्यज, अन्त्यज आदि शब्द पाये जाते हैं प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे शब्द कहीं नहीं मिलते । इत्यादि अनेक कारणों से सिद्ध है कि मुखादिक अंगों से ब्राह्मणादिवर्णों की सृष्टि माननी सर्वथा वेदविरुद्ध है । अब प्रथम इस ऋचा का अर्थ दिखला कर आगे सब निरूपण करूंगा ।

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' इस का अभिप्राय ।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः । ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ ऋग्वेद १० । ९० । १२ ॥

यजुर्वेद और सामवेद में भी इस का पाठ ऐसा ही है । परन्तु अथर्ववेद में कुछ भेद है यथाः—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् । मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ अथर्ववेद १९ । ६ । ६ ॥

वेदों में अलङ्कार रूप सें वर्णन बहुत आता है । यह भी एक आलङ्कारिक वर्णन है । भगवान् का अभिप्राय वा संकेत है कि संसार में जीवनोपाय निमित्त प्रथम मनुष्यों को चार भागों में विभक्त करना चाहिये । जो मुख का काम करे वह ब्राह्मण, जो बाहु का काम करे वह राजन्य, जो शरीर के मध्य भाग का काम करे वह वैश्य और जो पैर का काम करे वह शूद्र नाम से पुकारा जाय ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुख के काम—गर्दन से ऊपर भाग का नाम यहां 'मुख' है। अर्थात् शिर से यहां तात्पर्य्य है। इस शिर में दो नयन, दो कर्ण, दो घ्राण और मुख के अभ्यन्तर सातवीं एक जिह्वा ये सात इन्द्रिय निवास करते हैं। ये ही सप्तर्षि कहाते हैं। जैसे ऋषि सत्यासत्य निर्णय करते हैं तद्वत् ये इन्द्रिय रूप सातों ऋषि भला बुरा सब कुछ निर्णय कर तब क्षत्रिय आदि को आज्ञा देते हैं। श्रवण, मनन निदिध्यासन विवेक आदि जो कुछ विचार करते हैं सब शिर से ही करते हैं। इसी में सब ज्ञानेन्द्रिय रहते हैं। नयन जब देख लेती है कि यह भयङ्कर व्याघ्र आ रहा है। इसे मारना चाहिये झट वह बाहु को खड्ग वा बन्दूक आदि से मारने की आज्ञा देती है। बाहु भी वैसा ही करना आरम्भ करता है आंख और रसना जब किसी पदार्थ को देख लेती हैं कि यह भोग्य है तब झट कण्ठ के द्वारा मध्यस्थान उदर के भीतर पहुंचा देती हैं। इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ को प्रथम शिर परीक्षा कर लेता है तब उस के ग्रहण वा त्याग के लिये आज्ञा देता है। अपने स्वयं कुछ नहीं रखता है। शिर यदि शरीर पर न होतो इस शरीर का पहचान भी कठिन है। सब से बढ़कर मुख का काम पठन पाठन है। परम पवित्र वेदवचनों को मुख से ही पढ़ते पढ़ाते। इत्यादि शिर के कार्य्य ऊहनीय हैं जैसे इस शरीर में शिर कर्म्म करता है वैसे ही विवेक पूर्वक निःस्वार्थ और परोपकारी बन कर जो मस्तिष्क से समाज की सेवा करे उसे ब्राह्मण कहते हैं। वह मानो इस विराट् जगत् का अथवा मनुष्य समुदाय का मुख सदृश है अतः यह 'मुख्य' है।

बाहु के काम—सम्पूर्ण शरीर की रक्षा बाहु ही करता है। शिर से लेकर पैर तक कहीं भी आपत्ति आने पर झट हाथ दौड़ जाता। युद्धक्षेत्रादिक में भी इस के विना कार्य्य ही नहीं चल सकता। बाहुवत् जो समाज की सेवा अपने बाहुबल से करता है वह 'राजन्य' है।

ऊरु के काम—ऊरु पद से यहां 'शरीर के मध्य भाग का' ग्रहण है इसी हेतु अथर्ववेद में 'ऊरु' की जगह में 'मध्य' पद आया है। गर्दन से नीचे और जंघा से ऊपर भाग को यहां मध्य भाग कहते हैं। अब देखिये उदर कौन काम करता है। प्रत्यक भुक्त पीत वस्तु उदर में संचित होती है वहां से सुन्दर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुष्ट रस बन कर मस्तिष्क हाथ पैर सर्वत्र अंगों में पहुंचता है और मलिन पदार्थ को निकाल बाहर कर देता है। ऐसे उदर के समान जो कोई नाना भोज्य, पेय, लेह्यादि पदार्थ अपने यहां एकत्रित कर सम्पूर्ण देश में पहुंचाया करता है वह वैश्य है।

पैर के काम=पैर बिना हम कुछ कर ही नहीं सकते। कहीं जाना आना भी पैर से ही होता है। जब शरीर को होकर संग्राम में पैर लेजायगा तब ही बाहु युद्ध करेंगे और शिर वहां कर्त्तव्याकर्त्तव्य विचारेंगे। पैर के तुल्य कार्य्य करने वाला 'शूद्र' कहावे। यह इस का भाव है। इस के ऊपर आर्य्यसमाज में अनेक व्याख्यान बने हुए हैं अतः इस अलङ्कार का व्याख्यान विस्तार से नहीं किया गया है।

प्रश्न=हां, आपका कथन बहुत सत्य है। वेद का यही आशय है इस में भी संशय नहीं। परन्तु "पद्भ्यां शूद्रो अजायत" इस वाक्य का क्या अर्थ होगा। वेद के प्रश्न के अनुसार दोनों पैर शूद्र हैं यही अर्थ करना उचित है परन्तु पद ऐसा अर्थ नहीं कहता। इस में हम लोगों का बड़ा सन्देह है। उसको अनुग्रह कर दूर कीजिये।

समाधान=इस में संशय नहीं कि 'पद' कुछ विकट हैं। सुनिये। चारों प्रश्नों के चार उत्तर हैं। तीन में न तो 'अजायत' पद और न 'पञ्चमी विभक्ति' ही है। एक में 'पञ्चमी विभक्ति' और 'अजायत' पद है। अब जो तीन कहें सो करें या एक कहे सो करें। लोक में भी अधिकसम्मति स्वीकर्तव्य होती है और इस के साथ २ प्रश्नोत्तर भी बनता है और एक की बात मानने से प्रश्नोत्तर भी नहीं बनता है। अतः इस अन्तिम वाक्य को भी तीन के समान लगाना चाहिये।

पक्षान्तर में मैं यह कहता हूं कि यदि इसको सृष्टि प्रकरण में ही लगाना अभीष्ट है यद्यपि यह है नहीं क्यों कि ऐसे अर्थ के मानने वाले के शिर पर यह भी एक भार है कि "विराजो अधिपूरुषः" विराट् से 'पुरुष' अर्थात् मनुष्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सृष्टि प्रथम ही कही गई। पुनः एक ही सूक्त में द्वितीय वार मनुष्य-सृष्टि कहने की क्या आवश्यकता हुई। इस का उत्तर वे क्या देवेंगे। यहां वे मौन ही धारण करेंगे। तथापि इस का आशय यही लगाना चाहिये कि मनुष्य-सृष्टि में कोई विद्याभिलाषी, कोई युद्धाभिलाषी, कोई व्यापारी, कोई आलसी, कोई तीक्ष्ण चतुर दक्ष, कोई मूढ़ कोई ज्ञानी, कोई तपस्वी व्रती, कोई अकर्म्मण्य और स्वयं वेद में विद्याध्ययन, संग्राम, वाणिज्य आदि का विधान इत्यादि अनेक प्रकारता देखी जाती है। मनुष्य-सृष्टि ही ऐसी भगवान् ने की है। मनुष्य में जितनी आवश्यकताएं लग ई हैं पशु पक्षी में इतनी नहीं। पशु पक्षियों को वस्त्रों, खेतों, व्यापारादिकों की आवश्यकता नहीं। मनुष्य समान पशुपक्षिगण दिग्विजय की आकांक्षा कराने वाले नहीं। अर्थात् कोई सिंहादिक पशु नहीं चाहता है कि मैं सारे पशुओं को मार अपने अधीन कर राजा बनूं; परन्तु मनुष्यों में अनेक पुरुष ऐसे हुए हैं जिन्हों ने लाखों पुरुषों, स्त्रियों, बच्चों को कतल कर सहस्रों नगर ग्रामों को भस्म कर सम्पूर्ण पृथिवी का अधीश्वर बनने की इच्छा की। इसी प्रकार कोई २ विद्वान् भी जगद्विजयी बनना चाहते थे। इत्यादि अनेकाभिलाषग्रस्त मनुष्य-सृष्टि देखी जाती। भगवान् ने इस को ऐसी ही बनाई। इस हेतु इस सृष्टि में प्रबन्ध की भी बड़ी आवश्यकता है। इस कारण भगवान् की ओर से यह उपदेश है कि मनुष्यों में चार भाग करो। जो विद्वान् उत्पन्न हों उन्हें मुख के निमित्त अर्थात् मुख के कार्य्य निमित्त समझो। वाणी का स्थान मुख है। भाषण मुख से होता है सो जो कोई विद्याध्ययन करें करवावें जगत् में शिक्षा फैलावें यज्ञ करें करवावें उन्हें मुख्य ब्राह्मण मानो और उन से यही काम लेने का प्रबन्ध करो। जो बलिष्ठ निर्भय उत्पन्न हों उन्हें बाहु के निमित्त समझो। भुजा बल की जगह है। भुजा से युद्ध करते हैं। सो जो कोई सेनारूप बल और निज बल लेकर रक्षा करें करवावें उन्हें 'राजन्य' मानो। और इन से यही काम लो। जो धन संचय कर व्यापार में हवि दिखलावें उन्हें उदर के निमित्त समझो। उदर प्रथम सब भुक्त पीत कोश अपने में रख यथायोग्य स्थान में पहुंचाता है। सो जो कोई वाणिज्याभिलाषी हों उन्हें वैश्य समझो और उनसे यही कार्य्य लो। जो बड़े साहसी कठिन से कठिन

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शारीरिक कार्य्य करने वाले हों उन्हें पैर के निमित्त समझो पैर ही कठिन से कठिन स्थान में चलता है। और सम्पूर्ण देह का भार पैर ही संभालता है। इस हेतु साहसी कठिन कार्य करने वाले को शूद्र मानो और इस से यही काम लो। भाव यह है कि "पद्भ्यां शूद्रो अजायत" यहां पञ्चमी का अर्थ निमित्त करना चाहिये। पैरों के निमित्त अर्थात् पैर के कार्य्य के निमित्त। अन्यत्र भी जहां जहां ऐसे पद आवें कि 'मुखाद् ब्राह्मणोऽजायत बाहुभ्यां राजन्योऽजायत' इत्यादि स्थल में भी मुख के कार्य्य निमित्त ब्राह्मण, बाहु के कार्य निमित्त क्षत्रिय उत्पन्न हुआ है इत्यादि अर्थ करने से कहीं भी दोष नहीं आता है। इसी सूक्त में इसी निमित्त अर्थ में पञ्चमी का प्रयोग देखिये यथाः-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥१२॥
नाभ्या आसीदन्तरिक्षꣳशीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१३॥

मनोविनोद के लिये चन्द्रमा को, नेत्रों में ज्योति पहुंचाने के निमित्त सूर्य को, कान में शब्द पहुंचाने के निमित्त वायु और प्राण को, मुख में बल पहुंचाने के कारण अग्नि को, नाभि कुण्ड में रक्षा के लिये अन्तरिक्ष को, शिर को प्रज्वलित करने के हेतु द्युलोक को, पैर के रखने के लिये भूमि को, श्रोत्र में अवकाशार्थ दिशाओंको, इत्यादि वस्तुयों को तत्तत्कार्य्य निमित्त ईश्वर ने प्रकट किया। चन्द्रमा-कभी बढ़ता कभी घटता कभी सब ही लुप्त कभी पूर्ण होता रहताहै। एक छोटा बच्चा भी देख चन्द्रमा को अपने हाथ में लेना चाहता है। सूर्य्य की तीक्ष्णता के कारण बच्चे अच्छी तरह से उसे देख भी नहीं सकते। पुनः चान्द्रमसी रात्रि में कैसा विनोद होता। हमारा मास भी प्रायः चान्द्र है। ज्योतिषी भी अश्विनी भरणी आदि चन्द्र की पत्नी से आजकल निर्वाह करते हैं। दर्शपौर्णमास यज्ञ भी चान्द्र हैं इत्यादि अनेक प्रकार से चन्द्रमा बच्चे से लेकर बड़े विद्वानों को भी विनोद स्थान है। अतः कहा गया है कि चन्द्रमा मन के लियेहै। अन्यान्य पदों का भावार्थ स्पष्टहै। मुखके लिये अग्नि-जितने ही खाद्य पदार्थ को चबा चबा खाते हैं उतने ही शीघ्र पचता है पचना अग्नि की शक्ति है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहां सर्वत्र पञ्चम्यर्थ निमित्त ही देखते हैं। जो कोई "मन से चन्द्रमा और नयन से सूर्य्य उत्पन्न हुआ" इत्यादि अर्थ करते हैं उन से पूछना चाहिये कि आप के सिद्धान्त में सत्कार्य्यवाद कहां रहा। क्या प्रकृति से उनको बनाया या स्वयं भगवान्ने अपने शरीर से मांस नोंच नोंच कर इस सृष्टि को बनाया। ऐसा करने से भगवान निर्विकारी कैसे रहेगा। एवमस्तु, यहां प्रकरणान्तर में जाना अच्छा नहीं। मैंने जो अर्थ आप लोगों को सुनाया उस पर ध्यान देकर विचार करें। वेदों के अर्थ सीधे हैं। लोगों ने खींचातानी कर विवादास्पद बना सत्यासत्य छिपा दिया है।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् और शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थ।

यदि वेद का तात्पर्य्य मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि की सृष्टि का रहता तो इसके विपरीत शतपथ आदि वर्णन नहीं करता। अतः मैं यहां ब्राह्मण ग्रन्थों का प्रमाण आप लोगों को सुनाता हूं।

भूरिति वै प्रजापतिः इमा मजनयत भुव इत्यन्तरिक्षं स्वरिति दिव मेतावद्वा इदं सर्वं यावदिमे लोकाः सर्वेणैवाधीयते ॥ ११ ॥ भूरिति वै प्रजापतिः ब्रह्माऽजनयत भुव इति क्षत्रं स्वरिति विश मेतावद्वा इदं सर्वं यावद् ब्रह्म क्षत्रं विट् सर्वेणैवाधीयते ॥ १२ ॥ भूरिति वै प्रजापतिः आत्मान मजनयत भुव इति प्रजां स्वरिति पशूनेतावद्वा इदं सर्वं यावदात्मा प्रजा पशवः सर्वेणैवाधीयते। १३। शतपथब्रा० ॥ २। १। ४। १२ ॥

अर्थ=प्रजापति ने 'भू' शब्द पूर्वक इस पृथिवी को उत्पन्न किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक अन्तरिक्ष और 'स्वः' शब्द पूर्वक द्युलोक को सम्पूर्ण विश्व इन ही तीन के अन्तर्गत हैं। पुनः निश्चय, 'भू' शब्द पूर्वक प्रजापतिने ब्राह्मण को उत्पन्न किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक क्षत्रिय और 'स्वः' शब्द पूर्वक वैश्य को सब मनुष्य इन ही तीन के अन्तर्गत हैं जो यह ब्रह्म, क्षत्र, और विट् हैं। पुनः प्रजापति 'भूः' शब्द पूर्वक अपने को प्रकाशित किया। 'भुवः' शब्द पूर्वक सन्तान और 'स्वः' शब्द पूर्वक पशुओं को। इनके ही अन्तर्गत सब हैं। जो यह, आत्मा, प्रजा और पशु है। इन सबों के साथ अग्नि स्थापित किया।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देखते हैं कि यहां मुखादि अंग से ब्राह्मणादि सृष्टिका वर्णन नहीं है यदि वेद का अभिप्राय यह रहता कि 'मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ' तो ब्राह्मण भी वैसा ही लिखता। अतः वेद का आशय आलंकारिक वर्णन से है। यहां कुछ क्रम पूर्वक सृष्टि का वर्णन नहीं है। यज्ञ के विधानार्थ यह सृष्टि दिखलाई गई है। भाव यहां केवल यह है कि ज्ञान सहित मनुष्य की सृष्टि हुई है। ऐतरेय, ताण्ड्य और गोपथ में भी मुखादि अंग से सृष्टि का वर्णन नहीं है। प्रसिद्ध और वेदानुकूल १० दशो उपनिषदों में भी मनुष्य सृष्टिका विवरण नहीं है। बृहदारण्यकोपनिषद् में केवल 'ततो मनुष्या अजायन्त' (१–४–३–) तब बहुत से मनुष्य उत्पन्न हुए इतनी ही मनुष्य सृष्टि कही गई है।

ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् और मनुस्मृति।

सब धर्म्म शास्त्रों में मुख्य मनुस्मृति ही है। अतः सृष्टि के विषय में यह शास्त्र क्या कहता है इस प्रकरण में जानना आवश्यक है। क्या मनुस्मृति से सिद्ध होता है कि ब्राह्मणादि वर्ण ब्रह्मा के मुखादि अंगों से उत्पन्न हुए। समाधान नहीं, देखिये। मनुस्मृति में सृष्टि प्रकरण किस प्रकार वर्णित है। यथा–

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात् सिसृक्षु र्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥ अध्याय १

तदण्ड मभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मि ञ्जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इतिप्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवान् उषित्वा परिवत्सरम्।
स्वय मेवात्मनो ध्याना त्तदण्ड मकरोद्द्विधा ॥ १२ ॥

अनेक महर्षियों ने मनुजी के निकट जा प्रश्न किये हैं। उन ही महर्षियों से मनुजी कहते हैं परमात्मा ने अपने शरीर से विविध प्रजाओं की सृष्टि की

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इच्छा करता हुआ प्रथम आप (जल वा आकाश) उत्पन्न किया। और उसमें बीज स्थापित किया ॥ ८ ॥ वह बीज सूर्य्य समान सौवर्ण अण्ड (अण्डा) होगया। उस अण्डे में सर्व लोक पितामह ब्रह्मा जी उत्पन्न हुए ॥ ९ ॥ आप को 'नार' कहते हैं। क्योंकि 'नर' नाम परमात्मा का भी है। उस 'नर' का पुत्र तुल्य 'आप' है। अतः "आप" को 'नार' कहते हैं "नरस्यापत्यं नारः" वह 'आप' प्रथम परमात्मा का निवासस्थान हुआ अतः उस परमात्मा को 'नारायण' कहते हैं ॥ १० ॥ जो वह परमात्मा सबका कारण अव्यक्त, नित्य, सदसदात्मक है। उससे प्रथम जो पुरुष सृष्ट (उत्पन्न) हुआ लोक में वह 'ब्रह्मा' कहाता है ॥ ११ ॥ उस अण्डे में एक वर्ष निवास कर उस ब्रह्मा ने निज ध्यान से उस अण्डे को दो भाग किये ॥ १२ ॥

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिञ्च निर्ममे ।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टा वपां स्थानं च शाश्वतम् ॥१३॥
उद्बर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ।
मनसश्चाप्यहंकार मभि मन्तार मीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानिच ।
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणिच ॥ १५ ॥
कालं काल विभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ।
सरितः सागराञ्छैलान् समानि विषमाणिच ॥ २४ ॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोध मेवच ।
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टु मिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥

उस ब्रह्मा ने उस अण्डे के उन दोनों खण्डों से द्युलोक और भूमि बनाई और इन दोनों के मध्य में व्योम और आठ दिशाएं और शाश्वत समुद्र के स्थान बनाए। यहां से लेकर ३० वें श्लोक पर्य्यन्त मन अहङ्कार पञ्चेन्द्रिय काल नक्षत्र, ग्रह, सरिता, सागर तप, वाणी, रति, काम, क्रोध, आदि, विविध प्रकार की सृष्टि की रचना का विस्तार से वर्णन है। अर्थात् द्युलोक से लेकर भूमि पर्यन्त सब पदार्थ उत्पन्न किये। केवल जंगम जीवों की सृष्टि बाकी रही इसके लिये आगे कहते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विधा कृत्वाऽऽत्मनो देह मर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी तस्यां स विराज मसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यंतु स स्वयं पुरुषो विराट् ।
तं मां विद्धाऽस्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।
पतीन् प्रजाना मसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं बसिष्ठं च भृगुं नारद मेव च ॥ ३५ ॥
एते मनूंस्तु सप्ताऽन्या नसृजन्भूरितेजसः ।
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्ष रक्षः पिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ।
नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितृणाञ्च पृथक् गणान् ॥ ३७ ॥
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषिच ।
उल्का निर्घात केतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानिच ॥ ३८ ॥
किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहङ्गमान् ।
पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥ ३९ ॥
कृमिकीट पतङ्गांश्च यूकामक्षिक मत्कुणम् ।
सर्वंच दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥ ४० ॥
एवमेतै रिदंसर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः ।
यथाकर्म्म तपोयोगात् सृष्टं स्थावरजंगमम् ॥ ४१ ॥

अर्थः—मनुजी महर्षियों से कहते हैं वह ब्रह्मा अपने देह को दो भागकर आधे से पुरुष और आधे से नारी हुए। उस नारी में उसप्रभु ने विराट् नामक पुरुष को उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ उस स्वयं विराट् पुरुष ने तपस्या करके जिस को प्रथम सृष्ट किया हे द्विजसत्तमो ! वह सम्पूर्ण जगत का स्रष्टा मैं ही मनु हूं यह आप लोग जाने। अर्थात् विराट् ने जिसको उत्पन्न किया वह मैं ही मनु हूं ॥ ३३ ॥ मैंने विविध प्रजाओं की सृष्टि करने को इच्छावान् हो सुदु-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और तप कर आदि में १० दश महर्षि प्रजापति सृष्ट किये ॥ ३४ ॥ मरीचि १। अत्रि २। अङ्गिरा ३। पुलस्त्य ४। पुलह ५। क्रतु ६। प्रचेतस ७। वसिष्ठ ८। भृगु ९। नारद १०। (क) इन भूरितेजा दशों (१०) मरीचि आदि प्रजापतियों ने अन्य सात (७) मनु उत्पन्न किये देव, देवनिवासस्थान और महर्षि सृष्ट किये ॥ ३६ ॥ और यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, सुपर्ण, और पितृगण उत्पन्न किये ॥ ३७ ॥ विद्युत्, अशनि, मेघ रोहितेन्द्र धनु, उल्का, निर्घात, केतु और अन्यान्य ज्योति उत्पन्न किये ॥ ३८ ॥ किन्नर, वानर, मत्स्य, विविध विहङ्गम, पशु, मृग, मनुष्य, व्याल, और ऊपर नीचे दांत वाले पशु ॥ ३९ ॥ कृमि, कीट, पतङ्ग, यूका मक्षिक, मत्कुण, दंश, मशक, और विविध प्रकार के स्थावर ॥ ४० ॥ इस प्रकार मेरी आज्ञा के अनुसार उन महात्मा महर्षियों ने तपोयोग से स्वस्वकर्म्मानुसार सम्पूर्ण स्थावर जंगमात्मक जगत् को रचा ॥ ४१ ॥

इन श्लोकों पर विचार।

यहां पर आप देखते हैं कि मरीचि, अत्रि, अंगिरा आदिक दश ऋषियों ने समस्त पशु, पक्षी, मत्स्य, यक्ष, राक्षस, आदि चेतन और विद्युत् अशनि आदि अचेतन भी इस प्रकार स्थावर जङ्गम सब पदार्थ उत्पन्न किये और "पशून् मृगान् मनुष्यांश्च" (३९) मनुष्यों को भी उत्पन्न किया इस ३९ वें श्लोक से सिद्ध है कि मनुष्यों के सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी नहीं हैं। किन्तु मरीचि आदि दश महर्षि हैं। केवल मनुष्यों ही के नहीं किन्तु अण्डज, पिण्डज ऊष्मज और उद्भिज्ज इन सबों के सृष्टिकर्ता ये दश ऋषि हैं। अब ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुआ यह बात नहीं रही। एवमस्तु। अब इस के ऊपर ध्यान दीजिये। सब का

(क) महाभारत में ब्रह्मा के छः मानस पुत्र माने गये हैं। "ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण्महर्षयः। मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। दन ॥ ६५ ॥ मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, और क्रतु ये छवो ब्रह्मा के मानस पुत्र हैं। मनुस्मृति में ४ अधिक बढ़ाये गये हैं। और यहां मरीचि आदि मनु पुत्र कहे गये हैं यह भी विपरीत प्रतीत होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव यह है कि प्रथम परमात्माने जल वा आकाश बनाया। उस में बीज स्थापित किया। वह बीज अद्भुत अण्डाकार हुआ। उस में से ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा जी ने उस अण्डे को दो भागों में बांट कर स्वर्ग से लेकर भूमितक सारी पांच भौतिक सृष्टि बनाई। सब बनाकर अपने देह को दो भागों में बांटा आधे से वह ब्रह्मा पुरुष हुआ और आधे से नारी। उस नारी में विराट् को सृजा। उस विराट् से मनु हुए। मनु से १० प्रजापति हुए। इन दश प्रजापतियों ने अन्य सात मनु उत्पन्न किये और सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम सिरजे। इतना ही सृष्टि प्रकरण मनुस्मृति में वर्णित है। इस में सन्देह नहीं कि मनुस्मृति में सृष्टि-प्रकरण सर्वथा असङ्गत है यह कह सकते हैं। क्योंकि प्रथम तो "ब्रह्माने सम्पूर्ण सृष्टि की" यह वेद विरुद्ध है। फिर ब्रह्मा ने अपने शरीर को दो भागों में बांटा यह कथन नहीं बन सकता। क्योंकि यदि ब्रह्मा ने अपने सम्पूर्ण शरीर को दो भागों में बांट दिया तो ब्रह्मा स्वयं नष्ट होगये। जो पुरुष और स्त्री हुए वे ही ब्रह्मा रह गये जैसे दूध जब दही हो जाता है तब स्वयम् दूध नहीं रहता। फिर उस पुरुष और नारी का क्या नाम हुआ। इस का वर्णन मनुस्मृति में नहीं है। यदि कहो कि जो पुरुष हुआ वह मनु और जो नारी हुई वह शतरूपा तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि आगे कहा है कि इस जोड़ी से विराट् हुआ और उस विराट् से मनु। अन्य पुराणादिकों में मनु की स्त्री शतरूपा मानी गई हैं। यदि यहां ब्रह्मा ने जिस को प्रथम अपने शरीर से विभक्त किया उसे "शतरूपा" मानोगे तो "मनु की पितामही" सिद्ध होगी। शतरूपा की चर्चा मनुस्मृति में कहीं नहीं है। पुनः यदि ऐसा कहो कि ब्रह्मा ने पुरुष नारी बन विराट् को उत्पन्न कर पुनः दोनों को संहार अपना निजरूप धारण कर लिया। यह भी कथन उचित नहीं क्योंकि प्रथम तो इस की आवश्यकता ही क्या थी। और ब्रह्मा ने जिस पदार्थ से आकाश, पाताल, पृथवी, आप, तेज, नदी, समुद्र, सूर्य्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, आदि सृष्ट रची क्या उसी से मनुष्य नहीं बना सकते थे। जैसे विराट्-पुरुष ने अपने सामर्थ्य से मनु को और मनु ने दश महर्षियों को सृष्ट किया क्या यह सामर्थ्य ब्रह्मा जी में नहीं था। अच्छा! ब्रह्मा जी ने तो अपने शरीर के दो भागों में बांट स्त्री पुरुष बन विराट् को

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न किया परन्तु मनु जी ने किस सामर्थ्य से दश महर्षि उत्पन्न किये। इन्हों ने अपने देह को दो नहीं किये और न उन्हें स्त्री ही मिली थी। फिर उन्हों ने सृष्टि कैसे की। इस के पश्चात् दश महर्षियों ने सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम रचे। किस अंग से रचे। जब इन सबों में यह शक्ति थी तो क्या ब्रह्मा जी में ही वह शक्ति नहीं रही जो इन को अपना शरीर दो भाग करना पड़ा। यह सब वेद विरुद्ध बात है। अब आगे चलिये। मनुने प्रथम १० प्रजापति उत्पन्न किये। उन दशों ने मनुष्यादि स्थावर जङ्गम सब उत्पन्न किये। अब पूछना चाहिये कि जब इन दशोंने सम्पूर्ण स्थावर जङ्गम मनुष्यादि बनाये तो ब्रह्माके उत्पन्न किए हुए ब्राह्मण क्षत्रिय आदि चारों वर्ण कहां गये? इन दशों से जो मनुष्य उत्पन्न हुए वे क्या उन चारों वर्णों से पृथक् थे? परन्तु पृथक् नहीं हो सकते हैं। क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार जगत् में चार ही वर्ण हैं। पञ्चम नहीं। पुनः मनुजी स्वयं विराट् पुरुष से हुए किस अंग से हुए इस का वर्णन नही है। इस अवस्था में वे क्या थे ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य वा शूद्र। इन चारों में से किसी में इन की गणना नहीं हो सक्ती। पुनः मनुजी ने जो दश प्रजापति उत्पन्न किये वे किस वर्ण के थे १। इस का भी वर्णन कुछ भी नहीं ये सब भी किस २ अंग से हुए यह भी कथित नहीं है। इन में से कोई शूद्र थे या नहीं। फिर इनही दशों से सारे मनुष्य हुए। अतः सारे मनुष्य की कोई जाति भिन्न २ नहीं हो सकती। इस प्रकार देखते हैं कि मनुस्मृति में क्रम नहीं हैं। यदि यह क्रम मान लिया जाय कि ब्रह्मा से विराट् विराट् से मनु, मनु से मरीचि आदि दश प्रजापति और इन से सारी सृष्टि तो इस अवस्था में ब्रह्मा के बनाए हुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र का निर्माण व्यर्थ होजाता है यदि कहो कि प्रथम चार वर्ण बना कर तब ब्रह्माजी ने विराट् मनु और मरीचि आदि को बनाया तो इस में पुनः वही शङ्का होगी कि क्या वे चार वर्ण मनु और मनु के सन्तान से भिन्न हैं। फिर मनु और महर्षि मरीचि आदि के वंश कौन २ हुए। और कौन वर्ण के हुए। इत्यादि शङ्का बनी ही रहती है। इस कारण प्रकरण के देखने से भी सिद्ध है कि मुखादि सृष्टि मनुस्मृति नहीं मानती। यदि मानती तो यह भी वर्णन रहता अमुक ऋषि मुख से हुए और उन का वंश ब्राह्मण कहलाया इसी प्रकार अ-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मुक ऋषि बाहु से, अमुक पुरुष ऊरु से और अमुक पुरुष पैर से उत्पन्न हुए उन को अमुक २ नाम दिये गये। परन्तु यह वर्णन नहीं है। अतः सिद्ध है कि मनुस्मृति भी मुखादि सृष्टि नहीं मानती है। बीच में जो दो चार श्लोक आए हैं वे क्षेपक हैं। अथवा पूर्वोक्त शैली पर उन का अर्थ कर निर्वाह हो सक्ता है धर्म्म शास्त्र का प्रयोजन सृष्टि की उत्पत्ति वर्णन करने का नहीं है। अतः प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण सृष्टि प्रकरण क्षेपक है पुनः आगे चल कर मनुस्मृति कहती है कि:-

स्वायंभुवस्यास्य मनोः षड्वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौयशाः ॥ ६१ ॥
स्वारोचिषश्चोत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च ॥ ६२ ॥

स्वायम्भुव मनु के वंश में महात्मा और महातेजस्वी छः मनु और हुए जिन्होंने अपनी २ प्रजाएं सृष्ट कीं। वे छवों ये हैं। स्वारोचिष, उत्तम, तामस रैवत, चाक्षुष, और वैवस्वत, इस पर शंका होती है कि इन की सृष्टि कब हुई? और जब ये मनु स्वसृष्टि कर लेते हैं तो ब्रह्माजी के मुखादि से उत्पन्न ब्राह्मणादि वर्ण कहां रहते हैं? पुनः आगे मनुस्मृति में लिखा है कि:-

उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यैष्ठ्याद् ब्रह्मणश्चैव धारणात्।
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्म्मतो ब्राह्मणः प्रभुः ॥ ९३ ॥
तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत्।
हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये ॥ ९४ ॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः।
बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥ ९६ ॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ ९७ ॥

ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न होने, और क्षत्रियादिकों में से ज्येष्ठ होने और वेद के धारण करने के कारण धर्म्मतः इस सम्पूर्ण जगत का स्वामी ब्राह्मण है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वयंभू ब्रह्माजी ने तप कर सब के प्रथम अपने मुख से हव्यकव्यग्रहणार्थ और इस समस्त जगत की रक्षार्थ ब्राह्मण को उत्पन्न किया। स्थावर जंगमों में कीटादि प्राणी श्रेष्ठ, प्राणियों में बुद्धिजीवी श्रेष्ठ, बुद्धिजीवियों में नर श्रेष्ठ और नरों में ब्राह्मण, ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानों में कृतबुद्धि, कृतबुद्धियों में कर्ता और कर्ताओं में ब्रह्म वेदी श्रेष्ठ हैं।

इस में पूछना चाहिये कि भगवान् ने पशुओं में सिंह को बलिष्ठ और श्रेष्ठ बनाया। क्या वह कभी शृंगाल भी हो जासकता है। यदि नहीं तब जब स्वभावतः ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण उत्पन्न हुए और श्रेष्ठ बने तो सदा उन्हें श्रेष्ठ ही रहने चाहिये। वे निकृष्ट, नीच, क्यों बनजाते? फिर सब ब्राह्मण एक ही प्रकार के होने चाहिये। इन में ऊंचता नीचता क्या और इन का गिरना क्यों? पुनः आगे कहते हैं।

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्म्ममयो मृगः।
यश्च विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ॥१५७॥ अ० २
यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथाऽनृचे हविर्दत्त्वा न दाता लभते फलम्। ३। १४२

जैसा काष्ठमय हाथी, जैसा चर्म्ममय मृग, वैसा ही अनपढ़ ब्राह्मण है। ये तीन केवल नाममात्र धारण करते हैं जैसे ऊषर खेत में बीज बोकर बोने वाला कुछ फल नहीं पाता। वैसे ही अवेदज्ञ ब्राह्मण में हवि देकर कुछ लाभ नहीं होता।

यहां देखते हैं कि कर्म्म के ऊपर ही ब्राह्मण की श्रेष्ठता है। यदि स्वभावतः सिंहादिवत् ब्राह्मण श्रेष्ठ है तो अनपढ़ भी श्रेष्ठ बना रह सकता है। फिर अध्ययन से श्रेष्ठता क्यों? यदि अध्ययन से श्रेष्ठता है तो जो मनुष्य अध्ययन करे वह सब ही श्रेष्ठ है। क्याही शोक की बात है। यदि एक शूद्रपुत्र चारों वेद पढ़कर अपने आचरण से भी श्रेष्ठ बनता है तो क्या वह अनपढ़ ब्राह्मण से भी नीच ही बना रहा। जब देश में ऐसे २ अत्याचार फैलते हैं तब भगवान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का अवश्य कोप होता है। अतः हे विद्वानो ! निःसन्देह अध्ययन से मनुष्यमात्र की श्रेष्ठता होती है। ब्राह्मण वही है जो वेद अध्ययन करे। मैं आगे मनुस्मृति के विषय में लिखूंगा यहां अन्य प्रकरण में जाना उचित नहीं। ये ग्रन्थ सब नव ब्राह्मणादिकों की वंशपरम्पराप्रणाली चलने लगी तब रचित हुए हैं। इस कारण इन में वेदविरुद्ध बहुत सी बातें पाई जाती हैं। इस हेतु सब लोग एक वेद की शरण में आना चाहिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् और महाभारत।

वैशम्पायन—हन्त ते कथयिष्यामि नमस्कृत्य स्वयम्भुवे।
सुरादीना महं सम्यक् लोकानां प्रभवाप्ययम् ॥९॥
ब्रह्मणो मानसाः पुत्रा विदिताः षण् महर्षयः।
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥१०॥
मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपात्तु इमाःप्रजाः।
प्रजज्ञिरे महाभागा दक्षकन्यास्त्रयोदश ॥११॥
अदितिर्दितिर्दनुः काला दनायुः सिंहिका तथा।
क्रोधा प्राधा च विश्वा च विनता कपिला मुनिः ॥१२॥
कद्रूश्च मनुजव्याघ्र दक्षकन्यैव भारत।
एतासां वीर्य्यसम्पन्नं पुत्रपौत्रमनन्तकम् ॥१३॥ आदिपर्व ६५

राजा जनमेजय से वैशम्पायन कहते हैं कि हे राजन् ! मैं प्रथम परमात्मा को नमस्कार कर देवादि सब लोगों के जन्म और प्रलय कहूंगा। ब्रह्मा के छः (१) मानस पुत्र हुए। मरीचि १ अत्रि २ अंगिरा ३ पुलस्त्य ४ पुलह ५ क्रतु ६ मरीचि के कश्यप पुत्र हुए। कश्यप से यह सब प्रजाएं हुई हैं। दक्ष की १३ कन्याएं हुई। अदिति १ दिति २ दनु ३ काला ४ दनायु ५ सिंहिका ६

(१) प्रजापति वा मनस पुत्रों की संख्या भिन्न भिन्न कही गई है। एक स्थल में ७ दूसरी जगह २१ कई हुई हैं। आगे की टिप्पणी देखिये। और रामायण ३--१४--६ और मनुस्मृति विष्णु पुराणादि को भी इस विषय में देखिये।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रोधा ७ प्राधा ८ विश्वा ९ विनता १० कपिला ११ मुनि १२ कद्रू १३। इन कन्याओं के अनन्त पुत्र पौत्र हैं।

अदिति से–द्वादश, आदित्य, (१) धाता, मित्र, अर्य्यमा, शक्र, वरुण, अंश, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु ये द्वादश आदित्य कहाते हैं।

दितिसे–एक ही पुत्र हिरण्यकशिपु।

दनु से–४० पुत्र हुए हैं, विप्रचित्ति, शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, गगनमूर्धा, वेगवान्, केतुमान्, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, विश्वपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड्, एकपाद, एकचक्र, विरूपादी, महोदर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य्य और चन्द्र। इत्यादि इसी अध्याय में देखिये सिंहिका से–राहु। कद्रू से सर्पगण। विनता से-गरुड़ इत्यादि।

अब यहां विचार कीजिये कि ब्रह्मा के छः मानस पुत्र हुए न तो ये मुख से न बाहु आदि से। फिर ये कौन जाति कहलावेंगे। और इन छःवों से ब्राह्मण तथा राजवंश प्रभृति चले हैं। इन से जो वंश चले हैं इन को किसी जाति में नहीं गिन सकते हैं। पुनः महाभारत कहता है।

त्रयस्त्वङ्गिरसः पुत्रा लोके सर्वत्र विश्रुताः।
बृहस्पतिरुतथ्यश्च सम्वर्तश्च धृतव्रतः ॥ ५ ॥
अत्रेस्तु बहवः पुत्राः श्रूयन्ते मनुजाधिप।
सर्वे वेदविदः सिद्धाः शान्तात्मानो महर्षयः ॥६॥ आदिपर्व ९६

अङ्गिरा के बृहस्पति, उतथ्य और सम्वर्त, ये तीन पुत्र हुए। और अत्रि के अनेक पुत्र हुए। सब ही वेदवित्, शान्तात्मा महर्षि हुए। अत्रि के जो पुत्रादिक हुए वे क्या कहलावेंगे। क्योंकि ये सब मुखादिक से उत्पन्न नहीं हुए।

(१) धाता मित्रोऽर्य्यमा शक्रो वरुणस्त्वंश एवच। भगो विवस्वान् पूषाच सविता दशमस्तथा ९५। एकादशस्तथा त्वष्टा द्वादशो विष्णु रुच्यते। आदिपर्व ९५।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

' दक्ष और उन की भार्या की उत्पत्ति '

दक्षस्त्वजायताङ्गुष्ठा दक्षिणाद् भगवानृषिः ।
ब्रह्मणः पृथिवीपाल शान्तात्मा सुमहातपाः ॥ १० ॥
वामादजायताङ्गुष्ठाद् भार्या तस्य महात्मनः ।
तस्यां पञ्चशतं कन्या स एवाजनयन्मुनिः ॥ ११ ॥ आ० प० अ० ६६।

ब्रह्माजी के दक्षिण अङ्गुष्ठ से प्रजापति दक्षजी उत्पन्न हुए हे पृथिवीपाल ! वे बड़े शान्त, महातपस्वी, और महर्षि हुए। और ब्रह्मा के वामअङ्गुष्ठ से दक्ष की भार्या उत्पन्न हुई। इन दोनों के संयोग से ५० कन्याएं हुईं।

ददौ स दश धर्माय सप्तविंशति मिन्दवे ।
दिव्येन विधिना राजन् कश्यपाय त्रयोदश ॥ १३ ॥

धर्म को १० कन्याऐं। कश्यप को १३ कन्याएं। सोम को २७ कन्याएं दीं।

अब आप एक आश्चर्य देखें कि दक्षजी अंगुष्ठ से उत्पन्न हुए। और इन्हों ने १३ कन्याएं कश्यप को दीं जिन से यह सब मनुष्य हुए। कश्यपजी मरीचि के पुत्र हैं। अतः इन को मानस पुत्र कहेंगे और अङ्गावयव से उत्पन्न होने से दक्ष शारीरक पुत्र हुए। ये दोनों ही एक प्रकार से मानसिक हैं। इन दोनों वंशों के योग से यह सारी मनुष्य सृष्टि हुई। फिर आप लोग कैसे कह सकते हैं कि मुख से ब्राह्मणादि हुए। इत्यादि।

भृगु की उत्पत्ति।

ब्रह्मणो हृदयं भित्वा निःसृतो भगवान् भृगुः ॥ ४१ ॥
भृगोः पुनः कविर्विद्वान् शुक्रः कविसुतो ग्रहः ॥४२॥
अन्य मुत्पादयामास पुत्रं भृगुरनिन्दितम् ॥ ४४ ॥
च्यवनं दीप्ततमसं धर्मात्मानं यशस्विनम् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मा के हृदय से भगवान् भृगु उत्पन्न हुए। भृगु से शुक्राचार्य, और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च्यवन हुए। मनु की कन्या अरुषी से च्यवन का विवाह हुआ उन के और्व पुत्र हुए। और्व के ऋचीक। और ऋचीक के जमदग्नि। जमदग्नि के चार पुत्र हुए। उन में सब से छोटे परशुराम हैं। इस प्रकार भृगु वंशोत्पत्ति है। यह वंश भी ब्रह्मा के मुख से नहीं हुआ इस हेतु इस को भी ब्राह्मण जाति नहीं कह सकते। पुनः।

दश प्रचेतसः पुत्राः सन्तः पुण्यजनाः स्मृताः ॥ ४ ॥
तेभ्यः प्राचेतसो जज्ञे दक्षादिमाः प्रजाः ॥ ५ ॥
सहस्रसंख्यान् सम्भूतान् दक्षपुत्रांश्चनारदः।
मोक्षधर्म्मांपयामास सांख्यज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
ततः पञ्चाशतं कन्याः पुत्रिका अभिसन्दधे।
प्रजापतिः प्रजादक्षः सिसृक्षुर्जनमेजय ॥ ८ ॥
ददौ दश स धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
कालस्य नयने युक्ताः पञ्चविंशतिमिन्दवे ॥ ९ ॥
त्रयोदशानां पत्नीनां या तु दाक्षायणी वरा।
मारीचः कश्यपस्त्वस्यामादित्यान् समजीजनत्। १०। आ० प० ७५।

भाव सबका यह है कि प्रचेता के १० दश पुत्र हुए। उनसे दक्ष प्रजापति और दक्ष से यह सब प्राणी। दक्ष के जितने पुत्र हुए उनको नारद ने मोक्ष धर्म्म सांख्य शास्त्र सिखलाया। पुनः दक्ष के ५० कन्याएं हुईं। धर्म को १० कश्यप को १३ और इन्दु को २७ कन्याएं दीं। दक्ष की ज्येष्ठा कन्या से कश्यपने १२ आदित्य उत्पन्न किये।

इन्द्रादीन् वीर्य्यसम्पन्नान् विवस्वन्तमथापि च।
विवस्वतः सुतो जज्ञे यमो वैवस्वतः प्रभुः ॥ ११ ॥
मार्तण्डस्य मनुर्धीमानजायत सुतःप्रभुः ॥ १२ ॥
यमश्चापि सुतोयज्ञे ख्यातस्तस्यानुजः प्रभुः।
धर्म्मात्मा स मनुर्धीमान् यत्र वंशः प्रतिष्ठितः।
मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं प्रथितोऽभवत् ॥ १३ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तु मानवाः ॥१४॥
ब्राह्मणामानवास्तेषां साङ्गंवेदमधारयन् ॥१५॥ आदिपर्व ७५

विवस्वान् आदित्य के यम और मनु दो पुत्र हुए और मनु से ये सब मनुष्य हुए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र आदि सब ही मनुष्य मनु से उत्पन्न हुए इस हेतु ये 'मानव' कहलाते हैं। उन में ब्राह्मणों ने साङ्ग वेदों का ग्रहण किया।

इस लेख से भी सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादि अङ्ग से ब्राह्मणादि की सृष्टि की कल्पना सर्वथा मिथ्या है। क्योंकि यहां कहा गया है कि ब्रह्मा के पुत्र मरीचि, मरीचि के पुत्र कश्यप। उस कश्यप का विवाह दक्ष की कन्या से हुआ। उससे विवस्वान् हुए और विवस्वान् के पुत्र मनु और मनु से ये सब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र वंश चले। फिर ब्रह्मा के मुखसे ब्राह्मण हुआ यह बात कहां रही। पुराण के अनुसार 'मानव' शब्द ही बतलाता है कि 'मनुके' सब पुत्र हैं 'मनोरपत्यं मानवः' क्योंकि मनु के पुत्र को ही मानव, मनुष्य वा मनुज आदि शब्दों से व्यवहार करते हैं।

श्रूयतां भरतश्रेष्ठ यन्मां त्वं परि पृच्छसि।
प्रजानां पतयो येऽस्मिन् दिक्षु ये चर्षयःस्मृताः ॥२॥
एकः स्वयम्भूर्भगवानाद्यो ब्रह्मा सनातनः।
ब्रह्मणः सप्त वै पुत्रा महात्मानः स्वयम्भुवः ॥३॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यःपुलहः क्रतुः।
वसिष्ठश्च महाभागः सप्तमो वै स्वयंभुवा ॥४॥
सप्त ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयंगताः।
अतऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सर्वानेव प्रजापतीन् ॥५॥
अत्रिवंशे समुत्पन्नः ब्रह्मयोनिः सनातनः।
प्राचीनवर्हिर्भगवान्ततस्मात्प्रचेतसो दश ॥६॥
दशानां तनयस्त्वेको दक्षो नाम प्रजापतिः।
तस्य द्वे नामनी लोके दक्षः क इतिचोच्यते ॥७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तस्य द्वे नामनी स्मृते ।
अरिष्टनेमिरित्येके कश्यपेत्यपरे विदुः ॥८॥ शा० प०२०८॥

यहां महाराज युधिष्ठर से भीष्म पितामह कहते हैं कि हे भरत श्रेष्ठ! आप ने जो पूछा है सो सुनो। जो प्रजापतियों के नाम से सुप्रसिद्ध हैं उन का वर्णन करता हूं। आदि में एक ही स्ययम्भू सनातन ब्रह्मा जी हुए। इन के सात मानस पुत्र हुए। मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, और व-सिष्ठ, (१) अत्रि ऋषि के वंश में प्राचीनवर्हि हुए। प्राचीनवर्हि के प्रचेता एक नाम धारी दश पुत्र हुए। उन दशों प्रचेताओं के एक पुत्र दक्ष हुए। उन के दो नाम हैं। एक दक्ष दूसरा क। मरीचि के कश्यप पुत्र हुए। इनके भी दो नाम हैं अरिष्टनेमि और कश्यप।

भगोंऽशश्चार्यमा चैव मित्रोऽथ वरुणस्तथा ।
सविता चैव धाताच विवस्वांश्च महाबलः ॥१५॥
त्वष्टा पूषा तथैवेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ।
इत्येते द्वादशादित्याः कश्यपस्यात्मसंभवाः ॥१६॥
नासत्यश्चैव दस्रश्च स्मृतौ द्वावश्विनावपि ।
मार्तण्डस्यात्मजावेतामष्टमस्य महात्मनः ॥१७॥
त्वष्टुश्चैवात्मजः श्रीमान् विश्वरूपो महायशाः ॥१८॥
आदित्याः क्षत्रियास्तेषांविशश्च मरुतस्तथा ॥२३॥
अश्विनौ तु स्मृतौ शूद्रौ तपस्युग्रे समास्थितौ ।
स्मृतास्त्वङ्गिरसो देवा ब्राह्मणा इति निश्चयः ॥२४॥
इत्येतत्सर्वदेवानां चातुर्वर्ण्यं प्रकीर्तितम् ॥२५॥ शा० प० २०८॥

(१) आदिपर्व अध्याय ६५ वें में ब्रह्मा के छः ही मानस पुत्र कहे गये हैं। परन्तु यहां वसिष्ठ को बढ़ाकर सात मानस पुत्र माने है। इसी शान्ति पर्व के एक स्थल में २१ एक विंशति प्रजापतियों का लेख है। ब्रह्मा स्थाणुर्मनुर्दक्षो भृगुर्धर्मस्तथायमः।
मरीचिरंगिराऽत्रिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ वसिष्ठः परमेष्ठीच विवस्वान् सोम एव च।
कृतकर्वमश्चापि परेः प्रोक्तः क्रोधोविक्रम एव च एक विंशतिरुत्पन्नास्ते प्रजापतयःस्मृताः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कश्यप के भग, अंश, अर्यमा, मित्र, वरुण, सविता, धाता, विवस्वान् त्वष्टा, पूषा, इन्द्र, और विष्णु, ये बारह पुत्र हुए जो आदित्य कहाते हैं। कश्यप अष्टम विवस्वान् के नासत्य और दस्र दो पुत्र हैं और त्वष्टा के विश्वरूप पुत्र। इत्यादि। अब आगे देवों में भी ब्राह्मणादि वर्ण कहते हैं। आदित्यगण क्षत्रिय हैं मरुद्गण वैश्य हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। और अङ्गिरा ब्राह्मण हैं। इस प्रकार देवों में चार वर्ण हैं।

यहां पर भी पूर्ववत् ही प्रायः वर्णन है। यहां विशेष यह देखते हैं कि देवों में वर्ण हैं। ये सब तो मुखादिक से नहीं उत्पन्न हुए हैं। अश्वी दोनों शूद्र हैं। परन्तु यज्ञ में बराबर बुलाये जाते हैं। यज्ञ में पूजापाते हैं तब मनुष्य शूद्र पूजा क्यों न पावे। इस प्रकार महाभारत से भी यह सिद्ध नहीं हो सकता है कि मुखादिक अंग से ब्राह्मणादिकों की सृष्टि हुई। सृष्टि प्रकरण पर ध्यान देना चाहिये। यदि इस से चारों वर्णों की उत्पत्ति मुखादि से सिद्ध न हो तो कदापि नहीं मानना चाहिये।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् और रामायण।

प्रश्न-क्या वाल्मीकि रामायण से सिद्ध होता है कि ब्रह्माके मुखादि अगों से ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि हुई है?

उत्तर-नहीं! देखिये और ध्यान से विचारिये।

सर्वं सलिलमेवासीत्पृथिवी तत्र निर्मिता।
ततः समभवद्ब्रह्मा स्वयंभूर्दैवतैः सह ॥ ३ ॥
स वराहस्ततो भूत्वा प्रोज्जहार वसुन्धराम्।
असृजच्च जगत्सर्वं सह पुत्रैः कृतात्मभिः ॥ ४ ॥
आकाशप्रभवो ब्रह्मा शाश्वतोनित्यअव्ययः।
तस्मान्मरीचिः संजज्ञे मरीचेः कश्यपः सुतः ॥ ५ ॥
विवस्वान् कश्यपाज्जज्ञे मनुर्वैवस्वतः स्वयम्।
स तु प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुस्तु मनोः सुतः ॥ ६ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अयोध्याकाण्ड ११० वें सर्ग में इस प्रकार से सृष्टि का वर्णन है। प्रथम सब जल था। उस पर पृथिवी बनाई तब देवता सहित ब्रह्मा उत्पन्न हुए। वराह हो पृथिवी उद्धार किया और अपने पुत्रों के साथ सब सृष्टि रची। और इस प्रकार वंश चला। ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप, विवस्वान्. मनु, इक्ष्वाकु, कुक्षि, विकुक्षि, वाण, अरण्य, पृथु, त्रिशङ्कु, धुन्धुमार, युवनाश्व, मांधाता, सुसन्धि, ध्रुवसन्धि, भरत, असित, सगर, असमंजस, अंशुमान्, दिलीप, भगीरथ, ककुत्स्थ, रघु, कल्माषपाद (सौदास) शंखण, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग, मरु, प्रशुश्रुव, अम्बरीष, नहुष, नाभाग, अज, दशरथ, राम इत्यादि उत्तर २ पुत्र जानना अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र मरीचि मरीचि के पुत्र कश्यप और कश्यप के पुत्र विवस्वान् और विवस्वान् के पुत्र मनु इत्यादि। यहां मुखादि से ब्राह्मणादि वर्ण की उत्पत्ति का वर्णन नहीं है। और एक आश्चर्य यह है कि यहां मरीचि के प्रपौत्र 'मनु' कहे गये हैं। परन्तु मनुस्मृति में मनु के पुत्र 'मरीचि' माने गये है। (१) यह उलटीबात और मनुस्मृति में विराट् के पुत्र मनु हैं। परन्तु यहां विवस्वान् के। यदि कहो कि कल्प २ की बात है तो मैं पूछता हूं कि रामायण में श्री रामचन्द्र की कथा किस कल्प की बात है और मनुस्मृति किस कल्प की है। कल्प का झगड़ा अनभिज्ञ लोगों ने लगाया है। यहां ब्रह्मा ही वराह होकर पृथिवी लेआए हैं। भागवत में ब्रह्मा से वराह भगवान् उत्पन्न हो उन्होंने पृथिवी का उद्धार किया ऐसा वर्णन है। पुनः—

पूर्वकाले महाबाहो ये प्रजापतयोऽभवन्।
तन्मे निगदतः सर्वानादितः शृणु राघव ॥ ६ ॥
कर्दमः प्रथमस्तेषां विकृतस्तदनन्तरम्।
शेषश्च संश्रयश्चैव बहुपुत्रश्च वीर्यवान् ॥ ७ ॥
स्थाणुर्मरीचिरत्रिश्च क्रतुश्चैव महाबलः।
पुलस्त्यश्चाङ्गिराश्चैव प्रचेता पुलहस्तथा ॥ ८ ॥

(१) मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्। मनु० १। ३५।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दक्षो विवस्वानपरोऽरिष्टनेमिश्च राघव ।
कश्यपश्च महातेजास्तेषा मासीच्च पश्चिमः ॥ ९ ॥
प्रजापतेस्तु दक्षस्य बभूवुरिति विश्रुताः ।
षष्टिर्दुहितरो राम यशस्विन्यो महायशः ॥ १० ॥
कश्यपः प्रतिजग्राह तासामष्टौ सुमध्यमाः ।
अदितिं च दितिंचैव दनूमपिच कालकाम् ॥ ११ ॥
ताम्रां क्रोधवशांचैव मनुंचाप्यनलामपि ।
तास्तु कन्यास्ततः प्रीतः कश्यपः पुनरब्रवीत् ॥ १२ ॥ अर० १४

जटायु गृध्र रामचन्द्र से कहते हैं कि हे राम ! पूर्व काल में जो प्रजापति हुए हैं उन सबों के नाम सुनो । ६ । कर्दम, विकृत, शेष, संश्रय, बहुपुत्र, स्थाणु, मरीचि, अत्रि, क्रतु, पुलस्त्य, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलह, दक्ष, विवस्वान्, अरिष्टनेमि और कश्यप ये १७ प्रजापति हुए (१) । ९ । प्रजापति दक्ष की ६० कन्याएं हुईं । उन में से कश्यप ने आठ कन्याएं लीं । अदिति, दिति, दनु, कालका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु (२) और अनला ।

१-अदिति से, आदित्य, वसु, रुद्र, अश्वी दोनों । २-दिति से-दैत्यगण ३-दनु से दानवगण । ४- कालका से नरकादि । ५-ताम्रा से पांच कन्याएं इत्यादि वर्णन रामायण में देखिये । अब मनुष्य की उत्पत्ति सुनिये ।

मनुर्मनुष्यान् जनयत् कश्यपस्य महात्मनः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्च मनुजर्षभ ॥२९॥

कश्यप की स्त्री मनु ने मनुष्यों को उत्पन्न किया है । नरेश राम ! ब्राह्मण

(१) मनुस्मृति में दश प्रजापति कहे गये हैं । उन में मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य आदि है ।

(२) यहां आश्चर्य प्रतीत होता है कि 'मनु' नाम की एक स्त्री मानी गई हैं । और इसी मनु स्त्री से आगे मनुष्य की उत्पत्ति कही है । जिस कारण 'मनुष्य' मनुज-मानव आदि नाम मनुष्य के हुए हैं । परन्तु अन्य ग्रंथ 'मनु' को पुरुष मानते हैं और उस से मनुष्य की सृष्टि ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रों को मनु नाम की स्त्री ने ही उत्पन्न किया। यहां पर देखते हैं कि कश्यप जी ने अपनी स्त्री मनु से मनुष्यों को क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य शूद्र सबों को उत्पन्न किया। यहां मैथुनी सृष्टि का वर्णन है। इस वर्णन से भी यहां सिद्ध होता है कि मुखादि से सृष्टि नहीं हुई यदि कहो कि स्त्री के मुखादिक अङ्गों से ही कश्यप ने ब्राह्मणादिक चारो वर्णों को उत्पन्न किया हो तो यह भी कहना उचित नहीं। क्योंकि प्रथम तो यह घृणित और विरुद्ध बात है और इसका इसमें वर्णन होना चाहिये था कि मनुके वा कश्यप के मुखसे ब्राह्मण हुए। और अन्य ग्रन्थ में ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति मानी है। यदि यहां कश्यप से मानों तो भी अनिष्ट ही होगा। प्रकरण के देखने से प्रतीत होता है कि ब्रह्मा से १७ प्रजापति हुए। दक्ष और कश्यप दोनों भ्राता ही थे। दक्ष की कन्याओं से कश्यप ने विवाह किया। उनमें मनु नाम की एक स्त्री थी। उससे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र उत्पन्न हुए। जब ये सब उत्पन्न होगये तब पुनः कौनसी आवश्यकता रही कि मुखादिक अङ्गों से पुनः ब्राह्मणादिकों की सृष्टि करते। अतः जहां जहां मुखादिक से सृष्टि का वर्णन है वह ग्रन्थानुसार ही मिथ्या और क्षेपक सिद्ध होता है। उत्तर काण्ड के वर्णन से भी यही सिद्ध होता है यथा—

अमरेन्द्र मया बुद्ध्या प्रजाः सृष्टास्तथाप्रभो।
एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः ॥ १९ ॥
तासांनास्तिविशेषोहि दर्शने लक्षणेपि वा ॥२०॥उत्तरकांड३०॥

ब्रह्मा जी इन्द्र से कहते हैं कि हे अमरेन्द्र! मैंने अपनी बुद्धि से ऐसी मानवी सृष्टि की कि सब ही एक वर्ण थे। एकही भाषा थी एकरूप था। दर्शन और लक्षण में कोई भेद नहीं था।

यह भी सिद्ध करता है कि आदि सृष्टि में सब एक प्रकार के थे और मुखादि से सृष्टि नहीं हुई। धीरे धीरे वर्ण बनते गये।

यदि विचार दृष्टि से देखा जाय तो रामायण में अप्रासंगिक सृष्टि प्रकरण प्रतीत होता है। श्री रामचन्द्र को क्रुद्ध देख वसिष्ठ महाराज रामचन्द्र को सृष्टि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रकरण सुनाने लगे। यह अयोध्या काण्ड की वार्ता है। क्रोधावस्था में ऐसे कठिन विषय को सुनाना सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है और विना प्रश्न कहना भी वसिष्ठ जी के लिये शोभित नहीं है। और जब गृध्रराज मिले तब विना पूछे प्रजापतियों की वंशावली कहने लगे। यह भी कोई प्रसंग नहीं था यह अरण्य काण्ड की वार्ता है। उत्तर काण्ड यथार्थ में वाल्मीकिलिखित नहीं है। रामायण छः ही काण्ड थे पीछे से उत्तर काण्ड किसी ने रच कर रक्खा है। वाल्मीकीय रामायण एक अद्भुत काव्य है। काव्य में प्राकृतिक दृश्य चित्रित किये जाते हैं। न कि न्याय वा सांख्य शास्त्र के गूढ़ सिद्धान्तों की कठिन फक्किकाएं हल की जाती हैं। इस हेतु रामायण आदि में सृष्टि प्रकरण सर्वथा क्षेपक ही प्रतीत होते हैं। इस हेतु यह सब अमन्तव्य हैं। परन्तु इस अवस्था में भी ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण वर्ण उत्पन्न हुआ यह प्रकरणानुकूल सिद्ध नहीं होता।

'भागवत और सृष्टि प्रकरण'

प्रश्न—क्या भागवत से सिद्ध होता है कि ब्रह्मा के मुखादिसे ब्राह्मणादि वर्ण उत्पन्न हुए। उत्तर—नहीं। क्योंकि सृष्टि प्रकरण देखने से विदित होता है कि भागवत भी ब्रह्मा के मुखादि अङ्ग से ब्राह्मणादि वर्णों की सृष्टि नहीं मानता है। देखिये—

सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः।
सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः॥ ४॥
तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः।
तन्नैच्छन्मोक्षधर्म्माणो वासुदेवपरायणाः॥५॥ भागवत ३।१२

तृतीयस्कन्ध श्रीमद्भागवत में लिखा है कि मनुष्य सृष्ट्यर्थ प्रथम ब्रह्मा ने सनक, सनन्द, सनातन, और सनत्कुमार, चार मानसपुत्र उत्पन्न किये और उन से कहा कि प्रिय पुत्रो ? प्रजाओं की सृष्टि करो। परन्तु उन्हों ने इस को स्वीकार नहीं किया तब ब्रह्मा जी को अति क्रोध हुआ। इसी अवस्था में ललाट देश से रुद्र उत्पन्न हुआ। इसने ब्रह्मा की आज्ञा से तामसी सृष्टि की। इस से भी ब्रह्मा जी प्रसन्न नहीं हुए तब:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अथाभिध्यायतः सर्गं दशपुत्राः प्रजज्ञिरे ।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तान हेतवः ॥२१॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥ २२ ॥

प्रजा वृद्धि के लिये ध्यान करते हुए भगवान की शक्ति से युक्त ब्रह्मा जी के १० दश पुत्र हुए । मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्ष, और दशम नारद, (१) आगे पुनः कहते हैं कि एक कर्दम भी ब्रह्मा की छाया से उत्पन्न हुए । इस से भी जब प्रजा की वृद्धि नहीं हुई तब--

एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावेक्षतस्तदा ।
अस्य रूपमभूद्द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ॥ ५२ ॥
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ।
यन्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥ ५३ ॥
स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महीष्यस्य महात्मनः ।
तदा मिथुनधर्म्मेण प्रजाह्येधांबभूविरे ॥ ५४ ॥
स चापि शतरूपायां पञ्चापत्यान्यजीजनत् ।
प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥ ५५ ॥
आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ।
आकूतिं रुचये प्रादात् कर्दमाय तु मध्यमाम् ।
दक्षायादात्प्रसूतिं च यत आपूरितंजगत् ॥ ५६ ॥

इस प्रकार चिन्ता करते हुए और दैवपर विश्वास करते हुए ब्रह्मा जी का शरीर दो भागों में विभक्त होगया । उन दोनों भागों से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ

(१) मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ मनु० १ । ३५ ॥

यहां दक्ष के स्थान में प्रचेतस है । परन्तु मनुस्मृति में ये १० दशो मनु पुत्र कहे गये है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस में जो पुरुष था वह मनु स्वायंभुव और स्वराट् नाम से प्रसिद्ध हुए और जो स्त्री थी वह शतरूपा कहाने लगी (१) जो मनु जी की धर्म्म पत्नी हुई। तब मिथुन धर्म्म से प्रजाएं बढ़ने लगीं। शतरूपा में पांच सन्तान हुए। प्रियव्रत. उत्तानपाद ये दो पुत्र और आकूति, देवहूति और प्रसूति ये तीन कन्याएं। रुचि को आकूति, कर्दम को देवहूति और दक्ष को प्रसूति दी। पुनः आगे कहते हैं।

आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृप।
पुत्रिकाधर्म्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः ॥ २ ॥
प्रजापतिः स भगवान् रुचिस्तस्यामजीजनत् ॥ चतुर्थस्कन्ध १॥

यद्यपि आकूति के दो भाई भी थे तथापि विवाह के समय मनु जी ने यह कहा कि इस में जो पुत्र होंगे उन में से एक पुत्र मैं लूंगा। रुचि ने आकूति में दो सन्तान उत्पन्न किये। एक यज्ञ और दूसरी कन्या दक्षिणा। युवा होने पर यज्ञका अपनी बहिन दक्षिणा से विवाह हुआ। भागवत में कहा गया है जो यज्ञ था वह साक्षात् विष्णु ही थे और जो दक्षिणा थी वह लक्ष्मीजी का स्वरूप था। इस हेतु भाई बहिन में ही विवाह हुआ है। इन दोनों के योग से तोष, प्रतोष, भद्र, शान्ति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, खड्ग, सुदेव, और रोचन, ये बारह पुत्र हुए ये तुषित नाम देव कहाते हैं।

---

(१) नोट—मनुस्मृति में कहा गया है कि ब्रह्मा जी अपने शरीर को दो भागों में बांट स्त्री पुरुष हो उसमें प्रथम विराट् नामक पुत्र को उत्पन्न किया है और उस विराट् ने मनु को। और मनु ने १० प्रजापतियों को यथाः—

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत्प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यन्तु स स्वयं पुरुषो विराट्।
मां वित्तास्य सर्वस्यस्रष्टारंद्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥

अहं प्रजाःसिसृक्षुस्तुतपस्तप्त्वासुदुश्चरम्।
पतीन् प्रजानामसृजंमहर्षीनादिनोदश ॥ ३४ ॥ इत्यादि। प्रथमाध्याय ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रियव्रत और उत्तानपाद के अनन्तपुत्र पौत्र हुए। कर्दम और देवहूति से कपिल आदि सन्तान हुए "पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा। कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत्" कर्दम कन्या कला ने मरीचि ऋषि के योग से कश्यप और पूर्णिमा दो सन्तान उत्पन्न किये जिनसे यह सम्पूर्ण जगत पूर्ण हुआ। आत्रि के अनुसूया से तीन पुत्र हुए। दत्तात्रेय, दुर्वासा और सोम इत्यादि कथा श्रीमद्भागवत में देखिये।

यहां केवल यह दिखलाना है कि भागवत से भी पूर्वोक्त विषय सिद्ध नहीं होता। क्योंकि प्रथम ब्रह्मा के जो सनकादि चार पुत्र हुए उन्हें आप क्या कहेंगे। क्योंकि ये किसी अंग से उत्पन्न नहीं हुए। पुनः मनुजी की भी यही बातें हैं इन को भी चारों वर्णों में से किसी में नहीं गिन सकते हैं। मनुजी से ही आगे सब वंश चले हैं। इसी कारण मनुष्य 'मानव' कहलाये हैं। अतः सम्पूर्ण मनुष्य सृष्टि को भी ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं कह सकते। फिर आप बतलावें कि मुखादि से कौन सा वंश चला।

उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात् स्वयंभुवः।
प्राणाद्वसिष्ठः संजातो भृगुस्त्वचिकरात्क्रतुः ॥२३॥
पुलहो नाभितोजज्ञे पुलस्त्यःकर्णयोर्ऋषिः।
अंगिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥२४॥
छायायाःकर्दमोजज्ञे देवहूत्याःपतिः प्रभुः ॥२७॥भा०३।१२॥

यहां भागवत कहता है कि ब्रह्मा जी की गोदी में से नारद जी, अंगूठे में से दक्ष, प्राण से वसिष्ठ, त्वचा में से भृगु, हाथमें से क्रतु ॥२३॥ नाभिमें से पुलह कर्णसे पुलस्त्य, मुखमें से अंगिरा, नेत्रों से अत्रि, और मन से मरीचि हुए ॥२५॥ ब्रह्मा की छाया से देवहूति के पति प्रभु कर्दम उत्पन्न हुए इत्यादि ॥ २७ ॥

यद्यपि यहां अंगों में से उत्पत्ति का वर्णन है। परन्तु ये ब्रह्म के १० दशों मानसपुत्र हैं। औ इनकी प्रतिष्ठा ऋषियों में हैं। इनको न आप ब्राह्मण न क्षत्रिय न वैश्य और न शूद्र कहेंगे। ये प्रजापति और मन्त्रद्रष्टा कहलाते हैं। क्या आप कह सकते हैं कि इन में कौन शूद्र हैं? और नारदादिक दशों में से किस का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सन्तान शूद्र हुआ है। प्रत्युत ये दशो ब्राह्मण के ही नाम से पुराणों में उक्त हैं। फिर उत्पत्तिस्थान भिन्न होने पर भी कुछ सिद्ध नहीं हुआ। प्रत्युत आज कल भी देखते हैं इन सबों से सब वर्ण उत्पन्न हुए हैं। अतः भागवत का सिद्धान्त भी ब्राह्मणादिकों को मुखादिकों से उत्पत्ति मानने वाला सिद्ध नहीं होता।

विष्णुपुराण और सृष्टि।

अथान्यान् मानसान् पुत्रान् सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ ४ ॥
भृगुं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुमंगिरसं तथा।
मरीचिं दक्ष मत्रिञ्च वसिष्ठं चैव मानसान् ॥ ५ ॥
नव ब्रह्माण इत्येते पुराणे निश्चयं गताः।
सनन्दनादयो ये च पूर्वं सृष्टास्तु वेधसः ॥ ६ ॥
न ते लोकेष्वसज्जन्त निरपेक्षाः प्रजासु ते।
सर्वे ते चागतज्ञाना वीतरागाविमत्सराः ॥ ७ ॥
ततो ब्रह्मात्मसंभूतं पूर्वं स्वायंभुवं प्रभुः।
आत्मान मेव कृतवान् प्रजापालं मनुं द्विज ॥१४॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम्।
स्वायंभुवोमनुर्देवः पत्न्यर्थं जगृहे विभुः ॥ १५ ॥
तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत।
प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रकूत्याकूतिसंज्ञितम् ॥ १६ ॥
कन्याद्वयं च धर्म्मज्ञं रूपौदार्यगुणान्वितम् ॥ विष्णुपुराण १।७॥

ब्रह्माजी ने अपने समान मानस पुत्र उत्पन्न किये। भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि, और वसिष्ट। ये नव मानसपुत्र ब्रह्माही कहाते हैं। (१) अर्थात् ये नवों ब्राह्मण ही हैं और जो प्रथम सनकादिक सृष्ट

नोट- भागवत में दश मानस पुत्र कहे गये हैं। अथाभिध्यायतः सर्ग दशपुत्राः प्रजज्ञिरे। ३। १२।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुए वे प्रजोत्पादन में आसक्त नहीं हुए । तब ब्रह्माजी ने मनु और शतरूपा को प्रकट किया मनु ने पत्नी के लिये शतरूपा का हस्तग्रहण किया । इन दोनों के योग से प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र और प्रकूति और आकूति दो कन्याएं हुई ।

आगे लिखा है कि इन में से ही सारी सृष्टि हुई । विष्णुपुराण में भी कहीं नहीं कहा है कि अमुक मनुष्य वा प्रजापति पैर से उत्पन्न हुए और उन का वंश शूद्र हुआ । आप यहां पर भी देखते हैं कि ब्रह्माजी ने अपने शरीर से उन को उत्पन्न किया और मनु से यह सारी सृष्टि हुई । अब आप विचार करें कि ब्रह्माजी ने कब मुखादिक से ब्राह्मणादिक वर्ण सृजे । यदि सृजे भी तो वे कौन थे उन का क्या नाम था । और भृगु आदिकों से जो आदि सृष्टि में मनुष्य उत्पन्न हुए वे किस वर्ण के हुए इत्यादि पता यदि लगाइये तो किसी पुराण से भी यह सिद्ध नहीं होगा कि अमुक पुरुष ब्रह्मा के पैर से उत्पन्न हुआ इति । संक्षेपतः ।

दुर्जन सन्तोष न्याय को अवलम्बन कर किञ्चित् काल के लिये मान भी लिया जाय कि मुखसे ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरु से वैश्य और चरण से शूद्र उत्पन्न हुए । फिर इस से ब्रह्माजी का क्या मनोरथ सिद्ध हुआ ? नहीं । क्योंकि उन्होंने इन में कोई विशेष चिन्ह निर्म्माण नहीं किया । जैसे पशु पक्षी मत्स्यादि को में भिन्नता सूचक एक २ चिन्हविशेष स्थापित किया है वैसा इन मनुष्यों में कोई नहीं । गौ के सिर पर सींग होती है । घोडे वा गदहे के सिर पर सींग कदापि नहीं । और उन की आकृति प्रभृति में भी बहुत भिन्नता है जिस से मनुष्य झट पहचान लेता है कि यह घोडा है और यह गाय है । इस के पहचान के लिये शास्त्र में कोई झगड़ा नहीं । इसी प्रकार ब्राह्मण क्षत्रिय आदि में भी कोई विशेष चिन्ह लगा देते जिस से शास्त्रीय द्वन्द्व नहीं होता, जब ब्रह्मा ने इन मनुष्यों में कोई विशेष चिन्ह स्थापित नहीं किया तो ब्राह्मणादिकों को मुखादिक अंगों से उत्पन्न करना भी व्यर्थ ही है ।

पुनः क्या मुख से मलिन पदार्थ नहीं निकलता है ? मुख से उत्पत्ति होने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से ही केवल किसी की श्रेष्ठता नहीं हो सकती है। ब्रह्मा के सब ही अंग पवित्र हैं। जो पुरुष श्रेष्ठ है उस का चरण भी पूज्य ही होता है। लोग चरण की ही पूजा करते हैं। चरण को ही छू कर प्रणाम करते हैं। पुनः देखिये भगवान् के चरण से निकली हुई गंगा कैसी पवित्र मानी जाती है। इस के दर्शन से अपने को लोग कृतकृत्य समझने लगते हैं। इसी प्रकार यदि ब्रह्मा के चरण से शूद्र उत्पन्न है तो वह नीच कैसे हुआ। बल्कि गंगा के समान शूद्रों को आदर सत्कार करना चाहिये। क्योंकि दोनों की उत्पत्ति पैर से है। पुनः पुराणों में इस पृथिवी की पैर से उत्पत्ति मानी है। वह पृथिवी माता के नाम से पुकारी जाती है और धारिणी देवी की पूजा होती है। अतः पृथिवीवत् शूद्रों को भी पिता की पदवी मिलनी चाहिये। क्योंकि दोनों पैर से हैं उन में से एक को माता कहें और दूसरे को निरादर करें यह कौनसी मर्य्यादा है

मुखाद्यवयव से उत्पत्ति मानना बड़ी अज्ञानता का विषय है। मैंने यहां प्रसिद्ध २ सब ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि इन ग्रन्थों से भी यह विषय सिद्ध नहीं होता। इस कारण आदि सृष्टि से ही और जन्म से ही यह वर्ण व्यवस्था है ऐसे कहने वाले अपने पक्ष को कदापि सिद्ध नहीं कर सकते। अतः यह सर्वथा त्याज्य है। और "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का तात्पर्य्य भी वे लोग यथार्थ प्रकट नहीं करते। एतदर्थ मैंने इस के आशय को भी यहां प्रकाशित किया है।

मुखज और बाहुज आदि शब्द।

"ब्रह्मा के अथवा ईश्वर के मुखादि अङ्गों से ब्राह्मणादिक वर्णों की उत्पत्ति हुई है" ऐसा मत देश में कब से उत्पन्न हुआ। इस का पता लगाना भी कुछ कठिन नहीं। यदि आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों में थोड़ा सा भी हम लोग परिश्रम करें। प्रथम तो आर्षग्रन्थों में चतुर्मुख ब्रह्मा की कहीं भी चर्चा नहीं। और दूसरी बात यह है कि ब्रह्मा विष्णु आदि कोई व्यक्ति विशेष नहीं। वायु के स्थान में ब्रह्मा एक कल्पित देव पौराणिक समय में माना गया है। इस हेतु आर्ष ग्रन्थ जिस समय बने थे उस समय तक यह मत देश में प्रचलित नहीं हुआ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

था यह सिद्ध होता है। अन्य प्रकार से भी इस की परीक्षा कर सकते हैं। बहुत से इतिहासों का पता केवल शब्दों के द्वारा ही लग सकता है। उदाहरण के लिये 'हिन्दू' और 'स्कूल' शब्द को लीजिये। वेद से लेकर कालिदास के ग्रन्थ पर्य्यंत 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग नहीं मिलता है परन्तु मुसलमान के आगमन के पश्चात् के ग्रन्थों में 'हिन्दू' शब्द का और अंगरेज के आने के पिछले ग्रन्थों में 'स्कूल' शब्द का बहुत प्रयोग है। इस से सिद्ध होता है कि मुसलमान के आगमन के पीछे यहां के लोग 'हिन्दू' कहलाने लगे और अंगरेज के राज्य में 'स्कूल' शब्द का प्रचार हुआ है। इसी प्रकार 'मुखज' 'बाहुज' आदि शब्दों से उस विषय का निर्णय हम सहजतया कर सकते हैं। आजकल ब्राह्मणवर्ण के लिये मुखज, अग्रज, अग्रजन्मा आस्यज आदि, क्षत्रिय के लिये बाहुज, करज बाहुजन्मा आदि, वैश्य के लिये ऊरव्य, ऊरुज, ऊरुजन्मा, मध्यज, आदि और शूद्र के लिये पज्ज, पादजन्मा, चरणज, अन्त्यज आदि शब्दों के प्रयोग देखते हैं यथा "आश्रमोऽस्त्री द्विजात्यग्रजन्म भूदेव वाड्वाः" द्विजाति, अग्रजन्मा, भूदेव, और वाड्व इत्यादि ब्राह्मणों के नाम "मूर्धाभिषिक्तो राजन्यो बाहुजः क्षत्रियो विराट्" मूर्धाभिषिक्त, राजन्य, बाहुज, क्षत्रिय के नाम "ऊरव्या ऊरुजा अर्या वैश्या भूमिस्पृशो विशः" ऊरव्य, ऊरुज, अर्य, वैश्य, भूमिस्पृक् और विट् आदि वैश्यके नाम "शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः" शूद्र, अवरवर्ण, वृषल और जघन्यज शूद्रों के नाम हैं। यह अमरकोश का वचन है। यहां अग्रजन्मा, बाहुज, ऊरुज, और जघन्यज अर्थात् पादज, शब्दके प्रयोग हैं। "अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहश्चैव षट्कर्म्माण्यग्रजन्मनः" मनुः। अग्रजन्मा (अग्रे जन्म यस्य सः अग्रजन्मा) सबसे आगे जन्म है जिसका उसे अग्रजन्मा कहते हैं) अर्थात ब्राह्मण के अध्यापन, अध्ययन, यजन, याजन, दान, प्रतिग्रह ये छः कर्म्म हैं। 'वत्स वाराणसीं गच्छ त्वं विश्वेश्वरवल्लभां। तत्र नाम्ना दिवोदासः काशिराजोऽस्ति बाहुजः' यह बचन भावप्रकाश का है। हे वत्स काशी जाओ। वहां 'बाहुज' अर्थात् जिसकी उत्पत्ति बाहु से हुआ है अर्थात् क्षत्रिय, दिवोदास राजा रहता है। " रजकश्चर्म्मकारश्च नटो बरुड एव च। कैवर्त मेद भिल्लाश्च सप्तैते अन्त्यजाः स्मृताः" ॥ इति यमवचनम् ॥ "प्रतिग्रहस्तु क्रियते शूद्रादप्यन्त्यजन्मनः" मनु०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि" प्रायश्चित्ततत्त्व । रजक, चर्म्मकार, नट, वरुड़, कैवर्त, मेद, भिल्ल, ये सातों अन्त्यज हैं । इत्यादि अनेक स्थानों में अग्रजन्मा, बाहुज आदि शब्द मिलतेहैं इससे सिद्ध होता कि इन ग्रन्थों की रचना के समय में मुखादि से उत्पत्ति मानने का सिद्धान्त चल पड़ा था क्योंकि उस अर्थ के सूचक अग्रजन्मादि शब्द भी विद्यमान हैं । परन्तु न तो चारों वेदों में और न उपनिषद् पर्य्यन्त वैदिक आर्षग्रन्थों में अग्रजन्मा बाहुज ऊरुज और अन्त्यज ये चारों शब्द अथवा इस प्रकार के कोई शब्द हैं । इस से स्वतः सिद्ध है कि वेद से लेकर आर्ष ग्रन्थ की रचना के समय तक मुखादि से उत्पत्ति मानने का मत देश में नहीं चला था इस प्रकार शब्द का प्रयोग भी हमें इतिहास सूचित करता है कि मुखादि से उत्पत्ति मानने का सिद्धान्त कब से चला और इस से यह भी सिद्ध होता है कि "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का अर्थ मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति है ऐसा नहीं करते थे । जब से वैसा अर्थ करने लगे तब से तदर्थ सूचक शब्दों के भी प्रयोग होने लगे ।

प्रश्न—क्या भगवान् के किसी अङ्ग से ब्राह्मणादि वर्णों की उत्पत्ति वेद वर्णन करते हैं ?

उत्तर—नहीं । देखिये । इस शरीर में जो जीवात्मा है वह अनादि है । इस को किसी ने नहीं बनाया । यह अजर अमर है । जो यह शरीर है वह पाञ्चभौतिक है । और पञ्चभूत प्रकृति के विकार हैं । वह प्रकृति भी अनादि है। प्रकृति और जीवात्मा के संयोग से यह चराचर विश्व बना है । इस में परमात्मा केवल निमित्त कारण है । जैसे मृत्तिकादि सामग्री लेकर कुम्भकार विविध पात्र रचता है वैसे ही सर्वनियन्ता सर्वान्तर्यामी सर्वजनयिता परब्रह्म परमेश्वर अनादि जीव और प्रकृति को लेकर भूर्भुवादि ब्रह्माण्ड रचा करता है । अपने शरीर के मांस रुधिर मज्जा आदि नोंच कर सृष्टि करने की आवश्यकता ईश्वर को नहीं है । इस में ये कारण हैं वेद शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्म निरवयव निर्विकार और सर्वव्यापी है । जब उसका कोई अवयव नहीं है तो किस अङ्ग (अवयव) से सृष्टि बनावेगा । पुनः वह निर्विकार है । यदि वह किसी अङ्ग से मिट्टी आदि निकाल कर सृष्टि रचे तो वह सविकार होजायगा । परन्तु वेद कहता है

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कि वह निर्विकार है। इस हेतु वह किसी अङ्ग से भी सृष्टि नहीं रचता है। यदि कहो कि जैसे दूध से दही होजाता है वैसे ही ब्रह्म स्वयं सृष्टि बनजाता है तो यह भी कथन ठीक नहीं है। क्योंकि तो ब्रह्म स्वयं दुग्धवत् नष्ट होजायगा क्योंकि दूध के अस्तित्व नष्ट होने से ही दही बनता है। और यदि सब ब्रह्म ही है तो वेदविहित सर्व साधन भी व्यर्थ होजायँगे। क्योंकि ब्रह्म स्वतः प्राप्त है अथवा स्वयं ही ब्रह्म है अथवा ब्रह्म कोई सृष्टि से भिन्न वस्तु ही नहीं रही जिस की प्राप्ति का परमोपाय किया जाय। अतः यह मत सर्वथा वेद विरुद्ध होने से सब का त्याज्य है। " कृत्स्नप्रसक्ति र्निरवयवशब्दकोपोवा । वेदान्तसूत्र अ० २। पा० १ सू० २२। इस सूत्र में इसी विषय का कृष्णद्वैपायन ने निर्णय किया है ईश्वर के निरवयवत्व और निर्विकारत्व में सहस्रशः प्रमाण वेद और शास्त्रों में आते हैं परन्तु यहां सृष्टिप्रकरण का निर्णय करना नहीं है। केवल मनुष्यसृष्टि का वर्णन ही अभीष्ट है। तथापि दो एक प्रमाण ये हैं --यथाः

"स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्" इत्यादि यजुः। " निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। दिव्योह्यमूर्तः पुरुषः सबाह्याभ्यन्तरोह्यजः" इत्यादि कठोपनिषद्। "इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघन एव" इत्यादि बृहदारण्यकोपनिषद्

२-क्या वेदों में मनुष्य सृष्टि का कुछ वर्णन है ? उत्तर-है। अन्यान्य सृष्टि के वर्णन के समान मनुष्य सृष्टि का भी वर्णन आता है। परन्तु आप लोगों को इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिये कि मनुष्य के लाभ सम्बन्धी विषयों का वर्णन वेदों में अधिक है। जिन से विशेष लाभ नहीं वैसे विषयों का वर्णन वेदों में बहुत न्यून है। मान लीजिये कि आप को मनुष्यसृष्टि का भेद विदित भी हो जाय फिर इस से आप को क्या लाभ पहुंचेगा। निःसन्देह कर्म्म करने से मनुष्य को लाभ पहुंचा करता है। उन का विस्तार पूर्वक वर्णन वेद करते हैं। तथापि मनुष्य की उत्सुकता की निवृत्ति के हेतु भगवान् ने इस का भी संक्षेप निरूपण अपनी वाणी में किया है यथाः।-

स पूर्व्या निदिता कव्यताऽयोरिमाः प्रजा अजनयन् मनूनाम्।
विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन् द्रविणोदाम्॥१।९६।२

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पूर्व्या=पहली। निविद्=मंत्र, ऋचा, ज्ञान। कव्यता=कव्य+ता=ज्ञानविस्तारक। आयुः=जीवात्मा। मनु=मनुष्य। विवस्वान्=सूर्य। चक्ष=चक्षु, नेत्र। द्रविणोदा=सकल पदार्थ देने वाला (सः+कव्यता) परम ज्ञानी वह परमात्मा (पूर्व्या+निविदा) पूर्व ज्ञान के साथ अर्थात् पूर्ववत् विज्ञानके साथ (आयोः) जीव के निमित्त (मनूनाम्) मनुष्य सम्बन्धी (इमाः+प्रजाः) इन प्रजाओं को (अजनयत्) उत्पन्न किया करता है। और (विवस्वता चक्षसा) सूर्य्यरूप नेत्र के साथ (द्याम्) द्युलोक (अपः+च) अन्तरिक्ष पृथिवी आदि की सृष्टि करता है ऐसे (अग्निम्) देदीप्यमान परमात्मा को (द्रविणोदाम्) सकल पदार्थ दाता जान हे मनुष्यो! (धारयन्) स्तुति प्रार्थना के द्वारा धारण करो।

इस का भाव यह है कि पूर्व सृष्टि में जिस ज्ञान के साथ और जिन सामग्रियों से इस मनुष्य जातिको उत्पन्न किया था। वैसा ही किया करता है। इस मन्त्र में किसी अवयव से सृष्टि का वर्णन नहीं है किन्तु ज्ञान वा वेद के साथ मनुष्य सृष्टि का कथन है इसी हेतु मनुष्य सर्वजीवापेक्षया ज्ञानी है। यह प्रत्यक्ष ही है। निविद् में नि और विद् शब्द है। नि=विशेष। अधिक। विद्=ज्ञान। प्राणीमात्र यात्किञ्चित् ज्ञान के साथ उत्पन्न किया गया है। परन्तु मनुष्य अधिक ज्ञान के साथ प्रकट किया गया है। इस से अधिक वेद नहीं बतलाता। यदि मुखादिक से मनुष्योत्पत्ति मानने वाला वेद रहता तो यहां अवश्य इस का वर्णन करता।

यजुर्वेद और सृष्टि।

३ क्या यजुर्वेद मनुष्य सृष्टि का कुछ वर्णन करता है? उत्तर-हां। करता है परन्तु यजुर्वेद केवल यह हम जीवों को उपदेश देता है कि परमात्मा ने ही सब को रचा है। इसी की स्तुति, प्रार्थना, उपसना किया करो। इससे अधिक नहीं परन्तु किस सामग्री से मनुष्य रचा और किस को पहले उत्पन्न किया किस प्रकार से किया इत्यादि विशेष वर्णन नहीं करता है।

१ एकयाऽस्तुवत प्रजा अधीयन्त प्रजापति रधिपति रासीत्।
२ तिसृभिरस्तुवत ब्रह्माऽसृज्यत ब्रह्मणस्पति रधिपतिरासीत्।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३ पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानांपति रधिपतिरासीत्।
४ सप्तभिरस्तुवत सप्तऋषयोऽसृज्यन्त धाताऽधिपतिरासीत् ।२८।
यजु० । १४ ॥

अर्थः—हे मनुष्यो ! (एकया) एक सत्य वाणी से उसी परमात्मा की (अस्तुवत) स्तुति करो । क्योंकि इसी ने (प्रजाः अधीयन्त) हम तुम प्रजाओं को विद्या पढ़ाई है अर्थात् जिस ने स्तुति प्रार्थना के लिये वेद वाणी को मनुष्यों में दिया है उस की स्तुति प्रार्थना करो । अथवा जिन्हों ने सब प्रजाएं उत्पन्न की हैं 'अधीयन्त' का उत्पन्न करना भी अर्थ है । और वही (प्रजापतिः+अधिपतिः+आसीत्) प्रजाओं का पति और अधिपति भी है ॥१॥ (तृसृभिःअस्तुवत) हे मनुष्यो ! ऋग, यजु, और साम इन तीनों से उस की स्तुति करो क्योंकि उसी ने (ब्रह्म+असृज्यत) वेद अथवा वेद के तत्त्वज्ञ अध्ययन—अध्यापन कर्ता पुरुष को उत्पन्न किया है और वही (ब्रह्मणस्पतिः अधिपतिः आसीत्) वेद और ब्राह्मण दोनों का पति और अधिपति है ॥२॥ हे मनुष्यो ! (पञ्चभिः+अस्तुवत) पृथिवी, अप्, तेज, वायु और आकाश इन पांचों महाभूतों के द्वारा उस की स्तुति करो । क्योंकि उसी ने (भूतानि असृज्यन्त) पञ्च महाभूतों को प्रकाशित किया है और वही (भूतानाम्+पतिः+अधिपतिः+आसीत्) महाभूतों का पति और अधिपति है ॥३॥ हे मनुष्यो ! (सप्तभिः+अस्तुवत) दो आंख, दो कान, दो घ्राण और एक जिह्वा इन सातों के द्वारा उसी की विभूति आंखों देखो, कानो सुनो, घ्राणों सूंघो और जिह्वा से गाओ । उसी ने (सप्तऋषयः) चक्षुरादि सातों ऋषियों को प्रकट किया है और वही (धाता+अधिपतिः+आसीत्) उन का धाता और अधिपति है । 'सप्तर्षि' नाम इन्द्रियों का बहुधा आया करता है ।

५ नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्त ऽदितिराधिपत्न्यासीत्।
६ एकादशभिरस्तुवत ऋषयोऽसृज्यन्ताऽऽर्त्तवा अधिपतयआसन्।

अस्तुवत = मैंने कई एक स्थान में कहा है कि वेद में लिट्लङ्लुङ्सर्व काल में होता है । और वचन का भी व्यत्यय होता है ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

७ त्रयोदशभिरस्तुवत मासा असृज्यन्त सम्वत्सरोऽधिपतिरासीत्
८ पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत् ।
९ सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पति राधिपतिरासीत् ॥ २९ ॥ यजु० १४ ॥

अर्थ-हे मनुष्यो ! (नवभिः+अस्तुवत) इस शरीर में दो आंखें दो कान दो घ्राण, एक मुख, एक मूत्रोत्सर्गेन्द्रिय और एक पुरीषोत्सर्गेन्द्रिय ये नव द्वार हैं इन पर शरीर निर्भर है। इन नवों द्वारों से संयुक्त शरीर के द्वारा उसी की सेवा करो। क्योंकि (पितरः+असृज्यन्त) उसी ने इन द्वारों को बनाया है ("इन नव द्वारों का नाम पितर है क्योंकि इस शरीर की रक्षा ये सब करते हैं"। इन पितरों की माता (अदितिः) अखण्डनीय परमात्मा ही है और वही अदिति (अधिपत्नी+आसीत्) अधिपत्नी=अधिपति है ॥ ५ ॥ (एकादशभिः अस्तुवत) हे मनुष्यो ! पृथिवी पर कहीं कहीं ११ ऋतु होते हैं इन एकादश ऋतुओं की विभूति के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि उसी ने (ऋतवः+असृज्यन्त) ऋतु प्रकट किये हैं। और वही (आर्तवाः+अधिपतयः+आसन्) ऋतुव्यापक अधिपति है ॥ ६ ॥ (त्रयोदशभिः अस्तुवत) १३ त्रयोदश मासों के द्वारा भी उसी के गुण का अध्ययन करो। क्योंकि इसी ने (मासाः+असृज्यन्त) मास प्रकट किये हैं और वही (सम्वत्सरः) मासों में निवास करने वाला उन का अधिपति है ॥ ७ ॥ (पञ्चदशभिः+अस्तुवत) पन्द्रह प्रकार के बलों के द्वारा भी उसी की स्तुति करो। क्योंकि (क्षत्रम्+असृज्यत) बल, वीर्य्य, शक्ति और बलवीर्य्यादिसम्पन्न मनुष्य को उसी ने सिरजा है और वही (इन्द्रः+अधिपतिः+आसीत्) परमैश्वर्य्यशाली परमात्मा उस बलधारी पुरुष का भी शासनकर्ता अधिपति है ॥८॥ (सप्तदशभिः+अस्तुवत) १७ सप्तदश प्रकारों के पशुओं की रचनाकौशल के द्वारा उसी की स्तुति करो क्योंकि उसने (ग्राम्याः+पशवः+असृज्यन्त) ग्राम्य पशु उत्पन्न किये हैं और वही (बृहस्पतिः+अधिपतिः आसीत्) बृहस्पति परमात्मा उन पशुओं का अधिपति है ॥ ९ ॥

१०-नवदशाभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येतामहोरात्रे अधिपती आस्ताम्

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

११-एकविंशत्याऽस्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत्
१२-त्रयोविंशत्याऽस्तुवत क्षुद्राःपशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् ।
१३-पञ्चविंशत्याऽस्तुवताऽऽरण्याःपशवोऽसृज्यन्तवायुरधिपतिरासीत्
१४-सप्तविंशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्रा आदित्या
अनुव्यायंस्त एवाधिपतय आसन् ॥ ३० ॥ यजु० १४ ॥

(नवदशभिः+अस्तुवत) १९ नवदश प्रकार की विभूति के द्वारा भी उसी की स्तुति करो । क्योंकि उसी ने (शूद्रार्य्यौ) शूद्र और अर्य्य अर्थात् वैश्य दोनों को प्रकट किया है । इन के (अहोरात्रे+अधिपती+आस्ताम्) दिन और रात अधिपति हैं इसादि ।

यहां पर आप देखते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन तो नहीं है किन्तु ईश्वर की विभूति का विवरण है। इस के साथ २ कथित हुआ है कि क्या मनुष्य, क्या पशु, क्या सम्पूर्ण जगत् इस सब का अधिपति और स्रष्टा परमात्मा ही है। वही प्रार्थनीय उपासनीय है। यहां पर भी मुखादि से उत्पत्ति का वर्णन नहीं है।

प्रश्न-क्या अथर्ववेद में मनुष्य की सृष्टि का कुछ वर्णन है ?

उत्तर-है ! प्रसंगतः कई एक स्थलों में सृष्टि का वर्णन आया है कि उसी परमात्मा की कृपा से यह सम्पूर्ण जगत् आविर्भूत हुआ । यहां उन मन्त्रों को भी दरसाऊंगा जिन को लोग सृष्टिप्रकरण में लगाते हैं परन्तु यथार्थ में सृष्टि बोधक हैं नहीं । यथाः—

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये । उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ अथर्व अ० ११ । ७ । २७ ॥

देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व, अप्सरा ये सब उसी परमात्मा से उत्पन्न हुए और उसी के आश्रित सब हैं ।

ब्राह्मणो जज्ञे प्रथमो दशशीर्षो दशास्यः ।
स सोमं प्रथमः पपौ स चकारारसं विषम् ॥ अथर्व० ४ । ६ । १ ॥

(प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ (दशशीर्षः) दशमस्तिष्क (दशास्यः) दशमुख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ब्राह्मणः) ब्रह्मवेत्ता (जज्ञे) उत्पन्न होता है (सः+प्रथमः) वह ब्रह्मवित् सर्वश्रेष्ठ पुरुष (सोमं+पपौ) सब पदार्थ का भोग करता है वह (विषम्+अरसम्+चकार) विषमय पदार्थ को अरस अर्थात् निर्वीर्य्य करता है ।

भाव इसका यह है कि वेद, ईश्वर और ईश्वरीय पदार्थों के तत्त्व के जानने वाला 'ब्राह्मण' कहलाता है । वह अन्यान्य क्षत्रिय वैश्यादि मनुष्यों की अपेक्षा कम से कम दश गुणा शिर अर्थात् बुद्धि रखता है अतः ऐसे ब्रह्मवित् पुरुष को 'दशशीर्ष' और 'दशास्य' कहते हैं । यथार्थ में ऐसा ही ब्रह्मवित् सर्वपदार्थाधिकारी है और वह विषमय पदार्थको भी अपनी बुद्धि से अच्छा बना लेता है । यहां केवल ब्रह्मवित् पुरुष की प्रशंसा मात्र का कथन है । यथार्थ में सृष्टयुत्पत्ति कथन से तात्पर्य्य नहीं ।

सोऽरज्यत ततो राजन्योऽजायत ॥ अथर्व १५।८।१

(सः) वह (अरज्यत) प्रजाओं के साथ सर्वथा रक्त अर्थात् सर्वथा मिश्रित होता है (ततः) अतः वह (राजन्यः+अजायत) राज्यन्य होता है । अर्थात् राजन्य वा राजा वही बनाया जाता है जो प्रजा के साथ मिलकर राज्यकार्य्य साधन करता है । यह भी सृष्टि का निर्णायक नहीं । प्रसंगतः राजा कौन होता है इस का निरूपण है ।

तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानागच्छेत् ॥ १ ॥ श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय ना वृश्चते । तथा राष्ट्राय ना वृश्चते ॥ २ ॥ अतो वै ब्रह्म च क्षत्रंचो दतिष्ठतां ते अब्रूतां कं म विशावेति ॥ ३ ॥ अथर्व० । १५ । १० ॥

इस प्रकार ब्रह्म को जानता हुआ व्रतोपेत अतिथि यदि राजा के गृह पर आवे तो उस को अपने से श्रेष्ठ माने, मनवावे । जिस से कि उस के क्षात्रबल और राज्य के लिये कोई क्षति न पहुंचे । इसी से ब्रह्म और क्षत्र अर्थात् ब्रह्मबल और क्षत्रबल उत्पन्न हुए हैं । भाव यह है कि वेदाध्ययन, सत्यग्रहण और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्म्मरक्षादि के लिये ही ब्राह्मण क्षत्रिय होते हैं। यदि उसी की रक्षा नहीं हुई तो पुनः इन का होना ही किस काम का। अतः जो व्रती अतिथि गृह पर आवें उन का पूरा सत्कार करना चाहिये। यहां (उदतिष्ठताम्) का अर्थ यथार्थ में उत्पन्न होना नहीं है।

इस प्रकार वैदिक मन्त्र हमें अनेक स्थलों में उपदेश दे रहे हैं कि उसी परमात्मा से मनुष्य की भी सृष्टि हुई है। परन्तु मुखादिकों से ब्राह्मणादिक उत्पन्न हुए हैं ऐसा कहीं भी वर्णन नहीं पाते हैं। इस हेतु "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" का भी वैसा अर्थ करना उचित नहीं है। यहां मैंने तीनों वेदों के प्रमाण दिखलाये हैं। सामवेद ऋग्वेद के ही प्रायः अन्तर्गत है। अतः उस के उदाहरण की आवश्यकता नहीं। पुनः मैं आप लोगों से यह कहना चाहता हूं कि वेद केवल लाभदायक पदार्थ का निरूपण करता है। यह सारी सृष्टि भगवान् के अंग से या किसी अन्य पदार्थ से बनी, इस से मनुष्यों को कुछ विशेष लाभ नहीं अतः इस विषय को विशेष रूप से निर्णय वेद नहीं करता।

दूसरा कारण इस में यह है कि मनुष्यजाति को ज्ञानविज्ञानसहित ही ईश्वर ने प्रकट किया है यह निर्विवाद है। इस हेतु यदि सब भेद प्रथम ही ईश्वर इस को बतादेता तो दिए हुए ज्ञानविज्ञान व्यर्थ हो जाते। मनन के लिये इस को कोई पदार्थ ही नहीं रहते। अतः ऐसे ऐसे विषयों को अपनी बुद्धि से मनुष्य निर्णय करे जिससे उस का पुरुषार्थ का परिचय हो और बुद्धि की उन्नति हो लोक में यशस्वी और बुद्धिमान् गिना जाय। ईश्वर की भी महिमा प्रकट हो। इत्यादि गूढ़ अभिप्राय से ईश्वर ने सृष्टि के भेद को सर्वथा नहीं खोला। परन्तु इस के जानने के लिये मनुष्य में बड़ी अभिलाषा उत्पन्न की है और वेदों में आज्ञा भी दी है कि अपने पुरुषार्थ से अपने मनन निदिध्यासन के बल से ऐसे २ विषयों को खोज करो और जानो और अतिसंक्षेप से इसका भेद किञ्चित्मात्र खोल भी दिया है, मैं यहां दो एक उदाहरण देता हूं जिन पर आप लोग विचार करें।

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥
इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन् सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥
ऋग्वेद १० । १२९ ॥

परमार्थ रूप से इस सृष्टि को कौन जानता कौन व्याख्यान कर सकता है कहां से यह विविध सृष्टि आई ? विद्वान् लोग भी इस सृष्टि के पीछे हुए हैं तब वे इस को कैसे जान सकते हैं ? कौन जानता है कि यह कहां से आया ॥६॥ जहां से यह विविध सृष्टि होती है जो इस को धारण करता वा नहीं करता । जो इस का अध्यक्ष है वही जानता वा नहीं जानता । जो इस में व्यापक हो कर रमा हुआ है इत्यादि अर्थात् सृष्टिज्ञान अति कठिन है इस को तत्त्वतः वही जानता है अन्य कोई नहीं । उसी ने इस को धारण कर रक्खा है दूसरा कोई इस को धारण नहीं कर सकता । यहां पर सृष्टि की दुर्बोधता कही है और दूसरी जगह इस के जानने को उत्सुकता दरसाते हैं ।

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत् स्वित् कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन् विश्वकर्म्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः॥१८॥
किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥१९॥
यजु० अ० १७ ॥

सृष्टि रचने के समय उस ईश्वर को बैठने के लिये कौनसा अधिष्ठान अर्थात् निवासस्थान था ? और आरम्भ करने के हेतु कौन की सामग्री थी ? जिस से विश्वकर्म्मा विश्वद्रष्टा परमात्मा ने इस भूमि और द्युलोक को उत्पन्न कर सब को आच्छादित किया है ॥ १८ ॥ कौन वन और कौन वह वृक्ष है जिस से इस द्यावापृथिवी को ईश्वर ने अलंकृत किया है । हे मनीषी विद्वानो ! आप यह भी मन से विचार कर पूछो कि भगवान् इस भुवन को धारण करता हुआ जिस के ऊपर स्थित है वह कौनसा स्थान है । इत्यादि अनेक मंत्रों के द्वारा सृष्टि को जानने के लिये मनुष्य में उत्सुकता प्रकट की है । और:—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः॥१९यजु०।१७

"तम आसीत्तमसा गूढमग्रे" ॥ ऋ० १०। १२९। ३ ॥
"ब्रह्मणस्पतिरेता संकर्म्मार इवाधमत्।
देवानां प्रथमे युगेऽसतः सदजायत" ॥ १०। ७२। २ ॥

इत्यादि ऋचाओं से सूचित किया है कि प्रकृतिजन्य यह सम्पूर्ण जगत् है। इस को अच्छे प्रकार अन्वेषण करो। तुम्हें इतनी बुद्धि दी है कि तुम इस के तत्त्व को स्वयं जान सकते हो। इत्यादि। यहां केवल मनुष्य सृष्टि का ही वर्णन करना है इस हेतु इन ऋचाओं का व्याख्यान नहीं किया है।

इस प्रकार परमकल्याणकरी मातृपितृभूत वेद सिखलाते हैं कि परमात्मा ही मनुष्यजाति का उत्पन्न करने वाला है अन्य कोई नहीं। अतः इसीको माता पिता मान सदा उपासना किया करो। कतिपय अज्ञानी वेद शास्त्रों के यथार्थ अभिप्राय को न जान सुन अनेक विवाद उपस्थित करते हैं। कोई कहते हैं मनु और शतरूपा देवी से सारी सृष्टि हुई। कोई प्रलाप करते हैं कि सूर्य्य और चन्द्र से ये क्षत्रिय उत्पन्न हुए हैं इस कारण सूर्य्यवंशी और चन्द्रवंशी राजा पृथिवी पर बड़े पवित्र हैं। कोई यह भाषण करते हैं कि प्रथम कश्यप हुए और उन की अदिति, दिति, दनु, कद्रू, विनता आदि कई एक भार्याएं हुईं। इन्हीं से यह चराचर विश्व उत्पन्न हुआ, इसी हेतु "काश्यपा इमाः प्रजाः" यह वाक्य अभी तक सुप्रसिद्ध है। अन्यान्य पुरुष यों प्रमाण देते हैं कि हम लोग अग्निवंशी हैं। हमारे पूर्वज अग्नि से उत्पन्न हुए इस हेतु हम सब से पवित्र हैं। दूसरे कहते हैं कि हम नागवंशी हैं। शेषनाग से हमारी उत्पत्ति है इत्यादि अनेक प्रवाद यहां विद्यमान हैं इन की संक्षिप्त समालोचना आप लोगों के विस्पष्ट बोधार्थ करता हूं।

शतरूपा और मनु ॥

प्रथम यह प्रश्न होता है कि "मनु और शतरूपा की कथा कहां से उत्पन्न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुई है" उत्तर—पुराणों से। प्रायः सब पुराण शतरूपा की आख्यायिका का वर्णन करते हैं यहां दो एक पुराणों से इस को दिखलाते हैं:—

एतत् तत्त्वात्मकं कृत्वा जगद्वेधा अजीजनत् ॥ ३२ ॥
सावित्री लोकसिद्ध्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः।
ततः संजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम् ॥ ३३ ॥
स्त्रीरूपमर्धमकरोदर्धपुरुषरूपवत्।
शतरूपा च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते ॥३४॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप।
ततः स ब्रह्मदेवस्तामात्मजामित्यकल्पयत् ॥३५॥
.....
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत् कामबाणार्दितोविभुः।
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम् ॥४९॥
ततःकालेन महता ततःपुत्रोऽभवत् मनुः।
स्वायम्भुव इतिख्यातः सविडाडिति नः श्रुतम् ॥ ५० ॥
मत्स्यपुराण अ० ३ ॥

कथा का भाव यह है कि जब ब्रह्मा जी तत्त्वात्मक दो प्रकार की सृष्टि कर चुके तब लोक की सिद्धि के लिये सावित्री को हृदय में रख कर समाधिस्थ हुए। तब तप करते हुए ब्रह्मा जी ने अपने पवित्र शरीर को दो भागों में बांट आधे को स्त्रीरूप और आधे को पुरुषरूप बनाया। जो स्त्री हुई उस के नाम शतरूपा, सावित्री, सरस्वती, गायत्री, और ब्रह्माणी आदि हुए, उस सावित्री की सुन्दरता पर मोहित हो उससे विवाह किया। बहुत दिन व्यतीत होने पर शतरूपा में ब्रह्मा जी के एक पुत्र मनु उत्पन्न हुए। जो "स्वायम्भुव" कहलाते हैं और हम लोग सुनते आते हैं कि वह विराट् भी कहलाते हैं। इस कथा का तात्पर्य्य मैंने त्रिदेवनिर्णय में ब्रह्मा के प्रकरण में किया है। देखिये! यहां स्मरण रखना चाहिये कि शतरूपा ब्रह्मा की स्त्री और मनु की माता मानी गई है परन्तु भागवत विष्णुपुराण और अन्यान्य पुराण भिन्न प्रकार से वर्णन करते हैं और शतरूपा को मनु की स्त्री कहते हैं। आगे देखिये:—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

या सा देहार्धसंभूता गायत्री ब्रह्मवादिनी ।
जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया ॥ २६ ॥
रतिर्मनस्तपो बुद्धिर्महदादिसमुद्भवा ।
तथाचशतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत् ॥ २७ ॥
ये मरीच्यादयः पुत्राः मानसास्तस्यधीमतः ।
तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा ॥ २८ ॥
ततोऽसृजद्धामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ।
सनत्कुमारञ्च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम् ॥ २९ ॥

सो जो अर्धदेह संभूता गायत्री ब्रह्मवादिनी है और मनु की जननी है वह शतरूपधारिणी और शतेन्द्रिययुक्ता है। वही रति, मन, तप आदि भी है। उसी शतरूपा में अन्यान्य सात पुत्र हुए। इत्यादि कथा मत्स्यपुराण चतुर्थाध्याय में देखियेः—

विष्णु पु० भागवत पु० और शतरूपा।

ततो ब्रह्मात्मसंभूतं पूर्वं स्वयम्भुवं प्रभुम् ।
आत्मानमेव कृतवान् प्रजापालं मनुं द्विज ॥१४॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायंभुवोमनुर्देवः पत्न्यर्थं जगृहे विभुः॥१५॥विष्णु पु०१।७॥

ब्रह्मा जी ने आत्मसंभूत आत्मस्वरूप मनु जी को प्रजापालक किया है। और मनु ने तपोनिर्धूतकल्मषा "शतरूपा" नारी को पत्न्यर्थ ग्रहण किया। यहां विस्पष्ट है कि शतरूपा मनु की धर्मपत्नी है। पुनः—

एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चावच्चेतस्तदा ।
कस्य रूपमभूद्देवा यत्कायमभिचक्षते ॥५१॥
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनंसमजायत ।
यस्तु तत्र पुमान्सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट् ॥५२॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ।
तया मिथुनधर्म्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे ॥५३॥

इस प्रकार ब्रह्मा को कार्य करते हुए और देव को देखते हुए उन के शरीर दो भाग हो गये। इन दोनों से एक जोड़ा उत्पन्न हुआ। जो पुरुष हुआ वह मनु स्वायम्भुव और स्वराट् कहलाया और जो स्त्री हुई वही शतरूपा नाम से प्रसिद्ध होकर मनु की महिषी अर्थात् धर्म्मपत्नी हुई। तब मिथुन धर्म से प्रजाएं बढ़ने लगीं। यहां पर भी मनु की स्त्री शतरूपा कही गई है।

आश्चर्य्य यह है कि जब ब्रह्मा जी का शरीर दो हिस्सों में विभक्त होकर एक मनु और दूसरा शतरूपा बन गया तो स्वयं ब्रह्मा जी कहां रहे। अर्थात् जब तक्षा (बढ़ई) किसी एक लकड़ी को दो टुकड़े करता है तो वह पहली लकड़ी अपने स्वरूप में विद्यमान नहीं रहती। इसी प्रकार ब्रह्मा जी का शरीर जब दो टुकड़ा हो गया तो स्वयं ब्रह्मा जी विचारे तो नष्ट हो गये उन की जगह में मनु और शतरूपा रहगई। तब पुनः सृष्टि करने वाला कौन रहा? इस प्रकार देखते हैं तो पौराणिक सिद्धान्त सर्वथा वेदविरुद्ध होनेसे त्याज्य है। अब 'शतरूपा' पर मीमांसा कीजिये। मत्स्यपुराण कहता है कि मनु की माता शतरूपा है। परन्तु विष्णु और भागवत पुराण कहते हैं कि मनु की पत्नी शतरूपा है। इन दोनों में कौन सत्य? वास्तव में लोग जैसा समझ रहे हैं वैसा "शतरूपा" शब्द का भाव नहीं। पुराण पदे पदे भूल करते हैं इन पुराणों के देखने से एक बात मालूम होती है कि पुराणों के पूर्व ही 'शतरूपा' की आख्यायिका देश में चल पड़ी थी और इस का कुछ अन्य ही आशय था। पुराणों ने इस को न समझ कर भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ प्रकार से कह दियाहै। 'शतरूपा' यह नाम प्रकृति का है। "शतं रूपाणि यस्याः सा शतरूपा" जिस के सैकडों रूप हैं उसे शतरूपा कहते हैं। "शतरूप धारिणी प्रकृति कैसे है" इस को इस प्रकार जानना चाहिये। यह सम्पूर्ण विश्व जड़ प्रकृति और चेतन जीवात्माओं के योग से हुआ है। ईश्वर इस का उत्पादक है अर्थात् प्रकृति जीव और ब्रह्म ये ही तीन पदार्थ हैं। इन में जीवात्मा और परमात्मा अविकारी है। ये दोनों सदा एकरूप से ही विद्यमान रहते हैं। केवल प्रकृति ही विकारिणी है। इसी एक प्रकृति का यह सारा जगत् परिणाम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। अर्थात् एक ही कोई पदार्थ है उस का परिणाम कहीं आग है, कहीं पानी है, कहीं श्वेत है कहीं कृष्ण है। वही प्रकृति कहीं परम सुन्दर मेघ-घटा और मयूर-शरीर बनी हुई है और कहीं कुरूप उलूक और भयङ्कर व्याघ्र देह है। इस प्रकार एक ही प्रकृति विविधरूप वाली है। अतः इसी प्रकृति का नाम शतरूपा है। इसी कारण मत्स्यपुराण कहता है कि "जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया"। मालूम होता है कि मत्स्यपुराण अलङ्कार को समझता था और अलङ्कार में सर्व विषय का वर्णन किया है। अब रह गये मनु। ऐसे २ स्थलों में 'मनु' नाम जीवात्मा का है जो मनन करे उसे 'मनु' कहते हैं। अब जो मत्स्य पुराण में शतरूपा को मनु की माता बानी है एक प्रकार से घट सकता है। क्योंकि प्रकृति देवी ने ही जीवात्मा को भी प्रकट किया है। प्रकृतिजन्य लिङ्ग अथवा स्थूलशरीर के साथ ही यह जीवात्मा दृश्य होता है। इस हेतु मनु जो जीवात्मा उस की माता जननी शतरूपा है। ऐसे यह घट सकता है और कहीं जो शतरूपा को मनु की पत्नी कही है यह भी एक प्रकार से होसकता है क्योंकि पत्नी नाम सहायक अथवा पालयित्री शक्ति का है। अथवा यहां उपमार्थ लेना चाहिये। जैसे लोक में स्त्री पुरुष के योग से सन्तान होता है। वैसे ही जीवात्मा और प्रकृति के संयोग से यह सृष्टि होती है। इस कारण जीवात्मा मनु को पति और प्रकृति शतरूपा को पत्नी कही है यही इस का तात्पर्य पूर्व था। इस को न समझ कर पुराणों ने इन दोनों को सचमुच दो व्यक्तिएं मानली हैं और लोग आजकल वैसा ही मानते भी हैं। यह पुराणों की अथवा समझने वालों की सर्वथा भूल है। विद्वानो! इस प्रकार समीक्षा करने से मनु और शतरूपा कोई व्यक्तिविशेष सिद्ध नहीं होता, किन्तु अज्ञानी पुरुषों को समझाने के लिये एक अलङ्कार मात्र कहा है। जब मूल पुरुष मनु और शतरूपा ही कोई पुरुष स्त्री सिद्ध नहीं होते तो इन के वंश की सिद्धि कैसे हो सकती है। इति संक्षेपतः।

मनु और वेद॥

इसी प्रसंग से 'मनु' शब्द पर भी विचार करना आवश्यक समझता हूं। 'शतरूपा' पद वेदों में नहीं है परन्तु वेदों में 'मनु' शब्द के प्रयोग बहुत हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनु के विषय में अनेक वाद विवाद हैं। यथार्थ में क्या कोई 'मनु' नामक पुरुष हुआ है यह प्रश्न यहां उपस्थित होता है। लोग कहते हैं कि जो सब से पहला मनुष्य उत्पन्न हुआ ईश्वर ने उसका नाम 'मनु' रक्खा और इसी कारण मनुष्य को 'मनुज, मानव, मनुष्य' आदि कहते हैं। मनु के नाम पर एक परम प्रसिद्ध धर्म्म शास्त्र भी है जिस से भारतवर्षीय लोगों का ऐहलौकिक और पारलौकिक दोनों कार्य्य सिद्ध होते हैं। प्रथम वेदों से मनु सम्बन्धी अनेक उदाहरण सुनाते हैं।

'वेद और मनु'

(१) या अथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत। १। ८०। १६॥

(अथर्वा) अथर्वा (पिता+मनुः) पिता मनु और (दध्यङ्) दध्यङ् ये सब (याम्+धियम्) जिस कर्म्म वा बुद्धि को (अत्नत) लोकोपकारार्थ विस्तारित करते हैं। उसका अनुकरण सब कोई करें।

यहां "अथर्वा" "दध्यङ्" ये दोनों नाम ऋषि, आचार्य्य, विद्वान् आदि के हैं। थर्वा=हिंसा। अ=नहीं। "न विद्यते थर्वा हिंसा यस्य" अर्थात् अहिंसाव्रत-प्रचारक ऋषि का नाम "अथर्वा" है। "दधातीति दधिः परमेश्वरः दधि मञ्चति पूजयति तत्त्वतोजानाति वा स दध्यङ्" जो सचराचर जगत् का धारण करने वाला है वह 'दधि' अर्थात् धाता विधाता उसकी जो पूजा करे करावे वा तत्त्वतः उसको जाने उसे 'दध्यङ्' कहते हैं अर्थात् एक ईश्वर की उपासना का प्रचारक (१)

(१) "तमुत्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्" बहुत आदमी शङ्का करेंगे कि इस ऋचा से प्रतीत होता है कि अथर्वा ऋषि के पुत्र दध्यङ् ऋषि हैं। इस हेतु अथर्वा और दध्यङ् ये दोनों नाम किन्हीं विशेष ऋषियों के है। उसका समाधान यह है कि जब मीमांसा शास्त्र वेदों में इतिहास नहीं मानता है तब हम लोग कैसे मान सकते हैं। दूसरी बात यह है कि ये सब ऋषि वेद के प्रचारक हुए हैं। इन के प्रथम वेद विद्यमान थ फिर इन के नाम उनमें कैसे आसकते हैं। इस हेतु मैंने बारम्बार कहा है कि वेदों में यौगिकार्थ लेना चाहिये। वैदिक शब्दों के नाम पर ही पोछे लोग अपना २ नाम रखने लगे और वैदिक शब्दों के ऊपर गाथा बनाने लगे इस हेतु आज पदे २ भ्रम प्रमाद उपस्थित होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"मनु" यह नाम "आर्य्यसभापति" का है। मैं प्रथम कह चुका हूं कि आवश्यकता आने पर आर्य्यों को एक महतीसभा बैठानी पड़ी। वेदों में लक्षण देख के उस सभा का एक पुरुष अधिपति बनाया गया। और उस को 'पितामनु' की पदवी दी गई इस के अनेक लक्षण वेदों में पाए जाते हैं। इस का आगे वर्णन भी होगा। इसी भाव को ले के पुराणों में मन्वन्तर, की कथा आती है। 'मन्वन्तर' शब्दका अर्थ दूसरा मनु है। 'अन्यो मनुर्मन्वन्तरम्' अर्थात् एक मनु के बाद जो दूसरा मनु हो वह 'मन्वन्तर' कह लाता है। जो सबों मे बृद्ध, वेदतत्त्ववित्, धीर, गंभीर और सकलमानवीयगुणसमन्वित होते थे वे ही इस सभा के अधिपति बनाए जाते थे। जिस हेतु ये परम बृद्ध होते थे अतः 'इनको' पिता कह कर सब कोई पुकारते थे। और सकल प्रजा की ओर से वे चुने जाते थे इस कारण 'वैवस्वत' कहलाते थे क्योंकि 'विवस्वान्' यह नाम मनुष्य का है। 'मनुष्याः'। नरः। पञ्चजनाः। विवस्वन्तः पृतनाः। निरुक्त २। ३। मनुष्य नर पंचजन विवस्वान् आदि मनुष्य के नाम हैं। "विवस्वतामयं वैवस्वतः विवस्वद्भिर्निर्युक्तो वैवस्वतोवा"। परन्तु शोक की बात है कि इस भाव को न समझ कर 'मनु' को एक विशेष पुरुष मानने लगे और 'विवस्वान्' यह नाम सूर्य्य के भी होने के कारण 'सूर्य्य के पुत्र मनुजी हैं' ऐसी गाथा बनाली। सूर्य एक अग्निमय पदार्थ है उस का पुत्र कोई नहीं हो सकता। बडी २ अज्ञानता की बात देश में सर्वत्र फैली हुई है। जब तक लोग वेदों के ऊपर पूर्णतया विचार न करेंगे तब तक ये प्रमाद नहीं जासकते। इस में संशय नहीं कि 'मनु' के विषय में भूरि २ गाथाएं हैं। और परीक्षा से विदित होता है भिन्न २ अर्थ में इस के प्रयोग हैं। वेद में मनुष्य ईश्वर जीवात्मा मनन करने वाला अतिश्रेष्ठ आदि अर्थों में आया है।

पिता—इस शब्द के ऊपर और भी कुछ विचार करना है। यह मन्त्र निरुक्त अध्याय १२ खण्ड ३४ वें में आया है। वहां 'मनुश्च पिता मानवानाम्' 'मनु मानवों के पिता हैं' ऐसा कहा गया है। सायण अपने भाष्य में लिखते हैं "पिता सर्वासां प्रजानां पितृभूतो मनुः" सब प्रजाओं का पितृस्वरूप मनु। ऋग्वेद १०। ८२। ३। में 'यो नः पिता जनिता' जो हम सबों का पिता और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उत्पन्न करने वाला परमेश्वर है। यहां पिता शब्द ब्रह्म के लिये कहा है 'द्यौ' के लिये पिता और "पृथिवी" के लिये माता शब्द के प्रयोग वेदों में आते हैं। यथा 'द्यौष्पितः पृथिवि मातरधृग्ने भ्रातर्वसवो मृलता नः'। ६। ५१। ५। पुनः—द्यौर्मेपिता जनिता नाभिरत्र बन्धुर्मे माता पृथिवी महीयम्। इत्यादि। परन्तु यहां जन्यजनकभावसम्बन्ध नहीं है अर्थात् अलङ्कार से पृथिवी माता कही गई है। यद्यपि अथर्व वेद में एक मंत्र आता है जिस से प्रतीत होता है कि स्थावर जङ्गम सब पदार्थ पृथिवी से ही उत्पन्न हुए हैं। परन्तु वहां पर भी यह भाव समझना चाहिये कि पृथिवी से अन्न उत्पन्न होते हैं और अन्नों की ही सहायता से जीवात्मा विविध शरीर रचता है अतः कहा जाता है कि पृथिवी से ही सब पदार्थ उत्पन्न हुए 'त्वज्जातास्त्वयि चरन्तिमर्त्यास्त्वं बिभर्षि द्विपदस्त्वं चतुष्पदः। तवेमे पृथिवि पञ्च मानवा येभ्यो ज्योतिरमृतं मर्त्येभ्य उद्यन्त्सूर्यो रश्मिभिरातनोति' अथर्व। १२।१।१५॥ अर्थः—मर्त्य जीव तुम से उत्पन्न हुए और तुम्हारे ऊपर विचरण करते हैं। तुम द्विपद और चतुष्पद दोनों का पालन करती है। हे पृथिवी! आप के ही ये पांचों प्रकार के मनुष्य हैं। जिन मर्त्यजीवों के लिये उगता हुआ सूर्य्य अपने रश्मियों से अमृत ज्योति फैलाता है 'एषा पित्रे विश्वदेवाय वृष्णे यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः। बृहस्पते सुप्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयोरयीणाम्॥ ऋ०४। ५०। ६॥ पुनः—पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति। ६। ७३। १। इत्यादि अनेक मन्त्रों में बृहस्पति इन्द्र आदि भी पिता कहे गये हैं। और ब्राह्मण ग्रन्थों में 'प्रजापति को' पिता बारम्बार कहा है "य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत्पिता नः। १०। ८१। १। चक्षुषः पिता मनसो हि धीरः। १०। ८२। १। योनः पिता जनिता' इत्यादि अनेक ऋचाओं में अनेक वस्तुओं को पिता माता कहा गया है। परन्तु उन में जन्य-जनक भाव का सम्बन्ध नहीं है। आदरार्थ उन शब्दों का प्रयोग है। इसी प्रकार 'मनु' के सम्बन्ध में भी 'पिता' शब्द आदरार्थक है। इस से बढ़कर आदर स्थान कौन है कि जो सम्पूर्ण प्रजाओं का धार्मिक अधिपति बनाया जाता हो। इस के लिये जो 'पदवी' दी जाय वह सब छोटी है। यास्काचार्य का भी यही आशय प्रतीत होता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(२) यच्छञ्च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु । ऋ०१।११४।२।

(पिता+मनुः) पितामनु (यत्+शम्) रोगों का शमन अर्थात् शारीरिक रोगों के निवारणार्थ विविध औषध (च) और (योः+च) भयों का यावन अर्थात् पृथक् करण इन दोनों वस्तुओं को (आ+येजे) हम सबों को दिया करते हैं (रुद्र) हे रुद्र ! (तव+प्र+नीतिषु) आप के प्रकृष्ट न्याय वा नीतियों के होने पर (तद्) उन दोनों को (अश्याम) हम लोग प्राप्त करें । शम्=शमन=रोग शमन । योः=यु मिश्रणामिश्रणयोः । इस से यो बनता है । अश्याम+अशू व्याप्तौ ।

(३) यानि मनुरवृणीता पिता न स्ना शंच योश्च रुद्रस्य वस्मि ॥ ऋ० २।३३।१३ ॥

(नः) हम सबों के (पिता+मनुः) पिता पालक मनु (यानि) जिन औषधों को (अवृणीत) लोकोपकारार्थ इधर उधर से चुनते हैं (ता) उन औषधों को (वस्मि) मैं चाहता हूं और उन से (शम्+च) रोगों का शमन और (योः+च) भय का पृथक् करण (रुद्रस्य) रुद्र से चाहता हूं । अर्थात् ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि मनु से आविष्कृत औषध सर्वत्र फैले मुझे भी प्राप्त हो और उन औषधों के प्रयोग से निखिल रोग निर्मूल हो जाय और भविष्यत में पुनः उस रोग के होने का भय भी न रहे ।

(३) यः पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे । यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ।८।५२।१

(यः) जो परमात्मा (पूर्व्यः) सब का पूर्वज और (वेनः) परम ज्ञानी है और (महानाम्) पूज्य पवित्र मनुष्यों के (क्रतुभिः) विविध यज्ञादि कर्मों के द्वारा (आनजे) पूज्य होता है और (यस्य+द्वारा) जिस परमात्मा के द्वारा (पिता+मनुः) पिता मनु=धर्माधिपति (देवेषु) विद्वानों में (धियः) कर्मों को (आनजे) प्राप्त करते हैं । वही परमात्मा पूज्य है ।

(४) यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता १०।१००।५

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हमारा पिता मनु यजनीय अर्थात् पूजनीय और परम बुद्धिमान् है। यज्ञ= यजनीय, माननीय, पूज्य। प्रमति="प्रकृष्टामतिर्यस्य स प्रमतिः"

(५) ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधिवोचत।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥८।३०।३॥

(ते) वे विद्वद्गण (नः) हम को (त्राध्वम्) रक्षा करें (ते+अवत) वे पालन करें (ते+उ) वे ही (नः) हमको (अधि+वोचत) शिक्षा देवें। (पित्र्यात्+मानवात्) पिता मनु से आते हुए (पथः) मार्ग से (नः) हम लोगों को (अधि+दूरं+परावतः) अत्यन्त दूर देश (मा+नैष्ट) मत ले जाओ। यहां "पित्र्य मानव" पद आया है। और प्रार्थना है कि पित्र्यमानव पथ से हम को दूर मत ले जाओ। इस में क्या सन्देह है कि सर्ववेदतत्त्वविद् पुरुष से जो उभयलोकसुखकारक मार्ग चलाया गया हो। उस से हमें पृथक् नहीं होना चाहिये। 'मनु' उसी पुरुष को कहते हैं जो वेदों के मनन के द्वारा कल्याण मद मार्ग लोगों को सिखलाया करता है। और उस समय के निखिल ऋषि, मुनि, आचार्य्य, विद्वानों से सम्मति लेकर प्रजाहितकारी अर्थ को स्थिर किया करता है ऐसे महात्मा की आज्ञानुसार चलने की शिक्षा इस मन्त्र में दी गई है।

(६) होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्नासां पती रयीणाम् ॥ १।६८।४॥

जो परमात्मा (मनोः+अपत्ये) मनु अर्थात् आर्य्य सभाध्यक्ष के अपत्य अर्थात् सन्तान के मध्य (निषत्तः) निवास करके (होता) प्रेरक होता है (सः+चित्+नु) वही (आसाम्) इन प्रजाओं के (रयीणाम्) धनों का भी (पतिः) स्वामी है। इस प्रकरण में जैसे 'पिता' शब्द आदरार्थक है वैसे ही 'अपत्य' शब्द करुणा सूचक है। और जब सभाध्यक्ष के लिये पिता शब्द प्रयुक्त होता है तब उस सम्बन्ध में प्रजा के लिये अपत्यादि शब्द का प्रयोग होना उचित ही है।

(७) उप नो वाजा अध्वरमृभुक्षा देवा यात पथिभिर्देवयानैः।
यथा यज्ञं मनुषो विक्ष्वासु दधिध्वे रण्वाः सुदिनेष्वह्नाम् ॥ ४।३७।७॥

(वाजाः) हे वाज=विज्ञानी (देवाः) देव (ऋभुक्षाः) तक्षा आदि व्यवसायिजनों के संरक्षक पुरुषो! (देवयानैः पथिभिः) देवयान मार्गों से (नः+

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अध्वरम्) हमारे यज्ञों में (उप+यात) आवें (रण्वाः) रमणीय पुरुषो ! आप (यथा) जिस प्रकार (मनुषः) मनु की (आसु+विक्षु) इन प्रजाओं में (अ-ह्नाम्+सुदिनेषु) अच्छे दिनों में (यज्ञम्) (दधिध्वे) यज्ञ धारण करसकें वैसे भाइये। यज्ञ की रक्षा के लिये आप लोग यहां आवें। यहां सायण "मनुषःमनोः" मनुष्य का 'मनु' अर्थ करते हैं।

८) अग्निं होतारंमीलते यज्ञेषु मनुषोविशः ॥ ६ । १४ । ५२ ॥

(मनुषः विशः) मनु की प्रजाएं (यज्ञेषु) यज्ञों में (होतारम्+अग्निम्+ईलते) होता अग्नि की स्तुति करते हैं।

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि ।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति । ८ । २३ । १३ ॥

(यद्वा+उ) जब ही (विश्पतिः) (१) प्रजापालक (अग्निः) तेजस्वरूप (शितः) परम सूक्ष्म परमात्मा (सुप्रीतः) सुप्रसन्न हो (मनुषः+विशि) मनु की प्रजा में निवास करता है। तब ही वह (विश्वा+इत्+रक्षांसि) सब ही विघ्नों को (प्रति+सेधति) प्रतिषेध अर्थात् दूर भगाता है। यहां सायण 'मनुषो मनुष्यस्य विशि निवेशनेगृहे' 'मनुषो विशि' का 'मनुष्य का गृह' अर्थ करते हैं। इत्यादि अनेक ऋचाओं में 'मानवी प्रजा' की चर्चा आती है, अब आगे की ऋचाएं मनु की विविध कर्म को सूचित करती हैं। जो आर्य्यसभाध्यक्ष मनु हो उसे यह भी उचित है कि प्रजाओं में अग्निहोत्रादि कर्म्म के लिये प्रेरणा करे करवावे।

(१०) नि त्वा मन्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते ।१।३६।१८

(१) विश्पति 'विश्वासां गृहपति विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ६ । ४८ । ८ । विश्वासाम् मानुषीणां विशाम्) सम्पूर्ण मानुषी प्रजाओं के (त्वम्+अग्ने+गृहपतिः+असि) हे अग्ने ! आप गृहपति हैं। पुनः। 'अग्निं विश ईलते मानुषीर्या अग्निं मनुषो नहुषो विजाताः। १० । ८० । ६ । मानुषी प्रजाएं अग्नि स्वरूप परमात्मा की स्तुति करती हैं इत्यादि मन्त्रों में 'मानुषी विश शब्द आता है। और अग्नि को गृहपति भी कहा है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे अग्ने प्रकाशस्वरूप देव ! सब मनुष्य के कल्याण के लिये आप को मनु ने ज्योतिः स्वरूप जान सर्वत्र स्थापित किया है अर्थात् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना के सुविधा के लिये सर्वत्र मन्दिर स्थापित करे करवावे ।

(११) एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माता ऋणुत व्रजं गोः । यथा मनुर्विशिप्रं जिगाय यथा वणिक् वङ्कु-रापा पुरीषम् ॥ ५ । ४५ । ६ ॥

(सखायः) हे मित्रो ! (एत) आओ (धियम्+कृणुवाम) विज्ञान वा कर्म्म का साधन करें (या+माता) जो धी माता है । और जो (गोःव्रजम्) वाणी के समूह को (अप+ऋणुत) आच्छादित करता है और (यया) जिस विज्ञान से (मनुः) मनु (विशिशिप्रम्) प्रजा में उपद्रवकारी शत्रु को (जिगाय) जीतता है और (यया) जिस से (वङ्कुः) व्यापार वृद्धि की इच्छा करने वाला (वणिक्) बनिया (पुरीषम्) पूर्णता को (आप) पाता है । पुरीष का अर्थ जल भी होता है । यहां मनु का कृषि युद्ध दिखलाया गया है ।

(१२) यद्वा यज्ञं मनवे सं मिमिक्षथुः ॥८।१०।२॥

रात्रिदिन दोनों ने (मनवे) मनु के लिये (यज्ञम्) यज्ञ प्रकाशित किया है यहां मनुष्य मात्र का नाम मनु है । रात दिन मनु के कर्म्म करने के लिये हैं ।

(१३) यथा पवथा मनुवे वयोधा अमित्रहा ॥८।९६।१२॥

आप मनु (मनुष्य) के लिये प्रवाहित होते हैं । आप बल के धारण और शत्रु के हनन करने वाले हैं ।

(१४) येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः । त आदित्या अभयं शर्म्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥१०।६३।७॥

(समिद्धाग्निः) प्रदीप्त किया है अग्नि को जिसने ऐसे (मनुः) मनु (मनसा) मनसे (सप्तहोतृभिः) सात होताओं के साथ (येभ्यः) जिन के लिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(प्रथमाम्+होत्राम्) प्रथम यज्ञ को (आयेजे) अच्छे प्रकार से किया करते हैं (ते+आदित्याः) वे आदित्य के समान देदीप्यमान ब्रह्मचारी अथवा राजगण (अभयम्+शर्म्म) अभय और सुख (यच्छत) देवें और (स्वस्तये) जगत्कल्याण के लिये (सुगा) सुखपूर्वक गमनयोग्य (सुपथा) सुन्दर मार्ग (कर्त) बनावें।

(१५) यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इहश्रवोधाः॥

अर्थः—हे अग्ने! प्रकाशस्वरूप देव! (सुमित्रः) सब का सुमित्र (मनुः) मनु अर्थात् मनुष्य (ते) आपके (यद्+यद्+अनीकम्) जिस जिस अनीक=सेना समूह रश्मि को (समीधे) प्रदीप्त किया करता है। (अग्ने) हे अग्ने! (तद्+इदम्+नवीयः) वह वह नवीनतर होता जाता है। (सः) वह आप (रेवत्) धनयुक्त जिस प्रकार होवें वैसा (शोच) प्रदीप्त होवें (सः+गिरः+जुषस्व) वह आप सब प्रजा की वाणी सुनें (सः वाजम्+दर्षि) वह आप शत्रु दल को विदीर्ण करें और (सः+इह+श्रवः+धाः) वह आप विविध यश को धारण करें। यहां पर भी मनु शब्दार्थ मनुष्य ही है।

(१६) अग्ने सुक्षतमे रथे देवाँईळित आ हव। असि होता मनुर्हितः॥ १। १३। ४॥

(१७) त्वं होता मनुर्हितोऽग्ने यज्ञेषु सीदसि। सेमं नो अध्वरं यज॥ १। १४। ११॥

(१८) त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः। अग्ने यक्षि दिवो विशः॥ ६। १६। ७॥

(१९) ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे। यजिष्ठं हव्यवाहनम्॥ ८। १९। २१॥

(२०) आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः। दिवो अमुष्य शासतो दिवं यज दिवावसो॥ ८। ३४। ८॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अग्ने) हे सर्वव्यापक देव ! आप (ईळितः) परमपूज्य हैं। आप (सुखतमे+रथे) सुन्दर रथ के ऊपर (देवान्+आवह) विद्वानों को भेजिये। क्योंकि (होता+असि) आप सब सुख देने वाले हैं और (मनुर्हितः) मनुष्य से स्थापित हैं अथवा मनुष्य के हितकारी हैं। भाव यह है कि हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मेरे यज्ञोत्सव पर अच्छे २ वाहन पर चढ़ कर विद्वद्गण आवें और उन्हे आप की दया से कोई क्लेश न पहुंचे।

"मनुर्हितः"=इस ऋचा में और अग्रिम ऋचाओं में यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। सायण इस का इस प्रकार अर्थ करते हैं यथा–"मनुना मन्त्रेण मनुष्येण वा यजमानादिरूपेण हितोऽत्रस्थापितः मन्यत इति मनुः मन ज्ञाने। मनुना हित इति समासे तृतीयायाः स्थाने सुपां सुलुगित्यादिना सु इत्यादेशः। तस्य रुत्वं लुगभावस्छान्दसः" मनु अर्थात् मन्त्र अथवा यजमानादि रूप मनुष्य। ज्ञानार्थक मन धातु से 'मनु' सिद्ध होता और हित माने स्थापित। मनु से स्थापित को 'मनुर्हित' कहते हैं। यह वैदिक प्रयोग है। आप देखते हैं कि ऐसे २ स्थल में सायण आदि को भी मनु शब्द का अर्थ मनुष्य करना पड़ा है। आगे की ऋचाओं में भी 'मनुर्हित' प्रयोग आया है अर्थ इनके बहुत सरल हैं इस हेतु इनका अर्थ नहीं लिखते।

(२१) नि त्वा यज्ञस्य साधन मग्ने होतार मृत्विजम्।
मनुष्वदेव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥१।४४।११॥

(२२) मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत् समिधीमहि।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान् देवयते यज ॥ ५। २१। १ ॥

(२३) मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ७।२।३

(२४) सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ।८।२७।७।

(२५) उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुतः। अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥ ८। ४३। १३ ॥

इन कतिपय ऋचाओं में 'मनुष्वत्' शब्द का प्रयोग देखते हैं सायण

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ करते हैं "मनुष्वत् यथा मनुर्यागदेशे निदधाति तद्वदयं त्वां निदधीमहि मनुष्वत् औणादिक उसि प्रत्ययान्तो मनुस्शब्दः। तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिरिति वतिप्रत्ययः इत्यादि"। भाव इस का यह है कि मनुस्शब्द मनु वाचक है। और 'मनुस्' से 'मनुष्वत्' बन जाता है। मनु के समान को 'मनुष्वत्' कहते हैं। मनु यह नाम ज्ञानी पुरुष का है यह सिद्ध होचुका है। अर्थात् ज्ञानी विज्ञानी पुरुष के समान हम प्रजाएं भी आप की स्तुति प्रार्थना उपासना और यज्ञादिक क्रिया किया करें।

मैंने यहां ऋग्वेद से २५ ऋचाएं कहीं है जिन में 'मनु' शब्द के प्रयोग हैं। अब आप लोग स्वयं विचार सकते हैं कि क्या यह 'मनु' शब्द किसी व्यक्ति विशेष का सूचक है ?। यहां यह भी आप लोग देखते हैं कि पुराणों के समान कहीं नहीं कहा है कि यह 'मनु' अमुक के पुत्र हैं। और अमुक २ इन के मानसिक वा औरस पुत्र हैं। या मनु से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र उत्पन्न हुए हैं। या मनु को ब्रह्मा ने प्रकट किया। ऐसी एक भी बात नहीं है। हां इतनी बात देखते हैं कि 'पिता मनु' 'पित्र्य मानव' 'मनु का अपत्य' 'मनुर्हित' 'मनुष्वत्' आदि शब्द आए हैं। 'मनु' के विशेषण में पितृ शब्द का क्यों प्रयोग हुआ है इस का कारण प्रथम ही ऋचा में सूचित किया गया है। इस में किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं कि इन्ही वैदिक शब्दों को लेकर पुराणों में अनेक आख्यायिकाएं लोगों ने गढ़ी हैं और इसी 'पितृ' शब्द के प्रयोग के कारण ही मनु को आदि पुरुष भी कहा है। परन्तु वैदिक मनु शब्द यह भाव नहीं रखता है। वेद में ज्ञानीमनुष्य वाचक है॥ पुराणों में वैदिक शब्दों के अर्थ बहुत उलट पुलट गये हैं। इसी कारण सम्पूर्ण पुराणों में एक व्यवस्था नहीं देखते हैं। कभी २ ऋषियों के सामयिक प्रचलित व्यवहार को भी गाथा में गाकर सत्यार्थ को सर्वथा ढांक देते हैं। ऋषियों के समय में 'मनु' और 'मन्वन्तर' का जो भाव था इस को सर्वथा पुराणों ने छिपा दिया। इस वैदिक प्रमाण से एक बात यह सिद्ध हो सकता है कि पीछे ऋषियों ने 'मनु' के नाम पर अपने वंश का भी नाम रक्खा हो। और इस प्रकार भार्गववंश वसिष्ठवंश आदि के समान 'मानव' वंश भी भारतवर्ष में चला

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हो तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। अथवा वेदों में लक्षण देखकर अंगिरा प्रभृति ऋषि प्रथम वृद्ध पुरुष को "पिता मनु" कह कर पुकारने लगे हों अथवा जो पहला पुरुष उत्पन्न हुआ उस की संज्ञा मनु की हो तो यह भी संभव है। इत्यादि मनु शब्द की प्रसिद्धि के अनेक कारण हो सकते है। मनु नामक एक सुप्रसिद्ध ऋषि भी हुए हैं। इन की चर्चा आगे मैं करूंगा। परन्तु वेद में मनु शब्द मनुष्यादि वाचक हैं। इति

शतपथादि ब्राह्मण और मनु।

शतपथ ब्राह्मण के त्रयोदश काण्ड में 'मनुर्वैवस्वतो राजेत्याह तस्य मनुष्या विशः। तइमे आसते" मनु को वैवस्वत और राजा कहा है। और इन की प्रजाएं मनुष्य कही गई हैं। मैं पूर्व ही कह चुका हूं कि 'विवस्वान्' यह नाम मनुष्य का है। विवस्वानों से जो नियुक्त हो अर्थात् जिस को सब प्रजाएं चुन कर राजा बनावें उसे "वैवस्वत राजा" मनु कहते हैं। पुनः इसी ब्राह्मण के प्रथम काण्ड चतुर्थ ब्राह्मण में मनु के सम्बन्ध में एक आख्यायिका आई है उस में "श्रद्धा देवो वै मनुः" मनु को श्रद्धादेव अर्थात् परम विश्वासी कहा है। और यहां पर बड़ी प्रशंसा है। पुनः शतपथ ६। ६। १९ में "प्रजापतये मनवे स्वाहा। प्रजापतिर्वै मनुः" मनु को प्रजापति कहा है। पुनः ऐतरेय ब्राह्मण पंचम पंचिका १४ चतुर्दश खण्ड में "नाभानेदिष्ठं शंसति नाभानेदिष्ठं वै मानवं ब्रह्मचर्यं वसन्तं भ्रातरो निरभजन्" इत्यादि। मनु के पुत्रों की चर्चा आई है। उन में नाभानेदिष्ठ एक था। छान्दोग्योपनिषद् में "तद्धैतद् ब्रह्मा प्रजापतय उवाच। प्रजापतिर्मनवे। मनुः प्रजाभ्यः" इस ज्ञान को ब्रह्मा ने प्रजापति को कहा। प्रजापति ने मनु को। मनु ने प्रजाओं को। यहां 'मनु' आचार्यवत् प्रतीत होते हैं। अथवा आर्य्यसभापति यहां मनु हैं क्योंकि इन से प्रजाओं का घनिष्ठ सम्बन्ध रहता था। इस प्रकार मनु की चर्चा वेदों से लेकर आधुनिक ग्रन्थ पर्य्यंत है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से यहां विशेष विचार नहीं करते हैं तथापि जाति निर्णय का भी इस से बहुत सम्बन्ध है इस कारण इस पर कुछ विशेष कहना पड़ा।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनु और मत्स्य (मछली)

अब मनु के सम्बन्ध में एक आश्चर्य्यद्योतक आख्यायिका ब्राह्मणादिक ग्रन्थों में भी आती है उस पर अवश्य विचार करना है क्योंकि लोक समझते हैं कि जल प्रलय के अनन्तर भगवान् मत्स्यरूप धारणकर कर मनु को सब पदार्थों के बीज सहित और सप्तर्षि सहित रक्षा करते हैं। उसी से पुनः 'मनुष्य' होते हैं। इस कारण भी मनुष्य वा मानव वा मनुज आदि कहलाते हैं। प्रथम इस आख्यायिका को शतपथ ब्राह्मण और महाभारत से उद्धृत करते हैं पश्चात् इस पर विचार करेंगे।

मनवे ह वै प्रातः। अवनेग्य मुदक माजहुः। यथेदं पाणिभ्या मवनेजनायाऽऽहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ॥१॥ स हास्मै वाचमुवाद। बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति। कस्मान्मा पारयिष्यसीति। औघ इमाः सर्वाःप्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति। कथं ते भृतिरिति ॥ २ ॥ सहोवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बही वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवति उत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति। कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि स यदा तामति वर्धा अथ कर्षू खात्वा तस्यां मा बिभरासि। स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्र मभ्यवह-

---

वे लोग प्रातः काल मनु जी के स्नान के लिये स्नान योग्य जल ले आए वे लोग हाथों से स्नान के लिये उस को लाया करते थे। इस प्रकार उस जल से स्नान करते हुए मनु जी के हाथ में एक मत्स्य आपड़ा ॥१॥ उस ने कहा कि मेरा भरण पोषण करो मैं तुम को पार उतारूंगा। मनु जी बोले आप किस से मुझे पार उतारेंगे ?। मत्स्य ने कहा कि औघ अर्थात् समुद्र की बाढ़ इन सब प्रजाओं को बहाकर ले जाने वाली है उस से मैं आप को पार करूंगा। मनु जी ने कहा कि आप का भरण पोषण कैसा हो सकता है ॥ २ ॥ मत्स्य ने कहा कि जब तक हम क्षुद्र अर्थात् छोटे २ रहते हैं तब तक हमारे नाश करने वाले अनेक जीव होते हैं क्योंकि मत्स्य मत्स्य को ही निगल जाता है। अतः प्रथम मुझ को किसी एक घड़े में रखकर पालें। जब मैं घड़े से बड़ा हो जाऊं तब एक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रासि। तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३ ॥ शश्वद्ध ऋष आस। स हि ज्येष्ठं वर्षतेऽथेति समां तदौघ आगन्ता तन्मा नाव-मुपकल्प्योपासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासैथीं ततस्त्वा पार-यितास्मीति ॥ ४ ॥ तमेवं भृत्वासमुद्र मभ्यवजहार। स यतिथीं त-त्समां परिदिदेश तातिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रार। स औघ उत्थितं नावमापेदे तंसमत्स्यउपन्यापुप्लुवे तस्य शृङ्गे नावः पाशं प्रतिमुमोच तेनैतमुत्तरंगिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥ सहोवाच। अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदक मन्त-श्छैत्सीद् यावदुदकंसमवायात्तावदन्ववसर्पासीति स ह तावत्ता-वदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो ह ताः

खाई खोदकर उस में रख पालें। जब उस से भी बड़ा हो जाऊं तो मुझ को समुद्र में ले जांय। तब मैं निर्विघ्न निरुपद्र हो जाऊंगा ॥ ३ ॥ क्योंकि सर्वदा मत्स्य उस में सुख से रहते और बढ़ते हैं। तब उस ने बाढ़ आने की तिथि बत-लाई और कहा कि जिस वर्ष में बाढ़ आने वाली हो आप एक नौका तय्यार कर मेरी राह देखें बाढ़ उठने पर मैं नौका के निकट आऊंगा और उस से आप को पार उतारूंगा ॥ ४ ॥ उस को इस प्रकार पालन कर समुद्र में पहुंचा दिया उस मत्स्य ने जो तिथि जो सम्बत्सर कहा था उस तिथि और वर्ष में नौका तय्यार कर मनु जी उस मत्स्य की प्रतीक्षा करने लगे। औघ (बाढ़) उठने पर वह मत्स्य नौका के निकट आया। उस में सींग में नौका का पाश (रस्सी) बांध दिया। उस नौका को लेकर वह मत्स्य उत्तर पर्वत=गिरि की ओर दौड़ा। ॥५॥ वह बोला कि मैंने अब आपको पार उतार दिया। इस वृक्ष में नौका बांध दीजिये। जब तक पानी रहे तब तक इसी गिरिपर रहें यहां रहते हुए आप को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंच सकती। जब पानी घट जाय तब आप इस गिरिपर से उतरें। मनु ने वैसा ही किया औघ के जाले पर मनु जी उतरे। आजतक उत्तर गिरि के निकट मनु जी का अवसर्पण उतराव प्रसिद्ध है। इस के पश्चात समुद्र का ओघ उन सब प्रजाओं को बहाकर ले गया केवल अकेले

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सर्वाःप्रजा निरुहाव । अथेहमनुरेकः परिशिशिषे॥६॥ सोऽर्चँश्चाम्यंश्चचार प्रजाकामः तत्रापि पाकयज्ञेनेजे । स घृतं दधि मस्त्वामिक्षा मित्यप्सु जुहुवाञ्चकार ततःसम्बत्सरे योषित्सम्बभूव साऽभ्र पिण्डमानवोदेयाय तस्यै ह स्म घृतं पदे सन्तिष्ठते तया मित्रावरुणौ संजग्मांते ॥ ७ ॥ तां होचतुः कासीति । मनोदुहितेत्यावयोर्ब्रूष्वेति नेति होवाच यएव माऽजीजनत् तस्यैवाहमस्मीति तस्यामपि त्व मषिते तद्वा जज्ञौ तद्वा न जज्ञाविति त्वेवेयाय सा मनुमाजगाम॥८॥ तां ह मनुरुवाच कासीति तव दुहितेति कथंभगवति ममदुहितेति या अमूरप्स्वाहुतीरहौषीर्घृतं दधि मस्त्वामिक्षांततो मामजीजनथाः साऽऽशीरस्मि तां मां यज्ञेऽवकल्पय यज्ञे चैद्वै मावकल्पयिष्यसि बहुः प्रजयापशुभिर्भविष्यसि याऽमुया कां चाशिष माशासिष्यसे सा ते सर्वा समर्धिष्यत इति ता मेतन्मध्ये यज्ञस्यावाकल्पयन् मध्यं ह्येत-

---

मनु जी ही बचगये ॥६॥ तत् पश्चात् प्रजा की इच्छा से पूजा और परिश्रम करते हुए मनु जी विचरण करने लगे । वहां पर भी पाकयज्ञ से यज्ञ किया । घृत, दधि, मस्तु और अमिक्षा को लेकर जल में आहुति डाली । तब एक वर्ष में एक योषित् (स्त्री) उत्पन्न हुई । वह धीरा गंभीरा के समान उदित हुई । उस के चरण घृत लगा हुआ था । मित्र और वरुण उस (स्त्री) से मिले ॥ ७ ॥ उस से इन दोनों ने कहा कि आप कौन हैं ? वह स्त्री बोली कि मैं मनु की दुहिता (कन्या) हूं । उन्हों ने कहा कि ऐसा मत कहो किन्तु "आप:दोनों की मैं दुहिता हूं" ऐसा आप कहा करें । उस स्त्री ने उत्तर दिया नहीं । ऐसा मैं नहीं कहूंगी । मैं उसी की कन्या हूं जिस ने मुझे उत्पन्न किया है । उन दोनों ने उस में भाग लेना चाहा । उस ने प्रतिज्ञा की अथवा नहीं परन्तु वह मनु के निकट आई । मनु ने कहा कि तू कौन है ? उस ने उत्तर दिया कि मैं आप की बेटी हूं । मनु ने कहा कि भगवती ! तू मेरी कन्या कैसे है ? उसने कहा आपने जो ये आहुतिएं आप (जल) में डाली हैं घृत दधि मस्तु और आमिक्षा की उनसे आप ने मुझे उत्पन्न किया है । मैं वह 'आशी' (आशीर्वाद) हूं । मुझे यज्ञ में कल्पित

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यज्ञस्य यदन्तरा प्रयाजाऽनुयाजान् ॥ ९ ॥ तयाऽर्चञ्छाम्यंश्चचार प्रजाकामः । तयेमां प्रजातिं प्रजज्ञे येयंमनोः प्रजापतिर्याम्बेनया कां चाशिष माशास्ते सास्मै सर्वा समार्ध्यत ॥१०॥ सैषा निदानेन यदिडा । स यो हैवं विद्वानिडया चरत्येताऽहैव प्रजातिं प्रजायते यां मनुः प्राजायत या म्बेनया कां चाशिष माशास्ते सास्मै सर्वा समृध्यते ॥ ११ ॥ शतपथ ब्राह्मण ॥ १ । ८ । १ ॥

वैशम्पायन उवाच । ततः स पाण्डवो विप्रं मार्कण्डेयमुवाच ह । कथयस्वेति चरितं मनोर्वैवस्वतस्यच ॥ १ ॥ मार्कण्डेय उवाच । विवस्वतः सुतो राजन् महर्षिः सुप्रतापवान् । बभूव नरशार्दूल प्रजापतिसमद्युतिः ॥ २ ॥ ओजसा तेजसा लक्ष्म्या तपसा च विशेषतः । अतिचक्राम पितरं मनुः स्वञ्च पितामहम् । ३ । ऊर्ध्ववाहुर्विशा-

---

कीजिये । यदि मुझको आप यज्ञ में स्थापित करेंगे तो आप प्रजा और पशुओं से बहुत होवेंगे । जिस आशा को आप मेरे द्वारा चाहेंगे आप को सब प्राप्त होगी । उसने अपनी दुहिता को जो मध्य यज्ञ होता है उस में कल्पित किया क्योंकि वही यज्ञ का मध्य है जो प्रयाज और अनुयाज के मध्य में आता है॥९॥ वह मनु प्रजा की इच्छा से उस के साथ पूजा और श्रम करते हुए विचरण करने लगे । उस के द्वारा मनु ने इस प्रजा को उत्पन्न किया जो यह मनु की प्रजा कहाती है ! उस से जो इच्छा मनु ने की वह सब उन को प्राप्त होती गई ॥१०॥ वह निश्चय 'इडा' है सो जो कोई इस इडा के साथ विचरण करता है वह भी प्रजा को प्राप्त करता जिस को मनु ने प्राप्त किया था और उस से जो कामना करता है वह सब उसे प्राप्त होता है ॥ ११ ॥

अर्थः—वैशम्पायन कहते हैं कि तब पाण्डव मार्कण्डेय ब्राह्मण से बोले कि आप वैवस्वत मनु का चरित कहें ॥ १ ॥ मार्कण्डेय-जी कहने लगे हे राजन् युधिष्ठिर ! विवस्वान् के पुत्र मनु बड़े प्रतापी, महर्षि, और प्रजापति के समान हुए ॥ २ ॥ ओज, तेज, शोभा और तपस्या में मनु जी अपने पिता और पितामह से भी बढ़ गये ॥ ३ ॥ वह ऊर्ध्ववाहु और एकपदस्थित हो विशाला बदरी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लायां वदर्य्यां स नराधिपः । एकपदस्थित स्तीव्रं चचार सुमहत्तपः ॥ ४ ॥ अवाक्शिरास्तथा चापि नेत्रैरनिमिषैर्दृढम् । सोऽतप्यत तपोघोरं वर्षाणामयुतं तदा ॥ ५ ॥ तं कदाचि त्तपस्यन्त मार्द्रचीरं जटाधरम् । चीरिणीतीर मागम्य मत्स्यो वचन मब्रवीत् ॥६॥ भगवन् क्षुद्रमत्स्योऽस्मि बलवद्भ्योभयं मम । मत्स्येभ्यो हि ततो मां त्वं त्रातुमर्हसि सुव्रत ॥ ७ ॥ दुर्बलं बलवन्तो हि मत्स्या मत्स्यं विशेषतः । आस्वादयन्ति सदा वृत्ति र्विहिता नः सनातनी ॥ ८ ॥ तस्माद् भयौघान् महतो मज्जन्तं मां विशेषतः । त्रातुमर्हसि कर्तास्मि कृते प्रतिकृतं तव ॥ ९ ॥ स मत्स्यवचनं श्रुत्वा कृपयाभिपरिप्लुतः । मनुर्वैवस्वतोऽगृह्णात्तं मत्स्यं पाणिना स्वयम् ॥ १० ॥ उदकान्तमुपानीय मत्स्यं वैवस्वतो मनुः । अलिञ्जरे प्राक्षिपत् तं चन्द्रांशुसदृश प्रभे ॥ ११ ॥ स तत्र ववृधे राजन् मत्स्यः परमसत्कृतः । पुत्रवत् स्वीकरोत्तस्मै मनुर्भावंविशेषतः ॥ १२ ॥ अथ कालेन महता स मत्स्यः सुमहानभूत् । अलिञ्जरे तथाचैव नासौ समभवत् किल ॥ १३ ॥ अथ मत्स्यो मनुं दृष्ट्वा पुनरेवाभ्यभाषत । भगवन् ! साधु मेऽद्या-

---

में तीव्र तपश्चरण करने लगे ॥ ४ ॥ अवाक्शिर और निष्कम्पनयन हो सुदुश्चर घोर तप अनेक वर्षों तक करते रहे ॥ ५ ॥ कदाचित् तपश्चरण करते हुए आर्द्रवस्त्रधारी मनु के निकट आ एक मत्स्य बोला ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! मैं एक क्षुद्र मत्स्य हूं बलवानों से मुझे बड़ा भय है । मत्स्यों से मुझे आप रक्षा करें ॥ ७ ॥ क्योंकि बलिष्ट मत्स्य निर्बल मत्स्य को खाजाते हैं । यही सनातन वृत्ति हमारी है ॥ ८ ॥ इस हेतु इस महाभयरूप ओघ (बाढ़) से डूबते हुए मुझ को रक्षा करें मैं प्रत्युपकार करूंगा ॥ ९ ॥ मत्स्य के वचन को सुन कृपा से आर्द्र हो वैवस्वत मनु ने उसे हाथ से पकड़ लिया ॥ १० ॥ जल के समीप लाकर एक चन्द्रवत् उज्ज्वल घड़ में उसे रख दिया ॥ ११ ॥ वह उस में परम सत्कृत हो बढ़ने लगा ॥ १२ ॥ बहुत काल बीतने पर वह इतना बढ़ गया कि इस घड़े में नहीं समासका ॥ १३ ॥ तब वह मत्स्य मनु को देख के बोला कि भगवन् ! मेरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न्यत् स्थानं सम्प्रतिपादय ॥ १४ ॥ उद्धृत्यालिञ्जरात्तस्मात्ततः स भगवान् मनुः । तं मत्स्यमनयद् वापीं महतीं स मनुस्तदा ॥ १५ ॥ ततस्तं प्राक्षिपच्चापि मनुःपरपुरञ्जय । अथावर्धत मत्स्यः स पुनर्वर्षगणान् बहून् ॥ १६ ॥ द्वियोजनायता वापी विस्तृता चापि योजनम् । तस्यां नासौ समभवन्मत्स्यो राजीवलोचन ॥ १७ ॥ विचेष्टितुं च कौन्तेय मत्स्यो वाप्यां विशाम्पते । मनुं मत्स्यस्ततो दृष्ट्वा पुनरेवाभ्यभाषत ॥ १८ ॥ नय मां भगवन् साधो समुद्रमाहिर्षी प्रियाम् । गङ्गां तत्र निवत्स्यामि यथा वा तात मन्यसे ॥ १९ ॥ निदेशे हि मया तुभ्यं स्थातव्य मनसूयता । वृद्धिर्हि परमाप्राप्ता त्वत्कृते हि मयानघ ॥ २० ॥ एव मुक्तो मनुर्मत्स्य मनयन्भगवान्वशी । नदीं गङ्गां तत्र चैनं स्वयं प्राक्षिपदच्युतः ॥ २१ ॥ स तत्र ववृधे मत्स्यः कञ्चित्काल मरिन्दम । ततः पुनर्मनुं दृष्ट्वा मत्स्यो वचन मब्रवीत् ॥ २२ ॥ गङ्गायां हि न शक्नोमि वृहत्त्वा चेष्टितुं प्रभो । समुद्रं नय मामाशु प्रसीद भगवन्निति ॥ २३ ॥ उद्धृत्य गङ्गासलिलात् ततो मत्स्यं मनुः स्वयम् । समुद्र मनयत्पार्थ तत्र चैन मवासृजत् ॥ २४ ॥ सुमहानपि मत्स्यस्तु स मनोर्नयत स्तदा । आसीद्यथेष्टहार्य्यश्च स्पर्शगन्धसुखश्च वै ॥ २५ ॥ यदा समुद्रे प्रक्षिप्तः स मत्स्यो मनुना तदा ।

लिये दूसरा स्थान बनावें ॥ १४ ॥ तब भगवान् मनु जी ने उस को घड़े से लेकर एक बड़ी वापी (बाउली=कूप) में रख दिया ॥ १५ ॥ वह उस में भी न समा सका यद्यपि वह वापी दो योजन की लम्बी थी ॥ १६ ॥ १७ ॥ तब मत्स्य ने मनु से कहा कि मुझ को गङ्गा में ले चलें मैं आप के लिये बहुत बढ़ता जाता हूं मैं आप के वचन में सदा स्थिर रहूंगा ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ तब मनु जी उसे गङ्गा में ले आए । वहां भी वह बहुत बढ़ने लगा । गङ्गा में भी नहीं समासका तब मनु से समुद्र में ले जाने को कहा ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब गंगा के जल से लेकर मनु जी उस मछली को समुद्र में ले गये जब मनु ने उस मत्स्य को समुद्र में रक्खा, तब हँसता हुआ वह मत्स्य बोला कि हे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत एन मिदं वाक्यं समयमान इवाब्रवीत् ॥२६॥ भगवन् कृता रक्षा त्वया सर्वा विशेषतः। प्राप्तकालं यत्कार्य्यं त्वया तच्छ्रूयतां मम॥२७॥ अचिराद् भगवन् सौम्य मिदं स्थावरजंगमम्। सर्वं मेव महाभाग प्रलयं वै गमिष्यति ॥ २८ ॥ संप्रक्षालनकालोऽयं लोकानां समुपस्थितः। तस्मात्त्वां बोधयाम्यद्य यत्ते हित मनुत्तमम् ॥ २९ ॥ त्रसानां स्थावराणां च यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति। तस्य सर्वस्य संप्राप्तः कालः परमदारुणः ॥ ३० ॥ नौश्च कारयितव्या ते दृढा युक्तवराटका। तत्र सप्तर्षिभिःसार्धं मारुहेथा महार्णवे ॥ ३१ ॥ बीजानि चैव सर्वाणि यथोक्तानि द्विजैः पुरा। तस्या मारोपयेर्नावि सुसंगुप्तानि भागशः ॥ ३२॥ नौस्थश्च मां प्रतीक्षेथास्ततो मुनिजनप्रिय। आगमिष्याम्यहं शृंगी विज्ञेयस्तेन तापस ॥ ३३ ॥ एव मेतत्त्वया कार्य्यं मापृष्टोऽसि व्रजाम्यहम्। ता न शक्या महत्योवै आपस्तर्तुं मयाविना ॥ ३४ ॥ नाभिशंक्य मिदं चापि वचनं मे त्वया विभो। एवं करिष्य इति तं स मत्स्यं प्रत्यभाषत ॥ ३५ ॥ जग्मतुश्च यथाकाम मनुज्ञाप्य परस्परम्। ततो मनुर्महीराज यथोक्तं मत्स्यकेनच ॥ ३६ ॥ बीजान्यादाय सर्वाणि सागरं पुप्लवे तदा। नौकया शुभया वीर महोर्मिणं मरिन्दम् ॥ ३७ ॥ चिन्तयामास च मनुस्तं मत्स्यं पृथिवीपते। स च

भगवन् ! आपने हमारी रक्षा विशेषरूप से की है अब आप को जो कर्त्तव्य है सो सुनिये ॥२४।२५।२६।२७॥ हे भगवन् ! शीघ्र ही प्रलयकाल होने वाला है। इस लिये मैं आप को हित बात कहता हूं। स्थावर जङ्गम सबका अब काल प्राप्त हुआ, एक दृढ़ नौका आप बनाकर रखना और सप्त महर्षियों के साथ उस पर चढ़ लेना और जितने बीज हैं उन सबों को नौकापर रखलेना इस प्रकार नौका पर चढ़कर मेरी प्रतीक्षा करना मैं शृंगधारी होकर आपके निकट पहुंचूंगा। यह कार्य अवश्य आप करना मेरे विना इस महान् जलको आप तैर न सकेंगे इस में आप शंका मत कीजिये। मनुजी ने भी मत्स्य का वचन स्वीकार किया ॥२८-३५॥ और इस प्रकार दोनों अपने २ स्थान चले गये तब काल प्राप्त होने पर मत्स्य

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तं चिन्तितं ज्ञात्वा मत्स्यः परपुरञ्जय ॥ ३८ ॥ शृंगी तत्राऽऽजगामाऽऽशु तदाभरतसत्तम । तं दृष्ट्वा मनुजव्याघ्र मनुर्मत्स्यं जलार्णवे ॥ ३९ ॥ शृङ्गिणं तं तथोक्तेन रूपेणाद्रि शिवोच्छ्रितम् । वटारक्तमयं पाशं मथ मत्स्यस्य मूर्धनि ॥ ४० ॥ मनुर्मनुजशार्दूल तस्मिन् शृङ्गे न्यवेशयत् । संयतस्तेन पाशेन मत्स्यः परपुरञ्जय ॥ ४१ ॥ वेगेन महता नावं प्राकर्षच्छ्वर्षाभसि । स च तां स्तारयन्नावा समुद्रं मनुजेश्वर ॥४२॥ चकर्षातन्द्रितो राजन् तस्मिन् सलिलसञ्चये । ततो हिमवतः शृङ्गं यत्परं भरतर्षभ ॥ ४३॥ तस्मिन् हिमवतः शृङ्गे नावं बध्नीत मा चिरम् । सा बद्ध्वा तत्र तैस्तूर्णं ऋषिभिर्भरतर्षभ॥५०॥ अथा ब्रवीदनिमिषस्तानृषीन् सहितां स्तदा । अहं प्रजापतिर्ब्रह्मा मत्परं नाधिगम्यते । मत्स्यरूपेण यूयञ्च मयास्मान्मोक्षिता भयात् ॥ ५३ ॥ मनुना प्रजाः सर्वाः स देवासुरमानुषाः । स्रष्टव्याः सर्व लोकाश्च यच्चेङ्गं यच्चनेङ्गति । तपसाचापि तीव्रेण प्रतिभाऽस्य भविष्यति । मत्प्रसादात्प्रजासर्गे नच मोहं गमिष्यति ॥५५॥ इत्युक्त्वा वचनं मत्स्यः क्षणेनाऽदर्शनं गतः । स्रष्टुकामःप्रजाश्चापि मनुर्वैवस्वतः

वचन के अनुसार सब पदार्थों के बीजों को नौका पर स्थापित कर समुद्र में आये और मत्स्य के लिये चिंता करने लगे वह शृंगी मत्स्य भी वहां शीघ्र पहुंचा मनु उसे देख उस की सींग में रस्सी बांध दी। वह मत्स्य भी बड़े वेग से उस लवण समुद्र में चला, यहां न तो भूमि न दिशाएं मालूम होती थीं यहां चारों तरफ जल ही जल प्रतीत होता था। केवल सात ऋषि मनु और मत्स्य थे। बहुत वर्षों तक वह मत्स्य नौका को समुद्र में खींचता फिरा तब हिमालय के शृंग पर खींच कर लेगया और हंसता हुआ उन ऋषियों से बोला कि इस हिमालय के शृंगपर नौका बांध दीजिये। ऋषियों ने नौका बांध दी, फिर मत्स्य ऋषियों से कहने लगा कि मैं प्रजापति ब्रह्मा हूं मेरे से परे कोई नहीं। मैंने मत्स्य रूप होकर आप लोगों को इस भय से बचाया। यह मनु सारी सृष्टि की रचना करें। देव असुर, मनुष्य, स्थावर जङ्गम सब का सृजन करें। तीव्र तपस्या से और मेरी कृपा से मनु को प्रतिभा प्राप्त होगी और मोह कभी नहीं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वयम् ॥ ५६ ॥ प्रमूढोऽभूत प्रजासर्गे तपस्तेपे महत्ततः । तपसा महता युक्तः सोऽथ स्रष्टुं प्रचक्रमे ॥५७॥ सर्वाः प्रजा मनुः साक्षात् यथावद्भरतर्षभ । इत्येतन्मत्स्यकं नाम पुराणं परिकीर्तितम् आख्यानमिदमाख्यातं सर्वपाप हरं मया ॥ इति ॥ वनपर्व अध्याय ॥ १८७ ॥

होगा, इतना कह कर मत्स्य वहां से चलागया, मनु जी भी प्रजा की इच्छा से तपस्या करने लगे और पश्चात् तपोयुक्त होकर सारी सृष्टि की । यही मत्स्य पुराण है यह आख्यान सर्वपापहारी है मनु के चरित्र को जो आदि से सुनेगा वह सुखी होगा । ३६-५८ ।

मनु के सम्बन्ध में जितने आख्यान अभी तक प्राप्त हैं वे सब इस मत्स्याऽऽख्यान से बढ कर रोचक नहीं । यह कथा केवल भारतवर्षीय धर्म्म पुस्तकों में ही नहीं किन्तु जगत के सुप्रसिद्ध क्रिश्चियन आदिकों के धर्म ग्रंथों में भी विद्यमान है । केवल नाम मात्र का भेद है । परन्तु इस का आशय क्या है ? क्या सचमुच एक मत्स्य मनु के निकट आ अपनी अलौकिक लीला दिखलाने लगा । क्या यह यथार्थ है कि जलप्रलय आने पर एकाकी मनुजी ही शेष रहगये । क्या किसी की इतनी बडी आयु होसकती है कि एक प्रलयतक वह जीता रहे । इस आख्यान के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न उत्थित होते हैं । प्रथम यह विचार कीजिये कि भगवान् एकाकी मनु के बचाने से कौनसा प्रयोजन समझता था । यदि मनु एक पुरुष जलप्रलय के अनन्तर नहीं बचता तो क्या आगे मनुष्य सृष्टि ही बन्द हो जाती ? ऐसा नहीं होसकता क्योंकि आदि सृष्टि में भगवान् ने कैसे चराचर जगत रचा । प्रलयोत्तर भी तद्वत् ही सृष्टि कर सकता है । फिर एक मनु के बचाने से कौन प्रयोजन था । पुनः मत्स्य रूप से ही क्यों अपनी लीला दिखलाना आरम्भ किया । यदि लीला दिखानी ही थी तो घड़े खाई और समुद्र में उतने २ समय निवास करके ही क्यों लीला दिखलाई पुनः शतपथ ब्राह्मण कहता है कि 'आप' में आहुति देने से एक कन्या इडा उत्पन्न हुई परन्तु प्रथम इस को मनु नहीं जानते थे । इस कन्या से मित्र, वरुण मिले और वे उस कन्या को अपनी कन्या बनाना चाहते थे । पीछे वह मनु से

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जा बोली की मैं आप की कन्या हूं आप मुझको यज्ञ में स्थापित कीजिये इसी से आप का सब मनोरथ सिद्ध होगा। और वैसा ही हुआ। इडा के द्वारा मनु जी प्रजावान् हुए। वह कन्या कौन थी इस की सहायता से मनुजी ने कैसे मनुष्य सृष्टि की। महाभारत में कन्या की चर्चा नहीं है। परन्तु सप्तर्षि और सकल पदार्थों के बीजों को अपने साथ मनुजी ने लेलिया था यह अधिक वर्णन है। इस प्रकार आगे मत्स्यादि पुराणों में मत्स्य और मनुजी के सहस्रशः सम्वादों का भी वर्णन आता है। जब इस आख्यायिका के ऊपर इस प्रकार समालोचना की जाती है तो बालक की सी बात प्रतीत होती है। जब वेदों में इस का कोई चिन्ह नहीं तो ब्राह्मण ग्रन्थ इस अवैदिक अर्थ को कैसे प्रकट करेगा। 'इडा' यह शब्द वेदों में बहुत आया है परन्तु कहीं नहीं कहा गया है कि मनु की यह कन्या है। ग्रन्थ के विस्तार के भय से इडा शब्द पर विचार नहीं कर सकते। शतपथ ब्राह्मण के इसी प्रकरण में इडा शब्द पर कुछ मीमांसा है। देखिये। परन्तु इस आख्यान को सुप्रसिद्ध शतपथ ब्राह्मण वर्णन कर रहे हैं इस कारण अवश्य कुछ इसका गूढ आशय होगा। इस का अन्वेषण करना चाहिये। आप लोगों को स्मरण होगा कि ब्राह्मण ग्रन्थ प्रायः प्रत्येक विषय को सरल अलङ्कार में निरूपण करते हैं। यह इन का स्वभाव है। यह भी एक साधारण और सरल अलङ्कार मात्र है। आप को यह भी विदित ही है कि ब्राह्मण ग्रंथ कर्म्म काण्ड को अधिक वर्णन करते हैं। कर्म्म के प्रधान देवता सूर्य्य, अग्नि और वायु ये ही तीन माने हैं। इन तीनों में भी सूर्य्य की परम प्रधानता है। सारे ही कर्म्मकाण्ड सूर्य्य के ही प्रतिपादक हैं और इस के द्वारा परमात्मा की उपासना कथित है। इस में सन्देह नहीं कि अन्तिम उद्देश उपनिषद् ही है। इस देश का जो 'भारतवर्ष' नाम है यह यथार्थ में सूर्य्य सूचक ही है क्योंकि 'भरत' नाम सूर्य्य का ही है। यहां के सन्तान मात्र 'वैवस्वत' अर्थात् सूर्य्य पुत्र कहलाते है। विशेष वर्णन की यहां आवश्यकता नहीं आप यह समझें कि इस सौर जगत में सूर्य्य ही प्रधान देवता है। इसी के उदय और अस्त को यह मनु-मत्स्याऽऽख्यायिका दरसाती है। सूर्य का क्रमशः उदित होकर बढ़ना ही मत्स्य का विस्तार होना है। रात्रि का आना ही प्रलय काल है। अब प्रथम

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आख्यायिका की बातों पर ध्यान दीजिये। कहा गया है कि मनु के स्नान के समय हाथ में एक मत्स्य आपड़ा। वह क्रमशः बढ़ने लगा। अन्त में समुद्र तक पहुंचने पर उसे शान्ति मिली। इस ने मनु की रक्षा की। मनु को एक कन्या इड़ा उत्पन्न हुई। इस के पैर में घृत लगा हुआ था। मित्र और वरुण ने इस को अपनी कन्या बनाना चाहा। इसी कन्या से मनु प्रजावान् हुए इत्यादि। अब इस के भाव पर ध्यान दीजिये। प्रातःकाल स्नान का समय है। 'पूर्वां-सन्ध्यां जपंस्तिष्ठत् सावित्रीमार्कदर्शनात्' इस प्रमाण से सूर्य्योदय होते २ स-न्ध्योपासन ज्ञानी जन करलेते हैं। इस समय सूर्य का आगमन ही मानों ज्ञानी जन के हाथ में मत्स्य का आना है। क्योंकि इसी समय से यज्ञ का आरम्भ होता है। जब तक सूर्य का उदय नहो तब तक यज्ञ का आरम्भ करना निषे-ध है। अब सूर्य का आगमन प्रत्येक ज्ञानी के गृह में होने लगा। वे अग्नि को प्रज्वलित कर हवन करना आरम्भ करते हैं अग्नि का प्रज्वलित करना ही, मानों, सूर्यरूप मत्स्य का बढ़ना है और उधर आकाश में भी सूर्य बढ़ते हुए दीखते हैं। अग्नि भी सूर्य्य रूप ही माना गया है यह स्मरण रखना चाहिये। प्रथम किसी पात्र में धर के तब कुण्ड में अग्नि को स्थापित करते हैं। अग्नि का पात्र में रखना ही मत्स्य का घड़े में रखना है और उस से कुण्ड में स्थापित करना ही मत्स्य का 'कर्षू' अर्थात् खाई में आना है। अब कुण्ड में अग्नि बढ़ने लगा। उस में नहीं समासका आकाश में चारों तरफ फैल गया। और उधर सूर्य भी सर्वत्र आकाश में अपने किरणों से विस्तृतत हो गया। यही अग्नि का चारों तरफ फैलना ही मत्स्य का समुद्र में जाना है। इस प्रकार प्रातः सवन, माध्यन्दिन सवन, और सायं सवन, तीनों सवन करके आह्निक कर्म्म की समाप्ति होती है जो ज्ञानी जन इस प्रकार कर्म्म करता है उसे कर्म्म रूप मत्स्य अवश्य रक्षा करता है। कर्म्मकाण्ड का यह एक संकेत है कि कर्म्मफल स्वरूप भी सूर्य्य ही माना गया है। अब सायंकाल प्राप्त होता है। अज्ञानी जन विविध व्यसनों में फसने लगते हैं। कोई विलास में पड़ के कर्तव्याकर्तव्य सर्वथा भूल जाते हैं। कोई ईश्वरीय चिंतन सर्वथा त्याग महानिद्रा लेने लगते हैं। कोई चौर्य-वृत्ति में ही प्रवृत्त हो जाते हैं। कोई अपने शत्रुओं के ऊपर आक्रमण करने का मौका ढूढ़ने लगते हैं। इस प्रकार प्रदोषा रजनी आ के सब के सब को

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विनष्ट करना आरम्भ करती है। यही महाप्रलय है। इस में कौन बचते हैं? जो मनुष्य वैदिक कर्म्म में तत्पर हैं वे ही इस प्रलय से बच जाते हैं। वे कर्म्म रूप महानौका के ऊपर चढ़कर उत्तर हिमालय अर्थात् उच्चतर भाव की ओर उसी कर्म्म की सहायता से चलते हैं और जब रात्रिरूप-प्रलय घटने लगता है। तब वे पुनः उतरते हैं अर्थात् पुनः कर्म्म करना आरम्भ करते हैं। वे ज्ञानी प्रलय काल में क्या करते हैं? कहा गया है कि 'आप' में आहुति देते हैं यहां 'आप' शब्द वि+आपक=व्यापक परमेश्वर का वाचक है अर्थात् दुर्व्यसनों में न फंसकर ईश्वर की ओर मन लगाते हैं और प्राणायामादि व्यापरों से अपने मन को रोकते हैं। इस से एक 'दुहिता' उत्पन्न होती है अर्थात् सत्याऽसत्य के विलगानेवाली सुबुद्धि उत्पन्न होती है जो ज्ञानीजन को दुष्कर्म्मों से रक्षा करती है। यह बुद्धि यद्यपि मनन और विचार से उत्पन्न होती है तथापि प्राणायाम इस की उत्पत्ति में सहायक होता है। इसी प्राणायाम का नाम अर्थात् श्वास प्रश्वास का नाम मित्र और वरुण है। इसी कारण इन की भी पुत्री वह सुबुद्धि है। "इस दुहिता के पैर में घृत लगा रहता है"। घृत शब्द यहां कर्म्मसूचक है क्योंकि घृत से ही आहुति होती है। इसी सुबुद्धिरूप दुहिता से यथार्थ में ज्ञानी जन प्रजावान् होते हैं और अन्यान्य अज्ञानी जनों को कर्म्मरूप नौका की सहायता न रहने से रात्रिरूप जलप्रलय में वे डूबमरते हैं। इत्यादि भाव इस का जानना। यहां रात्रि का प्रलय दिखलाना था इस हेतु समुद्र आदि का वर्णन किया गया है। 'मनु' नाम मननशील ज्ञानी पुरुष का है और जैसे जलमय समुद्र में मत्स्य तैरता है इसी प्रकार आकाश रूप समुद्र में सूर्य विचरण करता है। इसी कारण 'मत्स्य' शब्द का यहां प्रयोग दिया है। जिस हेतु सूर्य कर्षे का आरम्भक है इस हेतु मानो वह रक्षक भी है। इसी कारण मत्स्य को रक्षक भी कहा है। इत्यादि यथायोग्य भाव समझना। ब्राह्मण का भाव बहुत विस्पष्ट है। परन्तु इस को ऐसा न समझकर पुराणों में इस को यथार्थ-तथा भगवान् का अवतार माना है। यह भूल है। और पीछे यह आख्यायिका इतनी बढ़गई कि एक मत्स्यपुराण ही बनगया। इस प्रकार समीक्षा करने से 'मनु' कोई व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं होता। फिर इस से मनुष्य सृष्टि हुई यह कैसे सिद्ध हो सकता है। अब मैं एक निरुक्त से मनु के सम्बन्ध में उदाहरण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दूंगा जिस से विस्पष्ट हो जायगा कि 'वैवस्वत मनु' का क्या आशय है। इस के पहले इस आख्यायिका को कोई अन्य प्रकार से भी कहते हैं उस को भी दिखला देते हैं वैदिक भाषा में 'आप्' (जल) यह शब्द कर्म्म सूचक होता है इसी कारण प्रत्येक कर्म के आरम्भ में आचमन की विधि आती है। 'मनु' शब्द मनुष्य वाचक है इस में सन्देह नहीं। 'मत्स्य' यह शब्द यहां साधारण विवेक वाचक है 'मदंस्यति अन्तं करोति विनाशयति यः स मत्स्यः। पोऽन्त कर्म्मणि' जो मद को विनष्ट करे उसे 'मत्स्य' कहते हैं। 'इडा' शब्द प्रशंसनीय बुद्धि वाचक है। (इडस्तुतौ) अब आख्यायिका का आशय यह हुआ। आख्यायिका में कहा गया है कि 'स्नान करते हुए मनु के हाथ में एक मत्स्य आपडा अर्थात् प्रथम जब मनुष्य विविध कर्म्मों को करना आरम्भ करता है तब इस का अन्तःकरण पवित्र होने लगता है। कुछ काल के पश्चात् मद अर्थात् अहङ्कार नाशक एक प्रकार का विवेक उत्पन्न होने लगता है विवेक का उत्पन्न होना ही मानों मत्स्य का हाथ में आना है। वह विवेक दिन २ बढ़ता जाता है। यहां तक बढ़ता है कि कुम्भी अर्थात् घड़े आदि में समा नहीं सकता हैं। भाव यह है कि वह विवेक केवल स्वार्थ साधक ही नहीं किन्तु अपने निज हित करने से बढकर परार्थ साधन में तत्पर होने लगता है क्रमशः समुद्र=आकाश व्यापी अर्थात् सर्वत्र व्यापक होजाता है। आख्यायिका में कहा गया है कि वह मत्स्य जब इस प्रकार बहुत बढ़ गया तो मनु से कहा कि मुझे समुद्र में लेचलो मैं आपकी भी रक्षा करूंगा इत्यादि। भाव यह है कि जब विवेक सर्वत्र फैल के और स्वार्थ त्याग केवल परार्थ में लगता है तब वह विवेक उस पुरुष की सब प्रकार से रक्षा करता है। और इस समय कर्म्म का प्रलय होना आरम्भ होता है। यही जल प्रलय है अर्थात् कर्म्मरूप जल के ऊपर तैरता हुआ विवेक रूप मत्स्य की सहायता से जब उत्तर=उच्चतर हिमप्रदेश अर्थात् परम शीतल शान्तिधाम को प्राप्त होता है तब ये सारे कर्म्मरूपजल नीचे रहजाते हैं। जब वह पुरुष उच्चतर ज्ञान शिखर पर पहुंच जाता है। तब वह ज्ञानी पुरुष 'आप' में आहुति डालना आरम्भ करता है। अर्थात् ईश्वर में ही विभूति देखना आरम्भ करता है। आख्यायिका में जल से स्नान करना और जल में आहुति डालना ये दोनों बातें आई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं। जब प्रत्येक कर्म्म में ईश्वरीय विभूति देखना आरम्भ करता है तब 'इडा' अर्थात् मुक्ति अवस्था प्राप्त होती है। इस इडा से सारा मनोरथ सिद्ध होता है और यथार्थ में यही पुरुष सन्ततियान् है क्योंकि कहा गया है कि पुत्र होने से पुरुष दुःख से पार उतरता है। यथार्थ में इडा मुक्तिरूपा कन्या से ही आदमी पार उतरता है। इत्यादि। कोई मन बुद्धि अहंकार पर भी इस की योजना करते हैं। इस प्रकार अनेक रीति से इस की व्याख्या करते है परन्तु यह यथार्थ में कर्म्मपरक है क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थ कर्म्म से अधिक सम्बन्ध रखते हैं। जो हो इससे मनु व्यक्तिविशेष सिद्ध नहीं होता। इति संक्षेपतः॥

दैवत काण्ड, षष्ठाध्याय, दशम खण्ड निरुक्त में लिखा है कि "तंत्रेतिहासमाचक्षते। त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वत आदित्यादृयमौ मिथुनौ जनयाञ्चकार। सा सवर्णा मन्यां प्रतिनिधाय आश्वं। रूपं कृत्वा प्रदुद्राव। स विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं कृत्वा तामनुसृत्य सम्बभूव ततोऽश्विनौ जज्ञाते सवर्णायां मनुः" यहां कोई आचार्य्य इतिहास कहते हैं। त्वष्टृपुत्री सरण्यू ने विवस्वान् सूर्य्य से एक युग्म=यम और यमी जनी वह दूसरी सवर्णा। स्त्रीको अपने स्थानमें प्रतिनिधि रख 'अश्वरूप' धारणकर भागगई। वह विवस्वान् आदित्य भी 'अश्वरूप' धर उसके पीछे हो लिये। तब उस से दोनों 'अश्वी' उत्पन्न हुए और सवर्णा स्त्री में मनुजी उत्पन्न हुआ।

यहां सवर्णा से मनु की उत्पत्ति कही गई है। परन्तु क्या यथार्थ में सूर्य्य को मनुष्यवत् स्त्रियें हैं। सरण्यू क्यों भाग जाती है? अपने स्थान में दूसरी स्त्री को क्यों रख जाती है? अश्वरूप क्यों धारण करती है? वे यम मिथुन कौन हैं? 'अश्वी' किनको कहते हैं? इत्यादि कारणों की जिज्ञासा करने पर यही सिद्ध होगा कि यह भी अलङ्कारमात्र है। उषाकाल का नाम सरण्यू है "सरण्यूः सरणात्" सूर्य्य के उदय होने पर उषा भाग जाती है इस कारण उसे सरण्यू कहते हैं। सरण=गमन। परन्तु जिस समय सरण्यू अर्थात् उषा रहती है उस समय कुछ प्रकाश और अन्धकार दोनों रहते हैं इसी को 'मिथुन यम' कहते हैं। जब उषा चली जाती है तब दिन की प्रभा सर्वत्र छा जाती है। इसी का नाम 'सवर्णा' है "समानो वर्णो यस्या सा" जिसका समान वर्ण हो उसे 'सवर्णा' कहते हैं अर्थात् जैसा सूर्य्य उज्ज्वल श्वेत है वैसी ही दिन की प्रभा होती है अर्थात् दिन की शोभा भी श्वेत ही होती है। अब दिन होने से मनुष्यजाति अपने अपने शुभाशुभ कर्म्म

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में तत्पर होजाती है यही सवर्णा से मनु अर्थात् मनुष्यजाति का उत्पन्न होना है। मनुष्य का शयन करना ही मानों उसका मरना है और सूर्य्योदय होने पर जागना ही इस का जन्म लेना है ऐसा कई स्थलों में कहा है। यही यहां पर भी दिखलाया है। आगे कहा है कि अश्वरूपधारिणी सरण्यू के पीछे २ सूर्य्य भी अश्वरूप धर के चला और उससे "अश्वी" उत्पन्न हुए। उषा का भागना ही अश्वरूप धारण करना है। उषाके पीछे २ सूर्य्य भी दौड़ता जाता है। जहां जहां उषा और सूर्य्य पहुंचते हैं वहां २ पृथिवी और द्युलोक का प्रकाश होने लगता है। पृथिवी और द्युलोक का सूर्य्योदय होने पर प्रकाशित होने का नाम ही "अश्वी" का जन्म लेना है। कहा गया है कि "द्यावापृथिव्यौ+अश्विनौ" द्यौ और पृथिवी का नाम 'अश्वी' है। इस प्रकार परीक्षा करने से यहां पर भी मनु कोई व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं होता है। इन्हीं आलंकारिक मनु को अनेक पुराणों में सावर्णि वैवस्वत कहा है। एक बात यहां स्मरण रखनी चाहिये कि जहां २ वैवस्वत मनु की कथा आई है वहां २ इसी आलङ्कारिक वैवस्वत मनु से तात्पर्य है, परन्तु यहां मनु शब्द से मनुष्य जाति ग्रहण है और प्रतिदिन के शयन और जागरण प्रलय और उत्पत्ति है इसी अलङ्कार से आशय है इसहेतु मनु कोई भिन्न व्यक्ति विशेष सिद्ध नहीं हो सकता तब इस वैवस्वतमनु से सूर्य्यवंश की परम्परा की सिद्धि का होना कब सम्भव है इस हेतु जो कोई सूर्य्यवंशीय कह कर अपने को उच्च समझते हैं वह आकाश कुसुमवत् सर्वथा मिथ्या है। थोरी देर के लिये मान भी लिया जावे कि सूर्य्य से मनु और मनु से इक्ष्वाकु आदि सूर्य्यवंशी राजा हुए। तो इस अवस्था में भी वहां ही कहा हुआ है कि इसी मनु से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चारो वर्ण पैदा हुए फिर इस प्रकार चारों तुल्य ही हैं किसी की श्रेष्ठता न्यूनता नहीं। मनु के विषय में और भी बहुत सी बातें पुराणों में कथित हैं जैसे प्रत्येक कल्प में चतुर्दश मनु होते हैं इत्यादि वार्ता के वर्णन करने का यहां प्रसंग नहीं यहां केवल यह दिखलाया गया है कि जिसको लोग वैवस्वत सावर्णि मनु अथवा स्वायंभुव मनु आदि कहते हैं और जिस से चारों वर्णों की उत्पत्ति मानते हैं। वैसा मनु कोई नहि हुआ। यह सब आलंकारिक कथा मात्र है हां! यह संभव है कि वशिष्ठ विश्वामित्रादिवत् मनु भी कोई सुप्रसिद्ध पुरुष हुआ हो परन्तु जिस मनु के नाम पर अलौकिक कथाएं बनाई हुई हैं वह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनु कोई नहीं। इस मनु की परीक्षा से सूर्य्यवंश की भी परीक्षा हो गई। अब चन्द्रवंश के ऊपर कुछ वक्तव्य है यथार्थ में जिसने चन्द्रवंश की कथा बनाई है उसने एक तरह से निन्दा ही की है क्योंकि श्रीमद्भागवतादि में इस प्रकार चन्द्रवंश का वर्णन है। श्रीमद्भागवत स्कंध ९ नव, अध्याय प्रथम १ में प्रजा रहित मनु के पुत्र के लिये वसिष्ठ ने यज्ञ करवाया। पुत्र न होकर के एक पुत्री उत्पन्न हुई और उसका नाम इला रखा गया मनु जी इस से अप्रसन्न हुए। तब वसिष्ठजी ने ईश्वर की भक्ति से उस कन्या को पुरुष बनाया और उस का नाम सुद्युम्न हुआ वह सुद्युम्न एक समय वन में शिकार करते हुए महादेव की अकृपा से अपने साथी संगी सहित पुनरपि स्त्री बनगया और उसी अवस्था में चन्द्रमा के पुत्र बुध से मिली इन दोनों के योगसे पुरूरवा उत्पन्न हुआ और आगे इसी पुरूरवा से चन्द्रवंश की परंपरा चली। अब यह बुध कौन है सो सुनिये। श्रीमद्भागवत नवमस्कंध चतुर्दशाऽध्याय में कथित है कि भगवान् की नाभि से ब्रह्मा हुआ और ब्रह्मा का पुत्र अत्रि हुआ और उस अत्रि की आखों से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ उस चन्द्रमा ने अपने गुरु बृहस्पति की तारा नाम की स्त्री को बलात् हरण कर लिया उस तारा से बुध की उत्पत्ति हुई। उस बुध ने उस इला में जो पुरुष से स्त्री हुआ था पुरूरवा को उत्पन्न किया उस पुरूरवा से स्वर्गवेश्या उर्वशी में आयु, श्रुतायु, सत्यायु, आदि पुत्र हुए और इस प्रकार चन्द्रवंश का आविर्भाव हुआ। आप देखते है कि पहले मनु की इला नाम कन्या हुई। फिर वह कन्या सुद्युम्न नाम पुरुष हुई और पुनः पुरुष से स्त्री हुई फिर आगे श्रीमद्भागवत में लिखा है कि वह इला एक मास स्त्री और एक मास पुरुष रहती थी। क्या कोई यथार्थ में ऐसा स्त्री पुरुष हो सकता है। फिर चन्द्रमा की उत्पत्ति अत्रि की आंख से माना है परन्तु वेद कहता है कि भगवान् ने ही सूर्य्य चन्द्र इत्यादि बनाया पुनः आप देखते हैं कि इला पुत्र पुरूरवा का संयोग उर्वशी से हुआ और उस से चन्द्रवंश चला, विद्वद्गण ? यथार्थ में यह सब कथाएं आलंकारिक हैं न कोई इला हुई और न पुरूरवा और उर्वशी स्त्री पुरुष हुए इन सबों का तात्पर्य पुरूरवा और उर्वशी की कथा मेरी रचित कथा में देखिये, इस प्रकार चन्द्रवंश की भी परीक्षा करने से शश शृंगवत मिथ्याकाल्पनिक ही सिद्ध होती है इसी प्रकार अन्यान्य अश्विवंश नागवंश इत्यादि के विषय में भी समझिये !

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे विद्वद्गण ! आप निश्चय समझें कि जिस प्रकार परमेश्वर ने पश्वादि सृष्टि को प्रकट किया इसी प्रकार इस अद्भुत मनुष्य जाति को भी उत्पन्न किया वह परब्रह्म परमेश्वर सब का आदि मूल कारण है वही सब का माता पिता भ्राता विधाता उपास्य पूज्य है और उसी से मनुष्य सृष्टि के आविर्भाव होने के कारण सब मनुष्य परस्पर तुल्य हैं ।

पंचमानवादि शब्द ।

अब यहां मनुष्य की उत्सुकता की निवृत्ति के लिये यह भी निरूपण करना अवश्य है कि आदि सृष्टि में क्या मनुष्यजाति एक ही प्रकार उत्पन्न हुई अथवा भिन्न भिन्न प्रकार की । यदि भिन्न भिन्न वंश हुए तो वे कितने प्रकार के थे। पुराणों में कहीं मानस पुत्र दश कहीं छः कहीं नौ कहीं इक्कीस कहीं कुछ कहीं कुछ कहे हुए हैं । यह पौराणिकों को भी मानना पड़ेगा कि जितने मानस पुत्र हुए उतने प्रकार के वंश चले परन्तु इस विषय में वेद क्या कहता है इस का संक्षिप्त निरूपण कर देना उचित है । वेदों में पञ्चकृष्टि, पञ्चक्षिति, पञ्चचर्षणि, पञ्चजन, पञ्चजन्या विश, पञ्च जात आदि शब्द बहुत प्रयुक्त हुए हैं जो बतलातेहैं कि आदि सृष्टि में पांचभ्राता के समान एक पिता से पांच प्रकार के मनुष्य यत्किंचित् भेद के साथ उत्पन्न हुए। वे ये मन्त्र हैं ।

य एकश्चर्षणीनां वसूना मिरज्यति इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् १।७।९

(यः एकः+इन्द्रः) जो एक सर्वैश्वर्य्यवान् परमेश्वर (चर्षणीनाम्) खेत करने वाली प्रजाओं के तथा (वसूनाम्) प्रजाओं के धनों का (इरज्यति) स्वामी है और जो (पञ्च क्षितीनाम्) पांच प्रकार के मनुष्यों का अनुग्रह करने वाला है । वही सब का पूज्य है 'ईरज' धातु कण्वादि गण में ईर्षार्थक है परन्तु यहां ऐश्वर्य्य अर्थ है । सायण कहते हैं कि (पञ्च निषादपञ्चमानां क्षितीनां निषादिणां वर्णाना मनुग्रहीतेतिशेषः) चार वर्ण और पञ्चम निषाद इन पांचों वर्णों का अनुग्रह कर्त्ता ईश्वर है । क्षिति का पृथिवी भी यहां अर्थ हो सकता है

आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्चजनाः॥६।११।४॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(रातहव्याः) हव्य से सत्कार करने वाले (पञ्चजनाः) पांचों प्रकार के मनुष्य (यम्) जिस परमात्मा को (सुमयसम्) सुन्दर स्वभाव वाले (आयुम्+न) अतिथि के समान (नमसा) नमस्कार के द्वारा (अञ्जन्ति) पूजते हैं। यहां सायण "पञ्चजना मनुष्या ऋत्विक् यजमान लक्षणाः" पञ्चजन का चार ऋत्विक् और एक यजमान ये पांच अर्थ करते हैं। यहां 'पञ्चजन' 'पांच मनुष्य अर्थ करने से शङ्का बनी रहती है। वे पांच कौन हैं इसकी निवृत्ति के लिये जो सायण अर्थ करते हैं। वह ठीक नहीं। आगे के मन्त्रों से स्पष्ट होगा कि यथार्थ में पञ्चजन आदि शब्दों से क्या तात्पर्य्य है।

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्यानाम्।
ये वा जनेषु पञ्चसु १। ६५। २३॥

(ये) जो पदार्थ (आर्जीकेषु) आर्जीक=अर्जन उपार्जन करने वाले (कृत्वसु) कर्म्म परायण मनुष्यों में हैं (ये) जो पदार्थ (पस्त्यानाम्) नदियों के (मध्ये) समीप में (ये+वा) और जो (पञ्चसु+जनेषु) पांचो प्रकार के मनुष्यों में अर्थात् सब मनुष्यों में विद्यमान हैं। वे पदार्थ सब को सुखकारी होवें। यहां सायण "जनेषु पञ्चसु निषाद पञ्चमाश्चत्वारो वर्णाः पञ्चजनाः" चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांचो मिलकर पञ्चजन है" ऐसा अर्थ करते हैं। परन्तु निषाद पञ्चम वर्ण है। यह कहीं भी वेदों में नहीं कहा गया है।

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च॥ १०।४५।६॥

यह हवन कालिक अग्नि का वर्णन है (यद्) जब (पञ्च+जनाः) पांचों प्रकार के मनुष्य (अग्निम्+अयजन्त) अग्निका यजन अर्थात् अग्नि में आहुति डालते हैं तब वह अग्नि (वीळुम्+चित्+आद्रिम्) दृढ़ मेघ को भी (अभिनत्) छिन्न भिन्न कर देता है अर्थात् मेघ तक पहुंचता है। वह अग्नि कैसा है (परायन्) दूरजाता हुआ। पुनः (विश्वस्य+केतुः) विश्व का केतु (भुवनस्य+गर्भः) भुवनका कारण ऐसा जो अग्नि वह (जायमानः) जन्म लेते ही (आरोदसी) द्यावा पृथिवी तक (अपृणात्) फैल जाता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यहां विस्पष्ट पद है कि पञ्च जन अर्थात् पांचो प्रकार के मनुष्य यज्ञ करते हैं। यदि 'पञ्च जन' पद का अर्थ चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र और पञ्चम निषाद लिया तब भी यह सिद्ध हुआ कि मनुष्यमात्र यज्ञाधिकारी हैं। अतः शूद्र को यज्ञ नहीं करना चाहिये ऐसा कथन सर्वथा वेदविरुद्ध है या नहीं आप सब विचारें। पिछले लोगों ने वेद विरुद्ध सिद्धान्त चला जगत से वेद को लुप्त कर अधर्म्म का राज्य फैलाया। मनुष्य से घृणा करने वाले मनुष्य क्या मनुष्य हैं।

'पञ्चचर्षणि शब्द'

यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमे दमे। कविर्गृहपतिर्युवा॥ ७।१५।२

(यः कविः+गृहपतिः+युवा) जो प्राज्ञ बुद्धिमान् युवा गृहपति (पञ्च+चर्षणीः+अभि) पांचों प्रकार की प्रजाओं के सम्मुख (दमे दमे) गृह गृह में (निषसाद) उपदेशादि कार्य्य के लिये बैठता है। वह आखिल कष्ट से बचाता है। इत्यादि आगे वर्णन आता है।

'पञ्चजात शब्द'

"पञ्च जाता वर्धयन्ती" ६।६१।१२ नदी, पञ्च जात अर्थात् पांचो प्रजाओं को सुख देती है। यहां 'पञ्च जात' 'पञ्च जन' अर्थ में आया है।

'पाञ्चजन्य शब्द'

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणादबर्हणा विपोऽर्यो मानस्य सक्षयः॥ ८।६३।७॥

राजा का यह वर्णन है (यद्) जब (पञ्च जन्यया) पांचो प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी (विशा) प्रजा (इन्द्रे) राजा के निमित्त (घोषा असृक्षत) यह हम लोगों का राजा है इसे हम स्वीकार करते हैं इस प्रकार जब घोष=शब्द अर्थात् घोषणा (Proclaimation) की जाती है तब (सः) वह (विपः) मेधावी (अर्यः) सब का स्वामी और (मानस्य+क्षयः) मान=सम्मान की भूमि बन (बर्हणा) वज्रादि शस्त्र से (अस्तृणात्) शत्रु का हनन करता है, अर्थात् प्रजा की ओर से नियुक्त होने पर राजा युद्धादि व्यापार आरम्भ करता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्य मृचीसा दत्रिं मुञ्चथो गणेन। हे (नरौ) राजा और रानी आप दोनों (पांचजन्यम्) पांचों प्रकार के मनुष्यों के हित करने वाले (अत्रिम्) त्रिगुण रहित अर्थात् शुद्ध (ऋषिम्) ऋषि की (ऋचीसात्+अंहस.) जाज्वल्यमान पापानल से पृथक् करके (गणेन) परिवार सहित (मुञ्चथः) छुड़ा कर रक्षा किया कीजिये।

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु। तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषावस्तोर्हवमानास इन्द्रम्॥ ५।३२।११॥

किस को राजा बनाना चाहिये इस की शिक्षा देते हैं। सर्वप्रधान ऋषि कहते हैं कि हे इन्द्र! (त्वा+नु) आप को सब में (एकम्) मुख्य (शृणोमि) मैं सुना करता हूं। आप कैसे हैं (सत्पतिम्) सज्जनों के रक्षक पुनः (पाञ्चजन्यम्+जातम्) पांचो प्रकार के मनुष्यों के हित के लिये उत्पन्न पुनः (जनेषु+यशसम्) सब मनुष्यों में यशस्वी। अब प्रजाओं की ओर देख कर कहते है। (तम्+नविष्ठम्+इन्द्रम्) ऐसे अतिशय माननीय राजा को (दोषा+वस्तोः) रात दिन (हवमानासः) अपने अपने कार्य्य के लिये आवाहन करती हुई और (आशसः) कामनाओं की पूर्ति की इच्छा करती हुई (मे) मेरी सहमत प्रजाएं (जगृभ्रे) ग्रहण करें। यहां सायण "पाञ्चजन्यं पञ्चजनेभ्यो मनुष्येभ्यो हितम्" 'पाञ्चजन्य' शब्द का पञ्चजन मनुष्यों के 'हित' अर्थ करते हैं।

अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः।
तमीमहे महागयम्॥ ९। ६६। २०॥

यहां अग्नि के लिये पाञ्चजन्य शब्द आया है 'पाञ्चजन्य' शब्द 'पञ्चजन' से बन कर विशेषण होजाता है। पञ्चजन सम्बन्धी, पञ्चजन हितकारी, पञ्चजन-पुत्र आदि अर्थ होता है। अग्नि भी सब के हित करने वाला है अतः इसको 'पाञ्चजन्य' कहते हैं। अब आगे के मन्त्र से विस्पष्ट होगा कि वेद का तात्पर्य्य पांच प्रकार के मनुष्य से है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पंचकृष्टि शब्द ॥

अस्माकं द्युम्नमधि पञ्च कृष्टिषूच्चा स्वर्ण शुशुचीत दुष्टरम्।२।२।१०।

यह प्रार्थना है (अस्माकम्) हमारे (पञ्च+कृष्टिषु) पांचों प्रकार के मनुष्यों में (उच्चा) अत्युत्तम=बहुत और (दुस्तरम्) दुस्तर अप्राप्य (द्युम्नम्) धन (स्वः+न) सूर्य्य समान (अधि शुशुचीत) अधिक देदीप्यमान होवे। स्वःसूर्य्य। न=इव। दुष्टरम्=दुस्तरम्। 'कृष्टि' नाम मनुष्य का है। पांचों प्रकार के मनुष्य धन धान्य, पशु, गौ, हिरण्य, पौत्रादिक से सम्पन्न रहें ऐसी प्रार्थना कोई ऋषि करते हैं।

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या।६।४६।७

(इन्द्र) हे राजेन्द्र ! (नाहुषीषु+कृष्टिषु) मनुष्यसम्बन्धी प्रजाओं में (यद्+ओजः+नृम्णं+च) जो बल और धन (आ) अच्छे प्रकार से वर्तमान है और (पञ्च+क्षितीनाम्) पृथिवी के पाचों भागों में (यद्+वा+द्युम्नम्) जो धन है उस सब का (आभर) भरण पोषण अर्थात् रक्षा करें। और (सत्रा) महान् (विश्वानि) निखिल (पौंस्या) बल को सर्वत्र धारण पोषण करें।

तदद्य वाचः प्रथमं मंसीय येनासुराँ अभि देवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासःपञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम्।१०।५३।४

उस को (अद्य) आज (वाचः) वचन के (तत्+प्रथमम्) उस परम वीर्य को (मंसीय) मानता हूं (देवाः) हे बलिष्ठ शूरवीर पुरुषो ! (येन) जिस वीर्य से (असुरान्+अभि+असाम) असुरों को हम सब परास्त करें (ऊर्जादः) हे अन्न खाने वाले मनुष्यो ! (उत्+यज्ञियासः) हे यज्ञसम्पादको ! (पञ्च जनाः) हे पांचों प्रकार के मनुष्यो ! आप सब ही (मम+होत्रम्) मेरे यज्ञ को (जुषध्वम्) सेवें। दुर्गाचार्य्य "पञ्चजना मनुष्याः निषादपञ्चमावर्णाः" यहां "पञ्चजन" शब्द का चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांच हुए ऐसा अर्थ करते हैं इस से भी यही सिद्ध होता है कि मनुष्यमात्र यज्ञाधिकारी है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पञ्चजना ममहोत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः॥१०।५३।५॥

(गोजाताः) पृथिवी पर जितने उत्पन्न हुए (पञ्चजनाः) पांच चकार के मनुष्य हैं वे सब ही (मम+होत्रम्+जुषन्ताम्) मदुपदिष्ट यज्ञ को सेवें और (ये+यज्ञियासः) जो यज्ञ के तत्त्व जानने वाले हैं वे भी सदा यज्ञ करें। यहां "पञ्चजना ममहोत्रं जुषन्ताम्" यह साफ पद है सब कोई यज्ञकरें यह आज्ञा सूचक वाक्य है फिर कौन कह सकता है कि 'शूद्र' यज्ञ न करे वा वेदोंका अध्ययन न करे।

इमा याः पञ्चप्रदिशः मानवीः पञ्च कृष्टयः॥ अथर्व०३।२४।४॥

ये पांच दिशाएं और ये मानवी पञ्च प्रजाएं हैं ऐसा वर्णन आता है।

पंचमानव कौन हैं ?॥

मैंने यहां अनेक मन्त्र उद्धृत किये हैं जिन में पञ्चजन आदि शब्द आते हैं। अब यह विचार करना है कि ये पांच कौन हैं। यास्काचार्य्य निरुक्त ३।८ में कहते हैं "गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि इत्येके। चत्वारो वर्णा निषादः पंचम इत्यौपमन्यवः। गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस। ये पांचों मिल कर पंचजन कहाते हैं। औपमन्यव कहते हैं कि चार वर्ण और पंचम निषाद ये पांच 'पंचजन' हैं। मैं समझता हूं कि यास्क का प्रथम पक्ष ठीक है। सृष्टि के आदि में जो पांच प्रकार के मनुष्य उत्पन्न हुए उन के स्वभावानुसार गन्धर्व आदि पांच वैदिक नाम दिये गये हों। द्वितीय पक्ष समुचित प्रतीत नहीं होता क्योंकि एक तो चार वर्णों का "चतुर्वर्णा वा चात्वारो वर्णाः" इस प्रकार के शब्दों से कहीं वर्णन नहीं और निषाद को चारों वर्णों से पृथक् मानने में कोई प्रमाण नहीं। पिछले ग्रन्थों में गन्धर्व पितर आदिकों को भिन्न २ जाति माना है। पुराणों में इस की बहुत चर्चा है। परन्तु निषाद एक भिन्न वर्ण है इस की चर्चा नहीं है ऐतरेय ब्राह्मण ३।३१ में इस प्रकार वर्णन है "पाञ्चजन्यं वा एतदुक्थम्। यद्वैश्वदेवम्। सर्वेषां वा एतत्पञ्चजनानामुक्थं दैवमनुष्याणां गन्धर्वाप्सरसां सर्पणाञ्च पितृणाञ्च। एतेषां वा एतत्पञ्चजनानां मुक्थम्। सर्वएव पंचजना विदुः।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु वेद के एक स्थान में मनुष्य के पांच नाम साथ ही आए हुए हैं। मैं समझता हूं कि ऋषियों ने ये ही वैदिक पांच नाम पञ्च जनों को दिए हों यह सम्भव है। वह यह मन्त्र हैं।

यदिन्द्राग्नी युदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यु ष्वनुषु पूरुषुस्थः। अतःपरि वृषणा वा हि यातमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य॥ १। १०८। ८॥

यद्। इन्द्राग्नी। युदुषु। तुर्वशेषु। यद्। द्रुह्युषु। अनुषु। पूरुषु। स्थः। अतः। परि। वृषणौ। आ। हि। यातम्। अथ। सोमस्य। पिवतम्। सुतस्य।

स्वामिकृत भाष्यम्—यद्यतः। इन्द्राग्नी पूर्वोक्तौ। यदुषु=प्रयत्नकारिषु मनुष्येषु। तुर्वशेषु=तूर्वन्तीतितुरस्तेषांवशा वशं कर्तारो मनुष्यास्तेषु। यद्यतः। द्रुह्युषु=द्रोहकारिषु। अनुषु=प्राणप्रदेषु। पूरुषु=परिपूर्णसद्गुणविद्याकर्म्मसु मनुष्येषु। यदव इत्यादि पञ्चमनुष्य नाम। निघं०२।३। स्थः।अतः परि इतिपूर्ववत्।

अथ सायण भाष्यम्। अत्र यदुष्वित्यादीनि पञ्च मनुष्यनामानि। हे इन्द्राग्नी यद्यदि यदुषु नियतेषु परेषामहिंसकेषु मनुष्येषु स्थो भवथो वर्तेथे। यदि वा तुर्वशेषु हिंसकेषु मनुष्येषु वर्तेथे। यद्यदि द्रुह्युषु द्रोहं परेषा मुपद्रव मिच्छत्सु मनुष्येषु वर्तेथे। यदि वा अनुषु प्राणत्सु सफलैः प्राणैर्युक्तेषु ज्ञातृष्वनुष्ठातृषु मनुष्येषु अन्येषां हि प्राणा निष्फला ज्ञानहीनत्वात् अनुष्ठानाभावाच्च तेषु यदि भवथः। तथा पूरुषु कामैः पूरयितव्येष्वन्येषु स्तोतृजनेषु यदि भवथः। अतः सर्वस्मात्स्थानात्। हेकामाभिवर्षकाविन्द्राग्नी आगच्छतम्। अनन्तरमाभिषुतं सोमं पिवतम्।

(इन्द्राग्नी) हे राजेन्द्र ! और हे अग्निवद्देदीप्यमान मन्त्रिन् ! (यद्) जिस हेतु आप दोनों (यदुषु) यदु मनुष्यों में (स्थः) रहते हैं। अर्थात् यदुयों की रक्षा के लिये उन में आप दोनों वास करते हैं। इसी प्रकार (तुर्वशेषु) तुर्वश मनुष्यों में (द्रुह्युषु) द्रुह्यु मनुष्यों में (अनुषु) अनु मनुष्यों में और (पूरुषु) पूरु मनुष्यों में अर्थात् यदु, तुर्वश, द्रुह्यु, अनु और पूरु इन पांचों प्रकार के मनुष्यों में आप (यत्) जिस हेतु उन की रक्षा के लिए रहते हैं (अतः) इस हेतु (वृषणौ) हे सुख के वर्षा करने वाले राजन् और मन्त्रिन् ! आप (हि)

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निश्चय, (आ+यातम्) हम लोगों के यज्ञ में भी आया करें और (सुतस्य+सोमस्य) प्रस्तुत=बनाया हुआ (सोमस्य) सोमरस (पिबतम्) पीवें।

यहां स्वामी जी तथा सायण इन यदु आदि पांचों शब्दों का अर्थ मनुष्य ही करते हैं। स्वामी जी कहते हैं। यदु=प्रयत्न कारी मनुष्य। तुर्वश=हिंसक मनुष्यों को वश में करने वाले। द्रुह्यु=द्रोहकारी मनुष्य। अनु=प्राणप्रद मनुष्य। पूरु=अच्छे गुणविद्याआदि से पूर्ण मनुष्य। इस प्रकार ये पाचों मनुष्य के ही नाम हैं। सायण कहते है। यदु=दूसरों के अहिंसक मनुष्य। तुर्वश=हिंसक मनुष्य। द्रुह्यु=द्रोहकारी मनुष्य। अनु=प्राणधारी मनुष्य। पूरु=पूर्ण करने योग्य स्तुतिकारी जन। सायण इन शब्दों का धातु भी देते हैं। उपरमार्थक 'यम' धातु से यदु। हिंसार्थक 'तुर्वी' धातु से तुर्वश। जिघांसार्थक 'द्रुह' से द्रुह्यु। प्राणार्थक 'अन' से अनु। आप्यायनार्थक 'पूरी' से पूरु शब्द बनता है

निघण्डु में यदु आदि शब्द।

मनुष्याः। नराः। धवाः। जन्तवः। विशः। क्षितयः। कृष्टयः। चर्षणयः।, नहुषाः। हरयः। मर्य्याः। मर्त्याः। मर्ताः। ब्राताः। तुर्वशाः। द्रुह्यवः आयवः। यदवः। अनवः। पूरवः। जगतः। तस्थुषः। पञ्चजनाः। विवस्वन्तः। पृतनाः। इति पञ्चविंशतिर्मनुष्य नामानि।

मनुष्य, नर, धव, जन्तु, विट्, क्षिति, कृष्टि, चर्षणि, नहुष, हरि, मर्य्य, मर्त्य, मर्त, ब्रात, तुर्वश, द्रुह्यु, आयु, यदु, अनु, पूरु, जगत्, तस्थिवान्, पञ्चजन, विवस्वान्, पृतन, ये २५ पच्चीस नाम मनुष्य के हैं। मूल में सर्वत्र बहुवचन पाठ है।

यहां पर सामान्य रूप से मनुष्य के नामों में 'यदु' आदि पाचों शब्द आए हैं। वेदों में भी ये पांचों शब्द समानता से मनुष्य के ही नाम हैं अर्थात् किसी विशेष मनुष्य के नाम नहीं है। क्योंकि वेद में सामान्य नाम आते हैं। परन्तु वेद के शब्दों को लेकर ही ऋषियों ने पदार्थ और देशादिक के नाम रक्खे हैं अतः प्रतीत होता है कि उन पांचों प्रकार के मनुष्यों के नाम यदु आदि रक्खे हों।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

महाभारत में यदु आदि पांच वंश ।

यतिं ययातिं संयाति मयाति मयतिं ध्रुवम् ॥३०॥
नहुषो जनयामास षट् सुतान् प्रियवादिनः ।
ययातिर्नाहुषः सम्राडासीत् सत्यपराक्रमः ॥३२॥
तस्य पुत्रा महेष्वासा सर्वैः समुदिता गुणैः ॥३३॥
देवयान्यां महाराज शर्म्मिष्ठायां च प्रजज्ञिरे ।
देवयान्यामजायेतां यदुस्तुर्वसुरेवच ॥३४॥
द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्म्मिष्ठायां जज्ञिरे ॥३५॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय ७५ से लेकर ९३ वां अध्याय तक ययाति राजा की आख्यायिका विस्तार पूर्वक आई है । यह इतिहासदृष्टि से अतिशय मनोहर और रोचक है और यदु आदि पांच वंशों की उत्पत्ति बतलाती है अतः संक्षेप से यहां इस का उल्लेख करते हैं नहुष (आप अभी देखा है कि नहुष भी मनुष्य के नामों में आया है) राजा के छः पुत्र हुए । यति, ययाति, संयाति, अयाति अयति और ध्रुव । इन में से ययाति राज्याधिकारी हुए । ययाति की दो स्त्रियां हुईं देवयानी और शर्मिष्ठा । देवयानी से दो पुत्र हुए । यदु और तुर्वसु । और शर्मिष्ठा से तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु, और पुरु ।

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजायते ।
कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम् । आदिपर्व ॥७६॥

महाराज जनमेजय पूछते हैं कि हे वैशम्पायन ! मेरे पूर्वज ययाति ने अति दुर्लभा शुक्र की कन्या से कैसे विवाह किया यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे सुनावें । वैशम्पायन बोले कि जिस समय देवगुरु बृहस्पतिपुत्र कच असुर गुरु शुक्राचार्य्य से विद्याध्ययन कर रहे थे उस समय शुक्रकन्या देवयानी ने कच की बड़ी सेवा की । विद्यासमाप्त होने पर गृह लौटने के समय बृहस्पति के पुत्र कच से देवयानी ने कहा कि आप मुझ से विवाह करें । परन्तु उसे गुरुपुत्री जान कच ने उस से विवाह करना उचित नहीं समझा । इस पर देवयानी ने क्रुद्ध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होकर शाप दिया "ततः कच न ते विद्या सिद्धिमेषा गमिष्यति" कि हे कच ! मेरी प्रार्थना को नहीं स्वीकार करते हो। अतः आपकी विद्या सिद्धि को प्राप्त नहीं होगी। इस पर अनपराध शाप देती हुई देवयानी को देख कच ने भी शाप दिया कि "ऋषिपुत्रो न ते कश्चित् जातु पाणिं ग्रहीष्यति" कोई ऋषि पुत्र आप का पाणिग्रहण नहीं करेगा। तत्पश्चात् एक समय असुराधिपति वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी स्नानार्थ किसी वन में गईं। वहां इन दोनों में लडाई होगई। शर्म्मिष्ठा देवयानी को किसी कूप में गिरा घर आगई। इसी समय राजा ययाति वन में शिकार करते हुए तृषार्त हो उसी कूप के निकट आ देवयानी को कूप में गिरी हुई देख कुएँ से उसे निकाल बाहर किया। शर्मिष्ठा के सब चरित्र देवयानी ने अपने पिता से कह सुनाये और अन्त में यह कहा कि शर्मिष्ठा ने अपने को राजपुत्री और मुझ को पुरोहितपुत्री नीच समझ बड़ा अपमान किया है इस हेतु हे पिता ! जब तक वह मेरी दासी नहीं होगी तब तक मैं गृह पर नहीं जाऊँगी। वृषपर्वा राजा ने पुरोहित पुत्री को क्रुद्ध जान उस के सन्तोषार्थ अपनी राजपुत्री शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाया। तत्पश्चात् पुनः एक समय वन में ययाति को देख उस से विवाहार्थ देवयानी ने कहा। ययाति नें कहा कि जब तक आप के पिता इस कार्य्य के लिये आज्ञा नहीं देवेंगे तब तक मैं आप का पाणिग्रहण नहीं कर सकता। इस पर देवयानी पिता से आज्ञा ले ययाति की पत्नी बनी और राजपुत्री शर्मिष्ठा के साथ पतिगृह पर निवास करने लगी। इस देवयानी से यदु और तुर्वसु दो पुत्र हुए। यद्यपि विवाह कर प्रस्थान करने के समय शुक्र जी ने ययाति राजा को चेता दिया था कि इस दासी शर्मिष्ठा को आप सब तरह से सम्मान करें परन्तु इससे सन्तान उत्पन्न न करें तथापि राजा अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न कर शर्मिष्ठा की परमप्रीति और प्रार्थना से प्रसन्न हो शर्मिष्ठा से तीन पुत्र उत्पन्न किये, अनु, द्रुह्यु और पूरु। जब कुछ समय के अनन्तर देवयानी को यह वृत्तान्त विदित हुआ तब वह क्रोध कर अपने पिता के गृह पर चली गई और अपनी पुत्री से सब वार्ता जान शुक्राचार्य्य ने राजा ययाति को शाप दिया कि आप शीघ्र ही जरावस्था से अभिभूत होवेंगे। इस पर राजा ने सब वृत्तान्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कह सुनाया। पुनः शुक्राचार्य्य ने यह कहा कि मेरे प्रभाव से आप अपनी वृद्धावस्था को किसी अन्य पुरुष में स्थापित कर सकते हैं। परन्तु आप के पुत्रों में से जो कोई अपनी युवावस्था आप को देगा और आप से वृद्धावस्था लेगा वही सम्पूर्ण राज्य का अधिकारी बनेगा। इस प्रकार शुक्र से शापानुगृहीत हो ज्येष्ठ पुत्र यदु से आकर ययाति बोले।

ययातिरुवाच—जरावलीच मां तात पलितानि च पर्य्यगुः।
काव्यस्योशनसः शापात् न च तृप्तोऽस्मियौवने।
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह। इत्यादि॥

यदुरुवाच—जरायां बहवो दोषाः पानभोजनकारिताः।
तस्माज्जरा न ते राजन् ग्रहीष्य इति मे मतिः। इत्यादि

ययाति—हे प्रिय यदु! शुक्र जी के शाप से मुझ को वृद्धावस्था प्राप्त हुई है। परन्तु विषय भोग से अभी तक मैं तृप्त नहीं हुआ हूं। अतः इस जरावस्था को तुम लो और तुम्हारे यौवनावस्था से मैं विषय भोगूं।

यदु—हे पिता! जरावस्था में बहुत दोष हैं इस हेतु मैं इस का ग्रहण नहीं करूंगा। आप के अनेक पुत्र हैं। उन से आप जा कहें।

ययाति—हे यदु! जिस कारण मेरे शरीर से उत्पन्न हो के तुम मेरी जरावस्था को नहीं लेते हो अतः तुम्हारी प्रजा राज्याधिकारी नहीं होगी। इतना कह तुर्वसु से बोले कि हे तुर्वसु! तुम मेरी जरावस्था लो मैं तुम्हारी यौवनावस्था से विषय भोग करूं।

तुर्वसु—हे पिता! काम-भोग-प्रणाशिनी, बल-रूपान्तकारिणी और बुद्धि-प्राण-प्रणाशिनी जरावस्था को मैं ग्रहण नहीं करूंगा।

ययाति—हे तुर्वसु! जिस हेतु तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर मेरी जरावस्था नहीं लेते हो अतः तुम, जिनका धर्म्म और आचार भ्रष्ट है जो प्रतिलोम आचार करने वाले हैं जो गुरुदारापरायण हैं ऐसे भ्रष्ट म्लेच्छों में राजा होओगे इस प्रकार तुर्वसु को शाप दे शर्मिष्ठा के द्रुह्यु पुत्र से राजा बोले कि हे द्रुह्यु! तुम मेरी जरावस्था लो।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्रुह्यु–हे पिता ! जीर्ण नर न गज न हय न सुख भोग सकता है अतः मैं जरावस्था नहीं लूंगा ।

ययाति–हे द्रुह्यु ! जिस हेतु मेरी जरावस्था तुम नहीं लेते हो इस कारण जहां अश्व और रथों की गति नहीं है और जहां पर हाथी, गदहे, गाय और शिविका इन सबों की गति नहीं है । परन्तु जहां पर केवल नौका से ही कार्य्य होता है वहां का स्वामी तुम होवोगे ।

हे प्रिय अनु ! तुम मेरी जरावस्था लो ।

अनु–हे पिता ! वृद्ध पुरुष शिशुवत् अपवित्र रहता है समय पर हवनादि कर्म्म नहीं कर सकता है । अतः मैं जरा नहीं लूंगा ।

ययाति–जिस हेतु मेरी जरावस्था को नहीं लेतेहो और जरावस्था के दोष दिखलाते हो अतः तुम्हारी प्रजा यौवनावस्था में नष्ट हो जायगी और हवनादि कर्म्म दूषक तुम होवोगे ।

हे प्रिय पुत्र पुरु ! तू मेरी जरावस्था ले ।

पुरु–हे पिता ! मैं आपके वचन का पालन करूंगा । मुझे आप जरावस्था देवें और मेरी यौवन लेवें ।

इस पर राजा बहुत प्रसन्न हो के अपनी जरावस्था दे और पुरु से यौवन ले बहुत दिन विषय भोग कर पुनः अपनी जरावस्था पुरु से ले उसे यौवन दे और उस को भारत खण्ड का राजा बना तपस्या के लिए वन चले गये ।

आगे इसी पर्व के ८५ वें अध्याय में इस प्रकार कहा गया–

यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाःस्मृताः ।
द्रुह्योः सुतास्तु वै भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः ॥ २४ ॥
पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव ॥ ३५ ॥

वैशम्पायन राजा जनमेजय से कहते हैं कि हे राजन् ! यदु से यादववंश, तुर्वसु से यवनवंश, द्रुह्यु से भोजवंश, और अनु से म्लेच्छवंश उत्पन्न हुए और पूरु राजा से पौरव वंश जिस में आप उत्पन्न हुए हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हे विद्वद्गण ! इस प्रकार महाभारत में पांच वंशों की चर्चा देखते हैं। विचारने की बात यहां यह है कि वेदों में ये पांचनाम मनुष्य मात्र के नाम हैं किसी विशेष आदमी के नहीं। परन्तु महाभारत में विशेष व्यक्ति के ये नाम हो जाते हैं। इतना ही नहीं किन्तु ये पांचों पांच वंशों के वंशधर हो जाते हैं। जो वंश सारी पृथिवी पर विस्तृत हुए। मनुष्यमात्र इस के अन्तर्गत हो जाते हैं। इस से अनुमान होता है कि सृष्टि की आदि में जो पांच प्रकार के मनुष्य उत्पन्न हुए जिस कारण प्रजामात्र का नाम पञ्चजन हुआ ऋषि लोगों ने वेद के मन्त्र में एक ही स्थान में ये पांच नाम पा गुण कर्म के अनुसार उन पांचों वंशों को ये ही पांच नाम दिये हों इस में कुछ आश्चर्य्य की बात नहीं। बहुत समय व्यतीत होने पर जब लोग यादव पौरव आदि के वंशों के ठीक कारण न समझने लगे होंगे तो उस समय इस आख्यायिका की उत्पत्ति हुई हो। इस में एक और विचित्रता है कि राजा ययाति नहुष के पुत्र कहे गए हैं। परन्तु 'नहुष' यह नाम भी मनुष्य सामान्य का है। वेदों में यह नाम आता है ऋग्वेद ६। ४६। ७ में 'नाहुषी कृष्टि' अर्थात् नहुष सम्बन्धी प्रजा अर्थात् मनुष्य सम्बन्धी प्रजा ऐसा कहा गया है। ययाति शब्द का भी एक प्रकार से मनुष्य ही अर्थ है। जिस धातु से 'यदु' बनता है उसी से 'ययाति' भी बन सकता है। अथवा मनुष्यों के नामों में एक नाम 'जगत्' आता है वह 'गम्' धातु से बना है। इसी के समान 'या' धातु से 'ययाति' बन गया है। प्रायः गम् और 'या' का एक ही अर्थ होता है। अतः यह 'ययाति' नाम भी मनुष्य सामान्य का ही सिद्ध होता है। और भी इस में एक विलक्षणता है ब्राह्मण और असुर दोनों की कन्याओं से ययाति ने सन्तान उत्पन्न किये हैं। आर्य्यों का प्रतिनिधि ब्राह्मण और दस्युओं का प्रतिनिधि असुर माना गया है। मालूम पड़ता है कि जिस समय दस्यु लोग आर्य्यों के अधीन हुए हैं उस समय दोनों में परस्पर सम्बन्ध होने लगा है। अथवा दस्युओं की प्रसन्नतार्थ उन की कन्या से सन्तान उत्पन्न कर राज्याधिकारी बनाया गया हो और उस के यशोगान के लिये पौरववंशकी स्थापना हुई हो। जो कुछ हो अनुमान होता है कि मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने यदु, पूरु, अनु, द्रुह्यु और तुर्वसु ये पांच नाम उन पांचों वंशों को दिए जो आदि सृष्टि में उत्पन्न हुए।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'गीता और पांचजन्य शब्द'

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः।
पांचजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः॥ गीता १। १४॥

गीता में देखते हैं कि श्री कृष्ण जी के शंख का नाम 'पांचजन्य' है। इस में सन्देह नहीं कि श्री कृष्ण जी उस समय के पृथिवी पर के समस्त वंशों के नायक और चालक थे और सम्पूर्ण पृथिवी के राजाओं को एक सूत्र में ग्रथित करना चाहते थे। अर्थात् सब राजाओं को युधिष्ठिर के अधीन कर सम्पूर्ण पृथिवी पर शान्ति फैलाना चाहते थे। इसी हेतु विदित होता है कि कृष्णजी ने अपने शङ्ख का नाम 'पांचजन्य' रक्खा था अर्थात् पांचों प्रकार के पृथिवीस्थ मनुष्यों का हितकारी शङ्ख। सम्पूर्ण पृथिवी पर शान्ति स्थापन के लिये श्रीकृष्ण के हाथ में मानो यह एक चिन्ह था। इस से भी मालूम पड़ता है कि पृथिवी पर पांच प्रकार के वंश उस समय में भी विद्यमान थे।

'पंचमानव पर आधुनिक विद्वानों की सम्मति'

श्रीयुत महाशय राय शिवनाथ जी निज ऋग्वेद भाष्य मण्डल १ सूक्त ७ मन्त्र नवम की टिप्पणी में लिखते हैं कि पांच मनुष्य जातियां जो इस पृथिवी पर पाई जाती हैं यह हैं।

१-एण्डो यूरोपियन (Indo European) वा आर्य्यजाति जो हिन्दुस्तान फारस, युरोप, यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका, और आइस लैण्ड में रहती है।

२-मंगोलियन (Mongolean) जो चीन, जापान, रूस, ग्रीनलैण्ड और उत्तर अमेरिका में रहती है।

३-नीग्रो (Negro) जो मध्य और दक्षिण आफ्रिका में रहती है।

४-अमेरिकन (American) जो नौर्थ अमेरिका के मध्यभाग में और साउथ अमेरिका में रहती है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

५-मलय (Malay) जो मले, सुमात्रा, बोर्निङ्ग, सेलिबीज, फिलिपाइन, फोर्मोजा, इत्यादि टापुओं में रहती है।

अन्य जातियां जो आज कल इस पृथिवी पर पाई जाती हैं। इन ऊपर की मुख्य जातियों के मेल से बनी है-जैसे मैक्सिको, पीरू, ब्राजील, इन देशों में इण्डो यूरोपियन मिक्स्ड (Indo European Mixed) अरब, ईजिप्ट, ट्रिपोली ऐलजीर्या, मोरोको इन देशों में साइरो ऐरेबियन (Syro Arabian) यह संकर जातियां पाई जाती हैं। इनका निकास इण्डो यूरोपियन जाति से है। नीग्रो जाति में से एक संकर जाति पैपुअन नीग्रो (Papuan Negro) निकली है जो आस्ट्रलिया के उत्तरवर्ती टापुयों में रहती हैं और मले जाति से एक संकट जाति आस्ट्रेलियन (Australian) निकली है जो आस्ट्रेलिया में रहती है।

यह आज कल के विद्वानों की सम्मति है। यद्यपि इस में आर्य्यवंश को अन्यान्य चार वंशों से पृथक् किया तथापि इस विषय में सब कोई सहमत है कि पृथिवी पर पांच प्रकार के वंश हैं। वेद के अनुसार इन सबों को आर्य्य कहना चाहिये क्योंकि पञ्चजन वा पञ्चचर्षणि आदि शब्द जहां जहां आए हैं वहां २ सब आस्तिक मनुष्यों से तात्पर्य्य है क्योंकि इन में यज्ञ आदि व्रत का विधान पाया जाता है और ये सब मिलकर ईश्वर उपासना करें। राजा को चुनें। अपने गृह पर ऋषियों को बुलावें इत्यादि उपरिष्ट मन्त्र द्वारा अनुशासन पाया जाता है।

यहां एक बात और भी ध्यान देने योग्यहै कि जहां जहां 'पञ्चजन'आदि शब्द आया है। वहां २ सायण प्रायः चार वर्ण और पञ्चम निषाद अर्थ करते हैं। इस से सिद्ध है कि मनुष्यमात्र वेद और यज्ञ के अधिकारी हैं। क्योंकि ये पांचों सब कार्य में समान हैं यह ऊपर के वाक्यों से विस्पष्ट किया गया है।

द्वितीय प्रश्न का समाधान।

प्रश्न-तब ब्राह्मण की इतनी प्रशंसा क्यों है ? समाधान=गुण के कारण अर्थात् पूर्व में कह चुके हैं आवश्यकतानुसार अनेक वर्ण बनते गए "वर्ण" शब्दार्थ चुनना है "वृञ् वरणे" जिस को जो व्यवसाय पसन्द आता था वह उस को किया करता था और उसी व्यवसाय के नाम पर उस को लोग पुकारा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करते थे। यद्यपि वेदों में अनेक वर्णों के नाम आए हैं तथापि ऋषि लोगों ने व्यवहार की सिद्धि के लिए "ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीत्" इत्यादि वेदों में लक्षण देख और इस शरीर में भी इन ही चार प्रकार के कार्य्यों को होते हुए निरख मनुष्यजाति को कर्म्मानुसार चार नाम ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र दिये। जैसे शरीर में शिर, हाथ, मध्यभाग और पैर सब ही एक प्रकार से बराबर हैं और एक दूसरे के सहायक हैं और चारों मिल कर ही एक सुन्दर शरीर बना हुआ है इन में से किसी एक के अभाव से इस का सर्व कार्य्य नहीं चलता वैसे ही मनुष्यजातिरूप शरीर में ये चारों वर्ण एक २ अंग हैं और एक दूसरे के सहायक हो परम सुन्दरता को बढ़ाते हैं इस में जन्म से न कोई श्रेष्ठ और न कोई नीच है। पुनः देखते हैं कि शैशवावस्था में सब ही अङ्ग शिथिल रहते हैं धीरे २ एक दूसरे की सहायता से सब अपने २ स्थान में पुष्ट होने लगते हैं। स्वभावतः इन में शिर सब से श्रेष्ठ बन जाता है क्योंकि दो नयन, दो कर्ण, दो घ्राण और एक जिह्वा ये सप्तर्षि इसी में निवास करते हैं इन की ही आज्ञा पर अन्यान्य अङ्गों को चलना पड़ता है इसी प्रकार जानिए कि जन्म समय में सब कोई बराबर हैं परन्तु जिस को ब्रह्मविद्या की शिक्षा दी गई स्वभावतः शिर के समान वह समाज में श्रेष्ठ बन जाता है क्योंकि प्रथम इस को अध्ययन का समय अधिक प्राप्त होता है इसी हेतु धार्मिक कर्म्मानुष्ठान का भार इसी के ऊपर छोड़ा जाता है वेद के पारंगत होने के कारण कर्तव्याऽकर्तव्य भी यही अधिक जानता है इस हेतु प्रत्येक व्यवस्था का कार्य्य भी विशेष कर इस की बुद्धि पर छोड़ा जाता है इस कारण ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मवादी जन की अधिक प्रशंसा होती है और होनी भी चाहिए इसी नियमानुसार सर्वत्र ब्राह्मण की प्रशंसा गाई गई है। समझ की बात है, मानो, एक किसी शास्त्र में चारों वेद के जानने वाले की बहुत प्रशंसा और मूर्ख की निन्दा लिखी गई है और लोक भी चतुर्वेदविद् पुरुष को बड़ी प्रतिष्ठा आदर सत्कार और मूर्ख की निन्दा करते हैं। जो चारों वेदों को जानता है उसे चतुर्वेदी कहते हैं। अब आप समझें कि कोई मूर्ख अपना और अपने वंशजों का नाम 'चतुर्वेदी' रख जिस २ शास्त्र में चतुर्वेदी की प्रशंसा है उस २ को ले लोगों को दिखलाता है कि देखो!

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस में चतुर्वेदी की कितनी प्रशंसा लिखी हुई है मैं चतुर्वेदी हूं मेरी पूजा सब कोई करो इत्यादि। आज यही लीला सर्वत्र है। आप लोग हम से पूछते हैं कि ब्राह्मण की प्रशंसा वेदों में भी है हम लोग ब्राह्मण हैं इसीहेतु हम श्रेष्ठ हैं अब आप बिचारें कि इसी मूर्ख की सी यह बात है या नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि वेद ब्राह्मण की प्रशंसा करते हैं परन्तु ब्राह्मण कौन ? जो षडङ्ग वेद शास्त्रों को पढ़ सत्यासत्य विवेक से पूर्ण है वह ब्राह्मण। परन्तु आज कल क्या हुआ है। अनपढ़ पुरुष भी अपने को ब्राह्मण कहते हैं। क्या वे ब्राह्मण हैं ? यथार्थ में अज्ञानता के कारण यह सब बखेड़ा है। सच बात यह है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र आदि शब्द अध्यापक, उपाध्याय, योद्धा, वीर, व्यवहारी, व्यवसायी, परिश्रमी, अज्ञानी, मूर्ख, उत्तम, निकृष्ट, सुन्दर, कोमल, कठोर आदि शब्द के समान गुणवाची हैं और वैदिक समय में इन के प्रयोग भी वैसे ही होते रहे। जब अज्ञानता विस्तृत होने लगी उस समय में धीरे २ ये ब्राह्मणादिक नाम वंशपरक होगये। जैसे आज कल भी अनेकनाम वंशपर हो गये हैं और होते जाते भी हैं। यथा उपाध्याय, मुख्योपाध्याय, पाठक, शास्त्री, द्विवेदी, चतुर्वेदी। जिस के समीप जाके विद्यार्थी अध्ययन करें उसे उपाध्याय; जो पढ़े पढ़ावे उसे पाठक; शास्त्र जाने उसे शास्त्री; दो वेद जाने उसे द्विवेदी इसी प्रकार चतुर्वेदी श्रोत्रिय आदि शब्दों के भी अर्थ समझें। परन्तु आज कल उपाध्याय आदि शब्द वंशपरक देखते हैं। मिथिला बंगाल आदि देशों में किसी वंश के लोग उपाध्याय कहलाते हैं कोई वंश श्रोत्रिय कोई चतुर्वेदी कोई शास्त्री इत्यादि। अर्थात् उस वंश का लोग परम मूर्ख भी हो एक अक्षर भी न जानता हो वह पढ़े या न पढ़े तथापि वह उपाध्याय वा श्रोत्रिय वा चतुर्वेदी आदि कहलाता ही रहेगा। मथुरा का चौबे एक अक्षर भी नहीं जानता हो परन्तु वह चतुर्वेदी पदवी से कदापि रहित नहीं हो सकता। मिथिला के सैकड़ों वंशों के पुरुष श्रोत्रिय कहते हैं परन्तु उन में से सैकड़े ९० कोरे निरक्षर हैं परन्तु इन की श्रोत्रिय पदवी कदापि नहीं चल सकती हैं। परन्तु आप यह भी जानते हैं कि यथार्थ में उपाध्याय श्रोत्रिय चतुर्वेदी आदि पुरुषों की शास्त्रों में बड़ी प्रशंसा कथित है। अब यदि ये श्रोत्रिय, चतुर्वेदी, उपाध्याय, पाठक आदि निरक्षर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होने पर भी कहा करें कि शास्त्रों में हमारी परम प्रशंसा है अतएव हम सर्व-श्रेष्ठ हैं तो यह सत्य हो सकता है ? क्या वे शास्त्रीय वाक्य इन निरक्षरों में कदापि घटते हैं ? नहीं । कदापि नहीं । इसी प्रकार आप लोग समझें कि ये ब्राह्मण क्षत्रिय आदि शब्द भी धीरे धीरे आजकल के उपाध्याय श्रोत्रिय आदि शब्दवत् वंशपरक होगये । वे ब्रह्मवित् हों वा नहीं परन्तु उस वंश के निरक्षर अज्ञानी भी ब्राह्मण कहलाते जावेंगे इसी प्रकार क्षत्रियादि भी जानिये । वेद और शास्त्र के वाक्य इन पर कदापि चरितार्थ नहीं होते । जो यथार्थ में ब्राह्मण हैं उन को ही वे वाक्य वर्णन करते हैं । ब्राह्मण यथार्थ में किस को कहते हैं इस का वर्णन वेद शास्त्रों में बहुत है । जैसे पशुओं में वा पक्षियों में वा जड़ आम्रादि वृक्षों में केवल आकृति वा रूप के देखने से उस २ जाति का बोध हो जाता है वैसा मनुष्य में नहीं है क्योंकि इस में चिन्ह की विशेषता नहीं इसी कारण मनुष्य एक जाति है यह भी अनेक प्रमाणों से पूर्व में सिद्ध कर चुके हैं । मनुष्यों मे केवल गुणों से ब्राह्मणादिक पहचाने जाते हैं । इसी कारण इन के कृत्रिम और स्वाभाविक बाह्य और आन्तरिक गुणों के बहुत से विवरण शास्त्रों में कहे गये हैं जिन से हम शीघ्र पहचान कर सकते हैं कि यह कौन वर्ण है । यह भी यहां स्मरण रखना चाहिये ये ही लक्षण जिन में घटें वे ब्राह्मण । अन्यथा नहीं । और इस से यह भी सिद्ध होता है कि पश्वादिकवत् मनुष्य में जाति की भिन्नता नहीं । इस कारण प्रथम यहां यह भी अति संक्षेप से दिखा देना समुचित होगा कि यथार्थ में ब्राह्मण के कौन २ से लक्षण हैं । तब मालूम हो जायगा कि यथार्थ में ब्राह्मण कौन हैं और क्यों इन की इतनी प्रशंसा है ।

य ऋत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति । यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्काश्चित्स तत्र यजमानस्य संवित् ॥ ८ । ५८ । १ ॥

(सचेतसः) सहृदय (ऋत्विजः) ऋत्विक्गण (यम्+इमम्+यज्ञम्) जिस इस यज्ञ को (बहुधा+कल्पयन्तः) अनेक प्रकार से कल्पित करते हुए (वहन्ति) सम्पादन कर रहे हैं और जिस यज्ञ में (यः+अनूचानः+ब्राह्मणः) जो मौनावलम्बी ब्राह्मण=ब्रह्मा (युक्तः+आसीत्) नियुक्त है (तत्र+यजमानस्य) उस यज्ञ के विषय में यजमान का (का+संवित्) क्या ज्ञान है ? ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनूचान=वेदाध्यायी, वा मौनावलम्बी। यज्ञ में ब्रह्मा को मौन रहना पड़ता है। अनु+ऊचान=अनूचान। अथवा न+ऊचानः अनूचानः। दोनों प्रकार से बन सकता है "अनूचानः प्रवचने साङ्गेऽधीती" अमर, इस से यह सिद्ध हुआ कि जो 'अनूचान' अर्थात् वेदाध्यायी हो अथवा यज्ञ में जो ब्रह्मा का कार्य सम्पादन करता हो और जिस के ऊपर यजमान का पूरा भरोसा हो। वह ब्राह्मण है। जो चारों वेदों के ज्ञाता होते हैं वे ही यज्ञ में ब्रह्मा बनाए जाते हैं। केवल ऋग्वेदी होता, केवल यजुर्वेदी अध्वर्यु, केवल सामवेदी उद्गाता और चतुर्वेदविद् ब्रह्मा होते हैं। इस से यह भी सिद्ध होता है कि एक वेदी ब्राह्मण नहीं हो सकता जो चारों वेद साङ्गोपाङ्ग सहित जाने वही ब्राह्मण है।

ओषधयः सम्वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ॥१०।९७।२२॥

यह आलङ्कारिक वर्णन है (सोमेन+राज्ञा+सह) ओषधीश्वर सोमनामक ओषधि से (ओषधयः+सम्वदन्ते) अन्यान्य ओषधिएं सम्वाद कर रही हैं कि (राजन्) हे सोमराजन्! (यस्मै) जिस रुग्ण पुरुष के निमित्त (ब्राह्मणः+करोति) ओषधिसामर्थ्यज्ञ ब्राह्मण चिकित्सा करता है (तम्+पारयामसि) उस रोगी को रोग से हम लोग पार कर देती हैं।

इस से सिद्ध है कि जो लोग ओषधियों के तत्त्वज्ञ हैं और जानकर रोगियों की चिकित्सा करते हैं वे ब्राह्मण हैं। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि पृथिवी पर के जितने क्या लताएं क्या वनस्पति क्या सुवर्ण लोहादि धातु क्या विविध पशु पक्षी पदार्थ हैं इन सबों के जानने वाले और प्रत्येक वस्तु के स्वभाव गुणादि के तत्त्वज्ञ हैं वे ब्राह्मण हैं क्योंकि वैद्यों को इस सब के ज्ञान की परम आवश्यकता होती है।

सम्वत्सरं शशयानाः ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥७।१०३।१॥

(व्रतचारिणः+ब्राह्मणाः) व्रतचारी ब्राह्मण के समान (संवत्सरं+शशयानाः) शरद् से लेकर वर्षा ऋतु के आगमन तक अपने विल में ही सोते हुए

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(मण्डूकाः) मण्डूक=दादुर वर्षा ऋतु में (पर्जन्यजिन्वताम्) मानो, पर्जन्य प्रीतिकर (वाचम्+प्र+अवादिषुः) वाणी बोल रहे हैं।

वेदाध्ययन, सत्यभाषण, सत्यरक्षण, विद्यादानादि व्रत जो सदा किया करते हैं वे ब्राह्मण हैं। यह इस से सिद्ध होता है।

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुते करासः। त एते वाचमभिपद्य पापया सिरी स्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः॥ १०।७१।६

(इमे+ये) जो ये लोग (न+अर्वाङ्+न+परः) न कुछ ऐहलौकिक न पारलौकिक (चरन्ति) पर्य्यालोचना करते हैं। और जो (न+ब्राह्मणासः) न वेदाध्ययन न ग्रन्थादि विचार करते हैं। और इस कारण जो (न+सुते+करासः) सोमादि यज्ञ नहीं कर सकते हैं। (ते+एते+अप्रजज्ञयः) वे ये अविद्वान् पुरुष (वाचम्+अभि+पद्य) लौकिक भाषा जान (पापया) पापा अर्थात् हास्यादि से भरी हुई वाणी से युक्त होके (सिरी=सिरिणः) केवल हलग्राही बन (तन्त्रम्) कृषिलक्षण तन्त्र को (तन्वते) विस्तारित करते हैं वा वस्त्रादि वयन सम्पादन करते हैं। अर्वाक्=नीचे अर्थात् इस लोक का कार्य्य। परः=ऊपर पारलौकिक कार्य्य। सुत=अभिषुत सोम। "सुतंसोमंकुर्वन्तीति सुतेकराः याज्ञिकाः"। सिरी सिरी=हलग्राही। तन्त्र=कृषि या पट। अप्रजज्ञि="ज्ञा अव बोधने" धातु से 'कि' प्रत्यय होकर जज्ञि बनता है। यहां ब्राह्मण शब्द का अर्थ वेदाध्यायी है। जो वेदों को नहीं जानता वह यज्ञाधिकारी नहीं है। इससे सिद्ध होता है जो वेदोंको पढ़े पढ़ावे वे ही सचमुच ब्राह्मण है परन्तु आज उलटी बात है वेद का एकाक्षर भी न जाने परन्तु श्रोत्रिय कुल में जन्म हो तो वह झट सर्वाधिकारी बन जाता है।

ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः।
सम्वत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव॥ ७।१०३।७

यह वर्षा ऋतु के मण्डूक का वर्णन है। (अतिरात्रे+सोमे) अतिरात्र नामक सोमयाग में (ब्राह्मणासः+न) ब्राह्मण के समान अर्थात् सोम यज्ञ के कृत्य में रात्रि में एकाएकी जैसे ब्राह्मण लोग मन्त्र उच्चारण करते हैं वैसे ही (मण्डूकाः) हे मण्डूको! आप सब भी (न) इस समय (पूर्णम्+सरः) पूर्ण सरोवर में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(अभितः+वदन्तः) चारों तरफ ध्वनि करते हुए (सम्वत्सरस्य+तदु+अहः) वर्षा ऋतु के दिन में (परि+स्थ) चारों तरफ फैल जाते हैं । (यत्) जिस से (प्रावृषीणं+बभूव) वर्षा का दिन आया यह प्रतीत होने लगता है । "ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत" । ऋ० ७।१०३ । ८ ॥ सोम सम्पादी वेदवित् पुरुष जैसे भाषण करते हैं "उद्गातेव शकुने साम गायसि ब्रह्मपुत्र इव सवनेषु शंससि" ॥ २ ४३ । २ ॥ जैसे यज्ञों में उद्गाता ऋत्विक् गाता है जैसे ब्रह्म पुत्र स्तोत्र पढ़ता है तद्वत् ये पक्षिगण गा रहे हैं । इत्यादि अनेकशः मन्त्र गण सूचित करते हैं कि ब्रह्मविद् ही ब्राह्मण है । ये प्रमाण वेदों से दिये अब आगे अन्यान्य आर्ष प्रमाण को भी सुनिये !

एतं वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाऽथभिक्षाचर्यं चरन्ति या ह्येव पुत्रैषणा सा वित्तैषणा या वित्तैषणा सा लोकैषणोभे ह्येते एषणे एव भवतस्तस्माद् ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेद्बाल्यञ्च पाण्डित्यञ्च निर्विद्याथ मुनिरमौनञ्च मौनञ्च निर्विद्याथ ब्राह्मणः स ब्राह्मणः केन स्याद्येनस्यात्तेनेदृश एवातोऽन्यदार्त्तं ततो कहोलः कौषीतकेय उपरराम ॥ बृ० ३ । १ ॥

अर्थः—इसी परमात्मा को जान कर ब्राह्मण पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणाओं से पृथक् हो पश्चात् शरीर निर्वाहार्थ भिक्षाचर्य्य करते हैं । जोही पुत्रैषणा है वही वित्तैषणा है और जो वित्तैषणा है वही लोकैषणा है यह दोनों एषणाएं अर्थात् कामनाएं हैं इसहेतु ब्राह्मण पाण्डित्य को अच्छे प्रकार जान बाल्यभाव से स्थित रहे और बाल्य और पाण्डित्य को जान तब मुनि होता है और अमौन और मौन को जान तब ब्राह्मण होता है वह ब्राह्मण किस से होता है जिस से होवे उस से ऐसा ही होवे इस के अतिरिक्त सब दुःखग्रस्त है। तब कहोल कौषीतकेय चुप होगया ।

इस वाक्य से विस्पष्ट है जो ब्रह्मविद् और पूर्ण विवेकी और ईश्वर में परम विश्वासी और सांसारिक क्षणिक सुख से सदा विमुख परम ज्ञानी है । वह ब्राह्मण कहलाता है । पुनरपि इसी उपनिषद् में कहा गया है "यो वा एत-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्माल्लोकात्प्रैति स कृपणोऽथ य एतदक्षरं गार्गि विदित्वास्माल्लोकात्प्रैति स ब्राह्मणः। बृहदारण्यक उपनिषद्। ३।८।१०। हे गार्गि! जो इस अक्षर ब्रह्म को न जान कर इस लोक से प्रस्थान करता है वह कृपण है और हे गार्गि! इस अक्षर ब्रह्म को जान कर इस लोक से जो प्रस्थान करता है वह ब्राह्मण, इस से भी यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मवित् को ही ब्राह्मण कहते हैं। इस प्रकार सर्वआर्षग्रन्थ इसी भाव का उपदेश देते हैं आगे महाभारतादि ग्रन्थ से भी प्रमाण दिये जावेंगे। यहां इतना समझना चाहिये कि वेद, शास्त्र जिन गुणों के कारण मनुष्य को ब्राह्मण कहते हैं निःसन्देह वे गुण बहुमूल्य अनर्घ हैं इस हेतु एतद्गुणविशिष्ट पुरुषों की प्रशंसा सर्वत्र कथित होना उचित है। अब आप समझ सकते हैं कि वेद में ब्राह्मणों की क्यों प्रशंसा है। आगे मैं महाभारतादिकों से ब्राह्मण के लक्षण पुनरपि निरूपण करूंगा। इस समय जिन ऋचाओं को द्वितीय प्रश्न में आपने प्रमाणत्वेन उपन्यास किया था उन का सस्वार्थ श्रवण कीजिये।

इमं देवा असपत्नꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्यैष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजासोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाꣳ राजा॥ यजुः।९।४०॥

राज्याभिषेक काल में इस मन्त्र के द्वारा राजा होने की घोषणा की जाती है। (देवाः) हे ऋषि मुनि गणो! हे विविध देशाऽऽगत विद्वद्गणो! हे सेनाध्यक्षादि वीर पुरुषो! हे प्रजानायको! आप सब कोई मिल कर (इमम्) इस वृत राजा को (असपत्नम्+सुवध्वम्) शत्रु रहित बना कर अपनी २ रक्षा में प्रेरणा कीजिये। किस निमित्त? (महते+क्षत्राय) महाबल के निमित्त (महते+जैष्ठ्याय) महान् ज्येष्ठता के लिये (महते+जानराज्याय) मनुष्यों के महान् आधिपत्य के लिये और (इन्द्रस्य+इन्द्रियाय) आत्मा के वीर्य्य के लिये अर्थात् आत्मज्ञान के लिए इन सब कार्य्यों के लिए इस वृत राजा को शत्रु रहित बनाओ। अब आगे राजा के माता पिता के और जिन प्रजाओं में वह राजा बनाया जाता है उनका नाम लिया जाता है सो आगे कहते हैं (अमुष्य+पुत्रम्) अमुक पुरुष का पुत्र (अमुष्यै+पुत्रम्) अमुक स्त्री का पुत्र (अस्यै-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विशः) इस कुरु देश वा पाञ्चाल देश अथवा महाराष्ट्रादि देश की प्रजाओं का अधिपति अमुक पुरुष बनाया जाता है इस को आप लोग स्वीकार करें। अब प्रजाओं की ओर देख कर कहते हैं कि (अमीः) हे अमुक देश की प्रजाओ !:(वः) आप लोगों का (एषः+राजा) यह राजा है। (अस्माकम्+ब्राह्मणानाम्) हम ब्राह्मणों का (सोमः +राजा) सोम अर्थात् ईश्वर राजा है। इस का भाव यह है कि ब्रह्मवित् परः मज्ञानी सदा परोपकार परायण निःस्वार्थ ब्रह्मवादी पुरुष का नाम ब्राह्मण है यह निरूपण हो चुका है। इस हेतु निःसन्देह ऐसे पुरुष का शासक ईश्वरातिरिक्त अन्य कौन हो सकता है। अन्तिम वाक्य से ब्रह्मवित् पुरुष की गुणस्तुति गाई गई है।

यत्र ब्रह्म च क्षत्रञ्च सम्यञ्चौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ॥ यजु० २०। २५॥

(तम्+लोकम्) उस देश को मैं (पुण्यम्+प्रज्ञेषम्) पुण्य समझता हूं (यत्र) जिस देश में (ब्रह्म+च+क्षत्रम्+च) ज्ञान और बल और ज्ञानी और बलिष्ठ (सह+चरतः) साथ ही सर्व व्यवहार का अनुष्ठान करते हैं। वे दोनों कैसे हैं (सम्यञ्चौ) साथ २ अच्छे प्रकार ईश्वर की उपासना करने वाले। पुनः वह देश कैसा है (यत्र+देवाः+सह+अग्निना) जहां पर के विद्वान् सदा अग्नि के साथ रहते हैं अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म्मों में सदा रत रहते हैं। इस से यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञान और बल मिल कर के जहां व्यवहार करते हैं यथार्थ में वह देश पवित्र है क्योंकि वहां अकारण धर्म्मरहित व्यर्थ मनुष्यादि वध नहीं होता है। अन्यथा बलिष्ठ पुरुष अकारण ही मनुष्यों को सर्व प्रकार से लूट मार करते हैं। कौन ऐसा आज देश है कि अज्ञानी परन्तु बलसम्पन्न राजा के कारण सहस्रों मनुष्यों का संहार नहीं होता रहता। पुनः आगे कहा गया है कि "यत्र देवाः सहाग्निना" केवल ज्ञान और बल से भी कार्य्य में कभी २ विघ्न पड़ जाता है। इस के साथ २ कर्मानुष्ठान की भी परम अपेक्षा है क्योंकि कर्मानुष्ठान ईश्वर में विश्वास दिलाता है। ईश्वर-विश्वासी ज्ञानी और बलिष्ठ कर्म्म में प्रवृत्त होते हैं ऐसे पुरुष सदा ईश्वर की आज्ञा से डरते रहते हैं इसी कारण ऐसे २ राज्य में अकारण हिंसा आदि दोष कदापि नहीं होते यह वेद का भाव है। पुनः।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न ब्राह्मणो हिंसितव्योग्निः प्रियतनोरिव।
सोमो ह्यस्यदायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः। अथर्व०।५।१८।६

(अग्निः) अग्नि के समान ज्ञानविज्ञानरूप ज्योति से प्रकाशमान (ब्राह्मणः+न+हिंसितव्यः) ब्राह्मण की हिंसा नहीं करनी चाहिए। (प्रियतनोः+इव) जैसे अपने प्रिय शरीर के किसी भाग को हानि कोई नहीं पहुंचाना चाहता है तद्वत् ब्राह्मण को क्षति न पहुंचावे। (हि) क्योंकि (सोमः+अस्य+दायादः) ईश्वर इस का बन्धु बान्धव है और (इन्द्रः) पृथिवीश्वर (अस्य+अभिशस्तिपाः) इस के यश का रक्षक हैं। हम पूर्व में कह चुके हैं कि ब्राह्मण किस को कहते हैं। ऐसे ब्राह्मण की हिंसा करने से क्या कभी देश में कुशल हो सकता है। नहीं। इस हेतु बारम्बार वेद भी कहते हैं कि ज्ञानी की रक्षा करो। परन्तु अज्ञानता की बात यहां यह है कि जैसे कोई अज्ञानी पुरुष अपने को चतुर्वेदी नाम रख शास्त्रोक्त चतुर्वेदी की प्रशंसा अपने पर घटावे वैसी ही आज लीला है। विद्वानो ! सोचो विचारो ! जो यथार्थ में ब्राह्मण हैं उन की तो प्रतिष्ठा मर्य्यादा होनी आवश्यक है। परन्तु ये वाक्य क्या किसी जाति विशेष पर घटते हैं ? नहीं। यह सब वर्णन सामान्य रीति से ब्रह्मज्ञानी पुरुष का है। ब्रह्मज्ञानी की परम वृद्धि होवे इस कारण अथर्ववेद ब्राह्मण अर्थात् ब्रह्मज्ञानी की स्तुति करता है न कि यह वेद किसी जाति की खास तौर पर कीर्ति गाता है। अब आप विचार सकते हैं कि अथर्ववेद क्यों ब्राह्मण की प्रशंसा करता है। यह सर्वदा स्मरण रखना चाहिए कि वेदों में वंशानुगत वर्ण नहीं है किन्तु गुणानुगत वर्ण है।

तं वृक्षा अपसेधन्ति छायां नो मोपगा इति।
यो ब्राह्मणस्य सदनमभि नारद मन्यते ॥ अथर्व०। ५। १९। ९॥

(नारद) हे नादर ! अर्थात् ईश्वरीय ज्ञानरत पुरुष ! (यः) जो कोई (ब्राह्मणस्य+सद्+धनम्) ब्राह्मण के परोपकारी परिश्रमोपार्जित धन को (अभि+मन्यते) निष्कारण छीनता है वा उस पर अपना अधिकार स्थापित करता है (तम्+वृक्षाः+छायाम्+अपसेधन्ति) उस पुरुष को जड़ वृक्षादिक भी शरण नहीं देते हैं और प्रत्येक अज्ञानी पुरुष उस से कहते हैं कि ऐ ब्रह्महा पुरुष ! (नः) हम लोगों के निकट तू (मा+उपगा) मत आया कर।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्" का व्याख्यान बहुत कर चुके हैं। आप लोगों ने अब बहुत कुछ वेदों के मन्त्रों पर विचार कर लिया होगा क्योंकि मैंने अनेक मन्त्र आप लोगों को सुनाए। अब आप विद्वद्गण निष्पक्षभाव से मीमांसा करें कि वेद किस प्रकार के वर्ण विभाग मानते हैं और किस हेतु ब्राह्मण की इतनी प्रशंसा है। द्वितीय प्रश्न का समाधान अच्छे प्रकार से होगया अब आप लोगों का सन्देह भी दूर होगया होगा ऐसा हम विश्वास करते हैं।

इति तृतीयं ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीदित्यादि व्याख्यान निर्णयप्रकरणं समाप्तम्।

अथ तृतीयादि प्रश्न समाधान प्रकरणम्।

तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम आदि प्रश्नों के समाधान जानने के लिये प्रथम इसकी आवश्यकता है कि वैदिक सिद्धान्त की रक्षा के लिये प्राचीन ऋषियों ने कौनसे उपाय किये थे। आप लोग श्रवण कर चुके हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ये चारों समाज के अंग हैं। केवल दस्यु वा दास उपद्रवी पुरुष को कहते हैं। ये आर्य्यों से पृथक् गिने गये हैं। परन्तु 'शूद्र' समाज से शरीर से चरणवत् पृथक् नहीं "तपसे शूद्राय" कठिन कठिक कार्य्य सम्पादक को शूद्र कहते हैं। इन चारों का पठन पाठन में, यज्ञादि शुभ कार्य्य में तुल्याधिकार है यह 'पञ्चमानव' प्रकरण में अच्छे प्रकार सिद्ध हो चुका है। अब आप वैदिक ज्ञान की रक्षार्थ प्राचीन लोगों ने जो उपाय किये सो सुनिये! प्रथम नियम किया गया कि मनुष्य मात्र विद्याध्ययन करें और उनका एक नाम 'द्विज' रक्खा जाय। इस द्विज में विद्या के न्यूनाधिक के विचार से तीन भाग किये जायं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और जो न पढ़ें उनकी संज्ञा व्रात्य, असंस्कृत, वृषल, शूद्र आदि रक्खी जाय। जो पञ्चम वर्ष से लेकर १६ सोलहवें वर्ष तक भी गुरुकुल में प्रविष्ट हो व्रतादि धारण पूर्वक ४८ वा ३६ वर्ष केवल विद्याध्ययन में लगावे वह द्विज ब्राह्मण कहला सकता है। जो सोलवें वर्ष तक भी गुरुकुल

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

में प्रविष्ट न हो सके अथवा होकर भी पूर्ण समय तक अध्ययन न कर पावे वह यदि २२ वाईसवें वर्ष तक भी गुरुकुल में प्रविष्ट होवे तो वह क्षत्रिय बन सकता है। ब्राह्मण नहीं। इसी प्रकार २२ वें वर्ष में गुरुकुल में प्रविष्ट न हो सके किन्तु २३ वें अथवा २४ वें वर्ष में प्रविष्ट हो तो वह ब्राह्मण और क्षत्रिय पद को तो प्राप्त नहीं कर सकता किन्तु वह वैश्य बन सकता है। इस के साथ २ एक यह भी नियम था कि जिस का माता पिता अथवा वंश का वंश अथवा वंशपरम्परा अध्ययन व्रत के छूटने से शूद्र होगई है वह यदि अपने सन्तान को विद्या पढ़ाना चाहता हो तो नियमानुसार वह बालक ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य बन सकता है। इस प्रकार विद्याध्ययन न करने वाले को केवल व्रात्य वा शूद्र ही कह कर नहीं रहजाते थे किन्तु इन असंस्कृतों के साथ द्विज न तो पठन पाठन का और विवाहादिक का सम्बन्ध न रखते थे। वे व्रात्य समाज बहिष्कृत होजाते थे। इन में दो एक प्रमाण देते हैं वे ये हैं।

गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत् ॥१॥ गर्भैकादशेषु क्षत्रियम् ॥२॥ गर्भद्वादशेषु वैश्यम् ॥३॥ आषोडषाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवत्याऽऽद्वाविंशात् क्षत्रियस्याऽऽचतुर्विंशाद्वैश्यस्य ॥ गोभिलीय गृह्यसूत्र द्वितीय प्रपाठक दशमी काण्डिका ॥

ऐसे ही वचन अन्यान्य गृह्य सूत्रों में भी हैं। भाव यह है कि गर्भ के दिन से अष्टम वर्ष में ब्राह्मण का, गर्भैकादश वर्ष में क्षत्रिय का, गर्भ से द्वादश वर्ष में वैश्य का उपनयन होना चाहिये। यदि इस काल में न हो सके तो १६ वें वर्ष तक ब्राह्मण का, २२ वें तक क्षत्रिय का और २४ वें तक वैश्य का उपनयन अवश्य हो जाना चाहिये। मनुस्मृति में भी ऐसे ही वचन हैं यथाः—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत-ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भैकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशेविशः ॥ ३६ ॥ मनु० २
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ ३८ ॥

इस का भी अर्थ पूर्ववत् ही है। अब आगे दिखलाते हैं कि इतने समय में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भी जो विद्याध्ययन के हेतु गुरुकुल में प्रविष्ट नहीं हुआ है उस के साथ किसी प्रकार का व्यवहार नहीं करे। यथा—

अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति ॥ ५ ॥ नैनामुपनयेयुर्नाध्यापयेयु र्न याजयेयुर्नैभिर्विवहेयुः ॥ गोभिलीय गृह्यसूत्र ॥

अत ऊर्ध्वं त्रयोप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता ब्रात्या भवन्त्यार्य्यविगर्हिताः ॥ ३९ ॥ मनु० २
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्।
ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धान् आचरेन्मानवैःसह ॥ ४० ॥

इस के अनन्तर मनुष्य वेदाधिकार से रहित होजाते हैं। इन को पुनः उपनयन न करावे, न पढ़ावे, न यज्ञ करावे, न इन के साथ विवाहादि व्यवहार करे। मनु जी भी यही कहते हैं। विशेष यह है कि अध्ययन व्रत से रहित पुरुष 'व्रात्य' कहलावें और आर्य्यों में वे निकृष्ट नीच माने जांय। आपत्तिकाल में भी इन अपवित्र मनुष्यों के साथ ब्राह्म और यौन सम्बन्ध अर्थात् वेदाध्ययनाध्यापन और विवाहादिक सम्बन्ध न जोड़े।

अब इस पर विचार कीजिये कि ब्राह्मण कौन है और शूद्र किस को कहते हैं?। बात यह है कि हम लोग धर्म ग्रन्थों पर ध्यान नहीं देते हैं। प्रचलित व्यवहार को धर्म्म मान सर्वथा धर्म्म विच्छेद करते हैं। आप लोग देखते हैं कि मनुप्रभृति धर्म्म तत्त्ववित् पुरुष वर्णव्यवस्था किस पर निर्भर रखते हैं। इन का विस्पष्ट कथन है कि उन्हीं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के पुत्र अनधीत रहने पर परम अग्राह्य अस्पृश्य शूद्र बन जाते हैं। इतनाही नहीं किन्तु इन के साथ जन्म भर किसी प्रकार के व्यवहार न करे। इस हिसाब से आज प्रायः सब ही महाशूद्र हैं क्योंकि नियम से कोई एक पुरुष भी गुरुकुल में अध्ययन नहीं करता है और इसी नियमानुसार शूद्रों की निन्दा है क्योंकि धर्म शास्त्रादिकों में इन्हीं असंस्कृत व्रासों को शूद्र पदवी दी गई है अब आप लोगों को प्रतीत होगया होगा कि शूद्रों की निन्दा क्यों कथित है। शूद्र कोई जाति विशेष नहीं अनधीत पुरुष का नाम ही शूद्र यहां है, आगे चल कर मनुजी बड़े जोर देकर कहते हैं कि:—

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान् ।
तान् सावित्रीपरिभ्रष्टान् व्रात्यानिति निर्दिशेत् ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अपनी सवर्णा स्त्रियों में भी यदि अव्रती पुत्रों को उत्पन्न करें अर्थात् अपने पुत्रों को उपनयन संस्कार न करें करावें तो वे वेद के अनधिकारी माने जांय और उन की संज्ञा 'व्रात्य' होवे । इस प्रकार अध्ययन के ऊपर ही वर्णव्यवस्था बांधी है ।

ऐतरेयादि ऋषि और वर्णपरिवर्तन ।

अब हम आपको बहुत से उदाहरण दिखलाते हैं कि जो दास दासी के पुत्र थे परन्तु वे ऐसे विद्वान् हुए कि जिन के लिखित ग्रन्थ पढ़ पढ़ाकर लोग वैदिक बनते हैं । उन में से प्रथम ऐतरेय ऋषि हुए हैं । इन्होंने ऋग्वेद के ऊपर अनेक ग्रन्थ लिखे । ऐतरेय ब्राह्मण, ऐतरेयोपनिषद् आदि । ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार ही संपूर्ण ऋग्वेदीय श्रौत और गृह्यसूत्र हैं और इसी के अनुसार सारे वैदिक याग सम्पादित होते हैं । वे ऐतरेय ऋषि दासी पुत्र थे । 'महीं' इन की माता का नाम था और इन की माता नीचजाति की दासी थी इस कारण इस को 'इतरा' भी कहते थे । 'इतरा' शब्दार्थ ही नीच है यथा-"इतरस्त्वन्यनीचयोः" अमरकोश॥ ये दासीपुत्र होने पर भी इतने बड़े विद्वान् हुए हैं कि जिन के लिखित ग्रन्थ विना ऋग्वद का तत्त्व ही नहीं खुलता है । द्वितीय कवष ऐलूष हुए हैं । इन के विषय में ऐतरेय ब्राह्मण इस प्रकार लिखता है यथाः-

"ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत । ते कवषमैलूषं सोमादनयन् । दास्याः पुत्रः कितवोऽब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति ? तं बहिर्धन्वोदवहन् । अत्रैनं पिपासा हन्तु । सरस्वत्या उदकं मा पादिति । स बहिर्धन्वोदूढः पिपासयाविन्द एतदपोनप्त्रीयमपश्यत् । तेवाऋषयोऽब्रुवन् विदुर्वा इमंदेवा इमं ह्वयामहै इति तथेति । इत्यादि ॥ ऐतरेयब्रा० २ । १९ ।

ऋषि लोग सरस्वती के तट पर यज्ञ करते थे । उन्हों ने कवष ऐलूष को यज्ञ से बाहर निकाल दिया क्योंकि एक तो वह दासीपुत्र और दूसरा कितव (जुआरी) था और अपने आचरणों से बहुत ही भ्रष्ट था । पश्चात् इस

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने अध्ययनरूप महाव्रत को धारण किया है और सम्पूर्ण ऋग्वेद का अध्ययन करने पर उसे वेद के नवीन २ विषय भासित होने लगे। यह देख ऋषियोंने उसे बुलवाया इतनाही नहीं किन्तु उसे आचार्य बनाकर यज्ञ किया। आप देखें कि एक दासीपुत्र की कितनी प्रतिष्ठा हुई। तृतीय सत्यकाम जाबाल हैं। यह वेश्यापुत्र थे इन की चर्चा आगे पुनः कीजायगी ये ऐसे वेदान्ती हुए जिन के अनुकरण से आज लोग वेदान्ती बनते हैं। अब पुराणों से अनेक उदाहरण यहां दिखलाते हैं। इन पर विचार कीजिये।

मनोर्वंशो मानवानां ततोऽयं ग्रथितोऽभवत्।
ब्रह्मक्षत्रादयस्तस्मान्मनोर्जातास्तुमानवाः ॥१५॥ आदिप०७५॥

महाभारत के इस श्लोक से सिद्ध है कि मनुजी से सब मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। इसी कारण मनुष्य वा मानव वा मनुज नाम प्रसिद्ध हुआ। इन से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र हुए। मनु कौन हैं इस का भी वर्णन बहुत कुछ हो चुका है। यहां संक्षेप से दिखाया जाता है कि सूर्य्य और चन्द्र दो वंश क्षत्रियों के कहे जाते हैं इन का वंश किस प्रकार बना और इन में कैसे नानावर्ण उत्पन्न हुए। यह प्रकरण रोचक है। हम प्रथम विष्णु पुराण से आरम्भ करते हैं। विष्णुपुराण के चतुर्थ अंश के प्रारम्भ से ही देखिये। मैत्रेयउवाच० "श्रोतुमिच्छाम्यहं वंशांस्तांस्त्वं ब्रूहि मे गुरो"। अ० १। २॥ प्रथम पराशर जी से मैत्रेय पूछते हैं कि हे गुरो! आपने कृपा कर मुझ को नित्य नैमित्तिक कर्म्म, वर्णधर्म्म और आश्रमधर्म्म कह चुके अब मैं वंशों का वर्णन सुनना चाहता हूं। सो आप कहें। पराशर उवाच "मैत्रेय श्रूयतामयमनेक यज्ञिवीरशूरभूपालालंकृतो ब्रह्मादे र्मानवो वंशः"। हे मैत्रेय! इस मानव वंश को सुनो। जिस से अनेक याज्ञिक शूर, वीर, भूपाल, हुए हैं और जिस का मूल कारण ब्रह्मा है।

ब्रह्मणश्च दक्षिणाङ्गुष्टजन्मा दक्षःप्रजापतिर्दक्षस्याप्यदिति
रदितेर्विवस्वान् विस्वतोमनुः मनोरिक्ष्वाकु नृग धृष्ट शर्य्याति
नरिष्यन्त पांशु नाभागनेदिष्ट करूष पृषध्राद्याः पुत्रा बभूवुः ४।१।७

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

'ब्रह्मा के दक्षिण अंगुष्ठ से दक्ष प्रजापति हुए। दक्ष की अदिति कन्या हुई। अदिति से विवस्वान्। विवस्वान् से मनु उत्पन्न हुए और मनु के इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, पांशु, नाभागनेदिष्ठ, करूष और पृषध्र। मनुजी से इस प्रकार अनेक वंश चले। अब मनु के पुत्रों के विषय में पृथक् २ लिखते हैं।

१ पृषध्र।

पृषध्रस्तु गुरु-गोवधाच्छूद्रत्वमगमत्। विष्णु पु०। ४। १। १४।

गुरु की गौ के वध से पृषध्र शूद्र होगया। इसी विषय में हरिवंश कहता है।

पृषध्रोहिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय।
शापाच्छूद्रत्व मापन्नः॥ ९५६ श्लोक।

हे जनमेजय! पृषध्र गुरु की गौ मारकर शूद्र होगया। इस विषय में भागवत यों कहता है।

पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरणा कृतः।
पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः॥ ३॥
एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति।
शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता वध्रमुद्व्रजे॥ ४॥
एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा।
तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससारह॥ ५॥
खड्ग मादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि।
अजानन्नहनद् बध्रोः शिरः शार्दूलशंकया॥ ६॥
मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा।
अद्राक्षीत्स्वहतां बध्रूं व्युष्टायां निशि दुःखितः॥ ८॥
तं शशाप कुलाचार्य्यः कृतागस मकामतः।
न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्म्मणा भविताऽमुना॥९॥
एवंशप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृतांजलिः।
अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम्॥१०॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एवं प्रवृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम् ।
तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥१४॥

मनु-पुत्र पृषध्र को गुरु वसिष्ठ ने गोपालक बनाया वह तत्पर हो रात्रि में वीरासन लगा गौवों की रक्षा करने लगा ॥३॥ एक समय रात्रि में मेघ बरसते हुए एक व्याघ्र गोशाला में आघुसा । गौएं उठ कर भयभीत हो गोष्ठ में हलचल मचाने लगीं ॥४॥ उस व्याघ्र ने एक गौ पकड़ ली । वह गौ भयातुर होकर बहुत चिल्लाने लगी । उस का रोदन सुन पृषध्र निकला ॥५॥ रात्रिमें अन्धकार छागया था । तारागण भी नहीं थे वह पृषध्र हाथमें खड्ग ले व्याघ्र की शंका से अपनी कपिला गौ के शिर पर मारा ॥६॥ उस ने समझा कि शार्दूल मरा। परन्तु प्रातः काल उठ देखता है कि कपिला गौ मरी हुईहै । वह बहुत दुःखित हुआ ॥८॥ अज्ञानतः अपराधी पृषध्र को कुलाचार्य ने शाप दिया कि इस कर्म्म से क्षत्रियों में अधम होकर भी नहीं रहेगा किन्तु शूद्र ही होगा ॥९॥ इस ने कृताञ्जलि हो गुरु के शाप को ग्रहण किया । इस के अनन्तर वह शूद्र होकर ऊर्ध्वरेता हो मुनिप्रिय तपस्या करने लगा भगवान में बड़ी प्रीति और भक्ति की अन्त में बन में दावाग्नि देख अपने शरीर को दग्ध कर दिया और ब्रह्म को प्राप्त हुआ (१)

२ करूष ।

करूषात् कारूषा महाबलाः क्षत्रियाः बभूवुः । विष्णुपु० ४।१।०५

करूष से महाबलिष्ठ क्षत्रिय उत्पन्न एहु । इस पर भागवत की सम्मति ।

कारूषान्मानवा दासन् कारूषाः क्षत्रजातयः
उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्म्मवत्सलाः । भा० ९।२।१५

मनु-पुत्र कारूष से कारूष नामक क्षत्रिय हुए जो उत्तर देश के रक्षक और धर्म्मवत्सल और ब्राह्मण हुए ।

(१) यह पृषध्र शूद्र होने पर भी बड़ी तपस्या की और अन्त में ब्रह्म में लीन हुआ । परन्तु रामायण में शूद्र को तपस्या निषिद्ध है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

३ नाभाग ॥

नाभागो नेदिष्टपुत्रस्तु वैश्यतामगमत् । वि० ४।१।१३

नेदिष्ठ पुत्र नाभाग वैश्य हुए ।

यद्यपि नाभाग वैश्यवृत्ति करने लगे परन्तु इनके सन्तान पुनः राजा भी हुए हैं अर्थात् वैश्य से पुनः क्षत्रिय हुए । इन का वंश इस प्रकार विष्णु पुराण में कहा है । नाभाग, भलन्द, वत्सप्रि, प्रांशुखनित्र, चक्षुष, विंश, त्रिविंश चरनीनेत्र, अतिभूति, करंधम अविक्षि, मरुत्त । ये उत्तरोत्तरपुत्र और पूर्व पूर्व पिता हैं ऐसा जानना ।

मरुत्त के विषय में विष्णुपुराण कहता है

यस्येमावद्यायि श्लोकौ गीयेते । मरुत्तस्य यथायज्ञस्तथा कस्या भवद्भुवि । सर्वं हिरण्मयं यस्य यज्ञवस्त्वति शोभनम् ॥१८॥

अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ।
मरुतः परिवेष्टारः सदस्याश्चदिवौकसः ॥१९॥
मरुतश्चक्रवर्ती नरिष्यन्तनामानं पुत्रमवाप इत्यादि ।२०।

आज भी मरुत्त चक्रवर्ती राजा के सम्बन्ध में ये दो श्लोक गाए जाते हैं । मरुत्त का जैसा यज्ञ हुआ पृथिवी पर वैसा यज्ञ किस का हुआ । जिस के यज्ञ में सब ही वस्तु हिरण्यमय थी । सोमरस से इन्द्र अत्यानन्दित हुए और दक्षिणायों से ब्राह्मण । देव सदस्य और मरुद्गणा उस यज्ञ में अन्न परोसने वाले थे । इत्यादि । यह मरुत्त चक्रवर्ती राजा हुए । इन के एक पुत्र नरिष्यन्त हुआ । इस वैश्य वंश में अनेक ऋषि भी हुए हैं ।

श्रीमद्भागवत नवमस्कन्ध द्वितीयाध्याय में भी इसी प्रकार का वर्णन है । यथा

तस्यावीक्षित् सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ।
संवर्तो याजयद्यं वै महायोग्यंगिरः सुतः ॥२६॥
मरुत्तस्य यथायज्ञो नतथाऽन्यस्यकश्चन ।
सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत् किञ्चिच्चास्य शोभनम् ॥२७॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हरिवंश (११) में कहा गया है कि नाभागरिष्ट के दो पुत्र वैश्य से ब्राह्मण हुए। यथाः-

नाभागारिष्ट पुत्रौ द्वौ वेश्यौ ब्राह्मणतांजातौ।

४ धृष्ट

धृष्टस्यापि धार्ष्टकं क्षत्रं समभवत्। वि० ४।२।२

विष्णुपुराण कहता है कि धृष्ट से धार्ष्टक क्षत्रिय उत्पन्न हुए। इसी विषय में भागवत कहता है।

धृष्टाद्धार्ष्टमभूत्क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतांक्षितौ। ९।२। २७॥

धृष्ट से धार्ष्ट क्षत्रिय हुए। पुनः क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए।

५ अग्निवेश्य।

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत्सुतः॥२१॥
ततो ब्रह्मकुलं जातमग्निवेश्यायनं नृप॥२२॥

अग्नि वेश्य के विषय में भागवत कहता है देवदत्त के पुत्र अग्नि वेश्य हुए। कानीन जातूकर्ण ऋषि नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इन के वंश में अग्निवेश्य गोत्रवाला ब्राह्मण वंश उत्पन्न हुआ। इत्यादि

६ रथीतर।

एते क्षत्रप्रसूता वै पुनश्चांगिरसः स्मृताः।
रथीतरस्य प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः॥२॥

विष्णुपुराण चतुर्थ अंश द्वितीयाध्याय में लिखा है कि नभग, नाभाग, अम्बरीष, विरूप, पृषदश्व, और रथीतर उत्तरोत्तर पुत्र हुए। ये सब यद्यपि क्षत्रिय थे परन्तु रथीतर गोत्र के ब्राह्मण होगए।

इस विषय में भागवत कहता है।

रथीतरस्याप्रजस्य भार्य्यायां तन्तवेऽर्थितः।
अंगिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान्॥२॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतेक्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वांगिरिसाः स्मृताः ।
रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेताः द्विजातयः ॥२३॥ ९।६।

उस रथीतर के सन्तान हीन होनेपर पुत्रोत्पत्ति के लिये प्रार्थित अङ्गिरा ने रथीतर की स्त्री में अनेक ब्रह्मवर्चस्वी पुत्र उत्पन्न किये। वे आंगिरस गोत्र वाले ब्राह्मण हुए। रथीतर की अन्य स्त्री के पुत्र रथीतर गोत्र वाले क्षत्रिय हुए। इत्यादि कथा देखिये।

७ हारीत

अम्बरिषस्य मांधातुस्तनयस्य युवनाश्वः पुत्रोऽभूत् ।
तस्माद्धरितो यतोऽङ्गिरसो हारीताः ॥ वि० ४।३।५ ॥

मांधाता का पुत्र अम्बरीष। उस का पुत्र युवनाश्व। इस के वंश में हरित। हरित से जो वंश चले वे अंगिरस और हारीत गोत्र वाले ब्राह्मण हुए। लिङ्ग पुराण कहता है कि:—

हरितो युवनाश्वस्य हारीता यत आत्मजाः ।
एतेह्यङ्गिरसः पक्षे क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥

युवनाश्व का पुत्र हरित। हरित के हारित पुत्र हुए। वे आङ्गिरा के पक्ष में हुए अर्थात् क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। वायु पुराण कुछ भिन्न प्रकार से वर्णन करता है यथा:—

हरितो युवनाश्वस्य हारीता भूरयः स्मृताः ।
एतेह्यंगिरसः पुत्राः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥

युवनाश्व का पुत्र हरित हुआ। इस के गोत्र में अनेक हारीत कहलाने लगे वे आङ्गिरा स हुए और पीछे क्षत्रिय से ब्राह्मण बने।

८ शौनक।

क्षत्रवृद्धात् सुनहोत्रः पुत्रोऽभवत् काश,लेश, गृत्समदा, स्त्रयोऽस्याभवन्। गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्य प्रवर्तयिताऽभूत ॥ १ ॥ काशस्य काशिराजस्ततो दीर्घतमापुत्रोऽभूत धन्वन्तरिस्तुदीर्घतमसोऽभूत ॥ वि० पु० ४ । ८ । १ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षत्रवृद्ध का सुनहोत्र पुत्र। सुनहोत्र के काश,लेश और गृत्समद तीन पुत्र हुए। गृत्समद का शौनक पुत्र हुआ। इसी ने चारों वर्णों की व्यवस्था चलाई। काश का काशिराज। उस से दीर्घतमा। उस से धन्वन्तरि। वायुपुराण इस विषय में यों कहता है:—

पुत्रोगृत्समदस्य च सुनकोयस्य सौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच॥
एतस्य वंशसंभूता विचित्रा कर्म्मभिर्द्विज।

गृत्समद का पुत्र सुनक। सुनक का पुत्र सौनक इस सौनक से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चारों वर्ण कर्म्मों से बने।

हरिवंश की सम्मति अध्याय ॥ २९ ॥

पुत्रोगृत्समदस्यापि सुनको यस्य शौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच॥

९ गृत्समति।

इस के विषय में ऐसा ही हरिवंश ३२ अध्याय में कहा है:—

सचापिवितथः पुत्रान् जनयामास पञ्चवै।
सुहोत्रञ्च सुहोतारं गयं गर्गं तथैवच।
कपिलञ्च महात्मानं सुहोत्रस्य सुतद्वयम्॥
काशकश्च महासत्यस्तथागृत्समतिर्नृपः।
तथागृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः॥

वितथ के पांच पुत्र हुए। सुहोत्र, सुहोता, गय, गर्ग, कपिल। सुहोत्र के महासत्त्व काशक और गृत्समति दो पुत्र हुए। गृत्समति के सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों हुए। क्षत्रवृद्ध के विषय में भागवत ॥ ९। १७। २

क्षत्रवृद्धसुतस्यासन् सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः।
काश्यः कुशो गृत्समद इतिगृत्समदादभूत्॥
शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षत्रवृद्ध का पुत्र सुहोत्र । सुहोत्र के तीन पुत्र हुए । काश्य, कुश, गृत्समद । गृत्समद का शुनक । और शुनक से शौनक जो ऋग्वेदियों में श्रेष्ठ मुनि हुए ।

गृत्समद ॥

द्वितीय मण्डल के आरम्भ में सायण इस प्रकार कहते हैं ।

मण्डलद्रष्टा गृत्समद ऋषिः । स च पूर्वमांगिरसकुले शुनहोत्रस्य पुत्रः सन् यज्ञकालेऽसुरैर्गृहीतः इन्द्रेणमोचितः । पश्चात्तद्वचनेनैव भृगुकुले शुनकपुत्रो गृत्समदनामाऽभूत् । तथाचानुक्रमणिका ।

य आङ्गिरसः शौनहोत्रोभूत्वा भार्गवः शौनकोऽभवत् स गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत् ।

द्वितीय मण्डल के द्रष्टा गृत्समद ऋषि हैं । वह प्रथम आंगिरस कुल में शुनहोत्र के पुत्र थे । यज्ञ में असुरों ने उन्हें पकड़ लिया । तब इन्द्र ने रक्षा की । इन के ही वचन से भृगुकुल में शुनक पुत्र गृत्समद के नाम से प्रसिद्ध हुए जैसा कि अनुक्रमणिका में लिखा है । जो शौनहोत्र आंगिरस थे पीछे वह शौनक भार्गव गृत्समद हुए जिन्हों ने द्वितीय मण्डल देखा ।

महाभारत अनुशासन पर्व में वीतहव्य की आख्यायिका के साथ गृत्समद का वर्णन आया है ।

वीतहव्य और गृत्समद ।

युधिष्ठिर उ०—श्रुतं ते महदाख्यान मेतत्कुरुकुलोद्भव ।
सुदुष्प्रापं यदब्रवीषि ब्राह्मण्यं वदतांवर ॥ १ ॥
विश्वामित्रेण च पुरा ब्राह्मण्यं प्राप्त मित्युत ।
श्रूयते वदसे तच्च दुष्प्रापमिति सत्तम ॥ २ ॥
वीतहव्यश्चनृपतिः श्रुतोमे विप्रतांगतः ।
स केनकर्म्मणा प्राप्तो ब्राह्मण्यं राजसत्तम ३ अनु० ॥ ३०

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भीष्मपितामह से युधिष्ठिर पूछते हैं कि आप कहते हैं कि ब्राह्मणत्व दुष्प्राप है। परन्तु विश्वामित्र ब्राह्मण हुए। यह भी सुना है कि वीतहव्य भी ब्राह्मण हुए। हे पितामह! वीतहव्य की कथा सुनाइये। किस तपस्या से वह ब्राह्मण हुए

भीष्म उवाच-शृणु राजन् यथा राजा वीतहव्यो महायशाः।
राजर्षिर्दुर्लभं प्राप्तो ब्राह्मण्यं लोकसत्कृतम् ॥ ५ ॥

भीष्म कहते हैं कि सुनो जिस प्रकार वीतहव्य ब्राह्मण हुए। वीतहव्य और काशि-राज के सन्तानों में बराबर युद्ध होता रहा। सर्व नाश होने पर काशीराज दिवोदास भरद्वाज की शरण में गए। भरद्वाज के यज्ञ करने से दिवोदास को एक पुत्र प्रतर्दन नाम का हुआ। इस ने वीतहव्य के सकल दायादों को युद्ध में मार गिराया। वीतहव्य भागकर भृगु के आश्रम में जा छिपे वहां पर भी प्रतर्दन पहुंचे और भृगु से कहा कि आप के आश्रम में आए हुए वीतहव्य को दीजिये। भृगु ने कहा कि राजन्! यहां क्षत्रिय कोई नहीं है किन्तु सब ही द्विज ही हैं यह सुन वहां से प्रतर्दन चले गये।

"भृगोर्वचनमात्रेण स च ब्रह्मर्षितांगतः" भृगु के वचन मात्र से वह ब्रह्मर्षि हुए। "वीतहव्यो महाराजो ब्रह्मवादित्व मेव च। तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवापरः। यत्रगृत्समदो ब्रह्मन् ब्राह्मणैः स महीयते। स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोभवत्।" वीतहव्य का गृत्समद पुत्र हुआ यह भी ब्रह्मर्षि हुआ इत्यादि कथा अनुशासन पर्व में आई है।

दिवोदास=दिवोदासस्य दायादो ब्रह्मर्षिर्मित्रायुर्नृपः।
मैत्रायणस्तथासोमो मैत्रेयास्तु ततस्मृताः।
एते वै संश्रिताः पक्षं क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः।

दिवोदास का पुत्र मित्रायु ब्रह्मर्षि हुआ। मित्रायु से सोम मैत्रायण हुए। उस वंश का नाम इस कारण मैत्रेय हुआ। यद्यपि ये क्षत्रिय वंश के थे परन्तु पीछे भार्गव ब्राह्मण हुए।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काश=भार्गस्य भार्गभूरतश्चातुर्वर्ण्यप्रवृत्तिः ।
इत्येते काशया भूपतयः कथिताः ॥ वि०पु० ४ । ८ । ९

भार्ग के पुत्र भार्गभू हुए । इन से चारों वर्णों की प्रवृत्ति हुई । ये सब काश के सन्तान भूपति हुए ।

वेणुहोत्र सुतश्चापि भर्गोनाम प्रजेश्वरः ।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगुभूमिस्तु भार्गवात् ॥
एतेह्यङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथभार्गवे ।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाः वैश्यास्त्रयः पुत्राः सहस्रशः ॥ हरिवंश २९

वेणुहोत्र के पुत्र प्रजेश्वर भर्ग हुए । वत्स के पुत्र वत्सभूमि और भार्गव के भृगुभूमि । ये अङ्गिरा के पुत्र भृगुवंशी हुए । इन से ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों प्रकार के वंश चले ।

सुकुमारस्य पुत्रस्तु सत्यकेतुर्महारथः ।
सुतोऽभवन्महातेजा राजा परम धार्मिकः ॥
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भार्गभूमिस्तु भार्गवात् ।
एतेह्यङ्गिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथभार्गवे ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च भरतर्षभ ॥ हरिवंश ३२

वायु पुराण में इस प्रकार है ।

वेणुहोत्र सुतश्चापि गार्गो वै नाम विश्रुतः ।
मार्गस्य गार्गभूमिस्तु वत्सो वत्सस्य धीमतः ॥
ब्रह्मणाः क्षत्रियाश्चैव तयोः पुत्राः सुधार्मिकाः ।
रम्भ=रंभस्य रभसः पुत्रो गभीरश्चाक्रियस्ततः ॥
तस्य क्षेत्रे ब्रह्म यज्ञे शृणु वंश मनेनसः ॥ भा०पु०९ । १७ । २१ ॥

रम्भ का रभस । रभस से गभीर और अक्रिय । अक्रिय की स्त्री में ब्राह्मण कुल उत्पन्न हुआ ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बलि=हेमात्सुतपास्तस्माद्बलिस्तस्य क्षेत्रे दीर्घतमा अंग वंग कलिङ्ग सुह्म पुण्ड्राख्यं बालेयञ्च क्षत्रमजीजनत् । तन्नामसन्तति संज्ञाश्च विषया बभूवुः ॥ विष्णुपु० ४ । १८ । १–२ ॥

हेम से सुतपा । उस से बलि । बलि के क्षेत्र में दीर्घतमा ने अंग, वंग, कलिङ्ग, सुह्म, और पुण्ड्र, ये पांच क्षत्रिय उत्पन्न किये । इन के नाम से ये पांचों देश भी हुए ।

"एक एक पुरुष के चारों वर्ण के पुत्र"

अब अनेक उदाहरण आप को सुनाए गये । इन पर विचार करना आप का काम है । इस प्रकरण में प्रथम मैंने दिखलाया है कि विद्याध्ययन के ऊपर प्राचीन लोगों ने वर्णव्यवस्था चलाई और इसी के अनुसार ब्राह्मण-वंश से शूद्र और शूद्र-वंश से ब्राह्मण होते रहे और इसी नियम के वश एक एक पुरुष के पुत्र चारों वर्ण के हुए हैं । "गृत्समदस्य शौनकश्चातुर्वर्ण्यप्रवर्तयिताऽभूत्" वि०पु० । "पुत्रो गृत्समदस्यच शुनको यस्य शौनकः । ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैवच । एतस्य वंशे संभूता विचित्रा कर्म्मभिर्द्विज" वा०पु० "पुत्रो गृत्समदस्यापि शुनको यस्य शौनकः । ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः पुत्रास्तथैव च" हरिवंश । विष्णु, वायु और हरिवंश आदिक सब ही कहते हैं कि शौनक के पुत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चारों वर्ण हुए । निःसन्देह यह उदाहरण हमें सूचित करता है कि निष्पक्ष वैदिक तत्त्ववित् शौनक ने गुण कर्म्म देख कर अपने पुत्रों को योग्यतानुसार ब्राह्मणादिक चारों पद दिये । यथार्थ में यही वैदिक सिद्धान्त है । केवल शौनक ही ऐसे नहीं हुए किन्तु भार्गभूमि और गर्ग आदि अनेक ऋषि हुए हैं जिन्होंने ऐसी व्यवस्था चलाई । पूर्वोक्त प्रमाणों से सिद्ध है कि ब्राह्मणवंश से शूद्रवंश और शूद्र वंश से ब्राह्मण वंश होते थे । यदि ब्राह्मणादिवर्ण कृत्रिम न होते तो इन में परिवर्तन होने की कब संभावना होती अतः पश्वादिकवत् मनुष्य में भिन्न जातिता नहीं, यह भी सिद्ध होता है ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"व्रात्य और शूद्र"

अब पुनः विचार के लिये यह कुछ बाकी रह गया है कि वेद के अनुसार शूद्र एक वर्ण है। समाज का एक अंग है। वेदों में शूद्रों की कहीं निन्दा नहीं प्रत्युत चारों का दर्जा अपने २ ठिकाने पर तुल्य है फिर क्या कारण है कि शास्त्र और स्मृति में शूद्रों की निन्दा देखी जाती है? इस का उत्तर यह है कि धर्म्म शास्त्रों में शूद्र किस को कहा है क्या किसी जाति विशेष को अथवा किसी व्यक्ति विशेष को? जब तक इस को अच्छे प्रकार नहीं समझेंगे तब तक इस विवाद से पार नहीं उतर सकते, अतः इस को आप लोग अच्छे प्रकार समझ लेवें। जैसे वेदों में "दास" शब्दार्थ बहुत नीच था परन्तु धीरे २ इस का अर्थ बहुत उच्च हो गया। क्योंकि "सेवक" के अर्थ में इस का प्रयोग होने लगा। पूर्व प्रकरण में इस का वर्णन किया है। परन्तु 'शूद्र' शब्द में इस की विपरीत कार्य्य-वाही हुई। जिस को अनध्ययन के कारण ऋषियों ने 'व्रात्य' संज्ञा दी थी। वही व्रात्य धीरे २ शूद्र कहलाने लगा अर्थात् वह व्रात्य शब्द धीरे धीरे 'शूद्र' शब्द का पर्य्याय बन गया इस के प्रयोग में किञ्चित् भी भेद नहीं रहा। इस प्रकार का बहुत हेर फेर शब्द शास्त्र में हो जाता है। जैसे वेदों में असुर शब्द ईश्वर, शूरवीर, सूर्य्य, मेघ, देव आदि अर्थों में विद्यमान था परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थों से लेकर यावत् संस्कृत ग्रन्थों में अब इस का केवल दुष्ट ही अर्थ रह गया इसी प्रकार यम, यमी, अश्वी, उर्वशी आदि शब्दों के अर्थ में बहुत परिवर्तन होगया है। इसी प्रकार वेदों में उत्तम अर्थ रखने वाला भी शूद्र शब्द ब्राह्मण, धर्म्म शास्त्रादिकों में निकृष्टवाचक होगया अर्थात् वेदों के विचार से यह विस्पष्ट है कि वेदों में जिस को दस्यु और दास कहते हैं उसी को ब्राह्मण, मनुस्मृत्यादि ग्रन्थों में 'शूद्र' कहते हैं। और इसी हेतु शूद्र के नाम के साथ २ दास शब्द का प्रयोग मन्त्रादिकों में विहित है। पूर्व में हम कह चुके हैं कि चोर, डाकू, नास्तिक, दुष्कर्म्मी आदि परम नीच पुरुष का नाम दास वा दस्यु है। वेदों में कहीं भी शूद्र को दास वा दस्यु की पदवी नहीं दी गई है। वेदों में शूद्र का दर्जा ब्राह्मणादिक के तुल्य ही था। क्रमशः धीरे २ शूद्र शब्द का अर्थ बहुत नीचे गिर गया। इस भाव को जब तक लोग नहीं समझेंगे तब तक कदापि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदाशय प्रतीत नहीं हो सकता। हे विद्वानो! ऐसा परिवर्तन सर्वदा होता रहता है। इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं। यहां हमें विचार करना है कि किस प्रकार व्रात्य शब्द शूद्र वाचक होगया। अतः प्रथम 'व्रात्य' किस को कहते हैं यह जानना आवश्यक है।

द्विजातयः सवर्णासु जनयन्त्यव्रतांस्तु यान्। तान् सावित्री परिभ्रष्टान् व्रात्यानिति निर्दिशेत। मनु १०। श्लो० २०। अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः। सावित्री पतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः। नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित्। ब्राह्मान् यौनांश्च सम्बन्धानाचरन्मानवैः सह। मनु० अ० २। अत ऊर्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। नैनानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न याजयेयुर्नैभिर्विवहेयुः। गोभिलीय गृहसूत्र।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जो अपनी सवर्णा स्त्रियों में भी असंस्कृत अर्थात् गर्भाधानादि संस्कार रहित सन्तानों को उत्पन्न करते हैं। वे असंस्कृत, गायत्री परिभ्रष्ट सन्तान 'व्रात्य' नाम से पुकारे जाते हैं। जिन का उपनयन २४ वें वर्ष तक भी नहीं हुआ जो उपनयनपूर्वक वेदाध्ययन नहीं करते हैं वे द्विज सन्तान कर्म से पतित होके 'व्रात्य' कहलाने लगते हैं वे क्या ब्राह्मण वा क्षत्रिय वा वैश्य के पुत्र हों असंस्कृत रहने पर वे 'व्रात्य' ही कहलावेंगे। इन व्रात्य संज्ञक मनुष्यों के साथ आपत्ति काल में भी कोई सम्बन्ध न करे। इन को अब उपनयन कर न तो पढ़ावे और न इन के साथ विवाहादि सम्बन्ध करें। गोभिल आदि सब आचार्यों की यही सम्मति है। अब आप विचारें कि इस 'व्रात्य' को ही शास्त्रों में शूद्र कहा है। क्योंकि यहां आप देखते हैं कि 'व्रात्य' को पठन पाठन इस के साथ सम्बन्ध और उपनयन निषिद्ध है एवं शूद्रों के साथ भी यही निषेध है इस कारण शूद्र और व्रात्य दोनों ही एक हैं अर्थात् शूद्र और व्रात्य दो भिन्न जातिएं नहीं किन्तु दोनों एक हैं। इस में एक यह भी कारण है कि "ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयोवर्णाद्विजातयः। चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रोनास्तितुपञ्चमः" मनु० १०। ४। इस मनु वचन के अनुसार वर्ण चार ही हैं। वे पतित व्रात्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

किस वर्ण में गिने जासक्ते हैं । निःसन्देह इन की गिनती शूद्रों में होगी । अतः शूद्र और व्रात्य दोनों एक ही हैं अब आप को मालूम होगया होगा कि मन्वादिकों ने शूद्र किस को कहा है ।

'वृषल आदि शूद्र वाचक शब्द'

अब कतिपय शूद्र वाचक शब्दों पर विचार करने से भी प्रतीत होजायगा कि पढ़ने लिखने पर भी यदि कोई आचरण नहीं करता प्रत्युत धर्म्म विरोध करता है तो इस अवस्था में भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीनों शूद्र कहलावेंगे यथा-मनुजी कहते हैं कि "वृषो हि भगवान् धर्म्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम् । वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्म्मं न लोपयेत् । मनु० ८।१६" । "वृष" यह नाम भगवान् धर्म्म का है । इस को जो निवारण करता है अर्थात् जो न स्वयं धर्म्म करता और न करवाता किन्तु धर्म्म कर्म से क्या होता है इत्यादि वार्ता जो कहा करता है उसे विद्वान् लोग 'वृषल' अर्थात् शूद्र समझते हैं इस कारण धर्म्म लोप नहीं करना चाहिये । पुनः "शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः । वृषलत्वं गता लोके ब्राह्मणादर्शनेनच । पौण्ड्रकाश्चौड्र द्रविडाः काम्बोजा यवनाः शकाः । पारदापह्लवाश्चीनाः किराताः दरदाः खशाः । मनु० अ० १० । श्लोक ४३,४४" । ये वक्ष्यमाण क्षत्रिय जातिएं उपनयनादि क्रियाओं के लोप के कारण और याजन अध्यापन और प्रायश्चित्तादि के निमित्त ब्राह्मणों के दर्शन न होने से धीरे २ शूद्र होगये । वे ये हैं पौण्ड्रक, चौड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद अपह्लव, चीन, किरात, दरद और खश । इन प्रमाणों से सिद्ध है कि जो धर्म्म कर्म्म रहित हैं वे शूद्र कहाते हैं । पौण्ड्रक आदि क्षत्रिय वर्ण विदेश में जाने के कारण अध्ययन अध्यापनादि व्रत छूटने से वे शूद्र होगये । यदि आप कहें कि यहां तो वृषल शब्द है न कि शूद्र शब्द । सुनिये वृषल नाम शूद्र का ही है "शूद्राश्चावरवर्णाश्च वृषलाश्च जघन्यजाः" अमरकोश के अनुसार शूद्र, अवरवर्ण, वृषल और जघन्यज आदि नाम शूद्र के ही हैं । सब कोश यही कहते हैं । यहां पर आपने विस्पष्ट रूप से देखा कि धर्म्म के लोप करने वाले को शूद्र कहते हैं न कि किसी जाति विशेष को । अध्ययन अध्यापन के पश्चात् भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग धर्म्म-लोपक बन जाते हैं। ऐसे पुरुष अवश्य निन्दनीय और शूद्र पदवाच्य हैं। इस में अब सन्देह नहीं रहा कि शूद्र किस को कहते हैं। शूद्र किसी जाति विशेष का नाम नहीं किन्तु अध्ययनव्रतरहित तथा धर्म्मलोपी पुरुष का नाम शूद्र है। व्रात्य भी इसी को कहते हैं इस हेतु व्रात्य और शूद्र एक ही हैं। पूर्व लेख से आप को प्रतीत होगया है कि व्रात्य नाम अव्रती पुरुष का है। इसी अव्रती को वेदों में दास और दस्यु कहा है। परन्तु मन्वादि धर्म्म शास्त्रों में शूद्र को दास कह कर पुकारा है अतः सिद्ध हुआ कि वैदिक दास दस्यु धर्म्म शास्त्र के शूद्र हैं। यही महान् अन्याय चल पड़ा जिस से आज सब कोई शास्त्रीय भ्रम में पड़ रहे हैं।

अब आप को यह भी मालूम होगया होगा कि शूद्र को वेदाध्ययनादि निषेध क्यों है। विद्वानो! जिस द्विज सन्तान को २४ वर्ष तक भी उपनयन संस्कार नहीं हुआ उस को राजा के तरफ से यह दण्ड मिला कि अब इस को न कोई पढ़ावे न उपनयन करावे न कोई द्विज इस को अपनी कन्या देवे इत्यादि। यह धर्म्मनियम मनुष्य कल्याणार्थ ऋषियों ने चलाया कि इस भय से भी लोग पठन पाठन करें करवावें। अब चौबीस वर्ष के अनन्तर यदि किसी को होश आया कि आहा! मेरा जीवन यों हीं बीत रहा है। मैंने मनुष्य देह धारण कर धर्म्मसंचय नहीं किया अब चल कर कुछ वेदादि शास्त्र अध्ययन कर जीवन को सफल करें। इत्यादि विचार कर वह किसी गुरु के पास जा पढ़ाने के लिये निवेदन करता है कि हे गुरो! मुझे विद्या सिखलावें। गुरु आचार्य्य उस धर्म्म नियम के वश हो कहते हैं कि तेरी आयु अब २५, २६, ३० होगई तू अब व्रात्य संज्ञक होगया है। अब तुझ को कैसे पढ़ावें। अब तुझे विद्या भी नहीं आसकती इत्यादि। इस प्रकार इस को अब किसी पाठशाला में शरण नहीं मिलती है। आज भी देखते हैं कि जिस विद्यार्थी के आचरण पर गुरु को सन्देह होता है उसे निकाल देते हैं और सर्वत्र घोषणा करवा देते हैं कि इस को कोई भी अपनी पाठशाला में न पढ़ावे। वैसा ही होता है। इसी प्रकार आप समझें कि यहां संस्काररहित पतित का नाम शूद्र रक्खा है। इस हेतु सर्वत्र शूद्रों को पठन पाठन निषेध है। अब तृतीय प्रश्न का उत्तर समझ गये होगें। जब यह

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिद्ध हो चुका कि पतित अज्ञानी का नाम शूद्र है तो वह यज्ञ के योग्य कैसे हो सकता है। इसी हेतु शतपथादि ब्राह्मण ग्रन्थों में भी इस व्रात्य शूद्र को अयज्ञाई कहा है। जब इस ने कुछ पढ़ा ही नहीं तो यज्ञ कैसे करे करवावे। और अभी कह चुके हैं कि धर्म्मस्थिति के लिये इन पतित जनों को उपनयन निषेध किया गया है पतित का नाम ही शूद्र और संस्कृत का नाम ही द्विज है। अतः द्विज अग्न्याधानादि कर सकता शूद्र नहीं। इस से यह भी सिद्ध हुआ कि शूद्र कोई भिन्न वर्ण वा जाति नहीं किन्तु असंस्कृत धर्म्म लोपी मनुष्यमात्र शूद्र है। तृतीय प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब चतुर्थ का उत्तर श्रवण कीजिये।

"चतुर्थ प्रश्न का समाधान"

तृतीय समाधान के अन्तर्गत ही इस का भी समाधान है। तथापि इस प्रश्न में वेदान्त के कतिपय सूत्र और मनुस्मृति वाक्य उद्धृत किये गये हैं। अतः उस का कुछ विशेष विचार करते हैं। आपने कहा है कि "श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च" शूद्र को वेदों का श्रवण और अध्ययन दोनों निषिद्ध हैं और इस में स्मृति का भी प्रमाण है। इत्यादि। मैं इस के समाधान में कहता हूं कि यह बात बहुत ठीक है। जब मैंने आप को निर्णय करके बतला दिया कि शूद्र नाम पतित पुरुष का है। जिसने २४ वर्ष तक भी एक अक्षर नहीं पढ़ा है उस व्यक्ति का नाम शूद्र है तो ऐसे के लिये निषेध होना उचित ही है इस में कोई भी विरोध की बात नहीं क्योंकि अब इस की अवस्था वेदाध्ययन के योग्य नहीं रही। इस अवस्था में भी यदि उसे होश हो तो वह अन्यान्य सरल ग्रन्थ पढ़ तब वेद पढ़ सकता है। आगे इस को दिखलावेंगे। यह नियम धर्म्मस्थिति के लिये चलाया गया था। अब मनुस्मृति के वाक्यों पर ध्यान दीजिये। "न शूद्रे पातकं किञ्चित न च संस्कारमर्हति। नास्याधिकारो धर्म्मेऽस्ति न धर्म्मात्प्रतिषेधनम्" शूद्र में पातक नहीं लगता। वह संस्कार के योग्य नहीं। धर्म्म में इस को अधिकार नहीं। एवं धर्म्म से प्रतिषेध भी नहीं। इस का संक्षिप्त भाव यह है कि जब यह निश्चय हो चुका है कि पतित पुरुष का नाम शूद्र है किसी खास वंश वा जाति का नाम शूद्र नहीं। इस अवस्था में जो किसी कारण वंश पतित हो चुका है उस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को सन्ध्यादि कर्म्म न करने से जो पातक लगता है वह पातक नहीं लगेगा क्योंकि वह सन्ध्यादि करना जानता ही नहीं। जिस हेतु वह पतित ठहर चुका है अतः इस का पुनः संस्कार भी नहीं हो सकता है। संस्कार न होने से यज्ञादि धर्म्म कार्य्य में इस को अधिकार नहीं मिल सकता। परन्तु भगवत् स्मरणादि रूप जो धर्म्म है उस से इस को निषेध भी नहीं। पुनः "शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्य्यो धनसंचयः। शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते"। समर्थ होने पर भी शूद्र धन संचय न करे। क्योंकि धन पाकर ब्रह्मवित् पुरुषों को ही वह बाधा देता है। इस का भी भाव विस्पष्ट है। जो पतित हो गया है जिस ने जन्म भर ज्ञानाभ्यास नहीं किया जो निरक्षर है वह यथार्थ में आदमी नहीं किन्तु वह पशु है। ऐसे पशु प्रायः अन्याय से धन एकत्रित करते हैं अथवा अन्यान्य उपायों से भी यदि वे धनसम्पत्ति इकट्ठी करलें तब भी इन का धन जगत् में हानिकारी के सिवाय लाभकारी कदापि नहीं होता। प्रथम तो अज्ञानी होने के कारण धन को कैसे खर्च करना चाहिये वे नहीं जानते हैं। वे उन धनों को अन्यायवर्धक कार्य्य में खर्च करते हैं बड़े व्यसनी बन जाते हैं अपने साथ अनेकों को व्यसनी बना बड़े उपद्रवी हो जाते हैं जिस से प्रजाओं में बड़ा ही उपद्रव मचने लगता है इत्यादि। दूसरा धन के बल से वे अज्ञानी जन अपने वश में विद्वानों को भी कर लेते हैं उन्हें नीचे दिखलाते हैं अथवा किन्ही पढ़े लिखे पुरुषों को भी विद्या से इस हेतु घृणा होने लगती है कि विना अध्ययन से ही धन हो सकता है तो पुनः अध्ययन में इतने परिश्रम से क्या लाभ इस प्रकार पठन पाठन की रीति बिगड़ देश में बड़ा ही अन्याय बढ़ने लगता है। इस भारत देश में इस का उदाहरण प्रत्यक्ष है। जब से अज्ञानी जन धन संग्रह करने लगे तब से दानादिक की यथोचित व्यवस्था न होने से कैसा भयङ्कर अधर्म्म फैल गया। बड़े बड़े अज्ञानी निरक्षर जन अपने बाप की सम्पत्ति पा राजा बन कैसा अन्धकार देश में फैला रहे हैं। भारतभूमि को नरकमयी बना रहे हैं। हे विद्वानो! इस प्रकार ब्रह्मवित् पुरुषों से स्थापित व्यवस्था को वे अज्ञानी धन पाकर तोड़ डालते हैं जिस से ब्राह्मणों (वेदवित् पुरुषों) को बड़ा ही क्लेश पहुंचता है। यही ब्राह्मणों को बाधा डालनी है यही मनुस्मृति का आशय है। विचार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करो और संसार की ओर दृष्टि उठाकर देखो आज अज्ञानी जन धन पाकर जगत् को कैसा नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं। इस हेतु मनुजी ने कहा है कि शूद्र को धन संचय नहीं करना चाहिये। शूद्र नाम अज्ञानी जन का ही है किसी जाति विशेष का नहीं अब आप सम्पूर्ण मनुस्मृति तथा अन्यान्य ग्रन्थों की भी संगति इसी प्रकार लगा सकते हैं। विस्तार भय से अधिक नहीं लिखते।

"पञ्चम प्रश्न का समाधान"

पञ्चम का भी समाधान पूर्ववत् ही है। पतित को शूद्र कहते हैं। जिस से लोगों को प्रतीत हो कि यह पुरुष वर्ण बहिष्कृत है अतः इस के अभिवादन प्रत्यभिवादनादिक व्यवहार भी भिन्न २ हैं। अब जो आपने कहा है कि "शूद्र दो प्रकार के होते हैं" यह भी कुछ सिद्धान्त विरुद्ध नहीं क्योंकि जो द्विज सन्तान असंस्कृत अज्ञानी हुए वे ही शूद्र हैं। उन में से कोई २ अपनी जीविका के लिये अतिघृणित कार्य्य करने लगे जैसे श्मशान में निवास कर के मृतकों का वस्त्रादिक लेना। मृत पशुओं के चर्म्म निकाल उसे विक्रय करना अथवा मृत पशुओं का भी मांस खाके अपना निर्वाह करना अथवा जंगल में शृगालादिकों के भी मांसों से दिन काटना इत्यादि। ऐसे जो व्रात्य हुए वे किसी प्रकार समाज में नहीं मिलाए गये अर्थात् उन के हाथ के जलादिक ग्रहण से भी लोग घृणा करने लगे और जिन व्रात्यों ने सेवकादि कर्म्म उठा लिये अथवा खेती आदि व्यवसाय कर निर्वाह करने लगे वे समाज से सर्वथा पृथक् नहीं किये गए इन के हाथ के अन्न पानी लोग ग्रहण करते रहे। ये ही दो प्रकार के शूद्र या व्रात्य हैं। यहां सर्वत्र स्मरण रखना चाहिये कि इन स्थानों में जाति शूद्र कोई नहीं। आज इसी लिये कोलाहल हो रहा है कि वंश के वंश को लोग शूदादि वर्ण मान रहे हैं। यही अन्याय है। इति।

"षष्ठ प्रश्न का समाधान"

इस प्रश्न का समाधान ७२ वें पृष्ठ में 'अध्यारोपित जाति' शब्द पर देखिये।

व्रात्य संस्कार।

यद्यपि व्रात्य पुरुष के लिये कोई पुनः संस्कार नहीं है तथापि दयालु ऋ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

षियों ने इन परम पतित पुरुषों पर अनुग्रह कर के कहा है कि अधिक वयःक्रम होने के कारण वेद के योग्य तो ये नहीं रहे परन्तु यदि वे धर्म के पिपासु होवें तो इन्हें त्यागना भी उचित नहीं। इन्हें प्रथम वेदवर्जित व्याकरणादि शास्त्र पढ़ावे। परन्तु इन्हें उन लघु वयस्क ब्रह्मचारियों के साथ न रक्खे। इस प्रकार यदि ये दिन २ अपने आचरण शुद्ध करते जांय और विद्याध्ययन में अधिक २ रुचि बढ़ाते जांय तो इन्हें वेद भी पढ़ावे। इस प्रकार व्रात्य हुए हुए पुरुष की भी सद्गति हो सकती है। मनुष्यों को अपने सुधार के लिए बारम्बार जीवन भर मौका देना चाहिए। अतएव कहा गया है कि "शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नं मन्त्र वर्जमनुपनीतमध्यापयेदित्येके" कुल गुण सम्पन्न शूद्र को भी पढ़ावे।

"व्रात्य सन्तान का उपनयन संस्कार"

जो द्विज सन्तान शूद्र हो गये हैं। वे यदि अपने २ सन्तानों को उपनयन करवाना चाहें तो उनका संस्कार हो सकता है अर्थात् शूद्र के सन्तान ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों हो सकते हैं। वह शूद्र बालक उतना ही निष्पाप और अधिकारी है जितना किसी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य का बालक। बालक का कोई अपराध नहीं। इस कारण यदि कोई शूद्र अपने बालक को ५ पञ्चम वर्ष से लेकर षोड़श तक आचार्य्य कुल में उपनयन पूर्वक वेदाध्ययन के लिए भेजता है और वह उपनीत बालक पूर्णतया ३६ वा ४८ वर्ष तक वेदाध्ययन सांगोपांग करता है तो निःसन्देह वह ब्राह्मण-पद को पा सकता है। इसी प्रकार व्यवस्थित नियम के अनुसार विद्या के न्यूनाधिक्य से क्षत्रिय वैश्य भी हो सकता है यदि आप इस में उदाहरण पूछें तो ऐतरेय, कवष और सत्यकाम जाबाल प्रभृति का उदाहरण जागृत है और जब शौनकादि ऋषियों के पुत्र चारों वर्ण हो सकते हैं तो शूद्र के पुत्र चारों क्यों नहीं हो सकते। एवमस्तु। ऐतरेय और कवष ऐलूष की जीवनी इस प्रकरण के आदि में ही सुना चुके हैं। सत्यकाम जाबाल की जीवनी के विषय में इस प्रकार छान्दोग्योपनिषद् कहती है।

"सत्यकाम जाबाल और उपनयन"

सत्यकामो ह जाबालो जबालां मातर मा मन्त्रयाञ्चक्रे ब्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ह्मचर्य्यं भवति ! विवत्स्यामि किं गोत्रोहमस्मीति । सा हैनमुवाच न हमेतद् वेद तात ! यद् गोत्रस्त्वमसि । बहूहं चरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामलभे । साहमेतन्न वेद यद्गोत्रस्त्वमसि । जबाला तु नामाहमस्मि । सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालोब्रवीथा इति ॥ २ ॥ स ह हारिद्रुमत गौतम मेत्योवाच ब्रह्मचर्य्यं भगवति वत्स्यामि उपेयां भगवन्तमिति ॥ ३ तं होवाच किं गोत्रो नु सोम्यासि । स होवाच नाहमेतद्वेद यद्गोत्रोहमस्मि अपृच्छं मातरं सा मा प्रत्यब्रवीद् बहूहं चरन्ती परिचारिणा यौवने त्वा मलभे सोहमेतन्नवेद यद्गोत्रोस्त्वमसि जबालात्तु नामाहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसीति । सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ ४ ॥ तं होवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति । समिधं सोम्य आहर : जप त्वा नेष्ये न सत्यादगा इति ॥छा० उ०४। ४ ॥

सत्यकाम जाबाल ने अपनी माता जबाला से पूछा कि हे माता ! मैं ब्रह्मचर्य्य के लिए बाहर जाऊंगा मेरा गोत्र क्या है सो बताओ । वह अपने पुत्र से बोली कि हे तात ! मैं यह नहीं जानती हूं कि तुम किस गोत्र के हो । मैं बहुत विचरण करती हुई परिचारिणी (सेवकिनी) रही । यौवनावस्था में तुम को मैंने प्राप्त किया । सो मैं यह नहीं जानती हूं कि तुम किस गोत्र के हो । परन्तु मेरा नाम जबाला है और तुम्हारा नाम सत्यकाम है । सो तुम (अपने आचार्य से) अपना नाम सत्यकाम जाबाल ही कहना । तब वह हारिद्रुमत गौतम के निकट जा बोला कि आप के निकट मैं ब्रह्मचर्य्य करूंगा इसी अभिप्राय से आप को प्राप्त हुआ हूं । गौतम ने उस से पूछा कि हे सोम्य ! तुम्हारा गोत्र क्या है ? उस ने कहा कि मैं यह नहीं जानता हूं कि मेरा गोत्र कौनसा है । मैं ने माता जी से जिज्ञासा की थी उस ने मुझ से कहा कि "मैं बहुत विचरण करती हुई परिचारिणी रही । यौवन में तुम को मैंने प्राप्त किया । सो मैं यह नहीं जानती हूं कि तुम्हारा गोत्र कौन है । मेरा नाम जबाला और तेरा नाम सत्यकाम है । इति । हे गुरो ! सो मैं सत्यकाम जाबाल हूं । यह सुन गौतम बोले कि अब्राह्मण पुरुष ऐसा प्रकाश नहीं कर सकता । हे सोम्य ! समिधा लाओ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तुम्हारा उपनयन मैं करूंगा। तुम सत्य से पृथक् नहीं हुए हो। इस प्रकार कह कर गौतम ने उसका उपनयन किया है। इत्यादि वर्णन छान्दोग्योपनिषद् में देखिए।

इस से विस्पष्ट वर्णन है कि जबाला एक प्रकार की वाराङ्गना थी। क्यों कि "परिचारिणी" और "बहु+अहं चरन्ति" ये दोनों पद इस के साक्षी हैं। यहां केवल पति की सेवा से तात्पर्य्य नहीं हो सकता। यदि इस का कोई विवाहित पति रहता तो उस पति के नाम ग्राम पता आदि कुछ बतलाती। पति के मरने के बारे में भी कुछ नहीं कहती। केवल अपना ही नाम कहकर रह जाती है इस से विशद है कि यह वाराङ्गना थी। गौतम ऋषि ने बालक के सत्यभाषण से अति प्रसन्न हो उपनयन कर दिया। इस से यह भी सिद्ध होता है कि जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं किन्तु सत्यभाषणादि रूप गुण धारण करने से ही मनुष्य ब्राह्मण होता है जैसा कि ऋषि ने कहा है कि "तुम सत्य से पृथक् नहीं हुए हो"। जिस हेतु वह बालक वेश्यापुत्र होने पर भी सत्यता से विरहित नहीं होने के कारण वह निश्चय ब्राह्मण था। अतः सत्ययुक्त पुरुष किसी घर में किसी कुल में किसी देश में क्यों नहीं वे यथार्थ में ब्राह्मण ही हैं। इस उदाहरण से सिद्ध है कि असत् शूद्र के सन्तान को भी उपनयनादि संस्कार हो सकता है।

"खान्दानी वर्णव्यवस्था"

बहुत समय के अनन्तर इस देश में वर्ण व्यवस्था की रीति बदल गई। विद्याध्ययन के ऊपर वर्ण व्यवस्था नहीं रही। अनपढ़ निरक्षर आदमी भी श्रोत्रिय, पाठक, उपाध्याय, द्विवेदी, चतुर्वेदी आदि बड़ी २ पदवी से अपने को भूषित करने लगा इस महान् अन्धकार के समय में केवल नामधारी राजा और ब्राह्मण लोग मिल कर अपने को छोड़ सब को "शूद्र" ही कहने लगे। जिन के वंश में भी परम्परा से नाम मात्र का भी उपनयन हो रहा था उस को बलात्कार बन्द करवा दिया। यद्यपि इस महान्धकार के समय ब्राह्मण क्षत्रिय में भी नाममात्र का ही उपनयन संस्कार रह गया था अब भी वैसा ही चल रहा है तथापि अपनी ओर न देखके स्वर्णकार, लोहकार, कुम्भकार, तक्षा, गोप,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माली, कायस्थ, नापित आदिक अनेक वर्णों में जो परम्परा से उपनयन संस्कार होता आता था उसे बन्द करवा सबों को शूद्र पदवी देदी। और वंशानुगत वर्णव्यवस्था बांध दी गई। तब से यदि एक शूद्र कितना ही विद्वान् क्यों न हो वह कदापि ब्राह्मणादि पदवी योग्य नहीं होगा और एक ब्राह्मण कितना ही निरक्षर क्यों न हो वह ब्राह्मण का ब्राह्मण ही बना रहेगा। इस प्रकार देश में वंशानुगत वर्ण व्यवस्था चलने लगी। इस समय में भी बचे हुए विवेकी पुरुषों ने इस वंशानुगत वर्ण व्यवस्था का बड़ा विरोध किया और बड़ी २ कोशिश की कि वर्ण का परिवर्तन होना चाहिए अर्थात् ब्राह्मण से शूद्र और शूद्र से ब्राह्मण हो सकता है इस के दो एक उदाहरण यहां य हैं और पूर्व में अनेक उदाहरण दिए गए हैं।

"जाति परिवर्तन"

आपस्तम्ब कहते हैं कि "धर्मचर्य्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्ण मा पद्यते जातिपरिवृत्तौ। अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्ण मा पद्यते जातिपरिवृत्तौ"। धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम २ वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जावे कि जिस २ के योग्य होवे। वैसे अधर्माचरण से पूर्व अर्थात् उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीच २ वाले वर्ण को प्राप्त होता है और उसी वर्ण में गिना जावे। यह आपस्तम्ब का वचन सूचित करता है कि गुण कर्म्मानुसार ही वर्ण व्यवस्था होनी चाहिए। पुनः मनु जी कहते हैं "शूद्रो ब्राह्मणता मेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्। क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच" ॥ मनु० ६४ ॥ शूद्र ब्राह्मण वर्ण को प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्र वर्ण को प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य से जो सन्तान उत्पन्न हुआ है वह भी गुण कर्म्मानुसार अपने से उच्च वा नीच वर्ण को प्राप्त हो सकता है। इस श्लोक के प्रथम मनु जी कहते हैं कि "शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत्प्रजायते। अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद् युगात्" शूद्रा स्त्री में ब्राह्मण से जो सन्तान हो वह यदि श्रेय अर्थात् धर्माचरण से युक्त हो तो वह नीच होने पर भी सप्तम वर्ष के आरम्भ से वह उच्च जाति को प्राप्त हो सकता है। इस श्लोक का अर्थ लोग भिन्न प्रकार से करते हैं परन्तु इस का भाव यह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है कि ब्राह्मण से ब्राह्मणी स्त्री में उत्पन्न बालक उस बालक की अपेक्षा से श्रेष्ठ है जो ब्राह्मण से शूद्रा स्त्री में उत्पन्न हुआ है। अर्थात् ब्राह्मणी कुमार से शूद्रा कुमार नीच है परन्तु कब तक ! निःसन्देह जब तक इस का उपनयन संस्कार नहीं हुआ है। अर्थात् यदि उस शूद्रा कुमार को गर्भाष्टम में विधि पूर्वक उपनयन हो गया तब उस दिन से वह श्रेय से युक्त हो आगे बढ़ने लगेगा। और यदि ब्राह्मणी कुमार को गर्भाष्टम में विधि पूर्वक उपनयन नहीं हुआ तो वह कुमार उस दिन से नीचे गिरने लगेगा। यदि दैवदश १६ वें वर्ष में भी उस ब्राह्मणी कुमार का उपनयन नहीं हुआ तो वह अब ब्राह्मण वर्ण के योग्य कदापि नहीं रहेगा। इस प्रकार धर्माचरण से एक का आगे बढ़ना और अधर्माचरण से दूसरे का घटना लगा रहेगा। इस हिसाब से ब्राह्मण का सन्तान शूद्र और शूद्र का सन्तान ब्राह्मण होता जायगा। इसी प्रकार क्षत्रिय और वैश्य में भी जानना। यही भाव दोनों श्लोकों का है। युग नाम यहां वर्ष का है क्योंकि उत्तरायण और दक्षिणायन इन दो के योग से वर्ष होता है। प्रथम मास शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष के योग से होता है। ऋतु भी दो दो मासों के योग से होते हैं इस प्रकार अनेक दो दो मिल कर वर्ष होता है अतः यहां युग नाम वर्ष का है। और इसी धर्म शास्त्र में कहा गया है कि "गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्। गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः" ब्राह्मण का गर्भ से अष्टम वर्ष में राजा का एकादश में वैश्य का द्वादश में उपनयन संस्कार होना चाहिए। इस नियमानुसार जन्म से सातवें वर्ष के आरम्भ से ब्राह्मण कुमार उपनयन योग्य होता है। अतएव सप्तम युग पद यहां आया है और इसी कारण मैंने यहां 'युग' पद का वर्ष अर्थ किया है। कुल्लूक भट्ट 'सप्तम युग' पद से सप्तम पीढ़ी लेते हैं। मैं नहीं कह सकता कि इन्होंने किस प्रमाण से युग शब्दार्थ पीढ़ी किया है। एवमस्तु। यहां सप्तम युग उपलक्षण है क्षत्रिय पक्ष में एकादश और वैश्य पक्ष में द्वादश वर्ष का भी ग्रहण है। इस प्रकार मनुस्मृति के अनुसार भी जाति परिवर्तन सिद्ध है। कुल्लूकभट्टादिकों का अर्थ इस लिए भी ठीक नहीं कि इसी अध्याय में मनु जी कहते हैं कि "तपो बीज प्रभावैस्तु ते गच्छन्ति युगे युगे। उत्कर्षं चापकर्षं च मनुष्येष्विह जन्मतः ॥ १० । ४२ ॥ तप और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बीज के प्रभाव से मनुष्य युग युग इसी जन्म में उत्कर्ष और अपकर्ष को प्राप्त होता आया है। यहां 'इहजन्मतः' पद से विस्पष्ट है कि एक ही जन्म में मनुष्य अपने से उच्च वा नीच वर्ण को प्राप्त हो सकता है जैसे विश्वामित्र और ऋष्य शृंगादिक हुए हैं और इस के अतिरिक्त पूर्व में अनेक उदाहरण दिखलाये गये हैं फिर कुल्लूकादिक कैसे कह सकते हैं कि सात जन्मों के अनन्तर जाति का परिवर्त्तन होगा। पुनः "यस्माद्बीज प्रभावेण तिर्य्यग्जा ऋषयोऽभवन्। पूजिताश्च प्रशस्ताश्च तस्माद्बीजं प्रशस्यते" १०।७२॥ बीज के प्रभाव से अनेक निकृष्ट योनिज भी पुरुष विद्याध्ययनादि व्रत धारण कर बड़े पूज्य और प्रशस्त ऋषि हुए। इस से सिद्ध है कि शूद्राकुमार यदि ब्राह्मणादिक से उत्पन्न हुआ है तो एक ही पीढ़ी में वह ब्राह्मण हो सकता है। यहां इतनी बात स्मरण रखनी चाहिए कि यहां दो प्रकार की विधि कही गई एक यह कि जो शूद्र हो गया है उस का सन्तान यदि चाहै तो चारों वर्णों के योग्य हो सकता है। दूसरा शूद्रा स्त्री में ब्राह्मणादिक से उत्पन्न होने के कारण वर्णसङ्कर होने पर भी सद्गुण प्राप्त करने पर वह कुमार ब्राह्मणादिक हो सकता है यह मनुस्मृति का भाव है। इस से यह जानना चाहिए कि ख़ान्दानी वर्ण व्यवस्था जिस समय चली थी उस समय में भी अपवाद विद्यमान था।

'वाल्मीकि रामायण और शूद्र'

पठन् द्विजो वागृषभत्वमीयात्, स्यात्क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्।
वणिग्जनः पण्य फलत्वमीयात्, जनश्चशूद्रोपि महत्त्वमीयात्॥

वाल्मीकीय रामायण के प्रथमाध्याय का यह अन्तिम श्लोक है। मुनि वाल्मीकि जी कहते हैं कि इस रामायण के पढ़ने से ब्राह्मण बड़ा सुवक्ता ऋषि होगा। क्षत्रिय भूपति होगा। वैश्य अच्छा लाभ प्राप्त करेगा और शूद्र महान् होगा। यहां रामायण के पढ़ने में चारों वर्णों का समान ही अधिकार देखते हैं। कहा जाता है कि यह रामायण गायत्री का वर्णन है क्योंकि प्रथमाध्याय के "तपः स्वाध्याय निरतम्" इस प्रथम श्लोक में तकार और "जनश्च शूद्रोपि-महत्त्वमीयात्" इस अन्तिम श्लोक में "यात्" पद के आने से और २४ चौबीस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अक्षरों की गायत्री और २४००० चौबीस ही सहस्र श्लोकबद्ध रामायण के होने से अनुमान होता है कि यह रामायण गायत्री-वर्णन-परक है। परन्तु गायत्री वेदों का तत्त्व है, अतः वेदों से लेकर सर्व ग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन में शूद्रों का अधिकार सिद्ध है। पुनः रामायण में बड़े २ अश्वमेधादि यज्ञ कर्म्म-काण्ड और तत्त्वज्ञान की चर्चा है॥ फिर क्या जिस शूद्र को रामायण पढ़ने का अधिकार दिया गया है वह तत्त्वज्ञानी, तपस्वी, विद्वान्, विवेकी नहीं होगा। यदि कहो कि इसी रामायण के उत्तरकाण्ड में लिखा है कि "शूद्रयोन्यां प्रजातोऽस्मि तप उग्रं समास्थितः। देवत्वं प्रार्थये राम सशरीरो महायशः। न मिथ्याहं वदे राम देवलोक जिगीषया। शूद्रंमां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूको नाम नमतः। भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरं प्रभम्। निष्कृष्य कोषाद्विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः"। एक ब्राह्मण के बालक के मरने पर श्री रामचन्द्र को मालूम हुआ कि कोई शूद्र तपस्या कर रहा है जिस पाप के कारण यह अन्याय हुआ है। तब राम ने तपस्या करते हुए उस शम्बूक नाम के शूद्र का शिर काट लिया है। इस से सिद्ध है कि शूद्र को तपस्या करना सर्वथा निषेध है। उत्तर सुनिये। यह रामचन्द्र के ऊपर किसी अज्ञानी स्वार्थी धूर्त्त ने कलङ्क मढ़ा है। प्रथम तो उत्तरकाण्ड रामायण वाल्मीकि जी का बनाया हुआ नहीं है और जब फलश्रुति में बाल्मीकि जी स्वयं कहते हैं कि शूद्रों को भी रामायण पढ़ना चाहिये तब तपस्या का निषेध कैसे कर सकते हैं। क्योंकि पढ़ने से तात्पर्य्य यह होता है कि ग्रन्थ के भाव को अच्छे प्रकार समझे और उस के अनुसार कर्म्म करे। इस अवस्था में जो शूद्र पढ़ेगा क्या वह इस के अनुसार आचरण नहीं करेगा। यदि कहो कि आचरण करेगा तो मैं कहता हूं कि प्रथम अध्ययन से बढ़कर कौनसी तपस्या है और दूसरा इस की शिक्षा पर चलने वाले के लिये कौनसी तपस्या बाकी रह जायगी। इस कारण यह शम्बूक की आख्यायिका सर्वथा रामायण विरुद्ध है। किसी अज्ञानी ने वाल्मीकि के नाम पर लिख इस में मिलाया है। इस में अन्यान्य हेतु भी सुनिये आप लोग यह जानते होंगे कि दशरथ के बाण से अकस्मात् जो बालक मर गया वह वर्णसंकर शूद्र था परन्तु वह वेदशास्त्र सब कुछ जानता था। यह आख्यायिका अयोध्याकाण्ड के ६४ वें अध्याय में आई है। यथाः-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न द्विजातिरहं राजन् माभूत्ते मनसो व्यथा ॥ ५० ॥
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ॥ ५१ ॥ अ०६३ ॥
कस्य वाऽपररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥ ३२ ॥
को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वा हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्यत्युपासीनं पुत्रशोकभयार्दितम् ॥ ३३ ॥ अ० ६४ ॥

स्वयं वह बालक कहता है कि हे राजन् ! आप को मानसी व्यथा न हो। मैं द्विज नहीं हूं। वैश्य से शूद्रा में उत्पन्न हूं इत्यादि इस से सिद्ध है कि वह बालक वर्णसंकर था। इस के पश्चात् इस मृत बालक को दशरथ जी ने इस के माता पिता के निकट ला सब वृत्तान्त कह सुनाया। पश्चात् इस का पिता विलाप करता है कि अब मैं अपर रात्रि में पढ़ते हुए किस के मधुर और हृदयंगम वचन को सुनूंगा। कौन अब स्नान, सन्ध्योपासन और हवन कर मुझे प्रसन्न करेगा, इत्यादि। इस से यह सिद्ध होता है कि वह बालक वेदादि शास्त्र जानता और पढ़ता था, इस की माता शूद्रा होने पर भी तपस्विनी थी। इत्यादि कारणों से शम्बूक की कथा वाल्मीकि विरुद्ध है यह मानना पड़ेगा। शबरी स्त्री की तपस्या—शबर जाति बहुत निकृष्ट और अति शूद्र वा असच्छूद्र मानी जाती है इस के हाथ का पानी नहीं चलता है एक तो शबर ही नीच दूसरा शबर स्त्री और भी नीचतमा हुई क्योंकि आज कल चारों वर्णों की स्त्री शूद्रावत् मानी जाती है। परन्तु रामायण में देखते हैं कि यह शबरी तपस्या करते २ सिद्धा हुई यथा "तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृतांजलिः। पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः। पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद्यथाविधि। तामुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्म्मसंस्थिताम्। कच्चित्ते निर्जिता विघ्ना कच्चित्ते वर्धते तपः। इत्यादि। रामेणतापसी पृष्टा सा सिद्धा सिद्धसम्मता। शशंस शबरी वृद्धा रामाय प्रत्यवस्थिता। अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव संदर्शनान्मया। इत्यादि" अब सिद्धा शबरी राम और लक्ष्मण को देख उठ कृतांजलि हो चरण पकड़ प्रणाम कर पैर धोने और आचमन के लिये विधिपूर्वक जल दे खड़ी होगई। तब राम जी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उस तपस्विनी धर्म्म संस्थिता शबरी से बोले कि क्या आप को कोई तपोविघ्न तो नहीं। क्या आप की तपस्या दिन दिन बढ़ती जाती है। इत्यादि। रामचन्द्र के इस वचन को सुन वह सिद्धा और सिद्धपुरुषों से पूजिता वृद्धा शबरी बोली कि आप के दर्शन से आज मुझे तपःसिद्धि प्राप्त हुई। इत्यादि। आप लोग देखते हैं कि एक निकृष्टजाति की स्त्री भी तपस्या कर परम सिद्धा हुई और किसी ब्राह्मण वा अन्य वर्ण का बालक नहीं मरा और इस की तपस्या से न किसी विघ्न की ही चर्चा पाई जाती फिर, उत्तरकाण्ड की बात कैसे मानी जाय। इस कारण विद्वानों की दृष्टि में शम्बूक की कथा सर्वथा गप्प है।

पुराण और शूद्र ॥

जिस समय वैदिक धर्म्म नष्ट होगया था शूद्र की एकजाति बन गई थी। वंश-परम्परानुगत वर्णव्यवस्था चल पड़ी थी। उस समय में भी भागवत आदि पुराण शूद्र को आजकल के समान नीच नहीं मानते थे। इस विषय में श्रीमद्भागवत का सिद्धान्त है कि महाभारत और अष्टादश पुराण और उपपुराण आदि ग्रन्थ विशेष कर शूद्रों के लिये ही रचे गये। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि जो ग्रन्थ शूद्रों के लिये बनाए गए थे आज ब्राह्मणत्वाभिमानी जन इन को सर्वोच्चतम पुस्तक मानते हैं। भागवत कहता है कि "स्त्री शूद्र द्विज बन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा। कर्म्मश्रेयसि मूढ़ानां श्रेय एवं भवेदिह। इति भारत माख्यानं कृपया मुनिना कृतम्'। भागवत १। ४। २५॥ स्त्रियों, शूद्रों और द्विजबन्धुओं अर्थात् द्विजाधम व्रात्य ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को वेदों में अधिकार नहीं है परन्तु इन का भी कल्याण होना चाहिये। इस कारण कृपा कर व्यास मुनि ने महाभारत आख्यान रचा। यहां भारत पद उपलक्षण है इस से सब पुराणों का ग्रहण है क्योंकि महाभारत से ही सब पुराण निकले हैं। जब महाभारत ही शूद्र के लिये रचा गया तो पुराणों की कथा ही क्या रही। सुतरां इस से सिद्ध है कि पुराण असत् शूद्रों के लिये भी है।

'सूतजी पौराणिक'

समस्त पुराण सूतजी से कहे हुए हैं। वर्णसंकर शूद्र को 'सूत' कहते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस के विषय में मनुजी कहते हैं "क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः" मनु० १० । ११ ॥ ब्राह्मण कन्या में क्षत्रिय से जो बालक उत्पन्न होता है वह जाति से 'सूत' कहलाता है अतः साधारण शूद्र से भी सूत जाति का दर्जा निकृष्ट है। पुराणों के अनुसार इसी निकृष्ट सूतजी ने सारे पुराणों को गा २ कर सुनाया है। इस से भी सिद्ध होता है कि पुराण शूद्रों के लिये है और उस पतित समय में भी शूद्र बड़े २ संस्कृत के विद्वान् ग्रन्थरचयिता, उपदेशकर्त्ता और ज्ञानी तपस्वी होते थे। और शूद्रों की इतनी निकृष्ट अवस्था नहीं थी इत्यादि अनेक बातें इस सूत और पुराणों के सम्बन्ध से सिद्ध होती हैं पुनः भागवत कहता है कि "विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्यो दधिमेखलाम्। वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुध्येत पातकात्॥ भा० १२ । १२ । ६४ ॥ इस भागवत को पढ़कर ब्राह्मण सुबुद्धि को, राजा पृथिवी को और वैश्य धन धान्य को पाता है। और शूद्र पातक से छूट शुद्ध होजाता है। इस से सिद्ध है कि शूद्र को भागवत पढ़ने का अधिकार है। आज कल पौराणिक लोग भागवत को सर्व वेदमय मानते हैं, और इसी भागवत में ओङ्कार युक्त अनेक मन्त्र कहे गये हैं जब इस भागवत को शूद्र पढ़ेगा तो क्या उन ओङ्कार युक्त मन्त्रों को छोड़ देवेगा। इस से भी सिद्ध है कि वेदों से लेकर भागवत पर्य्यन्त सब ग्रन्थों में और सर्व कर्म्मों में शूद्रों को अधिकार है।

अवतार आदि और शूद्रः—पौराणिक कहते हैं कि राम, कृष्ण आदि साक्षात् ब्रह्म अथवा विष्णु भगवान् के अंश हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार महाभारत रामायण और भागवतादि पुराणों में जो राम कृष्णादिकों के वाक्य हैं वे भी वेदों के तुल्य हुए। क्योंकि वेद ईश्वर वाक्य हैं। परन्तु अभी मैंने इन्हीं ग्रन्थों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलाया है कि महाभारतादि ग्रन्थों को पढ़ने का अधिकार शूद्रों को दिया गया। इस कारण इस से यह भी सिद्ध होता है कि वेदों में भी शूद्रों का अधिकार है। पुनः मैं पूछताहूं कि राम कृष्ण शूद्रों के साथ भाषण करते थे या नहीं। यदि करते थे तो इन का भाषण इन की वाणी ही वेद है यह आप लोगों का सिद्धान्त है। तब शूद्रों ने साक्षात् ईश्वर से ही वेद वाणी सुनी या नहीं। फिर कौन निषेध कर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सकता है कि शूद्र वेद न पढ़ें। श्री रामचन्द्र जी ने बड़े प्रेम से गुह को छाती लगाया था। वह निषाद था अर्थात् अतिनिकृष्ट जाति का था। इस से मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने यह दिखलाया कि व्यवसाय से कोई नीच नहीं हो सकता है मनुष्य मात्र परस्पर तुल्य हैं। जब परम माननीय परम पवित्र परम पूजनीय रामचन्द्र ने ही शूद्र को छाती लगाया तब क्या शूद्रों से घृणा करने वाले कभी राम वा कृष्ण के उपासक कहला सकते हैं? श्री कृष्ण जी कहते हैं "मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम्" हे पार्थ! जो पापयोनि, स्त्रिएं, वैश्य और शूद्र हैं वे भी मेरी उपासना कर परम गति को प्राप्त होते हैं। हे विवेकशील पुरुषो! अब आप विचार कर देखो जब शूद्र परमगति अर्थात् ईश्वर में मिल सकते इस के समीप जा सकते उस से भाषण कर सकते तब क्या ईश्वर से भी पवित्र द्विज हैं जो शूद्रों से घृणा करते। इस हेतु जो द्विज शूद्रों से घृणा करते हैं वे अपने स्वामी रामकृष्णादिकों की इच्छा से विपरीत चलते हैं। पुनरपि आप देखें। गंगा जी को पौराणिक लोग परम पवित्र मानते हैं। परन्तु गङ्गा के जल में शूद्र नहाते पीते दर्शन करते हैं। स्नानादि न करने का कहीं निषेध भी नहीं। जब शूद्र पवित्र गङ्गा से मिल सकता है तब ब्राह्मणादिकों से मिलने की बात ही क्या। पुनः "भगवान् के दरबार में सब बराबर हैं" इस अर्थ को सूचित करने के हेतु ही यहां के कतिपय ज्ञानियों ने जगन्नाथ जी को स्थापित किया था अभी तक जगन्नाथ पुरी में कोई भेद नहीं माना जाता। इस में सन्देह नहीं कि वह भाव अब वहां नहीं रहा। अब वहां भ्रष्टाचार हो रहा है। क्योंकि मन्दिरों में नर्तकी कन्याओं का नचाना, अति वीभत्स मूर्तियों का रखना, बासी और जूठा खाना आदि व्यवहार अति लज्जाकर धर्म्म विलोपक हो रहे हैं। एवमस्तु। परन्तु वहां सूचित किया जाता है कि ईश्वर के गृह में सब बराबर। पुनरपि देखिये। ईश्वर प्रदत्त सूर्य्य, चन्द्र, जल, पृथिवी आदि पदार्थ सब के लिये बराबर हैं इस हेतु ईश्वर प्रदत्त वेद भी मनुष्य मात्र के लिये है।

कई एक अज्ञानी कहते हैं कि शूद्र वेद पढ़ नहीं सकता। इस का उत्तर इतना ही काफी है कि पढ़ाकर परीक्षा करलो। आज जिन को आप शूद्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कहते हैं उन में से सहस्रों पुरुष वेद पढ़े हुए हैं। केवल पढ़े हुए ही नहीं किन्तु वे वेदों का भाष्य कर रहे हैं। बहुतों ने किया भी है॥ भारतवर्षीय विद्वानो! सोचो विचारो। क्यों अन्धकार में लोगों को ढकेल रहे हो। सब मनुष्य बराबर हैं। जो भाई गिरे हुए हैं उन्हें उठाने के लिये कोशिश करो! सब भाई प्रेम से मिलो। देखो आंख खोलकर। इसी देश में तुम्हारे भाई मसीह कैसे उत्तम काम कर रहे हैं। लाखों जंगली कोल भील गोंद हबशी आदिकों को उच्च बना रहे हैं इन सबों की दशा पशुओं से भी गिरी हुई थी। उच्च और महापुरुष वह है जो गिरे हुओं को उठावे, उन्हें छाती से लगावे। और उन्हें अपने बराबर बनावे। 'आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः' आप विचारें तो आप शूद्र किस को कहते हैं? क्या इन के लक्षण हैं? जिन में शूद्र के लक्षण पाये जांय उन्हें भले ही शूद्र कहें। परन्तु आप वंश के वंश को शूद्र पुकारते हैं उस वंश का कोई पुरुष यदि पढ़ भी जाय आचरणवान् सुशील भी होय तब भी आप उसे शूद्र ही कहेंगे। यह अन्याय और अधर्म्म की बात है अपनी ओर भी देखना चाहिये। यदि आप को यही पूर्ण विश्वास है कि पैर से शूद्रों की उत्पत्ति होने के कारण ये अपवित्र हैं तो गङ्गा नदी की भी पैर से उत्पत्ति है फिर इसे श्रेष्ठ क्यों मानते। पृथिवी का भी जन्म पैर से पुराण मानता है। फिर इस की पूजा क्यों करते। यदि आप विचार करें तो मालूम होगा कि जैसे पृथिवी के विना जीव नहीं रह सकता और जैसे यह पृथिवी सहस्रों अन्न फल फूल मूल कन्द प्रभृति उत्पन्न कर सब को पालन पोषण कर रही है। इस कारण पृथिवी को बारम्बार माता कहा है। वैसे ही शूद्रों के विना कोई कार्य्य नहीं चल सकता। ये शूद्र अपने परिश्रम से समाज को अनेक प्रकार से भरण पोषण कर रहे हैं इस हेतु इन्हें पितरवत् पूर्ण सत्कार करना चाहिये। प्रायः आप लोग हंसेंगे कि आप यह क्या कह रहे हैं। शूद्रों को 'पितर' कैसे कहेंगे। इस में सन्देह नहीं है कि आजकल लोग हंसेंगे परन्तु इस विषय में महर्षि याज्ञवल्क्य क्या कहते हैं सो सुनिये।

स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च। बृहदारण्यकोपनिषद् ॥१।४।१३।

इसका अर्थ शङ्कराचार्य्य करते हैं:—स परिवारकाभावात् पुनरपि नैव व्यभ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वत्। स शौद्रं वर्णमसृजत शूद्र एव शौद्रः स्वार्थेऽणिः वृद्धिः कः पुनरसौ शूद्रोवर्णो यः सृष्टः पूषणं पुष्यतीति पूषा कः पुनरसौ पृथेति विशेषतस्तन्निर्दिशति। इयं पृथिवी पूषा स्वयमेव निर्वचनमाह। इदं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च।

सम्पूर्ण का भाव यह है कि यह शूद्र वर्ण पूषण अर्थात् पोषण करने वाला है और साक्षात् इस पृथिवी के समान है क्योंकि जैसे यह सब का भरण पोषण करती है। वैसे शूद्र भी सब का भरण पोषण करता है ऋषि यहां विस्पष्ट रूप से शूद्र को पृथिवी ही साक्षात् कहते हैं। अब आप इस से समझ सकते हैं कि शूद्रों को ऋषि ने 'पितर' माना या नहीं। कैसा उच्चभाव ऋषियों का है और आज कैसा नीचभाव लोगों का हो रहा है। यही आर्ष और अनार्ष में भेद है। मैं अन्त में यह पूछता हूं कि आप लोग चर्म्मकार को अतिनीच अति शूद्र मानते हैं। क्यों? क्या चाम का व्यवसाय करता है इसलिये? ब्राह्मण लोग जब बकरे भेड़ भैंसे मारते हैं तब क्या ये चाम के कार्य्य से अलग रहे?। क्या जब द्विज लोग हरिण, शूकर, शशक आदि वन्य पशुओं को मारते बनाते और खाते हैं तब कौनसा व्यवसाय बाकी रहगया। क्या बंगदेश के ब्राह्मणादिक सब वर्ण मस्त्य मांस नहीं खाते। क्या मृगचर्म्म या व्याघ्रचर्म्म पर बैठकर पूजा नहीं करते क्या शंख को मुंह में लगा कर नहीं फूंकते? क्या अनेक प्रकार की हड्डियों को डायन योगिनी से बचने के हेतु नहीं पहिनते? इत्यादि कार्य्य करने वाले भी चर्म्मकार को क्यों नीच समझें। सफ़ाई के साथ मृत पशुओं के चर्म्मों से यदि कोई व्यवसाय कर रहा है तो वह कदापि नीच नहीं, वह यथार्थ में वैश्य कहलाने योग्य है। आप यह भी जानें कि यदि चर्म्मकार नहीं होता तो क्या मृत गौ भैंस वगैरह को मृत हरिणादिवत् अपने हाथों से द्विज लोग पृथक् नहीं करते फिर मैं नहीं कह सकता कि चर्म्मकार को लोग क्यों नीच मानते हैं। हां यदि आप यह कहें कि वे बड़े अशुद्ध रहते हैं। इन के गृह चर्मों से भरे रहते हैं दुर्गन्ध अधिक रहती है वे नियम पूर्वक स्नान ध्यान नहीं करते इन में शिक्षा नहीं है इत्यादि कारणों से इन्हें नीच निकृष्ट मानते हैं तो मैं इस को स्वीकार करता हूं परन्तु क्या द्विजों के गृह वैसे नहीं पाते हैं? सैकड़ों मछलियों से दुर्गन्धित नहीं रहते हैं? क्या सहस्रों द्विज आज विना सन्ध्या स्नान के नहीं देखे जाते? क्या बड़े २ निरक्षर परम अपवित्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विज पद धारी नहीं हैं ? जब ये सब दशाएं अपनी ओर भी हैं तो इन गरीब विचारे पर ही क्यों मार है ? परन्तु मैं विशेष रूप से यह कहता हूं कि इन की दशा के सुधार के लिये कोशिश क्यों न कीजाय इन में शिक्षा क्यों न फैलाई जाय। ये क्यों न शुद्ध बनाए जांय। इन की दूकानें रहने के गृह से पृथक् की जांय। इस प्रकार मनुष्यों को नीचता से उच्चता की ओर लेजाने के लिये बड़ों को सदा प्रयत्न करना चाहिये न कि इन्हें उसी अवस्था में छोड़ इन से अलग होना चाहिये। हमें शोक के साथ यह प्रकाश करना पड़ता कि कई एक सहस्र वर्षों से यहां के प्रधान लोग इन को गिराने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं और बलात्कार स्वर्णकार, कुम्भकार, लोहकार, तैलकार, चर्म्मकार, तन्तुवाय, अहीर, धानुक आदिक व्यवसायी वर्णों को शूद्र पदवी दे इन्हें प्रत्येक शुभ कर्म्मों से पृथक् कर दिया। इन में से कोई विद्याध्ययन करना भी चाहता था तो यथाशक्ति ये लोग बाधा डालते रहे। इन को हरेक प्रकार से नीच कुत्सित कुचेल पशु बना ही छोड़ा। इस का परिणाम यह हुआ कि आज सम्पूर्ण भारत एकसा बन गया। सब कोई पौराणिक-शूद्र और वैदिक-दास एक प्रकार से बन बैठे। अब भी सोचो ! जागो !! उठो !!!

'वेद और शूद्र'

सब बात यह है कि साक्षात् वेद जो कहैं वहीं हम सबों को करना उचित है धर्म्मशास्त्रकार अथवा स्मृति बनाने वाले स्वयं कहते हैं कि "या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः"। स्मृतिएं अर्थात् जो धर्म्मशास्त्र वेदविरुद्ध हैं और जो शास्त्र असत् तर्कों से युक्त हैं उन सबों को निष्फल और तामस जानने चाहिये पुनः "एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येत द्विजोत्तमः। स विज्ञेयः परो धर्म्मो नाज्ञाना मुदितोऽयुतैः" वेदों का जानने वाला एक भी विद्वान् जिस धर्म को स्थिर करे उसी को परम धर्म्म जानना चाहिये। परन्तु अज्ञानी पुरुष १०००० दस सहस्र भी मिल कर यदि धर्म्म स्थिर करें तो उसे नहीं मानना चाहिये। इत्यादि अनेक वाक्यों से सिद्ध है कि वेद जो कहैं वही हमारा मन्तव्य होना चाहिये। अभीतक इस प्रकरण में मैंने आप लोगों से शास्त्रों के आशय का वर्णन किया और इस प्रकार से सकल शास्त्रों की संगति लग सकती है यह भी कहा है, परन्तु हम सब मनुष्यों का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक यह सिद्धान्त अथवा मन्तव्य होना चाहिये कि जो वेद कहैं उसी को मानें उसी पर चलें क्योंकि मनुष्यकृत ग्रन्थों में भूल होने की बहुत संभावना है। इसी कारण मैंने प्रत्येक विषय का निर्णय वेदों से ही विशेष कर किया है। अब संक्षेप से शूद्र सम्बन्धी विषय भी वेदों से साक्षात् सुनें।

ऋग्वेद में शूद्र शब्द-ऋग्वेद में 'शूद्र' शब्द एक ही बार आया है यथा:-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १०। ९०। १२॥

सम्पूर्ण ऋग्वेद आप ढूंढ़ आवें कहीं भी शूद्र की निन्दा नहीं पावेंगे और न कहीं यह कहा है कि शूद्रों को यज्ञादि कर्म्म नहीं करना चाहिये बल्कि हरएक विषय में ऋग्वेद चारों वर्णों को बराबर अधिकार देता है।

अथर्ववेद और शूद्र-अथर्ववेद में प्रायः 'शूद्र' शब्द ७ सात स्थानों में आया है। यथा:—

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य्यः ॥ ४। २०। ४॥
उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्य्यम् ॥ ४। २०। ८॥
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥ ५। २२। ७॥
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्त्तारं बन्धृच्छतु ॥ १०। १। ३॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १९। ६। ६॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ १९। ३२। ८॥
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्ये ॥ १९। ६२। १॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यजुर्वेद और शूद्र—नव दशभिरस्तुवत शूद्राय्यौ वसृज्येता महोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् ॥ १४ । ३० ॥ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेयि रुचारुचम् ॥ ॥ १८ । ४८ ॥ यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । तच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयम् । यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि ॥ २० । १७ ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशुमन्यते । शूद्रा यदर्य्य-जारा न पोषाय धनायति ॥ २३ । ३० ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्य्यायै जारो न पोषं मन्यते ॥ २१ । ३१ ॥ यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातु रिह भूयास मयं मे कामः समृध्यता मुप मादो नमतु ॥ २६ । २ ॥ ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम्॥३०।५॥

अशूद्रा अब्राह्मणास्तेप्राजापत्याः । मागधः पुंश्चलूः कितवः क्लीवोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ ३० । २२ ॥

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः यदभ्याꣳ शूद्रो अजायत ॥ ३१ । ११ ॥

इन ऋचाओं में से बहुत ऋचाओं का अर्थ पीछे कर आए हैं इन सब ऋचाओं में आप देखते हैं कि सब को समान अधिकार दिया हुआ है। फिर कौन कह सकता है कि शूद्र छोटा वा निकृष्ट है। निःसन्देह चारों वर्ण परस्पर बराबर हैं। इस के अतिरिक्त वेदों में ईश्वर कहीं भी ऐसी आज्ञा नहीं देता है कि जिस से यह सिद्ध हो कि शूद्र को नीच निकृष्ट अस्पृश्य अदृश्य अयाज्ञिय और वेदानधिकारी है प्रत्युत क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य क्या शूद्र सब के लिये समान प्रार्थना, समान आशीर्वाद आदि आता है जिस से विदित होता है कि ये चार समान हैं और जाति से सब ही बराबर हैं। हां ! व्यवसाय इन का भिन्न भिन्न कहा है "रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु ॥ यजुः १८। ४८॥ प्रियं मा दर्भ अथर्व० १९ । ३२ । ८ ॥ और प्रियं मा कृणु देवेषु । अथर्व० १९ । ६२ । १ ॥ इत्यादि मन्त्र विस्पष्टतया उपदेश देते हैं कि सब को बराबर मानो।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शूद्रों का विशेष सम्मानः—इतना ही नहीं बल्कि वेद भगवान् शूद्र को बहुत आदर देते हैं। यजुर्वेद षोडशाऽध्याय (१६) में जिन को आज कल शूद्र महाशूद्र कहते हैं उन के लिए भी नमस्कार कहा गया है यथाः—

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो,
नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो,
नमो निषादेभ्यः पुंजिष्ठेभ्यश्च वो नमो,
नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ १६ । २७ ॥

महीधर भाष्यम्—तक्षाणः शिल्पजातयस्तेभ्यो नमः। रथं कुर्वन्तीति रथकाराः सूत्रधारविशेषास्तेभ्यो वो नमः। कुलालाः कुम्भकारास्तेभ्यो नमः। कर्म्मरा लोहकारास्तेभ्यो वो नमोस्तु। निषादा गिरिचरा मांसाशिनो भिल्लास्तेभ्यो वो नमः। पुंजिष्ठाः पक्षिपुञ्जघातकाः पुल्कसादयस्तेभ्यो वो नमः। शुनो नयन्ति ते श्वन्यः श्वकण्ठबद्धरज्जुधारकाः श्वगणिनः नयतेर्ह्रस्व आर्षः तेभ्यो नमः। मृगान् कामयन्ते ते मृगयवः.....मृगयवो लुब्धकास्तेभ्यो वो नमः।

(तक्षभ्यः नमः) तक्षा जो शिल्प जातिएं हैं। (बढ़ई, खाती, तखान) उनको नमस्कार हो। (रथकारेभ्यः+वः+नमः) रथ के बनाने वाले जो सूत्रधार जातिएं हैं उन आप सबों को नमस्कार हो (कुलालेभ्यः+नमः) कुलाल अर्थात् कुम्भकार=कुम्हारों को नमस्कार हो। (कर्मारेभ्यः+वः नमः) कर्म्मार अर्थात् लोहकारों को नमस्कार। (निषादेभ्यः नमः) निषाद अर्थात् गिरिचर मांसाशी भिल्लों (भील) को नमस्कार। (पुञ्जिष्ठेभ्यः) पुञ्जिष्ठ जो पक्षिसमूह घातक पुल्कस आदि जातिएं हैं उन्हें नमस्कार। (श्वनिभ्यः) श्वनी अर्थात् कुत्तों को ले चलने वालों को नमस्कार। एवं (मृगयुभ्यः) मृगयु जो लुब्धक व्याध उन को भी नमस्कार।

इस में सन्देह नहीं कि आज कल निषाद पुञ्जिष्ठ आदि जातिएं बहुत निकृष्ट मानी जाती हैं अमरकोश कहता है कि "निषाद श्वपचावन्तेवासि चाण्डाल पुक्कसाः"। निषाद, श्वपच, अन्तेवासी पुक्कस आदि चाण्डाल के नाम हैं परन्तु

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदों में इन को सत्कार देना चाहिए ऐसी आज्ञा है। इस से सिद्ध है कि व्यवसाय के कारण वेद किसी को निन्द्य नहीं मानता। पुनः यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र १९ में स्थपति, मन्त्री, वणिक् आदिकों को भी नमस्कार कहा है। पुनः इसी अध्याय में नमः सूताय (१८) सारथि को भी आदर कहा है। यदि कहो कि यह सब तो रुद्र का वर्णन है मनुष्य का नहीं, तो इस का उत्तर यह है कि इस अवस्था में शूद्रों का और भी अधिक सम्मान होना चाहिए, क्योंकि जब ये निषाद, पुञ्जिष्ठ, तक्षा, कुम्भकार. लोहकार, सूत, स्थपति आदि जातिएं श्री रुद्र भगवान् के स्वरूप हैं तो महादेव के समान ही ये भी पूज्य, प्रणम्य, स्तुत्य आदरार्ह होनी चाहियें, किसी प्रकार से आप लोग मानें वेद इन को नीच नहीं मानते हैं।

शूद्रों का यज्ञों में अधिकारः—वेदों का यह सिद्धान्त है कि शूद्र कोई आर्य्य जाति से भिन्न नहीं। आर्य्यों की ही संज्ञा कार्य्यवश ब्राह्मण. क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है जैसे चार भाई चार काम काज उठा लेवें तो वे चारों बराबर ही माने जांयगे। इन चारों का साथ ही खान पान होगा। और अपने अपने कार्य्य में सब ही एक दूसरे से अधिक समझे जांयगे। इसी प्रकार ये चारों वर्ण चार भाइयों के समान हैं। इस अवस्था में आप समझ सकते हैं कि निखिल वैदिक कर्म्मों में सबों का अधिकार बराबर होगा। यदि आप कहें कि शूद्र मूर्ख अनपढ़ होते हैं वे कर्म कैसे करेंगे ? उत्तर--सुनो भाई ! वेदों में ऐसी आज्ञा कोई नहीं। वेदों में अनपढ़ को शूद्र नहीं कहा गया है। हां ! स्मृतिशास्त्रों में तो अनपढ़ को शूद्र कहा है। परन्तु वेदों में "तपसे शूद्रम्" यजुः। कठिन २ कार्य्य साधन करने वाले को शूद्र कहा है अभी आगे इस का वर्णन करेंगे मैंने अनेक मन्त्र यहां उद्धृत किए हैं क्या कोई मन्त्र कहता है कि मूर्ख को शूद्र कहना चाहिए। यदि वेद ऐसा नहीं कहता है तो हम कैसे शूद्र को मूर्ख बतलावें। अब आप विचार सकते हैं कि जनमते ही कोई पुरुष कठिन २ कार्य्य नहीं करता। जब युवावस्था प्राप्त होती है तब कार्य्य करना आरम्भ करता है। उतनी अवस्था में वह अवश्य कुछ पढ़ले सकता है कार्य्य करता हुआ भी नित्य स्वाध्याय सन्ध्योपासन अग्निहोत्र आदि यज्ञ कर सकता है। हां ! जो जन्म से निपट मूर्ख ही बना रहा बेशक वह कर्म्म नहीं कर सकता परन्तु इस अज्ञानी को वेद शूद्र

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं कहता है अज्ञानी को अज्ञानी ही कहता है। परन्तु वह अज्ञानी भी यज्ञ स्थलों में बैठ कर कर्म देख सकता है, वेद पाठ सुन सकता है। यदि धनिक होतो पुरोहित के साथ पढ़ता हुआ कर्म्म कर सकता है। देखिए वेद कहते हैं:-

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ ऋ०

यजमान के तरफ से कहा जाता है कि (पञ्च+जनाः) पांचों प्रकार के मनुष्य (मम+होत्रम्) मेरे यज्ञ को (जुषन्ताम्) प्रीति पूर्वक सेवें (गोजाताः) पृथिवी पर के जितने मनुष्य हैं वे सब ही यज्ञ करें (उत) और (ये+यज्ञियासः) जो यज्ञार्ह हैं ये भी बराबर यज्ञ किया करें। (नः) हम को (पृथिवी) पृथिवीस्थ मनुष्य (पार्थिवात्) पार्थिव (अंहसः) पापों से (पातु) पालें और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षचारी (दिव्यात्) अन्तरिक्षस्थ अपराध से (अस्मान् +पातु) हम को पालें। यहां "गोजाताः" शब्द का अर्थ "भूम्यामुत्पन्नाः" सायण कहते हैं॥ इस 'गोजात' शब्द से ही सिद्ध है कि पृथिवी पर के निखिल मनुष्य यज्ञ को करें। पुनः "पञ्चजन" शब्द के ऊपर यास्काचार्य्य कहते हैं। "पञ्चजना मम होत्रं जुषन्ताम्। गन्धर्वाः पितरः देवाः असुरा रक्षांसीति के चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इति औपमन्यवः" निरुक्त ॥ ३। ८॥ गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये पञ्चजन हैं। औपमन्यवाचार्य्य कहते हैं कि चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांचों मिल कर "पञ्चजन" कहाते हैं। इस से भी सिद्ध हुआ कि शूद्र और अति शूद्र जो निषाद इन को भी यज्ञ में अधिकार है पुनः--

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आरोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥

इस मंत्र का पीछे अर्थ कर आए हैं। इस में विस्पष्ट पद है कि "जना यदग्निमयजन्त पञ्च" पांचों प्रकार के मनुष्य अग्नि का यजन करते हैं। अर्थात् ब्राह्मण से लेकर निषाद पर्यन्त सब मनुष्यों को यज्ञ करने का अधिकार है। इस प्रकार वेदों के देखने विचारने से प्रतीत होता है कि संसार के

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यवहार के लिये जैसे अध्यापक मास्टर, वकील, मुख़्तार, जज्ज, कमिश्नर, सेनानायक और सिपाही आदि आज कल होते हैं वैसे ही वेद की आज्ञानुसार ये चारों वर्ण हैं। इन में जाति कर के न तो कोई भेद और न नीचता उचता है वेदों में शूद्र किस को कहते हैं, इस का क्या लक्षण है सो ध्यान से सुनिये।

तपसे शूद्रम्। यजुः। ३०। ५॥

बहुत परिश्रमी कठिन कार्य करने वाला साहसी और परमोद्योगी आदि पुरुष का नाम शूद्र है। जैसे दुर्ग हिमालय पर्वतादिक से भी नाना प्रकार की ओषधियों को यज्ञ के हेतु ले आना, समुद्र के पार जाकर भी लोगों की रक्षा करनी, सम्पूर्ण रात्रि जागरण कर, चोर, डाकू, लुच्चे, बदमाश और लम्पटों से ग्राम नगर निवासियों को बचाना, दुर्गम पर्वत पर वा अगम्य टापू आदि में भी छिपे हुए दुष्टों का विनाश करना इत्यादि जो बड़े २ साहस के काज हैं उन्हें जो करे करवावे उस पुरुष का नाम वेदों में शूद्र है। इसी हेतु वेद कहते हैं कि "तपसे शूद्रम्" तप अर्थात् कठिन से कठिन कार्य्य का साधन। उस को जो करे वह शूद्र है। यहां पर साक्षात् 'तप' शब्द का प्रयोग है अर्थात् तपश्चरण के लिये 'शूद्र' है जो सत् कार्य्य किसी से न हो उस का करना निःसन्देह तपस्या का कार्य्य है। अथवाः--

"पद्भ्यां शूद्रो अजायत"

जैसे सब से नीचे रह करके भी पैर ही इस सम्पूर्ण शरीर का भार उठा रहा है। पैर के बिना शिर बाहु, पेट आदि किसी अंग की गति एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं हो सकती, पैर को ही प्रथम कंटक चुभने आदि का क्लेश उठाना पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्यों में से जो कोई सब मनुष्यों का भार अपने ऊपर लेरहा है, नाना क्लेश सहकर भी सब का हित ही चाहरहा है। उसी का नाम वेदों में शूद्र है और इसी भाव को शब्दार्थ भी बतलाता है यथाः--

"शुचा शोकेन द्रवतीति शूद्रः"

जो कोई मनुष्यों के विविध क्लेशों को देख के शोक से द्रवीभूत होवे अर्थात् क्लेशों को देख जिस के मन में यह उपजे कि हाय! इन क्लेशों का नाश

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कैसे होगा ? मनुष्य इन दुःखों से कैसे छूटेंगे । इन की क्या दवाई है इस प्रकार के विचारों से जिस का हृदय आर्द्र होजाय और इन की निवृत्ति के लिये सोच विचार कर शीघ्र प्रवृत्त होजाय उस का नाम शूद्र है । इसी भाव को ऋषियों ने भी स्वीकार किया है ।

"जानश्रुति पौत्रायण"

छान्दोग्योपनिषद में पौत्रायण जानश्रुति की आख्यायिका इस भाव को विस्पष्ट रूप से सूचित करती है । किसी एक राजा का नाम जानश्रुति था । वह बड़ा दानी था । श्रद्धा भक्ति से इस ने अपने राज्य भर में धर्म्मशालाएं स्थापित कीं थी कि सब कोई मेरे यहां ही खाया करें परन्तु यह राजा वैसा ज्ञानी नहीं था । एक रात को इस के मन में अनेक विचार उपस्थित हुए । पश्चात् उसे बड़ी ग्लानि हुई कि मैं ज्ञानी विज्ञानी नहीं हूं । वह उस समय के महान ज्ञानी रैक्व ऋषि को खोज करवा के उन के निकट विद्याध्ययन के लिये गया । वह ऋषि विवाह करना चाहते थे । राजा जानश्रुति ने ऋषि की यह इच्छा देख अपनी दुहिता दे उन से ब्रह्म ज्ञान का उपदेश लिया । यही कथा का सार है अब इस में विचार ने की बात यह है कि जब यह राजा बहुतसा धन धान्य ले-कर ऋषि के निकट पहुंचा है तब ऋषि ने इस को "शूद्र" कह कर पुकारा है। यथा "तमुह परः प्रत्युवाच हीरेत्वा शूद्र" क्षत्रिय होने पर भी इस को ऋषि ने शूद्र क्यों कहा यह शङ्का होती है । इस शङ्का की निवृत्ति के हेतु वेदान्त सूत्र इस प्रकार निर्णय करता है कि:-

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् ॥ ३५ ॥
क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ॥ ३६ । १ । ३ ॥

यद्यपि यह क्षत्रिय था परन्तु (अस्य+शुक्) इस को शोक उपस्थित हुआ और उस शोक से (तद्+द्रवणात्) तब द्रवीभूत हुआ इस हेतु इस को ऋषि ने शूद्र कहा । भाव इस का यह है कि उस को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये शोक प्राप्त हुआ कि मुझ को किस प्रकार ब्रह्मज्ञान मिलेगा । अपनी दुहिता (कन्या) देकर भी इसने ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया । आप यहां देखते हैं कि इस ने कैसा तप का कार्य किया । कैसा प्रशंसनीय इस का साहस है ? अतः इस को ऋषि ने शूद्र कहा ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यजुर्वेद और शूद्र—नव दशभिरस्तुवत शूद्रार्य्यावसृज्येता महोरात्रे अधिपत्नी आस्ताम् ॥ १४ । ३० ॥ रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचꣳ राजसु नस्कृधि । रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेयि रुचारुचम् ॥ ॥ १८ । ४८ ॥ यद् ग्रामे यदरण्ये यत्सभायां यदिन्द्रिये । तच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयम् । यदेकस्याधि धर्म्मणि तस्यावयजनमसि ॥ २० । १७ ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं पशुमन्यते । शूद्रा यदर्य्य-जारा न पोषाय धनायति ॥ २३ । ३० ॥ यद्धरिणो यवमत्ति न पुष्टं बहु मन्यते । शूद्रो यदर्य्यायै जारो न पोषं मन्यते ॥ २१ । ३१ ॥ यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः । ब्रह्मराजन्याभ्याꣳ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय । प्रियो देवानां दक्षिणायै दातु रिह भूयास मयं मे कामः समृध्यता मुप मादो नमतु ॥ २६ । २ ॥ ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भ्यो वैश्यं तपसे शूद्रम् ॥ ३० । ५ ॥

अशूद्रा अब्राह्मणास्तेप्राजापत्याः । मागधः पुंश्चलूः कितवः क्लीवोऽशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्याः ॥ ३० । २२ ॥

ब्राह्मणोऽस्यमुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः यदभ्याꣳ शूद्रो अजायत ॥ ३१ । ११ ॥

इन ऋचाओं में से बहुत ऋचाओं का अर्थ पीछे कर आए हैं इन सब ऋचाओं में आप देखते हैं कि सब को समान अधिकार दिया हुआ है। फिर कौन कह सकता है कि शूद्र छोटा वा निकृष्ट है। निःसन्देह चारों वर्ण परस्पर बराबर हैं। इस के अतिरिक्त वेदों में ईश्वर कहीं भी ऐसी आज्ञा नहीं देता है कि जिस से यह सिद्ध हो कि शूद्र को नीच निकृष्ट अस्पृश्य अदृश्य अयाज्ञिय और वेदानधिकारी है प्रत्युत क्या ब्राह्मण क्या क्षत्रिय क्या वैश्य क्या शूद्र सब के लिये समान प्रार्थना, समान आशीर्वाद आदि आता है जिस से विदित होता है कि ये चार समान हैं और जाति से सब ही बराबर हैं। हां ! व्यवसाय इन का भिन्न भिन्न कहा है "रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु ॥ यजुः १८ । ४८ ॥ प्रियं मा दर्भ अथर्व० १९ । ३२ । ८ ॥ और प्रियं मा कृणु देवेषु । अथर्व० १९ । ६२ । १ ॥ इत्यादि मन्त्र विस्पष्टतया उपदेश देते हैं कि सब को बराबर मानो ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शूद्रों का विशेष सम्मानः—इतना ही नहीं बल्कि वेद भगवान् शूद्र को बहुत आदर देते हैं। यजुर्वेद षोडशाऽध्याय (१६) में जिन को आज कल शूद्र महाशूद्र कहते हैं उन के लिए भी नमस्कार कहा गया है यथाः—

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो,
नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो,
नमो निषादेभ्यः पुंजिष्ठेभ्यश्च वो नमो,
नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥ १६ । २७ ॥

महीधर भाष्यम्—तक्षाणः शिल्पजातयस्तेभ्यो नमः। रथं कुर्वन्तीति रथकाराः सूत्रधारविशेषास्तेभ्यो वो नमः। कुलालाः कुम्भकारास्तेभ्यो नमः। कर्म्मरा लोहकारास्तेभ्यो वो नमोस्तु। निषादा गिरिचरा मांसाशिनो भिल्लास्तेभ्यो वो नमः। पुंजिष्ठाः पक्षिपुञ्ज घातकाः पुल्कसादयस्तेभ्यो वो नमः। शुनो नयन्ति ते श्वन्यः श्वकण्ठ बद्धरज्जुधारकाः श्वगणिनः नयतेर्हस्व आर्षः तेभ्यो नमः। मृगान् कामयन्ते ते मृगयवः.....मृगयवो लुब्धकास्तेभ्यो वो नमः।

(तक्षभ्यः नमः) तक्षा जो शिल्प जातिएं हैं। (बढ़ई, खाती, तखान) उनको नमस्कार हो। (रथकारेभ्यः+वः+नमः) रथ के बनाने वाले जो सूत्रधार जातिएं हैं उन आप सबों को नमस्कार हो (कुलालेभ्यः+नमः) कुलाल अर्थात् कुम्भकार=कुम्हारों को नमस्कार हो। (कर्मारेभ्यः+वः नमः) कर्म्मार अर्थात् लोहकारों को नमस्कार। (निषादेभ्यः नमः) निषाद अर्थात् गिरिचर मांसाशी भिल्लों (भील) को नमस्कार। (पुञ्जिष्ठेभ्यः) पुञ्जिष्ठ जो पक्षिसमूह घातक पुल्कस आदि जातिएं हैं उन्हें नमस्कार। (श्वनिभ्यः) श्वनी अर्थात् कुत्तों को ले चलने वालों को नमस्कार। एवं (मृगयुभ्यः) मृगयु जो लुब्धक व्याध उन को भी नमस्कार।

इस में सन्देह नहीं कि आज कल निषाद पुञ्जिष्ठ आदि जातिएं बहुत निकृष्ट मानी जाती हैं अमरकोश कहता है कि "निषाद श्वपचावन्तेवासि चाण्डाल पुक्कसाः" निषाद, श्वपच, अन्तेवासी पुक्कस आदि चाण्डाल के नाम हैं परन्तु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

द्विज पद धारी नहीं हैं ? जब ये सब दशाएं अपनी ओर भी हैं तो इन गरीब बिचारे पर ही क्यों मार है ? परन्तु मैं विशेष रूप से यह कहता हूं कि इन की दशा के सुधार के लिये कोशिश क्यों न कीजाय इन में शिक्षा क्यों न फैलाई जाय। ये क्यों न शुद्ध बनाए जांय। इन की दूकानें रहने के गृह से पृथक् की जांय। इस प्रकार मनुष्यों को नीचता से उच्चता की ओर लेजाने के लिये बड़ों को सदा प्रयत्न करना चाहिये न कि इन्हें उसी अवस्था में छोड़ इन से अलग होना चाहिये। हमें शोक के साथ यह प्रकाश करना पड़ता कि कई एक सहस्र वर्षों से यहां के प्रधान लोग इन को गिराने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं और बलात्कार स्वर्णकार, कुम्भकार, लोहकार, तैलकार, चर्म्मकार, तन्तुवाय, अहीर, धानुक आदिक व्यवसायी वर्णों को शूद्र पदवी दे इन्हें प्रत्येक शुभ कर्म्मों से पृथक् कर दिया। इन में से कोई विद्याध्ययन करना भी चाहता था तो यथाशक्ति ये लोग बाधा डालते रहे। इन को हरेक प्रकार से नीच कुत्सित कुचेल पशु बना ही छोड़ा। इस का परिणाम यह हुआ कि आज सम्पूर्ण भारत एकसा बन गया। सब कोई पौराणिक-शूद्र और वैदिक-दास एक प्रकार से बन बैठे। अब भी सोचो ! जागो !! उठो !!!

'वेद और शूद्र'

सत्य बात यह है कि साक्षात् वेद जो कहैं वहीं हम सबों को करना उचित है धर्म्मशास्त्रकार अथवा स्मृति बनाने वाले स्वयं कहते हैं कि "या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः। सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः"। स्मृतिएं अर्थात् जो धर्म्मशास्त्र वेदविरुद्ध हैं और जो शास्त्र असत् तर्कों से युक्त हैं उन सबों को निष्फल और तामस जानने चाहिये पुनः "एकोऽपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येत द्विजोत्तमः। स विज्ञेयः परो धर्म्मो नाज्ञाना मुदितोऽयुतैः" वेदों का जानने वाला एक भी विद्वान् जिस धर्म को स्थिर करे उसी को परम धर्म्म जानना चाहिये। परन्तु अज्ञानी पुरुष १०००० दस सहस्र भी मिल कर यदि धर्म्म स्थिर करें तो उसे नहीं मानना चाहिये। इत्यादि अनेक वाक्यों से सिद्ध है कि वेद जो कहैं वही हमारा मन्तव्य होना चाहिये। अभीतक इस प्रकरण में मैंने आप लोगों से शास्त्रों के आशय का वर्णन किया और इस प्रकार से सकल शास्त्रों की संगति लग सकती है यह भी कहा है, परन्तु हम सब मनुष्यों का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक यह सिद्धान्त अथवा मन्तव्य होना चाहिये कि जो वेद कहैं उसी को मानें उसी पर चलें क्योंकि मनुष्यकृत ग्रन्थों में भूल होने की बहुत संभावना है। इसी कारण मैंने प्रत्येक विषय का निर्णय वेदों से ही विशेष कर किया है। अब संक्षेप से शूद्र सम्बन्धी विषय भी वेदों से साक्षात सुनें।

ऋग्वेद में शूद्र शब्द–ऋग्वेद में 'शूद्र' शब्द एक ही बार आया है यथा:–

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १० । ९० । १२ ॥

सम्पूर्ण ऋग्वेद आप ढूंढ़ आवें कहीं भी शूद्र की निन्दा नहीं पावेंगे और न कहीं यह कहा है कि शूद्रों को यज्ञादि कर्म्म नहीं करना चाहिये बल्कि हरएक विषय में ऋग्वेद चारों वर्णों को बराबर अधिकार देता है।

अथर्ववेद और शूद्र–अथर्ववेद में प्रायः 'शूद्र' शब्द ७ सात स्थानों में आया है। यथा:—

तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत्।
तयाऽहं सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य्यः ॥ ४ । २० । ४ ॥
उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्।
तेनाहं सर्वं पश्याम्युत शूद्रमुतार्य्यम् ॥ ४ । २० । ८ ॥
तक्मन् मूजवतो गच्छ बल्हिकान् वा परस्तराम्।
शूद्रामिच्छ प्रफर्व्यं तां तक्मन् वीव धूनुहि ॥ ५ । २२ । ७ ॥
शूद्रकृता राजकृता स्त्रीकृता ब्रह्मभिः कृता।
जाया पत्या नुत्तेव कर्त्तारं बन्धृच्छतु ॥ १० । १ । ३ ॥
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत्।
मध्यं तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १९ । ६ । ६ ॥
प्रियं मा दर्भ कृणु ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च।
यस्मै च कामयामहे सर्वस्मै च विपश्यते ॥ १९ । ३२ । ८ ॥
प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उतशूद्र उतार्य्ये ॥ १९ । ६२ । १ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

व्यवहार के लिये जैसे अध्यापक मास्टर, वकील, मुख़तार, जज्ज, कमिश्नर, सेनानायक और सिपाही आदि आज कल होते हैं वैसे ही वेद की आज्ञानुसार ये चारों वर्ण हैं। इन में जाति कर के न तो कोई भेद और न नीचता उचता है वेदों में शूद्र किस को कहते हैं, इस का क्या लक्षण है सो ध्यान से सुनिये।

तपसे शूद्रम्। यजुः। ३०। ५॥

बहुत परिश्रमी कठिन कार्य करने वाला साहसी और परमोद्योगी आदि पुरुष का नाम शूद्र है। जैसे दुर्ग हिमालय पर्वतादिक से भी नाना प्रकार की ओषधियों को यज्ञ के हेतु ले आना, समुद्र के पार जाकर भी लोगों की रक्षा करनी, सम्पूर्ण रात्रि जागरण कर, चोर, डाकू, लुच्चे, बदमाश और लम्पटों से ग्राम नगर निवासियों को बचाना, दुर्गम पर्वत पर वा अगम्य टापू आदि में भी छिपे हुए दुष्टों का विनाश करना इत्यादि जो बड़े २ साहस के काज हैं उन्हें जो करे करवावे उस पुरुष का नाम वेदों में शूद्र है। इसी हेतु वेद कहते हैं कि "तपसे शूद्रम्" तप अर्थात् कठिन से कठिन कार्य्य का साधन। उस को जो करे वह शूद्र है। यहां पर साक्षात् 'तप' शब्द का प्रयोग है अर्थात् तपश्चरण के लिये 'शूद्र' है जो सत् कार्य्य किसी से न हो उस का करना निःसन्देह तपस्या का कार्य्य है। अथवाः--

"पद्भ्यां शूद्रो अजायत"

जैसे सब से नीचे रह करके भी पैर ही इस सम्पूर्ण शरीर का भार उठा रहा है। पैर के बिना शिर बाहु, पेट आदि किसी अंग की गति एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं हो सकती, पैर को ही प्रथम कंटक चुभने आदि का क्लेश उठाना पड़ता है। इसी प्रकार मनुष्यों में से जो कोई सब मनुष्यों का भार अपने ऊपर लेरहा है, नाना क्लेश सहकर भी सब का हित ही चाहरहा है। उसी का नाम वेदों में शूद्र है और इसी भाव को शब्दार्थ भी बतलाता है यथाः--

"शुचा शोकेन द्रवतीति शूद्रः"

जो कोई मनुष्यों के विविध क्लेशों को देख के शोक से द्रवीभूत होवे अर्थात् क्लेशों को देख जिस के मन में यह उपजे कि हाय! इन क्लेशों का नाश

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कैसे होगा ? मनुष्य इन दुःखों से कैसे छूटेंगे । इन की क्या दवाई है इस प्रकार के विचारों से जिस का हृदय आर्द्र होजाय और इन की निवृत्ति के लिये सोच विचार कर शीघ्र प्रवृत्त होजाय उस का नाम शूद्र है । इसी भाव को ऋषियों ने भी स्वीकार किया है ।

"जानश्रुति पौत्रायण"

छान्दोग्योपनिषद में पौत्रायण जानश्रुति की आख्यायिका इस भाव को विस्पष्ट रूप से सूचित करती है । किसी एक राजा का नाम जानश्रुति था । वह बड़ा दानी था । श्रद्धा भक्ति से इस ने अपने राज्य भर में धर्म्मशालाएं स्थापित कीं थी कि सब कोई मेरे यहां ही खाया करें परन्तु यह राजा वैसा ज्ञानी नहीं था । एक रात को इस के मन में अनेक विचार उपस्थित हुए । पश्चात् उसे बड़ी ग्लानि हुई कि मैं ज्ञानी विज्ञानी नहीं हूं । वह उस समय के महान् ज्ञानी रैक्व ऋषि को खोज करवा के उन के निकट विद्याध्ययन के लिये गया । वह ऋषि विवाह करना चाहते थे । राजा जानश्रुति ने ऋषि की यह इच्छा देख अपनी दुहिता दे उन से ब्रह्म ज्ञान का उपदेश लिया । यही कथा का सार है अब इस में विचार ने की बात यह है कि जब यह राजा बहुतसा धन धान्य ले-कर ऋषि के निकट पहुंचा है तब ऋषि ने इस को "शूद्र" कह कर पुकारा है। यथा "तमुह परः प्रत्युवाच हीरेत्वा शूद्र" क्षत्रिय होने पर भी इस को ऋषि ने शूद्र क्यों कहा यह शङ्का होती है । इस शङ्का की निवृत्ति के हेतु वेदान्त सूत्र इस प्रकार निर्णय करता है कि:—

शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् ॥ ३५ ॥
क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ॥ ३६ । १ । ३ ॥

यद्यपि यह क्षत्रिय था परन्तु (अस्य+शुक्) इस को शोक उपस्थित हुआ और उस शोक से (तदा+द्रवणात्) तब द्रवीभूत हुआ इस हेतु इस को ऋषि ने शूद्र कहा । भाव इस का यह है कि उस को ब्रह्मज्ञान प्राप्ति के लिये शोक प्राप्त हुआ कि मुझ को किस प्रकार ब्रह्मज्ञान मिलेगा । अपनी दुहिता (कन्या) देकर भी इसने ब्रह्म ज्ञान प्राप्त किया । आप यहां देखते हैं कि इस ने कैसा तप का कार्य किया । कैसा प्रशंसनीय इस का साहस है ? अतः इस को ऋषि ने शूद्र कहा ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदों में इन को सत्कार देना चाहिए ऐसी आज्ञा है। इस से सिद्ध है कि व्यवसाय के कारण वेद किसी को निन्द्य नहीं मानता। पुनः यजुर्वेद अध्याय १६ मन्त्र १९ में स्थपति, मन्त्री, वणिक् आदिकों को भी नमस्कार कहा है। पुनः इसी अध्याय में नमः सूताय (१८) सारथि को भी आदर कहा है। यदि कहो कि यह सब तो रुद्र का वर्णन है मनुष्य का नहीं, तो इस का उत्तर यह है कि इस अवस्था में शूद्रों का और भी अधिक सम्मान होना चाहिए, क्योंकि जब ये निषाद, पुक्किश, तक्षा, कुम्भकार, लोहकार, सूत, स्थपति आदि जातिएं श्री रुद्र भगवान् के स्वरूप हैं तो महादेव के समान ही ये भी पूज्य, प्रणम्य, स्तुत्य आदरार्ह होनी चाहियें, किसी प्रकार से आप लोग मानें वेद इन को नीच नहीं मानते हैं।

शूद्रों का यज्ञों में अधिकारः—वेदों का यह सिद्धान्त है कि शूद्र कोई आर्य्य जाति से भिन्न नहीं। आर्य्यों की ही संज्ञा कार्य्यवश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र है जैसे चार भाई चार काम काज उठा लेवें तो वे चारों बराबर ही माने जांयगे। इन चारों का साथ ही खान पान होगा। और अपने अपने कार्य्य में सब ही एक दूसरे से अधिक समझे जांयगे। इसी प्रकार ये चारों वर्ण चार भाइयों के समान हैं। इस अवस्था में आप समझ सकते हैं कि निखिल वैदिक कर्म्मों में सबों का अधिकार बराबर होगा। यदि आप कहें कि शूद्र मूर्ख अनपढ़ होते हैं वे कर्म कैसे करेंगे ? उत्तर—सुनो भाई ! वेदों में ऐसी आज्ञा कोई नहीं। वेदों में अनपढ़ को शूद्र नहीं कहा गया है। हां ! स्मृतिशास्त्रों में तो अनपढ़ को शूद्र कहा है। परन्तु वेदों में "तपसे शूद्रम्" यजुः। कठिन २ कार्य्य साधन करने वाले को शूद्र कहा है अभी आगे इस का वर्णन करेंगे मैंने अनेक मन्त्र यहां उद्धृत किए हैं क्या कोई मन्त्र कहता है कि मूर्ख को शूद्र कहना चाहिए। यदि वेद ऐसा नहीं कहता है तो हम कैसे शूद्र को मूर्ख बतलावें। अब आप विचार सकते हैं कि जनमते ही कोई पुरुष कठिन २ कार्य्य नहीं करता। जब युवावस्था प्राप्त होती है तब कार्य्य करना आरम्भ करता है। उतनी अवस्था में वह अवश्य कुछ पढ़ले सकता है कार्य्य करता हुआ भी नित्य स्वाध्याय सन्ध्योपासन अग्निहोत्र आदि यज्ञ कर सकता है। हां ! जो जन्म से निपट मूर्ख ही बना रहा बेशक वह कर्म्म नहीं कर सकता परन्तु इस अज्ञानी को वेद शूद्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नहीं कहता है अज्ञानी को अज्ञानी ही कहता है। परन्तु वह अज्ञानी भी यज्ञ स्थलों में बैठ कर कर्म देख सकता है, वेद पाठ सुन सकता है। यदि धनिक होतो पुरोहित के साथ पढ़ता हुआ कर्म्म कर सकता है। देखिए वेद कहते हैं:-

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥ ऋ०

यजमान के तरफ से कहा जाता है कि (पञ्च+जनाः) पांचों प्रकार के मनुष्य (मम+होत्रम्) मेरे यज्ञ को (जुषन्ताम्) प्रीति पूर्वक सेवें (गोजाताः) पृथिवी पर के जितने मनुष्य हैं वे सब ही यज्ञ करें (उत) और (ये+यज्ञियासः) जो यज्ञार्ह हैं ये भी बराबर यज्ञ किया करें। (नः) हम को (पृथिवी) पृथिवीस्थ मनुष्य (पार्थिवात्) पार्थिव (अंहसः) पापों से (पातु) पालें और (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षचारी (दिव्यात्) अन्तरिक्षस्थ अपराध से (अस्मान् +पातु) हम को पालें। यहां "गोजाताः" शब्द का अर्थ "भूम्यामुत्पन्नाः" सायण कहते हैं॥ इस 'गोजात' शब्द से ही सिद्ध है कि पृथिवी पर के निखिल मनुष्य यज्ञ को करें। पुनः "पञ्चजन" शब्द के ऊपर यास्काचार्य्य कहते हैं। "पञ्चजना मम होत्रं जुषन्ताम्। गन्धर्वाः पितरः देवाः असुरा रक्षांसीत्येके चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इति औपमन्यवः" निरुक्त ॥ ३। ८॥ गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये पञ्चजन हैं। औपमन्यवाचार्य्य कहते हैं कि चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांचों मिल कर "पञ्चजन" कहाते हैं। इस से भी सिद्ध हुआ कि शूद्र और अति शूद्र जो निषाद इन को भी यज्ञ में अधिकार है पुनः--

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आरोदसी अपृणाज्जायमानः।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायन् जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥

इस मंत्र का पीछे अर्थ कर आए हैं। इस में विस्पष्ट पद है कि "जना यदग्निमयजन्त पञ्च" पांचों प्रकार के मनुष्य अग्नि का यजन करते हैं। अर्थात् ब्राह्मण से लेकर निषाद पर्यन्त सब मनुष्यों को यज्ञ करने का अधिकार है। इस प्रकार वेदों के देखने विचारने से प्रतीत होता है कि संसार के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और मरुत् ४९ हैं। वैसे ही वैश्य लोग भी ८। ८ वा ११। ११ वा १२। १२ वा ३३। ३३। वा ४९। ४९ मनुष्य मिल कर व्यापार वा वाणिज्य किया करें। यहां वसु, रुद्र, आदित्य, विश्वेदेव और मरुत् की उपमा देने से और 'गणशः' के प्रयोग से विस्पष्ट है कि वैश्यों का गण (Company) होना चाहिए। ऋषियों के समय में बड़े २ व्यापार गणों से होते थे इसी कारण 'गण' में जिस जिस का भाग रहता था वह 'सार्थ' अर्थात् समानप्रयोजन वाला कहलाता था और इन सबों का जो प्रधान होता था उसे "सार्थवाह" कहते थे। यहां ८, ११, १२ आदि संख्या का भाव यह नहीं है कि ८ ही वा ११ ही वा ४९ ही मनुष्य मिल के वाणिज्य करें इस से न्यून अथवा अधिक न हों। यहां संख्या उपलक्षण मात्र है, केवल 'गण' से अभिप्राय है अर्थात् वैश्यों को व्यापार के लिए गण की आवश्यकता है यह सूचित करता है। यहां अन्त में मरुत् ४९ पद आया है यही संख्या सब से अधिक है। वेदों में वैश्यों को अनेक स्थल में 'मारुती मरुत्वती' अर्थात् मरुत् सम्बन्धी कहा है। यथाः—

यदाते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नि येमिरे ॥ ८। १२। २९ ॥
अभि स्वरन्तु ये तव सद्रासः सश्चत श्रियम्।
उतोमरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ ८। १३। २८ ॥

यहां विश के विशेषण में 'मारुती' और 'मरुत्वती' प्रयोग हैं। इस से सिद्ध है कि गण में जितनी ही मनुष्यों की अधिक संख्या होगी उतना ही अच्छा है 'मारुती' पद से अन्यान्य अभिप्राय ये भी हैं कि सामुद्रिक यात्रा के लिए वैश्यों का वायु ही बड़ा भारी सहायक है पानी होने का भी कारण वायु होता है। वायु के द्वारा ही पर्जन्य=मेघ इधर उधर जा वैश्यों की कृषि को सींचते हैं। पुराणों में इसी हेतु वायु की जाति वैश्य कही गई है ॥ इति ॥

"विवाह"

मैं अनेक स्थलों में आप लोगों से कह चुका हूं कि वैदिक समय में प्रत्येक गृह चारों वर्णों से युक्त था। किसी का पिता गुणाधिक्य से यदि ब्राह्मण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रसिद्ध है तो इस के पुत्रों में से कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रिय कोई वैश्य और शूद्र है। किसी का पिता यदि शूद्र है तो उस के पुत्र ब्राह्मण हैं। (सब को सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिए कि वेदानुसार साहसी, तपस्वी, उत्कटवीर, सब के सब प्रकार से भार उठाने वाले और तन मन धन से समाज की सेवा करने वाले का नाम शूद्र है) बहुधा तो बड़े २ ऋषि या महात्मा स्वयं चारों वर्ण थे उन में ब्राह्मणत्व की प्रधानता से वे ब्राह्मण कहलाते थे। इस हेतु वैदिक समय में कोई ऐसी चर्चा ही नहीं थी कि किस का कहां विवाह हो, हां! गोत्र छोड़ कन्या जहां जिस को पसन्द कर लेती थी वहां उस का विवाह हो जाता था। इस में सन्देह नहीं कि दस्यु-दास अर्थात् अव्रती नास्तिक पुरुषों के साथ सब व्यवहार वर्जित था। परन्तु इस अवस्था में भी प्रायः ऋषि लोग उन ही दस्यु वा दासों की कन्याओं से उन के कल्याणार्थ विवाह कर लेते थे और उन कन्याओं को योग्य-ऋषिका बना छोड़ते थे। इसी हेतु मनु जी कहते हैं कि "अक्षमाला वसिष्ठेन संयुक्ताऽधमयोनिजा। शारंगी मन्दपालेन जगामाऽभ्यर्हणीयताम् ॥२३॥ एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्ट प्रसूतयः। उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः सह ॥ २४ ॥ मनु० अध्याय ९ ॥ अर्थः—अधमयोनिजा अर्थात् निकृष्ट दस्यु वा दास की कन्या अक्षमाला और शारङ्गी नाम की कन्या ये दोनों क्रमशः ऋषि वसिष्ठ से और ऋषि मन्दपाल से संयुक्ता अर्थात् विवाहिता होने पर परमपूज्या बन गई ॥ २३ ॥ इस के अतिरिक्त अन्यान्य बहुतसी निकृष्ट पुरुषों की कन्याएं अपने २ स्वामी के गुणों से उत्कृष्टता को प्राप्त हुई।२४। इस से सिद्ध है कि ऋषि लोग प्रायः दस्युओं की कन्या से उस के सुधार के लिए विवाह कर लिया करते थे। ऐतरेय और कवष बड़े ऋषि गिने जाते हैं परन्तु वे दोनों ही दासी पुत्र हैं। कलियुग के आदि में अर्थात् युधिष्ठिर के समय में भी ऐसा विवाह निन्दनीय नहीं माना जाता था क्योंकि महा जङ्गली राक्षस अर्थात् महापतित जो सर्वथा वर्जित मनुष्य मांस को भी खाया करता था ऐसे पतित घृणित पुरुष की कन्या से भी महाराज भीमसेन जी ने विवाह कर लिया, यथा—"सा दृष्ट्वा पांडवांस्तत्र सुप्तान् मात्रा सह क्षितौ। हृच्छयेनाभिभूतात्मा भीमसेनमकामयत् ॥६४॥ हत्वा हिडिम्बंभीमोऽथ प्रस्थितो भ्रातृभिः सह। हिडिम्बामग्रतः कृत्वा तस्यां

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जातो घटोत्कचः' ॥ १०९ ॥ महाभारत वनपर्व अ० १२ ॥ वह हिडिम्बा माता के साथ पृथिवी पर सोए हुए पाण्डवों को देख अत्यन्त अनुरक्ता हो भीमसेन की कामना वश हो गई। वह भीमसेन भी हिडिम्ब को मार और हिडिम्बा स्त्री को आगे कर अपने भाइयों के साथ आगे चले। उस हिडिम्बा में घटोत्कच उत्पन्न हुआ। (हिडिम्बा का भाई हिडिम्ब था) इसी कारण एक स्थल में मनु जी कहते हैं "स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि" मनु० अ० २ श्लोक २३८ ॥ पतित कुल से भी स्त्री रत्न को ग्रहण करे। हां! इस में सन्देह नहीं कि कन्या उच्च कुल में देवे। इस का भी यह भाव होगा कि सर्वदा नीच कुल की ही कन्या लेनी पड़ेगी क्योंकि सब कोई अपनी २ कन्या को उच्च कुल में देना चाहेगा (व्यवसाय से कोई उच्च वा नीच नहीं सर्वदा यह स्मरण रखना चाहिये) यद्यपि किसी २ देवी के आने से पति और गृह दोनों सुधर गए हैं कभी २ देखा गया है कि अति नीच पुरुष भी अपनी धर्मपत्नी के गुणों और उपदेशों से भूषित हो शुद्धाचारी आचरणवान् हो गया है। बड़े सुशिक्षित घर की कन्याएं किसी कारणवश जब २ मूर्ख वा अनाचारी के गृह में विवाहिता होके गई तो प्रायः देखा गया है कि उस गृह का सुधार अच्छे प्रकार से होने लगा है ऐसे अनेक उदाहरण अब भी विद्यमान हैं इस से यह सिद्ध होता है कि उपकारके लिये नीच गृहमें भी यदि सुशिक्षिता कन्या जाय तो उस गृह का कल्याण ही होगा क्षति नहीं। तथापि मर्यादा और धर्म रक्षा के लिये भारतवर्षीय बनिताएं सहस्रों दुःख सहती हुई भी प्रायः अपने पति की इच्छा को कदापि भी नहीं दबातीं अर्थात् पति की आज्ञा में सदा पार्वतीवत् स्थिर रहती हैं और पति की स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालती। इस का परिणाम यह होता है कि स्त्री के सदाचार का उतना प्रभाव पुरुष पर नहीं पड़ता, इस हेतु यह उचित है कि कन्या को उच्च कुल में देने के लिए सदा यत्न करे। इसी हेतु मनु जी कहते हैं कि "यादृग् गुणेन भर्त्रा स्त्री संयुज्येत यथा विधि। तादृग्गुणा सा भवति समुद्रेणेव निम्नगा" जैसे गुण वाले पुरुष के साथ स्त्री संयुक्ता होती है। वैसे ही गुणवाली हो जाती है जैसे समुद्र से मिल कर नदी।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"अनुलोम विवाह"*

जिस समय में वंशानुगत वर्ण व्यवस्था चल पड़ी है उस समय में भी अनुलोम विवाह बराबर जारी था इस के दो एक उदाहरण यहां दिये जाते हैं।

अधिगम्य गुरोर्विद्यां गच्छन् स्वनिलयं प्रति ॥१४१॥ कक्षीवानध्वनि श्रान्तः सुष्वापारण्यगोचरः। तं राजा स्वनयो नाम भावयव्यसुतो व्रजन् ॥ १४२ ॥ क्रीडार्थं सानुगोऽपश्यत् स भार्यः स पुरोहितः। अथैनं रूपसम्पन्नं दृष्ट्वा देवसुतोपमम् ॥ १४३ ॥ कन्या दाने मतिं चक्रे वर्णगोत्राविरोधतः इत्यादि ॥ बृहद्देवता अ० ३ ॥

दीर्घतमा और राजा स्वनय की कन्याः—दीर्घतमा ऋषि के पुत्र कक्षीवान् गुरु से विद्याध्ययन कर अपने गृह को लोटते हुए मार्ग में श्रान्त हो किसी वन के किनारे सोगए। दैवयोग वश भावयव्य राजा के पुत्र स्वनय नाम के एक राजा अपनी धर्मपत्नी, पुरोहित और सनाओं के साथ जंगल में शिकार के लिये जाते हुए इस देवकुमारसमान कक्षीवान् को रूपसम्पन्न देख कन्या दान के लिये विचार करने लगे पश्चात् उस कुमार को उठा उस के वर्ण गोत्रादिक सब पूछे तब उस ने कहा कि मैं औचथ्य दीर्घतमा का पुत्र हूं और मेरा नाम कक्षीवान् है। यह सुन राजाने इस को अनेकाभरण भूषिता कन्या को और इस के साथ बहुत से इय गज सोने भूषण आदि पदार्थ दे विदा किया ॥

राजर्षिरभवदाल्भ्यो रथवीतिरितिश्रुतः। स यक्ष्यमाणो राजाश्रि मभिगम्य प्रसाद्य च ॥ अवृणीतार्षिमात्रेय मार्त्विज्यायार्चनानसम्। बृहद्देवता ५। ४९ ॥

श्यावाश्व और रथवीति की कन्याः—रथवीति नास के एक राजर्षि ने यज्ञ करने की इच्छा से अत्रिगोत्रोत्पन्न अर्चनाना नाम के ऋषि से ऋत्विक्कर्म्मार्थ याचना की, वह अर्चनाना अपने पुत्र श्यावाश्व के साथ राजा के गृह यज्ञ करवाने

*उच्च वर्ण के कुमार के अपने से नीच २ वर्ण की कुमारी से विवाह होने का नाम अनुलोम है जैसा विप्र कुमार का विवाह क्षत्रियादि कुमारी से और नीच २ वर्ण के कुमार के अपने से उच्च २ वर्ण की कन्या से विवाह होने का नाम प्रतिलोम विवाह है जैसा क्षत्रिय कुमार का ब्राह्मणी कुमारी से।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को गए, राजा की एक कन्या परम सुन्दरी थी । उसे देख श्यावाश्व प्रेम विवश होगया । इस के पिता ने यह चरित्र देख राजा से कहा कि आप अपनी कन्या मुझे स्नुषा (पुत्रबधू पुतोहू) के हेतु देवें । यह सुन राजा ने अपनी महिषी से सब हाल कह सुनाया । उन की पत्नी ने यह कहा कि "नानृषिर्नो हि जामाता नैष मन्त्रान् हि दृष्टवान्" हम दोनों का जामाता अनृषि नहीं होसक्ता । यद्यपि इस ने वेदों को साङ्गोपाङ्ग पढ़ा है तथापि इस ने अभी मन्त्रों को नहीं देखा है अर्थात् इस ने मन्त्रों के तत्त्व को अभी तक नहीं समझा है । अपनी धर्म्मपत्नी की सुयोग्य सम्मति को अनुमोदन कर अर्चनाना ऋषि को पुत्रबधू के लिये कन्या नहीं दी । पश्चात् यह श्यावाश्व बड़े परिश्रम से मन्त्रदृष्टा बना और उस राजकन्या से विवाह किया । बृहद्देवता के पञ्चमाध्याय में इस की कथा विस्तार पूर्वक कथित है ।

कर्दम और देवहूतिः—यह कथा सर्वत्र प्रसिद्ध है कि राजा मनु की कन्या से कर्दम ऋषि का विवाह हुआ । भागवत कहता है कि कर्दम ब्राह्मण थे । इसी देवहूति से कापिलाचार्य्य उत्पन्न हुए हैं । ब्राह्मण चारों वर्णों की, क्षत्रिय तीन वर्णों की, वैश्य दो वर्णों की, शूद्र केवल एक ही वर्ण की कन्या से विवाह करते थे। इन सबों के भी बहुत उदाहरण हैं इस प्रकार यदि आप प्राचीन इतिहास ढूंढेंगे तो अनुलोम विवाह के बहुत से उदाहरण मिलेंगे । मनु जी भी कहते हैं कि:—

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य साच स्वाच विशःस्मृते ।
ते च स्वा चैव राज्ञश्च ताश्च स्वाचाग्रजन्मनः ॥ ३ । १३ ॥

शूद्र की भार्या केवल एक शूद्रा ही होसकती है । वैश्य की भार्या शूद्रा और अपने वर्ण की कन्या । क्षत्रिय की भार्या, शूद्रा, वैश्या और अपने वर्ण की कन्या और ब्राह्मण की भार्य्या शूद्रा, वैश्या, क्षत्रिया और अपने वर्ण की कन्या हो सकती है । इस प्रकार देखते हैं कि वंशानुगत वर्ण व्यवस्थित होने पर भी अनुलोम विवाह में बाधा नहीं थी । परन्तु धीरे २ यह अनुलोम विवाह की रीति भी सर्वथा बन्द होगई और करने वाले निन्दित समझे जाने लगे । इतना ही नहीं किन्तु आज कल एक देश के ब्राह्मण का विवाहादि सम्बन्ध दूसरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देश के ब्राह्मण के साथ नहीं होता। बल्कि एक देशीय ब्राह्मणों में भी शतशः भेद इस प्रकार हो गए हैं कि एक दूसरे के हाथ का खा पी भी नहीं सकता। इसी प्रकार क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रों के भी अनेक भेद भाव हो गए हैं। इस विषय पर पुनः मैं कभी विस्तार पूर्वक वर्णन करूंगा।

'प्रतिलोम विवाह' *

परन्तु प्रतिलोम विवाह भी बहुधा हुआ करता था। लोग विचार के स्वतन्त्र थे। इस कारण प्रारम्भ में इन नियमों की परवाह नहीं करते थे। महाराज ययाति का विवाह ब्राह्मण कुमारी से हुआ। यह कथा महाभारत में बहुत प्रसिद्ध है। भागवतादि सब पुराण भी इस को वर्णन करते हैं। यद्यपि जब धीरे २ वर्ण प्रणाली वंशानुगत हो बहुत दृढ़ होती गई उस समय तो प्रतिलोम विवाह की निन्दा होने लगी, तथापि आज कल के समान उस समय में निन्दा नहीं थी बल्कि प्रतिलोम विवाह का समाजों में बड़ा आदर था किसी २ प्रतिलोम सन्तान की देश में बड़ी ही प्रतिष्ठा थी। क्षत्रिय से ब्राह्मण कन्या में जो सन्तान होता था उस की प्रतिष्ठा देश में कहीं बढ़ कर होती थी, प्रमाण के लिये यहां उदाहरण देखिये :—

क्षत्रियाद्विप्रकन्यायां सूतो भवति जातितः।
वैश्यान्मागध वैदेहौ राजविप्राङ्गनासुतौ॥ मनु०१०।११॥

क्षत्रिय से ब्राह्मण की कन्या में जो बालक होता है वह 'सूत' और वैश्य से क्षत्रिय की कन्या में जो बालक उत्पन्न होता है वह "मागध" और वैश्य से ही ब्राह्मण की कन्या में जो सन्तान होता है वह "वैदेह" कहाता है॥

सूतजाति का वर्णनः—अब आप विचार के देखेंगे कि यद्यपि सूतवर्ण प्रतिलोम से होता है तथापि इस की कितनी प्रतिष्ठा प्राचीन काल में थी। आप

* क्षत्रिय कुमार का ब्राह्मण कुमारी से, वैश्य कुमार का क्षत्रिय और ब्राह्मण कुमारी से, शूद्र कुमार का वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण कुमारी से विवाह होने का नाम प्रतिलोम विवाह है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लोग जानते होंगे कि दशरथ महाराज के सारथि का नाम 'सुमन्त्र' था। यह केवल सारथि ही नहीं थे किन्तु ये महाराज के मंत्री भी थे! परन्तु यह वर्णव्यवस्था के अनुसार 'सूत वर्ण' थे आप इन प्रयोगों से देखें। "सुमन्त्र! राजा रजनीं रामदर्शनसुत्सुकः।.....तद्गच्छ त्वरितं सूत! राजपुत्रं यशस्विनम्। रामानय भद्रं ते नात्र कार्य्या विचारणा। अश्रुत्वा राजवचनं कथं गच्छामि भामिनि। तच्छ्रुत्वा मंत्रिणो वाक्यं राजा मन्त्रिणमब्रवीत्। सुमन्त्र रामं द्रक्ष्यामि शीघ्रमानय सुन्दरम्.....इति सूतो वर्तिं कृत्वा हर्षेण महता पुनः॥ अयोध्याकाण्ड अ० १४ श्लोक ६०-६९॥ प्रत्याश्वस्तो यदा राजा मोहात्प्रत्यागतस्मृतिः। तदा जुहाव तं सूतं रामवृत्तान्त कारणात्। तदासूतो महाराजम्। राजातु रजसा सूतम्। सूत! मद्वचनात्तस्य तातस्य विदितात्मनः"। इत्यादि अनेकः प्रयोग रामायण में विद्यमान हैं जिन से विदित होता है कि 'सुमन्त्र' वर्ण के सूत थे। परन्तु 'सूत' होने पर भी यह राजमन्त्री और 'सारथि' थे। मनुजी ने भी कहा है कि "सूतानामश्वसारथ्यम्" सूतों की जीविका अश्वसारथ्य है। प्राचीन काल में महाराजों का सारथि बड़ा विश्वासी पुरुष बनाया जाता था और इस की प्रतिष्ठा मन्त्री आदिक पुरुषों से न्यून नहीं होती थी। श्रीकृष्ण महाराज स्वयं अर्जुन के सारथि हुए थे। जिस कारण ब्राह्मण कन्या में क्षत्रिय से यह सूत नामक बालक होता था। इस हेतु इस पर पूर्ण विश्वास सब का रहता था। क्योंकि इस में अपनी माता से सत्यादि उच्च गुण और पिता से वीरतादि गुण प्राप्त होते थे इस कारण यह सूत सर्वदा विश्वासपात्र और महावीर माना जाता था इस हेतु इस को सर्वदा सारथि का कार्य्य सौंपाजाता था इस से बढ़ कर कोई विश्वास का कार्य्य नहीं। क्योंकि प्रतिक्षण क्या संग्राम में क्या गृह में सूत सारथि के हाथ में राजा का प्राण रहता है।

महाभारत और सूत पुत्रः—रामायण से बढ़ के महाभारत में "सूतजाति" की प्रतिष्ठा, गौरव, सम्मान देखते हैं। महाभारत में कहा गया है कि केवल चारों वर्णों के लोग ही नहीं किन्तु बड़े २ ऋषि और मुनि राजा और महाराज ब्राह्मण और मूर्ख सब कोई सूत पुत्र से महाभारत के समान उपदेश शिक्षा ग्रहण करते थे और बड़े प्रेम से सूतनन्दन को अपने से उच्च आसन पर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बैठा महाभारत की सारी कथा सुनते थे। जगत् में इस से बढ़ कर अन्य कोई प्रतिष्ठा नहीं होसकती। प्रथम आप लोग यह देखें कि जिस ने सम्पूर्ण महाभारत को ऋषि लोगों से कहा है वे सूत पुत्र थे या नहीं "विनयावनतो भूत्वा कदाचित् सूतनन्दनः। महाभा० आदि० १। २॥ सूतपुत्र यथातस्य भार्गवस्य महात्मनः॥ आदि० ५। १२ लोमहर्षणपुत्र उग्रश्रवाः सौतिः पौराणिको नैमिषारण्ये। आ०प० १। १॥ निखिलेन यथा तत्त्वं सौते सर्वमशेषतः।" आ० १३। २॥ इत्यादि महाभारत के वचन से सिद्ध है कि जिसने महाभारत सुनाया है वह सूत वर्ण के अवश्य ही थे। यथार्थ में इनका नाम तो 'उग्रश्रवा' था परन्तु 'सूत' जाति के होने से इनको ऋषि लोग प्यार से सूत कहा करते थे। इन के पिता का नाम लोमहर्षण था यह साक्षात् सूत अर्थात् ब्राह्मण कन्या से क्षत्रिय कुमार थे। और जिस हेतु इसके पुत्र उग्रश्रवा थे इस कारण पिता के नाम से लौमिहर्षणि और सौति भी कहलाते थे। इसी हेतु कहीं 'सूतनन्दन' कहीं 'सूतपुत्र' कहीं 'सौति' कहीं 'सूत' कहीं 'लौमहर्षणि' इत्यादि पद आते हैं। इसी सूतपुत्र से शौनक आदि के समान बड़े २ ब्रह्मर्षि राजर्षि राजा महाराज सब कोई महाभारत कथा सुना करते थे। अब आप लोग विचार करें कि प्रतिलोम विवाह का कितना सत्कार था। यहां यह भी एक बात स्मरण रखनी चाहिये। इसी सूतजाति के ऊपर सम्पूर्ण इतिहास और पुराण लिखने का भार छोड़ा जाता था। इस हेतु इतिहास और पुराण सब ही सूत के लिखे हुए हैं।

पुराण और सूत—सकल अष्टादश पुराण इसी सूत ने सुनाये हैं। सर्व पुराण शिरोमणि श्रीमद्भागवत की सम्मति सुनिये "त एकदा तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः। सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात्। ऋषयऊचुः। त्वयाखलु पुराणानि सेतिहासानि चानघ। आख्यातान्यप्यधीतानि धर्म्मशास्त्राणि यान्युत" इत्यादि प्रथमस्कंध प्रथमाध्याय। एक समय सब ऋषि प्रातःकाल के हवनादिक कृत्यों को समाप्त कर पूजित और सुखपूर्वक उपविष्ट सूत जी से यह आदर पूर्वक पूछने लगे। ऋषि लोग बोले हे अनघ सूत जी! आपने इतिहास पुराण आख्यान और धर्म्मशास्त्र पढ़े हैं। वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठ बादरायण वेदव्यास और अन्यान्य मुनि लोग जो २ शास्त्र जानते हैं उन सबों को आप भी जानते हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस हेतु आप कृपा कर हम लोगों से पवित्र पुराणों की वार्त्ता सुनावें इत्यादि। इस से सिद्ध है कि समस्त पुराणों के वक्ता सूत जी थे। परन्तु आज कल की गति देख मुझे अति शोक होता है क्योंकि यद्यपि आज कल के ब्राह्मण इनही पुराणों को पढ़ते इन को ही वेदवत् मानते इन के उपदेश पर चलते रात दिन इन को पढ़ के अपने को परम पवित्र समझते हैं तथापि प्रतिलोम विवाह के विरोधी हैं यह लीला देख मुझे शोक होता है। जिस हेतु आज कल अज्ञानी लोग इस विवाह के हक़ में नहीं हैं इस कारण उन अज्ञानी मनुष्यों की प्रसन्नता के लिये ये पण्डितंमन्यमान भी वैसे कहते कहाते। एवमस्तु। आप लोगों ने देख लिया कि प्रतिलोम विवाह की भी प्राचीन काल में बड़ी प्रशंसा थी।

भिन्न वर्णों में सम्बन्ध—इतिहास की समालोचना से यह निश्चय किया गया है कि एक वर्ण के दूसरे वर्ण में अर्थात् एक व्यवसायी के दूसरे व्यवसायी में विवाह सम्बन्ध होने से जो सन्तान होते हैं वे शारीरिक और आध्यात्मिक दोनों बलों में अच्छे निकलते हैं। भारतवर्षीय इतिहास सूचित करते हैं कि जितने बड़े २ ऋषि वा मुनि वा विद्वान् वा शूरवीर हुए हैं उन में से बहुत से वे हुए हैं जिन की उत्पत्ति दो भिन्न २ वर्णों के योग से हुई है। सब से प्रथम वसिष्ठ और विश्वामित्र का ही उदाहरण लीजिए क्योंकि ये दोनों अत्यन्त प्राचीन ऋषि वेदों के हैं। इन दोनों की उत्पत्ति में बड़ी शङ्का है। वसिष्ठ को कोई वेश्या-पुत्र कोई कुछ कोई कुछ कहते हैं। विश्वामित्र को भी ब्राह्मण-बीज अथवा ब्राह्मणानुगृहीत कहते हैं। यही दशा परशुराम के विषय में भी है। ये तीनों बड़े महात्मा और बड़े योगीश्वर हुए हैं। साङ्ख्यशास्त्र के कर्त्ता कपिल जी भी ब्राह्मण पुत्र होने पर भी क्षत्रिय मनु जी के दौहित्र हैं। सर्वत्र यह प्रसिद्ध है कि श्री वेदव्यास जी कैवर्तकन्या से उत्पन्न हुए हैं। वेदतत्त्ववित् ऐतरेय महर्षि ब्राह्मण बीज से दासीपुत्र हैं। ऐलूष कवष की यही दशा है। धृतराष्ट्र पाण्डु, विदुर ये तीनों नियोग से हैं। इसी प्रकार युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों की कथा मानी जाती है। ऐसे २ शतशः महात्मा इतिहास में मिलेंगे। अन्त में राजा चन्द्रगुप्त के इतिहास का स्मरण दिला समाप्त करते हैं। इस को सब कोई स्वीकार करते हैं कि राजा महानन्द की एक दासी थी उस का नाम 'मुरा' था

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और वह जाति की नाइन थी इसी से महाराज चन्द्रगुप्त हुए हैं। यह ऐसे प्रतापी राजा हुए हैं कि महाभाष्यकार पतञ्जलि भी इन की चर्चा करते हैं। इस से सिद्ध है कि भिन्न २ व्यवसायी का अपने से भिन्न २ व्यवसायियों में विवाह सम्बन्ध होना अच्छा है! सब बात तो यह है कि सन्तानों को पूर्ण ब्रह्मचर्य्य रखवा के शारीरिक नियम के अनुसार उन से सदा व्यायाम करवावे और परीक्षा करवा के पश्चात् ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी जिस को जो पसन्द करे उस २ जोड़े में विवाह होना चाहिये जैसा कि हमारे आचार्य्य श्रीमद्दयानन्द जी लिख गए हैं। ब्रह्मचर्य्य की जितनी ही रक्षा होगी उतने ही बलिष्ठ सुयोग्य सन्तान होते हैं इस में सर्व शास्त्रकार सहमत हैं।

"स्पर्श दोष=परस्पर भोजन व्यवहार,,

वेदों का यह सिद्धान्त है कि जो अव्रती, अब्रह्मचारी, लम्पट, धूर्त, कितव, व्यसनी, मद्यादिसेवी, असत्यवादी, असद्-व्यवहारी, पिशुन, चोर, डाकू, क्रव्याद, छली, कपटी हैं और इस प्रकार के जो २ मनुष्य हैं वे निःसन्देह अपवित्र अशुद्ध हैं इन के साथ भोजनादि सम्बन्ध नहीं रक्खे। परन्तु चारों वर्णों में किसी वर्ण को अथवा आज कल की लोक-दृष्टि में जो नीच व्यवसायी माने जाते हैं उन सबों में से किसी भी नीच व्यवसायी को वेद अपवित्र वा अशुद्ध नहीं मानता न इन के साथ भोजनादि सम्बन्ध निषेध ही करता है। वेद कहता है "मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः" यास्काचार्य्य "शिश्नदेव" पद का अर्थ "शिश्नदेवाः अब्रह्मचर्य्याः" अब्रह्मचारी करते हैं। ऋचा का अर्थ यह है कि (शिश्नदेवाः) अब्रह्मचारी (नः+ऋतम्) हमारे यज्ञ में (मा) नहीं आवें। इस से सिद्ध है कि ब्रह्मचर्य्यव्रत रहित पुरुष अपवित्र है। पुनः—

"सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासा मेका मिदभ्यंहुरोगात्।"

इस ऋचा के व्याख्यान में यास्काचार्य्य कहते हैं-"सप्तैव मर्य्यादाः कवयश्चक्रुः। तासामेकामप्यभि गच्छन्नहंस्वान् भवति। स्तेय मतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापानं दुष्कृतस्य कर्म्मणः पुनः २ सेवा पातके नृतोद्यम्।"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव यह है कि (कवयः) ब्रह्मवादी जन (सप्त+मर्य्यादाः) सात ही मर्य्यादाएं (ततक्षुः) स्थिर करते हैं (तासाम्+एकाम्+इद्+अभि) उन में से एक भी मर्य्यादा को जो ग्रहण करता है वह अवश्य ही (अंहुरः+अगात्) महा पापी हो जाता है वे सात मर्य्यादाएं कौन हैं ? इस पर यास्काचार्य्य कहते हैं (स्तेयम्) चोरी (अतल्पारोहणम्) परस्त्री गमन (ब्रह्महस्याम्) ब्रह्मविद् पुरुष की हत्या (भ्रूणहत्याम्) बालक गर्भादि हत्या (सुरापाणम्) मद्यपान (दुष्कृतस्यः कर्म्मणः पुनः सेवाम्) दुष्कर्म्मों का पुनः २ सेवन करना (पातके+अनृतोद्यम्) पातक करने पर भी मिथ्याभाषण करना । ये ही सात महापातक हैं । इसी के अन्तर्गत अन्यान्य पाप हो जाते हैं ।

उपनिषदों में ऋषि यही कहते हैं । 'स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिवंश्च गुरोस्तल्पमावसन् । ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पञ्चमश्चाचरंस्तैरिति' ॥ छा० उ० ५ । १० । ९ ॥ हिरण्य का चोर (हिरण्य यहां उपलक्षणमात्र) मद्यपायी । गुरुतल्पगामी । ब्रह्मघाती । ये चार और इन चारों के साथ व्यवहार करने वाला ये पांचों पातकी हैं । मनु जी भी यही कहते हैं । "ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैःसह" मनु० ११ । ५४ । इत्यादि वाक्यों से सिद्ध है कि वेदादिशास्त्र चोर डाकू मद्यपायी आदिक जनों को अशुद्ध मानते हैं । अतः इन के साथ भोजन करना भी महापातक है । परन्तु आजकल इस के विपरीत ही लोग आचरण करते हैं । इन महापातकों को कोई नहीं पूछता । बड़े २ मद्यपायी वेश्यागामी मिथ्यावादी पुरुषों के साथ भले प्रकार से व्यवहार करते हैं उन को अपवित्र नहीं समझते । अपवित्र समझते हैं किसी २ वर्ण को अर्थात् किसी २ व्यवसायजीवी को । परन्तु वेद कहीं भी किसी व्यवसायी को अपवित्र अस्पृश्य अभोज्यान्न अपेयपानीय नहीं कहता । किन्तु वेद यह कहता है:—

समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः ।
समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि । अथर्व ३ । ३० । ६

ईश्वर कहता है कि हे मनुष्यो ! तुम सबों का (प्रपा) पानी पीने का स्थान (समानी) एक ही हो (वः+अन्नभागः+सह) तुम्हारा अन्न भाग अर्थात् भोजनादि व्यवहार साथ ही हो । ऐ मनुष्यो ! (समाने+योक्त्रे) समान

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ही रस्सी में (वः+सह युनज्मि) तुम सबों को युक्त करते हैं। इस से सिद्ध है कि खान पान बैठना उठना आदि व्यवहार चारों वर्णों का एक ही होना चाहिए। पुनः—

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम्। ऋ० ६।६८।१२

(सखायः) हे सखाओ! मित्रो! (यूयम्+वयञ्च) आप और हम और (सूरयः) ब्रह्मज्ञानी पुरुष सब कोई मिलकर साथ २ (पुरोरुचम्) सामने में स्थापित जो रुचि प्रद भात रोटी आदि अन्न हैं (तम्) उसे (अश्यामः) खांय। "अश भोजने" वह अन्न कैसा है (वाजगन्ध्यम्) बलप्रद पुनः (वाजपस्त्यम्) बलदायक अनेक प्रकार के व्यंजनादि युक्त। यह मन्त्र विस्पष्टतया सहभोजिता का प्रतिपादक है। पुनः

ओदन मन्वाहार्य्यपचने पचेयुस्तं ब्राह्मणा अश्नीयुः॥
शतपथ ब्रा०१। ४। १। १४॥

यज्ञ में पाक और भोजन का भी विधान आता है। यजमान के गृह पर प्रत्येक ऋत्विक् भोजन करते हैं। बड़े २ यज्ञों में राजाओं के तरफ से पाक के लिये सूद=पाचक नियुक्त किए जाते हैं वे दास होते हैं। ये विविध पाक बना के सब को खिलाते हैं। इस कारण शतपथ ब्रा० कहता है कि अन्वाहार्यपचन=जहां पर खाने के पदार्थ बनाए जाते हैं उस गृह और कुण्ड का नाम अन्वाहार्यपचन है। वहां पाक करें और उस को ब्राह्मण खांय। पुनः मधुपर्क प्रायः सब यज्ञ में होता है। इस में भी विविध अन्न बनाए जाते हैं। श्रौतसूत्र कहता है कि इस में भोजन के पश्चात् जो अनुच्छिष्ट ओदन (भात) रोटी आदि पदार्थ बच जांय वे किसी ब्राह्मण को देदेने चाहिये। यथाः— शेषं ब्राह्मणाय दद्यात्। लाट्यायनश्रौतसूत्र १। २। १०॥ शेष खाद्य पदार्थ ब्राह्मण को देदेवे। इस से विस्पष्ट है कि पूर्व समय में कच्ची पक्की रसोई का विचार नहीं था। प्रत्युत देखा जाता है कि ब्राह्मणों को पवित्र पका हुआ अन्न जहां कहीं से मिलता था ग्रहण कर लेते थे। पुनः भिक्षा में ब्राह्मणों को ओदन दिया करते थे यथाः—"ब्राह्मणाय बुभुक्षिताय ओदनं देहि स्नाताय अनुलेपनं पिपासते पानीयम्। निरुक्त दैवत-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

काण्ड १।१४ ॥ भूखे ब्राह्मण को ओदन दो, नहाए को अनुलेपन और प्यासे को पानी । अभी तक पञ्जाब देश में ब्राह्मण सब यजमान के गृह की पकी हुई रोटी दाल शाक भात सब कुछ खाते हैं ॥

निषाद जाति का अन्न=हम आप लोगों से कह चुके हैं कि आजकल निषाद जाति बहुत निकृष्ट मानी जाती है । परन्तु पूर्व समय में इस के हाथ के भी रोटी पानी सब कोई खाते पीते थे । जब श्री रामचन्द्र जी वन को जाते हुए निषाद से मिले हैं तब वह निषाद सब के लिये विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ ले आया है यथाः-"ततो गुणवदन्नाद्य मुपादाय पृथक् विधम् । अर्घ्यं चोपानय क्षिप्रं वाक्यं चेदमुवाच ह । स्वागतंते महाबाहो तवेयमखिला मही । वयं प्रेष्याः भवान् भर्ता साधु राज्यं प्रशाधि नः । भक्ष्यं भोज्यंच पेयंच लेह्यं चैतदुपस्थितम् । शयनानिच मुख्यानि वाजिनां खादनं तथा ॥ बालकाण्ड ५१ । ३७-४० । यहां चारो प्रकार के भक्ष्य, भोज्य, पेय और लेह्य भोजन का वर्णन है । यहां पर यह स्मरण रखना चाहिये इस समय सुमन्त्र आदि अनेक पुरुष रामचन्द्र के साथ थे । व्रत के कारण रामचन्द्र जी ने इस रात्रि को भोजन नहीं किया है परन्तु अन्यान्य सबों ने खाया पीया है । पुनः जब श्री रामचन्द्र जी शबरी के आश्रम में गए हैं तब इस ने पाद्य और आचमनीय आदि सब प्रकार का भोजन दिया है यथाः-"पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद् यथा विधि । अरण्यकाण्ड अध्याय ७४ । श्लोक ७ । पीने के लिये जो पानी दिया जाता है उसे आचमनीय कहते हैं । शबर आजकल मशहूर कोल भील निकृष्ट जाति का नाम है । शबर जाति की स्त्री होने के कारण 'शबरी' इस का नाम था । अब आप लोग स्वयं विचार करें कि पूर्व समय में छुआ छूत कहां तक था । व्याधा का अन्न और ब्राह्मणः- एक तपस्वी वेदविद् शास्त्री ब्राह्मण मिथिला देश के एक व्याध (कसाई= Butcher पशु पक्षी मारकर बेचने वाला) के गृह पर गए वहां वह उस व्याध के अन्न पानी को बराबर खाया पीया करते थे यथाः-"प्रविश्य च गृहं रम्यम् आसनेनाभि पूजितः । पाद्यमाचमनीयञ्च प्रतिगृह्य द्विजोत्तमः ॥ वनपर्व अध्याय २०६ । श्लोक १८ ॥ यहां हमने दो निकृष्ट जातियों के उदाहरण दिये । कहां निकृष्ट व्याध और कहां वेद विद् ब्राह्मण ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सूद, सूपकार पाचक आदिः—क्या आप इस बात को नहीं जानते हैं कि जब बड़े २ अश्वमेधादि यज्ञ देश में हुआ करते थे जब देश २ के चारों वर्ण एकत्रित होते थे तब रसोई करने वाले कौन नियुक्त होते थे ? क्या आज कल के समान ही ब्राह्मण ही उस समय में भी नियुक्त होते थे ? क्या आज के समान ही सब कोई भिन्न २ अपना पाक करते थे ? क्या आपने कहीं भी ऐसा वर्णन पढ़ा या सुना कि ब्राह्मण लोग उन महान् यज्ञों में आकर अलग २ पाक किया करते थे। नहीं, महाशयो ! ऐसा कहीं नहीं। तब प्राचीन काल में पाक करने वाला कौन था ? सुनिये "आरालिकाः सूपकारा रागखाण्डविकास्तथा। उपातिष्ठन्त राजानं धृतराष्ट्रं यथापुरा ॥ १९ ॥ महाभारत आश्रमवासि पर्व प्रथमाध्याय का १९ वां यह श्लोक है इससे सिद्ध है कि राजा के पाक करने को आरालिक, सूपकार, राग खण्डविक आदि पुरुष नियुक्त होते थे ये सब पाककर्ताओं के भेद हैं पुनः "सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवन शालिनः" उत्तर काण्ड रामायण अध्याय ९१। श्लोक २२। अश्वमेध के समय में श्री रामचन्द्र कहते हैं कि भरतजी अपने साथ सूद और सूद स्त्रियों को पाक के लिये ले जांय पुनः "स चिन्तयन्नघराज्ञः सूदरूपधरो गृहे। भागवत ९। ९। २१ ॥ इत्यादि प्रमाणों से विदित होता है कि पाक करने वाले 'सूद' "आरालिक" इत्यादि नाम से पुकारे जाते थे। ये दास होते थे। येही बराबर रसोई बनाया करते थे। आगत ब्राह्मणादि वर्ण कदापि भी अपने २ हाथ से पाक नहीं किया करते थे। देखिये दशरथ महाराज के यज्ञ का वर्णन है कि "ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते। तापसा भुञ्जतेचापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते ॥ १२ ॥ अन्नंहि विधिवत स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः ॥ १७ ॥ स्वलंकृताश्च पुरुषा ब्राह्मणान् पर्यवेषयन् ॥ १८ ॥ इत्यादि बालकाण्ड अ० १४ में वर्णन है इस यज्ञ में ब्राह्मण तापस श्रमण आदि नाथ अनाथ सब ही खाया करते थे। ब्राह्मणादि स्वादु अन्न की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। अलंकृत हो सूद लोग ब्राह्मणों को परोसा करते। पुनः "ब्राह्मणान् भोजयामास पौरजानपदानपि" रामायण १। १८। २३ ॥ दशरथ ने ब्राह्मणों और पुरवासियों को भोजन खिलाया। महाभारत में भी अनेक स्थलों में इस की चर्चा आती है। यथा "चोष्यैश्च विविधैराजन् पेयैश्चबहुविस्तरैः ॥ ४ ॥ तर्पयामास विप्रेन्द्रान्" ॥ ५ ॥ सभापर्व अध्याय ४। चोष्य, लेह्य, पेय, भोज्य,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खाद्य आदि अनेक प्रकार की पक्की हुई रसोई (जिस को आज कल कच्ची रसोई कहते हैं) से युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को तृप्त किया पुनः "पर्यवेषन् द्विजातींस्तान् शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४१ ॥ विविधान्यन्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ॥ ४२ ॥ अश्वमेध पर्व अध्याय ८५ । महाराज युधिष्ठिर के अश्वमेध का वर्णन है। वे दासगण विविध खाद्य अन्न पानी ब्राह्मणों को परोसा करते थे। यहां 'अनुयायी' अर्थात् दास शब्द का साक्षात् प्रयोग है। हम कहां तक उदाहरण बतलावें आप स्वयं महाभारत पढ़ के देखें अनेक स्थलों में देखा जाता है कि ब्राह्मणगण सब वर्णों की रसोई खालिया करते थे। परन्तु आजकल केवल खाने पीने में ही लोगों ने धर्म्म मान रक्खा है यहां तक कि कोई २ पुरुष ऐसे अज्ञानी हैं कि छिपा कर पाक करते हैं यदि उसे कोई भिन्न वर्ण देखले तो उसे अपवित्र मान छोड़ देते हैं। कोई चौके में एक लकीर देदेते हैं यदि उस लकीर के अभ्यन्तर कोई हाथ भी रखदे तो वह चौका अशुद्ध माना जायगा। कोई २ अपनी स्त्री के हाथ का भी नहीं खाते। कैसी २ अज्ञानता की बात देश में फैली हुई है। उलटी बुद्धि लोगों की होरही है जो वास्तविक शुद्धि चाहिये वह तो विनष्ट हो गई। पाखण्ड जितना करता जाय उतना ही अज्ञानी जन उसे अच्छा मानते हैं।

संन्यासियों का खानपानः—विवेकि पुरुषो! आप यह तो विचारो यदि खाने पीने में कोई पाप लगता तो संन्यासियों को भी लगना चाहिये। आप को मालूम है कि पका हुआ शुद्ध अन्न जिस गृह से संन्यासियों को मिलजाता है वे उसे विना जाति पाति के विचार से खा लेते हैं। यही एक प्राचीन व्यवहार देश में रह गया है। जैसे आजकल संन्यासीगण छुआ छूत नहीं मानते हैं केवल भक्ष्याभक्ष्य अन्न का विचार रखते हैं। किसी वर्ण के गृह का शुद्ध अन्न क्यों न हो वह ग्रहण करलेते हैं प्राचीन काल में सब आश्रमों सब वर्णों में ऐसा ही विचार था। अभी तक वैष्णव सम्प्रदाय में देखा जाता है कि जो कोई वैष्णव होजाते हैं वे परस्पर एक दूसरे के हाथ का खा पीलेते हैं चाहे वह कितनी ही नीच जाति का क्यों न हो।

द्विजातिः—आजकल के धर्म्मशास्त्रों में भी शूद्रों के पक्व अन्न ग्रहण करने का केवल निषेध पाया जाता है परन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों द्विजाति-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तियों के परस्पर अन्न ग्रहण करने में कोई दोष नहीं बतलाता। परन्तु यहां तो यह अज्ञानता फैली हुई है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण भी सब कोई मिल कर एक दूसरे के हाथ की रोटी नहीं खायंगे इसी प्रकार मैथिल आदि सब ब्राह्मणों में व्यवहार है। पुनरपि देखिये! बहुत द्विज कहते हैं कि शूद्र की बनाई हुई रोटी भात खाने से हम शूद्र होजायंगे। मैं कहता हूं कि तब ब्राह्मण की रोटी खाने से शूद्र ब्राह्मण क्यों नहीं बन जाता। यदि शूद्र ब्राह्मण नहीं बनता तब ब्राह्मण शूद्र कैसे होगा। क्या ब्राह्मण की रोटी में शूद्र को ब्राह्मण बनाने की शक्ति नहीं? क्या शूद्र की ही रोटी प्रबल है?। इस पर कोई कहते हैं कि पर्वत पर से गिरने में देर नहीं लगती परन्तु चढ़ने में बहुत देर लगती है। मैं कहता हूं कि इसको आप ने गिरना कैसे मान लिया। क्या शूद्र की रोटी में कोई पाप लगा हुआ है कि आप को वह पकड़ लेगी। यदि कहो कि शूद्र अशुद्ध अपवित्र रहते हैं अतः इन से बनी हुई रोटी भी वैसी ही होगी। मैं कहता हूं कि तब शूद्र के हाथ से पानी भी मत पीजिये। पानी में तो और भी अशुद्धता आने की अधिक शङ्का है। और शूद्रों से कटवाना पिसवाना आदि कर्म्म भी छुड़वा लीजिये। और मैं कहता हूं कि शूद्र को आप ने अपवित्र कैसे मान लिया। पवित्र अपवित्र बनाना भी तो आपही के हाथ में है। उससे नित स्नान ध्यान पूजा पाठ करवाइये शुद्ध वस्त्र दीजिये। यदि व्यसनी विषयी है तो उस से व्यसन छुड़वा दीजिये। वह शुद्ध होजायगा तब उस को पाचक बना लीजिये। क्या द्विजों में वैसे नहीं हैं?। हां पवित्र पाक बनाना चाहिये यह मैं भी स्वीकार करता हूं। पवित्रता वा अपवित्रता भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ के नियम से होती है। मनुष्यों को तो पवित्र अपवित्र बनाना अपने हाथ में है। भाइयो! यह बिचारने की बात है। जब स्वयं वेद शूद्र के हाथ से बनी हुई रोटी खाने का निषेध नहीं करते हैं तब आप क्यों पाप के भागी बनते हैं। आप के देश में जितने महा पुरुष वसिष्ठ विश्वामित्र याज्ञवल्क्य जनक राम कृष्ण रामानुज रामानन्द कबीर नानक गुरुगोविन्द राजाराममोहन केशवसेन और अन्त में वेदपारदृश्वा तत्त्वज्ञानी महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती हुए हैं वे इस प्रकारकी छुआ छूत नहीं मानते। इस कारण वेद कीओर देखो मनुष्यों से मत डरो। ईश्वर की आज्ञा वेद वाणी को स्वीकार करो।

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत आदमी कहते हैं कि यदि यहां के लोगों में स्पर्शास्पर्श विचार और इतना जाति पांति का बखेड़ा नहीं होता तो मुसलमान के समय में सब कोई भ्रष्ट होगए रहते इत्यादि। परन्तु मैं कहता हूं कि अपने में इस प्रकार यदि जाति पांति का झगड़ा ही नहीं रहता तो कदापि भी इस देश में यवनादि राजा नहीं आते जिस समय में यह बखेड़ा नहीं था उस समय में यहां के लोग सम्पूर्ण पृथिवी के राजे बने रहे। जब से यह परस्पर की फूट घृणा अन्याऽन्य-बर्ताव जात्यभिमान अविद्या आदि दुर्गुण चले तब से ही यह देश विनाश को प्राप्त हुआ। कोई अज्ञानी कहते हैं कि यह तो कलियुग का प्रभाव ही है कि सब कोई एकमय हो जायंगे तब ही तो कलंकी अवतार धर भगवान् सर्वनाश करेंगे मैं कहताहूं कि यह कलियुग का प्रभाव नहीं किन्तु सत्ययुग का प्रभाव है क्योंकि सत्ययुग में ऐसी ही व्यवस्था थी पीछे अनेक उदाहरण दिए गए हैं। देखो सब शास्त्र कहता है कि अभिमान त्यागो। परन्तु आप सब दुष्कर्म करते हुए केवल खाने पीने में मिथ्या अभिमान करते हो। शूद्रों के हाथ का पानी पीते हो पूरी खाते हो तब भात रोटी में कौनसी बात रह गई। आप यद्यपि रामकृष्णादिकों को अवतार मानते हो तथापि इन का क्षत्रिय शरीर भी साथ ही मानते हो क्योंकि स्वयं राम कृष्णादिक महापुरुषों ने ब्राह्मण और ऋषि आदिकों को बड़ी नम्रता से प्रणाम किया है जैसे आज क्षत्रिय करते हैं। फिर भोग लगाकर उच्छिष्ट (जूठा) क्यों खाते हो। देखो! किसी जाति में जो महात्मा होते हैं उन के समीप सब को शिर झुकाना ही पड़ता है। कबीर, नानक, गणिका आदि इस के उदाहरण हैं। कोई कहते हैं कि इस प्रकार के परिवर्तन से बड़ा ही गड़बड़ होगा। ब्राह्मणवंश शूद्र और शूद्रवंश ब्राह्मण बन जायगा? मैं कहता हूं ऐसा कदापि नहीं होना। जो ब्राह्मण हैं वे ब्राह्मण ही जो शूद्र हैं वे शूद्र ही रहेंगे। क्योंकि गुण ही मनुष्य को ब्राह्मण शूद्र बनाता है। परन्तु मैं एक बात और भी कहता हूं कि शूद्र को निकृष्ट नीच क्यों मानते हो वेद के अनुसार शूद्र अच्छे महावीर पुरुष को कहते हैं। यही भाव रक्खो। हां नीच को दस्यु वा दास कहते हैं। ऐ विवेकि पुरुषो! मनुष्यों को मनुष्य बनाने के लिये यत्न करो! यही मेरा अन्तिम अनुशासन है। अब इस प्रसंग को समाप्त करो बड़ा शास्त्र विचार हुआ धारणा भी नहीं रहेंगी और आप लोग अब

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तियों के परस्पर अन्न ग्रहण करने में कोई दोष नहीं बतलाता। परन्तु यहां तो यह अज्ञानता फैली हुई है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मण भी सब कोई मिल कर एक दूसरे के हाथ की रोटी नहीं खांयगे इसी प्रकार मैथिल आदि सब ब्राह्मणों में व्यवहार है। पुनरपि देखिये! बहुत द्विज कहते हैं कि शूद्र की बनाई हुई रोटी भात खाने से हम शूद्र होजांयगे। मैं कहता हूं कि तब ब्राह्मण की रोटी खाने से शूद्र ब्राह्मण क्यों नहीं बन जाता। यदि शूद्र ब्राह्मण नहीं बनता तब ब्राह्मण शूद्र कैसे होगा। क्या ब्राह्मण की रोटी में शूद्र को ब्राह्मण बनाने की शक्ति नहीं? क्या शूद्र की ही रोटी प्रबल है?। इस पर कोई कहते हैं कि पर्वत पर से गिरने में देर नहीं लगती परन्तु चढ़ने में बहुत देर लगती है। मैं कहता हूं कि इसको आप ने गिरना कैसे मान लिया। क्या शूद्र की रोटी में कोई पाप लगा हुआ है कि आप को वह पकड़ लेगी। यदि कहो कि शूद्र अशुद्ध अपवित्र रहते हैं अतः इन से बनी हुई रोटी भी वैसी ही होगी। मैं कहता हूं कि तब शूद्र के हाथ से पानी भी मत पीजिये। पानी में तो और भी अशुद्धता आने की अधिक शङ्का है। और शूद्रों से कटवाना पिसवाना आदि कर्म्म भी छुड़वा लीजिये। और मैं कहता हूं कि शूद्र को आप ने अपवित्र कैसे मान लिया। पवित्र अपवित्र बनाना भी तो आपही के हाथ में है। उससे नित स्नान ध्यान पूजा पाठ करवाइये शुद्ध वस्त्र दीजिये। यदि व्यसनी विषयी है तो उस से व्यसन छुड़वा दीजिये। वह शुद्ध होजायगा तब उस को पाचक बना लीजिये। क्या द्विजों में वैसे नहीं हैं?। हां पवित्र पाक बनाना चाहिये यह मैं भी स्वीकार करता हूं। पवित्रता वा अपवित्रता भक्ष्याभक्ष्य पदार्थ के नियम से होती है। मनुष्यों को तो पवित्र अपवित्र बनाना अपने हाथ में है। भाइयो! यह बिचारने की बात है। जब स्वयं वेद शूद्र के हाथ से बनी हुई रोटी खाने का निषेध नहीं करते हैं तब आप क्यों पाप के भागी बनते हैं। आप के देश में जितने महा पुरुष वसिष्ठ विश्वामित्र याज्ञवल्क्य जनक राम कृष्ण रामानुज रामानन्द कबीर नानक गुरुगोविन्द राजाराममोहन केशवसेन और अन्त में वेदपारदृश्वा तत्त्वज्ञानी महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती हुए हैं वे इस प्रकारकी छुआ छूत नहीं मानते। इस कारण वेद कीओर देखो मनुष्यों से मत डरो। ईश्वर की आज्ञा वेद वाणी को स्वीकार करो।

समानी प्रपा सहवोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सहवो युनज्मि।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बहुत आदमी कहते हैं कि यदि यहां के लोगों में स्पर्शास्पर्श विचार और इतना जाति पांति का बखेड़ा नहीं होता तो मुसलमान के समय में सब कोई भ्रष्ट होगए रहते इत्यादि। परन्तु मैं कहता हूं कि अपने में इस प्रकार यदि जाति पांति का झगड़ा ही नहीं रहता तो कदापि भी इस देश में यवनादि राजा नहीं आते जिस समय में यह बखेड़ा नहीं था उस समय में यहां के लोग सम्पूर्ण पृथिवी के राजे बने रहे। जब से यह परस्पर की फूट घृणा अन्याऽब-वर्ताव जात्यभिमान अविद्या आदि दुर्गुण चले तब से ही यह देश विनाश को प्राप्त हुआ। कोई अज्ञानी कहते हैं कि यह तो कलियुग का प्रभाव ही है कि सब कोई एकमय हो जायंगे तब ही तो कलंकी अवतार धर भगवान् सर्वनाश करेंगे मैं कहताहूं कि यह कलियुग का प्रभाव नहीं किन्तु सत्ययुग का प्रभाव है क्योंकि सत्ययुग में ऐसी ही व्यवस्था थी पीछे अनेक उदाहरण दिए गए हैं। देखो सब शास्त्र कहता है कि अभिमान त्यागो। परन्तु आप सब दुष्कर्म करते हुए केवल खाने पीने में मिथ्या अभिमान करते हो। शूद्रों के हाथ का पानी पीते हो पूरी खाते हो तब भात रोटी में कौनसी बात रह गई। आप यद्यपि रामकृष्णादिकों को अवतार मानते हो तथापि इन का क्षत्रिय शरीर भी साथ ही मानते हो क्योंकि स्वयं राम कृष्णादिक महापुरुषों ने ब्राह्मण और ऋषि आदिकों को बड़ी नम्रता से प्रणाम किया है जैसे आज क्षत्रिय करते हैं। फिर भोग लगाकर उच्छिष्ट (जूठा) क्यों खाते हो। देखो! किसी जाति में जो महात्मा होते हैं उन के समीप सब को शिर झुकाना ही पड़ता है। कबीर, नानक, गणिका आदि इस के उदाहरण हैं। कोई कहते हैं कि इस प्रकार के परिवर्तन से बड़ा ही गड़बड़ होगा। ब्राह्मणवंश शूद्र और शूद्रवंश ब्राह्मण बन जायगा? मैं कहता हूं ऐसा कदापि नहीं होना। जो ब्राह्मण हैं वे ब्राह्मण ही जो शूद्र हैं वे शूद्र ही रहेंगे। क्योंकि गुण ही मनुष्य को ब्राह्मण शूद्र बनाता है। परन्तु मैं एक बात और भी कहता हूं कि शूद्र को निकृष्ट नीच क्यों मानते हो वेद के अनुसार शूद्र अच्छे महावीर पुरुष को कहते हैं। यही भाव रक्खो। हां नीच को दस्यु वा दास कहते हैं। ऐ विवेकि पुरुषो! मनुष्यों को मनुष्य बनाने के लिये प्रयत्न करो! यही मेरा अन्तिम अनुशासन है। अब इस प्रसंग को समाप्त करो बड़ा शास्त्र विचार हुआ धारणा भी नहीं रहेगी और आप लोग अब

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निःसन्देह भी होगए। ईश्वर के नाम पर इसी की ओर देख सब कार्य्य सम्पादन करो।

"सप्तम प्रश्न का समाधान"

(क) निश्चय कर्म्मानुसार सृष्टि हम भी मानते हैं और यह भी मानते हैं कि प्रथम सृष्टि में सब ही समान ही नहीं हुए। परन्तु जैसे चार भ्राताओं में यत् किञ्चित् भेद बना रहता है तद्वत् भेद उन में भी था। इस प्रकार हरेक गृह में चारों वर्णों के लोग हो सकते हैं। एक एक वंश को जो आप ब्राह्मण वा शूद्र कहते हैं यह नहीं हो सकता क्योंकि नीच से नीच गृह में कोई २ बालक बड़ा तीक्ष्ण निकलता है। शिक्षा होने पर वह उत्तम से उत्तम ब्राह्मण हो सकता है। बात यह है कि स्वाभाविक गुण रहने पर मनुष्यों में वर्ण व्यवस्था शिक्षा के ऊपर निर्भर है इस कारण वंश का वंश सर्वदा एक ही दशा में नहीं रह सकता पीछे बहुत कुछ कह चुके हैं बिचारिये। ख+ग+घ इन तीनों का समाधान पृष्ठ ६१ से ७३ तक देखें। (ङ) जिस को आज कल आप ब्राह्मण वा क्षत्रिय वंश कहते हैं क्या उन में एक सी ही प्रवृत्ति आप देखते हैं क्या इन में कोई चोर धूर्त्त मूर्ख नहीं होते। आप जो पशु का उदारहण देते सो मनुष्य में नहीं घट सकता। क्योंकि लाखों यत्न से हाथी बैल नहीं होगा परन्तु शिक्षा के अभाव से वा कुसंग से ब्राह्मण केवल साधारण शूद्र ही नहीं किन्तु अस्पृश्य अव्यवहार्य त्रास बन जाता है और यह भी आप ध्यान रक्खें पशु में खाने पीने आदि के स्वाभाविक उदाहरण देते हैं परन्तु मनुष्य में कृत्रिम। पशु आदिक में जो जिस का खान पान वा क्रिया है वैसी प्रायः बाल्यावस्था से ही रहती है। जन्म से ही मछली तैरने लगती है। शूकर की जन्म से ही विष्ठा में प्रवृत्ति होजाती है। परन्तु मनुष्य में सब कुछ शिक्षा के अधीन है। आप स्वयं विचारें। (च) इसका समाधान पृष्ठ १४६ से २४६ तक देखें। इस प्रकार आप के सब प्रश्नों के समाधान विस्तार से कहे गये हैं परिशिष्ट में भी कुछ कहे जांयगे। हठ दुराग्रह पक्षपात छोड़ वेद शास्त्रों को यथाशक्ति अपने से ही देख भाल बारम्बार एकान्त स्थल में विचार अच्छे २ आप्त धार्म्मिक निष्कपट पुरुषों के संग शंका समाधान कर जो स्थिर हो उसे करना चाहिये। इस प्रकार मनुष्य जन्म को सफलीभूत करने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये। इति चतुर्थ प्रकरणं समाप्तम।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परिशिष्ट प्रकरण ।

अब मैंने बहुत कुछ आप लोगों से कह सुनाया । आप लोगों को भी अब कोई शङ्का बाकी नहीं रही । अब केवल दो चार बातें कह इस को समाप्त कर देना चाहता हूं । पृष्ठ ६१ से ७३ तक मैंने प्रमाण और युक्तियों से सिद्ध कर बतलाया है कि मनुष्य एक जाति है पशु पक्षी के समान इस में भिन्न २ जातिएं नहीं । पुनः मनुष्यों में अनेक वर्ण कैसे बने इस विषय में भी पृष्ठ १३६ से १४५ तक वर्णन किया है । बहुत आदमी कहते हैं कि मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, उरु से वैश्य और पैर से शूद्र उत्पन्न हुए हैं इस महती अविद्या की निवृत्ति के लिए १४६ से २४६ तक अर्थात १०० से कुछ अधिक पृष्ठों में वर्णन किया है । पुनः स्मार्त शूद्र वा व्रात्य आदि विषय भी चतुर्थ प्रकरण में विस्तार से कथित हैं ॥ आप लोगों से मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूं कि गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण व्यवस्था स्थापित कीजिए । आप लोग देखते हैं कि इस आर्य्यावर्त देश में कितनी जातिएं बनी हुई हैं । पुनः एक २ जाति में भी सैकड़ों भेद विद्यमान हैं । इस के परिणाम पर आप यदि ध्यान से विचार करेंगे तो नेत्रों से अश्रुप्रवाह चलने लगेगा । प्रथम तो जो कोल, भील, सन्थाल, खांद, गोंद ओर्रो आदि अनेक जातिएं हैं जो संख्या में लाखों हैं । इसी जाति पांति के बखेड़े में पड़ के आप इन को आर्य्य बनाने के प्रयत्न ही छोड़ बैठे । आप के आलस्य और अज्ञानता के कारण अभी तक वे बेचारे ईश्वरविमुख बने रहे । मनुष्य जन्म धारण का इन्हें कुछ भी फल प्राप्त नहीं हुआ । उन के श्रवण तक आप पवित्र वेद वाणी नहीं पहुंचा सके । कहिए ! आप श्रेष्ठ होके इन का आपने क्या उपकार किया । इन को शिक्षा देने के लिए आपने कब ही प्रयत्न नहीं किया । ये बिना कपड़े के बिना अच्छे अन्न के जङ्गलों में टकराते रहे । आपकी दया ने इन को क्या उपकार किया । जानें दीजिए इन जङ्गली जातियों को । जो आप की सेवा में सदा तत्पर रहे उन के लिए आपने क्या किया । मुशहर, दुसाध, चूड़े, चमार नाई, धोबी, तेली, बारी, धानुक कु-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

म्हार, जुलाहा आदिकों को और दासवर्गों को भी आपने उसी अवस्था में रख छोड़ा। इस आलस्य अथवा अज्ञानता का फल यह हुआ कि ये लोग प्रेत पिशाच डाकिनी शाकिनी पूजने लगे मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, मिथ्या वस्तुओं में इन का अधिक विश्वास बढ़ता गया। इन के देवता इन के भजन भाव इन के पर्व तीर्थ आदि भी भिन्न २ हो गये। धोबी कुछ और ही राग अहीर कुछ और ही राग अलापते, अति जड़ बुद्धि हो के व्याघ्र, सिंह सर्प वृक्ष इत्यादिकों को ही महान् देव मान बलि देने लगे। इन में से अब शुद्धता शौच सभ्यता आदि गुण निकल गये। परन्तु ये लोग आप के सहवासी थे। इस कारण इन के आचरण का प्रभाव आप के उत्तम वर्णों के ऊपर भी पड़ गया। उन्हीं चूड़े चमार नाई धोबी के समान आप भी परमात्मा को छोड़ कभी सांपों की कभी बैलों की, कभी पीपल आदि वृक्षों की, कभी श्मशानों की कभी, भूत प्रेतों की उपासना करने लगे। उन के ऊपर बकरे भैंस मार २ के चढ़ाने लगे। ब्राह्मण जन भी अपने शरीर पर भूत खेलने लगे। कहिए कैसा अधःपात हुआ; परन्तु आप में ऐसी अविद्या की बीमारी फैली कि आपका ज्ञान रूप शरीर इतना शून्य हो गया है कि इस गिरने से आप को चोट का भी ज्ञान नहीं हुआ। और न अभी तक आप को गिरने का कुछ पता ही लगा। तुनः आपने घृणा से म्लेच्छ समझ दस्यु बतला अपवित्र कह अन्य देशों में वा द्वीपों में जाना आना छोड़ दिया। इस का फल यह हुआ कि वेही लोग आप के शिर पर सवार हो गए उन के दास बनने पर भी आपको त्राण नहीं। कहिए भगवान् ने आप को कैसा दण्ड दिया। क्यों! आपने बड़ा अन्याय किया? अहङ्कार अभिमान ने आपको खालिया। आप अपने भाई की छाया पड़ने पड़ भी अपने को अपवित्र मानने लगे। इस का परिणाम यह हुआ कि जिन को आप परम म्लेच्छ कहते थे उन की ही जूती शिरों आप को ढोना पड़ा। इतना ही नहीं बल्कि आप के देश की परम पवित्र लक्षों कन्याएं उन यवनों के हाथ बिकीं और उन का धर्म नष्ट हुआ। और आप लक्षों करोड़ों पशुवत् शिकार किए गए। मैं कहां तक वर्णन करूं मैं इतिहास लिखने के लिए तय्यार नहीं मैं केवल आप को चेताता हूं कि आप की इस घृणा ने इस जाति विभाग ने आप को यह ठोकर दी है। अब आप को होश होना भी कठिन है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परन्तु आशा है। एक स्वामी दयानन्द ने वेदों से ढूंढ के एक महौषध दी है यदि वह आप के कण्ठ तक पहुंच गई और आपने भी उसे निगलने के लिए थोड़ी भी कोशिश की तो आप बच सकते हैं। अन्यथा अब कोई उपाय नहीं। भाइयो! " उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत " । मैं पुनः कई एक प्रमाण देता हूं जिस से विदित होगा कि धीरे २ जाति पांति बनती गई है और गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही लोग जाति मानते आये जन्म से नहीं।

ब्रह्म वा इदमग्र आसीद्। एकमेव तदेकं सन्नव्यभवत्। तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत क्षत्रम्। यान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति तस्मात् क्षत्रात्परं नास्ति तस्माद्ब्राह्मणः क्षत्रियमधस्तादुपास्ते राजसूये। क्षत्र एव

पूर्व समय में, निश्चय, सब यह ब्राह्मण ही था। एक ही था (अर्थात् एक ही ब्राह्मण वर्ण था) एकाकी होने के कारण उस की उन्नति नहीं हुई। तब उस ने अपने से भी बढ़कर एक श्रेष्ठ रूप को बनाया जो क्षत्रिय है। देवों में ये सब क्षत्र क्षत्रिय) हैं। इन्द्र, वरुण, सोम, रुद्र, पर्जन्य, यम, मृत्यु और ईशान इति। इस हेतु क्षत्रिय से परे कोई (वर्ण) नहीं। इसी कारण राजसूय (यज्ञ) में क्षत्रिय के नीचे ब्राह्मण बैठते हैं (१) क्षत्र में ही उस यश को स्था-

(१) जब राजसूय यज्ञ होता है तब राजा को कहा जाता है कि तूही ब्राह्मण है। तैत्तिरीय संहिता काण्ड १ प्रपाठक ८ अनुवाक १६ में इस प्रकार सम्वाद है। (राजा) ब्रह्मा३न्। (अध्वर्युः) त्वं राजन् ब्रह्मासि सवितासि सत्यसवः। (राजा) ब्रह्मा३न् (ब्रह्मा) त्वं राजन् ब्रह्मासि इन्द्रोसि सत्यौ (राजा) ब्रह्मा३न्। (होता) त्वं राजन् ब्रह्मासि मित्रोसि सुशेवः। (राजा) ब्रह्मा३न (उद्गाता) त्वं राजन् ब्रह्मासि वरुणोसि सत्यधर्मा॥ भाव इस का यह है कि राजसूय यज्ञ में जब ऋत्विक् चारों तरफ बैठ जाते हैं। तब राजा प्रत्येक ऋत्विक् से इस प्रकार निवेदन करता है। प्रथम अध्वर्यु से राजा कहता यथा हे ब्रह्मा३न् (तीन का चिन्ह प्लुत सूचक है) हे ब्राह्मण अध्वर्यो॥ इतने कहने पर अध्वर्यु प्रत्युत्तर देता है कि हे राजन्! तू ही ब्राह्मण है। तू सविता अर्थात् अपनी आज्ञा से सब का प्रेरणा करने वाला है। और सत्यसव = अमोघ शासन तू है। इसी प्रकार अन्यान्य ब्रह्मा होता और उद्गाता ऋत्विकों से राजा कहता है कि आप ब्राह्मण हैं इसके प्रत्युत्तरमें ऋत्विक् लोग कहते हैं कि हे राजन् आप ही ब्राह्मण हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तद्यशो दधाति । सैषा क्षत्रस्य योनिर्यद्ब्रह्म । तस्माद् यद्यपि राजा परमतां गच्छति ब्रह्मैवान्ततः उपनिश्रयति स्वां योनिम् । य उ एनं हिनस्ति स्वां स योनिमृच्छति स पापीयान् भवति यथा श्रेयांसं हिंसित्वा ॥ २३ ॥ स नैव व्यभवत् । स विशमसृजत । यान्येतानि देवजातानि गणश आख्यायन्ते—वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुतइति ॥ २४ ॥ स नैव व्यभवत । स शौद्रं वर्णमसृजत पूषणमियं वै पूषेयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किञ्च ॥ २५ ॥ स नैव व्यभवत् । तच्छ्रेयो रूपमत्यसृजत धर्म्मं । एतत क्षत्रस्य क्षत्रं यद्धर्म्मः । तस्माद्धर्म्मात्परं नास्ति अथो अबलीयान् बलीयांसमाशंसते धर्म्मेण यथा राज्ञैवं यो वै स धर्म्मः सत्यं वै तत् तस्मात्सत्यं वदन्तमाहुर्धर्मं वदतीति धर्म्मं वा वदन्तं सत्यं वदतीति । एतद्धैवैतदुभयं भवति ॥ २६ ॥ तदेतद् ब्रह्म क्षत्रं विट् शूद्रः । बृह० उप० ४ ॥

पित करते हैं । सो जो यह ब्राह्मण है वह क्षत्रिय का योनि (कारण) है । इस हेतु यद्यपि राजा परम श्रेष्ठता को पाता है तथापि अन्त में अपनी योनि (ब्राह्मण) के ही सम्यक् प्रकार से आश्रित होता है । सो जो कोई (क्षत्रिय) ब्राह्मण की हिंसा करता है वह अपनी योनि की हिंसा करता है वह पापिष्ठ होता है जैसे श्रेष्ठ पुरुष की हिंसा कर के मनुष्य पापी होता है ॥ २३ ॥ पुनः उस की वृद्धि नहीं हुई । उस ने वैश्य को उत्पन्न किया । देवों में ये गण वैश्य कहे जाते हैं । वसु, रुद्र, आदित्य विश्वेदेव और मरुत् । इति ॥२४॥ पुनः उस की वृद्धि नहीं हुई । उसने शूद्र वर्ण को उत्पन्न किया जो सब का पोषण करने वाला है । यह पृथिवी ही पूषा है । क्योंकि यही सब को पुष्ट करती है ॥ २५ ॥ उस की वृद्धि नहीं हुई उस ने सब से बढ़ कर श्रेयोरूप धर्म्म का निर्माण किया सो यह धर्म्म क्षत्रिय का भी क्षत्रिय है । इस हेतु धर्म्म से परे कुछ नहीं है क्यों कि इस धर्म्म से दुर्बल (पुरुष) बलवान् का मुकाबिला करता है । जैसे राजा की सहायता से वैसे । निश्चय, धर्म्म सत्य है । इस हेतु ज्ञानी जन 'सत्यवक्ता को' धर्म्मवक्ता कहते हैं और 'धर्म्म वक्ता' को 'सत्य वक्ता' कहते हैं, यह दोनों प्रकार से होता है इस प्रकार ब्रह्म, क्षत्र विट् और शूद्र हुए । यहां पर कैसा विस्पष्ट वर्णन है कि पूर्व में एकही ब्राह्मण वर्ण था क्योंकि सृष्टि की आदि से धीरे २ व्यवसाय (Profession) की उन्नति होती आई है । ज्यों ज्यों मनुष्य और मनुष्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ब्रह्म क्षत्रिय वैश्य शूद्रा इति चत्वारोवर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनानुरूपं स्मृतिभिरप्युक्तम् तत्र चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम किं जीवः किं देहः किं जातिः किं ज्ञानं किं कर्म्म किं धार्म्मिक इति। तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न अतीतानागतानेकदेहानां जीवस्यैक रूपत्वात् एकस्यापि कर्म्मवशादनेकदेहसंभवात् सर्वशरीराणां जीवस्यैकरूपत्वाच्च तस्मान्न जीवो ब्राह्मण इति। तर्हि देहो ब्राह्मण इतिचेत्तन्न आचाण्डालादिपर्य्यन्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वात् जरामरणधर्म्माधर्म्मादिसाम्यदर्शनाद् ब्राह्मणः श्वेतवर्णः

की आवश्यकताएं बढ़ती गईं सों सों ऋषियों ने वेदों को देख २ वर्ण बनाते गये।

वज्र सूचिकोपनिषद्—अब आगे वज्रसूची उपनिषद् का प्रमाण देते हैं यद्यपि इस को उपनिषद् नहीं कहनी चाहिये और यह बहुत आधुनिक है तथापि यह भी कुछ २ वैदिक सिद्धान्त के निकट पहुंचती है अतः इस की साक्षी देते हैं। मैंने अनेक स्थलों में कहा है कि उस गिरे समय में भी जन्म से वर्णव्यवस्था को अच्छे २ विद्वान् नहीं मानते थे। इस का यह एक उदाहरण है।

अर्थः—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण हैं। इन में ब्राह्मण ही प्रधान है इस को वेदानुकूल स्मृतिएं भी कहती हैं। वहां यह वक्तव्य है कि "ब्राह्मण" किस को कहते हैं। क्या जीव, क्या देह, क्या जाति, क्या ज्ञान, क्या कर्म्म, क्या धार्म्मिक (ब्राह्मण) है। यदि प्रथम यह कहो कि 'जीव' ब्राह्मण है तो यह नहीं। क्योंकि अतीत (व्यतीत) और अनागत (भविष्यत् आने वाले) अनेक शरीरों में जीव का स्वरूप एक ही रहता है। एक ही जीव कर्म्मवश अनेक देहों में जाता है परन्तु सर्व शरीर में जीव का एकही स्वरूप रहता है इस हेतु जीव ब्राह्मण नहीं। तब यदि यह कहो कि देह ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि चाण्डाल पर्य्यन्त सब मनुष्यों का देह पांच भौतिक होने के कारण एकरूप है क्योंकि वृद्धावस्था, मरण और धर्म्माधर्म्म सब शरीर में बराबर है। यदि कहो कि ब्राह्मण श्वेत वर्ण, क्षत्रिय रक्त वर्ण, वैश्य पीत वर्ण और शूद्र कृष्ण है तो यह कहना उचित नहीं क्योंकि यह नियम सर्वत्र नहीं देखता (काश्मीर के सब शूद्र श्वेत ही हैं, और यदि देह को ही जीव मानोगे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्षत्रियो रक्तवर्णो वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्णः इतिनियमाभावात् । पित्रादि-शरीरदहने पुत्रादीनां ब्रह्महत्यादोषसंभवाच्च । तस्मान्न देहो ब्राह्मण इति तर्हि जाति ब्राह्मण इति चेत्तन्न । तत्रजात्यन्तरजन्तुष्वनेकजातिसंभवा महर्षयो बहवः सन्ति ऋष्यशृंगोमृग्यः । कौशिकःकुशात् । जाम्बूकोजम्बूकात् । वाल्मीकिर्बल्मीकात् । व्यासः कैवर्तकन्यकायाम् । शशपृष्ठात् गौतमः । बसिष्ठ उर्वश्याम् अगस्त्यः कलशे जात इति श्रुतत्वात् । एतेषां जात्या विना प्यग्रे ज्ञानप्रतिपादिता ऋषयः बहवः सन्ति तस्मान्न जातिर्ब्राह्मण इति । तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इतिचेत्तन्न क्षत्रियादयोऽपि परमार्थ-दर्शिनोऽभज्ञा बहवः सन्ति तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति । तर्हि कर्म्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचिताऽऽगामिकर्म्म-साधर्म्यदर्शनात् कर्म्मभिः प्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति । तस्मान्न कर्म्म ब्राह्मण इति । तर्हि धार्म्मिको ब्राह्मण इति चेत्तन्न क्षत्रियादयो हिरण्यदातारो बहवः सन्ति । तस्मान्न धार्म्मिको ब्राह्मण इति ।

तो मृत पिता माता आदिकों के शरीर जलाने पर पुत्र को ब्रह्म हत्या लगनी चाहिये । इस कारण देह ब्राह्मण नहीं । तब यदि यह कहो कि जाति ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि विजातीय जन्तुओं में अनेक जात्युत्पन्न बहुत ऋषि विद्यमान हैं जैसे हरिनी से ऋष्यशृंग, कुश से कौशिक, शृगाल से जम्बूक, वल्मीक (चींटियों की बनाई हुई मिट्टीका ढेर) से वाल्मीकि, मल्लाह की कन्या से व्यास, शशक (खरगोश) से गौतम । उर्वशी से बसिष्ठ । कलश (घड़े) से अगस्त्य उत्पन्न हुए । इत्यादि ऋषियों की कोई जाति नहीं परन्तु वे लोग वेदों के द्रष्टा हुए । इस हेतु जाति ब्राह्मण नहीं । तब यदि कहो कि ज्ञान ब्राह्मण है तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि क्षत्रिय आदि परमार्थदर्शी विद्वान् अनेक विद्यमान हैं । इस कारण ज्ञान ब्राह्मण नहीं । यदि कहो कर्म्म ब्राह्मण तो यह भी नहीं । क्योंकि सब प्राणियों के प्रारब्ध संचित और आगामी ये तीनों कर्म्म समान ही हैं और कर्म्मों से ही प्रेरित हो सब जन्तु कर्म्म करते हैं इस हेतु कर्म्म ब्राह्मण नहीं । यदि कहो कि धार्म्मिक ब्राह्मण है तो यह भी नहीं क्योंकि क्षत्रियादि हिरण्य दाता अनेक हैं । इस हेतु धार्म्मिक ब्राह्मण नहीं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तर्हि को वा ब्राह्मणो नाम । यः कश्चिदात्मान मद्वितीयं जातिगुणक्रियाहीनं षड्भिषड्भावेत्यादिसर्वदोषरहितं सत्यज्ञानाऽऽनन्दानन्तस्वरूपं स्वयंनिर्विकल्पमशेषकल्पाधारमशेषभूतान्तर्यामित्वेन वर्तमान मन्तर्बहिश्चाकाशवदनुस्यूत मखण्डानन्द स्वभाव मप्रमेय मनुभवैकवेद्य मपरोक्षतया भासमानं करतलामलकवत् साक्षादपरोक्षीकृत्य कृतार्थतया कामरागादिदोषरहितः शमदमादिसम्पन्नो भाव, मात्सर्य्य, तृष्णा, ऽऽशा, मोहादिरहितो दंभा, हंकारादिभिरभिसंस्पृष्टचेता वर्तते। एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः । अन्यथा हि ब्राह्मणत्वसिद्धि र्नास्त्येव ॥ इति वज्रसूचिकोपनिषत्समाप्ता ॥

तब ब्राह्मण कौन हैं ? जो कोई अद्वितीय, जाति-गुण-क्रिया हीन, षड्भिषड्भाव इत्यादि जो निखिल दोष हैं उन से रहित, सत्यज्ञानाऽऽनन्द स्वरूप, स्वयं निर्विकल्प, अशेष कल्पाधार, सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तर्यामी होकर वर्तमान, आकाशवत्, अन्तर बाहर अनुस्यूत (प्रविष्ट) अखण्डानन्द स्वभाव, अप्रमेय, अनुभवैकवेद्य, और साक्षात् सर्वत्र भासमान परमात्मा को करतलगत आमलक के समान साक्षात् कर के कृतार्थ है । काम-रागादि-दोष रहित, शमदमादि-सम्पन्न, भाव-मात्सर्य-तृष्णा आशा मोहादिकों से रहित, दम्भ अहंकारादि से असंस्पृष्टमन वाला जो है वही ब्राह्मण है। यही श्रुति, स्मृति, इतिहास का अभिप्राय है । अन्यथा ब्राह्मणत्व सिद्धि नहीं हो सकती ।

महाभारत—इसे कहना पड़ता है कि महाभारत रामायण आदिक प्राचीन ग्रन्थ भी वेदों के तत्त्वों को ठीक वर्णन नहीं करते किसी २ विषय में तो वेदों से बहुत दूर चले गए हैं जब मनुस्मृति ही वेद के अर्थ को अच्छे प्रकार नहीं बतलाती तब महाभारतादि ग्रन्थों से क्या आशा हो सकती है । प्रायः महाभारत मनुस्मृति के समान ही अधार्म्मिक शौचाचार-परिभ्रष्ट अव्रती पुरुष को शूद्र कहता है परन्तु यह वेद विरुद्ध बात है पुनः क्षत्रिय वैश्यों को भी गिरे हुए कहता है यह भी वेद विरुद्ध है इत्यादि अनेक दोष रहने पर भी किसी २ अंश में वेद के निकट पहुंचता है इस हेतु इन के भी कई एक प्रमाण दिए गए हैं और ये दिए जाते हैं इन पर आप ध्यान देवें ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भृगुरुवाच ! असृजद् ब्राह्मणानेव पूर्वं ब्रह्मा प्रजापतीन्। आत्मतेजोऽभिनिर्वृत्तान् भास्करान्निरुपमप्रभान् ॥ १ ॥ ततः सत्यञ्च धर्म्मञ्च तपो ब्रह्म च शाश्वतम्। आचारञ्चैव शौचञ्च स्वर्गाय विदधे प्रभुः ॥ २ ॥ देव, दानव, गन्धर्वा, दैत्याऽसुर, महोरगाः। यक्ष, राक्षस, नागाश्च, पिशाचा मनुजास्तथा ॥३॥ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्च द्विजसत्तम। ये चान्ये भूत संघानां वर्णास्तांश्चापि निर्म्ममे। ब्राह्मणानां सितो वर्णः क्षत्रियानान्तु लोहितः। वैश्यानां पीतको वर्णः शूद्राणामसितस्तथा ॥५॥ भरद्वाज उवाच। चातुर्वर्ण्यस्य वर्णेन यदि वर्णो विभिद्यते। सर्वेषां खलु वर्णानां दृश्यते वर्णसङ्करः ॥ ६ ॥

महाभारत शान्तिपर्व में भृगु और भरद्वाज सम्वाद आया है। भृगुजी कहते हैं कि प्रथम सर्वगुणसम्पन्न, सात्त्विकमूर्त्ति ब्राह्मणों को ही भगवान् ने सृष्ट किया। यह उचित है कि सृष्टि की आदि से छल, कपट, काम, क्रोध, चोरी, डकैती लूट मार ईर्ष्या द्वेष आदि अवगुण न होने से जो उत्पन्न हुए वे बड़े शुद्ध रहे जैसे सनक सनन्दन आदि। क्योंकि उन शुद्ध 'मूर्तियों में भगवान् ने सत्य, धर्म्म, तप, वेद, आचार, शौच, आदि सब गुण दिये। पश्चात् इन मनुष्यों में गुण के अनुसार देव, दानव, गन्धर्व, दैत्य, असुर, महोरग. यक्ष, राक्षस, पिशाच आदि होने लगे। पश्चात् धर्म्म-रक्षा के लिये आवश्यकता हुई तब वेदों को देख मनुष्यों को ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चार भागों में विभक्त किया। ब्राह्मण का शुक्ल वर्ण, क्षत्रिय का लाल वर्ण, वैश्य का पीत वर्ण और शूद्र का कृष्ण वर्ण स्थिर किया। (१) इस पर भरद्वाज जी पू-

(१) यहां श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण उन चार शब्दों का रंगों से तात्पर्य्य नहीं है क्योंकि यदि रंग से तात्पर्य्य ही तो काश्मीर और शीत प्रदेश के सब कोई ब्राह्मण ही कहलावें क्योंकि उन सबों का रंग श्वेत (सुफेद) ही होता है। भाव इस का यह है कि 'श्वेत' शब्द सात्विक गुणवाचक है आज कल भी यश धर्म्म आदि का वर्णन 'श्वेत' आता है। सो जो कोई श्वेत अर्थात् शुद्ध निष्कलङ्क मलिनता रहित ज्ञान विज्ञान रूप श्वेत वस्त्र से आच्छादित हैं वे ब्राह्मण। रक्त (लाल) शब्द वीरता सूचक है। जब शूरवीर संग्राम में जाते हैं तब उन की आंखें लाल हो जाती हैं। शरीर रक्त से भर जाता है सो जो कोई निर्भीक वीरतारूप रक्तवर्ण से पूर्ण है वे क्षत्रिय। पीत शब्द

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिन्ता क्षुधा श्रमः । सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ७ ॥ स्वेद, मूत्र, पुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् । तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद्वर्णो विभज्यते ॥ ८ ॥ जङ्गमानामसंख्येया स्थावराणाञ्च जातयः । तेषां विविधवर्णानां कुतो वर्णविनिश्चयः ॥ ९ ॥ भृगुरुवाच । न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् । ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्म्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ १० ॥ काम भोग प्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः । त्यक्तस्वधर्म्मा रक्ताङ्गास्तेद्विजाः क्षत्रतां गताः ॥ ११ ॥ गोभ्योवृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः । स्वधर्मान्नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥ १२ ॥

पूछते हैं कि आपका वर्ण से क्या अभिप्राय है ?। यदि श्वेत पीत रंग को आप कहते हैं तो सर्व ब्राह्मणादिक वर्णों में गड़ बड़ होगा । ब्राह्मण होने पर भी कोई रंग में कृष्ण है कोई देखने में पीत है । फिर यह व्यवस्था कैसे ? पुनः काम, क्रोध, भय, लोभ, शोक, चिन्ता, क्षुधा, श्रम आदि सब में देखते हैं फिर वर्ण विभाग कैसे ? स्वेद, मूत्र, पुरीष, श्लेष्मा, पित्त, शोणित आदि सब के शरीर से समान ही निकलता है फिर वर्ण विभाग कैसे ? जंगम और स्थावर असंख्य हैं इनका वर्ण विभाग कैसा हो सकता है । यह भरद्वाज का प्रश्न बड़ा ही रोचक है । इसका समाधान भी यथोचित है । भृगु जी कहते हैं । इनका अभिप्राय यह है कि पहले ही मैं कह चुका हूं कि पहले कोई वर्ण विभाग नहीं था सब ही सत्त्व गुण प्रधान ब्राह्मण ही थे । व्यावहारिक आवश्यकताएं बढ़ने पर वे भिन्न २ वर्ण होने लगे । उन्हीं ब्राह्मणों से जो कर्मप्रिय, भोगी, तीक्ष्ण, क्रोधी, साहसी, ब्राह्म धर्म्म से कुछ गिरे हुए और युद्ध प्रिय हुए वेही क्षत्रिय कहलाने लगे । जो ब्राह्मण गो-सेवा कृषिकर्म्म वाणिज्य में अपने धर्म्म छोड़ तत्पर हुए वे वैश्य

व्यापार वाणिज्य सूचक है क्योंकि सुवर्ण का रंग पीला होता है और सुवर्ण व्यापार का मुख्य अङ्ग है इस हेतु वैश्य के लिये पीत वर्ण कहा है सो जो कोई सुवर्ण आदि पदार्थों का वाणिज्य करता है वह वैश्य है । 'कृष्ण' (काला) शब्द यहां अधर्म्म सूचक है इसी हेतु अधर्म्म का रूप ही कृष्ण कहा गया हैं सो जो कोई अशुद्ध अपवित्र मलिन अज्ञान रूप मलिनता से भरे हुए हैं वे शूद्र । यही अभिप्राय भरद्वाज के प्रश्न के समाधान से विस्फुट होता है मूल में देखिये ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हिंसाऽनृतप्रिया लुब्धाः सर्वकर्म्मोपजीविनः । कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टा स्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ १३ ॥ इत्येतैः कर्म्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः । धर्म्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥ १४ ॥ इत्येते चतुरोवर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती । विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात्त्वज्ञानतां गताः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणा ब्रह्मतन्त्रस्थास्तपस्तेषां न नश्यति । ब्रह्म धारयतां नित्यं व्रतानि नियमांस्तथा ॥ १६ ॥ ब्रह्म चैव परं सृष्टं ये न जानन्ति तेऽद्विजाः । तेषां बहुविधास्त्वन्यास्तत्र तत्र हि जातयः ॥ १७ ॥ पिशाचा राक्षसा प्रेता विविधा म्लेच्छ जातयः । प्रनष्टज्ञान विज्ञानाः स्वच्छन्दाचार चेष्टिताः ॥ १८ ॥ ज्ञान्तिपर्व १८८ ॥

भरद्वाज उवाच । ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम । वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद्ब्रूहि वदतांवर ॥ १ ॥

कहलाने लगे । जो ब्राह्मण हिंसक मिथ्यावादी लोभी सर्व कर्मोपजीवी और शौचादि विवर्जित हुए वे शूद्र कहाने लगे । इस प्रकार ब्राह्मण ही व्यस्त होकर चारों वर्ण हुए इन चारों को धर्म्म और यज्ञकर्म्म करने में सम ही अधिकार है । पुनः भृगु जी कहते हैं हे भरद्वाज ! इस प्रकार ये चारों वर्ण सृष्ट हुए जिन चारों ही के लिये ब्राह्मी सरस्वती अर्थात् वेद वाणी भगवान् ने दी है परन्तु ये लोभ मोह ईर्षा से स्वयं अज्ञानी बन रहे हैं । जो ब्राह्मण वेदों को व्रत और नियमों को धारण किए हुए हैं उनका तप नष्ट नहीं होता ॥ १६ ॥ हे भरद्वाज ! सब मनुष्यों के लिये वेद ही परम तप और पावन है जो उसको नहीं जानते हैं वे ही अद्विज अर्थात् नीच व्रात्य हैं । इन्हीं अद्विजों के अनेक भेद इधर उधर जातिएं देख पड़ती हैं ॥ १७ ॥ इन में से ही पिशाच राक्षस, प्रेत, म्लेच्छ आदिक अनेक जातिएं हैं ॥ १८ ॥

इस लेख से भी आपको विदित हो गया होगा कि पूर्व में केवल एक ही वर्ण था धीरे २ कर्म के वश अनेक वर्ण बनते गए । यहां बहुत स्पष्ट वर्णन है कि साथ ही चारों वर्ण उत्पन्न नहीं किए गए किन्तु ज्यों ज्यों आवश्यकताएं बढ़ती गईं त्यों त्यों बुद्धिमानों ने अनेक वर्ण बनाना आरम्भ किया ।

पुनः भरद्वाज जी कहते हैं कि हे भृगो ! किस कर्म्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र होते हैं ॥१॥ भृगु जी कहते हैं जो जातकर्म्मादि संस्कारों से संस्कृत,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भृगुरुवाच । जातिकर्म्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः । वेदाध्ययन सम्पन्नः षट्सु कर्म्मस्ववस्थितः ॥२॥ शौचाचारावस्थितः सम्यग् विघसाशी गुरु-प्रियः । नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥३॥ सत्यं दानमथाद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा । तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥४॥ क्षत्रजं सेवते कर्म्म वेदाध्ययनसंगतः । दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥ ५ ॥ विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः । वेदाध्ययनसम्पन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥६॥ सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्म्मपरोऽशुचिः । त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥७॥ शूद्रे चैतद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते । न वै शूद्रो भवे च्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो नच ॥ ८ ॥ शान्तिपर्व १८९ ॥

द्वन्द्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः॥ परेषा मनुध्यायंस्ते देवा ब्राह्मणं विदुः३२
येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या । गतिज्ञः सर्वभूतानां तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥३२॥ अभयं सर्व भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः । सर्व भूतात्मभूतो यस्तंदेवा ब्राह्मणं विदुः ॥ शान्ति २६८ ॥

शुचि है वेदाध्ययन में रत, छवों कर्म्मों में तत्पर॥२॥ शौचाचार में स्थित विघसाशी, गुरुप्रिय, नित्यव्रती, सत्यप्रिय है वही ब्राह्मण कहलाता है॥३॥ सत्य दान, अद्रोह आनृशंस्य त्रपा, घृणा, तप आदि सद्गुण जिस में हैं वही ब्राह्मण है ॥४॥ जो पुरुष क्षात्र कर्म्म को सेवता है । वेदाध्ययन में भी तत्पर है । दान आदान (ग्रहण) में जिस की रुचि है वही क्षत्रिय है॥ ५ ॥ जो वाणिज्यार्थ नाना देश में जाता आता है जो पशुओं को पालते कृषि कर्म्म करते हुए वेदाध्ययन में भी आसक्त है वही वैश्य है ॥ ६ ॥ सर्वभक्षी सर्वकर्म्म-परायण अशुचि वेदरहित अनाचारी है वही शूद्र है॥७॥ अब आगे विस्पष्ट रूप से उपसंहार करते हैं कि जो लक्षण ब्राह्मण के कहे गए हैं वे तो शूद्र में पाए जांय और जो लक्षण शूद्र के कहे गये हैं वे यदि ब्राह्मण में पाए जायं तो वह शूद्र शूद्र नहीं वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं अर्थात् वह शूद्र तो ब्राह्मण है और वह ब्राह्मण शूद्र है॥८॥इस से भी कर्म्मानुसार ही वर्ण की सिद्धि होती है ।

देव लोग उस को ब्राह्मण जानते हैं जो सुख दुःख शीत उष्ण आदि सब द्वन्द्व में समान भाव से स्थित रखते हैं दूसरों का अनिष्ट चिन्तन नहीं करते॥३२॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रोधः शत्रुः शरीरस्थो मनुष्याणां द्विजोत्तम। यः क्रोधमोहौत्यजति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥ ३२ ॥ यो वदेदिह सत्यानि गुरुं संतोषयेत च । हिंसितश्च न हिंसेत तं देवा ब्रा० ॥ ३३ ॥ जितेन्द्रियो धर्मरतः स्वाध्याय निरतः शुचिः। कामक्रोधौ वशे यस्य तंदेवा ब्रा० ॥ ३४ ॥ यस्य चात्मसमो लोको धर्मज्ञस्य मनस्विनः। सर्वधर्मेषु च रतस्तं देवा ब्रा० ॥ ३५ ॥ योऽध्यापयेदधीयीत यजेद्वा याजयेत वा। दद्याद्वापि यथाशक्ति तं देवा ब्रा० ॥३६॥ ब्रह्मचारीच वेदान् योऽप्य धीयीत द्विजपुंगवः। स्वाध्यायेचाप्रमतो वै तं देवा ब्रा०। इत्यादि ॥ वनपर्वअ० २०५

जिसने यह सब जाना जो प्रकृति विकृति है और जो सब भूतों की गति जानता हैं उस को देव लोग ब्राह्मण जानते हैं ॥३३॥ जो सब को अभय देता है जिस से सब को अभय है। जो सर्व प्राणियों का आत्म समान है उस को देव लोग ब्राह्मण जानते हैं ॥३४॥इसी भाव को महाभारत अन्यत्र भी वर्णन करता हैयथा—

एक पतिव्रता स्त्री ब्राह्मण से कहती है कि मनुष्यों के इस शरीर में क्रोध महान् शत्रु है। हे द्विजोत्तम ! जो क्रोध मोह को त्यागता है उस को देव ब्राह्मण जानते हैं ॥ ३२ ॥ जो सत्य कहता है गुरु को संतुष्ट करता है। हिंसित होने पर भी हिंसा नहीं करता है उस को देव ब्रा० ॥३३॥ जितेन्द्रिय धर्म्मरत, स्वाध्यायनिरत, शुचि है और काम क्रोध जिस के वश में है उस को देव ब्रा० ॥३४॥ जो अपने सम सब को देखता है। धर्म्मज्ञ और मनस्वी है। सर्व धर्म्म में रत है उस को देव ब्रा० ॥३५॥ जो पढ़ता पढ़ाता स्वाध्याय में अप्रमत्त रहता उस को देव ब्रा० ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

वन पर्व के १८० अध्याय में यह प्रसंग आया है कि नागराज युधिष्ठिर से पूछता है कि "ब्राह्मणः को भवेद्राजन्" ॥२०॥ हे राजन् ! ब्राह्मण कौन है ? इस के उत्तर में युधिष्ठिर कहते हैं। "सत्यं दानं क्षमा शील मानृशंस्यं तपो घृणा। दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ २१ ॥ जिस पुरुष में सत्य, दान, क्षमा, शील, आनृशंस्य, तप, घृणा हो वही ब्राह्मण है। पुनः नागेन्द्र पूछता है कि "शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एवच । आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिरः ॥ २२ ॥ हे युधिष्ठिर ! सत्य, दान, अक्रोध, आनृशंस्य, अहिंसा और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

घृणा आदि सद्गुण शूद्र में भी पाए जाते हैं फिर उन्हें क्या कहना चाहिए। इस पर युधिष्ठिर कहते हैं कि सत्यादि गुण शूद्र में पाए जाते हैं तो निःसन्देह वह शूद्र ब्राह्मण है। यथा—

शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेद् शूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥ २५ ॥

इस का अर्थ पूर्व कर आये हैं। भाव यह है कि शूद्र में सत्यादि गुण हों परन्तु ब्राह्मण में न हो तो वह शूद्र शूद्र नहीं वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं अर्थात् वह शूद्र तो ब्राह्मण है और वह ब्राह्मण शूद्र है। पुनः कहते हैं "यत्रैतद् लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः। यत्रैतन्नभवेत् सर्प स शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥ २६ ॥ हे नागेन्द्र! जिसी में ये सत्यादि गुण हों वही ब्राह्मण और जिस में न हों वही शूद्र है। इस से भी सिद्ध है कि गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण है। आगे पुनः विस्पष्ट रूप से कहा है कि "तावच्छूद्र समो ह्येष याव द्वेदे न जायते ॥ ३५ ॥ जब तक वह वेद नहीं जानता तब तक शूद्र ही है। ऐसे ही अनेक स्थलों में गुण कर्म्म स्वभाव के अनुसार ही वर्ण व्यवस्था को भारत मानता है। इन प्रमाणों में कहीं भी जन्म से वर्ण मानते हुए महाभारत को नहीं देखते हैं।

गीता आदि—गीता, वाल्मीकि रामायण मनुस्मृति आदि जितने सच्छास्त्र हैं वे कर्म्म से वर्ण स्थिर करते हैं। "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्म्मविभागशः"। श्री कृष्ण कहते हैं कि गुण कर्म्मों के विभाग से ही ईश्वर ने चारों वर्ण बनाए। "अमरेन्द्र मया बुध्या प्रजाः सृष्टास्तथा प्रभो। एकवर्णाः समा भाषा एकरूपाश्च सर्वशः" रामायण उत्तरकाण्ड॥ इस से भी यही सिद्ध है कि प्रथम एक ही वर्ण था धीरे २ कर्मानुसार अनेक वर्ण होते गए। भागवत कहता है कि "एकविधो नृणाम्" मनुष्य में एक ही भेद है। सांख्यशास्त्र कहता है "मानुष्यश्चैकविधः" मनुष्य एक ही प्रकार का है। इत्यादि सहस्रशः प्रमाणों को निरादर कर वेदों को त्याग आप भले ही कह सकते हैं कि वर्ण जन्म से है।

पशु और वृक्षादिकों में वर्ण—इस विषय पर यदि ध्यान देवे तो भी मालूम हो जायगा कि कर्मानुसार ही वर्ण व्यवस्था है। गो, भैंस, हाथी, घोड़े,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गदहे, मृग, हरिण, सिंह आदिक पशुओं में भी कुछ कुछ गुण की समता देख इन में भी चारों वर्ण कहते हैं देखिए "रासभमारोक्ष्यन्नभिमन्त्रयते शूद्रोसि" पारस्करगृह्यसूत्र। यहां पर रासभ अर्थात् गदहे को शूद्र कहते हैं। क्योंकि बोझ ढोना आदि कर्म्म इस का शूद्र समान है इसी प्रकार गो जाति को ब्राह्मण सिंह को क्षत्रिय कहते हैं। आप देखते हैं कि ये सब न तो पैर से और न मुखादिक से उत्पन्न किये गए हैं फिर ये पशु शूद्र वा क्षत्रिय आदि क्यों कहलाते हैं ? निःसन्देह मनुष्य गुण की समानता के कारण ही इन को शूद्रादि कहते हैं। इसी प्रकार वृक्षों में पुराण वर्ण मानता है। पुनः अभी आपने बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रमाण में देखा है कि इन जड़ अग्नि, वायु, वज्र विद्युत मेघ आदि में क्षत्रिय शूद्र आदि कहा गया है। क्योंकि वज्र क्षत्रियवत् लोगों को कंपा देता है और ईश्वर की महतीशक्ति का स्मरण करवा देता है अतः वह क्षत्रिय है इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र में सूर्य्य चन्द्र आदि नवों ग्रहों में भी ब्राह्मणादिक मानता है उस के फल के अनुसार किसी को ब्राह्मण किसी को शूद्र कहा है। पुनः ज्योतिष की एक बात पर ध्यान देवें। ज्योतिष कहता है कि अमुक २ नक्षत्र में जन्म होने से जातक (सन्तान) ब्राह्मण वर्ण होता है। अमुक २ नक्षत्र में जन्म से शूद्र वर्ण होता है इत्यादि। यद्यपि वह बालक ब्राह्मण का ही पुत्र क्यों न हो परन्तु शूद्र नक्षत्र में जन्म लेने से उस का वर्ण शूद्र ही होगा इसी प्रकार शूद्र के गृह में वह बालक क्यों न उत्पन्न हुआ हो परन्तु ब्राह्मण नक्षत्र में जन्म होने से उस बालक का वर्ण ब्राह्मण माना जायगा। क्यों ऐसा माना है ?। निःसन्देह गुणों से ही यहां पर वर्ण व्यवस्था बांधी है। हे विद्वानो ! आप लोग स्वयं विवेकी पुरुष हैं इसे पुनः विचारें।

उपसंहार—मनुष्य बुद्धिमान् होता है। परमात्मा ने बड़ी कृपा कर इस में बड़े २ गुण स्थापित किए हैं। पृथिवी रूप कुसुम वाटिका का रक्षक इसी को बनाया है अपनी अगम्य विभूति का परिज्ञाता वा द्रष्टा वा परीक्षक भी इसी को बनाया है इत्यादि बातों में सन्देह नहीं परन्तु मनुष्य अपने ही हाथ से उन अमूल्य ईश्वरप्रदत्त गुण रत्नों को फेंक दरिद्र बन रहा है। विचार की पवित्रता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मानसिक गंभीरता, उदारता प्रभृति गुण मुक्तावली को अपने कण्ठ से निकाल निरादर कर रहा है। यह पक्षपात में वा कुसंग में गिर अपने कर्तव्य को भूल बड़े २ अन्याय्य कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो जाता है। जहां से यह नियुक्त हुआ है उस की ओर यह नहीं देखता। अपने पिता की सारी क्रिया पर पानी फेर देता है। कैसा उदार, कैसा महानुभाव, कैसा गंभीर, कैसा पवित्र, कैसा उपकारी, इस का पिता परमात्मा है। ऐ मनुष्यो! अपने पिता का मुख अवलोकन कर कार्य्य करो। देखो! वह किस से घृणा करता है उस की क्या आज्ञा है, वह किस से प्रसन्न रहता है, वह हम लोगों से क्या चाहता है, वह किस हेतु हम मनुष्यों को यहां भेजता है। ऐ मनुष्यो! यह सब विचारो और उसी की इच्छा को पूर्ण करो, उसी की ओर देखो। वह तुम को बुलाकर क्या कहेगा तुम फिर उस समय क्या उत्तर दोगे। तुम्हें क्या उस समय लज्जित होना नहीं पड़ेगा। क्या तुम्हें यह आशा नहीं कि उस न्यायकर्त्ता परम पवित्र परम दयालु पिता के निकट एक न एक दिन अवश्य तुम्हें जाना होगा। कहो तो फिर तुम क्या जाके कहोगे। इस हेतु पहलेही से चेत जाओ। वहां तुम्हे लज्जित न होना पड़े। देखो तुम्हारा पिता जगदीश क्या कहता है।

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥ ऋग्वेद॥

हे मनुष्यो! समस्त विरोध, वैरभाव और परस्पर घृणा को छोड़ एकत्र मिलो! मिल के प्रेमालाप करो! तुम ज्ञानी जनों का मन भी वैमनस्य को छोड़ समान प्रयोजन पर विचार करे। और जैसे तुम्हारे पूर्वज पिता प्रपितामह आदि महापुरुष मुझे पूज्य और भजनीय जान उपासना करते आए वैसे ही तुम भी सब छोड़ मेरी ही शरण में आओ! पुनः—

सहृदयं सांमनस्य मविद्वेषं कृणोमि वः।
अन्यो अन्यमभि हर्यत जातं वत्स मिवाघ्न्या॥ अथर्ववेद॥

हे मनुष्यो! तुम्हारे मन और हृदय को मैं ईर्षा द्वेषादि अवगुणों से रहित

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करता हूं। इस हेतु इस पवित्र हृदयकमल के ऊपर ईर्षा द्वेष का बीज मत बोओ! ऐ मेरे प्यारे पुत्रो! जैसे गौ अपने बछड़े को लाड़ प्यार करती है वैसे तुम सब परस्पर प्रेम करो! देखो तुम्हारा पिता कहता है कि सब से बराबर प्रेम करो। परन्तु तुम इस के नियम को तोड़ते हो।

वर्णव्यवस्था—विवेकि पुरुषो! लोग कहते हैं कि आज कल वर्णव्यवस्था किस रीति पर होनी चाहिये। मैं कहता हूं कि वेद जैसा कहते हैं उसी रीति पर वर्णव्यवस्था स्थापित होनी चाहिये। १—प्रथम पृथिवी के सब मनुष्य आर्य्य नाम से पुकारे जायं। किसी को कोई जन्म से न तो ब्राह्मण, न क्षत्रिय, न वैश्य और न शूद्र कहे और न कोई पुरुष स्वयं अपने को जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कहे कहावे। जैसे पढ़े लिखे पुरुषों में से विद्या के अनुसार किसी को ज्योतिषी, किसी को वैयाकरण, किसी को नैयायिक, किसी को वैदिक, किसी को B. A. किसी को M. A., इत्यादि कहते हैं और कर्म्म के अनुसार कोई अध्यापक, कोई गुरु, कोई आचार्य्य, कोई मास्टर, कोई वकील, कोई जज्ज, कोई लाट इत्यादि कहलाता है वैसे ही गुण और कर्म्म के अनुसार कोई ब्राह्मण कोई क्षत्रिय कोई वैश्य और कोई शूद्र कहलाया करेगा और जैसे जो जिस कार्य में रहता है उस को स्वभाव से ही उसी नाम से पुकारते हैं जैसे पढ़नेवाले को विद्यार्थी, यज्ञ करवाने वाले को ऋत्विक्, वकालत करने वालों को वकील, निर्णय करने वाले को जज्ज आदि कहते हैं और यह स्वभाव से ही कहते हैं कार्य देख कर ही कहने लगते हैं इसी प्रकार स्वयं लोग कार्य देख के किसी को ब्राह्मण किसी को क्षत्रिय किसी को वैश्य और किसी को शूद्र कहा करेंगे। इस पर न तो जोर देने की और न व्यवस्था देने की कोई आवश्यकता है। आवश्यकता केवल योग्यता की प्राप्ति करने करवाने की है। जैसे प्रथम व्याकरण पढ़ने पढ़वाने की आवश्यकता होती है पीछे उस के कार्य देख के उस को स्वयं लोग वैयाकरण कहना आरम्भ करदेते हैं। इसी प्रकार कार्य्य देख योग्यतानुसार ब्राह्मण को ब्राह्मण शूद्र को शूद्र स्वयं पुकारा करेंगे। पठन पाठन जो करे वह ब्राह्मण, क्योंकि मुख का कार्य्य विशेषकर पठन पाठन है। जो रक्षा करे वह क्षत्रिय, क्योंकि बाहु का कार्य्य रक्षा करना है जो सर्वत्र से धन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संचय कर सर्वत्र आवश्यकतानुसार पहुंचावे वह वैश्य, क्योंकि उदर का यही कार्य्य है और जो सब प्रकार से सब का भार उठावे विविध क्लेशों को सहते हुए भी परोपकार ही में लगा रहे बड़े २ आश्चर्यजनक कार्य को तपस्या से सिद्ध करे वह शूद्र है क्योंकि पैर का यही कार्य्य है । यह मैंने अतिसंक्षेप से कहा और प्रथम मैं कह चुका हूं कि यथार्थ में वही पुरुष पूर्ण है जो चारों है अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र चारों है । प्रथम सब को चारों होने के लिये पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये और जो अपने परिश्रम से चारों होवें वही पूर्ण सर्व श्रेष्ठ है वही यथार्थ में मनुष्य है । यदि ये ब्राह्मणत्वादि चारों गुण एक दूसरे से बढ़ कर न होवे तो एक २ गुण की मुख्यता के और अन्यान्य गुणों के गौणत्व के हेतु अवश्य प्रयत्न करे । लोग उसे मुख्य गुण के अनुसार ही पुकारेंगे इस में सन्देह नहीं ।

२–इस देश के कोल, भील, सन्थाल आदि अरण्य निवासियों और नाई, धोबी, दर्जी, जुलाहे आदि शिल्पकारी वर्गों, अहीर, चमार, धानुक आदि ग्राम निवासियों की दशा सुधारने के लिये पूर्ण प्रयत्न किया जाय ।

३–पृथिवी पर के एशिया, योरोप, अफ्रिका, अमेरिका, इत्यादि सब देशवासी आर्य्य बनाए जांय और इन्हें समाज में यथायोग्य सम्मान दिया जाय ।

४–स्पर्श दोष सर्वथा उठादिया जाय केवल शुद्धि का विचार रक्खा जाय।

५–वेद के अनुसार 'शूद्र' शब्दार्थ बढ़ाया जाय । नीच निकृष्ट अपवित्र अव्रती मूर्ख अज्ञानी इत्यादि प्रकार के मनुष्य को दस्यु वा दास कहाजाय । शूद्र नहीं । क्योंकि शूद्र समाज का एक बड़ा प्रशंसनीय अंग है ।

६–वेदानुसार एशिया योरोप आदि के सब प्रान्त में "गुरुकुल" खोल बालकों का उपनयन कर वेदविद्या प्रदान किया जाय इत्यादि कतिपय नियम यहां कहे गए हैं इसी के अनुसार वर्णव्यवस्था होनी चाहिये । इस पर एक छोटीसी पुस्तक लिखी गई है यदि विशेष देखना हो तो उस में सब नियमों को देखिये अन्त में वेदों की ऋचा कहके इसे समाप्त करें ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ १ ॥ ऋग्वेद ॥
समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।
सम्यञ्चोऽग्निं सपर्य्यतारा नाभिमिवाभितः ॥ २ ॥ अथर्ववेद ॥
रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ ३ ॥ यजुर्वेद ॥

ओ३म् शान्तिः ! शान्ति !! शान्ति !!!

इति वेदतत्त्व प्रकाशे तृतीयः समुल्लासः समाप्तः ।

इति मिथिलादेशान्तर्गत दरभङ्गानिकटस्थ "चहुटा" ग्राम निवासि-शिवशङ्करशर्म्म-निर्मितो जाति-निर्णयः समाप्तिमगात् । इत्यो३म् ॥

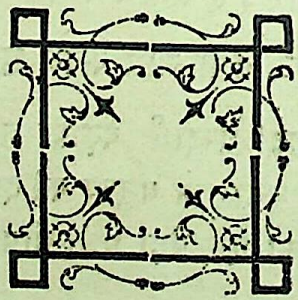

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदतत्त्व प्रकाश ।

यह नाम वेदप्रचार सीरीज़ का रक्खा गया है जो कि ...मती आर्य्यप्रतिनिधि सभा पञ्जाब की ओर से जारी किया ...या है सम्पादक इस के श्रीमान् पण्डित शिवशङ्कर जी ...पतीर्थ हैं जो कि वर्त्तमान समय में वेदों के एक प्रसिद्ध ...न् हैं इस वैदिक ग्रन्थमाला के तीन अङ्क मुद्रित हो चुके हैं:—

१—ओङ्कार निर्णय ... ... ।–)

२—त्रिदेव निर्णय ... ... ॥।)

३—जाति निर्णय ... ... १)

इन तीनों ग्रन्थों की संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वानों ने बड़ी ...सा की है । स्थिर ग्राहकों के लिये ५) वार्षिक डाकव्यय ...हित मूल्य नियत किया गया है इस में उन को एक वर्ष में २०० पृष्ठ के ग्रन्थ भिन्न २ विषयों पर दिये जावेंगे । वेदादि ...त्यशास्त्रों के सर्व प्रेमियों का इस अपूर्व वैदिक ग्रन्थमाला ...चार में तन मन धन से सहायता देना परम कर्त्तव्य है।

वैदिकधर्म का सेवक—

वज़ीरचन्द

अधिष्ठाता आर्य्य-पुस्तक-प्रचार,

जालन्धर शहर (पञ्जाब)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

आर्य्यसमाज के नियम ॥

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

(३) वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्य्यों का परम धर्म है ॥

(४) सत्य ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ॥

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

(७) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ॥

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये ॥

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

VEDA PRACHAR SERIES No. 4

All rights reserved.

ओ३म्

वेदतत्त्वप्रकाश ।

(४)

श्राद्धनिर्णय ।

जिस को

छान्दोग्योपनिषद्भाष्यकार पञ्जाबाऽऽर्य्यप्रतिनिधिसभोपदेशक काव्यतीर्थ श्रीमान्

पं० शिवशङ्करजी ने रचा ।

और

श्रीमती आर्य्यप्रतिनिधिसभा पंजाब

की आज्ञानुसार ।

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर में

मुद्रित हुआ ।

प्रथमावृत्ति १००० * सं० १९६४ * सन् १९०८ * मूल्य ।।।)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विज्ञापन।

पञ्जाब आर्य्यप्रतिनिधिसभा स्थापित आर्य-पुस्तक-प्रचार विभाग की ओर से ४० ट्रैक्ट भिन्न २ विषयों पर उर्दू में मुद्रित हो चुके हैं इस के अतिरिक्त अंग्रेज़ी और आर्य-भाषा में निम्नलिखित पुस्तक छप चुके हैं जो देखने योग्य हैं:-

नाम पुस्तक	मूल्य
१-वैदिक धर्म का महत्त्व	-)
२-आर्यों के नित्यकर्म	-)॥
३-माण्डूक्योपनिषद् पं० गुरुदत्त-कृत व्याख्या का आर्यभाषा में अनुवाद	=)
1—Beauties of Vedic Dharma	0-1-3
2—True Pilgrim's Progress	0-1-6

वैदिक धर्म्मका सेवक-
वज़ीरचंद
अधिष्ठाता आर्य्यपुस्तक-प्रचार
जालन्धर शहर (पंजाब)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ओ३म्

वक्तव्य

—:o:—

वेदतत्त्वप्रकाश के गत तीन भागों के समान इस में भी अर्थसहित और निर्णय के साथ अनेक मन्त्र दिये गये हैं। इस में भी पितृयज्ञ के निर्णय के साथ २ अनेकानेक निर्णय सन्निवेशित किये गये हैं॥

श्राद्ध या पितृयज्ञ एक बड़ा गम्भीर और विचारणीय विषय है, इस विषय पर अब तक अनेक विचार हो चुके हैं, आर्यसमाज और धर्मसभा के उत्सवों पर प्रायः यही शास्त्रार्थ तथा व्याख्यान का विषय रहता है, इस पर अबतक अनेक पुस्तकें बन चुकी हैं, जिन में युक्ति और प्रमाणों द्वारा विचार किया गया है, परन्तु एतद्विषयक विवादास्पद वेदमन्त्रों पर अन्वेषणापूर्वक जैसा विचार होना चाहिये था, अब तक नहीं हुआ। इस विषय में वेद, ब्राह्मण, सूत्र और स्मृति आदि ग्रन्थों में जो लेख मिलते हैं उन की ठीक २ सङ्गति किसी पुस्तक में नहीं की गई थी, इस अभाव को दूर करने के लिये मैंने यह ग्रन्थ रचा है। इस में इस विषय की यथासंभव कोई बात नहीं छूटने पाई, यदि यह ग्रन्थ विचारशील पाठकों को पसन्द आया तो इस का दूसरा भाग भी उनकी सेवा में प्रस्तुत किया जायगा। जिसमें कि इस विषय के अन्यान्य मन्त्र और प्रमाण (जो इस में देने से रहगये हैं) सन्निवेशित किये जायंगे।

आशा है कि इसे ध्यानपूर्वक पढ़कर पाठक महोदय मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

अजमेर
ता० ६-३-०८

शिवशङ्कर शर्मा
काव्यतीर्थ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्राद्धनिर्णय की विषयसूची ॥

विषय	पृष्ठ
प्रश्न	१
पितर और अध्यात्मगति सू०	५
पितृगण और रात्रि	१५
पितृगण और अमावस्या तिथि	१६
पितृगण और पितृ प्रसू	१७
पितृगण और दक्षिणायन	२०
शङ्का समाधान	२१
पितृगण और स्वधाशब्द	२२
स्वधा और देवी भागवत	२४
स्वधा और भागवत	२६
स्वधाशब्द का वास्तविक अर्थ	२८
स्वधा और स्वाहा	३१
पितृगण और अन्नवाचक स्वधा	३२
स्वधा और ऋचाएं	३३
यम कौन हैं ?	५१
यम और पुराण	५२
यम और वेद	५५
पुराणों की संगति	६१
यम और वैवस्वत	६२
यम शब्दार्थ धर्म	६३
वैवस्वतयम	६३
यम और न्यायाधीश	६४
यम और नित्य विभुकाल	६४
यम का मरण	६६
यम पितरों के अधिपति कैसे	६८
यमदूत	६९
यम और यमसभासद्	७५
यम के दो कुत्ते	७१
यम और दक्षिणदिशा	७५
पितृशब्द किरणवाचक	७९
यम ईश्वरवाचक	८०
यम आदित्यवाचक	८१
यम और अन्यान्य ग्रन्थकार	८२
यम सूक्त	८४
पितर कौन हैं	९०
पितर और मनुस्मृति	९१
पितर और पुराण	९३
पितर और सांख्यशास्त्र	९५
पितर कौनहैं इसपर अनेक संमतियां	९६
अग्नि स्वात्ता आदि पितर कौन हैं ?	९७
पुराण और अग्निस्वात्त आदि पितृगण	९८
अग्निस्वात्त आदि के यथार्थ अर्थ	९९
निपुणतावाचक अग्नि और जल	१०१
निखात आदि शब्द	१०४
पितर और दक्षिण दिशा	१०५
पितर और प्राचीनावीती	१०८
पितृयाण से क्या आशय है	१०८
पितृगण और चंद्रमा	११०
पितर और अन्न	११३
पितर कैसे होने चाहिये	११४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विषय	पृष्ठ
पितर और वेदमंत्र	११६
पितृसूक्त	१२८
तीन ही पुरुषों का श्राद्ध क्यों	१३३
अमावास्या मासिक श्राद्ध	१३४
अमावास्या और वेद शतपथ ब्रा०	१३६
अष्टम प्रश्न पर विचार	१४०
नवम प्रश्न पर विचार	१४२
पितर और द्वादशाह श्राद्ध	१४२
पिता-पुत्रीय सम्प्रदान	१४७
देवयान पितृयाण	१४८
द्वादशाह और मनुस्मृति	१४९
पितृऋण और पुत्र शब्दार्थ	१५०
गया	१५१
मृतक श्राद्ध और महाभारत	१५४
वराहपुराण और श्राद्ध	१५६
श्राद्ध और बैल का दागना	१५८
बैल का विवाह	१६०
दशगात्र पिण्ड	१६०
मृत का शौच और केशच्छेदन	१६१
पितर और मांसभोजन	१६१
तर्पण	१६४
तिलोंका इतना माहात्म्य क्यों	१६५
तिलरत्नोद्घ	१६६
ईश्वर के नियम क्या हैं	१६७
गया पिण्ड	१७०
पितृयज्ञ और श्राद्ध नाम	१७१
वेदों के कतिपय मन्त्र	१७१
मरणकालिकप्रार्थना	१७६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेद-तत्त्व-प्रकाश

चतुर्थ समुल्लास ॥

श्राद्धनिर्णय ।

———:o:———

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् । ऋ० । १० । १५ । ५
यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः । ऋ० । १० । १४ । १५
पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।
जीवं व्रातं सचेमहि । यजुः । ३ । ५५

इनका अर्थ आगे लिखा जायगा ।

ऋग्, यजु, साम और अथर्व ये चारों वेद ईश्वर-प्रदत्त हैं ऐसा सर्व शास्त्रों, स्मृतियों तथा पुराणादिकों का सिद्धान्त है । एवं मधुच्छन्दा, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि ऋषियों से लेके जैगिनि ऋषि पर्य्यन्त सब ऋषि धर्म्म के विषय में केवल इन चार

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदों को ही प्रमाण मानते आए हैं और सहस्रों लाखों ग्रन्थों के नष्ट हो जाने पर भी संस्कृत भाषा में अभी लक्षों ग्रन्थ पाये जाते हैं सब ग्रन्थों को लेके किसी विषय का कोई निर्णय करने को तैयार होवे तो उसके लिये अत्यन्त कठिन होगा इस कारण जो ईश्वरप्रदत्त चारों वेद अनादि काल से चले आते हैं उन के ही आश्रयसे धर्म्म निरूपण करना सर्व मनुष्यों को उचित है इस हेतु यद्यपि मैं भी आज इस श्राद्धविषय का निर्णय मुख्यतया इन चारों के आधार पर ही करता हूं तथापि स्मृतिशास्त्रों और पुराणों के अभिप्राय को भी पदे २ दिखलाऊंगा। आप सब महाशय पक्षपात दुराग्रह और हठ को त्याग ईश्वर की ओर देख धर्म्म पर पूर्ण विश्वास रख इस निर्णय को देखें विचारें और सत्यासत्य का विवेक करें।

यह पितृ यज्ञ वा पितृ-श्राद्ध पूर्वकाल में जीवित अथवा मृत पितरों का होता था इस के ज्ञान के लिये प्रथम वक्ष्यमाण अर्थों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) (क) पितरोंके समय दक्षिणायन षड्मास हैं अर्थात् जब दिवस घटना आरम्भ होता है * सूर्य्य भगवान् उत्तर से दक्षिण-दिशा की ओर यात्रा करते हुए प्रतीत होते हैं। दिनकी प्रचण्डता, उष्णता और गरमी बिल्कुल कम होती जाती है और स्वयम् सूर्य्य भी क्षीण मलिन निस्तेज परम वृद्ध पुरुष समान भासित होने लगते हैं उस समय का नाम दक्षिणायन है। ऐसा दक्षिणायन समय पितरों के लिये क्यों माना है ?

(ख) पितरों का पक्ष कृष्णपक्ष है अर्थात् जब चन्द्र भगवान् की एक २ कला प्रतिदिन क्षीण होने लगती है और धीरे २ रात्रि में अन्धकार की वृद्धि और प्रकाश का क्षय होने लगता है इसे कृष्णपक्ष कहते हैं। पितरों के लिये यह पक्ष क्यों ?

(ग) पितरों का काल रात्रि है अर्थात् जब प्राण और प्रकाशदाता सूर्य्य अस्त होने लगता है जिस के आश्रय से सब ही जीव आनन्द और जीवन पा रहे थे वही सूर्य्य अब नीचे को गिर रहा है मानो इस के अन्तकाल की सूचना करते हुए

* प्रायः कुछ दिन आषाढ़ से आरम्भ हो पौष तक दिन घटता रहता है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये पक्षिगण भी हताश और निराश हो अपने २ कार्य्य को त्याग शोक के लिये अपने २ निवास स्थान में आरहे हैं। जीवमात्र विश्राम के लिये तैयारी करने लगते हैं, चारों ओर से अन्धकाररूप महागज आ छाजाते हैं, रहती हुई भी नयन अब कुछ काम नहीं देती, बहुत से पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग आदि जीव अन्धे हो जाते हैं, आकाश में कहीं २ नक्षत्र चमकते हुए दीखने लगते हैं एक दूसरे के बाद उदित और अस्त होते रहते हैं इत्यादि आश्चर्य्य-युक्त समय का नाम रात्रि है। क्यों ?

(घ) पितरों का समय दिन का अपराह्न भाग है अर्थात् दुपहर के बाद। जब सूर्य्य का तेज कम होने लगता है आकाश के मध्य भाग से नीचे उतरते हुए सूर्य्य दीखने लगते हैं वह दिन का अर्द्धभाग पितरों का कहलाता है। क्यों ?

(ङ) पितरों की तिथि विशेष कर अमावास्या है अर्थात् जिस तिथि में प्रायः चन्द्रमा का भी दर्शन नहीं होता उसे अमावास्या कहते हैं। क्यों ?

(च) पितरों की वेला सायङ्काल है अर्थात् एक ओर तो प्रकाश धीरे २ क्षय होता जाता है दूसरी ओर धीरे २ अन्धकार आता जाता है उसे सायङ्काल कहते हैं इत्यादि घटनाएं पितरों के साथ क्यों लगी हुई हैं ? ये सब किस भाव को सूचित करती हैं। इत्यादि विषयों पर प्रथम पूर्णतया विचार करना चाहिये। इतने से ही पितृश्राद्ध के बहुत से प्रयोजन विदित होने लगते हैं और यह बतला देता है कि पितृयज्ञ जीवित पितरों के लिये है या मृतपितरों के लिये।

(२) सायङ्काल को पितृप्रसू क्यों कहते हैं ?

स्वधा शब्द ॥

(३) (क) केवल पितरों के सम्बन्ध में ही स्वधा शब्द के प्रयोग अधिकता से क्यों होते हैं ? इस यज्ञ में " स्वधा " का उच्चारण इतना क्यों होता है ? (ख) इस का क्या अर्थ है ? (ग) इस शब्द से पितर क्यों प्रसन्न होते हैं ? इत्यादि—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(४) (क) यम कौन है ? इस को वैवस्वत, सूर्य्यपुत्र, धर्म्मराज, पितृपति, काल, दण्डधरा इत्यादि क्यों कहते हैं ? (ख) पितरों के साथ ही इसका इतना सम्बन्ध क्यों है ? (ग) इसके दो श्वानों (कुत्तों) का क्या आशय है ? यमदूत कौन हैं ? यम की दक्षिण दिशा क्यों मानी गई है ? चित्रगुप्त का अभिप्राय क्या है ? इत्यादि—

(५) (क) पितर कौन है ? (ख) अग्निष्वात्त, अग्निदग्ध, बर्हिषद, सोम्य, सुकाली, अंगिरा, नवग्व, भृगु, अथर्वा आदि पितृगण कौन है ? पितृशब्द प्रायः बहुवचनान्त क्यों आते हैं ? (ग) पितरों का दक्षिण दिशा से क्या सम्बन्ध है ? पितर प्राचीनावीति क्यों ? पितृयाण से क्या आशय है ? (घ) पितरों का सोम अथवा चन्द्रमा के साथ क्या सम्बन्ध है ? चन्द्र में अमृतपान करते हुए भी पितृगण श्राद्ध की इच्छा क्यों करते हैं ? यहां देवों के अन्न पितर क्यों कहाते हैं ? इत्यादि (ङ) पितृयज्ञ में भोजन का इतना माहात्म्य क्यों ? देवयज्ञ से भी इसे श्रेष्ठ क्यों माना है ? इसमें ब्राह्मण--भोजन की इतनी सावधानता क्यों ? इत्यादि ।

(६) पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही इस प्रकार तीन ही पुरुषों का श्राद्ध क्यों कहा गया ?

(७) अमावास्या मासिक श्राद्ध ही सब आचार्य्यों ने विशेष कर क्यों विहित रक्खा ?

(८) इस विषय में वानप्रस्थाश्रम और संन्यासाश्रम क्या सूचित करता है । संन्यासियों का श्राद्ध निषेध क्यों ?

(९) पूर्वकाल में मरण समय, पिता पुत्र में क्या सम्वाद होता था और वह क्या सूचित करता है ?

(१०) वेदों में द्वादशाह श्राद्ध की कहीं चर्चा है वा नहीं ?

(११) पितृऋण और पुत्र शब्दार्थ क्या है ?

(१२) गया बौद्ध—सम्प्रदायियों का तीर्थ स्नान होने पर भी वहां श्राद्ध का इतना माहात्म्य क्यों ?

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(१३) महाभारत की आख्यायिका क्या सूचित करती है ?

(१४) आजकल पितरों को जल देना ही पितृतर्पण क्यों कहाता ?

(१५) तिलों का इतना माहात्म्य क्यों ?

(१६) दशगात्र–पूरण–पिण्ड, वृषभ का दागना, केश-च्छेदन, मांस-पिण्ड आदिकों का वर्णन क्यों ?

(१७) ईश्वरीय नियम क्या ?

इन ही विषयों पर यदि दत्तचित्त हो कोई ध्यान देवे तो मैं कहता हूं कि पितृ-यज्ञ का पता अच्छे प्रकार लग जायगा। विवेकशील पुरुषों से मेरा निवेदन है कि इन पर ध्यान देवें। इस सम्बन्ध में वेदों की जितनी ऋचाएं हैं उन का अर्थ सहित बारम्बार मनन करें। पुनः २ मनन से ही वेदार्थ प्रतीत होते हैं और इनके अर्थज्ञान से बुद्धि की शुद्धता और अनाकुलता होती है। जो कुछ हम धर्म्म के नाम पर करें उसे प्रथम सोचें विचारें ऐसा न हो कि वेदविरुद्ध कर्म्म करके उलटा दुःख भागी बन जांय और ईश्वर की आज्ञा से दूर जा अपने आत्मा को नीचे गिरादें। विद्वानों का एक यह भी परमोचित कर्त्तव्य है कि देश, ग्राम और कुल के प्रचलित व्यवहार, रीति, रस्मों के मूल कारण, तत्त्व, और अभिप्राय को अन्वेषण करते रहें। यदि वे व्यवहार हानिकारक हों तो उनको उठाने के लिये पूरा यत्न करें इसमें समाज की चिन्ता न करें क्योंकि इसमें अनभिज्ञ पुरुष अधिक होते हैं। सत्यता को प्रकाशित करने के लिये सदा उद्यत रहें। जिन से विद्या, व्यवसाय, धर्म्म आदि का लोप होता हो ऐसे कुकर्म्म अथवा प्रचलित रीतियों को बन्द करने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये। इस कारण सज्जन विद्वानों से मेरा विनय है कि इस पितृयज्ञ निर्णय को प्रथम ध्यान से चिन्तन कर वैदिक पितृयज्ञ को करें और करावें।

"पितर और अध्यात्म–गति सूचक दक्षिणायन आदि समय"

प्रथम दक्षिणायन आदि समय पितृ समय है इसमें प्रमाण सुनिये। यथाः—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वसन्तो ग्रीष्मो वर्षाः। ते देवा ऋतवः। शरद्धेमन्तःशिशिरस्ते पितरः। य एवाऽऽपूर्य्यतेऽर्धमासः स देवाः। योऽपक्षीयते स पितरः। अहरेव देवाः। रात्रिः पितरः। पुनरह्नः पूर्वाह्णोदेवाः। अपराह्णः पितरः। स यत्रोदगाऽऽवर्तते देवेषु तर्हि भवति। देवांस्तर्हि अभिगोपायति। अथ यत्र दक्षिणाऽऽवर्तते। पितृषु तर्हि भवति। पितॄंस्तर्ह्यभिगोपायति। ३। शतपथ काण्ड २। ब्राह्मण ३।

अर्थ—वसंत, ग्रीष्म और वर्षा ये तीनों देवऋतु हैं। शरद्, हेमन्त और शिशिर ये तीनों पितृऋतु हैं। जो अर्धमास चन्द्र से आपूर्य्यमाण होता है अर्थात् जिस में चन्द्रमा बढ़ता हुआ दीखताहै अर्थात् जो शुक्लपक्ष है वह देवपक्ष है जो क्षीण होता है अर्थात् जिस में चन्द्र क्षीण होता भासित होता है ऐसा जो कृष्णपक्ष है वह पितृपक्ष है। दिन ही देव है रात्रि ही पितर है पुनः दिन का जो पूर्व भाग है वह देव और अपराह्ण भाग पितर है। वह सूर्य्य जब उत्तर को लौटता है तब देवों के निमित्त होता है तब देवों को ही सब तरह से पालता है और जब दक्षिण को लौटता है तब पितरों के निमित्त होता है तब पितरों को ही सब तरह से पालता है। इति (१) पुनः।

किसी समय प्रवाहण जैवलि के निकट आरुणेय श्वेतकेतु कुमार पहुंचे। जैवलिने उनसे प्रश्न पूछते हुए यह एक प्रश्न पूछा है:—

"वेत्थ पथोर्देवयानस्य पितृयाणस्य च व्यावर्तना इति"।

हे कुमार! क्या आप देवयान और पितृयाण इन दोनों मार्गों की व्यावर्त्तना (जहां से दोनों पृथक् २ हो जाते हैं) जानते हो। श्वेतकेतु इस को नहीं जानते थे तब प्रवाहण स्वयं श्वेतकेतु के पिता से कहने लगे।

(१) यहां यह स्मरण रखना चाहिये कि दक्षिणायन, कृष्णपक्ष आदि समय जो पितरों के साथ और उत्तरायण, शुक्लपक्षादि समय जो देवों के साथ लगाया हुआ है। इसका वर्णन वेद चतुष्टय में विशेष रूप से नहीं है। ब्राह्मणादिक ग्रन्थों में ऋषियों ने प्रतिपादन किया है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये चे येऽरण्ये श्रद्धा तप उपासते। ते अर्चिष माभिसंभवन्ति। अर्चिषोऽहः। अह्न आपूर्णमाणपक्षम्। आपूर्यमाणपक्षाद् यान्-षडुदङ्डेति मासांस्तान् मासेभ्यःसम्वत्सरं।सम्वत्सरादादित्यम्। आदित्याच्चन्द्रमसम्। चन्द्रमसो विद्युतम्। तत्पुरुषोऽमानवः। स एनान् ब्रह्म गमयति। एष देवयानः पन्थाः ॥ २ ॥ अथ ये इमे ग्राम इष्टापूर्त्ते दत्तमित्युपासते ते धूममभिसंभवान्ति। धूमाद् रात्रिम्। रात्रेरपरपक्षम्। अपरपक्षाद् यान् षड् दक्षिणैति मासान् तान्। नैते सम्वत्सरमभिप्राप्नुवन्ति ॥ ३ ॥ मासेभ्यः पितृलोकम्। पितृलोकादाकाशम्। आकाशाच्चन्द्रमसम्। एष सोमो राजा। तद्देवानामन्नम्। तं देवा भक्षयन्ति ॥ ४ ॥

अर्थः—सो जो कोई ज्ञानी अरण्य में श्रद्धा और तप की उपासना करते हैं वे प्रथम अर्चि (अग्नि ज्वाला) में उत्पन्न होते हैं। अर्चि से दिन में। दिन से आपूर्य्य माण पक्ष अर्थात् शुक्ल पक्ष में। आपूर्य्यमाण पक्ष से उन छः मासों में जिन में सूर्य्य उत्तर होता है *। मासों से वर्ष में। वर्ष से आदित्य में। आदित्य से चन्द्रमा में। चन्द्रमा से विद्युत् में। वहां अमानव पुरुष इस को ब्रह्म की ओर ले जाते हैं। इसी का नाम देवयान पथ है। अब आगे पितृयाण कहते हैं सो जो ये ग्राम में ही इष्टापूर्त और दान की उपासना करतेहैं वे प्रथम धूम में उत्पन्न होते हैं। धूम से रात्रि में। रात्रि से अपर

* सर्वत्र स्मरण रखना चाहिये कि न तो सूर्य्य दक्षिण उत्तर होता और न अस्त उदित होता है। पृथिवी के गोल और भ्रमण के कारण ये सब घटनाएं होती रहती हैं इसी प्रकार चन्द्रमा न तो बढ़ता और न घटता। पृथिवी की रुकावट के कारण वैसी लीला दीखती है। परन्तु पृथिवीस्थ मनुष्यों को पृथिवीस्थ घटनानुसार ही शिक्षा दी गई है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पक्ष अर्थात् कृष्णपक्ष में । अपरपक्ष से उन छः मासोंमें जिन में सूर्य्य दक्षिण होता है। ये सम्वत्सर की प्राप्ति नहीं करते । उन मासों में पितृलोक में । पितृलोक से आकाश में आकाश से चन्द्रमा में । सो यह यहां सोमराजा रहता है वह देवों का अन्न है उस को देव खाजाते हैं। यही पितृयाण पथ है । इन दोनों पथों के भाव को मैंने छान्दोग्य और बृहदारण्यक उपनिषदों में विशेषरूप से निरूपण किया है वहां ही देखिये । यह मरण के अनन्तर जिस २ दशा में जीव प्राप्त होता है उस का वर्णन है । यहां केवल यह सूचित करना है कि रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि काल पितृगण से और दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण आदि देवगण से सम्बन्ध रखते हैं । *

पुनः मनुस्मृति में कहा गया है । यथाः—

कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम् । श्राद्धप्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः ॥ ३ । २७६ ॥ यथा चैवापरः पक्षः पूर्वपक्षाद्विशिष्यते । यथा श्राद्धस्य पूर्वाह्णादपराह्णो विशिष्यते । ३ । २७८ ॥ न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः । ३ । २८२ ॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को त्याग दशमी आदि तिथिएं श्राद्ध के लिये जितनी प्रशस्त हैं उतनी अन्यान्य तिथिएं नहीं । २७६ । जैसे श्राद्ध में पूर्वपक्ष अर्थात् शुक्लपक्ष की अपेक्षा कृष्णपक्ष+ विशेष है वैसे ही पूर्वाह्ण से अपराह्ण प्रशस्त है। आहिताग्नि

* आजकल चन्द्रमास का हिसाब कृष्णपक्ष से करते हैं । परन्तु यह ठीक नहीं क्योंकि प्राचीन काल के अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि चन्द्रमास की गणना शुक्लपक्ष से करनी चाहिये । ऊपर के प्रमाणों से भी यही प्रतीत होता है क्योंकि आपूर्य्यमाण पक्षकी अपेक्षा अपक्षीयमाण पक्ष को अपरपक्ष कहा है। मन्वादिकों की भी यही सम्मति है ।

+ यहां पर भी कुल्लूक लिखते हैं कि "**चैत्रसिताद्या मासा इति ज्योतिःशास्त्र विधानात् शुक्लपक्षोपक्रमत्वान्मासानाम् अपरः पक्षः**

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् अग्निहोत्री द्विजाति का श्राद्ध अमावास्या के विना नहीं होना चाहिये । इत्यादि मनुस्मृति भी कृष्णपक्षादि काल को पितृ-सम्बन्धी बतलाती है । पुनः—

अथ श्राद्धममावस्यां प्राप्य कार्यं द्विजोत्तमैः । पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं भक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥ पिण्डान्वाहार्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते । अपराह्णे द्विजातीनां प्रशस्तेनामिषेण तु । प्रतिपत्प्रभृति ह्येतास्तिथयः कृष्णपक्षके । चतुर्दशीं वर्जयित्वा प्रशस्ता ह्युत्तरोत्तराः ॥

ये वाक्य शब्दस्तोम-महानिधि कोष में श्राद्ध शब्द पर लिखे हुए हैं । द्विजोत्तम को उचित है कि अमावास्या तिथि पा के श्राद्ध करें यह पिण्डान्वाहार्य श्राद्ध भक्तिमुक्ति-फल-प्रद है । चन्द्रमा के क्षय होने पर अपराह्ण समय में प्रशस्त आमिष से इस पिण्डान्वाहार्य श्राद्ध को द्विजाति करें । कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तिथि को त्याग प्रतिपद् आदि तिथिएं प्रशस्त हैं इन में भी उत्तरोत्तर तिथिएं प्रशस्त होती जाती हैं ।

इत्युक्त्वा तु तदा ब्रह्मा तेषां पन्थानमाकरोत् । दक्षिणायनसंज्ञन्तु पितॄणां तु पितामहः ॥ तूष्णीं ससर्ज भूतानि तमूचुः पितरस्ततः । वृत्तिं नो देहि भगवन् यथा विन्दामहे सुखम् ॥ ब्रह्मोवाच । अमावास्या दिनं वोऽस्तु तस्यां कुशतिलोदकैः । तर्पिता मानुषैस्तृप्तिं परां गच्छत नान्यथा ॥ इत्यादि वाराहे ।

शब्दकल्पद्रुम पितृयज्ञ शब्द का वर्णन करते हुए कहता है कि ब्रह्माजी ने यह कह उन पितरों का दक्षिणायन पन्था बनाया । उसे बना के पुनः सृष्टि करने लगे । तब

कृष्णपक्षः" चैत्र मास के शुक्लपक्ष से मास आरम्भ होते हैं इस विधान से अपरपक्ष का अर्थ कृष्णपक्ष है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितरों ने ब्रह्माजी से जीविका मांगी । उन्होंने पितरों की जीविका के लिये अमावास्या तिथि नियत की और कहा कि मनुष्यों से दिये हुए कुश तिल जलों को प्राप्त कर आप तृप्त होवें, इत्यादि ।

अब सब से प्रथम आप इन पूर्वोक्त वाक्यों में क्या विलक्षणता पाते हैं ? आप देखते हैं कि यदि देवों का समय उत्तरायण है तो पितरों का दक्षिणायन यदि देवों का शुक्लपक्ष तो पितरों का कृष्णपक्ष । यदि देवों का दिन तो पितरों की रात्रि । यदि देवों का पूर्वाह्न तो पितरों का अपराह्न । इसीप्रकार देवों का प्रातःकाल पितरों का सायंकाल । देवों की पूर्णमासी पितरों की अमावास्या । इत्यादि । पुनरपि आपने उपनिषद् के वाक्यों में देखा है कि देव यदि ज्वाला में जाते हैं तो पितर धूम में । देव यदि दिन में तो पितर रात्रि में इत्यादि । दक्षिणायन में और कृष्णपक्ष में भी उत्तरोत्तर मास और तिथिएं अति प्रशस्त कही गई हैं इसी कारण शरद्ऋतु से और अष्टमी तिथि से उत्तम काल माना गया है । विवेकि-पुरुषो ! ये सब क्या सूचित करते हैं । इन नियमों से प्राचीन ऋषियों ने कौनसा गूढ़ आशय रक्खा था । ये सब कुछ प्रयोजनवान् हैं अथवा निरर्थक । इसमें सन्देह नहीं कि इसका आशय सरल और स्वाभाविक था प्रात्याहिक जीवन के लिये बड़ा ही आनन्दप्रद था परन्तु अज्ञानियों ने इसके अर्थ को उलट पुलट कर दिया. एवमस्तु अब इसका आशय सुनियेः—

प्रथम आप यह देखें कि पितरों के लिये ऐसे समय रक्खे गये हैं जो गिरते और घटते हुए हैं जो अवनति की ओर जारहे हैं धीरे, २ अस्त होरहे हैं नैराश्य सूचक हैं । परन्तु देवों के लिये वे समय हैं जो बढ़ते हुए उन्नति की ओर जारहे हैं अर्थात् पितरों के समयों से ठीक विपरीत देवों के समय हैं । यह क्या शिक्षा देता ? इससे प्रथम यह शिक्षा मिलती है कि **बढ़ते हुए को देव और गिरते हुए को पितर कहना चाहिये** । अब बढ़ना और घटना दो प्रकार से होता है एक शरीर से, दूसरा ज्ञानादिक से । इस से यह सिद्ध होगा कि देव और पितर दो २ प्रकार के हैं । जो शरीर से उन्नति कर रहे हैं अर्थात् यह नियम है कि जन्म से लेके यौवनावस्था तक शरीर के प्रत्येक भाग बढ़ते जाते हैं, तत्पश्चात् घटने लगते हैं अतः सब ही जीवगण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यौवनावस्था तक देव तत्पश्चात् पितर कहावेंगे । इसी प्रकार जो ज्ञान सत्यादि पालने में बढ़ते चले जाते हैं वे देव और जो आगे को बढ़ते नहीं किन्तु उसी अवस्था में रहते अथवा एक प्रकार से घटते जाते हैं वे पितर हैं । एक तो उन वाक्यों से यह भाव टपकता है और दूसरा जो अत्यन्त उपदेशयुक्त और परमज्ञानप्रद है वह यह है ।

यहां प्राकृतिक उपमाओं के द्वारा जीवात्मा की गति बतलाई जाती है । देखिये । दक्षिणायन समय, कृष्णपक्ष और दिन का अपराह्न ये प्रथम तीनों उपमाएं हैं । परमदयालु ऋषि उपदेश देते हैं कि हे पितरो ! अर्थात् हे वृद्धपुरुषो ! जैसे सब के प्राणदाता सब के आश्रयभूत ये महान् तेजस्वी सूर्य्य भगवान् भी ज्येष्ठ मास तक अपनी पूर्ण यौवनावस्था को भोग के अब शनैः २ घट रहे हैं । इन का वह वैशाख ज्येष्ठ का परमप्रचण्ड प्रताप क्षीण होरहा है अपनी युवावस्था में इन्होंने पृथिवीस्थ सैकड़ों नदियों और सरोवरों को सोख लिये, जंगलों को भस्म कर दिये उस समय क्या पशुपक्षी क्या मनुष्य त्राहि २ मचाने लगे परन्तु इस जगत्पति जगच्चक्षु का भी वह ऐश्वर्य्य वह प्रताप अब क्षीण होरहा है । देखो ! दक्षिण की ओर खींचे जारहे हैं तेज मन्द होरहा है इस आग्रहायण पौष में ये कैसे दुर्बल होरहे हैं, मानो मृत्यु के मुख में अब गिरने ही चाहते हैं । ऐ पितरो ! देखो, इसी सूर्य्य के समान आप की दशा प्राप्त हुई है । बाल्यावस्था से लेके यौवन तक आपने बहुत कुछ क्रीड़ा, नाना कर्म्म, नाना व्यवसाय, नाना संग्राम किये । अब दक्षिणायन सूर्य्य के समान आप लोगों की आयु घट रही है । शरीर के बल, तेज, प्रताप, सब ही क्षीण होते जाते हैं । इन्द्रियें शिथिल होगईं, मुख की कान्ति अब वह नहीं रही । दर्शन, श्रवणादिक शक्ति भी जाती रही । हे पितरो ! जब महान् सूर्य्यदेव की ऐसी गति होती है तब मर्त्यवासीजनों की ऐसी दशा होनी कोई आश्चर्य्य नहीं । यह सूर्य्य ईश्वर के नियम सूचित कर रहा है कि महान् से महान् भी एक दिन गिरेगा, अस्त होगा । इस कारण पितृगणो ! अब सब तरह से सचेत होजाओ । अब कूच करने की देर नहीं है । इत्यादि भावना दक्षिणायन सूर्य्य की उपमा से सूचित की गई है ।

यही भावना कृष्णपक्ष की उपमा से भी सूचित कीगई है प्रथम पक्ष अर्थात् शुक्ल-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पक्ष में चन्द्रमा एक २ कला बढ़ते २ पूर्णिमा तिथि को षोडश कलाओं से पूर्ण हो-जाता है यही मानो चन्द्रमा की यौवनावस्था है इसमें यह सब को आह्लादित करता है अब प्रतिपद् तिथि से एक २ कला क्षीण होने लगता है अन्त में अमावास्या तिथि को यह ग्रहपति चन्द्र देव भी अस्त होजाते हैं हे पितृगणो ! अर्थात् हे वृद्धजनो ! इसी प्रकार अब आप लोगों की भी यही दशा संप्राप्त है। देखो, अपने शरीर की ओर। इस शरीर से एक २ कला दिन २ घटरही है यौवनावस्था में चन्द्रमा के समान सबों को सुख पहुंचाया अब इन्द्रियें शिथिल होरही हैं और अमावास्या के चन्द्र के समान एक दिन अवश्य ही अस्त होना है। जब ऐसे देव भी अस्त होते हैं मृत्यु इन्हें भी नहीं छोड़ता तो मनुष्य को कब छोड़ सकता है। हे वृद्धतर पितरो ! अब आप ब्रह्मध्यान में चित्त लगावें। यही शिक्षा इस उपमा से दी जाती है इसी प्रकार दिन के अपराह्ण से समझिये।

अब रात्रि और अमावास्या से भी आत्मगतिका उपदेश देते हैं। रात्रि आती है। चारों तरफ अन्धकार छाजाता है परन्तु आकाशमें नक्षत्रगण चमकने लगते हैं जिससे कुछ प्रकाश भी होता रहता है। इस उपमा से पितरों को सूचित किया जाता है कि हे वृद्धपितरो ! यद्यपि दिनके समान अब आपका वह प्रताप नहीं रहा अब आप अपने २ शरीरसे दिनके समान सब जीवों के उपकार करने में असमर्थ हैं तथापि रात्रिके समान जीवनकी प्रत्याशा है इस आकाशरूप हृदय में नक्षत्र समान जीवन चमक रहा है यह कुछ प्रकाश लोगों पर डाल रहा है वह चमकती हुई बुद्धि-रूपा तारा अभीतक विद्यमान है इससे अब भी आप बहुत कुछ साध सकते हैं। नैराश्य अभी तक नहीं आया, चन्द्र भगवान् जैसे नक्षत्रों के साथ मिलके रात्रि की शोभा बढ़ा रहे और प्राणियों को सुख पहुंचा रहे हैं ऐसे ही इन्द्रिय-रूप नक्षत्रों सहित आत्मारूप चन्द्रमा तनुरूप रात्रि में विकसित हो रहे हैं यथाशक्ति प्राणियों को अब भी सुख पहुंचा सकते हैं और पहुंचा भी रहेहैं इस में सन्देह नहीं परन्तु यह सब होते हुए भी दिन के समान वह यौवन नहीं, जरारूपा रात्रि आगई, शरीर का तेज न्यून हो ही गया। वह उष्णता अब चली ही गई

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शीतलता आ घेरी । वृद्धतर पितरगणो ! देखो अब चेतो । ऐ मनुष्यो ! सब की यही गति है इत्यादि भाव इस रात्रि से सूचित किया जाता है ।

अब अमावास्या की ओर आइये ! सायंकाल से प्रातःकाल तक अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ रहता है । आज चन्द्रमा भी नहीं । वह भी अस्त हो गया । वृद्धतम पितरो ! यही दशा अब आप लोगों की आनेवाली है । वह आत्मरूप चन्द्र भी अस्त हो ही जायगा अर्थात् इस शरीर को अवश्य त्याग देवेगा आप अब केवल ब्रह्म में ही लीन होवें वही कल्याण करेगा ।

हे आर्य्य सन्तानो ! अब आप तनिक भी ध्यान देवें तो ज्ञात हो सकता है कि यह औपमिक (उपमाओं के द्वारा) उपदेश जीवित पितरों में अथवा मृत पितरों में घटेगा । मृतकों को यह क्या लाभ पहुंचावेगा । वे मर चुके । अब पुनः वे उत्तरायण—सूर्य्य शुक्लपक्षस्थचन्द्र और पूर्वाह्ण के समान नवीन जीवन कहीं पारहे हैं । पुनः अपनी यौवनावस्था की ओर जा रहे हैं उन्हें इन उपदेशों से क्या लाभ पहुंचेगा । ये सारे उपमाप्रदर्शित उपदेश जीवित पितरों के लिये ही हैं । ये ही इन से लाभ उठाने के योग्य हैं इन जीवित पितरों के वास्ते ही ये उपदेश हैं, कैसी प्राकृतिक उपमाएं दी गई हैं कैसा शान्त रस दिखलाया गया है, कैसा जीवन का उद्देश सुन्दर और मनोहररूप से शिक्षित हुआ है । हे विवेकि-पुरुषो ! जीवित पितर ही इन उपमाओं से अपने जीवन सुधार सकते हैं । वे ही विचार सकते हैं कि सूर्य्य के समान मैं निस्तेज बलहीन हो रहा हूं, चन्द्र के तुल्य शारीरिक कला क्षीण होती जाती है रात्रि के सदृश इन्द्रियें अन्धकारावृत हो रही हैं अमावास्या—चन्द्रवत् आत्मा अस्त हो जायगा । अब पृथिवी पर जहां तक हो लोकोपकार करलूं यहां अब रहना नहीं इत्यादि आध्यात्मिक भाव जीवित पितर ही ग्रहण कर सकते हैं । मृत पितर नहीं । इस कारण यह पितृयज्ञ जीवित सम्बन्धी है । मृत सम्बन्धी कदापि नहीं । यह बात इसी दक्षिणायन आदि समय से सिद्ध होती है । मैं कहता हूं कि जो इस गिरतेहुए समय में भी पितरों के लिये समयादि नियत हैं उन्हीं पर यदि कोई विचार करे तो निःसन्देह पितृयज्ञ सम्बन्धी विवाद मिटजाय ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितृ-सम्बन्ध में दक्षिणायन, अपरपक्ष, रात्रि, अपराह्ण अमावास्या आदिक तिथिएं जो प्रशस्त कहे गये हैं इन सबों के अन्यान्य भाव भी हैं सो सुनिए—

वह यह है । पितृ शब्द का मुख्य अर्थ पालक अर्थात् रक्षक है आगे मैं उदाहरण सहित सिद्ध करूंगा, पृथिवी पर के जितने प्रकार के रक्षक हैं उनका एक नाम पितर है और उनकी एक मुख्य पदवी स्वधा है स्वान् दधातीति स्वधाः **"स्वे स्वा वा धीयन्ते ध्रियन्ते रक्ष्यन्ते यया सा स्वधा"** अपने ग्राम देश कुल परिवार बन्धु बान्धव प्रभृतियों को जो धारण पोषण करे करवावे उसे स्वधा कहते हैं अथवा जिस शक्ति वा क्रिया के द्वारा अपने ग्राम देशादिकों का धारण पोषण हो वह स्वधा । इसको आगे विस्तार से निरूपण करेंगे । यहां पर आप यह समझें कि जैसे आज वैसे सर्वदा से दो प्रकार के मनुष्य चले आते हैं आर्य और दस्यु । इसी को क्रम से देव और असुर अथवा सभ्य और असभ्य आस्तिक और नास्तिक सज्जन और दुर्जन उपकारी और अपकारी रक्षक और भक्षक इत्यादि शब्दों से व्यवहार करते हैं, ये दस्यु बड़े उपद्रवी होते हैं इन्हीं दुष्ट पुरुषों से प्रजाओं को बचाने के लिये सर्वदा बड़े २ प्रबन्धों की आवश्यकता होती रहती है स्वभावानुसार वेदों में इनका बहुत वर्णन आया है ऋषियों के समय में भी ये उपद्रवी दस्यु बहुत थे ऋषियों ने वैदिकशिक्षा देख पृथिवी पर शान्तिके लिये सब प्रकारके प्रबन्ध रचे । देशरक्षक प्रथम उत्पन्न किये अर्थात् प्रत्येक प्रकार की विद्या सिखाकर आवश्यकता के अनुसार सब प्रकार के मनुष्य बनाए गए । कोई अध्यापक, कोई न्यायकर्त्ता, कोई प्राड्विवाक, कोई सेनापति, कोई योद्धा, कोई अश्वारोही, कोई पदग, कोई ग्रामाध्यक्ष, कोई नगराध्यक्ष, कोई देशाधिपति, कोई राजा, कोई सम्राट् पृथिवीश्वर इत्यादि । इस तरह से जितने प्रकार के रक्षक हुए उनको प्रथम पितृ-पदवी दी गई और उनके कर्म्म वा क्रिया का नाम स्वधा रक्खा गया। कहीं २ स्वयं पितर भी 'स्वधा' पुकारे गए हैं । इन पितरों के साथ जो ध्वजा पताकाएं रहती थीं उन पर भी स्वधा शब्द लिखा जाता था इस प्रकार पितरों का

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चिह्नही स्वधा हो गया इन पितरों के विशेष भेद अग्निष्वात्त (जिसको अग्निदग्ध भी कहते हैं) वर्हिषद, धर्म्मसद्, सोम्य, भृगु, अथर्वा, अङ्गिरा, नवग्व, वसिष्ठ, विश्वामित्र, गोतम, वामदेव आदिक हैं। ये सब शब्द आचार्य्य, उपाध्यायादिवत् पदवी वाचक हैं। अब मैं एक २ शीर्षक लेके पितर और रात्रि आदिकों के सम्बन्ध वर्णन करूंगा। इस पर आप ध्यान देवें और विचारें कि यह सम्बन्ध जीवितों में अथवा मृतकों में घट सकता है।

"पितृगण और रात्रि" ॥

रात्रि में रक्षा की बड़ी आवश्यकता होती है। आज कल भी रात्रि में रक्षा के लिये बड़ा प्रबन्ध किया जाता है। कोटपाल, चौकीदारगण संध्या होते ही हाथ में गडांस अथवा तलवार बन्दूक आदि ले ग्राम और नगर की सड़कों पर बड़ी सावधानता से चौकी देने लगते हैं। चिल्ला २ के लोगों को जगाते रहते हैं, रात भर कोलाहल ही मचाते रहते हैं। इस के सिवाय आज कल रात्रिरक्षा के लिये रोशनी का बड़ा प्रबन्ध किया गया है। बड़े २ शहरों में गैस और बिजली की रोशनी रात्रि भर सड़कों और गलियों में होती है जिस से रात्रि में भी दिन के सदृश प्रकाश चारों तरफ होने लगता है। बड़े २ नगरों में केवल एक एक रात्रि में रोशनी के लिये १००) से भी अधिक व्यय है। इतने प्रबन्ध होने पर भी रात्रि में बड़ी २ डकैती चोरी बदमाशी हत्या होती ही रहती हैं। बड़ी २ दुकानें लुट जाती हैं। अब आप अनुमान कर सकते हैं कि पूर्व काल रात्रिरक्षा के लिये कितनी आवश्यकता होती होगी। वेदों में राक्षसों के रात्रि में आक्रमणका कितना वर्णन है। वेदोंमें मनुष्यस्वभाव का परिचय है राक्षस इसी हेतु इसका नाम है जिससे हम अपनी रक्षा करें। रात्रि में ये आक्रमण करते हैं अतः रात्रिचर-रात्रिंचर कहाते हैं इत्यादि। इससे सिद्ध है कि रात्रि में रक्षा के लिये पितरों (रक्षकों) की सबसे बढ़ कर आवश्यकता थी। और यह सर्व सिद्धान्त है कि एक ही वार सब प्रकारकी तरक्की नहीं हो गई। धीरे २ सब तराक्रियां हुई हैं और यह भी सब का मत है कि इस पृथिवी पर प्रथम पश्वादि उत्पन्न हुए तब मनुष्यों की सृष्टि हुई है। अब आप विचारें कि जिन ऋषियों के हृदय में वेदज्ञान दिया गया उन को रक्षा के लिये कितनी चिन्ता लगी होगी परन्तु यह तो चिन्ता होने पर धीरे २ ही सर्व कार्य्य सिद्ध हुआ होगा इस में सन्देह नहीं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एक ओर तो वे दुष्ट पुरुष रात्रि मा के गृहस्थों को सताते हैं। दूसरी ओर वे हिंसक सिंह व्याघ्र, वृक, शृगाल आदि पशु आके छोटे २ बच्चों और पशुओं को ले भागते हैं। गृह अभी वैसा दृढ है नहीं। अभी दुर्ग नहीं बने हैं। ईंट पत्थरों के भवन अभी सर्वत्र तैयार नहीं हुए हैं। आग्नेयास्त्र, वारुणास्त्र, शक्ति, तोमर, धनुष, वकुर, तपुषि आदि अस्त्र शस्त्र अधिक रचित नहीं हुए हैं। तैलादिकों के यंत्र अभी सर्वत्र नहीं पहुंचे हैं इस हेतु रात्रि में प्रदीप का भी वैसा प्रबन्ध होना कठिन है। इन्धनों को जलाके कुछ कार्य्य लेने पर भी पूरी रक्षा नहीं होती है। इत्यादि अवस्था सृष्टि की आदि में थी। ऋषि लोग वेद के द्वारा सब प्रबन्ध रच ही रहे थे। तथापि उस समय रात्रिरक्षा की सब से बढ़कर आवश्यकता थी अतः अब आप विचार सकते हैं कि पितरों के लिये रात्रि का समय क्यों प्रशस्त माना गया है। रात्रि में रक्षा की बड़ी आवश्यकता होने के कारण पितरों का समय रात्रि रक्खा गया है हे विवेकि-पुरुषो ! यह रक्षा क्या जीवित पुरुष कर सकते हैं या मृतपुरुष। निःसन्देह यह जीवितों का कर्तव्य है इससे भी यही सिद्ध है कि पितृयज्ञ जीवित-सम्बन्धी है मृत-सम्बन्धी नहीं।

पितृगण और अमावास्या तिथि ॥

यह अमावास्या की श्राद्ध-विधि भी जीवित पितरों की ही सेवादिक व्रत बतलाती है क्योंकि इस तिथि में चन्द्रमा का भी उदय प्रायः नहीं होता है। रात्रि में अंधकार अधिक छा जाता है। चोर, डाकू, लुच्चे, लम्पट, बदमाश, रात्रिचर आदि दुष्ट पुरुषों को चोरी डकैती वगैरह करने का बहुत मौका मिल जाता है। चोर तो अमावास्या को खास अपनी तिथि मानते हैं इस कारण इस रात्रि में रक्षा की ओर भी अधिक आवश्यकता है। हम कह चुके हैं कि पितर शब्दार्थ रक्षक है। रक्षकगणों का नाम ही पितर है। इस हेतु रक्षक पितर आज घर २ बुलाये जाते हैं इन का आज खूब सत्कार होता है। गृहस्थ विचारे इन के भरोसे आनन्द पूर्वक शयन करते हैं और ये पितर रात्रि भर जागरण करके उन गृहस्थों के सब पदार्थों की रक्षा करते हैं। इस तिथि को अधिक पितरों की आवश्यकता होती है इस हेतु कहा गया है अमावास्या को पितृयज्ञ अवश्य करें। घर २ इन को

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सत्कार से रक्खें । इनको अच्छे पदार्थ भोजन करावें ताकि ये बलिष्ठ होके अच्छे प्रकार रक्षा कर सकें * अब आप विचारें कि यह रक्षा क्या मृत पुरुष कर सकते हैं ? नहीं । इस से भी जीवित श्राद्ध सिद्ध होता है ।

पितृगण और पितृप्रसू (सन्ध्या)

शब्द कल्पद्रुम कोश में लिखा है कि—

"पितृप्रसूः । स्त्री । पितॄणां प्रसूर्मातेव पितृकृत्ये सन्ध्यावर्तिन्यास्तिथे र्ग्राह्यत्वादस्याः प्रसूतुल्यपालकतया तथात्वम् । सन्ध्या"

सन्ध्याकाल का नाम पितृप्रसू है क्योंकि पितृकृत्य में सन्ध्याकाल तक रहनेवाली तिथि का ग्रहण होता है इस कारण मानो माता के समान यह सन्ध्या पितरों की रक्षा करती है । पुनः—

ततो निगृह्येन्द्रियकं विकारं चतुराननः । जिघृक्षुरपि तत्याज तां सन्ध्यां कामरूपिणीम् ॥ तच्छरीरात्तु घर्म्माम्भो यत् पपात द्विजोत्तमाः । अग्निष्वात्ता बर्हिषदो जाताः पितृगणास्ततः ॥ भिन्नाञ्जननिभाः सर्वे फुल्लराजीवलोचनाः । नितान्तसंयताः पुण्याः संसारविमुखाः परे ॥ सहस्राणां चतुःषष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्तिताः । षडशीतिसहस्राणि तथा बर्हिषदो द्विजाः ॥

---

* यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि पूर्व समय में अपनी रक्षा सब कोई अपने आप ही कर लेते थे । जो युवक बलिष्ठ निर्भय वीर पुरुष होते थे वे ऐसे २ कार्य्य में नियुक्त किए जाते थे । ये भी रक्षक होने के कारण पितर कहाते थे । पितृशब्द पर इन सबों का उदाहरण देखिये ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुनः इसी शब्दकल्पद्रुम में पितृयज्ञ शब्द पर कालिकापुराण के श्लोक उद्धृत हैं। भाव यह है कि तब चतुरानन ब्रह्माजी इन्द्रियों को रोक पकड़ने की इच्छा करते हुए भी उस कामरूपिणी सन्ध्या को छोड़ स्थिर हुए। उस सन्ध्या के शरीर से गरम जल पृथिवी पर गिरा। उस से हे द्विजोत्तमो ! अग्निष्वात्त और बर्हिषद आदि पितृगण उत्पन्न हुए। वे अंजन के समान काले पुष्पित रक्तकमल के सदृश नयनवाले हैं और नितान्तसंयमी पवित्र और संसारसुख-विमुख हैं। अग्निष्वात्त पितरों की ६४ चौंसठ सहस्र और बर्हिषद पितरों की ८६ सहस्र संख्या है। इस से सिद्ध है कि कालिकापुराण के अनुसार पितरों की माता का नाम सन्ध्या है और वह स्त्री है जिस पर ब्रह्माजी मोहित हुए थे परन्तु विष्णुपुराण प्रथमअंश पंचमाध्याय में लिखा है कि—

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्। पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥ उत्ससर्ज पितॄन् सृष्ट्वा तत-स्तामपि स प्रभुः। साघोत्सृष्टा भवत्सन्ध्या दिननक्तान्तरस्थितिः॥

तब ब्रह्माजी ने दूसरी सात्विकी तनु को धारण किया तब मनन करते हुए ब्रह्माजी की तनु (शरीर) से पितर उत्पन्न हुए। तब पितरों को सृजन करके उस तनु का भी त्याग किया वह तनु उत्सृष्टा होने पर सन्ध्या होगई जो दिन रात के बीच में रहती है।

विष्णुपुराण का आशय यह कि ब्रह्माजी ने जिस तनु से पितृगणों का सृजन किया वही तनु सन्ध्या बन गई इस कारण सन्ध्याकाल का नाम पितृप्रसू है।

वायु पुराण कहता है कि—

पितृवन्मन्यमानस्तु पुत्रान् प्राध्यायत प्रभुः।
स पितॄनुपपक्षाभ्यां रात्र्यह्नोरन्तरेऽसृजत् ॥

पुत्रोत्पत्ति के लिये मनन करते हुए ब्रह्माजी ने दोनों उपपक्षों से रात और दिन के अन्तर अर्थात् सन्ध्याकाल में पितरों का सृजन किया। इस से सिद्ध होता है जिस हेतु सन्ध्याकाल में पितरों की उत्पत्ति हुई है अतः उस का नाम पितृप्रसू है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आप इसे देखते हैं कि सब ग्रन्थ इस 'पितृप्रसू' शब्द को भिन्न २ प्रकार से वर्णन करते हैं। कोई कहता है कि सन्ध्या एक देवी थी जिस के घर्म्मोदक (गरम जल) से पितर सृष्ट हुए। कोई कहता है कि ब्रह्मा ने जिस तनु को धारण कर पितरों को सृजन किया वह पीछे सन्ध्या होगई, कोई कहता है कि सन्ध्याकाल में पितरों को उत्पन्न किया इस हेतु इसे पितृप्रसू कहते हैं। किसी का मत है कि पितृश्राद्ध की तिथि सन्ध्याव्यापिनी लीजाती है इस हेतु पितृप्रसू कहते हैं। परन्तु विचारशील-पुरुषो ! इन लेखकों ने पितृप्रसू शब्द के यथार्थ अभिप्राय को नहीं समझा है। यदि समझे हुए रहते तो इस प्रकार परस्पर विरोध नहीं रहता। अमरकोष कहता है कि "प्रभातं च दिनान्ते तु सायं सन्ध्या पितृप्रसूः" दिनान्त सायम् सन्ध्या और पितृप्रसू ये चार नाम सन्ध्याकाल के हैं इन प्रमाणों से सिद्ध है कि पितृप्रसू यह नाम सायंकाल का है इस में सन्देह नहीं। " पितॄन् प्रसूते उत्पादयति या सा पितृप्रसूः " पितरों को जो उत्पन्न करे उसे पितृप्रसू कहते हैं यही इसका शब्दार्थ भी है। अब प्रश्न होता है कि यथार्थ में सायंकाल को पितृप्रसू क्यों कहते हैं? इसका समाधान भी सरल है। संध्या का एक नाम दोषा और प्रदोषा भी है (यहां सन्ध्या शब्द उपलक्षक है अतः सन्ध्या शब्द से सम्पूर्ण रात्रि का ग्रहण है) भाव यह कि सन्ध्या होते ही अनेक दोष आने लगते हैं चोर डाकू विचारने लगते हैं कि अब हमारे विनोद का समय आया। लम्पट जीव प्रसन्न होने लगते हैं कि अब हमारे भोगविलास का मुहूर्त आरहा है। इस प्रकार चोर लम्पट आदि दुष्ट जीव तो प्रसन्न होते हैं परन्तु सज्जन गृहस्थ घबड़ाते हैं इस रात्रि को कौनसी विपत्ति आवेगी कौन हमारे सन्तान पशु गृह धन धान्य की रक्षा करेंगे एक ओर तो दुष्ट मनुष्य दूसरी ओर व्याघ्र वृक आदि हिंस्रक पशु उपद्रव करनेवाले हैं इस प्रकार गृहस्थाश्रम में अनेक आपत्ति आने की संभावना के कारण सन्ध्या का नाम दोषा होता है। यजुर्वेद के प्रथम ही मंत्र में प्रार्थना आती है कि "मा वस्तेन ईशत" "यजमानस्य पशून् पाहि" स्तेन अर्थात् चोर डाकू तुम्हारे चुराने में समर्थ न होवें। हे भगवन् ! यजमान के पशुओं की रक्षा करो। इत्यादि अनेक कारणों से रात्रि में रक्षा की बड़ी आवश्यकता आ पड़ती है अब आप समझ सकते हैं कि सन्ध्याकाल को क्यों

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितृप्रभू कहते हैं । ज्योंही सन्ध्या हुई त्योंही सब रक्षकगण अपने २ नियुक्त स्थान पर पहुंच जाते हैं । चारों तरफ पितर ही पितर दीख पड़ने लगते हैं रक्षा के लिये सब पितृगण कटिबद्ध होजाते हैं इस हेतु इस सन्ध्या का नाम ही पितृप्रभू होगया है यह सन्ध्या, मानो, पितरों और रक्षकों को उत्पन्न कररही है यह शब्द ही बतलाता है कि जीवित पुरुषों का ही श्राद्ध होता है मृतकों का नहीं ।

पितृगण और दक्षिणायन ॥

इसी प्रकार जब आषाढ़ मास से सूर्य दक्षिण दिशा की ओर लौटता हुआ भासित होता है । तब भी रक्षा की बड़ी आवश्यकता होने लगती है । क्योंकि प्रथम तो वर्षा के आरम्भ के कारण गृहस्थ लोग अपने २ क्षेत्र कार्य में तत्पर हो जाते हैं इस हेतु इनके गृह प्रायः मनुष्यों से शून्य हो जाते हैं । यदि रहते भी हैं तो वे ही असमर्थ स्त्रीगण और बालकगण आदि । पुनः क्षेत्रजीवी पुरुषों को यथायोग्य क्षेत्रभाग मिल जाय परस्पर युद्ध न हो एक दूसरे के अधिकृत क्षेत्र न दबा ले । सब लोग यथासम्भव क्षेत्र करें ऐसा न हो कि आलसी वा दुष्ट पुरुष इस समय अपनी जीविका के लिये खेत न करें पीछे लूटमार मचा के प्रजाओं में उपद्रव मचावें । एवं यथासम्भव सर्वत्र जल के आने जाने का सुप्रबन्ध, खेतों का बांध, बीज बैल आदिकों की आयोजना और जहां अधिक पानी हो जाय वा नदियों की बाढ़ आजाय वहां से पानी के निकास के लिये उपाय सोचना आदि सहस्रशः कर्त्तव्य उपस्थित होते हैं ये सब कार्य इन्हीं पितरों को सौंपे जाते थे । अब पुनः शरद्ऋतु आश्विन से आरम्भ होती है इसमें अनेक प्रकार के रोग फैलना आरम्भ हो जाते हैं इसी हेतु वेदों में "जीवेम शरदः शतम्" का पाठ बहुत आता है । ज्वर, हैजा आदि का बड़ा प्रकोप होता है । इस कारण इस ऋतु में और भी पितरों (रक्षकों) की आवश्यकता बढ़ जाती है इस हेतु विशेष रूप से इस ऋतु में पितृगणों का सत्कार कहा गया है और यह भी ध्यान रखना चाहिये कि जो वृद्ध पितर वन में हैं उन की सेवा वर्षा और क्षेत्रकार्य के कारण उतनी नहीं हो सकती । इन चतुर्मासों में आवागमन भी बन्द सा हो जाता है जो जहां हैं वे प्रायः वहां ही बस रहते हैं अब शरद्ऋतु आई । आश्विन में मेघ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

झर गया आकाश निर्मल जल भी स्वच्छ और अमल हो गया। रास्ता पन्थ खुलगया अन्न भी अनेक प्रकार के हो गये और अनेक प्रकार के होने वाले हैं इत्यादि अनेक कारणवश अब पुनः पितृसेवा-सुश्रूषा का उचित समय प्राप्त हु ।। इस हेतु भी इस आश्विन मास में विशेषरूप से पितृश्राद्ध का वर्णन है। हे विवेकिपुरुषो ! इत्यादि भावों को विचार स्थिर कीजिये कि ये सब बातें जीवितों वा मृतकों में घट सकती हैं ?

शङ्कासमाधान—यदि कोई कहै कि पूर्वोक्त निर्णय समुचित नहीं क्योंकि तिथि वा मास वा अयन एक न एक सुविधा के लिये नियत करना ही पड़ता पुनः उस में भी ऐसी ही शङ्का हो सकती थी कोई तिथि रक्खें सब में यह सन्देह उत्पन्न हो सकता है कि ऐसा क्यों ? समाधान। यहां आप देखते हैं कि केवल सुविधा ही प्रयोजन नहीं। क्या कभी पितरों के लिये शुक्लपक्ष में वा उत्तरायण में कोई तिथि सुविधा की नहीं होती। यहां विशेषता सर्वत्र पाई जाती है यह विशेषता अवश्य किसी विशेष प्रयोजन के लिये है अन्यथा "जब २ सुविधा हो तब २ पितृयज्ञ करलो" ऐसा कहा जाता परन्तु सो नहीं कहा। और मन्द जन भी प्रयोजन विना कार्य आरम्भ नहीं करता फिर प्राचीन वेदतत्त्ववित् ऋषियों ने दक्षिणायन आदि समय के गुरुतर आरम्भ से क्या केवल सुविधा ही प्रयोजन देखा। ऐसा नहीं। गंभीराशय ऋषियों का अवश्य उन नियमों से गंभीर आशय था जैसा कि मैंने वर्णन किया। इति। यदि कोई कहे कि अमावास्या तिथिमासान्त होने के कारण उस मास के आदरार्थ यह नियम बांधा है और यह भी नहीं कि इसमें केवल पितृयज्ञही हो अन्यान्य नहीं। दर्शपौर्णमास यज्ञ में सर्व कर्म किये जाते हैं इसके अतिरिक्त प्रत्येक पितृकार्य में देवकार्य किये जाते हैं। समाधान। प्रथम तो यदि मासान्त का मुख्य विचार होता तो चन्द्रमास की अपेक्षा सौरमास बहुत प्रसिद्ध है और भारतवर्ष में अभी तक जितनी गणना सौरमास के अनुसार की जाती है उतनी चन्द्रमास के अनुसार नहीं। तब प्रत्येक संक्रांति के दिवस में ही अधिक विधि होती सो नहीं है। अतः अमावास्या कुछ विशेष भाव रखती है जैसा कि मैंने वर्णन किया है। और यह आधुनिक सिद्धांत भी है कि पितृकार्य में जो देवकार्य किया जाता है वह पितृकार्य की सहायता के लिये ही होता है। और पूर्णिमा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और दर्श (अमावास्या) में जो क्रमसे देव और पितर की ही विशेषता होती है। जो गृहस्थ केवल साधारण हवन करते हैं उसमें किसी की विशेषता नहीं इत्यादि अनुसंधान करना। मैंने यहां संक्षेप से प्रश्नोत्तर की परिपाटी दिखा दी है। वेदों के द्वारा ही आप सब कुछ स्थिर करें यही मेरा वारम्वार उपदेश है ॥

इति दक्षिणायनादि समय निरूपण प्रकरणं समाप्तम् ॥

पितृगण और स्वधा शब्द ॥

वेदों से लेकर लौकिक ग्रन्थ तक पितरों के सम्बन्ध में स्वधा शब्द के बहुत प्रयोग देखते हैं। जैसे देवपूजा सम्बन्धी "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। सोमाय पितृमते स्वाहा"। यजुः २। २८ ॥ "अग्नये स्वाहा। इन्द्राय स्वाहा। सोमाय स्वाहा" इत्यादि वाक्यों में स्वाहा शब्द वैसे ही पितृपूजा में "पित्रे स्वधा" "पितामहाय स्वधा" "प्रपितामहाय स्वधा" देखते हैं। इस कारण इस शब्द का यदि यथार्थ तात्पर्य्य प्रतीत हो जाय तो श्राद्ध का निर्णय कठिन नहीं होगा। वेदों में कहा गया है कि—

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।
पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः।
प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। यजु०१९।३६॥
ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये।
तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्॥यजु०१९।४५॥
"अस्मिन् यज्ञे स्वधया मादयन्त" ॥ १९। ५८ ॥
ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ॥ १९। ६० ॥ स्वधां पितृभ्यः। १९। ८७ ॥

इत्यादि वेदों में पितरों के साथ "स्वधा" शब्द के अनेक प्रयोग देखने में आते हैं। आगे भी अनेक प्रयोग अर्थसहित और इनके अर्थ लिखे जायंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वधा पितृभ्यः पृथिवीषद्भ्य इति प्रथमं पिण्डं निदध्यात्।
स्वधा पितृभ्योऽन्तरिक्षसद्भ्य इति द्वितीयम्० ।
स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्य इति तृतीयम्० ।
गोभिलीय गृह्यसूत्र चतुर्थ प्रपाठक तृतीय कण्डिका सू० १०॥

यहां भी पितृ शब्द के साथ स्वधा शब्द के उच्चारण की विधि पाते हैं। इसी प्रकार के नियम श्रौत सूत्रों में भी पाये जाते हैं।

मनु जी कहते हैं:—

स्वधास्त्वित्येव तं ब्रूयुर्ब्राह्मणास्तदनन्तरम् ।
स्वधाकारः पराह्याशीः सर्वेषु पितृकर्म्मसु । ३ । २५ ॥

भोजन के अनन्तर गमन के समय ब्राह्मण गण श्राद्धकर्त्ता से "स्वधास्तु" ऐसा कहें। क्योंकि सर्व-पितृ कर्म्मों में स्वधा शब्द का उच्चारण ही उत्तम आशीर्वाद है।

देवी भागवत में लिखा है:—

स्वधां संपूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत् ।
स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्यादहंमतिः ।
न भवेत् फलभाक् सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च ।

यत्नपूर्वक स्वधा को पूज तब श्राद्ध करे। जो निर्बुद्धि विप्र स्वधा को न पूज के श्राद्ध करता है। वह श्राद्ध तर्पण का फल नहीं पाता।

महाकवि कालिदास रघुवंश में वर्णन करते हैं:—

नूनं मत्तः परं वंश्याः पिण्डविच्छेद-दर्शिनः ।
न प्रकामभुजः श्राद्धे स्वधा-संग्रहतत्पराः ॥

भाव यह है कि दिलीप महाराज वसिष्ठजी से कहते हैं कि हे गुरो! निश्चय मेरे बाद मेरे वंशज पितृगण जो स्वधा के संग्रह करने में तत्पर हैं वे श्राद्ध में पूर्ण भाग नहीं पावेंगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमरकोश कहता है:—

स्वाहा देवहविर्दाने श्रौषट् वौषट् वषट् स्वधा ॥ ३ । ४ । ८॥

स्वाहा, श्रौषट्, वौषट्, वषट् और स्वधा ये पांचों शब्द देवों के हविर्दान में प्रयुक्त होते है ।

मुग्धबोध व्याकरण में कहा है कि:—"स्वाहाग्नये स्वधा पित्रे" अर्थात् अग्नि आदि देवों के साथ स्वाहा और पितरों के साथ स्वधा शब्द का प्रयोग होता है ।

वैयाकरण पाणिनि भी "नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलं वषट् योगाच्च" इस सूत्र से स्वधा के योग में चतुर्थी विधान करते हैं ।

इस प्रकार संस्कृत ग्रन्थों में स्वधा शब्द के प्रयोग बहुत हैं । वेदों में तो यह स्वधा शब्द अन्यान्य देवों के साथ भी प्रयुक्त हुआ है परन्तु वेदातिरिक्त ग्रन्थों में प्रायः पितृ-सम्बन्ध में ही इसके प्रयोग देखते हैं अतः इस का निश्चय भी करना आवश्यक है । प्रथम इस शब्द पर पुराणों की क्या सम्मति है सो सुनिये ।

स्वधा और देवी भागवत ॥

नारद शृणु वक्ष्यामि स्वधोपाख्यानमुत्तमम् । पितृणाञ्च तृप्तिकरं श्राद्धान्नफलवर्धकम् ॥ १ ॥ सृष्टेरादौ पितृगणान् ससर्ज जगतां विधिः । चतुरश्च मूर्त्तिमतस्त्रींश्च तेजःस्वरूपिणः ॥२॥ दृष्ट्वा सप्तपितृगणान् सुखरूपान् मनोहरान् । आहारं सस्रृजे तेषां श्राद्धं तर्पणपूर्वकम् ॥ ३ ॥····ब्रह्मा च मानसीं कन्यां सस्रृजे च मनोहराम् । रूपयौवनसम्पन्नां शतचन्द्रनिभाननां ॥ इत्यादि । स्वधाभिधाञ्च सुदतीं लक्ष्मीं लक्षणसंयुताम् ॥१२॥ पितृभ्यश्च ददौ ब्रह्मा तुष्टेभ्यस्तुष्टिरूपिणीम् । ब्राह्मणांश्चोपदेशं तु चकार गोपनीयकम् । स्वधान्तं मन्त्रमुच्चार्य्य पितृभ्योदेयमित्यपि । स्वाहा शस्ता देवदाने पितृदाने स्वधा स्मृता । इत्यादि देवी भागवत नवमस्कन्ध ४४ अ० १—१५ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ—नारायण नारद से कहते हैं कि स्वधा देवी का उपाख्यान मैं कहूंगा आप सुनें। यह पितरों का तृप्तिकर है और श्राद्ध के अन्नफल का वर्धक है। आगे उपाख्यान आरम्भ करते हैं। सृष्टि की आदि में ब्रह्मा ने चार मूर्त्तिमान् और तीन तेजः स्वरूपी इस प्रकार सात पितृगण * उत्पन्न किये उन सातों पितृगणों को सुखरूप और मनोहर देख उन के आहार के हेतु श्राद्ध और तर्पण सृष्ट किये। तदनन्तर ब्रह्माजी ने परमसुन्दरी, रूपयौवन-सम्पन्ना, शतचन्द्र-निभानना एक मानसी कन्या रची। उस का नाम "स्वधा" रक्खा जो सर्व लक्षणयुक्ता थी। उस कन्या को उत्पन्न कर प्रसन्नमूर्त्ति पितरों के साथ विवाह दिया और ब्राह्मणों को गोपनीय उपदेश दिया कि स्वधान्त मन्त्र अर्थात् मन्त्र के अन्त में स्वधा शब्द का उच्चारण करके पितरों को श्राद्धान्नादि देना उचित है। देवदान में स्वाहा और पितृदान में स्वधा प्रशस्त है। इत्यादि विस्तार से इस अध्याय में स्वधा का उपाख्यान वर्णित है। पुनः इसी अध्याय में कहते हैं।

स्वधां संपूज्य यत्नेन ततः श्राद्धं समाचरेत्। स्वधां नाभ्यर्च्य यो विप्रः श्राद्धं कुर्य्यादहंमतिः॥ न भवेत् फलभाक् सत्यं श्राद्धस्य तर्पणस्य च। स्वधा स्वधा स्वधेत्येवं यदि वारत्रयं स्मरेत्॥ श्राद्धस्य फलमाप्नोति वलेश्च तर्पणस्य च। इत्यादि।

प्रथम स्वधा को यत्न से पूज तब श्राद्ध करे। जो विप्र स्वधा की पूजा न करके श्राद्ध करता है उस को श्राद्ध और तर्पण का फल नहीं मिलता है। जो स्वधा शब्द को तीन वार उच्चारण करे उसको श्राद्ध, वलि और तर्पण का फल मिलजाता है।

इन प्रमाणों से सिद्ध है कि पितरों के साथ जिस स्वधा शब्द का उच्चारण होता है वह पुराण के अनुसार पितरों की सहधर्मिणी अर्थात् पत्नी है।

---

* टीकाकार लिखते हैं कि ये सात पितृगण हैं। कव्यवाहोनलः सोम्यो यमश्चैवार्य्यमा तथा। अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वधा और भागवत ॥

श्रीमद्भागवत भी यही कहता है ।

प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः । तस्यां ससर्ज दुहितॄः षोडशामललोचनाः ॥ त्रयोदशादाद्धर्म्माय तत्रैकामग्नये विभुः । पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥ श्रद्धा मैत्री दया शान्तिः तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः । बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्त्तिर्धर्मस्य पत्नयः । इत्यादि । भागवत ४ । १ ।

दक्ष जी का विवाह प्रसूति से हुआ । उससे सोलह कन्याएं उत्पन्न हुई । धर्म्म को त्रयोदश कन्याएं दीं । अग्नि को एक कन्या—स्वाहा और पितरों को एक कन्या स्वधा दी और रुद्र को भी सती कन्या दी । धर्म्म की पत्नियों के ये नाम हैं—श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, लज्जा और मूर्त्ति आगे पुनः इसी को विस्पष्ट करके कहते हैं यथाः—

अग्निष्वात्ताः बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ।
साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायिणी स्वधा ॥ भा० ४ । १ । ६३ ॥

अग्निष्वात्त, बर्हिषद, सौम्य, आज्यप, साग्नि और अनग्नि इत्यादि जो पितर हैं । इन सबों की पत्नी स्वधा है जो दक्ष की कन्या है ।

इससे भी यही सिद्ध है कि सब पितरों की स्त्री स्वधा है ऐसेही सब पुराण मानते हैं । परन्तु क्या इसका भाव यही है ? क्या जैसे मनुष्य की स्त्री होती है वैसे ही पितृगणों की स्त्री स्वधा है यह पुराणों का आशय है ? नहीं । आप देखेंगे कि पुराण प्रत्येक विषय को आख्यायिका अर्थात् कथा कहानीरूप में लिखता है । भागवत के इसी प्रकरण में कहा है कि अग्नि की स्त्री का नाम स्वाहा है । क्या सचमुच अग्नि की स्त्री स्वाहा है ? नहीं । अलंकाररूप में यह वर्णन है । आगे पुनः आप देखते हैं कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्म्म की १३ तेरह स्त्रियां कही गई हैं। क्या धर्म्म भी कोई पुरुष विशेष है कि जिसकी स्त्री कोई मूर्त्तिमती देवी है। फिर स्त्रियें कौन ? श्रद्धा, मैत्री, दया, शान्ति आदि। पौराणिक भाइयो ! आप लोग पुराणों का भी तात्पर्य नहीं समझते हैं और मुझे खेद के साथ कहना पड़ता है कि पुराणों के हृदय को समझने के लिये न तो आप स्वयं प्रयत्न करते हैं और न समझना चाहते हैं। भाइयो ! अब देश में अन्धकार मत फैलाओ कुछ भी तो सोचो विचारो।

आप देखते हैं कि पितर एक नहीं दो नहीं चार नहीं पांच नहीं किन्तु पितरों के गण कहे गये हैं। अग्निष्वात्त, बर्हिषद, सौम्य, आज्यप, साग्नि, अनाग्नि ये सब एक एक का नाम नहीं किन्तु ये सब गण हैं। हज़ारों लाखों हैं। फिर सब पितरों की एक स्वधा स्त्री कैसे हो सकती है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन मनुष्य मरते जाते हैं। इनके साथ भी आप स्वधा को लगा देते हैं फिर वह एक स्वधा लाखों कोटियों पुरुषों की स्त्री कल्प कल्पान्तर भर कैसे बनती जायगी। इसलिये इसका कुछ अन्यान्य भाव है यह आप को भी स्वीकार करना होगा। प्रथम देखिये शब्दकल्पद्रुम में "पिता" शब्द के ऊपर लिखा है कि:—

३१ एकत्रिंशत् पितृगणा यथा—विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्म्मो धर्म्मः शुभाननः। भूमिदो भूमिकृत् भूतिः पितृणां ये गणा नव ॥ कल्याणः कल्पदः कल्पतरः कल्पतराश्रयः। कल्पता हेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ॥ वरो वरेण्यो वरदो भूतिदः पुष्टिदस्तथा। विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणाः स्मृताः ॥ महान् महात्मा महितो महिमावान् महाबलः। गणाः पञ्च तथैवैते पितृणां पापनाशनाः ॥ सुखदो धनदो चान्यो धर्मदोन्यश्च भूतिदः। पितृणां कथ्यते चैतत् तथा गणचतुष्टयम् ॥ एकत्रिंशत् पितृगणा व्याप्तमखिलं जगत्। ते मेऽत्र तृप्तास्तुष्यन्तु दिशन्तु च सदा हितम् ॥ इति गारुड़े पितृस्तोत्रं ८६ अध्यायः ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गरुड़ पुराण में पितरों के ३१ इकत्तीस गण कहे गये हैं। वे ये हैं-विश्व, विश्वभुग्, आराध्य, धर्म्म, धन्य, शुभानन, भूमिद, भूमिकृत् और भूति ये ९ गण हैं। कल्याण, कल्पद, कल्पतर, कल्पतराश्रय, कल्पताहेतु और अनघ ये पितरों के ६ गण हैं वर, वरेण्य, वरद, भूतिद, पुष्टि, विश्वपाता और धाता ये ७ गण हैं। महान्, महात्मा, महित, महिमवान् और महाबल ये पितरों के ५ गण हैं। सुखद, धनद, धर्म्मद, और भूतिद ये चार गण हैं। ये पितरों के ३१ गण हैं जिनसे यह जगत् व्याप्त है। ये मेरे पितृगण तृप्त हो तुष्ट होवें और सदा हित का उपदेश करें। पुनः-

पितरों के इन ३१ इकत्तीस गणों की चर्चा मार्कण्डेय पुराण में भी समान ही है। इस के अतिरिक्त इस पुराण में पितृसम्बन्धी बड़ा लम्बा स्तोत्र है जिस में अनेक प्रकार के पितरों की चर्चा आती है उन के साथ "अग्निष्वात्ता बर्हिषदः आज्यपाः सोमपास्तथा। व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन् पितरस्तर्पिता मया" अग्निष्वात्त, बर्हिषद, आज्यप, सोमप इन चार गणों का भी वर्णन आया है। पुनः 'पितृयज्ञ' शब्द के ऊपर पितरों के अनेक गणों की चर्चा करते हुए शब्दकल्पद्रुम कहता है कि:-

सहस्राणां चतुः षष्टिरग्निष्वात्ताः प्रकीर्त्तिताः।
षडशीतिं सहस्राणि तथा बर्हिषदो द्विजाः॥

हे द्विजो! अग्निष्वात्त पितर ६४ चौसठ सहस्र हैं और बर्हिषद पितर ८६ सहस्र हैं।

ये दो गणों की संख्याएं दी गई हैं। आप अनुमान कर सकते हैं कि अन्यान्य गणों की मिला के कितनी संख्या होगी। इन सब गणों की एक स्वधा स्त्री कैसे हो सकती है। इस कारण 'स्वधा' शब्द का कुछ अन्य अर्थ अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा।

स्वधा शब्द का वास्तविक अर्थ॥

जैसे विद्वानों की पदवी आचार्य्य, उपाध्याय, पाठक, गुरु आदि, वीरों की पदवी महावीर, योद्धा, बहादुर, देवेन्द्र, नरेन्द्र इत्यादि होती हैं वैसे ही पितरों की सामान्य पदवी 'स्वधा' है और विशेष पदवी अग्निष्वात्त बर्हिषद आदि हैं। (क) स्व

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् ज्ञाति, धन, आत्मा, आत्मीय इत्यादि और धा माने धारण । जिस शक्तिके द्वारा स्वीय कुल परिवार, धन, धर्म्म, कर्म्म, देश देशान्तर का अच्छे प्रकार धारण, पोषण, रक्षण हो उसे " स्वधा " कहते हैं । यही शब्दार्थ है वेदों में प्रायः स्वधा शब्द स्त्रीलिङ्ग है * । अब पितरों के साथ यह क्यों जोड़ा जाता इस में ये कारण हैं जो लोग, हरेक प्रकार से, अर्थात् विद्याप्रदान से, पुत्रोत्पादन से, युद्धादिक व्यापारों से, परोपकार करने से और अनेक प्रकार की रक्षण भरण पोषणादि से मनुष्यों को लाभ पहुंचाया करते थे, वे भी पितृसंज्ञक होते थे और ऐसे ही पुरुषों को 'स्वधा' की पदवी दी जाती थी क्योंकि इन में स्वधा शब्दार्थ यथार्थ रीति से घटता था । (ख) दूसरा अर्थ स्वधा शब्द का अन्न और जल है । जैसे जगत् के जीवों को अन्न और जल भरण पोषण करता है इसी प्रकार जो देश को अन्न के समान पालन करता है उसे भी स्वधा पदवी दीजाती । ऐसे महापुरुष पितृगण ही होते थे इस कारण भी पितरों को स्वधा पदवी दीगई थी । (ग) तीसरा अर्थ स्वधा का स्वभाव स्वधर्म्म आदि कहे हैं । अर्थात् मनुष्यता जैसी होनी चाहिये वैसी मनुष्यता के साथ जो विद्यमान होते थे वे भी स्वधा ग्रहण योग्य थे । पितृगणों में ये भी गुण वर्त्तमान थे क्योंकि जिस में मनुष्यता न हो वह कब सम्भव है कि हरेक प्रकार से देश की रक्षा के लिये उद्यत होसके । यह भी कह चुके हैं कि जिन्होंने विधिपूर्वक प्रथम ब्रह्मचर्य्य धारण करके वेदाध्ययन किया है और तत्पश्चात् गार्हस्थ्य धर्म्मावलम्बी हो पैत्रिकऋण शोधनार्थ पुत्र उत्पन्न किये हैं और पश्चात् पुत्र पौत्र के मुख को और आयु की ह्रासता को देख जो वनी अर्थात् वानप्रस्थाश्रमी हो जाते थे जिन की आयु दिन दिन घटती चली जाती थी ऐसे लोग भी पितृसंज्ञक होते थे । इनके लिये भी स्वधा शब्द का प्रयोग था । क्योंकि वे पितृगण विद्याध्ययन से ऋषिऋण को पुत्रोत्पादन से पितृऋण को और विविधयज्ञ

* लौकिक संस्कृतभाषा में जो स्वधा शब्द पितृवाचक शब्दों के साथ जोड़ा जाता है वह नमः, स्वाहा, स्वस्ति आदि के समान अव्यय है और "नमः स्वस्ति स्वाहा स्वधाऽलं वषट्योगाच्च" इस सूत्र से स्वधा के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है जैसे पित्रे स्वधा, पितामहाय स्वधा, अग्निष्वात्ताय स्वधा इत्यादि ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से देवऋण को मार्जन करते हैं अतः स्वधा हैं । और भी वृद्धावस्था होने के कारण इन को भरण पोषण की बड़ी आवश्यकता थी । इस हेतु से भी उपदेश दिया गया है कि पितरों के स्वधा अर्थात् अन्न दिक पदार्थों से प्रसन्न करो । इत्यादि अनेक कारणों का अनुसंधान आप कर सकते हैं इस प्रकार मर्माण करने से पता लग जायगा कि पितृगणों के साथ स्वधा का इतना प्रयोग क्यों था । अब आगे विस्तार से वर्णन करते हैं जिससे निखिल संशय दूर हो जायगा । बड़ी सावधानता से श्रवण कीजिये ।

स्वधा शब्द का पहिला अर्थ–स्वभाव, प्रकृति, स्वधारणशक्ति, स्वधारण, स्वधर्म्म आदि । दूसरा–अन्न, जल, ऋतु, पृथिवी आदि । तीसरा–अपने कुल परिवार आदि का धारण पोषण करनेवाला । इत्यादि ' स्वधा ' में 'स्व+धा' दो शब्द हैं । १–स्व=स्वो ज्ञातावाऽऽत्मनि स्वं त्रिष्वात्मीये स्वोऽस्त्रियां धने । अमरकोश । ज्ञाति, आत्मा, आत्मीय और धन ये चार अर्थ स्वशब्द के हैं ।

स्वमज्ञातिधनाख्यायाम् ॥ पाणिनि सूत्र १ । १ । ३५ ॥

इस सूत्र से सिद्ध है कि स्व शब्द ज्ञाति और धन अर्थ में आता है और इसके अतिरिक्त अन्य अर्थ में भी आता । कोश से प्रतीत होता है कि इसके चार अर्थ प्रसिद्ध हैं । धा=डुधाञ् धारणपोषणयोः । दानेप्येके । धा धातु धारण और पोषण अर्थ में आता है । कोई आचार्य्य कहते हैं कि दान अर्थ में आता है ।

स्वधा और प्रकृति आदि—"स्वं स्वकीयम् अस्तित्वं दधाति धारयतीति स्वधा प्रकृतिः" जो अपने अस्तित्व को धारण करे उसे स्वधा कहते हैं । प्रकृति वा स्वभाव अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ता है अतः प्रकृति का नाम स्वधा है । इस कारण पदार्थों के धर्म्म गुण वा स्वभाव का नाम ही स्वधा है ।

स्व+धा=स्व+धारणम् । निज का धारण इत्यादि अर्थ भी होगा ।

स्वधा और अन्न—२ स्वान् दधातीति स्वधा अन्नम् । स्वधा नाम अन्न का है क्योंकि शास्त्र में कहा गया है कि चराचर जीवों का शरीर अपने २ अन्न से बना है क्योंकि अन्न के खाने से रज वीर्य्य उस से यह शरीर बनता है । इस हेतु शरीर मानों

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अन्न का सन्तान है इस शरीर रूप सन्तान को अन्न ही पालता है अतः अन्न का नाम स्वधा है। इस अन्न के समान जो लोग अपने परिवार, ग्राम, देश, वेद, धर्म्म आदि की रक्षा करते हैं वे भी स्वधा हैं। ३—स्वं ज्ञातिं धनम् आत्मानम् आत्मीयञ्च दधाति पुष्णातीति स्वधाः। जो आदमी ज्ञाति अर्थात् कुल, परिवार, धन, आत्मा और आत्मीय अर्थात् निज सम्बन्धी, धर्म्म, कर्म्म, देश आदि की रक्षा करता है वह "स्वधा" है इस अर्थ में विशेषण होजाता है अथवा "स्वे धीयन्ते ध्रियन्ते पोष्यन्ते यया सा स्वधा" जिस शक्ति से आत्मा निजबन्धु, बान्धव, ग्राम देश आदि की रक्षा हो। उस शक्ति का नाम स्वधा है।

स्वधा और स्वाहा ॥

स्वधा शब्द के अर्थ की परीक्षा अन्य प्रकार से भी कर सकते हैं वह यह है। आप देखते हैं कि पितर और देवों का वर्णन परस्पर रात दिन अथवा प्रकाश और अन्धकार के समान विपरीत है। १—देवों का वास उत्तर परन्तु पितरों का दक्षिण। २—देवों का पक्ष शुक्ल परन्तु पितरों का कृष्ण। ३—देवों की पूजा पूर्णिमा में परन्तु पितरों की अमावास्या में देवों का समय दिन परन्तु पितरों का रात्रि। देवों का पूर्वाह्ण परन्तु पितरों का अपराह्ण। ४—देवों की गति—अर्चि (ज्वाला) दिन शुक्लपक्ष, उत्तरायण सूर्य्य आदि परन्तु पितरों की गति, धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन चन्द्र आदि। ५—देवों का सव्य और पितरों का अपसव्य। इत्यादि अनेक प्रकार के वर्णन शास्त्रों में परस्पर विपरीत पाये जाते हैं। इस कारण "स्वधा" और "स्वाहा" भी विपरीत अर्थ रखनेवाले होने चाहियें क्योंकि स्वधा शब्द का पितरों के साथ और स्वाहा शब्द का देवों के साथ प्रयोग हुआ करता है यह व्याकरण आदिकों का नियम है। "स्वाहा" शब्द के अर्थ यद्यपि अनेक हैं तथापि स्व-याग अर्थ प्रत्यक्ष है। क्योंकि जब कोई देव-कर्म्म के निमित्त वस्तु अग्नि में त्यागते हैं तब 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करते हैं अग्नये स्वाहा इत्यादि। व्युत्पत्ति करने से भी यही अर्थ प्रतीत होता है "स्वस्य आसमन्ताद् हा—हानं त्याग इति स्वाहा अथवा स्वमाहीयते आत्यज्यते अनेन ओहाक् त्यागे" जिस कर्म्मके द्वारा निज धनादिका त्याग हो उसे 'स्वाहा' कहते हैं। स्व+आ+हा इस में तीन शब्द हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जिस कारण 'स्वाहा' शब्द का अर्थ स्व-याग मुख्य है अतः इसके विपरीत 'स्वधा' शब्द का 'स्वधारण' अर्थ करना उचित होगा। यही अर्थ पितरों के साथ घटता भी है 'पितृ' शब्दार्थ रक्षण पालन प्रसिद्ध है। जिस कर्म से वा जिस शक्ति से पितरगण स्व अर्थात् अपने आत्मा अपने आत्मीय गुण, आत्मीय ग्राम, देश, बन्धु, बान्धव, विद्या आदि की रक्षा करें उसे स्वधा कहते हैं। इस हेतु पितरों की स्वधा यह साधारण पदवी अर्थात् सर्वगामी पदवी है और अग्निष्वात्त, बर्हिषद, सोमसद, आज्यप, भृगु, आङ्गिरा आदि विशेष पदवी हैं। पितर कितने प्रकार के हैं इस को आगे कहेंगे। अब आप विचार कर सकते हैं कि यथार्थ में पितरोंके साथ इतना स्वधा क्यों लगा हुआ है। पितरों के साथ स्वधा शब्द के प्रयोग का मुख्य कारण यही है गौण कारण का भी आगे वर्णन करेंगे परन्तु पुराण यह नहीं समझ के कहता है कि स्वधा पितरों की स्त्री है।

पितृगण और अन्नवाचक स्वधा ॥

आगे उदाहरणों से आप को मालूम होगा कि प्रायः आचार्यों ने स्वधा शब्द का अर्थ अन्न भी किया है। प्रश्न होता है कि पितरों के साथ अन्न की चर्चा इतनी क्यों? क्या पितरों को अन्न नहीं मिलता था या जैसे आधुनिक पौराणिक कहते हैं कि यहां से पुत्रों के द्वारा भेजे हुए अन्न स्वर्गादिक स्थानों में पितरों को प्राप्त होते हैं अन्यथा पितर भूखों मरते हैं। इस कारण क्या अन्न की अधिक चर्चा है। यह द्वितीय बात इस कारण सत्य नहीं हो सकती है कि जो जीव जहां हैं वहां ईश्वर ने उन के खाने पीने का प्रबन्ध किया है और यदि पितृगण मनुष्यों के आधीन होते तो उनके साथ मनुष्यों का कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता अथवा जिन पितरों के यहां से अन्न नहीं मिलता है वे यहां आ अपने सन्तानों को कुछ कहा सुना करते। आगे इस मत का विस्तार से वर्णन करेंगे। अब प्रथम बात रह गई कि पितरों को साथ अन्न ही अन्न क्यों लगे हुए हैं। इसमें सन्देह नहीं कि यह पितर और अन्न का सम्बन्ध ही सूचित करता है कि यह यज्ञ जीवित पितरों का है। एवमस्तु। इसके स्वाभाविक दो कारण हैं। यह निकृष्ट पुरुषों का स्वभाव है कि वृद्ध होने पर अपने माता पिता की सेवा नहीं करते हैं आप देखते

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं कि जब आदमी वृद्ध हो जाता है तब कमाकर खाने में असमर्थ हो जाता है यहां तक कि मल मूत्र भी उठ के नहीं कर सकता है, सारी शारीरिक दशा शिशुवत् हो जाती है। इस समय दूसरों की सहायता की बडी आवश्यकता होती है इस हेतु बारम्बार वेद चिताता है कि ऐ मनुष्यो ! ऐसे वृद्धतम पितरों की अन्नादिक से खूब सेवा शुश्रूषा करो अन्यथा तुम्हारी गति अच्छी नहीं होगी। ये वृद्धगण इस अवस्था में तुम्हारी सहायता की आकांक्षी बन रहे हैं इनकी अवहेला मत करो इनकी शक्तिको स्थिर रखने के लिये सुन्दर सुन्दर खाद्य पदार्थ दो इसी से ये प्रसन्न हो के तुम्हें आशीर्वाद देंगे। एक तो यह कारण था दूसरा कारण यह है। मैं प्रथम कह चुका हूं कि पितृ शब्दार्थ रक्षक भी है। अब इस बात का ध्यान रक्खें कि जो पुरुष देश की रक्षा में सब प्रकार से लगे हुए हैं वे स्वयं खेत वा व्यापार वा किसी एक की नौकरी भी नहीं कर सकते हैं। इन के खान पान के प्रबन्ध भी वे ही देशवासी रक्षकपुरुष करेंगे तब ही वे भी रक्षा करने में समर्थ होवेंगे। इस कारण वेद उपदेश देता है कि ऐसे रक्षकों को, ऐ मनुष्यो ! स्वधा अर्थात् अन्नादिक से पूर्ण सत्कार करो तभी तुम्हारा हित है। अब आप विचार सकते हैं कि पितरों के साथ अन्न इतना क्यों लगा हुआ है और यह जीवितों में या मृतकों में घटता है।

स्वधा और ऋचाएं ॥

आदह स्वधा मनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ १ । ६ । ४ ॥

(आत्+अह) अनन्तर (यज्ञियम्+नाम+दधाना) यज्ञिय अर्थात् प्रशंसनीय जल को धारण करते हुए मरुद्गण (पुनः) फिर (स्वधाम्+अनु) अपने स्वभाव के अनुसार (गर्भत्वम्+एरिरे) मेघ में गर्भ की प्रेरणा करते हैं अर्थात् जल बनाना आरम्भ करते हैं। आद्+अह=अनन्तर अर्थ में ये दोनों शब्द निपातसंज्ञक हैं। ईर् गतौ, कम्पने च। आ+ईर् से एरिरे बनता है। नाम=जल। निघण्टु। १। १२ ॥ स्वधा=स्वधा का अर्थ यहां स्वभाव=प्रकृति है। इस सामुद्रिक वायु का प्रतिवर्ष आने का स्वभाव है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव=ग्रीष्मऋतु के अनन्तर अपने स्वभाव के अनुसार प्रतिवर्ष सामुद्रिक वायु चलना आरम्भ होता है जिसके कारण से आकाश में मेघ बन जाता है । स्वामी जी यहां स्वधा का अर्थ जल करते हैं । रमेशचन्द्रदत्त इस ऋचा का अर्थ यों करते हैं:- "ताहार पर (मरुद्गण) यज्ञार्ह नाम धारण करिया, स्वीय प्रकृति अनुसारे मेघेर मध्ये जलेर गर्भाकार रचना करिलेन" इनके मत से भी स्वधा का अर्थ प्रकृति अर्थात् स्वभाव है। सायण यहां स्वधा शब्दका अर्थ अन्न और जल करते हैं। "स्वयां स्वं लोकं दधाति पुष्णातीति स्वधा सायणः" जो अपने लोक को धारण पोषण करे उसे स्वधा कहते हैं ।

अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः ।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यञ्चिक्युर्न निचिक्युरन्यम्॥

यह जीवात्मा और शरीर का वर्णन है (मर्त्येन+सयोनिः) मर्त्य=विनश्वर शरीर के साथ समान स्थान वाला अर्थात् शरीर के साथ निवास करने वाला वह (अमर्त्यः) अविनश्वर जीवात्मा (स्वधया+गृभीतः *) अपने स्वभाव से गृहीत होके कभी दुष्कर्म से (अपाङ्+एति) नीचे अथवा उलटा जाता है और कभी सुकर्म से (प्राङ्+एति) ऊपर अथवा सीधा जाता है । अब आगे दोनों को साथ वर्णन करते हैं। वे दोनों मर्त्य और अमर्त्य कैसे हैं । (ता+शश्वन्ता) प्रवाहरूप से सर्वदा रहनेवाले अथवा अविभागरूप से सदा वर्त्तमान पुनः (विषूचीना) इस लोक में सर्वत्र गमन करनेवाले पुनः (वियन्ता) उस २ फल के भोग के लिये सर्वत्र गमन शील ऐसे दोनों हैं (अन्यम्+नि+चिन्युः) इन दोनों से में वे अज्ञानीजन अन्य अर्थात् शरीर को जानते हैं परन्तु (अन्यम्+न+निचिक्युः) दूसरे जीवात्मा को नहीं जानते हैं । यहां विस्पष्ट प्रतीत होता है कि 'स्वधा' शब्द का अर्थ प्रकृति अर्थात् स्वभाव है । अपनी प्रकृति के वश हो यह जीवात्मा सुकर्म और दुष्कर्म करता है । अतः कहा गया है कि "स्वधया गृभीतः" वह स्वधा अर्थात् स्वभाव से गृहीत है । स्वामीजी-स्वधया जलादिना । जल

* वेदों में गृहीत को ही गृभीत कहते हैं ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आदि अर्थ करते हैं। आदि पद से स्वभाव आदि का ग्रहण है। सायण–"स्वधया अन्नोपलक्षित-तत्तद्-भोगन गृभीतः। यद्वा स्वधा शब्देन अन्नमयं शरीरं लक्ष्यते तेन गृहीतः" कहते हैं कि स्वधा का अर्थ अन्नोपलक्षित भोग यद्वा अन्नमय शरीर है।

ग्रिफिथ–Back, forward goes he, grasped by strength inherent, the Immortal born the brother ef the mortal. Ceaseless they move in oppasite directions: men mark the one and fail to mark the other. यह सम्पूर्ण ऋचा का अनुवाद है इस के अनुसार भी स्वाभाविक गुण अर्थ स्वधा का है।

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥

ऋ० १० । १२९ । २ ॥

अर्थः–(न+मृत्युः+आसीत्) सृष्टि के प्रथम मृत्यु नहीं था (न+अमृतम्) और न अमृत ही था (तर्हि) और उस समय (रात्र्यः) रात्रि का और (अह्नः) दिन का (प्रकेतः) ज्ञान भी (न+आसीत्) नहीं था। तब क्या था सो आगे कहते हैं (स्वधया) प्रकृति के साथ (अवातम्) अप्राण अर्थात् वायु-रहित (तत्+एकम्) वही एक ब्रह्म (आनीत् *) प्राण धारण कर रहा था (ह) निश्चय (तस्मात्+ह+अन्यत्) उस ब्रह्म से अन्य (किञ्चन) कुछ भी (न+आस) नहीं था। कब ऐसी दशा थी सो कहते हैं (परः) सृष्टि के प्रथम।

यह ऋचा सृष्टि की उत्पत्ति की पूर्व दशा सूचित करती है। इस हेतु बड़े तर्क वितर्क और विवाद करते हुए सायण यहां स्वधा शब्द का अर्थ माया अर्थात् प्रकृति करते हैं इनका शब्द यह है यथा–"नन्वीदृशस्य ब्रह्मणः मायया सह सम्बन्धाभावात् सांख्याभिमता स्वतन्त्रा सद्रूपा सत्त्वरजस्तमोगुणात्मिका मूलप्रकृतिरेवाभिमतेति किं नो सदिति निषेधः। तत्राह। स्वधयेति। स्वस्मिन् धीयते ध्रियते आश्रित्य वर्त्तत इति स्वधा माया। तया तद्ब्रह्म एकम् अविभागापन्नमासीत्। इत्यादि। ग्रिफिथ का अनुवाद–

* आनीत्। श्वस प्राणने। अनच। प्राणनार्थक अन धातु से लुङ् का रूप।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

Death was not then, nor was there aught immortal: no sign was there, the day's and night's divider. That One Thing, breathless, breathed by own nature, apart from it was nothing whatsoever.

ग्रिफिथ के अनुसार स्वधा का अर्थ स्वाभाविक धर्म्म है । पुनः—

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥
१० । १५ । १२ ॥

(जातवेदः+अग्ने) हे सब को जानने वाले संदेशवाहक दूत ! (ईलितः) आप हम लोगों से सुपूजित हो (हव्यानि+सुरभीणि+कृत्वी) हव्य पदार्थों को सुगन्धित कर के (अवाट्) पितरों के समीप ले जायं और (पितृभ्यः+प्रादाः) पितरों को देवें । (स्वधया) स्वधर्म्म के साथ वर्त्तमान (ते) वे पितृगण (अक्षन्) उन हव्यों को खायं पश्चात् (त्वम्+देव) हे देव आप भी (प्रयता+हवींषि) प्रयत्नपूर्वक सम्पादित हविष्यों को (अद्धि) खायं ।

यहां आप देखते हैं कि वेद कहता है कि जो पितृगण स्वधा के साथ वर्तमान हैं । स्वधा अर्थात् स्वधर्म्म जो कभी अपने धर्म्म को नहीं त्यागते । इससे प्रतीत होता है कि स्वधा पितृपदवी है । सायण कहते हैं—"स्वधया स्वधाकारेण दत्तं हविः अक्षन् अदन्तु" स्वधाकार अर्थात् स्वधाशब्द का उच्चारण करके दिये हुए हवि को पितर खायं । स्वधाशब्दोच्चारण-पूर्वक पितरों को हवि क्यों दिया जाय ? यहां "स्वधा" का अर्थ अन्न नहीं हो सकता, क्योंकि अन्नवाचक हव्य और हविष शब्द विद्यमान है । इस हेतु विचारशील पुरुषों को तत्काल मालूम होगा कि 'स्वधा' पितृ-पदवी है । इस शब्द को सुन के देशाभिमानी, कुलाभिमानी मनस्वी पितरों को प्रसन्नता होती है ।

ग्रिफिथ—With swadha: with the sacrificial exclation with their allotted partion.

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नमो देवेभ्यः । स्वधा पितृभ्यः । सुयमे मे भूयास्तम् । य०२।७

देवों को=नवयुवक पुरुषों को नमः अर्थात् नम्रता प्राप्त हो । पितरों को स्वधा अर्थात् स्वधारणशक्ति और अन्नजलादिक प्राप्त हो । अथवा देव अर्थात् विद्वद्गणों को नमस्कार हो और पितरों अर्थात् रक्षकों को स्वधा अर्थात् स्वधारणशक्ति, स्वधर्म्म प्राप्त हो । हे देवशक्ति पितृ-शक्ति आप दोनों (मे) मेरे लिये (सुयमे) सुयत अर्थात् प्रयत्न वाली (भूयास्तम्) होवें । यहां विस्पष्ट प्रतीत होता है कि पितरों के लिये स्वधा की पदवी होनी चाहिये ।

नमो वः पितरः स्वधायै ॥ यजु० २ । ३२ ॥

(पितरः) हे पितृगणो ! (वः) आप लोगों को (स्वधायै) स्वधारण अर्थात् स्व रक्षा के लिये (नमः) धन्यवाद अर्थात् प्रशंसा है अथवा आप की जो स्वरक्षा-शक्ति है उसका आदर हम करें अर्थात् उसके महत्त्व को हम समझें * ॥

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधाः स्थ तर्पयत मे पितॄन् ॥ यजु० २ । ३४ ॥

पुरुष निज गृह की गृहिणियों से कहता है कि ऐ गृहिणियो ! आप गृह में (स्वधाः+स्थ) स्व अर्थात् अपने पुत्र, पौत्र, भ्राता, देवर, पति आदिकों की पोषण करनेवाली हों इस कारण (मे+पितॄन्) मेरे वृद्ध पिता, माता, पितामह, पितामही, प्रपितामह, प्रपितामही को अच्छे प्रकार (तर्पयत) शुश्रूषा से प्रसन्न रक्खो । और

---

* "स्वामीजी—"स्वधायै अन्नाय, पृथिवीराज्याय, न्यायप्रकाशाय स्वधेत्यन्ननामसु पठितम् । निघण्टु २ । ७ ॥ स्वधेति द्यावापृथिव्योर्नामसु पठितम् । निघण्टु ३ । ३० । अन्न, पृथिवी, राज्य और न्याय स्वधा शब्द का अर्थ करते हैं ।

महीधर—स्वधायै शरदे स्वधा वै शरद् । स्वधा वै पितॄणामन्नमितिश्रुतेः । शरदि हि प्रायशोऽन्नानि भवन्ति । स्वधा शब्दका अर्थ शरद् करते हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(ऊर्जम्) रस अर्थात् अनेक प्रकार के रसयुक्त पदार्थ (अमृतम्) सर्व-रोग-नाशक (घृतम्) घी (पयः) दूध (कीलालम्) सुसंस्कृत अन्न अथवा जल और (परिस्रुतम्) परिपक्व फल इत्यादि खाद्य पदार्थों को (वहन्तीः) पितरों के निकट पहुंचाती हुई आप उनकी सेवा करो । स्वधा—यहां यह शब्द विशेषण हो के आया है । कोई कोई जल का विशेषण कहते हैं ।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । अक्षन् पितरः । अमीमदन्त पितरः । अतीतृपन्त पितरः । पितरः शुन्धध्वम् । यजुः १९ । ३६ ॥

अर्थ—(स्व+धायिभ्यः) स्व अर्थात् अपने गोत्र, सन्तान, धर्म्म, देशों के धायी धारण पोषण करनेवाले (पितृभ्यः) पितरों को (स्वधा+नमः) सर्वदा स्वधारण-शक्ति और स्वधर्म्म प्राप्त हो । इसी प्रकार (स्व+धायिभ्यः पिता०) स्व=धायी पितामहों को स्वधर्म्म प्राप्त हो (स्व+धायिभ्यः+प्रपितामहेभ्यः) स्वधायी प्रपितामहों को स्वधर्म्म प्राप्त हो । पितरः अक्षन्) हे पिता, पितामह, प्रपितामह तथा माता, पितामही, प्रपितामही आदि मान्य पितरो ! आप मेरे गृह पर भोजन करें (पितरः अमीमदन्त) हे पितरो ! भोजन ग्रहण की कृपा से आप प्रसन्न हो हम सन्तानों को प्रसन्न करें और (पितरः अतीतृपन्त) हे पितरो ! आप तृप्त होके हमें तृप्त करें (पितरः शुन्धध्वम्) आप अपने आगमन से हमारे गृहों को और उपदेशों से हम लोगों को शुद्ध करें करवावें । अथवा स्वधायी अर्थात् स्वधा चाहनेवाले पितरों को स्वधा अर्थात् अन्नादिक प्राप्त हो इत्यादि । स्वधायी=स्व+धायी । जैसे बहुदायी धनदायी सुरापायी चिरस्थायी स्थायीकोश इत्यादि प्रयोगों में दा, पा, स्था धातुओं से दायी, पायी, स्थायी आदि शब्द बनते हैं तद्वत् धा धातु से धायी बनता है । " स्वान् धातुं धारयितुं शीलं यस्य स स्वधायी " अपने पुत्र पौत्रादिक जगत् को धारण पोषण करने का शील अर्थात् स्वभाव जिस को हो वह स्वधायी । इस से सिद्ध है कि पितर लोग स्वधायी=स्वरक्षक होते हैं

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वधा और स्वधायी एकार्थक हैं । अक्तन्=अक्षन् आदि वैदिक प्रयोग हैं । सब काल और सब पुरुष में बन जाते हैं ।

ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये । तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ॥ यजु० १६ । ४५ ॥

(ये+पितरः+समानाः+समनसः) जो पितर समान और समनस् अर्थात् परम मननशील हैं जो (यमराज्ये) धर्म्मरूप राज्य में विचरण करते हैं (तेषां) उन के समान (लोकः) स्थान, संगति (स्वधा) स्वधारणशक्ति (नमः) आदर और (यज्ञः) यज्ञ (देवेषु) हम पुत्र पौत्रादिकों में (कल्पताम्) प्राप्त होवें ।

जो पितर बड़े मननशील और धर्म्म के साथ सब व्यवहार करनेवाले हैं । उनके जैसे संग, स्व-धारण शक्ति, आदर और पूजापाठादि आचरण हैं वे सब हम पुत्र पौत्रादिकों में भी प्राप्त हों । यम इस शब्द के अनेक अर्थ आगे दिखलाये जायंगे । पितृ सम्बन्ध में यम शब्द प्रायः मृत्यु अथवा धर्म्मवाचक होता है । जो आयु (उम्र) में बढ़ रहे हैं वे देव और जो घट रहे हैं वे पितर कहाते हैं क्योंकि हम पूर्व में कह आये हैं कि उत्तरायण देव और दक्षिणायन पितर इसी प्रकार शुक्लपक्ष देव और कृष्णपक्ष पितर । पूर्वाह्ण देव और अपराह्ण पितर । इत्यादि सब उदाहरण सिद्ध करते हैं कि बढ़ते हुए को देव और घटते हुए को पितर कहते हैं अतः मैंने देव शब्दार्थ यहां पुत्र पौत्रादिक किया है क्योंकि इस अवस्था में इन की आयु बढ़ती रहती है । अथवा (तेषां+लोकः) पितरों का जो लोक अर्थात् वानप्रस्थरूप लोक है वह (स्वधा+नमः) स्वधा होवे अर्थात् स्वाभाविक धर्म्मयुक्त होवे अथवा उन के मध्य में निज आत्मा के धारण करने की शक्ति होवे । वे शीघ्र यहां से प्रस्थान न करें यह भाव है । और (देवेषु) पुत्र पौत्रादिक देवों में (यज्ञः कल्पताम्) पितृभक्ति, पितृश्रद्धारूप पितृयज्ञ प्राप्त होवे इत्यादि । इस पक्ष में स्वधा शब्द विशेषण होगा । महीधर प्रथमान्त 'लोक' शब्द को सप्तम्यन्त करके अर्थ करते हैं सो कल्पना-गौरव के हेतु त्याज्य है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वधा और अथर्ववेद ॥

व्याकरोमि हविषाऽहमेतौ तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि दीर्घेणायुषा समिमान् सृजामि॥
अथर्ववेद १२ । २ । ३२ ॥

ईश्वर कहता है कि (अहम्) मैं (हविषा) नियम से (एतौ+तौ) इन देव अर्थात् सन्तानगण और पितृ-गण इन दोनों गणों को (व्याकरोमि) पृथक् करता हूं (अहम्) मैं (ब्रह्मणा+वि+कल्पयामि) वेद के द्वारा यह विकल्प करता हूं (पितृभ्यः) पितरों के लिये (अजराम्+स्वधाम्) अजरा अर्थात् अजीर्णा=चिरस्थायिनी स्वधा अर्थात् स्वधर्म पालन-शक्ति (कृणोमि) करता हूं (इमान्) इन पुत्र पौत्रादिक देवों को (दीर्घेण+आयुषा) दीर्घ आयु से (सं+सृजामि) संयुक्त करता हूं । यह पितरों के लिये अजरा स्वधा के और देवों के लिये दीर्घ आयु के विधान से सिद्ध है कि स्वधा एक पदवी है जो सदा चिरस्थायिनी हो ।

स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः ।
दानेन राजन्योवशाया मातुर्हेडं न गच्छति ॥ अथर्व०१२।४।३२॥

(राजन्यः) जो प्रजापालकजन (पितृभ्यः+स्वधाकारेण) पितरों को स्वधाकार= स्वधर्म्मरक्षा से (देवताभ्यः+यज्ञेन) अग्नि, वायु आदि देवों को और विद्वानों को यज्ञ से तथा अन्यान्य जीवों को यथाशक्ति (दानेन) दान से प्रसन्न रखता है वह उन कारणों से (वशायाः+मातुः) स्ववश पृथिवी माता के (हेडम्+न+गच्छति) क्रोध को प्राप्त नहीं होता है ।

भाव=जो राजा स्वधर्म स्वदेश आदि की रक्षा से पितरों को प्रसन्न रखता है। क्योंकि पितर स्वरक्षा से ही प्रसन्न होते हैं और यज्ञों से देवों को और अन्यान्य पुरुषों को सब प्रकार के दानों से प्रसन्न रखता है उसके ऊपर पृथिवी क्रोध नहीं करती है अर्थात् पृथिवीस्थ पुरुषों का क्रोध उस पर नहीं होता । यहां "स्वधाकार" शब्द है जिस में कार

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रत्यय लगा रहता है वह केवल शब्द स्वरूप को ही सूचित करता है जैसे अकार, इकार, ककार, खकार आदि। अब यही शंका होगी कि पितरों के लिये स्वधा शब्द का उच्चारण क्यों करना चाहिये और उस से पितृगण क्योंकर तुष्ट होंगे निःसन्देह इस का समाधान इसप्रकार का होगा कि अपने देश धर्म्मादिकों की जो रक्षा कर चुके हैं उन को वही प्रिय प्रतीत होगी। अतः वे पितृगण जब २ स्वदेश धर्म्म कर्म्मादिकों की रक्षा का समाचार श्रवण करेंगे तब २ अवश्य प्रसन्न होंगे इस हेतु पितरों के निकट स्वधा शब्द के उच्चारण की विधि है।

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त। स्वधएहीति ॥ ५ ॥ तस्या यमो राजा वत्स आसीत् रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥ तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाऽधोक् ॥ ७ ॥ तां स्वधां पितर उपजीवत्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

(सा+उदक्रामत्) वह विराट् देवी आगे चली वह पितरों के समीप आई पितरों ने उसे बुलाया हे स्वधा ! यहां आओ। उस का वत्स यम राजा था और रजतपात्र (श्वेत) (पात्रम्) पात्र (मार्त्यवः+अन्तकः) मृत्यु पुत्र अन्तक ने उसे दूहा। उस से स्वधा को ही दूहा। उस स्वधा के आश्रित पितर जीते हैं। जो ऐसा जानता है वह उपजीवनीय होता है।

वह विराट् देवी कौन है। वह पितरों के समीप जाके स्वधा नाम से क्यों पुकारी गई इत्यादि अर्थों के ज्ञान के लिये मैं यहां अथर्ववेद के इस सम्पूर्ण प्रकरण का अनुवाद करता हूं इस से स्वधा शब्दार्थ भी खुल जायगा।

विराड् वा इदमग्र आसीत् तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति ॥ १ ॥ सोदक्रामत् सा गार्हपत्ये न्यक्रामत् ॥ २ ॥ गृहमेधी गृहपतिर्भवति य एवं वेद ॥ ३ ॥ सोदक्रामत् साऽऽहवनीये न्यक्रामत् ॥ ४ ॥ यन्त्यस्य देवा देवहूतिं प्रियो देवानां भवति य एवं वेद ॥ ५ ॥ सोदक्रामत सा दक्षिणाग्नौ न्यक्रामत् ॥ ६ ॥ यज्ञतौ दक्षिणीयो वासतेयो भवति य एवं वेद ॥ ७ ॥ अथर्ववेद कांड ८। सूक्त १० ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ—(विराट्+वै०) निश्चय एक विराट् ही आगे यह थी। उस के उत्पन्न होने पर (सर्वम्+अबिभेद्) सब डर गए कि यही यह होगी अर्थात् यही विराट् सर्वत्र व्यापक हो जायगी ॥ १ ॥ (सा+उदक्रामत्) वह ऊपर को चली। वह गार्हपत्याग्नि में प्रविष्ट हुई ॥ २ ॥ जो ऐसा जानता है वह गृहमेधी गृहपति होता है ॥ ३ ॥ वह ऊपर को चली। वह आहवनीय में प्रविष्ट हुई ॥ ४ ॥ जो ऐसा जानता है वह देवों का प्रिय होता है और (अस्य+देवहूतिम्+देवाः+यन्ति) इस के देव यज्ञ में सब देव जाते हैं ॥ ५ ॥ वह ऊपर को चली। वह दक्षिणाग्नि में प्रविष्ट हुई ॥ ६ ॥ जो ऐसा जानता है वह (यज्ञर्तः) यज्ञ के योग्य (दक्षिणीयः) मान्य और (वासतेयः) दूसरों को वास देने योग्य होता है ॥ ७ ॥

सोदक्रामत् सा सभायाँन्यक्रामत् ॥ ८ ॥ यन्त्यस्य सभां सभ्यो भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥ सोदक्रामत् सा समितौ न्यक्रामत् ॥ १० ॥ यन्त्यस्य समितिं सामित्यो भवति य एवं वेद ॥ ११ ॥ सोदक्रामत् साऽऽमन्त्रणे न्यक्रामत् ॥ १२ ॥ यन्त्यस्यामन्त्रणमामन्त्रणीयो भवति य एवं वेद ॥ १३ ॥ अथर्व ८। १० ॥

वह ऊपर को चली वह सभा में प्रविष्ट हुई ॥ ८ ॥ जो ऐसा जानता है वह सभ्य होता और इस की सभा में लोग जाते हैं ॥ ९ ॥ वह ऊपर को चली वह समिति में प्रविष्ट हुई ॥ १० ॥ जो ऐसा जानता है वह सामित्य अर्थात् समिति के योग्य होता है। और इस की समिति में लोग जाते हैं ॥ ११ ॥ वह ऊपर को चली आमन्त्रण में प्रविष्ट हुई ॥ १२ ॥ जो ऐसा जानता है वह आमन्त्रणीय होता है। और इसके आमन्त्रण में लोग जाते हैं ॥ १३ ॥

सोदक्रामत् साऽन्तरिक्षे चतुर्धा विक्रान्तातिष्ठत् ॥ १ ॥ तां देव-मनुष्या अब्रुवन्नियमेव तद् वेद यदुभय उपजीवेमेमामुपह्वयामहा इति ॥२॥ तामुपाह्वयन्त ॥ ३ ॥ ऊर्ज एहि स्वध एहि सूनृत एहि इरावत्येहीति ॥ ४ ॥ तस्या इन्द्रोवत्स आसीद् गायत्र्यभिधान्यभ्रमूधः ॥ ५ ॥ बृह-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

च रथन्तरञ्च द्वौ स्तनावास्तां यज्ञायज्ञियं च वामदेव्यं च द्वौ ॥ ६ ॥ ओषधीरेव रथन्तरेण देवा अदुहन् व्यचो बृहता ॥ ७ ॥ अपो वामदेव्येन यज्ञं यज्ञायज्ञियेन ॥ ८ ॥ ओषधीरेवास्मै रथन्तरं दुहे व्यचो बृहत् ॥ ९ ॥ अपो वामदेव्यं यज्ञं यज्ञायज्ञियं य एवं वेद ॥ १० ॥

अर्थ—वह ऊपर को चली वह चार प्रकार से फैल के खड़ी होगई ॥ १ ॥ उस के विषय में देव और मनुष्य कहने लगे कि यही विराट् देवी उस को जानती है जिस के आश्रय से हम दोनों जीवन धारण कर सकेंगे। आओ इस को हम बुलावें ॥ २ ॥ उन्होंने उस को पुकारा ॥ ३ ॥ (ऊर्जे+एहि) हे ऊर्जा=बल देनेवाली आओ। (स्वधे+एहि) ऐ स्वधा आओ। (सूनृते+एहि) हे सूनृता=सत्यभाषणरूपा देवी आओ। (इरावति+एहि+इति) हे इरावती मुक्ति देनेवाली आओ ॥ ४ ॥ जिस कारण यह विराट् चार प्रकार से आकाश में स्थित हो गई थी इस हेतु ऊर्जा, स्वधा, सूनृता और इरावती इन चारों नामों से पुकारी गई है। यह भी ध्यान रखना चाहिये इन चारों नामों से धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष का ग्रहण है। आगे इस विराट् को गोरूप में वर्णन करते हैं। (तस्याः+इन्द्रः+वत्सः+आसीत्) उस विराट् रूपा गौ का वत्स इन्द्र है। गायत्री, अभिधानी = रस्सी, दुग्धपात्र है। अभ्र = मेघ, ऊध = स्तन प्रदेश है। बृहत् और रथन्तर दो स्तन=थन हैं और यज्ञायज्ञिय और वामदेव्य दो स्तन हैं॥ ६ ॥ देवों ने इस के रथन्तररूप स्तन से ओषधियों को दुहा और बृहत्रूप स्तन से व्यच अर्थात् व्यापकता को दुहा। ७। वामदेव्यरूप स्तन से जल को और यज्ञायज्ञियरूप रतन से यज्ञ को। ८। (आगे फल कहते हैं) जो ऐसा जानता है उसको रथन्तर औषधियें देता है। बृहत् व्यच् देता है। वामदेव्य जल देता है और यज्ञायज्ञिय यज्ञ देता है। ९। १०॥

सोदक्रामत् सा वनस्पतीनागच्छत् तां वनस्पतयोऽघ्नत सा सम्बत्सरे समभवत् । तस्मात् वनस्पतीनां सम्वत्सरे वृक्णमपि रोहति वृश्चतेऽस्या प्रियो भ्रातृव्योय एवं वेद ॥ २॥ सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितरोऽघ्नत सा मासि समभवत् ॥ ३ ॥ तस्मात् पितृभ्यो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मास्युपमास्यं ददति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ४ ॥ सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा अघ्नत साऽर्धमासे समभवत् ॥ ५ ॥ तस्मादेवेभ्योऽर्धमासे वषट् कुर्वन्ति प्र देवयानं पन्थां जानाति य एवं वेद ॥ ६ ॥ सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या अघ्नत सा सद्यः समभवत् ॥ ७ ॥ तस्मान्मनुष्येभ्य उभयेद्युरुपहरन्ति उपास्य गृहे हरन्ति य एवं वेद । ८ ।

वह ऊपर को चली वह वनस्पतियों के समीप आई । उसको वनस्पतियोंने हनन किया वह संवत्सर में संभव हुई ॥१॥ इस हेतु प्रत्येक संवत्सर में वनस्पति (वृक्ष) यों का छिन्न भिन्न स्थान भी भर आता है । जो ऐसा जानता है उसका शत्रु भी वृक्ण होता है ॥ २ ॥ वह आगे चली वह पितरों के निकट आई पितरों ने उसको हनन किया । वह मासरूप में संभव हुई ॥ ३ ॥ इस हेतु पितरों को मास मास में सम्मान देते हैं जो ऐसा जानता है वह अच्छे प्रकार पितृयाण पथ को जानता है ॥ ४ ॥ वह आगे चली वह देवों के निकट आई उसको देवों ने हनन किया वह अर्धमासरूप में संभव हुई ॥ ५ ॥ इस हेतु लोग देवों के लिये अर्धमास में वषट् अर्थात् यज्ञ करते हैं जो ऐसा जानता है वह अच्छे प्रकार देवयान पथ को जानता है ॥ ६ ॥ वह आगे चली वह मनुष्यों के निकट आई । उसको मनुष्यों ने हनन किया वह तत्काल ही संभव हुई है ॥ ७ ॥ इस हेतु मनुष्यों (अतिथियों) के लिये दोनों साम भोजन लाते हैं । जो ऐसा जानता है उसके गृह पर लोग भोजन लाते हैं ॥ ८ ॥

• सोदक्रामत् साऽसुरानागच्छत् । तामसुरा उपाह्वयन्त माय एहीति ॥ १ ॥ तस्या विरोचनः प्राहादिर्वत्स आसीदयस्पात्रं पात्रम् । ॥२॥ तां द्विमूर्धाऽऽर्ण्योऽधोक् तां मायामेवाधोक् ॥३॥ तां मायामसुरा उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

अर्थ—वह आगे चली वह असुरों के निकट आई । उसको असुरों ने पुकारा हे माया आओ । १ । प्राह्लाद विरोचन उसका वत्स था लौह पात्र पात्र था । २ । उस

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

को आर्ब्य द्विमूर्धा ने दूहा, उसने उससे माया को ही दूहा ॥ ३ ॥ उसी माया के आश्रित असुरगण जीवन निर्वाह करते हैं। जो ऐसा जानता है वह जीविकाप्रद होता है ॥४॥

सोदक्रामत् सा पितॄनागच्छत् तां पितर उपाह्वयन्त स्वध एहीति ॥५॥ तस्या यमोराजा वास आसीद् रजतपात्रं पात्रम् ॥ ६ ॥ तामन्तको मार्त्यवोऽधोक् तां स्वधामेवाऽधोक् ॥ ७ ॥ तां स्वधां पितर उपजीवन्त्युपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

अर्थ—वह आगे चली वह पितरों के निकट आई। उसको पितरों ने बुलाया हे स्वधा आओ ॥ ५ ॥ यमराजा उसका वत्स था और रजतपात्र पात्र था॥ ६ ॥ मार्त्यव अन्तक ने उसको दूहा। उसने उससे स्वधा को ही दूहा॥ ७ ॥ उस स्वधा के आश्रित पितृगण जीवन निर्वाह करते हैं। जो ऐसा जानता है वह उपजीवनीय होता है।

सोदक्रामत् सा मनुष्यानागच्छत् तां मनुष्या उपाह्वयन्त इरावत्येहीति ॥९॥ तस्या मनुर्वैवस्वतो वत्स आसीत् पृथिवी पात्रम् ॥१०॥ तां पृथी वैन्योऽधोक् तां कृषिं च सस्यं चाऽधोक् ॥११॥ ते कृषिं च सस्यं च मनुष्या उपजीवन्ति कृष्टराधिरुपजीवनीयो भवति यएवंवेद।१२।

अर्थ—वह आगे चली वह मनुष्यों के निकट आई। उस को मनुष्यों ने बुलाया हे इरावती आओ ॥ ९ ॥ वैवस्वत मनु उस का वत्स था और पृथिवी पात्र थी ॥१०॥ वैन्य पृथी उस को दूहा उस ने उससे कृषि और सस्य को ही दूहा ॥ ११ ॥ उस कृषि और सस्य के आश्रित मनुष्य जाते हैं। जो ऐसा जानता है वह कृषिविद्या में निपुण और उपजीवनीय होता है ॥ १२ ॥

सोदक्रामत् सा सप्तऋषीनागच्छत् तां सप्तऋषय उपाह्वयन्त ब्रह्मण्वत्येहीति ॥ १३ ॥ तस्याः सोमो राजा वत्स आसीत् छन्दःपात्रम् ॥ १४ ॥ तां बृहस्पतिरांगिरसोऽधोक्तां ब्रह्म च तपश्चाऽधोक् ॥ १५ ॥ तत् ब्रह्म च तपश्च सप्तऋषय उपजीवन्ति ब्रह्मवर्चसी उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १६ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ–वह आगे चली वह सप्तर्षियों के निकट आई। उस को सप्तर्षियों ने बुलाया है ब्रह्मएवती=वेदविद्या आओ। सोम राजा उस का वत्स था और पात्र छन्द था। उस को आंगिरस बृहस्पति ने दूहा। उस ने उस से ब्रह्म और तप को ही दूहा ॥ १५ ॥ उस ब्रह्म और तप के आश्रित सप्तऋषि जीते हैं जो ऐसा जानता है वह ब्रह्मवर्चसी और उपजीवनीय होता है ॥ १६ ॥

सोदक्रामत् सा देवानागच्छत् तां देवा उपाह्वयन्त ऊर्ज एहीति ॥ १ ॥ तस्या इन्द्रो वत्स आसीच्चमसः पात्रम् ॥ २ ॥ तां देवः सविताऽधोक् तामूर्जामेवाधोक् ॥ ३ ॥ तामूर्जां देवा उपजीवन्ति उपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ४ ॥

वह आगे चली वह देवों के निकट आई। देवों ने उसे बुलाया है ऊर्जा आओ। इन्द्र उस का वत्स था और पात्र चमस था। उस को सविता देव ने दूहा। उस ने उस से ऊर्जा को ही दूहा ॥ ३ ॥ उस ऊर्जा के आश्रित देवगण जीते हैं जो ऐसा जानता है वह उपजीवनीय होता है ॥ ४ ॥

सोदक्रामत् सा गन्धर्वाऽप्सरस आगच्छत् तां गन्धर्वाप्सरस उपाह्वयन्त पुण्यगन्ध एहीति ॥ ५ ॥ तस्याश्चित्ररथः सौर्य्यवर्चसो वत्स आसीत् पुष्करपर्णं पात्रम् ॥ ६ ॥ तां वसुरुचिः सौर्य्यवर्चसोऽधोक् तां पुण्यमेव गन्धमधोक् ॥ ७ ॥ तं पुण्यं गन्धं गन्धर्वाप्सरस उपजीवन्ति पुण्यगन्धिरुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ ८ ॥

वह आगे चली वह गन्धर्वों और अप्सराओं के निकट आई। उस को गन्धर्वों और अप्सराओं ने बुलाया हे पुण्यगन्धा ! आओ ॥५॥ सौर्य्यवर्चस चित्ररथ उसका वत्स था और पात्र कमलपत्र था॥६॥ उसको सौर्य्यवर्चस वसुरुचि ने दूहा। उसने उससे पुण्यगन्ध ही दूहा ॥ ७ ॥ उस पुण्य गन्ध के आश्रित गन्धर्व और अप्सराएं जीती हैं। जो जानता है वह पुण्यगन्धि और उपजीवनीय होता है ॥ ८ ॥

सोदक्रामत् सेतरजनानागच्छत् तामितरजना अपाह्वयन्त तिरोध एहीति॥९॥ तस्याः कुवेरो वैश्रवणो वत्स आसीदामपात्रं पात्रम् ॥१०॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तां रजतनाभिः कावेरकोऽधोक् तां तिरोधामेवाऽधोक् ॥ ११ ॥ तां तिरोधामितरजना उपजीवन्ति तिरोधत्ते सर्वं पाप्मानमुपजीवनीयो भवति य एवं वेद ॥ १२ ॥

वह आगे चली वह इतरजनों के निकट आई। उस को इतरजनों ने बुलाया हे तिरोधा आओ ॥ ९ ॥ वैश्रवण कुबेर उस का वत्स था पात्र आमपत्र (कच्चापात्र) था ॥ १० ॥ उस को कावेरक रजतनाभि ने दूहा। उस ने उस से तिरोधा को ही दूहा ॥ ११ ॥ उस तिरोधा के आश्रित इतरजन जीते हैं। जो ऐसा जानता है वह सब पाप को तिरोहित अर्थात् विनष्ट करता है ॥ १२ ॥

भोदक्रामत् सा सर्पानागच्छत् तां सर्पा उपाह्वयन्त विषवत्येहीति॥ १३॥
तस्यास्तक्षको वैशालेयो वत्स आसीदलाबुपात्रं पात्रम् ॥ १४ ॥
तां धृतराष्ट्र ऐरावतोऽधोक् तां विषमेवाऽधोक् ॥ १५ ॥
तद्विषं सर्वा उपजीवन्ति उपजीवनीयो भवति। य एवं वेद ॥१६॥

वह आगे चली वह सांपों के निकट आई। उस को सांपों ने बुलाया हे विषवती! आओ ॥ १३ ॥ वैशालेय तक्षक उस का वह सच्चा पात्र अलाबुपात्र था ॥ १४ ॥ उस को ऐरावत धृतराष्ट्र ने दूहा उस ने उस से विष को ही दूहा ॥ १५ ॥ उस विष के आश्रित सांप जीते हैं। जो ऐसा जानता है वह उपजीवनीय होता है ॥ १६ ॥

आशय–तस्माद् विराडजायत। ऋ० १०।९०।४। यहां विराट् शब्दार्थ सूक्ष्म ब्रह्माण्ड है। "सा ते काम दुहिता धेनुरुच्येतया माहुर्वाचं कवयो विराजम्"। अथर्व।९ २।५। यहां विराट् शब्द वाणी का विशेषण है। "विराड् वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः। विराण् मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव तस्यभूतं भव्यं वशे स मे भूतं भव्यं वशे कृणोतु"। अथर्व। ९।१०।२४। यहां वाणी, पृथिवी आदि को विराट् कहा है प्राणोविराट् प्राणोदेष्ट्री। अथर्व ११।४।१२। यहां प्राणविराट् कहा गया है ॥४०॥ अक्षरों का एक विराट् छन्द भी होता है। शंका होती है कि इस प्रकरण में विराट् शब्दार्थ क्या है। पूर्वापर देखने से इसका अर्थ, प्रकृति, अर्थात् स्वभाव,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वधर्म, स्वगुण और अन्न प्रतीत है। परन्तु विशेष करके यहां 'विराट्' शब्द अन्न वाचक है। "तस्मात् सर्वाक्षु दिक्षु अन्नमेव दृशकृतम्। सैषा विराडन्नादी तयाइदं सर्वं दृष्टम्" छान्दोग्योपनिषद् । ४ । ३ । ८ । यहां अन्न का ही नाम विराट् कहा है । जिस का जो भोजन है वही उस के लिये अन्न है । जैसे जल वृक्ष के लिये अन्न है । पृथिवी, अप्, तेज, वायु ये चारों सब का साझा अन्न हैं वही जलादि पदार्थ, निम्ब वृक्ष में जाके तिक्तत्व आम में मधुरत्व, गौमें दुग्ध, सर्प में विष, सज्जन में सज्जनता, दुष्ट में दुष्टता, ऋषियों में ब्रह्मज्ञान, मनुष्यों में साधारण बुद्धि, पितरों में "स्वधा" असुर में माया इत्यादि उत्पन्न करता है अर्थात् जहां २ जाता है वहां २ अपनी सत्ता को छोड़ उसी आकारवाला हो जाता है । इसी हेतु कहा गया है कि असुरों ने उस विराट् देवी से माया को, मनुष्योंने कृषि अर्थात् क्षेत्रकर्षणविद्या को, ऋषियों ने ब्रह्मज्ञान और तप को इस प्रकार अपने २ स्वभाव के अनुसार सब ने अपने स्वभाव को दूहा इसी प्रकार पितरों ने "स्वधा" को दूहा । अब यहां आप समझ सकते हैं कि, मानो, असुरों का अन्न ही माया है मनुष्यों का अन्न ही कृषि है एवं ऋषियों का अन्न तप और ब्रह्म है इसी प्रकार पितरों का अन्न "स्वधा" है जैसे असुरगण माया से मनुष्य कृषि से ऋषि तप से जीते हैं वैसे ही पितर स्वधा से जीते है जैसे ऋषियों के निकट जाके वही अन्न तप बन गया वैसे ही पितरों के समीप आके वही अन्न स्वधा बन गया । फलित यह हुआ है कि पितरों का स्वभाव ही स्वधामय है जैसे ऋषियों का ब्रह्ममय असुरों का मायामय है । फिर शङ्का रह गई कि जैसे ऋषियों का अन्न तप अर्थात् सत्यादिभाषण है असुरों का अन्न माया अर्थात् छलकपटादि करना है वैसे ही पितरों का अन्न स्वधा है इस का क्या तात्पर्य्य हुआ । निःसन्देह स्वधा का अर्थ स्वधारण शक्ति है अपने कुल परिवार देशादिकों की जो रक्षा करनी है यही पितरों का अन्न है इसीसे पितर जीते हैं इतने से स्वधा शब्द का अर्थ अब विस्पष्ट हो गया है । अब आप लोग समझ सकते हैं कि पितरों के साथ स्वधा क्यों लगाया जाता है यह पितरों की पदवी है जहां पितर इकट्ठे हुए वहां पितरों को प्रसन्न करने के लिये इस शब्द की घोषणा होने लगी पितृगण अपने कर्तव्य सुन प्रसन्न हुए । आगे के लोग भी चेत गए कि मैं भी यदि ऐसा कर्म करूंगा तो पितर होऊंगा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और इसी प्रकार आदर सम्मान होगा अतः पितरों का प्रत्येक कार्य्य स्वधा से आरम्भ होता है और वेद से लेके आधुनिक संस्कृत ग्रन्थ पर्य्यन्त इस की इतनी प्रशंसा है ।

प्रकरणस्थ अन्यान्य विषय—अब प्रकरण में जो अन्यान्य विषय आगए हैं उन्हें भी यहां संक्षेप से सन्देहनिवृत्यर्थ लिखता हूं । गार्हपत्यादि=वही अन्नरूपविराट् देवी गार्हपत्यादि अग्नि में आहुत भस्म हो सब प्राणी का पुनः अन्न बनती है अतः कहा गया है कि गार्हपत्यादिकों में प्रविष्ट हुई । इसी देवी को देव और मनुष्यों ने ऊर्जा, स्वधा, सूनृता और ऐरावती इन चार नामों से पुकारा-इस का भाव पूर्ववत् है वही अन्नदेवी कहीं प्रकाशवाली होती जैसे अग्नि का अन्न मानो काष्ठ है वह काष्ठ अग्नि के साथ मिलके प्रकाश देता है ऐसा ही सर्वत्र जानना । पितरों में जा के स्वधा अर्थात् स्वधारणशक्ति बन गई । एवं वृक्षादि वर्ष २ नवीन पत्तेवाले होते हैं अतः कहा है कि वनस्पतियों के हनन करने पर वर्ष में उत्पन्न हुई । अमावास्या तिथि को पितृयज्ञ अवश्य कर्तव्य है अतः मास में उत्पन्न हुई ऐसा कहा गया है इस का भाव मासिक श्राद्धप्रकरण में देखो । आगे भी ऐसा ही विचार कर लेना ।

विरोचन प्राह्लादि शब्दः—इस प्रकरण में विरोचन, मनु, वैन्य, पृथी आदि शब्द आये हैं जिससे प्रायः लोगों को सन्देह उत्पन्न हो सकता है अतः प्रथम जानना चाहिये कि "श्रुति सामान्यमात्रम्" मीमांसाशास्त्र निर्णय करता है कि वेदमें सामान्य नाम है विशेष नहीं बारम्बार मैंने यह कहा है । **विरोचन**=जिसमें रोचन अर्थात् दीप्ति, तेज, प्रभा विगत हो अर्थात् न हो उसे "विरोचन" कहते हैं जो बहुत क्रन्दन=चिल्लाहट मचावे वह प्राह्लाद । चूंकि असुरों में अधर्म करने से तेज नहीं रहता और रात्रि में ये चोरी डकैती आदि कुकर्म सिद्ध करने के लिये अथवा मूर्खता के कारण बहुत चिल्लाते हैं जैसे आजकल भी कोल भील रात भर गीत भजन करते हुए इतने जोर से हल्ला मचाते हैं कि लोगों का सोना भी मुश्किल हो जाता है गवर्नमेण्ट को इसके लिये बन्दोबस्त करना पड़ता है इसहेतु वे विरोचन आदि नाम से पुकारे जाते हैं । मनु=मननशील पुरुष, वेन=ज्ञानी, पृथी=पृथिवी पर कृषिविद्या के प्रचार करनेवाला इसी आ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लङ्कारिक कथा को ले के पुराणों में वेन और पृथु की कथा बनाली है यहां ये सामान्य नाम हैं । इन्द्र, विद्युत् आदि ।

चित्ररथ=गन्धर्व गानेवाले को कहते हैं । गानेवाले का स्वभाव ही चित्र विचित्र होता है इनके वस्त्रादिक भी अनेक प्रकार के होते हैं और ये धन को बहुत चाहते हैं अतः चित्ररथ, वसुरुचि आदि नाम से ये पुकारे गये हैं । तक्षक=सर्प विषधर होता है और अपने विषमय राज्य को सदा स्थिर रखता है अतः ये तक्षक और धृतराष्ट्र नाम से उक्त हैं ।

पितर और यम आदि—पितरों के साथ यम अर्थात् धर्म या मृत्यु सदा रहता है और धर्म्म का रूप श्वेत कहा गया है अतः पितरों का पात्र रजत कहा है इत्यादि भाव जानना ।

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ । तस्य भर्मणे-भुवनाय देवा धर्म्मणे कं स्वधयाऽपप्रथन्त । नि० ७ । २५ ॥

शुक्रन्ते अन्यद् यजतं ते अन्यद् विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि । विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥ निरु० १२ । १७ ॥

इत्यादि स्थानों में अन्यान्य देवों के साथ भी स्वधा शब्दार्थ यास्क अन्न करते हैं ।

परिणाम—अब स्वधा शब्द पर मैंने बहुत लिखा आगे भी स्वधा शब्द आवेगा । इससे सिद्ध हुआ कि स्वधा कोई मूर्त्तिमती देवी नहीं और न तो यह ब्रह्मा की और न दक्ष की कोई कन्या ही स्वधा है और न पितरों की धर्म्मपत्नी स्वधा है । वेद के अनुसार अन्न, जल, शरद्ऋतु, प्रकृति, स्वभाव, धर्म, गुण, मार्ग, निज धारण पोषणकर्त्ता इत्यादि अर्थों में स्वधा शब्द प्रयुक्त होता है अतएव जैसे स्वधा कोई शाश्वती, आकल्पान्तस्थायिनी देवी सिद्ध नहीं होती है, वैसे ही इसके पति—अग्निष्वात्त, अग्निदग्ध, सोमप, आज्यप, नान्दीमुख इत्यादि पितृगण भी कोई शाश्वत, नित्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आकल्पान्तस्थायी देव सिद्ध नहीं होते हैं । इस कारण पुराणों का जो सूर्यचन्द्रादि देववत् सृष्टि की आदि में अग्निष्वात्त, सोमप आदि पितृगण सृष्ट हुए और सूर्यादिदेव के समान ये अग्निष्वात्तादि पितृगण प्रलयतक समानरूप से विद्यमान रहते हैं इन के लिये लोक भी पृथक् बना हुआ है उन्हीं पितृलोक में मनुष्य पितरों को पहुंचाते हैं इत्यादि मन्तव्य है यह सब मिथ्या है। एवं जैसे श्राद्ध का जो स्वधारूप मुख्य अङ्ग है वह काल्पनिक और सर्वथा वेदविरुद्ध सिद्ध होता है वैसे ही मृतक श्राद्ध को भी जानो । अब थोड़ी देर के लिये मान भी लिया जाय कि अग्निष्वात्त आदि पितृगण कोई नित्य पितृगण है जिनकी पत्नी स्वधा है । इस अवस्था में एक अन्य आपत्ति आती है जो पुराणों के अनुसार दुर्वार है । मनुष्य पितरों के साथ तब यह "स्वधा" क्यों जोड़ी जाती है । यदि कहो कि यह अन्य कोई स्वधा है तो यह कहना नहीं बन सकता है इसी अग्निष्वात्तादिक पितृगण की स्वधा की श्राद्ध में पूजा विहित है ऐसा पूर्व में दिखला चुका हूं । इत्यादि कारणवश मृतकश्राद्ध वेदविरुद्ध होने से मंगलाभिलाषी वैदिक पुरुषों को सर्वथा हेय है ।

इति स्वधानिर्णयप्रकरणं समाप्तम् ॥

"यम कौन है ?" इत्यादि ॥

इस श्राद्ध-निर्णय प्रकरण में "यम" शब्द भी आवश्यक है क्योंकि 'यम' पितरों के अधिपति माने गये हैं । यमपुरी में चित्रगुप्त आदि पुरुष मनुष्यों के कर्त्तव्याकर्त्तव्य पर विचार करते हैं । इस शरीर को छोड़ ये जीव यमपुरी को जाते हैं । वहां इनके धर्म्माधर्म्म का निर्णय होता है इत्यादि पुराणों का मत है । अतः यम के विषय में भी विचार होना आवश्यक है । यह सर्वत्र प्रसिद्ध है और आगे प्रमाणों से भी सिद्ध किया जायगा कि विद्वान् लोग **यम** को **सूर्य्यपुत्र** कहते हैं । अब अपनी २ बुद्धि से विवेक करना चाहिये कि सूर्य्य के पुत्र से क्या तात्पर्य्य हो सकता । सूर्य्य कोई मनुष्यादिकों के समान चेतन नहीं जो उस का कोई चेतन पुत्र हो और जो पुत्र पितृपति

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बन धर्म्माधर्म्म का निर्णय करे। निःसन्देह, सूर्य्य भी पृथिवी, जल, वायु आदि के समान एक तेजोमय जड़ वस्तु है जो इस पृथिवी पर उष्णता और प्रकाश के देने के लिये ईश्वर से स्थापित हुआ है। तब इसका पुत्र कौन होगा ? निःसन्देह सूर्य्य का पुत्र दिन और रात्रि है। या इस को समय, काल, (Time) वक्त आदि शब्दों से पुकार सकते हैं। अमरकोश में "कालो दण्डधरः श्राद्धदेवो वैवस्वतोऽन्तकः" काल अर्थात् समय (Time) और वैवस्वत अर्थात् सूर्य्यपुत्र ये दो नाम भी यम के आये हैं इस से सिद्ध है कि यम नाम दिन (Day) का और यमी नाम रात्रि (Night) का है। इस बात में सब ग्रन्थ सहमत हैं कि यम और यमी सूर्य्य के पुत्र और पुत्री हैं। यथा—

यम और पुराण ॥

विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञाऽसूयत वै मनुम्। मिथुनञ्च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ॥ सैव भूत्वाऽश्व वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥

श्रीमद्भागवत ६। ६। ४० ॥

अर्थ–सूर्य्यपत्नी संज्ञा ने सूर्य्य से श्राद्धदेव मनु को और उसी महाभाग्यवती ने **यम** और **यमी** को भी उत्पन्न किया। पुनः वडवा अश्वा (घोड़ी) होकर पृथिवी पर दो अश्वी कुमार भी उत्पन्न किये। इस को अष्टम स्कन्ध में विस्पष्टरूप से वर्णन करते हैं। यथा—

विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्म्मसुते उभे। संज्ञा छाया च राजेन्द्र ! ये प्रागभिहिते तव। तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः। यमोयमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुतान् शृणु ॥

अर्थ–सूर्य्य की दो भार्य्याएं थीं वे दोनों विश्वकर्मा की कन्याएं थीं हे राजेन्द्र! उन दोनों के नाम क्रम से संज्ञा और छाया थे। कोई यह भी कहते हैं कि सूर्य्य की तृतीया (तीसरी) भी स्त्री थी। जिस का नाम वडवा था। उन में से संज्ञा के तीन पुत्र हुए। यम यमी और श्राद्धदेव मनु। इत्यादि। इस श्रीमद्भागवत के प्रमाण से सिद्ध है कि यम और यमी सूर्य्य की सन्तान हैं। यहां पर सूर्य्य की तीन स्त्रियां कही गई हैं। संज्ञा,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

छाया और बड़वा (घोड़ी) इस का क्या तात्पर्य है और कहां से यह कथा आई है इस सब का आगे वर्णन करेंगे ।

सूर्य्यस्य पत्नी संज्ञाऽभूत् तनया विश्वकर्म्मणः । मनुर्यमो यमी चैव तदपत्यानि वै मुने॥ असहन्ती तु सा भर्त्तुस्तेजश्छायां युयोज वै। भर्तुः शुश्रूषणेऽरण्यं स्वयञ्च तपसे ययौ ॥ छाया संज्ञा ददौ शापं यमाय कुपिता यदा । तदान्येयमसौ बुद्धिरित्यासीद् यमसूर्य्ययोः ॥ ततो विवस्वानाख्याते तयैवारण्यसंस्थिताम् । वाजिरूपधरः सोऽपि तस्यां देवावथाश्विनौ॥ इत्यादि विष्णुपुराण तृतीयांश द्वितीयाध्याय॥

अर्थ–सूर्य्य की पत्नी का नाम संज्ञा था जो विश्वकर्मा की पुत्री थी । उस संज्ञा से मनु, यम और यमी तीन सन्तान हुए । एक समय यह संज्ञा सूर्य्य के तेज को न सहके पति शुश्रूषा के लिये अपने स्थान में एक छायारूपी स्त्री बना तपस्या के लिये अरण्य को चली गई । तत्पश्चात् एक दिन उस छाया ने अपने पुत्र यम को शाप दिया । यह चरित्र देख यम और सूर्य्य को मालूम हुआ कि यह संज्ञा नहीं है तब पूछने पर उस ने सब कह सुनाया । तब सूर्य्य भी अश्वरूप धारण कर अरण्य में अश्वारूप से तपस्या करती हुई संज्ञा से जा मिले वहां दो अश्वीकुमार उत्पन्न हुए ।

इस में भी श्रीमद्भागवत के समान आख्यायिका है । विशेष इतना है कि संज्ञा ने ही छाया को उत्पन्न किया और वही अश्वा (घोड़ी) रूप धारण करके अरण्य को चली गई वहां दोनों के योग से अश्विनी कुमार हुए । पद्मपुराण में विस्तार से वर्णन है सो सुनिये—

विवस्वान् कश्यपात्पूर्वमदित्यामभवत्सुतः । तस्य पत्नीत्रयं तद्वत् संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा ॥ प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्री संज्ञा तथा मनुम् । यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः ॥ ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः । नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिता ॥ त्वाष्ट्री स्वरूपरूपेण नाम्ना छायेति भामिनी । किं करोमीति पुरतः सं-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्थिता तामभाषत । छाये त्वं भज भर्त्तारं मदीयं च वरानने । अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय ॥ पद्मपुराण सृष्टिखण्ड अ० ८ । श्लोक ३६ से पृष्ठ ७८६ ॥

अर्थ—अदिति में कश्यप से विवस्वान् पुत्र हुआ । उसकी तीन स्त्रिएं हुईं । संज्ञा, राज्ञी और प्रभा । प्रभा से प्रभात अर्थात् प्रातःकाल उत्पन्न हुआ और त्वष्टा की कन्या संज्ञा ने तीन सन्तान उत्पन्न किये । मनु, यम और यमुना । यम और यमुना दोनों यमले=साथ ही उत्पन्न हुए । तब उस संज्ञा ने अपने पति विवस्वन् के तेजोमय रूप को न सहती हुई अपने शरीर से एक नारी उत्पन्न की । उस त्वाष्ट्री ने उसका नाम छाया रक्खा । वह छाया बोली कि मैं क्या करूं । उससे संज्ञा बोली कि हे छाये ! मेरे स्वामी की तू सेवा कर और इन बच्चों को मातृवत् पाल ।

तथेत्युक्त्वा च सा देवमगात् कामाय सुव्रता । कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चादरात् ॥ ४२ ॥ जनयामास सावर्णं मनुं मनुस्वरूपिणम् । सवर्णत्वाच्च सावर्णो मनोर्वैवस्वतस्य च ॥ ४३ ॥ शनैश्चरं तु तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु । छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः ॥४४॥ छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं मनश्चक्रे मनौ तदा । पूर्वोमनुस्तच्चक्षमे यमस्तु क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४५ ॥ तां तर्जयामास तदा पादमुत्क्षिप्य दक्षिणम् । शशाप च यमं छाया सव्रणः कृमिसंयुतः ॥ ४६ ॥ इत्यादि ॥ तपःप्रभावाद्देवेशः संतुष्टः पद्मसंभवः । वव्रे स लोकपालत्वं पितृलोकं तथाऽक्षयम् ॥ धर्म्माधर्म्मात्मकस्यास्य जगतस्तु परीक्षणम् । एवं सलोकपालत्वमगमत् पद्मसम्भवात् ॥ पितृणामाधिपत्यञ्च धर्म्माधर्म्मस्य चानघ । विवस्वानथ तज्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्म्मचेष्टितम् ॥ इत्यादि सृष्टिखण्डाध्याये ॥ ८ ॥

छाया एवमस्तु कह सूर्य्य देव की सेवा करने लगी । सूर्य्यदेव भी उसे संज्ञा ही मान आदर विनोद करने लगे उस से दूसरा मनु, शनैश्चर, तपती और विष्टी उत्पन्न

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हुई। वह छाया अपने पुत्र द्वितीय मनु में अधिक प्रेम रखती थी यह देख एक दिवस यम बड़े क्रुद्ध हुए और माता को मारा भी। माता ने उसे शाप दिया। यह लीला देख सूर्य्य ने यह समझा कि यह यममाता संज्ञा नहीं है क्योंकि अपने पुत्र को कोई माता शाप नहीं देती। इस शाप के अनन्तर यम तपस्या करने लगे। ब्रह्माजी प्रसन्न हो बोले कि हे पुत्र! वर मांग। यम ने वर मांगा कि मैं लोकपाल होऊं। अक्षय पितृलोक मुझे मिले। धर्म्माधर्म्मात्मक इस जगत् का मैं निरीक्षक होऊं। इस प्रकार ब्रह्मा की कृपा से वह यम—लोकपाल, पितरों का अधिपति, धर्म्माधर्म्म का निर्णायक हुए। इस के बाद पद्मपुराण कहता है कि सूर्य्य ने अपने श्वसुर त्वष्टा के गृहपर जा सब वृत्तान्त कह सुनाया पश्चात् त्वष्टा ने सूर्य्य को चाक पर बैठा कुछ तेज कम करके संज्ञा को साथ लगा दिया। इत्यादि इस में बहुतसी बातें अनर्गल और असम्बद्ध हैं। यमी के स्थान में यमुना का कथन, यम को शाप देना, द्वितीय मनु की उत्पत्ति, तीसरी स्त्री का नाम राज्ञी रखना आदि। परन्तु इसमें यह भी सहमत है कि सूर्य्य का ही पुत्र यम है और यही यम धर्म्माधर्म्म का स्वामी और पितरों का अधिपति है।

यम और वेद।

परन्तु यह सब कथाएं कहां से निकलीं और यथार्थ भाव इस का क्या है। यह निरूपण अब वेद से करते हैं आप लोग ध्यान से श्रवण करें।

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥
ऋग्वेद १०। १७। १ ॥

(त्वष्टा) प्रकृतिदेव (दुहित्रे) दुहिता अर्थात् कन्या का (वहतुम्+कृणोति) विवाह करता हैं (इति) इस कारण (विश्वं+भुवनम्) समस्त भुवन (समेति) इकट्ठा होता है। पश्चात् (पर्युह्यमाना) सूर्य्य से विवाहिता होने पर (यमस्य+माता) वह त्वष्टा की कन्या, यम अर्थात् यमल (जो दो सन्तान साथ उत्पन्न होते हैं उसे यम कहते हैं) सन्तान की माता अर्थात् निर्माण करने वाली हुई और यम को उत्पन्न कर वह (महः+

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विवस्वतः+जाया) महान् विवस्वान् की जाया अर्थात् पत्नी (ननाश) नेत्र से बाहिर छिप गई । पुनः—

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते ।
उताश्विनावभरद् यत्तदासीदजहा दु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥
ऋग्वेद १० । १७ । २ ॥

देवगण (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों से (अमृताम्) अमृता अर्थात् सरण्यू को (अपागूहत) छिपा लेते हैं और उस की जगह में (सवर्णाम्+कृत्वी) सवर्णा को बना (विवस्वते) सूर्य्य को (अददुः) देते हैं (उत) और (सरण्यूः) वह सरण्यू (अश्विनौ) दो अश्वी कुमारों को (अभरत्) उत्पन्न करती है । (यद्) जब (तत्+आसीत) वह सरण्यू भाग जाती है तब (द्वा+उ× मिथुना) दो मिथुन (एक जोड़ी) (अजहात्) छोड़ जाती है ।

ये ही दो मुख्य ऋचाएं हैं जिससे सम्पूर्ण आख्यायिका निकलती है इस का आशय आगे यास्काचार्य के प्रमाण से लिखा जायगा प्रथम सायणाचार्य्य इस की भूमिका में जो लिखते हैं सो सुनिये ।

अत्रेतिहासमाचक्षते । त्वष्टृनामकस्य देवस्य सरण्यूस्त्रिशिराश्चेति स्त्रीपुंसात्मकमपत्यमभूत् । ततस्त्वष्टा सरण्यूनामिकां पुत्रीं विवस्वते प्रायच्छत् । ततस्तस्यां विवस्वतः सकाशाद् यमयम्यौ विजज्ञाते । ततः कदाचिदात्मसदृश्या देवजनितायाः स्त्रियः समीपे तदपत्यद्वयं निधाय स्वयमाश्वरूपं कृत्वा उत्तरान् कुरून् प्रति जगाम । अथ विवस्वानिमां स्त्रियं सरण्यूमिति मन्वानोऽरंसीत् । तस्यां मनुर्नाम राजर्षिरजायत । ततो विवस्वानेषा सरण्यूर्न भवतीति विज्ञाय स्वयमप्यश्वो भूत्वा तामश्वरूपिणीं प्रायासीत् । ततः संकीडमानयोस्तयोः संभूतं रेतः पृथिव्यां पपात । अथ सा गर्भकामनया तत्पतितं रेत आजघ्रौ । ततः तस्याः सकाशात् नासत्यौ दस्रश्चेत्युभावाश्विनावजायेतामिति ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस में इतिहास कहते हैं । त्वष्टा नामक देव को एक कन्या सरण्यू और एक पुत्र त्रिशरा हुआ । पश्चात् त्वष्टा ने सरण्यू नाम की पुत्री विवस्वान् को दी । उस में सूर्य्य से यम और यमी भाई बहिन उत्पन्न हुए । कभी सरण्यू के समान ही एक अन्य स्त्री को देवों ने उत्पन्न किया उसके समीप अपने दोनों सन्तान रख अश्वरूप बन वह सरण्यू उत्तर कुरु को चली गई । वह विवस्वान् इस को ही सरण्यू मान उस में प्रेम करने लगा । उससे मनु राजर्षि उत्पन्न हुआ । तब सूर्य्य "यह सरण्यू नहीं है" यह जान स्वयं भी अश्वरूप बन सरण्यू के निकट चला गया । तब दोनों का क्रीड़ा करते हुए पृथिवी पर रेत पतित हुआ वह सरण्यू गर्भ की इच्छा से उस पतित रेत को सूंघने लगी तब उस से नासत्य और दस्र ये दो अश्वी उत्पन्न हुए । बृहद्देवता में श्लोकबद्ध यह आख्यायिका है यथाः—

अभवन् मिथुनं त्वष्टुः सरण्यूस्त्रिशिराश्च ह । अ० १ श्लोक १६३॥ स वै सरण्यूं प्रायच्छत् स्वयमेव विवस्वते । ततः सरण्वां जज्ञाते यमयम्यौ विवस्वतः । तौ चाप्युभौ यमौ स्यातां ज्यायांस्ताभ्यां तु वै यमः ॥ ६ । १६ ॥ दृष्ट्वा भर्तुः परोक्षन्तु सरण्यूः सदृशीं स्त्रियम् । निक्षिप्य तद्युगं तस्यामश्वाभूत्वापचक्रमे ॥ अविज्ञानाद्विवस्वांस्तु तस्यामजनयन्मनुम् । राजर्षिरभवद् सोऽपि विवस्वानिव तेजसा ७ । २ ॥ स विज्ञाय त्वपक्रान्तां सरण्यूमश्वरूपिणीम् । त्वाष्ट्रीं प्रतिजगामाशु वाजी भूत्वाऽश्वलक्षणः । ७ । ३ । सरण्यूश्च विवस्वन्तं विदित्वा हयरूपिणम् । मैथुनायोपचक्राम तां चाश्वामारुरोह सः ॥ ७ । ४ ॥ ततस्तयोस्तु योगेन शुक्रं तदपतद्भुवि । उपजिघ्रति सात्वश्वा तच्छुक्रं गर्भकाम्यया ॥ ७ । ५ ॥ आघ्रातमात्राच्छुक्रात्तु कुमारौ संबभूवतुः । नासत्यश्चैव दस्रश्च यौ तु तावश्विनाविति ॥ ७ । ६ ॥

पूर्वोक्त दोनों मन्त्रों पर जो यास्काचार्य्य का लेख है जिस से आशय भी प्रतीत होगा वह यह है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

" अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः " इस ऋचा के ऊपर कहते हैं यथा—

यमश्च यमीञ्चेत्यैतिहासिकाः । तत्रेतिहासमाचक्षते । त्वाष्ट्री सरण्यूर्विवस्वत आदित्याद् यमौ मिथुनौ जनयाञ्चकार । सा सवर्णामन्यां प्रतिनिधाय आश्वं रूपं कृत्वा प्रदुद्राव । स विवस्वानादित्य आश्वमेव रूपं कृत्वा तामनुसृत्य संबभूव । ततोऽश्विनौ जज्ञाते सवर्णायां मनुः॥

ऋचा में जो एक मिथुन अर्थात् जोड़े की चर्चा आई है इस के भाव को सूचित करने के लिये यास्क कहते हैं कि यहां पर मिथुन शब्द से ऐतिहासिक लोग यम, यमी का ग्रहण करते हैं और इस प्रकार इतिहास वर्णन करते हैं कि त्वष्टा की पुत्री—सरण्यू ने आदित्य से यम और यमी उत्पन्न किये । वह दूसरी सवर्णा को प्रतिनिधि कर भाग गई । वह विवस्वान् आदित्य भी अश्वरूप धर उस से जा मिला तब उन दोनों से दो अश्वी और सवर्णा में मनु उत्पन्न हुए ।

" **त्वष्टा दुहित्रे वहतुम्** " इस ऋचा पर यास्क कहते हैं—"**रात्रिरादित्यस्य आदित्योदयेऽन्तर्धीयते** " इस की टीका दुर्गाचार्य्य करते हैं—" रात्रिरादित्यस्य उषा जाया सा आदित्योदयेऽन्तर्धीयते" अर्थात् " त्वष्टा दुहित्रे " इस मंत्र में जो यम की माता की चर्चा आई है इस का भाव क्या है ? इस पर यास्क कहते हैं कि सूर्य्य की पत्नी रात्रि अर्थात् उषा है वह उषा आदित्य के उदय होने पर अन्तर्हिता अर्थात् लुप्त होजाती है । यही इस का भाव है । यास्क के मत से यह सिद्ध है कि सरण्यू नाम उषा अर्थात् प्रातर्वेला का है और सवर्णा नाम दैनिक शोभा का है जो प्रातःकाल के अनन्तर आती है अब इन दोनों ऋचाओं का आशय इतने से ही प्रतीत हो सकता है । यद्यपि ' त्वष्टा ' यह नाम भी सूर्य्य का है क्योंकि पदार्थों के सूक्ष्म करने की जिस में शक्ति हो उसे त्वष्टा कहते हैं परन्तु यहां संसार वा पृथिवी पर के ब्राह्म मुहूर्त्त के दृश्य का नाम त्वष्टा है । इसी ब्राह्म मुहूर्त्त में उषा अर्थात् किञ्चित् प्रकाशसहिता प्रभा उत्पन्न होती है इस हेतु, मानो, यह प्रभा त्वष्टा देवकी कन्या है प्रभात होते ही पृथिवी परके सब प्राणी जाग उठते हैं यही, मानो, समस्त प्राणियों का मिलना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya, Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है । अब यह त्वष्टा अपनी कन्या—उषा को सूर्य्य से विवाह करवाता है अर्थात् किंचित्काल के लिये सूर्य्य और उषा का सम्मेलन होता है अर्थात् प्रभात का समय थोड़े ही देर तक ठहरता है । इस के बाद जब सूर्य का उदय होने लगता है तब वहां से वह उषा भाग जाती है अर्थात् जहां पर प्रथम उषा थी वहां पर अब दिन होगया इसी दिन की शोभा का नाम सवर्णा है क्योंकि सूर्य्य के समान ही इस का भी वर्ण श्वेत रंग होजाता है, मानो, इसी को वह सरण्यू उषा) अपने स्थान में रख भाग जाती है। अथवा देव अर्थात् सूर्य्यकिरण उस उषा को तो अब दूसरी जगह लेचले और उस के स्थान में सवर्णा अर्थात् दैनिक शोभा को रख देते हैं । इस वर्णन पर यों ध्यान दीजिये । करीब दो दंड रात्रि रहने पर पृथिवी के एक भाग में प्रकाश आना आरम्भ होता है वह समय प्रकाश और अन्धकार दोनों से संयुक्त रहता है इसी के नाम सरण्यू, उषा, उर्वशी, अप्सरा, सरमा आदि वेदों में कहे गये हैं । अब थोड़ी ही देर में उषा की जगह दिन होने लगता है और वह उषा पृथिवी के दूसरे भाग में जा निकलती है । वहां थोड़ी ही देर में पुनः दिन होजाता है और वह उषा फिर आगे चली जाती है । यह प्राकृतिक दृश्य पृथिवी के गोल और घूमने के कारण प्रतिदिन हुआ करता है इस प्रकार पृथिवी के एक भाग में दिन दूसरे भाग में रात्रि एक भाग में सन्ध्या दूसरे भाग में उषा इत्यादि होता ही रहता है । इसी घटना का वर्णन ये दोनों मन्त्र करते हैं।

सरण्यूः कस्मात् सरणात् ॥ निरु० सरण नाम गमन का है (सृ गतौ) जिस हेतु उषा भाग जाती है इस कारण इस को सरण्यू वा सरमा आदि अनेक नाम दिये गये हैं और इसी कारण इस को अश्वा भी कहते हैं । "अशू व्याप्तौ" यहां केवल धात्वर्थ का ग्रहण होता है अथवा घोड़ी के समान भागती हुई प्रतीत होती है इसलिये अश्वा कहा है इस के पीछे सूर्य्य भी लगा रहता है अथवा यों कहिये कि सूर्य्य के विना सरण्यू वा उषा हो ही नहीं सकती इस हेतु इस अवस्था में सूर्य्य का भी नाम अश्व होता है । जब सरण्यू अर्थात् उषा चली जाती है तो वहां दिन होजाता है यही, मानो, सवर्णा का बनाना वा होना है सूर्य्य के समान श्वेत वर्ण होने से दैनिक शोभा—स्वरूपा देवी का नाम "सवर्णा" है मानो यह अब सूर्य्य की द्वितीय पत्नी हुई । अब वह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरण्यू दो सन्तान उत्पन्न कर रखजाती है इसका तात्पर्य्य केवल दिन, रात्रि है क्योंकि उषा के अनन्तर दिन और रात्रि होती हैं इस कारण मानो ये दोनों उषा के पुत्र हैं इन को ही यम और यमी कहते हैं । अब वह सरण्यू अश्वरूपा होकर भाग जाती है और सूर्य्य भी उस के पीछे अश्वरूप होकर जा मिलते हैं । इन दोनों के संयोग से दो अश्वी पैदा होते हैं । इस का भाव यह है कि "अश्वी" यह नाम द्यावापृथिवी का है "तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्यावित्येके" निरुक्त ॥ १२ । १ ॥ जहां २ उषा काल होता है वहां २ द्युलोक और पृथिवीलोक की उत्पत्ति होने लगती है अर्थात् रात्रि में अन्धकार के कारण न तो पृथिवी और न द्युलोक ही स्वच्छ दीखते हैं परन्तु ज्योंही उषा आती है त्योंही पृथिवी और आकाश अच्छे प्रकार दीखने लगते हैं यही मानो दो अश्वी की अर्थात् द्यावापृथिवी की उत्पत्ति होनी है । अश्व अर्थात् सूर्य्य और उषा उन का जो पुत्र उसे अश्वी कहते हैं पृथिवी और द्युलोक ही अश्वी हैं कोई व्यक्ति विशेष नहीं ।

अब कहा गया है कि सवर्णा में मनु उत्पन्न होता है इस का भी भाव यह है कि यहां मनु नाम मनुष्यजाति का है । जातिनिर्णय में मनु शब्द पर लेख देखो । रात्रि में मनुष्य का शयन करना ही मानो एक प्रकार से मरण है और जागृत होना ही मानो एक प्रकार से जन्म लेना है जब सवर्णा अर्थात् दिनरूपा देवी जो सूर्य्य के समान ही तेजस्विनी और समानवर्णा है, आती है तब मनुष्य जाग उठता है यही जागना मानो सवर्णा से मनु अर्थात् मनुष्यजाति का जन्म लेना है जिसे कारण पृथिवी पर के सब जीवों का राजा मनुष्य ही है अतः कहा गया है कि वह मनु सब का राजा होता है । इस से यह सिद्ध हुआ कि मनु कोई खास पुरुष नहीं किन्तु मनुष्य मात्र का नाम मनु है । इसी मनु को लेकर अनेक कथाएं भिन्न २ रूप से रची गई हैं और इस को सावर्णि वैवस्वत आदि नाम दे के इसी से सूर्य्यवंश की उत्पत्ति मानी है । परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि यह सब इतिहास काल्पनिक हैं । इस आलङ्कारिक कथा को पीछे सत्य मानने लगे । कैसी अविद्या फैली ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुराणों की संगति।

सरण्यू और संज्ञा—हम कह चुके हैं कि उषा के ही नाम वेदों में सरण्यू सरमा उर्वशी आदि आए हैं। पुराणों में इसी को संज्ञा कहा है क्योंकि रात्रि में सो जाने के कारण मानो संज्ञा अर्थात् चेष्टा अथवा बोध नष्ट होजाती है उषा काल आते ही सब जीव मानो संज्ञा प्राप्त कर लेते हैं इस हेतु पुराणों में इसी उषा का नाम संज्ञा रक्खा है। **छाया और सवर्णा**—यह अपने स्थान में छाया को छोड़ जाती है इस का भाव यह है कि संज्ञा (उषा) के बाद दिनरूपा देवी आती है मानो वह संज्ञा की छाया है इस कारण इस को छाया कहा है और उषा के पश्चात् सूर्य्यसमान ही दिन की शोभा होती है इस कारण वेद ब्राह्मणादि ग्रन्थों में इस को सवर्णा कहा है। इस प्रकार छाया और सवर्णा दोनों एक ही हैं।

अब क्या वेद क्या पुराण सब से यही सिद्ध हुआ कि यम सूर्य्य का पुत्र है और यास्काचार्य्यादिकों के व्याख्यान से यह भी सिद्ध हुआ कि यह आलङ्कारिक वर्णन है यथार्थ में न कोई सूर्य्य की पुत्री और न कोई पुत्र है किन्तु सूर्य्य और पृथिवी के योग से यह सब लीला होती रहती है इस हेतु लौकिक-सम्बन्धवत् वर्णन किया गया है। यास्काचार्य्य ने विस्पष्टरूप से दिखला दिया कि उषा ही, मानो, सूर्य्य की पत्नी है और उदय होने पर मानो, वही भाग जाती है और यही उषा मानो दिन और रात्रिरूपा काल सृजन करती रहती है। अब थोड़ी भी बुद्धि रखने वाला पुरुष समझ सकता है कि इस वर्णन का यथार्थ में क्या आशय है। क्या कोई अज्ञानी पुरुष भी कह सकता है कि मानुषीवत् यह उषा (प्रातःकाल) भी कोई चेतनावती मूर्तिमती देवी है। क्या यह सवर्णा (दैनिकशोभा) कोई सचमुच नारी है क्या यह दिन और रात्रि यथार्थ में कोई रूपवान् चेतन देव देवी है ? अज्ञानी भी ऐसा नहीं कह सकता है। एवं मैं पूर्व में यह भी कह चुका हूं कि पुराण प्रायः सब विषय को आख्यायिका रूप में वर्णन करते हैं जैसे धर्म्मकी १३ पत्नियोंका वर्णन अग्नि की स्त्री स्वाहा का कथन इत्यादि अतः सूर्य्य का पुत्र यम है इसका भी भाव यही मानना पड़ेगा कि यह अहोरात्ररूप-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

उपाधिवाला जो अखण्ड काल है यही सूर्य्य का पुत्र है क्योंकि सूर्य्य के कारण ही हमें यह अहोरात्र-रूप काल ज्ञात होता है और इसी की गणना से फल, दण्ड, प्रहर, अहोरात्र, मास वर्ष. आदि की प्रतीति होती है और इन्ही अहोरात्र रूप काल से प्राणियों की आयु मापी जाती है हम देखते हैं कि किसी की आयु १ वर्ष किसी की १०० वर्ष किसी की १००० वर्ष है। इसी काल के बीच में रह के जीव मरते जीते रहते हैं इस हेतु, मानो, यह यम=अहोरात्र ही सब को मार रहा है जिला रहा है इसी के नाम मृत्यु, अन्तक, दण्डधर आदि हैं। मारता है अतः मृत्यु, "मारयतीति" अन्त अर्थात् विनाश करता है अतः अन्तक " अन्तयतीति" इसी के अधीन रहके सब कोई कर्म्मफल पा रहे अतः दण्डधर इत्यादि जानना इस से सिद्ध हुआ कि यम किसी चेतन और शरीरधारी व्यक्ति का नाम नहीं। अहोरात्ररूप काल ही यम है। जब यम ही कोई चेतन व्यक्ति क्या पुराणों क्या वेदों से सिद्ध नहीं होसका तब कब सम्भव है कि उस के दूत लेखक चित्रगुप्त आदि चेतन सिद्ध हो सकें और उस की पुरी नगरी और लोक की सिद्धि हो। वेदों की एक साधारण स्वाभाविक उपमा के द्वारा कितनी बातें बनाई गईं और आगे चलके कैसी दुर्बोध होगईं कि कहा नहीं जाता।

यम और वैवस्वत-जिस कारण आलङ्कारिक अथवा रूपक वर्णन द्वारा कहा गया है कि यम का पिता विवस्वान् और माता सरण्यू है अतः वेदों में यम के लिये वैवस्वत पद भी बहुधा आते हैं " विवस्वतोऽपत्यं वैवस्वतः" यथाः—

वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्यत॥१०।१४।१॥
यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकं ॥ १० । ५८ । १ ॥

इन मन्त्रों के आगे अर्थ किये जायंगे। एक स्थल में यम को संबोधन करके कहागया है कि आप के पिता विवस्वान् को भी आदर करते हैं यथाः—

अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिहमादयस्व।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता ते ऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्यानिषद्य ॥१०।१४।५॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसे २ ही वैदिक अलङ्कारको न समझके लोगों को भ्रम उत्पन्न हुआ और हो रहा है। लोग समझने लगे कि यम भी कोई चेतन देव है जिस के लिये प्रार्थना स्तुति प्रभृति कही गई हैं। एवमस्तु इन अलङ्कारोंका आगेभी यथाशक्ति वर्णन किया जायगा।

यम शब्दार्थ धर्म्म और मृत्यु कैसे ?

यह समझना अब कुछ कठिन नहीं है प्रथम तो धर्म्म भी अपने वश में लोगों को स्थित रखता है इसलिये धर्म्म का नाम ही यम है। दूसरी बात यह है कि सूर्य भगवान् हम प्राणियों को मुख्यतया मृत्यु और धर्म दो पदार्थ देते हैं। एक तो, उनके उदय से प्राणी घटते बढ़ते और अन्त में मरजाते हैं अर्थात् मृत्यु का भी कारण सूर्य देव ही हैं अतः प्राचीन ग्रंथों में मृत्यु के कारण होने से स्वयं सूर्य मृत्यु कहे गए हैं। दूसरा, सूर्य के उदय होने पर ही हम धर्मकार्य आरम्भ करते हैं अथवा यों कहिये कि ज्योति के विना हम जीव कोई कार्य्यानुष्ठान ही नहीं कर सकते रात्रि में सूर्य के प्रतिनिधि अग्निदेव को स्थापित करके ही कुछ कार्य कर सकते हैं। अतः सूर्य के विना अर्थात् ज्योति के विना हमारा धर्म कार्य सिद्ध नहीं हो सकता अतः सूर्य को साक्षात् धर्म्म-स्वरूप, धर्म्मफल, धर्म्मस्थान पुण्यात्माओं का निवासस्थान इत्यादि मानते हैं। अतः सूर्य से उत्पन्न अहोरात्ररूप उपाधियुक्त यह यम अर्थात् अखण्ड काल भी धर्म्म और मृत्यु इन दोनों के मुख्य कारण होने से धर्म्म और मृत्यु नाम से पुकारे जाते हैं इस प्रकार वेदों में यह यम शब्द धर्म्म और मृत्युवाचक होता है अथवा यम साक्षात् सूर्य का नाम भी है आगे उदाहरण देंगे और सूर्य मृत्यु नाम से कई जगह पुकारा गया है इस कारण यम शब्द मृत्युवाचक है इस प्रकार यम को धर्म्म वा धर्म्मराज आदि शब्दों से पुकारने लगे "धर्म्मराजः पितृपतिः"।

वैवस्वत यम शब्दार्थ ईश्वर कैसे ?

"यमं मातरिश्वानमाहुः" इत्यादि प्रमाणों से यम शब्दार्थ ईश्वर भी है इसमें अणुमात्र संदेह नहीं परन्तु वैवस्वत विशेषण के साथ यम शब्दार्थ ईश्वर कैसे ? निघण्टु में विवस्वान् यह नाम मनुष्य का है "विवस्वतां मनुष्याणां हित इति वैवस्वतः"

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो मनुष्यों का हितकारी हो वह वैवस्वत है। वेद की विलक्षणता यहां यह है कि प्रायः यम शब्द के साथ सूर्यवाचक अन्यान्य शब्द न रहके विवस्वान् शब्द का ही प्रयोग रहेगा। भाव यह है कि वेदों में सूर्य के आदित्य, भग, अर्य्यमा, धाता, सविता, इन्द्र, विष्णु, विवस्वान् आदि अनेक नाम हैं परन्तु अन्यान्य किसी शब्द के साथ सम्बन्ध न रख के केवल विवस्वान शब्द से सम्बन्ध यम शब्द का है इसका क्या कारण ? सूर्यवाचक शब्दों में से एक विवस्वान् शब्द ही प्रायः मनुष्यवाचक है अतः दोनों अर्थ सूचित करने के हेतु प्रायः वैवस्वत पद आता है जब यम शब्दार्थ काल होगा तब विवस्वान् का अर्थ सूर्य, जब यम शब्दार्थ ईश्वर तब विवस्वान् का अर्थ मनुष्य होगा इसी प्रकार प्रत्ययार्थ में भी भेद होगा। अथवा "विवसति सर्वत्रैव निवसतीति वैवस्वतः" इत्यादि अर्थ का भी अनुसन्धान करना। "यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः" मनु० ८। ९२ ॥ यहां कुल्लूक वैवस्वत यमशब्दार्थ परमात्मा करते हैं।

यम-शब्दार्थ न्यायाधीश सभापति आदि कैसे ?

अब यह भी समझना कुछ कठिन नहीं। यह अहोरात्र-रूप यम अपने नियम से ऋतु आदिको उत्पन्न करता है क्या राजा क्या प्रजा क्या विद्वान् क्या मूर्ख सब को समान रूप से संहार करता है। इसकी दया है तो सब पर तुल्य, यदि क्रूरता है तो सब पर समान, अतः इस यम के समान जो न्याय करता समान दृष्टि से देखता ऐसा परमन्यायी पुरुष सभापति सभाधीश आदि यम नाम से पुकारे जाते हैं। अथवा न्यायाधीश सभापति आदि अपने नियम में अहोरात्ररूपवत् सब को चलाते हैं इसलिये भी यम कहलाते हैं। इत्यादि।

"यम और नित्य विभु महाकाल" ॥

परन्तु आगे देखते हैं कि विवस्वान् के पुत्र होने पर भी यम को विवस्वान् से उत्कृष्ट बतलाते हैं इससे प्रतीत होता है कि वेदका तात्पर्य नित्य विभु काल से भी है। केवल अहोरात्रात्मक अनित्य काल से ही नहीं। यथा:—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमः परोऽवरो विवस्वान् ततः परं नाति पश्यामि किञ्चन ।
यमे अध्वरो अधि मे निविष्टो भुवो विवस्वानन्वाततान।अ०१८।२।३२

(यमः+परः) यम उत्कृष्ट है परन्तु (विवस्वान्+अवरः) सूर्य्य यम की अपेक्षा न्यून है (अतः+परम्) इससे परे किसी को मैं नहीं देखता (यमे+मे+अध्वरः+अधि+निविष्टः) यम में मेरा याग अधिनिविष्ट है (विवस्वान्+भुवः+अनु+आततान) सूर्य्य, द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और भूलोक को आनुपूर्विक प्रकाशित करता है ।

यहां देखते हैं कि सूर्य्यदेव से भी श्रेष्ठ उत्कृष्ट यमदेव कहा गया है । ठीक है । काल अखण्ड है । सूर्य्य के अभाव में भी काल विद्यमान ही रहता है । हां, सूर्य्य केवल घड़ी के समान काल को विभक्त करता है । सूर्य्य चन्द्रादि यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक समय विनष्ट हो जाता है । परन्तु यह महाकाल सदा एक रस स्थित रहता है इसी हेतु काल को नित्य विभु माना है । यहां साफ प्रतीत होता है कि वेद केवल इसी अहोरात्रात्मक काल की ही शिक्षा नहीं देता किन्तु इससे भी परे नित्य विभु महाकाल को भी सूचित करता है जो न तो देवों को और न मर्त्यों को छोड़ता है अतएव ऋग्वेद में भगवान् दिखलाते हैं यथाः—

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत । बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं प्रारिरेचीत् ॥१०।१३।४

अर्थ—हे मनुष्यो ! वह यम (देवेभ्यः) सूर्य चन्द्रादि देव-गणों के लिये (कम्+मृत्युम्) किस मृत्यु को (अवृणीत) चुनता है और (प्रजायै) प्रजा के अर्थात् उत्पत्तिमान् प्राणियों के लिये (कम्+अमृतम्) किस अमृत दूत को (न+अवृणीत) नहीं चुनता है किन्तु (यमः) वह न्यायकारी महाकाल-स्वरूप देव सब की (प्रियाम्+तन्वम्+प्र+अरिरेचीत्) प्रिय तनु को जीवात्मा से अच्छे प्रकार रिक्त=शून्य कर देता है अतएव इस अनित्यता को देख मर्त्यगण (बृहस्पतिम्) सबों के अधिपति (ऋषिम्) परमज्ञानी सर्व-व्यापी (यज्ञम्) यजनीय परमात्मदेव को ही (अकृण्वत) प्रेम से सेवा करते हैं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

भाव इसका यह है कि यह अखण्डकाल क्या देवों क्या मनुष्योंको एक न एक दिन सब का संहार करता है। इस हेतु यम शब्दार्थ केवल अहोरात्र ही नहीं किन्तु नित्य विभु महाकाल भी है। यदि कहो कि "न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि" उस समय मृत्यु और अमृत दोनों नहीं थे। यह वाक्य काल की अनित्यता सिद्ध नहीं करता किन्तु सृष्टि के अभाव के कारण मृत्यु के मार्य्य विषय के अभाव का बोधक है अतएव इस अहोरात्रात्मक काल का विनाश कहा है। यथाः—

* यम का मरण ॥

यमो ममार प्रथमो मर्त्यानां यः प्रेयाय प्रथमो लोकमेतम् ।
वैवस्वतं संगमनं जननां यमं राजानं हविषा सपर्यत॥अ०१८।३।१३

अर्थ=(मर्त्यानां+प्रथमः) मरने वालों में प्रथम (यमः+ममार) यम अर्थात् दिवसरूप काल मरा और (यः+प्रथमः) जो प्रथम (एतं+लोकम्) इस दृश्यमान लोक को (प्रेयाय) चला गया। ऐसे (जनानां+सङ्गमनम्) प्राणियों को संगम अर्थात् इकट्ठा करने हारे (राजानम्) दीप्ति-प्रद (वैवस्वतम्+यमम्) वैवस्वत यम को (हविषा+सपर्य्यत) प्रीति-रूप हवि से सत्कार करो।

भाव—इसका आशय अब कठिन नहीं। क्योंकि हम निरूपण कर चुके हैं कि यम यह नाम दिन का है। यह दिन उत्पन्न-प्राणियों को उपदेश दे रहा है कि प्रत्येक पदार्थ विनश्वर है। प्रथम स्वयं यह दिनरूप देव प्रतिदिन सायंकाल होते ही मर जाता है और पृथिवीके एक भाग को छोड़ दूसरे भागमें जाना ही इसका परलोक-गमन है। इस दिवस-रूप देवका प्रतिदिन आना जाना ही हमें शिक्षा दे रहा है कि मृत्यु सबके लिये तैयार है। ऐ मनुष्यो ! ऐसे वैवस्वत अर्थात् मनुष्यमात्र के हितकारी सब प्राणियों को अपने साथ रखनेहारे राजराजेश्वर परमात्म-देव को प्रीति से पूजो। एक बात यहां यह भी स्मरण रखनी चाहिये कि सूर्य पश्चिम दिशा में जाते ही, मानो, वृद्ध हो अस्त हो जाता है पुनरपि पूर्व दिशा जाके, मानो, नवीन जीवन धारण करता है अतः पूर्व-पश्चिम

---

* परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्था मनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्यत ॥ ऋ० १० । १४ । १ ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दिशाएं, मानो, जीवन-मरण सूचित कर रही हैं। यम नाम सूर्य का भी है सूर्य के गमनागमन दिखा वेद ईश्वर की ओर ले जा रहा है। इस यम के मरण के वर्णन से वेद शिक्षा देता है कि मेरा तात्पर्य केवल इस अहोरात्रात्मक सूर्यजन्य काल से ही नहीं किन्तु अविनश्वर नित्य विभु काल से भी जानो। परन्तु यहां ही तक वेद नहीं ठहरता इस नित्य विभुकाल का भी शासक एक नित्य चेतन शुद्ध बुद्ध यम नाम से प्रसिद्ध परब्रह्म परमात्मा है इसको भी अच्छे प्रकार दिखलाता है। यथाः—

तिस्रोद्यावः सवितुर्द्वाउपस्थां एका यमस्य भुवनेविराषाट्। आणिंन रथ्यममृताऽधि तस्थुरिह ब्रवीतुयउतच्चिकेतत् ऋ०१।३५।६

(द्यावः+तिस्रः) द्यौ अर्थात् द्युलोक तीन हैं (द्वौ+सवितुः+उपस्थाम्) दो सविता के समीपस्थ हैं और (एका+यमस्य+भुवने) एक यम के भुवन में है जो (विराषाट्) वीरों को आश्रय देनेहारा है और (इह) इसी तृतीय द्युलोक में (आणिम्+न+रथ्यम्) रथ सम्बन्धी कील-समूहों के समान (अमृता+अधि+तस्थुः) अविनश्वर पदार्थ स्थित रहते हैं (ब्रवीतु०) जो इसको जानता है वह इसका निरूपण करे।

भाव यह है कि सूर्य के दोनों पार्श्व (बगल) में अथवा ऊपर नीचे, मानो, दो लोक हैं जो सूर्य से प्रकाशित होने से सूर्यसमीपस्थ कहे गये हैं। अथवा दिन और रात्रिरूप दो लोक हैं। इसी प्रकार प्रकाशक और प्रकाश्य के हिसाब से इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को दो लोक मानें। और इससे परे तृतीय लोक अर्थात् ब्रह्मस्वरूप ही जो तृतीय लोक है जिसके आश्रित ये नित्य जीव और प्रकृति अधीन रहती है इसी के निकट सब धर्मवीर पहुंचते हैं इसी के बारे में "तृतीये धामन्नध्यैरयन्त" इत्यादि पद आये हैं। यहां पर यम शब्द से उसी परमात्मा चेतनदेव का ग्रहण है। इस प्रकार आप देखते हैं कि वेद के वर्णन का क्या क्रम होता है। पहले इस अहोरात्रात्मक काल को यम कहा। तब इसके पिता विवस्वान् को 'यम' यह नाम देता। पश्चात् यह सूर्य भी जिस यम के अधीन है उसकी चर्चा करता पुनः वह यम (काल) भी जिस चेतन महायम के आश्रित है उसको बतलाता है। मैं इन सब विषयोंको अति संक्षेप से कहता जाता हूं। विचारशील पुरुष इसको बहुत विस्तार से समझें।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"यम पितरों के अधिपति कैसे ?"

इसके अनेक कारण हैं। १–यम-शब्दार्थ धर्म और मृत्यु भी हैं और पितृ-शब्दार्थ वृद्ध और रक्षक हैं यह अनेकशः कहा गया है। वृद्ध पुरुषों के साथ यम अर्थात् मृत्यु प्रतिक्षण लगा ही रहता है कोई पितर आज मरे कोई कल कोई परसों इस प्रकार पितर अर्थात् वृद्धतम नर नारी प्रतिदिन एक न एक इस लोक से उठते ही रहते हैं अर्थात् यम जो मृत्यु है उस ने इन पितरों के ऊपर, मानो, अपना अधिकार पूरा जमा रक्खा है अतः पितरों का अधिपति यम कहा गया है। इसी कारण पितृशब्द के साथ यम शब्द का प्रयोग बहुत देखते हैं। यह दृश्य वानप्रस्थाश्रम में अच्छे प्रकार मालूम हो सकता है क्योंकि यहां वृद्धतर माता पिता पितामही पितामह प्रपितामही प्रपितामह तीनों प्रकार के पितर इकट्ठे रहते हैं इन में से एक न एक इस संसार में प्रस्थान करते ही रहते हैं यहां ही यमका व्यापार पूरा प्रतीत होता है कि और कहना पड़ता है कि यहां, मानो, यम पूरा राज्य कर रहा है। २–सकल लौकिक व्यापार छोड़ के पितृगण इस जरावस्था में सदा धर्म्म की ही चिन्ता करते हैं। अरण्य में निवास करते हुए उन्हीं बृहदारण्यकादि ग्रन्थों का मनन करते हैं। ईश्वर-परायणता के अतिरिक्त अन्य कोई कार्य्य ही नहीं रहता अतः यम जो धर्म्म है वह भी इन के ऊपर, मानो, अपना राज्य पूरा जमा रहा है अतः पितरों का अधिपति यम कहा गया। ३–वैदिक संकेत यह है कि प्रत्येक प्रकार के रक्षकों को पितर कहना चाहिये और यम के समान एक-दृष्टि से देखने वाले पुरुष का भी नाम यम है सो जो कोई सब पितरों को एक नियम में चलाने वाला नियुक्त किया जाय वह भी यम पुकारा जाय इस कारण से भी पितरों के अधिपति को यम कहते हैं। ४–यम नाम साक्षात् सूर्य्य का भी है और पितर नाम ऋतु का है ऋतुओं के अधिपति यम अर्थात् सूर्य्य हैं अतः पितृपति यम है अथवा पितर नाम देवों का है उस का आधपति यम-सूर्य्य है। पितर=आप्त। यम=ईश्वर इत्यादि अनेक हेतुओं से पित्रधिपति यम कहलाता है। इसी कारण वेद कहते हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमः पितृणामधिपतिः स माऽवतु । अस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् कर्म्मण्यस्यां पुरोधायामस्यां प्रतिष्ठायामस्यां चित्यामस्यामाकूत्यामस्यामाशिष्यस्यां देवहूत्यां स्वाहा ❀ ॥

अथर्व० । ५ । २४ । १४ ॥

परम वृद्ध कर्म्मनिष्ठ पितरों का अधिपति जो यम अर्थात् धर्म्म है अथवा रक्षकों का अधीश्वर जो सभेश न्यायाधीश है अथवा रक्षकों का भी जो रक्षक ईश्वर है वह मुझे प्राप्त हो । इस कर्म्म में सहायक हो इत्यादि इसके अर्थ होते हैं ।

१–यमाय पितृमते स्वधा नमः । अथर्व १८ । ४ । ७४ ।

२–तेभिर्यमः संरराणः । अ० १८ । ३ । ४६ ।

३–यमाय त्वांगिरस्वते पितृमते स्वाहा । यजु० ३८ । ६ ।

इत्यादि मन्त्रों में पितृमान् यम की चर्चा देखते हैं आगे भी लिखे जायंगे । महीधर यजुर्वेदीय मन्त्र का यमशब्दार्थ वायु करते हैं । इसप्रकार यम पितृपति कहाते हैं और पितृगणों के साथ इसका इतना प्रयोग है । एक बात यहां और भी स्मरण रखनी चाहिये कि ' पितर ' नाम सूर्य्य-किरणों का भी है। यम नाम सूर्य्यका है अतः सूर्य्यदेव पितर अर्थात् किरणों के अधिपति हैं । इत्यादि भाव जानना ।

यमदूत ।

कृणोमि ते प्राणापानौ जरां मृत्युं दीर्घमायुः स्वस्ति ।
वैवस्वतेन प्रहितान् यमदूतांश्चरतोपसेधामि सर्वान् । अ०८।२।११

ईश्वर कहता है कि ऐ सदाचारी पुरुष ! (ते+प्राणापानौ+कृणोमि) तुझे प्राण अपान वायु देता हूं और (जराम्+मृत्युम्+दीर्घम्+आयुः) जरावस्था, मृत्यु और दीर्घआयु देता हूं (स्वस्ति) सर्वथा तुझे कल्याण प्राप्त हो (वैवस्वतेन+प्रहितान्) वैव-

* विवाह संस्कार में " यमः पृथिव्या अधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् " इत्यादि पाठ आया है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वत-यम से प्रहित अर्थात् भेजे हुए (चरतः+सर्वान्+यमदूतान्) विचरते हुए सब यमदूतों को (अप+सेधामि) दूर करता हूं।

नयताऽमून् मृत्युदूता यमदूता अपोम्भत ।
परःसहस्रा हन्यन्तां तृणेद्वेनान् मत्यं भवस्य ॥ अ० ८ । ८ । ११ ॥

(मृत्युदूताः+यमदूताः) ऐ मृत्युदूतो ! हे यमदूतो ! (अमून्+नयत) इनको लेजाओ (अप+उम्भत) इन को बांधो (परःसहस्राः+हन्यन्ताम्) सहस्रों हत होवें (भवस्य+मत्यम्) भव का मत्य=विद्युत् का गोला (एनान्+तृणेढु) इनको हिंसित करे।

इत्यादि मन्त्रों में यमदूत शब्द के प्रयोग देखते हैं। ये यमदूत कौन हैं ? अब यह जानना सुगम है। यह सिद्ध होचुका है कि यम नाम महाकाल का है। अतः इस के दूत भी वैसे ही होने चाहिये। इस कारण, क्षण, पल, विपल, दण्ड, प्रहर, दिन रात्रि, दोनों सन्ध्याएं इत्यादि जो काल के अवयव हैं यही यम के दूत हैं। अन्यान्य कोई चेतन देहधारी नहीं। ये ही पल विपलादि—समय प्राणियों की आयुको हरण कर रहे हैं। अब मन्त्रों के भावार्थ पर ध्यान दीजिये। यह अखण्ड महाकाल—यम, मानो, इन क्षण पलादिकों का स्वामी है और ये सब इस के दूत हैं। मानो, यह महाकाल अपने दूतों को प्राणहरणार्थ इधर उधर भेजा करता है और ये प्राणों को हरण कर ले आते हैं। इसी हेतु अलङ्कार रूप से कहा जाता है कि वैवस्वत यम इन को भेजते हैं ये इस के दूत हैं इत्यादि। यम नाम मृत्यु का है यह इस अथर्ववेद के ८ अष्टम काण्ड के अध्ययन से अच्छे प्रकार जाने जाते हैं। यह काण्ड ही एक प्रकार से मृत्यु काण्ड है। यहां कहीं प्राणहर्त्ता को मृत्यु-दूत और कहीं यम-दूत कहीं दोनों कहा गया है। एवं अन्तकाय मृत्यवे नमः इत्यादि पद से मृत्यु के लिये भी अन्तक पद आता है जो यम का पर्य्याय है। अथवा न्यायाधीश आदि भी यहां यम शब्दार्थ हो सकता यथा योग्य अर्थ करना। यम के दूत ये क्षण पलादिक हैं यह आगे के मन्त्र से और भी विस्पष्ट होता है। यथाः—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृण्मः ।
इन्द्राग्नी विश्वे देवास्तेऽनु मन्यन्तामहृणीयमानाः।अ०८।२।२१

ईश्वर कहता है कि ऐ महाकाल ! (ते+शतम्+अयुतम्+हायनान्) तुम को १०० एकसौ १०००० दश सहस्र वर्ष और (द्वे+त्रीणि, चत्वारि+युगे) दो, तीन, चार इत्यादि अनेक युग (कृण्मः) देता हूं। (इन्द्राग्नी०) इन्द्र, अग्नि और सूर्य्य-किरण, पृथिवी, सूर्य्य चन्द्र आदि देव सब इस महाकाल की रक्षा करें। अर्थात् यह जगत् बहुत दिनों तक स्थिर रह जिस से इस काल का सार्थक्य हो।

यम और यमसभासद्।

यद् राजानो विभजन्त इष्टापूर्तस्य षोडशं यमस्यामी सभासदः
अविस्तस्मान् प्रमुञ्चति दत्तः शितिपात् स्वधा । अ० ३।२९।१॥

(यमस्य) यम अर्थात् राजराजेश्वर न्यायाधीश के (अमी राजानः सभासदः) जो ये बड़े २ राजा सभासद् हैं (इष्टापूर्तस्य+यत्+षोडशम्) इष्ट विविध यज्ञ, आपूर्त कूप, तडागादि अर्थात् शुभ कर्म्म का जो सोलहवां भाग है (विभजन्ते) उसको ये यमसभासद् अपने न्याय के कारण लेते हैं अर्थात् शुभ कर्म्म के सोलहवां भाग राजसभासदों को प्राप्त होता है। क्योंकि रक्षा के विना शुभ कर्म्म नहीं हो सकते। (तस्मात्) इस हेतु (अविः) रक्षारूप महा धर्म्म " अव रक्षणे " (शितिपात्) श्वेत पैर वाला है अर्थात् दया सत्यता यश कीर्ति आदि श्वेत और क्रूरता, असत्यता, अपकीर्ति आदि कृष्ण कहाते हैं। दया सत्यादि धर्म्म के पैर हैं। पुनः (स्वधा) सब को धारण करने वाली है। वह रक्षा प्रजाओं में फैलने से (प्रमुञ्चति) उन को सब दुःखों से छुड़ा लेती है। यहां यम शब्दार्थ न्यायाधीश विस्पष्ट है।

यम के दो कुत्ते ॥

श्यामश्च त्वा मा शबलश्च प्रेषितौ यमस्य यौ पथिरक्षी श्वानौ ।
अर्वाङेहि मा वि दीध्यो मात्र तिष्ठः पराङ्मनाः ।अ०८।१।९॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(पथिरक्षी+यमस्य+प्रेषितौ+यौ+श्वानौ) मार्गरक्षक और यम के भेजे हुए जो दो श्वान हैं उस में से एक (श्यामः च) श्याम और दूसरा (शबलः च) शबल है। वे दोनों श्वान (त्वा) ऐ मनुष्यो ! तुझे (मा) बाधा न डाले (अर्वाङ्+एहि) सीधे मेरी ओर आओ (मा+विदीध्यः) चिन्ता मत करो (अत्र+पराङ्मनाः+मा+तिष्ठः) इस संसार में मुझ से पराङ्मुखमत रहो।

अब यम के दो कुत्तों के भावको समझना कुछ कठिन नहीं रहा। हम देखते हैं कि यह जो समय व्यतीत हो रहा है इस में लगातार दो घटनाएं होती ही रहती हैं। एक दिन और दूसरी रात्रि। ये ही पृथक् २ यम के दो कुत्ते हैं। दो शब्द का प्रयोग ही सूचित करता है कि इसका अर्थ दिन रात्रि है। कुत्ता इस को इस कारण कहा है। कि ये दिन रात्रि-समय कुत्ते के समान प्राणियों के परमभक्त रक्षक हैं यदि इस की पोषण सम्यक् रीति से हो, अन्यथा ये ही दो कुत्ते पागल हो इस प्रकार मनुष्योंको काटते हैं कि उस रोग से मुक्त होना अतिदुस्तर होजाता है। जो सदाचारी इस समय को अच्छे प्रकार अच्छे कर्म्म में लगाते हैं उन के लिये रक्षक और जो दुराचारी बुरे कर्म्ममें इसको लगाते हैं उन के लिये भक्षक बन जाता है। रात्रि प्रायः काली होती है और दिन प्रायः श्वेत होता है इस कारण एक कुत्ते को श्याम और दूसरे को शबल कहा है। चित्र विचित्र रंग का नाम शबल है इस पृथिवी पर सर्वत्र दिन एक समान नहीं होता अथवा विविध वर्ण भूषित जीवों से यह दिन रूप देव राजित होता है इत्यादि कारण वश दिन को शबल कहा है। अब मन्त्राशय यह यह हुआ कि ईश्वर जीवों को चिताता है कि ऐ जीवो ! तुम्हारे लिये जो रक्षक बनाए गए हैं ये तुम्हारे रास्ते में घातक न बनें (जैसे राजदूत साधुपुरु के रक्षक और असाधु के भक्षक होते हैं) यदि तुम सीधे मेरी ओर आओगे मुझ से पराङ्मुख न होवोगे तब तो ये दोनों अहोरात्रात्मक कुत्ते तुम्हारी रक्षा करेंगे और यदि इस प्रकृति देवी की लीला में अनुचित रीति से फँसोगे तब वे ही दोनों कुत्ते खाजावेंगे इत्यादि भाव जानना। आगे भी इसी प्रकार का भाव समझना।

अतिद्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन् सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥ऋ०१०॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अतिद्रव श्वानौ सारमेयौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा।
अथा पितॄन् सुविदत्राँ अपीहि यमेन ये सधमादं मदन्ति। अ०१८

ऋग्वेद और अथर्ववेद के पाठ में किञ्चित् भेद है इस हेतु दोनों पाठ दिये गए हैं। (चतुरक्षौ) चतुर्नेत्र (शबलौ) श्याम और शबल जो (सारमेयौ) सरमा "उषा, प्रातःकाल" के पुत्र (श्वानौ) दो कुत्ते हैं उनको (साधुना+पथा) साधु अर्थात् सत्य मार्ग से (अतिद्रव) प्राप्त करो (अथ) और (सुविदत्रान्+पितॄन्) सुविदत्र अर्थात् परमज्ञानी पितरों के (उपेहि) समीप जा सुशिक्षा प्राप्त करो (ये) जो पितर (यमेन+सधमादं+मदन्ति) यम अर्थात् सत्यभाषण, सत्य विद्योपदेशादिरूप धर्म, उस के साथ विलास करते हैं।

चतुरक्ष—चार २ प्रहरों के दिन और रात्रि होते हैं। मानो, एक २ प्रहर एक एक नेत्र है। सरमा=यह नाम भी उषा का है उषा के अनन्तर दिन रात्रि आते हैं अतः, मानो, ये दोनों इसके पुत्र हैं। यम भी 'सरण्यू' अर्थात् उषा का पुत्र है फिर यम के सारमेय दूत कैसे? उत्तर यद्यपि सरण्यू का पुत्र यम कहा है परन्तु जैसा मैं पूर्व में लिख चुका हूं कि अहोरात्र समूहरूप जो अखण्ड काल है उसे यम कहते हैं और विभक्तरूप जो दिन और रात्रि है वह उसके, मानो, दूत हैं। इसमें भी क्षण पल विपल आदि हैं वे, मानो, छोटे २ यम के दूत हैं। एवं छः मास उत्तरायण एक दूत छः मास दक्षिणायन एक दूत इस प्रकार रूपक समझ लेवें। अथवा द्वितीय अर्थ इसका यह भी होगा कि कोई मरणकाल में सदाचारी पुरुष को समझाता है कि ऐ मुमूर्षु पुरुष! जिस हेतु आप धर्मात्मा हैं अतः इस चतुरक्ष श्याम और शबल रात्रि दिन को (अतिद्रव) उल्लंघन करें अर्थात अहोरात्रात्मक काल के अधीन पुनरपि न होवें किन्तु अपने उत्तम कर्म के बल से यम अर्थात् अपने वश में सब को रखनेहारा जो नियन्ता परब्रह्म है इसके साथ जो विलास करते हुए मुक्तावस्था में पितरगण हैं उन्हें प्राप्त होवें। अथवा कोई ऋषि वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करते हुए को शिक्षा देते हैं कि ऐ पितरो! जिस दिन-रात्रि रूप काल में श्याम-शबल अर्थात् बुरे भले कर्म किये जाते हैं उन्हें अब (अ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तिद्रव) त्यागो । अब उत्तम पथ से उन परमज्ञानी पितरों से जा मिलो जो केवल यम (धर्म) के साथ ही आनन्द कर रहे हैं । इत्यादि इसके भाव हो सकते हैं आगे भी ऐसा ही समझना ।

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ । ताभ्यामेनं परिदेहि राजन् स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ।ऋ०।१०
यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिषदी नृचक्षसा । ताभ्यां राजन् परिधेह्येनं स्वस्त्यस्मा अनमीवं च धेहि ॥ अ० १८॥

(राजन्+यम) हे सद्व्यवहारप्रकाशक धर्म (ते+यौ) आप के जो (रक्षितारौ) रक्षक (चतुरक्षौ) चतुःप्रहर रूप नयनवाले (पथिरक्षी) मार्ग रक्षक और (नृचक्षसौ) मनुष्यों के व्यापार प्रदर्शक (श्वानौ) दिन और रात्रिरूप शबल और श्याम कुत्ते हैं (एनम्+ताभ्याम्) उन दोनों को यह पुरुष (परि+देहि) समर्पित करो और (स्वस्ति+अनमीवम्+च) क्षेम और आरोग्य (धेहि) दो ।

उरूणसा वसुतृपा उदुंबलौ यमस्य दूतौ चरितो जनाँ अनु । तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दाता मसुमद्येह भद्रम् ॥ ऋ० १०

अथर्ववेद १८ । २ । १३ । यहां पाठ भेद नहीं । (यमस्य) इस महाकालनामा यम के (दूतौ) अहोरात्ररूप दो दूत (जनान्+अनु) जनों के पीछे २ (चरतः) विचरते हैं । वे कैसे हैं (उरूणसा) दीर्घ-नासिका-युक्त हैं (असुतृपौ) प्राण लेके जो तृप्त होते हैं (उदुम्बलौ) और बड़े बलिष्ठ हैं (तौ) वे (सूर्याय+दृशये) सूर्य्य के दर्शन के लिये (अद्य+इह) आज इस शुभ कर्म में (असुम्+भद्रम्) समीचीन प्राण और कल्याण (पुनः+अस्मभ्यम्+दाताम्) पुनः हम को देवें ।

इस 'श्वान्' शब्द के ऊपर छान्दोग्योपनिषद्भाष्य में विस्तार से वर्णन किया है प्राण, धर्म, उषा, किरण आदिकों को भी 'श्वान्' कहा है। युधिष्ठिर महाराज के साथ

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यही धर्मरूप कुत्ता स्वर्ग तक रहा। जनमेजय को इसी धर्मस्वरूप सारमेय ने शाप दिया था। सरमा नाम उषा वा सूर्य किरणों का है इसीसे सारमेय बनता है। आजकल की भाषा में सारमेय भी कुत्ते का नाम है, इत्यादि अनुसन्धान से यम वा यम का सभासद् और कुत्ता आदि भी केवल काल ही सिद्ध होता है।

यम और चित्रगुप्त—आर्ष ग्रन्थों में चित्रगुप्त की कोई वार्ता नहीं पाते। परन्तु सकल पुराण इसकी चर्चा विस्तार से करते हैं। यथार्थ में चित्रगुप्त कौन है? जब यमदेव ही कोई चेतन हस्त-पादादि युक्त देव सिद्ध नहीं होता है तब चित्रगुप्त लेखक चेतन कैसे सिद्ध हो सकता है। यम नाम धर्म का है। धर्म का लेखक कौन? निःसन्देह धर्म का लेखक चित्त अर्थात् अन्तःकरण है। इसी अन्तःकरण का नाम पुराणों में चित्रगुप्त है। जो कुछ हम भले बुरे कर्म करते करवाते, सुनते सुनवाते, देखते, दिखाते, सोचते विचारते हैं सब की छाया अन्तःकरण रूप भीत के ऊपर जा पड़ती है। और पत्थर की लकीर के समान उस पर सब बातें चित्रित हो जाती हैं। जैसे फोनोग्राफ हमारे शब्दों को अपने में चित्रित करता है, जैसे फोटोग्राफ छाया लेता है वैसे ही हमारा अन्तःकरण सकल बाह्य वा आभ्यन्तरिक पदार्थों को अपने में खचित कर लेता है। वह कभी नहीं मिटता वही कर्मरेख कहलाती है। जिस हेतु अज्ञात रूप से प्राणियों के व्यापार का चित्र खींचता है, अतः इसका नाम "चित्रगुप्त" है।

यम और दक्षिण दिशा ॥

लोक कहते हैं कि दक्षिण दिशा में यमपुरी है। पापी लोगों को उसी ओर यमदूत लेजाते हैं इत्यादि। इस का क्या कारण है? अब बुद्धिमान् पुरुषों के लिये इसकी भी कारण दुर्बोध नहीं है। सुनिये। इस पृथिवी पर एक विचित्र घटना देखते हैं कि जब सूर्य्य दक्षिणायन होता है तब दिन बहुत छोटा होजाता है जाड़ा बहुत पड़ने लगता है। कभी २ ऐसा हिम गिरता है कि बड़े २ वृक्ष भी सूख जाते हैं पौष, माघ में प्रायः कमल, कुमुदिनी आदि पुष्प और विविध कोमल लताएं तो अवश्य हिमपात से दग्ध होजाती हैं। कभी २ मनुष्य भी शिमला, कैलाश आदि हिमप्रधान प्रदेश में इस

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शैत्य से मर जाते हैं, स्वयं सूर्य्य भगवान् निस्तेज, प्रभा-रहित वृद्ध-पुरुष-सदृश भासित होते हैं। यह सब घटना सूर्य्य के दक्षिण ओर होने पर ही होती है। इतना ही नहीं, श्री रामचन्द्र जब भारतवर्ष की दक्षिण दिशा में गए हैं तब ही, सूर्य्य-प्रभा-सदृशी सीताजी का हरण हुआ है। रावणादि राक्षसों का आक्रमण भी भारतवर्ष के ऊपर दक्षिण दिशा से ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष का इतिहास भी साक्षी देता है कि किसी समय दक्षिण की ओर से कई एक दस्यु-जातियां इस देश पर बराबर चढ़ाई करती रहीं। जो कुछ हो, लौकिक-घटना के ऊपर ध्यान न देके केवल मैं प्राकृतिक-घटना की ओर देखता हूं तो निःसन्देह सूर्य्य का दक्षिण होना और इस के साथ साथ पृथिवी पर हिम की वृद्धि और दिन का घटना इत्यादि विशेष घटनाएं मनुष्यों के हृदय में इस भाव को उत्पन्न कर दे सकती हैं कि दक्षिण दिशा में कोई महाप्रबल मृत्यु है जो इस महान् सूर्य्य को भी अपनी ओर खींच कर निगलना चाहता है चूंकि सूर्य्य उस से कहीं अधिक बलिष्ठ है इस कारण प्रतिवर्ष इस से बच के पुनः देव-भूमि उत्तर की ओर लौट आता है। इस प्रकार प्राकृतिक आपत्ति देख अनुमान करने लगे कि दक्षिण में यम की पुरी है जहां अपनी सेना सहित यम निवास करता है जो सर्वदा सूर्य्य को भी तंग किया करता है और पौराणिक समय में सूर्य्यदेव आर्य्यों के परम प्रिय परमपूज्य देव रहचुके हैं। ऐसे देव को दक्षिण में क्लेश-ग्रस्त होते हुए देख पीछे लोगों को निश्चय होगया कि इस दिशा में अवश्य ही यमपुरी है। एवं यह घटना वाल्मीकिरामायण से और भी दृढ़ होगई कि जब सूर्य्य-वंशी रामचन्द्र की प्रभा-स्वरूपा-सीता देवी का दक्षिण से हरण हुआ अतएव कोई २ समालोचक रामायण को सूर्य्य के दक्षिणायन और खिन्न होने की घटना स्वरूप ही मानते हैं। जो कुछ हो इस प्रकार धीरे २ दक्षिण दिशा का अधिपति यम बन गया और लोग उत्तर को देवपुरी और दक्षिण को यमपुरी कहने लगे। इसी भाव के वश हो श्मशान, मारणादि क्रिया दक्षिण दिशा में करने लगे दक्षिण को अमंगल-सूचक समझने लगे।

परन्तु क्या सचमुच ऋषियों के हृदय में भी यह भाव था। नहीं। ऋषि समझते थे कि न तो सूर्य्य घटता और न बढ़ता, न मन्द और न तीक्ष्ण होता, न उत्तर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और न दक्षिण ही यात्रा करता। यह सब घटना पृथिवी पर पृथिवी के गोल और भ्रमण के कारण से होती है। हां! अलङ्काररूप से इन घटनाओं को मानव-जीवन को सुधारने के लिये वर्णन किया करते थे। एवं यम का राज्य अर्थात् अहोरात्ररूप काल का राज्य सर्वत्र तुल्य समझते थे। यदि कहो कि " ये दक्षिणतो जुह्वति जातवेदो दक्षिणाया दिशोऽभिदासन्त्यस्मान्। यममृत्वा ते पराञ्चो व्यथन्तां प्रत्यगेनान् प्रतिसरेण हन्मि।" अथर्व० ४। ४०। २। और " दक्षिणायै त्वा दिश इन्द्रायाधिपतये तिरश्चिराजये रक्षित्रे यमायेषुमते " अथर्व० १२। ३। ५६। इत्यादि वैदिक-प्रयोगों में दक्षिण दिशा और यम का सम्बन्ध देखते हैं पुनः आप ऐसा क्यों कहते हैं। इस का समाधान यह है कि पूर्व में वर्णन होचुका है कि अहोरात्रात्मकोपाधि-विशिष्ट काल ही वैदिक-यम है। इसी से लोगों की आयु मापी जाती है और इसी के अभ्यन्तर रह प्राणी मरते जाते हैं इस कारण इसी के नाम अन्तक, मृत्यु, काल, दण्डधर आदि हैं। दक्षिणायन-सूर्य्य में शैत्याधिक होने से प्रायः सम्पूर्ण पृथिवी पर प्राणियों का अधिक निपात होता है। छोटी २ चींटी आदि कीड़े, मक्खी प्रभृति पतङ्ग, कमलादि कोमल लताएं विशेष कर गृहस्थों के हरे भरे खेत इत्यादि अनेक पदार्थ विनष्ट होने लगते हैं। अतएव कहा है कि दक्षिण दिशा मृत्युद्वार है। यहां दक्षिण-दिशा से दक्षिणदिशास्थ सूर्य्य से अभिप्राय है। पृथिवी के दक्षिणभाग से नहीं। और इसी कारण धीरे २ दक्षिण दिशा को अमंगल भी मानने लगे। इत्यलम्।

कदाचित् लोग यह शङ्का करेंगे कि सूर्य्य के दक्षिणायन होने पर दुःख के स्थान में सुख ही सुख देखते हैं। वर्षा ऋतु आते ही जीवगण शीतल होजाते हैं। विविध औषधियों और हरित तृणों से पृथिवी भर जाती है तत्पश्चात् शरद्, हेमन्त और शिशिर ऋतु आने पर बड़ा आनन्द प्राप्त होता है। लोग खूब खा पीके पचा सकते हैं, आमोद, प्रमोद-क्रीड़ा, हास विलास इन ऋतुओं में निरुपद्रव कर सकते हैं। एवं जब सूर्य्य उत्तर होने लगता है तब से तो एक प्रकार क्लेश ही क्लेश आने लगता है। गरमी से व्याकुल होजाते, अन्नपान से रुचि जाती रहती है, बड़े वेग से वायु चलने लगता है, ग्रीष्म में पशु, पक्षी भी त्राहि २ मचाने लगते, तड़ाग, सरोवर, नदी प्रभृति जला-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शय सूखजाते हैं। एवं किसी २ देश में तो यह ग्रीष्म ऋतु इतना भयङ्कर होता है कि लूह से मनुष्य भी मरने लगते हैं। फिर आप उत्तरायण को प्रशस्य और दक्षिणायन को निन्द्य कैसे कह सकते हैं। ठीक है। ऐसा सन्देह हो सकता है परन्तु यह भी तो सोचिये उत्तरायण को तब देवपदवी क्यों दी है। आप के शास्त्र शुभ कर्म्म का विधान उत्तरायण में क्यों प्रशस्त मानते हैं। इतना ही नहीं वल्कि दक्षिणायन में मृत्यु होने से दुर्गति और उत्तरायण में सुगति कहते हैं। भीष्मपितामह का उदाहरण इस में पेश करते हैं। यदि दक्षिणायन अच्छा है। तो इस सब का कारण क्या है? सच बात यह है कि दक्षिणायन में जितना सुख है उस से कहीं बढ़ के दुःख है। वर्षा आरम्भ होते ही पृथिवी के अभ्यन्तरनिवासी चींटी आदि पानी की अधिकता से मरजाते हैं यदि कहीं नदियों की बाढ आई तो मूषक, मृगाल, शशक आदि नदीसमीपस्थ जन्तु डूब कर मरजाते हैं। शरद् ऋतु आते ही खूब बीमारी फैलती है। जाड़े में हिमप्रदेशनिवासी जीवों का निपात हो ही जाता है अन्यत्र भी जीवनप्रद, शस्यसम्पन खेत हिमपात से सूख जाते हैं। आप देखते होंगे कि जाड़े में गृह मक्षिकाओं का तो एक प्रकार से अभाव होता है। इंगलैंड आदि हिमप्रधान प्रदेशों में जीवों को बड़ा क्लेश पहुंचता है। हां, पृथिवी के कुछ ऐसे भाग हैं जहां जाड़े में जीवों को विशेष सुख पहुंचता हो परन्तु अधिक भाग दुःखपद ही है, इस प्रकार सम्पूर्ण पृथिवी और समस्त जीवों पर दृष्टि डालने से दक्षिणायन दुःखप्रद ही प्रतीत होगा। उत्तरायण में यद्यपि गरमी होती है परन्तु वह आगे सुख का कारण बन जाती है। यदि सूर्य्य की इतनी प्रचण्डता न हो पृथिवी पर गरमी पहुंचे तो एक वर्ष के अभ्यन्तर लाखों बीमारी फैल के सब जीवों को नष्ट करदे, अतः दक्षिणायन की अपेक्षा उत्तरायण लाभप्रद है। इत्यादि समाधान जानना। इति।

यम का पितरों के ही साथ इतना सम्बन्ध क्यों? अब इस प्रश्न को भी समझना कठिन नहीं यम "पितरों का अधिपति कैसे" इस प्रकरणमें एक तरहसे इसका भी उत्तर हो चुका है तथापि संक्षेप से यहां परभी सुनिये। मानो, यम अर्थात् अहोरात्रात्मक काल ही सब को मारता है अथवा यही मृत्यु का कारण है अतः मृत्यु भी इस को कहते

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हैं । वृद्धों के साथ प्रतिक्षण मृत्यु लगी हुई है । इन के साथ मृत्यु क्रीड़ा कर रही है । मानो, साक्षात् इन के देह पर मृत्यु देव विराजमान है । परमवृद्ध पुरुष को देख सब को मृत्यु भासित होने लगती है । लोग कहते हैं कि अब इन की मृत्यु निकट है । ये कानों से अब नहीं सुनते आखों से नहीं देखते, इन्द्रियां सब क्रियाओं से निवृत्त होगई। आहा ! देखो, साक्षात् इन पर यमराज विराजमान हैं । इत्यादि कारण से पितरों के साथ यम शब्दका प्रयोग अधिक है और भी मानो, यह अहोरात्ररूप काल एक देव है । परन्तु इन के सहायक कौन हैं ? निःसन्देह सूर्य्य के किरण । यदि ये किरण न हों तो इस अहोरात्रात्मक कालरूप यमका अस्तित्वही रहना दुर्घट है। अब यह जानिये कि सूर्य्य के किरणोंका नामभी पितर है, आगे उदाहरण दिया हुआ है, वेद और उपनिषद् जानने वालो को अच्छे प्रकार यह भी ज्ञात है कि अंगिरा, वासिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्त्य, गौतम, मरीचि आदि जितने ऋषिवाचक-शब्द हैं वे किरणवाचक भी हैं अतएव **सप्तऋषि** यह किरण के नामों में आता है । अब आप समझ सकते हैं कि वह अहोरात्रात्मक कालरूप यम सर्वदा पितर अर्थात् सूर्य्य किरणों के साथही विद्यमान रहेगा रात्रि में भी सूर्य्यकिरणानुगृहीत चन्द्रकिरणरूप पितर भासमान होंगे, इस कारण भी पितृ शब्द के साथ यम का बहुत सम्बन्ध देखते हैं, और भी । पिता नाम सूर्यदेव का है । वह बड़ा जाग्रत्, प्रशस्त प्राणप्रद और देवों का भी देव है । ऐसा सूर्य्य जिस के पिता है उस कारण प्रायः यम को अधिक स्थान में "पितृमान्" कहा है यथा यमाय त्वाङ्गिरस्वते पितृमते स्वाहा" यजु० ३८—९ ॥

पितृ-शब्द-किरणवाचक ॥

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय-उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः । मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः । ९—८३—३ (उषसः+पृश्निः) प्रातःकाल का सूर्य्य (अरूरुचत्) सब को प्रकाशित कर रहा है (अग्रियः) वह श्रेष्ठ (उक्षा) जलसेक्ता (वाजयुः) अन्न-प्राण-प्रद सूर्य्य (भुवनानि+विभर्ति) सकल भूतों को धारण पोषण करता है (अस्य+मायया+मायाविना+ममिरे) इस सूर्य्य की माया से मायावी अर्थात् अन्धकार मर जाते हैं । (नृचक्षसः+पितरः+गर्भम्+आदधुः) जीवों के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

नेत्रस्वरूप जगत्पालक सूर्य्यकिरण गर्भ अर्थात् वर्षारूप गर्भ को धारण करते हैं। यहां सायण भी " पितरः पालका देवा पितरो जगद्रक्षकका रश्मयः " पितृ-शब्द के पालक देव और किरण दो अर्थ करते हैं। इस से विस्पष्ट हो जाता है कि पितर जो सूर्य्य किरण उन के विना यम अर्थात् अहोरात्रात्मक काल रह ही नहीं सकता है अतः पितरों के साथ यम का अधिक प्रयोग है। इति।

यम ईश्वरवाचक ॥

तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।
आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्।ऋ०-१-३५

कर्थ—(तिस्रः+द्यावः) तीन द्युलोक हैं (द्वा) दो (सवितुः) सूर्य्य के (उपस्थाँ) समीपस्थ हैं। और (एका) एक द्युलोक (यमस्य+भुवने) यम के भुवन में है (विराषाट्) जो वीर पुरुषों का स्थान है और (रथ्यम्) रथ सम्बन्धी (आणिम्+न) आरा के समान जिस में (अमृता) अमृत अर्थात् मुक्त जीव (अधि+तस्थुः) स्थित हैं (यः+उ) जो ही (तत्+चिकेतत्) इस विज्ञान को जानता है (इह+ब्रवीतु) वही यहां कहै।

तीन द्युलोक=द्युलोक, पृथिवी, और अन्तरिक्ष ये ही त्रिभुवन त्रिलोक आदि कहलाते हैं। इन में द्युलोक और पृथिवी ये दोनों सूर्य्य से प्रकाशित और धृत हैं इस कारण सूर्य्यसमीपस्थ कहाते हैं और सूर्य्य और पृथिवी के बीच के स्थान का नाम अन्तरिक्ष प्रसिद्ध है। परन्तु यहां कुछ अन्य अभिप्राय है। ऐसा भी कोई स्थान है जहां नतो यह सूर्य्य और न यह पृथिवी है। वह स्थान स्वयं प्रकाशमान ब्रह्मपद है " न तत्र सूर्य्योभाति न चन्द्रतारकम् " इसी कारण वेद कहता है वह तृतीय स्थान " यमस्य भुवने " सब को अपने नियम में रखने हारा ईश्वरके स्थानमें है अर्थात् ब्रह्मस्वरूप ही वह स्थान है और जिस के आश्रित अमृतगण स्थित हैं, यहां विस्पष्टतया प्रतीत होता है कि यम नाम परब्रह्म परमात्मा का है इस का अर्थ पूर्व में भी कर चुके हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्वामीजी यहां यमशब्द का अर्थ वायु करते हैं । " इन्द्रं मित्रं वरुणमग्नि माहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान् । एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ऋ०-१ १६४-४६ यहां यम शब्दार्थ ईश्वर प्रत्यक्ष ही है । यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः मनुः । "सर्वंसंयमनाद् यमः परमात्मा । वैवस्वत इति दण्डधारित्वात् । देवनाद्देव इत्यादि " यहां पर कुल्लूक भट्ट भी यम-शब्दार्थ परमात्मा करते हैं ।

यम आदित्य वाचक ।

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः।
अहरहर्जायते मासि मास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम्॥ ऋ०।

अर्थ—(यः+अयं+होता) जो यह होता सब प्रकार के सुख देनेवाला अग्नि है (किः+उ+सः) वह कैसा है अर्थात् उसका व्यापार क्या है वह (यमस्य+कम्+अपि+ऊहे) सूर्य्य को अन्न पहुंचाता है (यत्+देवाः+समञ्जन्ति) जिस को देव अर्थात् सूर्य्यकिरण प्राप्त करते हैं वह (अहः+अहः) प्रतिदिन और (मासि+मासि) मास मास में अग्निहोत्रादि कर्म के लिये (जायते) उत्पन्न होता है (अथ+देवाः+हव्यवाहम्+दधिरे) इस हेतु विद्वद्गण अग्नि को सर्वदा धारण करते हैं । " यमस्य मृते यद्वा नियमयतीति यमो यजमानः " सा० ॥ सायण यहां यम शब्दार्थ मृत्यु और यजमान करते हैं । " यमस्य भगवत आदित्यस्य·····यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे इत्यस्या-मृचि यमत्वमादित्यस्य वक्ष्यति " दुर्गाचार्य्यः ॥ दुर्गाचार्य्य यम शब्दार्थ आदित्य करते हैं। रमेशचन्द्रदत्त इस का यजमान अर्थ करते हैं । यह मन्त्र निरुक्त में भी पठित है ।

यस्मिन् वृक्षे सुपलाशे देवैः संपिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ऋ० १०-१३५।

सायण का अर्थः—(सुपलाशे+वृक्षे) शोभन-पत्रोपेत वृक्ष के समान (यस्मिन) जिस स्थान पर (यमः) आदित्य (देवैः+संपिबते) देव अर्थात् निज किरणों से संमिलित होता है " संपिबते संगच्छते " (अत्र+विश्पतिः) इस स्थान में स्थित हो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

प्रजाओं को प्रकाश और वर्षा आदिकों से पालन करनेहारा (पिता) प्राणात्मा से सबका जनक वह आदित्य (पुराणान्+नः+अनुवेनति) निरन्तर स्तुति करने वाले हम चिरन्तन ऋत्विजों को (अनुवेनति) कामना करता है । यहां सायण भी यम शब्दार्थ आदित्य करते हैं । यहां "यमोरश्मिभिरादित्यः" यास्क भी यम शब्दार्थ आदित्य अर्थात् सूर्य्य ही करते हैं इसी सूक्त की " इदं यमस्य सादनम् " इस ऋचा में सायण यम शब्दार्थ आदित्य ही करते हैं परन्तु यह सम्पूर्ण सूक्त ईश्वर में भी घटता है " सुपलाश वृक्ष के समान जहां यम अर्थात् ईश्वर, देव अर्थात् मुक्त विज्ञानी पुरुषों के साथ संगत (संमिलित) होता है जो सब प्रजाओं का पालक है वह हम पुराण पुरुषों को भी देखने हारा है इत्यादि "अग्निरपि यम उच्यते तमेता ऋचोऽनुपवदन्ति" निरुक्त ४-२० यास्काचार्य यम शब्दार्थ अग्निभी करते हैं और इस में " सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न विद्युत्वेषा प्रतीका । यमोह जातो यमोजनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् " इत्यादि प्रमाण देते हैं । साकंजानां····षडिद्यमा ऋषयो देवजा इति ऋ० १--१६४--१५ यहां सब कोई यम शब्दार्थ ऋतु करते हैं इस प्रकार यम शब्द अनेकार्थक है इस में सन्देह नहीं । अब मैंने यम के बारे में बहुत कुछ लिखा है और पितृगण आदि के साथ भी इस की चर्चा रहेगी अतः ग्रन्थ अब बढ़ाना नहीं चाहते हैं । आप लोगों ने देखा कि सायण यहां तक बढ़ते हैं कि यम शब्दार्थ यजमान तक करते हैं । इन लोगों ने सम्पूर्ण वेदों को केवल कर्म्म में ही विनियुक्त किया है अतः अन्यान्य अर्थ में नहीं घटाया है। और इसी कारण वेद का अर्थ संकुचित होगया है । अतः वेदों पर विस्तार से व्याख्यान दिखलाने की आवश्यकता है ॥ इति ॥

यम और अन्यान्य ग्रन्थकार ॥

तिस्रो द्यावः सवितुः । ऋग्वेद १। ३५ । ६ । इस ऋचा की टिप्पणी में रमेशचन्द्रदत्तजी लिखते हैं । पुराणे "यम" अर्थ कि ताहां आमरा सकलेई जानि । किन्तु ऋग्वेदे प्रथमे कहा के " यम " वालित ? विवस्वानेर द्वारा सरण्यूर गर्भे यम ओ ताँहार भगिनी यमीर जन्म हय ताहा ३ सूक्तेर १ ऋचेर टीकाय देखान हइयाछे । विवस्वान्

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थ आकाश आकाशेर यमज सन्तान कहारा ? सरण्यूर अर्थात् प्रभातेर आकाशेर सहित विवाहेर अर्थ कि ? maxmuller वलेन दिवाई यम, रात्रिई यमी। सरण्यूर विवास्वानेर सहित विवाह हइयाछे अर्थात् उषा आकाश के आलिङ्गन करियाछेन, सरण्यू यमज दिग के राखिया अन्तर्हित हइलेन, अर्थात् उषा अदृश्य हइल। दिवा हइयाछे। विवस्वान् द्वितीया दार परिग्रह करिलेन अर्थात् सायंकाल आकाश के आलिङ्गन करिले Science of Language (1882) vol. II P. 556.

अतएव मक्षमूलरेर मते दिवा (वा सूर्य्य) ओ रात्रि के प्रथम ऋषिगण विवास्वान् (आकाश) ओ सरण्यू (प्रभातेर) यमज सन्तान यम यमीनाम दियाछेन। परे यम मृत्युर राजा हईले कि रूपे ? मक्षमूलर वलेन प्राचीन ऋषिगण जे रूप पूर्व दिग के जीवनेर उत्पत्ति स्थल मने करितेन, पश्चिम दिग के सेईरूप जीवनेर अवसान मने करितेन अर्थात् जीवनेर पथभ्रम करिया परलोकेरपथ देखाईतेन। एहिरूपे यम परलोकेर राजा हय अनुभव उदय हइल। Science of Language (882) val. II. P. 562 एई वैदिक यम के लइया परे पुराणे जे समस्त गल्प सृष्ट हइयाछे ताहा आमरा जानि। किन्तु प्राचीन इरानेओ एइ यम रूपान्तरे दृष्ट हयेन एवं तत् सम्बन्धी ओ गल्प रचित हइयाछिल।

इरानीय पुस्तके ताहांर नाम यिम तिनि प्रथम राजा एवं सत्यतार सृष्टिकर्त्ता वलिया परिचित। एवं पुण्यवान् मनुष्यगण ताँहार साक्षात् पाय। एवं ताँहार सहित परम उपास्य अहुरेर साक्षात् पाय एवं सुखे वास करे। एवं वेद जे रूप यमेर पिता विवस्वान्, इरानीय " अवस्थाय " सेइरूप जिमेर पिता त्रिवन्घत्। आमरा "अवस्था" नामक धर्म्मपुस्तक हइते एकटी अंश उद्धृत किरते छे।

अहुर मज्द उत्तरदिलेन, हे जाराथस्त्र ! तोमार पूर्वे शोभनीय यिम नामक मर्त्येरसहित आमि प्रथमे कथा कहिया छिलाम, ताहाकेई आमि अहुरेर धर्म्म, जराथ्रुस्तेर धर्म्म, शिक्षा दिया छिलाम। हे जाराथस्त्र ! आमि अहुर मज्द ताँहाके वलिया छिलाम जे हे विवन्घतेर पुत्र शोभनीय यिम ! तुमई आमार धर्म्मेर वाहक ओ प्रचार हओ। जेन्द अवस्था प्रथम फर्गद।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

परे अहुरेर आदेश अनुसारे यिम एकटी " वर " नामक नूतन जगत् सृष्ट करेन तथाय केवल पुण्यात्मा लोक ओ उत्कृष्ट पशु वृक्षादि थाके । ऋग्वेदेर यमपुरी ओ पुण्यात्मा जाइया सुखे वास करे पौराणिक यमपुरी ताहार ठीक विपरीत पापीदिगेर नरक। परे इराने एइ गल्प आरओ वाड़िते लागिले, एवं पारसीक प्रसिद्ध कवि फेर्दुसी ताहार रचित " शाहनामाय " यिमके यमशिद् नामे एक जन पराक्रान्त सम्राट् वलिया वर्णना करेन। एई यमशिद् जे प्राचीन ' अवस्थाय ' यिम एवं अवस्थाय यिम जे वेदेर यम ताहा असामान्य फरासिस पण्डित Burouf प्रथमे आविष्कार करेन। तिनिई प्रथमे देखाइया देन जे फेर्दुसीर ऐतिहासिक यमशिद् फेरुदीन ओ गर्शास्य आर केह नहे, जेन्द अवस्था यिम थ्रैतयन एवं केरेशास्प एवं जन्द अवस्थाय एइ तिन जन आदिम मनुष्य केह नहे ऋग्वेदेर यम त्रैतन एवं कृशाश्व। यमगाथा–ऋग्वेद १०–१४ सूक्त।

यमसूक्त ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्था मनु पस्पशानम्। वैवस्वतं संगमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्यत। १०।१४।१।अथर्व० १८।१।४६।महीरिति,....हविषा सपर्य्यत।

हे अन्तरात्मन् जीव ! (हविषा) शुद्ध और सत्यादिभाषणरूप हविसे (राजानम्+यमम्) अज्ञानरूप अन्धकार को विनष्ट कर ज्ञानरूप प्रकाश का दाता यम अर्थात् ईश्वरीय नियम जो धर्म्म है उस को (दुवस्यत) सेवो। वह यम कैसा है (प्रवतः) उत्तम कर्म्म करनेवाले मनुष्यों को (महीः) कर्म्मानुसार उत्तरोत्तर महान् स्थानों को (अनु+परेयिवांसम्) क्रमपूर्वक लेजाने वाला पुनः (बहुभ्यः) पुण्यकृत् बहुत पुरुषों के लिये (पन्थाम्+अनुपस्पशानम्) उत्तम मार्ग में विघ्न न डालने वाला अर्थात् पापियों के लिये ही विघ्न करता है पुण्यात्मा पुरुषों के लिये नहीं। पुनः (वैवस्वतम्) सर्व-मनुष्य-हितकारी पुनः (जनानाम्+संगमनम्) पुण्यात्मा पुरुषों से संगत अर्थात् सेव्यमान। ऐसे ईश्वरीय नियम को सेवो ॥ १ ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूति रपभर्तवा उ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वाः । २ ।

(यमः+प्रथमः) धर्म्म ही प्रथम अर्थात् मुख्य है । वही (नः) हमारे (गातुम्) मार्ग को (विवेद) जानता है (एषा+गव्यूतिः) यह धर्म्म मार्ग किसी पुरुष से (न+अपभर्तवा+उ) अपहृत=विनाशित नहीं हो सकता । (यत्र+नः+पूर्वे+पितरः+परेयुः) जिस मार्ग पर हमारे पूर्वज पितर चलते थे (एनाः स्वाः पथ्याः अनु) इसी हितकारी निजपथ का अनुसरण (जज्ञानाः) जन्म लेनेवाले पुत्र-पौत्रादिक सन्तान भी करें । "गव्यूतिः पद्धतिः मार्ग इत्यर्थः । अपभर्तवै अपहर्त्तुं देवैर्मनुष्यैर्वा परिहर्त्तुं न शक्या । पथ्याः हितकराः" सायणः ॥ २ ॥

मातली कव्यैर्यमोऽङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः । यांश्च देवा वावृधुर्ये च देवान् स्वाहाऽन्ये स्वधयाऽन्ये मदन्ति ।३।अ०१८।

(मातली) मातृवत् रक्षक (बृहस्पतिः) वेदाचार्य्यवत् शिक्षक वह (यमः) धर्म्म (कव्यैः) ज्ञानी (अङ्गिरोभिः) अग्निहोत्रादिक कर्म्मानुष्ठायी और (ऋक्वभिः) ऋचाध्यायी=वेदपाठी पितरों के साथ (वावृधानः) परम वृद्धि को प्राप्त होता है । (यान्+च) जिन कव्यादि तीनों प्रकार के पितरों को (देवाः+वावृधुः) परज्ञानी पुरुष बढ़ाते हैं और (ये+च) जो कव्यादि पितर प्रत्युपकार में (देवान्) देवों को बढ़ाते हैं (अन्ये) एक देवगण (स्वाहा) से (अन्ये) दूसरे पितृगण (स्वधया) स्वधा=निज धर्म्म से (मदन्ति) आनन्दित होते हैं। अथवा (कव्यैः) परम ज्ञानी पितरों के साथ वह धर्म्म (मातली) मातृवत् रक्षक रूप में (अङ्गिरोभिः) आग्नेय विद्याओं में निपुण पितरों के साथ (यमः) न्यायकारी रूप में (ऋक्वभिः) ऋग्वेदीय पितरों के साथ बृहस्पति अर्थात् आचार्य्य रूप में बढ़ता है ॥ ३ ॥

इमं यम प्रस्तर मा हि सीदाङ्गिरोभिः संविदानः । आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषामादयस्व ।४।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब साक्षात् धर्म्म को सम्बोधित करके कहते हैं (यम) हे धर्म्मराज ! आप (अङ्गिरोभिः+संविदानः) अग्निहोत्री आदि पितरों से संगत अर्थात् प्राप्त हैं अथवा जानने योग्य हैं (हि) जिस कारण आप को हमारे पितृगण सेवते हैं इस हेतु (इ-मम्+प्रस्तरम्) इस विस्तीर्ण महायज्ञ में (आ+सीद) सब प्रकार से आवें । और (कविशस्ताः) विज्ञानी पुरुषों से शस्त=प्रस्तुत=प्रयुक्त (मन्त्राः) वेदमन्त्र (त्वा+ आ+वहन्तु) आप को यहां लावें (राजन्) हे प्रकाशस्वरूप धर्म्मदेव ! (एना+ह-विषा) हमारी इस श्रद्धाभक्ति से आप (मादयस्व) हम को प्रसन्न करें । जहां वैदिक-मन्त्र पढ़े विचारे जाते हैं वहां धर्म्म का आगमन होता है और इस धर्म्मतत्त्व को ज्ञानी ऋषि ही जानते हैं इस में सन्देह ही क्या ? ॥ ४ ॥

अङ्गिरोभिरागहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व। विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन् यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥ ५ ॥ अथ० १८

(यम) हे धर्म ! (यज्ञियेभिः) यज्ञार्ह (वैरूपैः) विविधरूप-संयुक्त (अंगि-रोभिः) अग्निहोत्री आदि पुरुषों के साथ आप (आ+गहि) इस यज्ञमें आवें और (इह+ मादयस्व) यहां सब को हर्षित करें मैं (विवस्वन्तम्+हुवे) सूर्य के गुण को भी गाता हूं (यः+ते+पिता) जो आप के पालक हैं हे धर्म ! (अस्मिन्+बर्हिषि+यज्ञे) आप इस ब्रह्मयुक्त यज्ञ में (आ+निषद्य) अच्छे प्रकार विराजमान होवें । वेदों में कहीं गुणी और कहीं साक्षात् गुण सम्बोधित हुआ है । विचारने की बात है कि जहां यज्ञार्ह पुरुष नहीं वहां धर्म्म भी नहीं । यज्ञों में यज्ञार्ह पुरुष क्या आते हैं क्या बैठते हैं, मानो, धर्म्म आते हैं धर्म्म बैठते हैं । धार्म्मिक पुरुष को आते हुए देख कर कह सकते हैं कि धर्म्म आ रहे हैं । ऐसे पुरुष को सम्बोधित कर सकते हैं कि हे धर्म्म ! आप यहां बैठें । यहां आप का आसन है यहां आप उपदेश दें इत्यादि अलङ्कार रूप से वैदिक भाव समझना चाहिये ॥ ५ ॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः। तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६॥ अ० १८।१।५८

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(नः+पितरः) हमारे पितर=रक्षक(अङ्गिरसः+नवग्वाः+अथर्वाणः+भृगव+सोम्यासः) अंगिरा, नवग्व, अथर्वा, भृगु और सोम्य हैं (वयम्) हम पुत्र-पौत्रादिक (यज्ञिया-नाम्) यज्ञार्ह परममान्य परमपूज्य (तेषाम्) उन पितरों की (सुमतौ) सुबुद्धि=सु-सम्मति में सर्वदा (स्याम) वर्त्तमान रहें (अपि) और (सौमनसे) सौमनस्य के कारण (भद्रे) कल्याणप्रद पुण्यमार्गरूप धर्म में सदा (स्याम) स्थित रहें । ६ ॥ (अङ्गिरा) आग्नेय विद्या में और अग्निहोत्रादिक कर्म में निपुण, (नवग्व) नवीन नवीन विद्याओं में जिनकी गति हो, (अथर्वा) अहिंसा-धर्म्म प्रचारक, (भृगु) प्रत्येक ज्ञान में परिपक्व इत्यादि भाव जानना । यहां भृगु आदि सामान्य नाम हैं ।

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रानः पूर्वे पितरः परेयुः । उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥अ०१८

हे अन्तरात्मन् ! आप (पूर्व्येभिः) अनादिकाल से चले आते हुए (पथिभिः) वैदिक मार्गों से (प्रेहि+प्रेहि) गमन करें अवश्य इन्हीं मार्गों से चलें (यत्र+नः+पूर्वे+पितरः+परेयुः) जिन मार्गों पर पूर्व पितर चलते थे इन मार्गों पर (स्वधया+मदन्ता) स्वशक्ति से अथवा स्वभावतः तृप्त होते हुए (उभौ+राजानौ) दोनों राजा विद्यमान हैं । हे जीव ! आप (यमम्) (वरुणम्+च+देवम्) धर्म्म और वरणीय=स्वीकरणीय देव अर्थात् ईश्वर इन दोनों को (पश्यासि) देखो । ७ । इस मार्ग में धर्म्म और ईश्वर दोनों हैं अतः इसीसे चलो ।

संगच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्त्तेन परमे व्योमन् । हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥ अ० १८।

हे जीव (परमे+व्योमन्) हृदयरूप मनोहर स्थान में (पितृभिः+संगच्छस्व) प्राणों के साथ मिलो (यमेन+सम्) धर्म्म से (इष्टापूर्त्तेन) यज्ञादि कर्म्मों में मिलो (अवद्यम्+हित्वाय) पाप को त्याग (पुनः+अस्तम्+एहि) पुनः सर्व-व्यापक ईश्वर को प्राप्त होओ इस प्रकार (सुवर्चाः) अति तेजस्वी हो (तन्वा+

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

संगच्छस्व) अपने शरीर अर्थात् ज्ञानस्वरूप शरीर से संगत होओ। अथवा हे जीव ! जिस कारण आप (यमेन) धर्म्म-कर्म-नियन्ता (इष्टापूर्तेन+सम्) इष्ट और आपूर्त से युक्त हैं अतः (परमे+व्योमन्+पितृभिः+संगच्छस्व) परमोत्कृष्ट स्थान में अर्थात् मुक्ति में स्थित पितरों से मिलो (अवद्यम्+हित्वाय+पुनः+अस्तम्+एहि) पाप को त्याग पुनरपि अपने स्थान अर्थात् कर्मानुसार प्राप्य गृह को आओ और (सुवर्चाः) तेजस्वी हो (तन्वा) अच्छे शरीर से (संगच्छस्व) संगत होओ अर्थात् कर्मानुसार पितरों के साथ मुक्तिसुख पा फिर इस संसार में उत्तम शरीर धारण करो। "अस्तं गृहनामैतत्" सा०

अपेत वीत वि च सर्पताऽतोऽस्मा एतं पितरो लोक मक्रन्। अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै॥ ९ ॥ अ० १८

(अतः) हे दुष्टस्वभाव अधर्म्म ! इस हृदयाकाश से (अपेत) अलग हो जा (वीत) दूर चला जा (विसर्पत+च) और कहीं दूर भाग जा (अस्मै) इस ध्यान शील जीव के लिये (पितरः) प्राणगण (एतम्+लोकम्+अक्रन्) यह स्थान बना रहे हैं और हृदयस्थ (यमः) धर्म वा ईश्वर (अद्भिः) व्यापक = निरन्तर (अहोभिः) दिनों (अक्तुभिः) रात्रियों से ध्यान समाधि के द्वारा (व्यक्तम्) मानो प्रकट हो (अवसानम्) परम शान्ति को (ददाति) देता है। ८। "वीत, वी गत्यादिषु अत्र गतिरर्थः। अवसानं स्थानम्" सा० इसके आगे १०, ११, १२ ये तीन मन्त्र यहां छोड़ दिये गए हैं "यम के दो कुत्ते" इस प्रकरण में इन तीनों का अर्थ देखिये।

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥ १३ ॥ यमाय सोमः पवते यमाय क्रियते हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः॥ अ० १८।२।१॥

हे मनुष्यो ! (यमाय) धर्म के लिये (सोमम्+सुनुत) सोम सम्पादन करो (यमाय) धर्म के लिये ही (हविः+जुहुत) हवन करो (ह) निश्चय यह (अग्निदूतः) अग्निप्रधान (अरंकृतः) अलंकृत (यज्ञः) यज्ञ (यमम्) धर्म को ही (गच्छति) प्राप्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता है ॥ १३ ॥ अथर्व मंत्र का भी समान अर्थ है ॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत। स नो देवेष्वायमद् दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥ १४ ॥ यमाय घृतवत्पयो राज्ञे हविर्जुहोतन। स नो जीवेष्वायमेदीर्घमायुः प्र जीवसे॥ अ० १८।२।३॥

हे मनुष्यो ! (यमाय) धर्म के लिये ही (घृतवत्+हविः+जुहोत) घृत युक्त पदार्थ हवन करो (प्रतिष्ठत+च) इससे जगत् में धर्म की प्रतिष्ठा करो। अथवा स्वयं प्रतिष्ठित होओ (सः) वह धर्म (नः+देवेषु) हमारे विद्वानों में (प्रजीवसे) प्रकृष्ट, धर्मयुक्त जीवन के लिये (दीर्घम्-आयुः) दीर्घायु (आ—मत्) देवे ॥ १४ ॥ अथर्व का भी प्रायः अर्थ समान है ॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन। इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥ १५ ॥ यमाय मधुमत्तमं जुहोता प्र च तिष्ठत। इदम्० ॥ अ० १२ । २ । २ ॥

हे अग्निहोत्री पुरुषो ! (राज्ञे+यमाय) ज्ञानप्रकाशक धर्मकार्य्य के लिये (मधुमत्तमम्) अतिशय मधुर (हव्यम्+जुहोतन) हव्यपदार्थ परोपकाररूप कुण्ड में दो अब आगे धर्म के चलानेवाले पुरुषों को नमस्कार कहते हैं (पूर्वजेभ्यः) पूर्वज (पथिकृद्भ्यः) धर्म्ममार्ग बनानेवाले (पूर्वेभ्यः+ऋषिभ्यः) पूर्ण ऋषियों को (इदम्+नमः) यह मेरा नमस्कार है ॥ १५ ॥ अब आगे दिखलाते हैं कि वेद का मुख्य प्रयोजन क्या है ।

त्रिकद्रुकेभिः पतति षडुर्वीरेकमिद् बृहत्। त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥ १६ ॥ त्रिकद्रुकेभिः पवते षडुर्वीरेकमिद् बृहत्। त्रिष्टुब् गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम अर्पिता ॥ अ० १८ । २ । ६ ॥

वह धर्म (त्रिकद्रुकेभिः) ऋग्, यजु और साम इन तीनों के साथ (पतति)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

चलता है (षड्+उर्वीः) और छवों द्युलोक, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधियां (एकम्+इत+बृहत्) एक ही महान् धर्म्मके लिए प्रवृत्त होते हैं (ता+सर्वा+त्रिष्टुब्+गायत्री+छन्दांसि) वे सब त्रिष्टुब् गायत्री आदि छन्द (यमे+आहिता) यम में ही समर्पित हैं १६

इति यमादिनिरूपण प्रकरणं समाप्तम् ॥

पितर कौन हैं ? ॥

पितर और वेद—पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्। ऋ० १०।५३।४। अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्चजनाः। ६। ११। ४। जना यदग्निं अयजन्त पञ्च १०। ४५। ६। इत्यादि अनेक ऋचाओं में मनुष्यों के नामों में से एक नाम पञ्चजन आया है। पञ्चजन अर्थात् पांच प्रकार के मनुष्य। निरुक्त अमरकोशादिकों में भी यह नाम आया है। अब शङ्का होती है कि वे पांच प्रकार के मनुष्य कौन हैं? यास्काचार्य निरुक्त में कहते हैं "गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसि इत्येके चत्वारो वर्णा निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः।" निरुक्त। ३। ८। गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये पांच प्रकार के मनुष्य हैं। औपमन्यव कहते हैं कि चार वर्ण और पञ्चम निषाद ये पांच भेद पाये जाते हैं इस कारण मनुष्य का नाम पञ्चगानव, पञ्चजन आदि है। इस प्रमाण से सिद्ध है कि जैसे गन्धर्व, देव, असुर और राक्षस मनुष्यों के भेद हैं वैसे ही पितर भी एक भेद है। यहां पितर शब्द जनक (पैदा करने वाला बाप) वाचक नहीं हैं। कदाचित् कोई यह शङ्का करे कि गन्धर्व देव आदि अलग २ योनियां हैं वैसे पितर भी एक पृथक् योनि है सो यह शङ्का यहां नहीं हो सकती है। क्योंकि मनुष्यवाचक " पञ्चजन " शब्द के अर्थ गन्धर्व पितर आदि पांच हैं न कि अन्य शब्द का। इससे सिद्ध है कि मनुष्य के ही भेद ये पांचों हैं। जैसे चार वर्ण और पञ्चम निषाद तद्वत्।

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये। उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिवि श्रितः ॥ अथर्व० ११। ६। २७ ॥

उस स्रष्टा परमेश्वर की कृपा-कटाक्ष से कोई, देव, कोई पितर, कोई साधारण मनुष्य, कोई गन्धर्व, कोई अप्सराएं होते हैं और ये सूर्य चन्द्र आदिक देवों का भी प्रकाश उसीसे होता है। इस अथर्ववेद के प्रमाण से भी यही सिद्ध है कि केवल जनक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अर्थात् उत्पादयिता का ही नाम पितर नहीं किन्तु मनुष्यों के भेदों में से एक भेद पितर है। इनही पितरों के लिये पितृयज्ञ विहित है। पूर्वोक्त यास्काचार्य के व्याख्यान से सिद्ध है कि गन्धर्व, पितर, देव, असुर और राक्षस ये पांचों मनुष्य के भेद हैं। अब आप समझ सकते हैं कि जैसे गुण, कर्म्म, स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण व्यवहार के लिये विभक्त हैं वैसे ही गुण कर्म्मानुसार गन्धर्व आदिक भी। जो गानविद्या में निपुण हों वे गन्धर्व "गां वाणीं धरन्तीति गन्धर्वाः" जो सब प्रकार से देश की रक्षा करें वे पितर "पान्ति पालयन्तीति पितरः" जो विद्वान् और वेदवित् हों वे देव। निकृष्टवर्ग के मनुष्य असुर और अतिनिकृष्ट मनुष्य राक्षस हैं। इन प्रमाणों से यह सिद्ध है कि मृतपुरुषों का नाम पितर कदापि नहीं। वेद के मन्त्र में यह विलक्षणता है कि "पितर उत्पन्न होते हैं" कहा गया है यदि मृतक का नाम पितर होता तो वैसा पद नहीं आता अतएव पितृयज्ञ वा पितृश्राद्ध मृतकश्राद्ध नहीं किन्तु जीवित श्राद्ध है।

पितर और मनुस्मृति—क्या मनुस्मृति धर्म्मशास्त्र से सिद्ध होता है कि मृतपुरुषों का नाम पितर है ? नहीं। देखिये।

यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान्। नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान्। किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहङ्गमान्। पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः॥ मनु० ॥ १ ॥ ३७। ३९॥

मरीचि अत्रि आदिक ऋषियों ने यक्ष, राक्षस, पिशाच, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, नाग, सर्प, सुपर्ण और पितरों के पृथक् २ गणों को उत्पन्न किया इसी प्रकार किन्नर वानर, मत्स्य, विविधपक्षिगण पशु, मृग, मनुष्य, व्याल और ऊपर नीचे दांतवाले जीव उत्पन्न किये। ऋषियों ने इन सबों की कैसे सृष्टि की इसका वर्णन आगे होगा। यहां पर आप देखते हैं कि जैसे यक्ष, राक्षस, पशु, पक्षी आदि उत्पन्न किए गये हैं वैसे ही पितरों के गण भी बनाए गये हैं। (क) इससे सिद्ध है कि पितर वहां जनक-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वाचक नहीं (ख) एवं मृत पुरुषों का नाम नहीं। यदि मृत पुरुषों का नाम पितर यहां होता तो सृष्टि की आदि में पितृगण उत्पन्न किये गये ऐसा नहीं कहा जाता यहां पर कहा गया है कि पितरों के पृथक् २ गण ऋषियों से उत्पन्न किये गए। वे पितृ-गण कितने हैं, इनके क्या २ नाम हैं ये जिस २ ऋषि के पुत्र हैं इत्यादि भाव को आगे संक्षेप से कहते हैं यथाः—

मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः। तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः ॥ १९४ ॥ विराट्सुताः सोमसदः साध्यानां पितरः स्मृताः। अग्निष्वात्ताश्च देवानां मारीच्या लोकविश्रुताः ॥१९५॥ दैत्यदानवयक्षाणां गन्धर्वोरग-रक्षसाम्। सुपर्णकिन्नराणाञ्च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः ॥ १९६ ॥ सोमपा नाम विप्राणां क्षत्रियाणां हविर्भुजः। वैश्यानामाज्यपा नाम शूद्राणां तु सुकालिनः ॥ १९७ ॥ सोमपास्तु कवेः पुत्रा हविष्मन्तोऽङ्गिरः सुताः। पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा वसिष्ठस्य सुकालिनः ॥ १९८ ॥ अग्निदग्धानग्निदग्धान् काव्यान् बर्हिषदस्तथा। अग्निष्वात्तांश्च सोम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत् ॥ १९९ ॥ मनुस्मृति ॥३॥

अर्थ—हैरण्य-गर्भ मनु के जो मरीचि आदि पुत्र हैं। उनही सब ऋषियों के पुत्र पितृगण हैं॥१९४॥ साध्यों के पितर विराट्-पुत्र सोमसद हैं। देवों के पितर मरीचिपुत्र अग्निष्वात्त हैं ॥ १९५ ॥ दैत्य, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग, राक्षस, सुपर्ण, किन्नर के पितर अत्रिपुत्र बर्हिषद् हैं ॥ १९६ ॥ विप्रों के सोमप, क्षत्रियों के हविर्भुज, वैश्यों के आज्यप और शूद्रों के सुकाली पितर हैं ॥ १९७ ॥ कवि के पुत्र सोमप, अङ्गिरा के पुत्र हविर्भुज, पुलस्त्य के पुत्र आज्यप और वसिष्ठ के पुत्र सुकाली पितर हैं ॥१९८॥ अग्नि दग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त सोम्य ये सब विप्रों के पितर हैं॥१९९॥

अब प्रश्न होता है कि ऋषियों के पुत्र पितृगण कैसे ? समाधान। यह प्रसिद्ध है कि वेदों के तत्त्वविद् पुरुष को ऋषि कहते हैं। और यह भी सर्व-सिद्धान्त है कि वेदों को देख के ही जगत् के अखिल-व्यवहारों को ऋषियों ने स्थापित किये हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"सर्वेषां तु स नामानि कर्म्माणि च पृथक् पृथक् । वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे" । मनु० १ । २१ । चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक् । भूतं भव्यं भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति । मनु० । १२ । ९७ । इत्यादि प्रमाणों से । सृष्टि की आदि में प्रथम रक्षा की ही बड़ी आवश्यकता थी । इस हेतु ऋषियों ने प्रथम रक्षा के लिये विविध प्रकार के रक्षक अर्थात् पितर उत्पन्न किये और उन सबों को कर्म्मानुसार अग्निष्वात्त अग्निदग्ध आदि नाम दिये । इन को ही एक सामान्य पदवी स्वधा भी दीगई जिसका वर्णन प्रथम बहुत कुछ होचुका है । यहां उत्पन्न करना शब्दार्थ बनानेके अर्थ में है जैसे यह पाठशाला बड़े २ विद्वानों को उत्पन्न करती है । ये गुरु अथवा आचार्य्य सहस्रों गुरु आचार्य्यों को उत्पन्न करते हैं । यह देश धार्म्मिक पुरुषों को उत्पन्न करता इत्यादिवत् । मनुस्मृति में इसी प्रकार की सृष्टि का वर्णन है । भागवतादि का भी यही भाव है अब वेदों का भी तात्पर्य्य मालूम हो सकता है । वेदों में गुणवाचक नाम विद्यमान हैं । जब आवश्यकतानुसार रक्षक बनाये गये तो वेदों को देख उन्हें पितर नाम दिये गये ।

क्या विष्णुपुराणादिकों से सिद्ध होता है कि मृत पुरुषों का नाम पितर है? नहीं। यहां देव, पितर, मनुष्य और असुर इन चारों की उत्पत्ति सुनाता हूं जिस से विस्पष्ट हो जायगा कि पितृशब्द यहां रक्षक है । यथा—

ततो देवासुरपितॄन् मानुषांश्च चतुष्टयम् । सिसृक्षुरंभांस्येतानि स्वमात्मानमयूयुजत् ॥ २८ ॥ युक्तात्मनस्तमोमात्रा उद्रिक्ताऽभूत् प्रजापतेः । सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुरा जज्ञिरे ततः ॥ २९ ॥ उत्ससर्ज ततस्तान्तु तमोमात्रात्मिकां तनुम् । सा तु त्यक्ता ततस्तेन मैत्रायाभूद् विभावरी ॥ ३० ॥ सिसृक्षुरन्यदेहस्थः प्रीतिमाप ततः सुराः । सत्त्वोद्रिक्ताः समुद्भूता मुखतो ब्रह्मणो द्विज ॥ ३१ ॥ त्यक्ता सा तु तनुस्तेन सत्त्वप्रायमभूदिनम् । ततो हि बलिनोरात्रावसुरा देवता दिवा ॥ ३२ ॥

देव, असुर, पितर और मनुष्य ये चारों अंभ (जल) कहलाते हैं इनको सृजन

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

करने की इच्छा करते हुए ब्रह्माजी ध्यान करने लगे। सब से प्रथम तामसी-मात्रा अर्थात् तमोगुणयुक्ता तनु उत्पन्न हुई। उस के जघन देश से असुरगण उत्पन्न हुए। तब ब्रह्माजी ने उस तामसी तनु का त्याग किया। वह परित्यक्ता तनु रात्रि होगई। पुनः ब्रह्मा ने अन्य सात्त्विकी तनु को धारण किया। तब मुख से सात्त्विक सुरगण उत्पन्न हुए। वह परित्यक्ता होने पर सत्त्व-प्रधान दिवस होगई। इसी कारण हे द्विज! रात्रि में असुर और दिन में सुर बलिष्ठ रहते हैं ॥ ३२ ॥

सत्त्वमात्रात्मिकामेव ततोऽन्यां जगृहे तनुम्। पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे ॥ ३३ ॥ उत्ससर्ज पितॄन् सृष्ट्वा ततस्तामपि स प्रभुः। सा चोत्सृष्टाऽभवत्संध्या दिननक्तान्तरस्थितिः ॥ ३४ ॥ रजोमात्रात्मिकामन्यां जगृहे स तनुं ततः। रजोमात्रोत्कटा जाता मनुष्या द्विजसत्तम ॥ ३५ ॥ तामप्याशु स तत्याज तनुं सद्यः प्रजापतिः। ज्योत्स्ना समभवत् सापि प्राक्सन्ध्या याऽभिधीयते ॥ ३६ ॥ ज्योत्स्नायामेव बलिनो मनुष्याः पितरस्तथा। मैत्रेय सन्ध्यासमये तस्मादेते भवन्ति वै ॥ ३७ ॥ ज्योत्स्ना रात्र्यहनी सन्ध्या चत्वार्येतानि वै प्रभोः। विष्णुपु० १। ५।

तब पुनः ब्रह्माजी ने अन्य सात्विकी तनु धारण की। मनन करते हुए उस से पितृगण उत्पन्न हुए। उस शरीर को छोड़ दिया। वह सन्ध्या होगई। जो दिन और रात्रि के मध्य में रहती है। पुनः ब्रह्मा ने राजसी तनु धारण की उस से रजोगुणयुक्त मनुष्य उत्पन्न हुए। उस तनु को भी छोड़ दिया। वह ज्योत्स्ना होगई। इस कारण ज्योत्स्ना में मनुष्य और सन्ध्या में पितर बलिष्ठ होते हैं। ये चारों ज्योत्स्ना, रात्रि, दिवस और सन्ध्या चारों के समय हैं। इति।

इस विष्णुपुराणके जो देव और असुर हैं वे वेदके आर्य्य और दस्यु हैं। और मनुष्य और पितर क्रम से व्यवसायी और पालक हैं अर्थात् राजा और कृषक है। अथवा देव= ब्राह्मण। पितर=राजा। मनुष्य=वैश्य। असुर=शूद्र। इस क्रम से भी यहां घट सकता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है । जिस कारण पौराणिक समय में " शूद्र " एक निकृष्ट जाती मानी जाती थी अतः शूद्र के स्थान में असुर रक्खा है ।

पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया तव ।
अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये ।
तेभ्यः स्वधा सुते यज्ञेवेना वैधारिणी तथा । विष्णु १० । १० । १८ ।

अर्थ=पूर्वमें मैं कह चुका हूं कि ब्रह्मा ने पितरों को को सृष्ट किया । वे अग्निष्वात्त, बर्हिषद्, अनग्नि, साग्नि आदि हैं इन सबों की स्त्री स्वधा है । जिस से वेना वैधारिणी दो सन्तान उत्पन्न हुए । अनेक पुराणों के प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं श्रीमद् भागवत का भी यही सिद्धान्त है । अन्यान्य पुराण भिन्न २ प्रकार से पितरों की उत्पत्ति कहते हुए इस में सब ही एक समान ही मत रखते हैं कि पितर सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए अनेक प्रसंगों में पहले भी इसको लिख आए हैं पुनरपि लिखा जायगा । विद्वान् लोग इसी दिग् दर्शन से पुराणों का सिद्धान्त समझें ।

पितर और सांख्य शास्त्रः—

अष्टविकल्पो दैवस्तैर्य्यग्योनश्च पञ्चधा भवति ।
मानुष्यश्चैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः । कारिका । ५८

इसकी व्याख्या में वाचस्पति मिश्र लिखते हैं कि ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र पैत्र्य गान्धर्व, याक्ष, राक्षस, और पैशाच ये आठ प्रकार दैव-सर्ग और पशु, मृग, पक्षी सरीसृप और स्थावर ये पांच तैर्य्यग्योन और मनुष्य एक ही प्रकार का सर्ग है । इस से भी सिद्ध है कि जैसी देवादि सृष्टि है वैसी ही पितृसृष्टि भी है । वह सृष्टि कौन है ? रक्षक गणों की सृष्टि है ॥

उपनिषदों में "स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः" तैत्ति० पितृलोक की भी चर्चा आई है । यहां व्याकरण की गुण, वृद्धि इत्यादि पारिभाषिक संज्ञावत् पितृलोक भी पारिभाषिक संज्ञामात्र है "दैवाः पितरो मनुष्या एतएव । वागेव देवा मनः पितरः प्राणो

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मनुष्याः । बृहदारण्यक । यहां आध्यात्मिक अर्थ में पितृशब्द है । इसी प्रकार देवयान पितृयाण आदि भी मरणानन्तर की दशासूचक है । इत्यादि औपनिषद प्रमाणों से भी मृतक अर्थ में पितर सिद्ध नहीं होता ॥

पितर कौन हैं ? इस पर अनेक संमतियां ॥

वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् । प्रपितामहांस्तथा दित्याञ्छ्रुतिरेषा सनातनी । मनुस्मृतिः । वसवः पितरोज्ञेया रुद्राज्ञेया पितामहाः । प्रपितामहास्तथाऽऽदित्याः श्रुतिरेषा सनातनी । देवलः । वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः । याज्ञवल्क्यः । विष्णुः पिताऽस्य जगतो दिव्यो यज्ञः स एव च । ब्रह्मा पितामहो ज्ञेयो ह्यहश्च प्रपितामहः । नन्दिपुराणे । मासाश्च पितरोज्ञेया ऋतवश्च पितामहाः । सम्वत्सरः प्रजानाञ्च सुष्ट्वेकः प्रपितामहः । आदित्यपुराणे । इत्यादि ।

अर्थ—मनुजी, वसुओं को पितर, रुद्रों को पितामह और आदित्यों को प्रपितामह कहते हैं । यही देवलाचार्य्य भी कहते हैं । वसु रुद्र आदित्य येही पितर श्राद्धदेव हैं ऐसा याज्ञवल्क्य कहते हैं । पिता विष्णु, पितामह ब्रह्मा और प्रपितामह रुद्र ऐसा नन्दिपुराण कहता है । मास पिता, ऋतु पितामह और सम्वत्सर प्रपितामह ऐसा आदित्य-पुराण कहता है ।

ये सब व्याख्यान सूचित कर रहे हैं कि श्राद्ध मृतपुरुषों से सम्बन्ध नहीं रखता है । कोई २ अज्ञानी पुरुष कहते हैं कि ये वसु रुद्र और आदित्य तीनों देव पितरों को अपने २ भाग पहुंचाया करते हैं । इस कारण ये तीनों क्रम से तीन पितर कहे गए हैं ॥ समाधान । ईश्वरीयनियमानुकूल ये सूर्य्य चन्द्र पृथिवी वायु आदि और आंख कान नाक आदि देवगण सेवा करनके लियेही बनाए गए हैं । परन्तु ये सब अचेतन हैं । हमारी बातोंको यह नहीं सुनते हैं जिस प्रकार पृथिवी जल आदि से हम काम लेते हैं और वे स्वयं दे भी रहे हैं इसी प्रकार सूर्य्य आदि को भी जानो अब अग्निष्वात्त आदि शब्दों पर ध्यान दीजिये ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अग्निष्वात्त आदि पितर कौन हैं ॥

आजकल पण्डितजन न स्वयं विचारते न वेदादि-शास्त्रों की पर्य्यालोचना करते हैं इस कारण धार्मिक जगत् अन्धकारावृत हो रहा है। विद्वज्जन प्रश्न करते हैं कि वेदों में अग्निष्वात्त और अग्निदग्ध पितरों को बुला कर भोजन देने की आज्ञा देखते हैं। अग्नि ने जिस का स्वाद लिया है या जिस को दग्ध किया है उसे अग्नि दग्ध और अग्निष्वात्त कहते हैं इस से मृत पितरों का श्राद्ध वेदों से सिद्ध है। परन्तु मैं कहता हूं कि इन विद्वानों का यह सन्देह सर्वथा अनुचित अविवेक-मूलक है। ये लोग जो अर्थ करते हैं वह किसी स्मृतिसे वा पुराण से भी सिद्ध नहीं होता। मैं यहां प्रथम अनेक प्रमाण देता हूं ध्यान पूर्वक इन पर मीमांसा करें। प्रथम मनुजी प्रतिज्ञा करते हैं कि-"मनोर्हैरण्य-गर्भस्य ये मरीच्यादयः सुताः। तेषामृषीणां सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृताः"। ३। १९४। हैरण्यगर्भ मनुजी के जो मरीचि आदि पुत्र हैं इन ही ऋषियों के पुत्र पितृगण हैं। इसी को आगे दिखलाते हुए कहते हैं यथा "अग्निष्वात्ताश्च देवानी मा रीचा लोक विश्रुताः। ३। १९५ इस पर कुल्लूक टीका करते हैं यथाः—अग्निस्वात्ता मरीचेः पुत्रा लोक विख्याता देवानां पितरः। मरीचि नाम ऋषि के पुत्र अग्निष्वात्त नाम के जो पितर हैं वे देवों के पितर हैं। पुनः "अग्निदग्धानग्निदग्धान् काव्यान् वर्हिषदस्तथा। अग्निष्वात्ताश्च सोम्यांश्च विप्राणामेव निर्दिशेत्। मनु० ३। १९९ अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध, काव्य, बर्हिषद् अग्निष्वात्त और सोम्य नामके पितृगण जो हैं वे ब्राह्मणोंके पितर हैं। समीक्षा इस से यह सिद्ध हुआ कि अग्निष्वात्त का अग्नि जिस का स्वाद ले वह अग्निष्वात्त कहलाता ऐसा जो अर्थ करते हैं सो ठीक नहीं। क्योंकि इस मनु के प्रमाण से अग्निष्वात्त पितृगण तो मरीचि के पुत्र कहलाते हैं और सृष्टि की आदि में ही ये उत्पन्न किए गए। जैसे लोग अपने पुत्र का विविध नाम रखता है वैसे ही किसी मरीचि ऋषि ने भी अपने सन्तानों के नाम अग्निष्वात्त रक्खे। पीछे इन की पूजा होने लगी ऋषि के पुत्र पितृगण हैं। इस का भी क्या भाव है सो पितृशब्द पर ही लिखआए हैं।

इसी प्रकार अग्निदग्ध वगैरह भी किन्ही ऋषियों के पुत्र हैं और अतिप्राचीन हैं क्योंकि मनुजी की ऐसी ही प्रतिज्ञा है और यहां कहा भी गया है कि अग्निदग्ध

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अनग्निदग्ध आदि पितृगण ब्राह्मणों के पितर हैं। अब आप विचार सकते हैं कि यदि अग्निदग्ध शब्दार्थ केवल अग्नि में दग्ध ही होता तो ये आग्निदग्ध पितर ऋषि के पुत्र और ब्राह्मणों के ही पितर क्यों कहाते। क्या क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों के पितर अग्नि में नहीं जलाए जाते हैं। इससे सिद्ध है कि अग्निदग्ध शब्द का अर्थ जो आजकल किया जाता है वह नहीं है। इस पर खूब ध्यान रखना चाहिये कि अग्निदग्ध आदि पितर सृष्टि की आदि में उत्पन्न हुए यहां पर सब का एक मत है।

पुराण और अग्निष्वात्त आदि पितृगण।

पितृवन्मन्यमानस्य पितरस्तस्य जज्ञिरे। विष्णु १।५। ३३ विष्णुपुराण कहता है कि पितृवत् मनन करते हुए ब्रह्माजी के अंग से पितृगण उत्पन्न हुए। वायु पुराण कहता है कि "पितृवन्मन्यमानस्तु पुत्रान् प्रध्यायतः प्रभुः "स पितॄनुपपक्षाभ्यां राज्यहोरन्तरेऽसृजत्"। पुत्रों के लिये मनन करते हुए प्रभु ब्रह्माजी ने अपने दोनों पार्श्वों से रात्रि और दिन के बीच अर्थात् सायंकाल में पितरों को सृजन किया अब आगे वे कौन २ पितृगण हैं प्रसंग से कहते हैं। "पितरो ब्रह्मणा सृष्टा व्याख्याता ये मया तव।१७। अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये। तेभ्यः स्वधा सुते जज्ञे मेनां वैधारिणीं तथा। १८ विष्णुपुराण १।१०। ब्रह्माजीने पितरों का सृजन किया यह मैं आप से कह चुका हूं वे ये हैं—अग्निष्वात्त बर्हिषद, अनग्नि (अनग्निदग्ध) साग्नि (अग्निदग्ध) हैं इन सब पितृगणों को स्त्री स्वधा है। जिस से मेना और वैधारिणी दो कन्याएं हुईं। श्रीमद्भागवत भी यही कहता है यथा "अग्निष्वात्ता, बर्हिषद: सौम्याः पितर आज्यपाः। साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायिणी स्वधा"। ४।१।६३ अग्निष्वात्त, वर्हिषद, सौम्य, आज्यप, साग्नि, और अनग्नि जो पितर हैं इन सबो की स्वधा एक पत्नी है अब पुराण के अनुसार विचार करें कि अग्निष्वात्त आदि पितृगण तो ब्रह्माजी के मानस-पुत्र हैं और मरीचि आदि के समान यह भी एक विशेष नाम है तब फिर आप अग्नि जिस को जलाती हुई स्वाद लेती है वह सब अग्निष्वात्त कहाता है अर्थात् जिस का २ शरीर दग्ध किया जाता है वह २ अग्निष्वात्त आग्निदग्ध है ऐसा अर्थ कैसे कर सकते हैं। यहां एक विषय का और भी पुराण विस्पष्ट करता

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

है। अग्निदग्ध और अनग्निदग्ध ये जो दो शब्द वेदों और स्मृतियों में आते हैं इन के अर्थ में अल्पज्ञ पुरुषों को बड़ा सन्देह होजाता है जैसे आजकल भी हो रहा है इस कारण पुराण इन दोनों शब्दों के स्थान में "साग्नि" और "अनग्नि" शब्द का प्रयोग करता है जिस से सन्देह का निवारण होजाता है अग्निसहित को "साग्नि" और अग्निरहित को "अनग्नि" कहते हैं यही अर्थ अग्निदग्ध और अनग्निदग्ध का है इस से भी विशद है कि अग्निदग्ध और अनग्निदग्ध-शब्दार्थ जो आज किया जाता है सर्वथा अशुद्ध है। यदि कोई अनभिज्ञ पुरुष प्रश्न करे कि ये अग्निष्वात्त, अग्निदग्ध आदि पितर कोई दूसरे होंगे हम लोग जिन का श्राद्ध करते हैं वे ये ही होंगे जो अग्नि में दग्ध किये जाते हैं वा जिन को जलाती हुई अग्नि खाती है। यह प्रश्न सर्वथा अयुक्त है-क्योंकि हम पूर्व में दिखला चुके हैं कि इन ही पितरों का सम्बन्ध स्वधा से है और इसी स्वधा का उच्चारण सम्प्रति श्राद्ध में भी करते हैं। मनुस्मृति में भी इसी श्राद्ध प्रकरण में इन पितरों का वर्णन है। अतः प्रवाहरूप से आते हुए जो अग्निदग्ध अनग्निदग्ध पितर हैं इन का ही श्राद्ध है।

अग्निष्वात्त आदि के यथार्थ अर्थ।

कोई यह भी अर्थ करते हैं कि "अग्निनासुदुष्ठु आसमंताद् अत्तो भक्षितः" अग्नि से जो अच्छे प्रकार खायागया हो वह "अग्निष्वात्त"। परन्तु यह अर्थ नहीं हो सकता है क्योंकि "अद भक्षणे" धातु से जव क्त प्रत्यय होता है तब "अदो जग्धिर्ल्यपि किति। २। ४। ३६। इस सूत्र के अनुसार जग्ध ऐसा प्रयोग होगा "अत्त" ऐसा नहीं। कोई कहते हैं कि "अग्निना स्वात्तः स्वादितः" अग्नि से स्वात्त अर्थात् स्वादित को अग्निष्वात्त कहते हैं। यह भी कथन ठीक नहीं क्योंकि क्त प्रत्यय से स्वादित बनेगा स्वात्त नहीं यदि कहो कि इस को आर्षप्रयोग मानेंगे तो सो भी ठीक नहीं क्योंकि जब अन्य प्रकार से सिद्ध होसक्ता है तब आर्ष प्रयोग मानना सर्वथा अयोग्य है। एवमस्तु इस का सत्यार्थ और साधनिका सुनिये। "अग्नि+सु+आत्त" ये तीन पद हैं। आ पूर्वक दा धातु से क्तप्रत्यय करने पर अच उपसर्गात्तः। ७। ४। ४७ इस सूत्र से आत्त बन जाता है जब दाधातु में "आ" उपसर्ग लगता है तब इस का अर्थ ग्रहण करना

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होता है जैसे आददाति, आदान आदि । अतः आत्त शब्दार्थ "गृहीत" है "सुष्ठु आत्तो गृहीतोऽग्निर्येन स अग्निष्वात्तः" जिसने अच्छे प्रकार अग्नि को ग्रहण किया है उसे अग्निष्वात्त कहते हैं । बाहिताग्न्यादिषु २ । २ । ३७ । इस सूत्र के अनुसार क्तान्त को परनिपात होजाता है अर्थात् स्वात्ताग्नि ऐसा न हो कर अग्निष्वात्त बन गया है । इस का आशय यह हुआ कि अग्निहोत्रादि कर्म्मों में अथवा आग्नेय अस्त्र शस्त्रादि कों में अथवा आग्नेय विद्या में जो निपुण हो उसे अग्निष्वात्त कहते हैं येही अर्थ सर्वत्र घटित होता है । अथवा "यदि" "अग्निनास्वात्तः स्वादित इति अग्निष्वात्तः" ऐसा ही समास करें और स्वात्त को आर्ष मानें तब भी आप यहां सचमुच अग्निदग्ध अर्थ नहीं कर सकते हैं क्योंकि ये सब ऋषि के वा ब्रह्मा के मानस पुत्र माने गए हैं । इस कारण "अग्नि से स्वात्त अर्थात् प्रतिक्षण अग्निहोत्रादि–अग्नि-सम्बन्धी कर्म्म करने के कारण, मानो, अग्नि इस का स्वाद ले रहा है अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्म्म में जो बड़ा ही तत्पर है ऐसा ही लाक्षणिक अर्थ करना पड़ेगा ।

अब रह गया "अग्निदग्ध" शब्द । सो हम पहिले कह चुके हैं कि इसी शब्द के स्थान में 'साग्नि' प्रयोग पुराण करता है इसहेतु अग्निहोत्रादिक कर्म करने वाले का ही नाम अग्निदग्ध भी है और यहां भी लाक्षणिक अर्थ करना चाहिये । जैसे विद्या-व्रतस्नात, स्नातक, निष्णात आदि । निष्णात शब्द का अर्थ अच्छे प्रकार स्नान किया हुआ पुरुष है । परन्तु निपुण अर्थ में इसका प्रयोग देखते हैं । स्नातक का अर्थ स्नानकरनेवाला । परन्तु परमज्ञानी संन्यासी आदि स्नातक कहाते हैं । इसी प्रकार विद्यास्नात, व्रतस्नात उस पुरुष को कहते हैं जिसने ब्रह्मचर्य धारण कर विद्याध्ययन किया है जो ज्ञानरूप महासागर में वा विद्यारूप महासमुद्र में स्नान करता है वह स्नातक आदि कहलाता है । यहां सर्वत्र लाक्षणिक अर्थ हैं । इसी प्रकार जो अग्निहोत्रादि शुभ कर्म में वा अग्निविद्या में अथवा अग्निवाच्य ईश्वरीय ज्ञान में अपने तन, मन, धन लगा तपस्या से अपने शरीर को जला देता है उसे अग्निदग्ध कहते हैं और इसके विपरीत को अनग्निदग्ध । इस अर्थ में उदाहरण भी विद्यमान है । "विदग्ध" पण्डित ज्ञानी चतुर आदि पुरुष को कहते हैं यदि यहां केवल धात्वर्थ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

लिया जाय तो जो अच्छे प्रकार आग में जल गया हो उसे विदग्ध कहना चाहिये। परन्तु सो नहीं कहते किन्तु ज्ञान और विद्या की प्राप्ति करने में जो अपने को जलाता है उसे "विदग्ध" कहते हैं यहां पर भी विदग्ध शब्दार्थ लाक्षणिक है सो जैसे विदग्ध शब्द का अर्थ पण्डित होता है वैसे ही अग्निदग्ध शब्द में दग्धशब्द निपुणार्थक है। इसके ये उदाहरण हैं "विश्वास-प्रतिपन्नानां वञ्चने का विदग्धता। अङ्कमारोप्य सुप्तं हि हत्वा किन्नाम पौरुषम्"। हितोपदेश। विदग्धशब्द के ऊपर शब्दकल्पद्रुम कहता है "विदग्धः नागरः" इति त्रिकाण्डशेषः। यथा देवीभागवते। "विदग्धाया विदग्धेन संगमो गुणवान् भवेत्" निपुण इति त्रिकाण्डशेषः। लिप्तं न मुखं नाङ्गं न पक्षती चरणाः परागेण। अस्पृशतेव नलिन्या विदग्धमधुपेन मधु पीतम्॥

निपुणतासूचक अग्नि और जल॥

यहां स्मरण रखना चाहिये कि वेदों में निपुणतासूचनार्थ अग्नि और जल दोनों से उपमा दी गई है। जैसे कहैं कि "ये पुरुष शास्त्र में परिपक्व अथवा निष्णात हैं" इस वाक्य का अर्थ "शास्त्र में बड़े निपुण हैं" ऐसा होगा उदाहरण के लिये "**यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागम्.....स माधीरः पाकमत्रा विवेश**" इस में आए हुए 'पाक' शब्दार्थ यास्काचार्य करते हैं "**पक्तव्यो भवति विपक्वप्रज्ञ आत्मेत्यात्मगतिमाचष्टे**" निरुक्त नै० ३। १२। जिसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि विपक्व होगई उसे 'पाक' कहते हैं। पच् धातु अग्नि से सम्बन्ध रखता है जिससे 'पाक' बना है पुनः—"पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वतः। अतप्त-तनूर्न तदामो अश्नुते श्रृतास इद् वहन्तस्तत्समाशत"। ऋ० ९। ८२। १। (ब्रह्मणस्पते) हे वेदाधिपते ईश्वर! (ते+पवित्रम्+विततम्) आपका पवित्र शोभन पद सर्वत्र विस्तृत है आप (प्रभुः) सब के प्रभु हैं। पुनः आप (विश्वतः+गात्राणि+पर्येषि) समस्त ब्रह्माण्डरूप शरीरों के चारों तरफ भीतर बाहर सर्वत्र गमन करते हैं। "अतप्ततनूः" हे भगवन्! सत्यादि व्रतों से जिसकी तनु तप्त अर्थात् दग्ध नहीं हुई है अतएव (आमः) अपरिपक्व वह पुरुष (न+तत्+अश्नुते) आप के उस पवित्र पद को नहीं पा सकता है क्योंकि जो (श्रृतासः+वहन्तः) श्रृत अर्थात् ज्ञान में

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

खूब पके हुए हैं और यज्ञादिवैदिककर्मों का अनुष्ठान करते हुए हैं। (इत्+तत्+समाशत) वे ही उस को पासकते हैं। यहां "तप्ततनू" का अर्थ यथार्थ रूप से आग में जिसने शरीर को दग्ध कर दिया है यह नहीं है। एवं "श्रा पाके" से शृत बनता है इसका भी भाव यह नहीं है कि जो यथार्थ में दाल भात शाक के समान आग में पका हुआ हो। किन्तु ज्ञानरूप-अग्नि से ही तात्पर्य है ज्ञान को अग्नि से उपमा दी गई है "ज्ञानाग्निदग्धकर्माणम्" इत्यादि। जैसे यहां 'तप्त' और 'शृत' जो दग्धार्थक हैं ज्ञानरूप-अग्नि से तात्पर्य रखते हैं वैसे ही अग्निदग्ध में दग्ध को और अग्निष्वात्त में स्वात्त को जानो। पुनः **"अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायः.....हृदा इव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे"** कोई विद्वान् हृद=सरोवर के समान दीखते हैं। यहां हृद की उपमा दी गई है पूर्व में कह आए हैं कि निष्णात आदि शब्द निपुणार्थ हैं पुनः भृगु, अङ्गिरा, जमदग्नि आदि शब्द इसी अर्थ को सूचित करते हैं। भृगु के विषय में कहा जाता है कि "अर्चिषि भृगुः सम्बभूव" नि० नै० ३। १७॥ अर्चि अर्थात् अग्निज्वाला के निमित्त भृगु उत्पन्न हुए अर्थात् आग्नेयविद्याप्रचारार्थ ही भृगु ने जन्म धारण किया 'अंगिरा' यह अग्नि का भी नाम है। परन्तु ऋषि भी एक अंगिरा हैं। अग्नि-विद्या में निपुण होने के कारण से ही ये अंगिरा कहलाते हैं। इसी प्रकार जमदग्नि परशुराम आदिकों को जानो। ये सब अग्निवंशी इसी कारण कहाते हैं। अज्ञानी समझते हैं कि ये साक्षात् अग्नि से उत्पन्न हुए हैं। वेदों में भृगु, अंगिरा, जमदग्नि आदि किसी खास व्यक्ति के नाम नहीं जो अग्निविद्या में निपुण हों वे सब ही भृगु, अंगिरा आदि कहलाने के अधिकारी हैं। हां, वैदिक समय में वेदों को देख और तदनुसार अपने में गुण स्थापित कर किन्होंने अपने नाम भी भृगु आदि रक्खे हों यह संभव है। 'भृगु 'भ्रस्ज पाके' से बनता है। ये सब नाम हमें सूचित करते हैं कि यहां लाक्षणिक अर्थ है। इसी प्रकार अग्निष्वात्त, अग्निदग्धादि शब्द जानो। अब वेदों में जहां अग्निदग्ध शब्द आया है उस पर विचार कीजिये।

ये अग्निदग्धा ये अनाग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व। ऋ०१०।१५।१४

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये अग्निष्वात्ता ये अनग्निष्वात्ता मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। तेभ्यः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयाति। यजु०१९।६०
ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। त्वं तान् वेत्थ यदि ते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम्।अ०

तीन वेदों से यहां मन्त्र उद्धृत हुए हैं। प्रथम आप देखते हैं कि ऋग्वेद में अग्निदग्ध और अनग्निदग्ध पद आए हैं। अथर्व में भी ऐसे ही वे दोनों पद हैं। परन्तु यजुर्वेद में इन दोनों की जगह में अग्निष्वात्त और अनग्निष्वात्त पद हैं। इस से सिद्ध है कि अग्निष्वात्त और अग्निदग्ध एकार्थक हैं। पुराणों में—" अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः। साग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायिणी स्वधा। भा०। अग्निष्वात्ता बर्हिषदोऽनग्नयः साग्नयश्च ये। " वि० पु०। इकट्ठे ही पितरों को गिनाते हुए अग्निष्वात्त, साग्नि और अनग्नि तीनों कहते हैं। इस तुलना से समझ सकते हैं कि साग्निं पद ' अग्निदग्ध ' के स्थान में प्रयुक्त हुआ है। अतः पुराणों के अनुसार भी अग्निदग्ध का अर्थ ' साग्नि ' है। भाव यह है कि पुराण भी दग्धशब्दार्थ यथार्थ में ' अग्नि में जलायाहुआ ' नहीं करता है। इसी प्रकार मनुस्मृति की भी सम्मति है। इस से सिद्ध है कि जो अग्निहोत्रादि कर्म्म में निपुण हैं वे अग्निदग्ध, अग्निष्वात्त आदि हैं। यदि कहो कि " यानग्निरेव दहन् स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः" शतपथ। २। इस शतपथ के वचन से जिस को अग्नि दहन करती हुई स्वाद ले उसे ' अग्निष्वात्त ' कहते हैं ऐसा सिद्ध होता है। समाधान। यदि आप इस सम्पूर्ण प्रकरण को देख लेवें तो सन्देह नहीं रहे। यहां तीन प्रकार के पितरों को याज्ञवल्क्य वर्णन करते हैं। सोमवान्, बर्हिषद् और अग्निष्वात्त।

तद् ये सोमेनेजानाः ते पितरः सोमवन्तः। अथ ये दत्तेन पक्वेन लोकं जयन्ति ते पितरो बर्हिषदः। ये ततो नान्यतरच्चन यानग्निरेव दहन् स्वदयति ते पितरोऽग्निष्वात्ताः। एत उ ते ये पितरः।शतपथ०

सोमवान् पितर ये हैं जो सोमयज्ञ करते हैं। बर्हिषद पितर वे हैं जो अन्नों को पका के गरीबों को देके उत्तम लोक को जय करते हैं और जो न तो सोमयाग और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

न पक्कान्नदान करते हैं किन्तु जिन को दहन करती हुई अग्नि स्वाद लेती है उन्हें 'अग्निष्वात्त' कहते हैं, ये ही पितर हैं। यहां देखते हैं कि मुरदों का वर्णन नहीं है किन्तु पञ्चयज्ञ से लेके सोमयज्ञ तक करने वाले को सोमवान् कहा है और प्रधानतया दानी को बर्हिषद और जो दानादिकों को अच्छे प्रकार न करके केवल अग्निहोत्र में ही लगे हुए हैं वे अग्निष्वात्त। जिस हेतु वे प्रतिदिन अग्निहोत्र करते हैं अतः कहा गया है कि, मानो, इन को अग्नि स्वाद लेती है। अथवा अग्निविद्या के प्रचार में लगने के कारण, मानो, अग्नि इन का स्वाद लेरही है। इत्यादि भाव जानना। यदि ऐसा अर्थ न किया जाय तो क्या सोमवान् और बर्हिषद् पितर अग्नि में नहीं जलाए जाते हैं। जलाने के समय क्या इन को अग्नि स्वाद नहीं लेती है। यदि कहो कि जिन्होंने संसार में कुछ शुभ कर्म्म नहीं किया किन्तु जो जन्म लेके पुनः मर गए और अग्नि में जला दिये गए हैं उन्हें 'अग्निष्वात्त' कहते हैं तो यह कथन ठीक नहीं क्योंकि जो ऐसे पुरुष हैं उन से काम ही क्या हो सकता है। ऐसे कुकर्म्मी अथवा अकर्म्मी को यज्ञ में बुलाने की विधि ही क्यों पाई जायगी। सृष्टि की आदि में ऐसे अकर्म्मण्यों को ऋषि उत्पन्न ही क्यों करेंगे। वेदों में इनकी इतनी प्रतिष्ठा ही क्यों होती। इससे सिद्ध है कि ये 'अग्निष्वात्त' कोई महान् पितर हैं। एवमस्तु अब आगे चलिये। और भी देखिये। आत्मा तो न दग्ध, न छिन्न, न क्लिन्न, न शुष्क न और कुछ होता और न मरने के अनन्तर अपने मृत शरीर के साथ ही चिता पर अपने को ही जलाता है। फिर शव अर्थात् मृतशरीर से आत्मा का सम्बन्ध ही क्या रहा। शरीर जलाया जाय या न जलाया जाय। इस से आत्मा का कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। हां, जीवद्दशा में यदि शरीर ब्रह्मचर्य्यादिक व्रतों से जलाया जाय तो नि सन्देह आत्मा को बड़ा लाभ पहुंचता है। अतः उन शब्दों से जीवत् पितरों का ग्रहण है मृतकों का नहीं। एवं वेदों में इनकी जो प्रशंसा है वह भी सार्थक होगी।

निखात आदि शब्द।

ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धिताः।
सर्वांस्तानग्न आ वह पितॄन् हविषे अत्तवे॥ अथर्व०।१८।२।३४॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

निखात, परोप्त, दग्ध, उद्धित आदि जो पितर हैं उन सब पितरों को हविष्यान्न भोजन के लिये ऐ अग्निदूत ! बुलाओ । जब पूर्वोक्त वर्णन से सिद्ध होचुका कि अग्निदग्ध, अग्निष्वात्त आदि शब्द स्नातकादिवत् लाक्षणिक हैं तब यहां पर भी लाक्षणिक ही अर्थ लिया जावेगा । जो शुभकर्म्म करने में अपने को गाड़ दिया है वह निखात । जिसने अच्छे प्रकार विद्यारूपबीज को बोया है वह " परोप्त " जिसने तपश्चरण में शरीर जला दिया है वह दग्ध जिसने गिरते हुए को उठाया है वह उद्धित । अथवा इस को यों भी लगा सकते हैं कि जो पुरुष ऋषियों के द्वारा परोपकाररूप क्षेत्र में गाड़ा गया है वह निखात जो अच्छे प्रकार छींटा गया है वह परोप्त । जो वेदाध्ययनरूप अग्नि में दग्ध किया गया है वह दग्ध और जो सब के हित में लगाया गया है वह उद्धित । क्योंकि मन्वादिकों के प्रमाणों से सिद्ध है कि पितृगण ऋषियों के पुत्र हैं अर्थात् ऋषियों के बनाये हुए हैं । एक बात यह भी ध्यान में रखने की है कि जब वेदों के अन्यान्य मन्त्रों से मृतकश्राद्ध सिद्ध नहीं है तब केवल इस मन्त्र को मृतकपरक कैसे लगा सकते हैं । इसी प्रकार सोम्य=सोमसम्पादी अर्थात् सोमयज्ञादि करनेवाले । सुकाली=विद्यादिक के उपार्जन से जिसने अपने समय को अच्छा बना लिया है । नवग्व=नवीन २ विद्याओं में जिसकी गति हो अथवा नूतन विद्या का आविष्कर्त्ता हो इत्यादि अर्थ जानना । पितृशब्द प्रायः बहुवचनान्त क्यों आते हैं ? प्रायः आपने देखा है और ' पितरः सोम्यासः ' ' बर्हिषदः पितरः ' ' अग्निष्वात्ताः पितरः ' ' अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ' इत्यादि प्रयोगों में देखते हैं कि पितृवाचक शब्द प्रायः बहुवचनान्त है । इस से सिद्ध होता है कि सोम्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त, अङ्गिरा, भृगु, अथर्वा आदि शब्द गणद्योतक हैं अर्थात् एक २ व्यक्ति के नाम नहीं । इसी कारण "पितृणां च पृथक् गणान्" इत्यादि मन्वादि वाक्यों में गण-शब्द का प्रयोग है । इति ।

पितर और दक्षिणदिशा ।

" आच्याजानु दक्षिणतः " ऋ० १० । १५ । ६ । " दक्षिणा-यज्ञमभिनक्षमाणाः " १० । १७ । ९ । इत्यादि वैदिक वाक्यों में और " विसृज्य ब्राह्मणांस्तांस्तु नियतोवाग्यतः शुचिः । दक्षिणां दिगमाक्रान्तन् याचेतेमान् वरान् पितॄन् " इत्यादि

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

मन्वादि वाक्यों में पितरों का दक्षिण दिशा से सम्बन्ध देखते हैं। क्यों ? इस का भी कारण अब विस्पष्ट है। पूर्व में लिख आए हैं कि वर्ष के दक्षिणायन समय से पितरों की उपमा दीगई है। इस समय जैसे सूर्य्य घटते हुए भासित होता है। ऋतु शीतल होने लगती है। ऐसी ही दशा पितरों की भी होती है। अतः वेदों में दक्षिण दिशा को जाते हुए सूर्य्य के समान पितृ-गण कहे गए हैं। केवल दक्षिण दिशा से तात्पर्य्य नहीं। और दूसरा कारण इस में यह है कि आयु आदि में छोटा पुरुष अपने से बड़े पुरुष को अपने दहिने तरफ बिठाता है क्योंकि जैसे इस शरीर में दक्षिणबाहु बलिष्ठ और मुख्य और वाम-बाहु अबल और गौण है तद्वत् अपने से बड़े को मुख्य और अपने को गौण समझना चाहिये इसी स्वाभाविक नियमानुसार बड़े को सर्वदा दक्षिण ओर आसन दिया जाता है। चूंकि पितर सर्वश्रेष्ठ हैं अतः यज्ञ करते हुए पुत्र-पौत्रादिकों के दक्षिण भाग में सर्वदा पितृ-गण बैठाए जाते थे। यहां पर भी केवल दक्षिण दिशा से तात्पर्य्य नहीं था यजमान के दक्षिण अंग से अभिप्राय था। और भी, पूर्व समय में पूर्वाभिमुख हो प्रायः लोग यज्ञ किया करते थे। इस अवस्था में यज्ञकर्ता का दक्षिणबाहु भी दक्षिण दिशा में रहेगा। अतः पूर्वोक्त नियमानुसार सर्वदा पितरों का आसन यजमान की दक्षिण दिशा में और देव अर्थात् बालयुवकादिक गणों का उत्तर-दिशा में होगा और यजमान बीच में रहेगा। यह तो वृद्ध पितरों का सम्बन्ध दिखलाया गया। अब रक्षक पितरों में भी घटाइये। आषाढ़ से सूर्य्य दक्षिण होने लगता है। इसी समय से प्रायः वर्षा का आरम्भ होता है। गृहस्थ लोग खेती करने लगते हैं। जो जहां रहते हैं वे वहां हीं रह जाते हैं एक स्थान से दूसरे स्थान जाने में बड़ी कठिनाई होती है। नदी बहुत बढ़ने लगती है इत्यादि कारण-वश रक्षक-पितरों की देश में शान्ति के लिये बड़ी आवश्यकता आ पड़ती है। इस हेतु सूर्य्य को दक्षिण होते ही रक्षक-पितृ-गण अपने २ कार्य्य पर नियत हो जाते थे अतः पितरों की दिशा दक्षिण कही गई। और भी, प्रायः सूर्य्य के दक्षिणायन में ही युद्धयात्रा भी हुआ करती थी आश्विन-शुक्ल-पक्ष-दशमी को अभीतक लोग युद्ध-यात्रा करते हैं। कहा जाता है कि रामचन्द्रजी ने इसी दशमी को लङ्का पर चढ़ाई की थी। युद्धार्थ, अग्निष्वात्त, अथर्वा, अ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ङ्गिरा, भृगु और देशाभिमानी सेनापति, सेनाध्यक्ष, अश्वारोही, गजारोही आदि पितरों की कितनी आवश्यकता आ पड़ती थी, आप लोग अनुमान कर सकते हैं। एवं दक्षिणस्थ सूर्य्य को लक्ष्य कर वानप्रस्थाश्रम भी दक्षिण दिशा की ओर बनाते थे अत एव रामचन्द्र के समय में भारतवर्ष की दक्षिण दिशा में अनेक आश्रम पाये जाते थे। इत्यादि बहुशःकारणवश सूर्य्योद्देश से पितृदिशा दक्षिण मानी गई थी केवल दक्षिणदिशा से तात्पर्य्य नहीं था। धीरे २ लोग सचमुच दक्षिण दिशा को पितृसम्बन्धी मानने लगे। पुराणों के अनुसार भी क्या पितर मरने पर देवलोक नहीं जाते हैं यदि जाते हैं तो पितर उत्तर भी रहते हैं ऐसा मानना पड़ेगा। यदि कहो कि "दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः" यहां तो मृत अथवा नित्य पितर ही प्रतीत होते हैं। नहीं। यहां पर भी मृत पितरों का ग्रहण नहीं है। हां! नित्य-पितरों का ग्रहण है। नित्यपितर कौन? प्रवाहरूप से जो रक्षा का प्रबन्ध है प्रवाहरूप से जो एक के बाद दूसरे पितर होते आते हैं ये ही पितर नित्य कहाते हैं कोई खास व्यक्ति नित्य नहीं। जैसे आदि-सृष्टि से पठनपाठन चल रहा है इस अवस्था में अध्यापकों को नित्य शाश्वत कह सकते हैं। ऐसा प्रयोग होता है और कर सकते हैं कि अध्यापक हमेशे से चले आते हैं। इसी प्रकार पितर (रक्षक) भी सर्वदा से चले आते हैं यही पितरों का नित्यत्व है। अभी कह चुके हैं कि सूर्य्य दक्षिण होने पर पितरों की कितनी आवश्यकता है अतः पितर दक्षिण के इषु माने गये हैं। अथवा यहां पितृ-शब्दार्थ ऋतु है। "ऋतवः पितरः" शतपथ० २। "षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्य्यात् पितॄनेव च मन्त्रवित्" मनु० ३। २१७। इत्यादि प्रमाण से पितृशब्द ऋतुवाचक भी होता है। अब जैसे व्यवहारार्थ सूर्य्य का उदय अस्त मानते हैं। दिन की गणना रविवार से, वर्ष का आरम्भ चैत्र-शुक्लपक्ष से करते हैं वैसे ही ऋतु की गणना वसन्त से है। माघ मास से विस्पष्टतया सूर्य्य उत्तरायण होता हुआ भासता है और करीब इसी मास से वसन्त का आगमन भी होजाता है। इसी कारण वसन्तपञ्चमी माघ में ही होती है। इससे सिद्ध हुआ कि ऋतुराज-वसन्त की उत्पत्ति का कारण मानो दक्षिण दिशा है और वसन्त होते ही हेमन्त और शिशिर ऋतु से मानो बड़ी रक्षा होती है। अतः पितर जो वसन्त ऋतु

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वह मानो इषु है। इषु से साधु की रक्षा दुष्ट का हनन दोनों होता है। इत्यादि भाव जानना। इस प्रकार धीरे २ पित्र्य-कर्म्म-सब ही दक्षिण-संस्थ होने लगे।

"पितर और प्राचीनावीती" ॥

यह विधि भी जीवत्पितृ-श्राद्ध को दरसाती है। मनुजी कहते हैं "उद्धृते दक्षिणे पाणावुपवीत्युच्यते द्विजः। सव्ये प्राचीन-आवीती निवीतीकण्ठ-सज्जने" अ०२। अर्थात् पूर्व-काल में यज्ञोपवीत को तीन प्रकार से धारण करते थे। एक तो दहिना तरफ लटकाना दूसरा बाम तरफ लटकाना तीसरा केवल कण्ठ में ही रखना। यह एक साधारण नियम था कि ब्रह्मचर्य्य और गार्हस्थ्य आश्रम में जनेऊ को दहिना तरफ लटकाए हुए रहते थे जैसा आज कल लोग रखते हैं उन्हें "उपवीती" और वानप्रस्थाश्रम में उसको बाम तरफ लटकाते थे उन्हें "प्राचीनावीती" कहते थे अतः वन में रहने के कारण पितृ-गण सर्वदा प्राचीनावीती रहते थे। अतएव शतपथादि ग्रन्थों में "अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्य उपासीदन्" पितरों के विशेषण में 'प्राचीनावीती' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसका कारण यह था कि यज्ञोपवीत एक प्रकार से कर्म्म-सूचक चिन्ह है दक्षिणाङ्ग के समान जब तक बल-वीर्य्य का कार्य्य साधते थे तब तक तो उपवीती रहते थे और जब वामाङ्ग-समान शिथिल होजाते थे उस समय वानप्रस्थ में जा प्राचीनावीती हो जाते थे इस से सूचित करते थे कि अब से मेरा सब कार्य्य वामाङ्गवत् शिथिल-प्रायः हो रहा है। यह संकेत केवल जीवतों में ही घट सकता है मृतकों में नहीं। अतः पितृयज्ञ जीवत्पितृयज्ञ है इस में सन्देह नहीं। जब मृतक श्राद्ध होने लगा तब से इसी कारण सव्यापसव्य का बड़ा बखेड़ा खड़ा हुआ और "प्राचीनावीतिना सम्यगप सव्यमतन्द्रिणा" पित्र्यमानिधनात्कार्य्यं विधिवद्भर्पाणिना"। सव्यं बाहुं समुद्धृत्य दक्षिणे तु धृतं द्विजाः। प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्म्मणि योजयेत्" इत्यादि शतशः श्लोक बन गए। इति संक्षेपतः ॥

पितृ-याण से क्या आशय है?—यह श्राद्ध से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता अतः इस पर लेख करना व्यर्थ प्रतीत होता है। तथापि कतिपय भद्र पुरुष अनेक सन्देह इसके बारे में उठाते हैं अतः अति संक्षेप यहां लिखते हैं "पितृयाणं पन्थां

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जानाति य एवं वेद अथर्व० ८। इत्यादि वेदों में और उपनिषद् प्रभृति ग्रन्थों में पितृयाण और देवयान इन दो शब्दों के प्रयोग बहुत हैं। एवम्—

द्वे सृती अश्रृणवं पितृणामहं देवानामुतमर्त्यानाम्। ताभ्यामिदं विश्वमेजत् समेति यदन्तरा पितरं मातरञ्च ॥ य०१९।४७॥

(मर्त्यानाम्+ द्वे+सृती+अहम्+अश्रृणवम्) मर्त्य अर्थात् मरणशील प्राणियों के दो मार्ग मैं सुनता हूं अर्थात् देवयान और पितृयान मार्ग। वे दो मार्ग कौन हैं ? सो स्वयं वेद कहता है (पितृणाम्+उत+देवानाम्) पितरों का एक मार्ग और देवों का दूसरा मार्ग अर्थात् पितृमार्ग और देवमार्ग। (पितरम्+मातरम्+अन्तरा) पिता=द्युलोक, माता=पृथिवी। अर्थात् द्युलोक और पृथिवी लोक के अन्तरा=मध्य में (इदम्+एजत्+विश्वम्) यह क्रियावान् सम्पूर्ण जगत् (ताभ्याम्) उन देवयान पितृयानों से (समेति) संमिलित है ॥

यहां शङ्का होती है कि देवयान और पितृयान क्या है ? आदि में ही मैं लिख आया हूं कि "जो लोग अरण्य में श्रद्धा और तप की उपासना करते हैं वे क्रम से ज्वाला, दिन, शुक्लपक्ष, उत्तरायण, सम्वत्सर, आदित्य, चन्द्रमा, विद्युत् में जाकर पश्चात् ब्रह्म को प्राप्त होते हैं एवं जो ग्राम में इष्टापूर्त्त की उपासना करते हैं वे क्रम से धूम, रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, पितृलोक, आकाश और चन्द्र को प्राप्त होते हैं। इनही दो मार्गों के देवयान, पितृयान नाम हैं। यह मरण के पश्चात् की दशा का वर्णन है अर्थात् मरने के अनन्तर क्या २ दशाएं इस जीव को भुगतनी पड़ती हैं इस का वर्णन करता है। यह एक संज्ञा मात्र है पितरों से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं क्योंकि समस्त मनुष्यों के लिये ये दोनों मार्ग कहे गये हैं ज्ञानी मनुष्य देवयान से और साधारण मनुष्य पितृयान से गमन करते हैं। यदि पितृयान से ही केवल पितरों का सम्बन्ध होता तो "आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः" यहां देवयान से पित्रागमन नहीं कहा जाता। इस में कोई शङ्का करते हैं कि जब ये प्राणी चन्द्रलोक से लौटते हैं तब द्युलोक, पर्जन्य, पृथिवी, ओषधि आदियों में से होते हुए आते हैं और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इन में कुछ समय भी लगता है अतः जैसे हवन के द्वारा वायु आदि देवों को भाग पहुँचता है वैसे पिण्डदान से पर्जन्यादिस्थानस्थ पितरों को लाभ पहुंचता होगा। समाधान। पर्जन्यादिकों में सूक्ष्म या स्थूल शरीर से रहते हैं? आप को मानना पड़ेगा कि सूक्ष्म शरीर से। क्योंकि इस अवस्था में ओषधि, रज, वीर्य आदि में भी तो उन जीवों का निवास माना गया है। क्या रज वीर्य में स्थूल शरीर के साथ निवास करसकेंगे। नहीं। अतः सिद्ध है कि सूक्ष्म शरीर से इन अवस्थाओं में रहते हैं। वह सूक्ष्म शरीर, अन्नादिकों की अपेक्षा नहीं रखता है यह सर्वतन्त्र सिद्धान्त है अतः इस वितण्डावाद को त्याग सत्य की ओर जाना चाहिये। इसी प्रकार इसमें जो अन्यान्य सन्देह करते हैं बुद्धिमान् पुरुष इसी प्रकार समाधान करादिया करें इति।

पितृगण और चन्द्रमा—बहुत अविवेकी पुरुष चन्द्रमा में पितृलोक मानते हैं परन्तु यह भी भूल है। क्योंकि यदि पितर चन्द्रलोक में निवास करते तो उन्हें चन्द्र प्रिय होना चाहिये और इसके अनुसार शुक्लपक्ष और पूर्णिमा तिथि पितरों की होती परन्तु कृष्णपक्ष और अमावास्या तिथि पितरों की मानी जाती है। पुनः पुराणों के अनुसार चन्द्र में अमृत पान करते हुए पितरों को पृथिवीस्थ-पिण्डों की आवश्यकता नहीं होती यदि कहो कि चन्द्रामृत तो देवों के लिये है पितर कैसे पान करेंगे। तो इस अवस्था में उनका वहां रहना व्यर्थ है। यदि कहो कि कृष्णपक्ष में अमृत पीते २ अमावास्या को बिलकुल घट जाता है इसी कारण अमावास्या—श्राद्ध पृथिवी पर विहित है तो यह कहना भी समुचित नहीं। अमृतपान करनेवाले अमर होते हैं किञ्चित् अमृत से राहु केतु अभीतक अमर बन रहा है क्या एक दिवस भी पितर अमृत विना नहीं रह सकते हैं। दूसरी बात यह है कि जो चन्द्र में रहते हैं उन्हें देवगण खा जाते हैं फिर "अग्निष्वात्तादि पितर नित्य हैं" यह आप का सिद्धान्त कहां रहा। एवं सर्वत्र कहा गया है कि देवयान या पितृयान दोनों मार्गों से जाते हुए को चन्द्र मिलता है एक पितृलोक पृथक् भी उक्त हैं इत्यादि कारणाधीन हो कहना पड़ता है कि लोग इसका भी भाव अब भूल गये। इसका आशय यह था। आपने देखा है कि पितरों के नामों में से एक नाम **सोम्य** है। सोम-सम्पादी को **सोम्य** कहते हैं सोम—नाम से, सोमलता

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

से ले के सब लताओं का ग्रहण है। इस सोमलता-विद्या में और सोमयाग में जो पितर निपुण होते थे वे **सोम्य** नाम से पुकारे जाते थे एवं वे सोम रस के बड़े प्रेमी होते थे और गृहस्थ लोग भी रक्षक और वृद्ध पितरों को बलप्रद होने के कारण खूब सोम रस पिलाया करते थे "ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः। अग्निष्वात्तानृतुगतो हवामहे नाराशंसे सोमपीथं य आशुः" इत्यादि मन्त्रों से प्रतीत होता है। दूसरी बात यह थी कि रात्रिरक्षक पितरों को आकाशस्थ चन्द्रमा बडा सहायक होता है अथवा जैसे चन्द्रमा अपने प्रकाश के लिये देवसूर्य्य से सहायता चाहता है वैसे वृद्ध पुरुष अपने देवपुत्र पौत्रादिकों से सहायाकांक्षी हैं। यह भी स्मरणीय है कि शुक्लपक्ष में वृद्धि के कारण चन्द्रकिरण देव और कृष्णपक्ष में ह्रास के कारण पितर कहते हैं अर्थात् चन्द्रकिरण के नाम ही देव और पितर हैं अतः अलङ्कार रूप से कहा है देव और पितर दोनों चन्द्र से जीते हैं अथवा सूर्य और चन्द्र दोनों देव और पितर क्रम से कहाते हैं क्योंकि सूर्य प्रचण्ड-रूप से बढ़ता ही रहता है घटने पर भी किसी दिन बिलकुल लुप्त नहीं होता अतः सूर्य अमर है परन्तु चन्द्रमा सदा बढ़ता घटता रहता है अमावास्या प्रतिपद् को प्रायः सर्वथा लुप्त भी हो जाता है अतः पितर है क्योंकि पितर भी घटते २ एक दिन शान्त हो जाते हैं फिर जन्म लेके बढ़ने लगते हैं पुनः यौवनावस्था के बाद घटने लगते हैं इस प्रकार चन्द्रवत् पितरों की गति है इत्यादि अनेक कारणवश पितर **सोम्य** और चन्द्रलोकनिवासी इत्यादि नामों से कहे जाते हैं परन्तु सोम नाम चन्द्रमा का भी है अतः "चन्द्रलोक में पितर निवास करते हैं" यह जनप्रवाद चल पड़ा। एक बात यह भी स्मरण रखनी चाहिये सोमलता और चन्द्रमा के नाम प्रायः समान हैं इससे अर्थज्ञान में अन्तर पड़ा है। इस प्रकार पृथिवीस्थ सोम (सोमलता) और अन्तरिक्षस्थ सोम (चन्द्रमा) दोनों ही पितरों के सहायक हैं। इसी कारण इन मन्त्रों में पितर और सोम का सम्बन्ध देखते हैं " अपाम सोममृता अभूमाऽगन्म ज्योतिरविदाम देवान्। किं नून मस्मान् कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥ यो न इन्दुः पितरो हृत्सु पीतोऽमर्त्यो मर्त्याँ आविवेश। तस्मै सोमाय हविषा विधेम मृडीके अस्य सुमतौ स्याम ॥ १२ ॥ त्वं सोम

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितृभिः संविदानोऽनु द्यावापृथिवी आततन्थ । तस्मै त इन्द्रो हविषा विधेम वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १३ ॥ ऋग्वेद० ८ । ४८ । पुनः सुश्रुत चिकित्सा स्थान में "सर्वेषामेव सोमानां पत्राणि दश पञ्च च । तानि शुक्ले च कृष्णेच जायन्ते निपतन्ति च । एकैकं जायते पत्रं सोमस्याहरहस्तथा । शुक्लस्य पौर्णमास्यां तु भवेत् पञ्चदशच्छदः" कहा है भाव इस का यह है कि जैसे चन्द्रमा शुक्लपक्ष में एक एक कला से बढ़ता और कृष्णपक्ष में घटता है सोमलता की भी यही दशा वर्णित है । शुक्लपक्ष में एक २ पत्र नवीन उत्पन्न होता जाता है और कृष्णपक्ष में एक २ पत्र गिरता जाता है इस हेतु पृथिवीस्थ सोमलता और आकाशस्थ सोम दोनों का समान रीति से बहुधा वर्णन आता है अतः " सोमो वीरुधामधिपतिः समावतु । अथर्व " इत्यादि । अतएव आकाशस्थ चन्द्रमा से ओषधियों की पुष्टि होती है चन्द्रमा ओषधीश्वर है इत्यादि प्रवाद चल पड़ा है । अब यह बात सुबोध हो जाती है कि पितृ-गण चन्द्रलोक में अमृत पान करते हैं इस का क्या आशय है । यज्ञ में सोमलता का अधिक प्रयोग है । सोमलताही मानो, चन्द्रलोक है इस लता के रस का पान करना ही मानो अमृत पान है । यहां पर इतना और भी जानना चाहिये कि सोम शब्द उपलक्षक है यज्ञ में एक विचित्र और आश्चर्य-आनन्द-प्रद किसी प्रकार का एक रस तैयार किया जाता था इस में सोमलता की प्रधानता रहती थी इस हेतु इस को सोमरस कहते थे परन्तु यह सैकड़ों पदार्थों के रस से आश्चर्य्य रूप से तैयार किया जाता था जिस के १०, ५ विन्दु ही अबल पुरुष को बलिष्ठ बनाने में समर्थ होते थे । पीने के लिये जब यह रस ऋत्विकों को मिलता था तो वे कहते थे " अपाम सोममृता अभूम" सोम पान कर लिया अब अमृत होगये । यही सोम-रस-रूप अमृत पान पौराणिक-चन्द्रलोकामृत पान है । चूंकि यज्ञ में पितृ गणो का बड़ा सम्बन्ध था इस रस को वेही लोग तैयार करते थे इस लता-रक्षा में बड़ा ध्यान रखते थे । और मैं कह चुका हूं कि सोमशब्द से पृथिवीस्थ यावत् खाद्य पदार्थों का ग्रहण है । सो यावत्पदार्थों के भी रक्षक पितृ-गण थे अतः कहा गया है कि पितरों का चन्द्रलोक में निवास है और वहां अमृत पान करते हैं । वेद में यह भी एक विलक्षणता है कि प्रथम पृथिवीस्थ सोम को वर्णन करेंगे पीछे आकाशस्थ सोम की ओर

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ले जायँगे पश्चात् सर्वव्यापी परमपूज्य सोम अर्थात् ईश्वर की ओर लेजायँगे इस प्रकार "अपाम सोममृता अमूम" इत्यादि वाक्य से परमात्मा का भी ग्रहण है **वहां देवों का अन्न पितर क्यों कहाते हैं ?** यह प्रश्न अब शेष रह गया। यह भी अब दुर्बोध नहीं। मैंने अभी देवमार्ग और पितृमार्ग कहे हैं। वे दोनों मार्ग मरण के पश्चात् की दशा सूचक हैं यथार्थ में किसी विशेष रास्ते के नाम नहीं किन्तु उत्तम-दशा का नाम देवयान या देवमार्ग और मध्यमदशा का नाम पितृयान या पितृमार्ग है। इस देवयान-दशा से जो बढ़ते हैं वे जीव भी देव और पितृयान-दशा से जो जाते हैं वे जीव भी पितर नाम से पुकारे जाते हैं। इन पितरों की अन्तिम दशा का नाम चन्द्रदशा है और इन को वहां से शीघ्र लोटना पड़ता है पुनः वे जन्म लेते हैं जिसहेतु अन्तिम-दशा का नाम ही चन्द्र है और वहां से लोटते हैं अतः कहा जाता है कि ये पितर अर्थात् चन्द्रदशा-प्राप्त जीव देवों के अर्थात् प्राकृतिक नियमों के अन्न हैं। अर्थात् बारबार इन का जन्म लेना ही अन्नत्त्व है इस कारण कहा गया है कि पितर देवों के अन्न हैं। इत्यादि भाव जानना। इति संक्षपतः ॥

पितर और अन्न ॥

पितृयज्ञ में भोजन का इतना माहात्म्य क्यों ? इस का कुछ तो वर्णन स्वधा-प्रकरण के "पितृगण और अन्नवाचक स्वधा" शीर्षक लेख में दिया गया है। विशेष यहां निरूपण करते हैं "अत्तन् पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः"। "अत्ता हवींषि प्रयतानि"। "प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्"। "आवह पितॄन् हविषे अत्तवे" मनुस्मृति-प्रभृति ग्रन्थों में भी इस के लिये अनेक बन्धन देखते हैं। कव्य शब्दः-यद्यपि कहीं २ पितर के विशेषण में भी आया है तथापि पितरों के अन्न का नाम कव्य है "हव्यकव्ये दैवपित्र्ये अन्ने पात्रे स्रुवादिकम्"। अमरकोश। देवान्न को हव्य और पित्रन्न को कव्य कहते हैं। "कु" धातु से कव्य बनाते हैं। परन्तु 'कवि' शब्द से 'कव्य' की सिद्धि करनी चाहिये। क्योंकि कु धातु का अर्थ शब्द करना है। पितरों के लिये जो शब्द करे यह अर्थ शोभित नहीं होगा। अनेकार्थ मानना सर्वत्र उचित नहीं। कवि शब्द से ही इस को बनाना चाहिये। आगे इस का कारण निरू-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पण करता हूं। कवि शब्दार्थ केवल काव्य-करनेवाला ही नहीं होता। यास्काचार्य्यादि कोंने इसका ज्ञानी, परम ज्ञानी अर्थ किया है "कविर्मनीषी" यहां ब्रह्मार्थ में कवि शब्द आया है। कारण इस में यह है कि वृद्ध और देशरक्षक पुरुषों का नाम पितर है। अब उन वृद्ध पिता-पितामह, प्रपितामहों के लिये किस को पाक करना चाहिये और कैसे २ पदार्थ होने चाहियें ? निःसन्देह परमचतुर पाक—शास्त्र तत्त्ववित् पुरुष ही इन के लिये पाक बना सकता है वही जान सकता है कि यह अन्न सुसिद्ध हो गया यह शीघ्र पचनेवाला है इस ढंग से यह पकने पर किसी प्रकार से दुःखदायी नहीं होगा अमुक २ अन्नों से वृद्ध पितरों को स्वधा अर्थात् स्वधारण शक्ति प्राप्त होगी अमुक अन्न इतनी देर में पचता है अमुक अन्न शीघ्र नहीं पचता इत्यादि भेद वही जान सकता है अज्ञानी ईर्षद्वित् पुरुषों के हाथ में यदि यह काम देदिया जाय तो जो पितर एक आध वर्ष में मरने वाले हैं वे अन्न खाते ही मरजांय या बीमार पड़ के दुःख भागी बनें। भोजनदाता को हर्ष के स्थान में शोक ही शोक प्राप्त हो। इस हेतु पिण्ड-पितृ-यज्ञ के अन्नों को पकाने के लिये अनुभवी पाक-शास्त्र तत्त्व-वेत्ता पुरुषों को नियुक्त करने की विधि देखते हैं। वेदों में लक्षण देख इस कारण इस अन्न का नाम 'कव्य' रक्खा "कविभिः पाकशास्त्रतत्त्वविद्भिः पुरुषैः सम्पादितं कव्यम्" इस हेतु श्राद्ध में पित्रन्न का इतना माहात्म्य है। यह 'कव्य' शब्द भी सिद्ध करता है कि यह जीवित-यज्ञ है। अन्यथा मुर्दों के लिये इतने संभार करने की क्या आवश्यकता ? पुराण अथवा आजकल के धर्मशास्त्र के अनुसार तो किसी प्रकार का अन्न हो पितर जिस २ योनि में गए हैं तदनुकूल ही वह बन जायगा। सिंह के लिये मांस और ऊंट के लिये वह अन्न कंटक बन जायगा। फिर समारोह की आवश्यकता ही क्या ?

पितर कैसे होने चाहियें—मन्वादि-धर्मशास्त्र में कैसे कैसे ब्राह्मण चुनके खिलाने चाहियें इसका बड़ा नियम देखते हैं। देवकर्म में कोई नियम नहीं परन्तु पितृ-कर्म में ब्राह्मण परीक्षा के अनेक नियम बांधे गये हैं मैं यहां संक्षेप से लिखता हूं यह भी सिद्ध करता है कि पितृ-यज्ञ जीवित यज्ञ है ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रोत्रियैव च देयानि हव्यकव्यानि दातृभिः । अहर्त्तमाय विप्राय तस्मै दत्तं महाफलम् ॥ ॥ १२८ ॥ एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् । पुष्कलं फलमाप्नोति नामन्त्रज्ञान् बहूनपि ॥ १२९ ॥ दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेदपारगम् । तीर्थं तद्धव्यकव्यानां प्रदाने सोऽतिथिः स्मृतः ॥ १३० ॥ सहस्रं हि सहस्राणामनृचां यत्र भुञ्जते । एकस्तान् मन्त्रवित् प्रीतः सर्वानर्हति धर्मतः ॥ १३१ ॥ ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि कव्यानि च हवींषि च ॥ १३२ ॥ ज्ञाननिष्ठा द्विजाः केचित्तपोनिष्ठास्तथापरे । तपःस्वाध्यायनिष्ठाश्च कर्मनिष्ठास्तथा परे ॥ १३४ ॥ ज्ञाननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठाप्यानि यत्नतः । हव्यानि यथान्यायं सर्वेष्वपि चतुर्ष्वपि ॥ १३५ ॥ यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धं बह्वृचं वेदपारगम् । शाखान्तगमथाध्वर्युं छन्दोगं तु समाप्तिकम् ॥ १४५ ॥ इत्यादि ।

मनुष्यों को उचित है कि श्रोत्रिय और आचारादिकों से पूज्यतम पुरुष को हव्य कव्य देवे । वह महाफल-प्रद होता है ॥ १२८ ॥ दैव और पित्र्य कर्म में एक २ विद्वान् को भी भोजन देने से महाफल होता है । अवेदज्ञ बहुतों को देने से भी कुछ लाभ नहीं ॥ १२९ ॥ दूर से ही वेदपारग ब्राह्मण की परीक्षा करनी चाहियें । वही हव्य कव्य के तीर्थ हैं और दान के अतिथि हैं ॥ १३० ॥ जहां १००००० दशलक्ष मूर्ख अवेदज्ञ खाते हैं वहां एक वेदवित् भोजन से प्रीत हो उतना फल दे सकता है ॥ १३१ ॥ ज्ञाननिष्ठ को हव्य कव्य देने चाहियें ॥ १३२ ॥ ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ, तपःस्वाध्यायनिष्ठ और कर्मनिष्ठ द्विज होते हैं ॥ १३४ ॥ विशेष कर ज्ञाननिष्ठ द्विजों में कव्य देने चाहिये और हव्य तो चारों में देवे ॥ १३५ ॥ यत्न से वेदपारग ऋग्वेदीय, शाखान्तग यजुर्वेदीय, समाप्तिक सामवेदीय को भोजन करावें । यह विधान करके आगे निषेध किया है कि, चोर, पतित, क्लीव, नास्तिक, जटिल, अनधीत, चिकित्सक (वैद्य) देवलक, मांसविक्रयी, ग्राम-राज-सेवक, जिसके दांत काले हों, तनखाह ले के पढ़ानेवाला इत्यादि पुरुषों को श्राद्ध में न बुलावे । ऐसा नियम क्यों ? इस का भी आशय जीवितों में ही घटता था परन्तु अब कुछ उलटा अर्थ होगया । पिण्डपितृ-यज्ञ और पितृयज्ञ ये दो प्रकार के यज्ञ होते थे । अ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ग्निष्टोम, राजसूय, अश्वमेध आदि बड़े २ यज्ञों में पितृगण बुलाये जाते थे। ऐसे २ यज्ञों में किन २ पितरों का आमन्त्रण होना चाहिये। इस के लिये ऋषियों ने जगदुपकारी कतिपय नियम चलाये थे। जो यथार्थ में स्वधा अर्थात् अपने देश कुल परिवार धर्म्म कर्म्मों को धारण पोषण करनेवाले हों उन का ही आवाहन होना उचित है। सब से प्रथम मनूजी 'श्रोत्रिय के' सो भी परमाचरणवान् और अपने आचरण के कारण 'अर्हत्तम'=पूज्यतम पुरुष हो उस को अधिकारी कहते हैं। गोभिलीय गृह्यसूत्रादिक भी यही कहते "हैं स्नातकान्। ७ श्रोत्रियान्। ८ वृद्धान्। ९ अनवद्यान्। १० स्वकर्म्मस्थान् १२" गो० गृ० श्राद्धकल्प। स्नातक, श्रोत्रिय, वृद्ध, अनवद्य और स्वकर्म्मस्थ पुरुषों को आमन्त्रण करना चाहिये। वास्तव में ये ही सब स्वधावान् पितर कहलाने के योग्य हैं। जो अज्ञानी, कुटिल, दाम्भिक, नास्तिक आदि पुरुष हैं वे कदापि रक्षक नहीं बन सकते अतः चुने २ पुरुष जो यथार्थ में पितर कहलाने के योग्य हैं वे आहूत होते थे। और ऐसे ही आचारी पुरुष जो वनाश्रम में रहते थे वे भी यज्ञ में पूजित होते थे। यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि केवल वानप्रस्थाश्रमी ही होने से कोई धार्म्मिक नहीं बनता। वनी होने पर भी अमनस्क पुरुष शीघ्र नहीं सुधरते। दूसरा साधारण पितृयज्ञ में सब ही बनी बुलाये जाते थे। क्योंकि अधम से अधम पुरुष भी तो किसी के पितर ही हैं। अब इस वृद्धपितृयज्ञ में भी इनके साथ वे ही बैठ सकते थे जो सदाचारी थे। इस का भी कारण यह है कि वृद्धपुरुषों के निकट प्रथम तो दुराचारी जा ही नहीं सकता है क्योंकि वे ऐसे को टांट देते हैं। फिर ये भी स्वयं पितर अर्थात् रक्षक ठहरे इस कारण प्रतिकूल चलने वाले को वे क्यों कर सहेंगे। दूसरी बात यह है कि ये पितर परमवृद्ध और सदाचारी पहले से भी रहते हैं वा इस आश्रम में आके वैसे बन जाते हैं। ये यदि दुराचारी को देख लेवें तो झट क्रुद्ध होजांय जिस से इन के मन और शरीर में कुछ विकार उत्पन्न हो सकता है अतः पितृयज्ञ के लिये श्रोत्रिय सदाचारी पुरुष अधिकारी माना है। इत्यादि अनेककारणवश यह नियम चलाया गया है। ये सारे संकेत जीवित में ही घट सकते हैं। मृतपुरुषों के लिये इस की कोई आवश्यकता नहीं। क्योंकि उस में तो केवल मन्त्र की प्रबलता चाहिये जो इस दूध भात को भी

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सिंहयोनिगत पितर के लिये मांस और देवों के लिये अमृत, सर्प के लिये विष बनावे। यदि कहो कि उत्तम ब्राह्मण को पितर के स्थान में खिलाने से शीघ्र पहुंचता है तो यह कहना भी उचित नहीं क्योंकि जब कुशा पर वा ब्राह्मण के हाथ में पितर के उद्देश से पिण्ड रखते हैं तब ही पितर का अंश उस से चला जाता है वा जब वह खाया जाता है तब पित्रंश बनता है आप के सिद्धान्त के अनुसार तो पितरों के उद्देश से जब ही मन्त्र पढ़ के पिण्ड छोड़ा जाता है तब ही वह पित्रंश बन जाता है। भोजन का राह नहीं देखता, यदि कहो कि ब्राह्मणों से भुक्त होने पर वह दत्तपिण्ड पित्रन्न बनता है तो यह कहना ठीक नहीं क्योंकि इस अवस्था में मन्त्र पढ़ के कुशा पर पिण्ड रखना व्यर्थ होगा। ब्राह्मण को ही भोजन के समय में मन्त्र पढ़ना चाहिये जिस से कि वह पित्रन्न बनता चला जाय। परन्तु ऐसा होता नहीं। दूसरी बात यह है कि पितरों का आवाहन आसन, वस्त्र, जल, आचमनीय आदि सब विधि करते हो आप समझते हो कि पितर आके बैठे हुए हैं इन को ही पिण्ड भी देते हो अथवा वसु, रुद्र, आदित्य इन तीनों देवता को पिता, पितामह, प्रपितामह इन तीनों के उद्देश से देते हो। इन के द्वारा मृत-पुरुषों को पहुंचना मानते हो कोई सिद्धान्त मानो। यही सिद्ध होगा कि ब्राह्मण-भोजन से पितर का सम्बन्ध नहीं। फिर ब्राह्मणों की परीक्षा आपके मत से व्यर्थ ही है। अतः मैं कहता हूं कि इस का कुछ अन्य भाव था परन्तु उसे लोग भूल गए। बड़े २ वृद्ध और ज्ञानी पुरुष इस में निमन्त्रित होते थे। इसी हेतु "देवकार्य्यादृद्विजातीनां पितृकार्य्यं विशिष्यते। दैवं हि पितृ-कार्य्यस्य पूर्वमाप्यायनं श्रुतम्" इत्यादि लेख-द्वारा देव-कर्म्मापेक्षा पितृकर्म्म को श्रेष्ठ माना है। इति संक्षेपतः।

पुत्र ही समय पाके पितर कहाते हैं।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ।ऋ०१।

(देवाः) हे प्राण, मन, चक्षु आदिक इन्द्रियदेवो! (अन्ति) हम मनुष्यों के समीप (नु) निश्चय (शतम्+इत्+शरदः) सौ ही शरद् अर्थात् सौ ही वर्ष हैं अर्थात् हमारी आयु सौ वर्ष की है। (यत्र) जिन शत शरदों में आप सब इन्द्रिय देव (नः+

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तनूनाम्) हमारे शरीरों की (जरसम्) जरा अवस्था (चक्र) बनाते हैं । हे इन्द्रियों ! और (यत्र) जिन वर्षों में (पुत्रासः+पितरः+भवन्ति) हमारे पुत्रगण पितर हो जाते हैं अर्थात् हमारे पुत्रों के भी पुत्र हो जाते हैं (मध्या) इस के मध्य में (आयुर्गन्तोः) आयु के अवशेष के पूर्व (मा+नः+रीरिषत) आप हमको न त्यागें अर्थात् हम पूर्ण सौ वर्ष की आयु भोग पुत्र पौत्रों को देख मरें अन्ति=अन्तिक "अन्तिकशब्दस्य कादिलोपो बहुलमिति वक्तव्यम्" आशय—भगवान ने सौ वर्ष की आयु दी है । इन्हीं सौ वर्षों में शरीर जीर्ण हो जाता है और पुत्र के पुत्र भी अर्थात् पौत्र भी हो जाते हैं । यहां कहा गया है कि पुत्र पितर होते हैं । अर्थात् इन की भी वृद्धावस्था आने लगती है और ये ही वानप्रस्थ में जाके पितरों के नाम से पुकारे जाते हैं ऐसे के लिये ही पितृयज्ञ है ।

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदं मा-स्थापयन्त तृतीयेन कर्म्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् । ऋ० । १० ।

हमारे (सूनवः) पुत्रों नें (तृतीयेन+कर्म्मणा) तृतीय कर्म्म अर्थात् पुत्रोत्पादन से (असुरम्) बलिष्ठ (स्वर्विदम्) सुखप्रापक सन्तान को (द्विधा+अस्थापयन्त) द्वि प्रकार से स्थापित किया है और इस प्रकार वेही पुत्र अब (स्वाम्+प्रजाम्) स्वीय प्रजा को पैदा कर (पितरः) पितर हो (अवरेषु) अपने से नीचे पुत्रों में (पित्र्यम्+सहः) पैत्रिक धन और (आततम्+तन्तुम्) प्रजारूप विस्तृत तन्तु को (आ+अदधुः) आहित=स्थापित किया है । आशय-ब्रह्मचर्य्य से ऋषियों को, यज्ञों से देवों को, प्रजा से पितरों को प्रसन्न करना चाहिये। इस हेतु तृतीय कर्म्म का अर्थ यहां प्रजोत्पादन है, द्विधा—पुत्रोत्पादन से एक तो पैत्रिक ऋण शोधन होता है और दूसरा आगे वंश की परम्परा चलती रहती है। इस प्रकार पुत्रोत्पादन से दो प्रकार के कार्य्य होते हैं, इस से भी पुत्र ही पितर होते हैं यह सिद्ध होता है ॥

नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वा वरेष्व दधादा परेषु । ऋ० । ८ ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(न) जैसे (नावा)नौका से (क्षोदः) जल (अति) तैरते हैं और (स्वस्तिभिः) उत्तम राजमार्गों से (पृथिव्याः+प्रदिशः) पृथिवी की हरेक दिशाओं को जाते हैं और कल्याणप्रद धर्म्म से जैसे (विश्वा+दुर्गाणि) सकल क्लेशों को पार उतरते हैं वैसे ही (बृहदुक्थः) ज्ञानी पुरुष (स्वाम्+प्रजाम्) अपने प्रजा को उत्पन्न करके (अवरेषु) अपने से नीचे (परेषु) परन्तु गुणादिकों से उत्कृष्ट सन्तानों में (महित्वा) धन धान्यादिक महिमा को (आ+अदधात) स्थापित करते हैं और स्थापित करके ऋणत्रय से मुक्त होते हैं ॥

पितरों के लिये आयु की प्रार्थना ।

य उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृते नाभिन्दन् परिवत्सरे बलम्।
दीर्घायुत्वमंगिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ।ऋ।१०

(पितरः) हे आग्नेयास्त्रनिपुण पितृगणो ! ये जो आप लोग (गोमयम्+वसु) गवादि धनको (उदाजन) यज्ञार्थ रक्षा करते हैं और (परि+वत्सरे) प्रत्येक वर्ष में (ऋतेन) सत्य धर्म्म सत्य व्यवहार से युक्त हो (बलम्) दुष्ट पुरुषों के बल= सेना को (अभिन्दन्) छिन्न भिन्न करते हैं (अङ्गिरसः) आग्नेयविद्या में निपुण पितरो ! (वः) ऐसे वीर कर्म्म करनेवाले आप सब को (दीर्घायुत्वम्+अस्तु) दीर्घायु होवे (सुमेधसः) हे परम बुद्धिमान् पितरो ! (मानवम्+प्रतिगृभ्णीत) मानव जाति पर अनुग्रह प्रदर्शित करो । यहां पितरों के कर्म्म कहके इन की दीर्घायु होवे और ये पितृगण मनुष्यों में उपद्रव न मचाके रक्षा करें यह उपदेश दिया गया है । इस से सिद्ध है ऐसे स्थलों में पितर नाम रक्षकों का है । यहां आङ्गिरस पितरों का और भी कुछ विशेष वर्णन इसी सूक्त के द्वारा करते हैं ।

पितरों के अनेक कर्म्म ।

ये यज्ञेन दक्षिणाया समक्ता इन्द्रस्य सख्यममृतत्वमानश। तेभ्यो भद्रमङ्गिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः।ऋ०।१०॥

(ये) जो आप पितृगण (यज्ञेन) यज्ञ=सत्कर्म्म के द्वारा (दक्षिणाया+समक्ताः)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दक्षिणा=पुरस्कार से युक्त हो (इन्द्रस्य+सख्यम्) ईश्वर की मैत्री पाके (अमृतत्वम्) अमरण धर्म्म को (आनश) पाते हैं वा ईश्वर के सख्यरूप अमृतत्वको पाते हैं। अर्थात् आपकी यश कीर्ति कभी नहीं लुप्त होती (अंगिरसः) हे अंगिरस पितरो ! (तेभ्यः+वः) ऐसे सत्कर्म्म निष्ठ आपको (भद्रम्+अस्तु) कल्याण होवे (सुमेधसः) ऐ बुद्धिमान् पितरो ! (मानवम्+प्रति गृभ्णीत) मनुष्य जाति पर अनुग्रह करो ॥१॥

ये ऋतेन सूर्य्यमारोहयन् दिव्य प्रथयन् पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमंगिरसो वो अस्तु प्रतिगृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥२॥

(ये) जिन आप लोगों ने (ऋतेन) सत्य धर्म्म को (द्वितीयार्थ में तृतीया है) (दिवि+सूर्य्यम्+आरोहयन्) द्युलोक में सूर्य्य तक पहुंचाया है और (मातरम्+पृथिवीम्) माता पृथिवी को (विः+अ+प्रथयन्) अपनी कीर्ति से प्रख्यात किया है (अंगिरसः) हे आग्नेयास्त्र निपुण पितरो ! (वः) आपको (सुप्रजास्त्वम्+अस्तु) सुप्रजास्त्व होवे। अर्थात् आपकी प्रजाएं सर्व गुण सम्पन्न होवें(प्रति०) मनुष्य जाति पर अनुग्रह करो।

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन॥
सुब्रह्मण्यमंगिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत ऋ० १०—६२—४ ॥

(देवपुत्राः+ऋषयः) हे देव पुत्र ऋषियो (वः+गृहे) आप के गृह में (अयम्+नाभा) यह आप की भाई मनुष्य जाति (वल्गु+वदति) कल्याण वचन कह रही है। क्या कहती है (अंगिरसः) हे अंगिरस पितरो ! (वः+सु ब्रह्मण्यम्+अस्तु) आप को शोभन ब्रह्मचर्य्य प्राप्त होवे (प्रति०) मनुष्य जाति पर कृपा करो।४।

नाभा=सनाभि=भाई जाति परस्पर भ्राता हैं अतः नाभा कहा गया है। आशय यहां पितर के लिये ऋषिपद आया है। मनुष्य जाति देशरक्षक पितरों से अपनी २ रक्षा के लिये याचना करें। यह शिक्षा दी गई है। अब आगे दिखलाया जाता है कि अग्निविद्या में परम निपुण होने के कारण ये पितर अग्निपुत्र कहाते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विरूपास इदृषयस्ते इद् गंभीरवेपसः । ते अंगिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे ॥ ५ ॥ ये अग्नेः परिजज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि।नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते ।ऋ१०

(ऋषयः+इत्) वे ही पितर कर्म के द्वारा ऋषि भी कहाते हैं वे (विरूपासः) अनेक-रूपवाले हैं (ते+इत्+गंभीरवेपसः) वे ही गंभीर कर्म्म करनेवाले हैं (ते+अंगिरसः+सूनवः) वे अंगिरापुत्र=अग्निपुत्र कहते हैं क्योंकि (ते+अग्नेः+परिजज्ञिरे) वे अग्नि के निमित्त ही उत्पन्न हुए हैं । ५ । (विरूपासः) वे नानाविध (ये) जो अंगिरस पितर हैं (अग्नेः+परिजज्ञिरे) जो अग्निविद्या के प्रचारार्थ ही उत्पन्न हुए हैं जो (परि+दिवः) जो सर्वतोभाव दिव्य है । इन में से कोई (नवग्वः) नवग्व ९० नव्वे वर्ष के अथवा नूतनगति वाले=नूतन २ विद्याओं को आविष्कार करनेवाले । कोई (नु+दशग्वः) १०० वर्ष के अथवा अपनी वीरता से दशों दिशाओं में गमन करनेवाले। कोई (अंगिरस्तमः) अतिशय अंगिरा अर्थात् आग्नेय विद्या में निपुण हैं वे (देवेषु+सचा) देवों में साथ ही (मंहते) पूजित होते हैं । यहां देखते हैं कि वे ही पितर, ऋषि, देवपुत्र वा अग्निपुत्र कहाते हैं। अंगिरा भी अग्नि का ही नाम है। जो अत्यन्त अग्निविद्या में निपुण होते हैं वे साक्षात् मानो अग्नि ही हैं इसहेतु ऐसे पुरुष इसी अंगिरस नाम से पुकारे जाते हैं ।

आचार्यवाचक पितृशब्द ॥

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः।नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥ १०।८८।१८।

यहां शिष्य अपने आचार्य से प्रश्न पूंछता है (पितरः) हे पितरो ! (वः+उपस्पिजम्) आप को दुःखदायी वचन (न+वदामि) नहीं कहता हूं अर्थात् आप को दुःख देने के लिये नहीं किन्तु (कवयः) हे परमज्ञानी आचार्यो ! (विद्मने+कम्) ज्ञान होने से मुझे सुख प्राप्त हो इस कारण (वः+पृच्छामि) आप से पूछता हूं (अग्नयः+कति) अग्नि कितने प्रकार के हैं ? (सूर्यासः+कति) सूर्य कितने हैं ? (उषासः

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

कति) उषाएं कितने प्रकार की हैं (आपः+कति+उ+स्वित्) और जल कितने प्रकार के हैं। हे पितरो ! यह मुझे समझाओ । यहां आप देखते हैं कि कैसे २ कठिन प्रश्न पूछे गये हैं । क्या ये प्रश्न मृत पुरुषों से पूछे जासकते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि यहां पितृशब्द आचार्यार्थक है इसी कारण आगेकी ऋचा कहती है कि पितृगण सर्वदा 'मेधा' अर्थात् बुद्धि की उपासना करते हैं क्योंकि जो विद्या पढ़ावेंगे उन्हें अवश्य ही मेधा की उपासना करनी पड़ेगी ।

यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ यजुः ३२-४ ॥

(याम् मेधाम् देवगणाः पितरः च) जिस मेधा को देवगण और पितृगण (उपासते) उपासना करते हैं (अग्ने) हे परमात्मन् ! (तया मेधया) उस मेधा से (अद्य) आज (माम् मेधाविनम् कुरु) मुझ को मेधावी बनावें (स्वाहा) यह मेरा वचन स्वीकृत हो ।

इसी हेतु अब आगे आप देखेंगे कि सरस्वती अर्थात् विद्यारूपा देवी पितरोंके साथ क्रीड़ा कर रही है, रथपर चढ़ उनके साथ आनन्द करती है, पितृगण सरस्वती देवी को आह्वान कर रहे हैं इत्यादि वर्णन पाये जाते हैं इसका भाव भी ऋचा के अन्त में देखिये ।

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती । आ सद्यास्मिन् बर्हिषि मादयस्वाऽनमीवा इष आधेह्यस्मे ॥१०।१७।८॥

अर्थ (सरस्वति) हे विद्ये ! (देवि) हे देवि ! (या) जो आप (सरथम्) समान रथ पर आरूढ़ होके (स्वधाभिः+पितृभिः) स्वधा अर्थात् कुल परिवार आदिकों के रक्षक पितरों के साथ (मदन्ती) आनन्द प्राप्त करती हुई (ययाथ) यज्ञ में जाती हैं वह आप (अस्मिन्+बर्हिषि) इस आसन पर (आसद्य) बैठ के (मादयस्व) आनन्दित होवें और (अनमीवा+इषः) अरोग जनक धन (अस्मे+आधेहि) हम लोगों में स्थापित करें ॥ ८ ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिलो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ।१०।१७।८।

(दक्षिणाः) दक्षिण=विद्याओं में परमकुशल (पितरः) पितृगण (यज्ञम्+अभिनक्षमाणाः) यज्ञों का व्याख्यान करते हुए अथवा यज्ञों की रक्षा करते हुए (याम्+सरस्वतीम्) जिस विद्या को (हवन्ते) आह्वान करते हैं । हे विद्ये ! वह आप (सहस्रार्घम्) सहस्रों से पूजनीय=उपयोज्य (इलः+भागम्) अन्न का भाग और (रायस्पोषम्) धन पुष्टि को (अत्र+यजमानेषु) इन यजमानों में (धेहि) स्थापित कीजिये । आशय-यह आलंकारिक वर्णन है । जैसे हम वर्णन करें कि हे दुर्भिक्ष ! तू भारतवर्ष से भाग जा, तू काना है, तू अन्धा है, तू भयंकर है, तू बड़ा ही मलिन है इत्यादि। इस का भाव यह नहीं है कि सचमुच दुर्भिक्ष कोई शरीरधारी व्यक्ति है जो काना अन्धा इत्यादि है । किन्तु इस का आशय यह होगा कि दुर्भिक्ष आने पर अन्न पानी विना लोग काने अन्धे होजाते हैं । लोगों की दशा अतिभयंकर शोचनीय होजाती है। अन्न विना मलिन और मरने लगते हैं इत्यादि । एवं हम कहें कि बुद्धि का सत्कार करो उस को उच्च आसन दो बुद्धि बहुत सुन्दरी मनोहरी है । यह परोपकारिणी देवी है इसी की उपासना करो । इस का भी भाव यह नहीं है कि यथार्थ में कोई मूर्तिमती बुद्धि देवी है जिस का सत्कार आदि करें । किन्तु इस का भाव यह होगा कि जो बुद्धिमान् पुरुष हो उसे सत्कार करो । उस बुद्धिविशिष्ठ पुरुष को उच्च आसन दो इस से जगत्का बड़ा उपकार होता है । मतिमान् पुरुषही यथार्थमें सुन्दर है इत्यादि । पुनः हम कहें कि मेरे गृह में धर्म्म राज्य कर रहे हैं मेरे गृह में साक्षात् धर्म्म प्रतिदिन आते हैं, खाते हैं, आशीर्वाद देते हैं । विद्या मेरे यहां आती है उसे मैं उच्च आसन देता हूं इत्यादि। इस का भाव यह होगा कि मेरे गृह में धर्म्मात्मा पुरुष हैं । मेरे गृह पर धर्म्मात्मा पुरुष प्रतिदिन आते जाते हैं । विद्यावान् पुरुष मेरे यहां आते हैं उन्हें उच्च आसन देके मैं बैठाता हूं इत्यादि । पुनः जैसे विद्वान् को देख कहें कि आहा ! साक्षात् इन के साथ विद्या देवी आरही है । धर्म्मात्मा को देख कहें कि देखो ! साक्षात् इनके साथ धर्म्मदेव अथवा धर्म्म ही आरहे हैं ये धर्म्म कल्याण करेंगे । हे धर्म्म । आप बैठें । मुझे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धर्म्मात्मा बनावें। हे धर्म्म ! मेरे पुत्र पुत्रों को सब तरह से परिपूर्ण करें। इस का भाव यह है कि कहीं तो गुण-मेधा, बुद्धि, श्रद्धा, विश्वास आदि पुरुषत्वारोपित होता है और कहीं साक्षात् गुणी ! वेदों में भी ऐसे अलंकार बहुत हैं। ऐसे २ अलंकारों को जब तक मनुष्य न समझे तबतक वेदों का अर्थ यथोचित प्रतीत नहीं होसक्ता। इन ही भावों को न जानके पुराण पद २ पर भूल करते हैं। श्रद्धा, मेधा, सरस्वती आदि को वे साक्षात् मूर्तिमती चेतन देवी समझते हैं। एवमस्तु अब प्रस्तुत का अनुसरण करें। जब वेद कहता है कि सरस्वती देवी पितरों के साथ यज्ञ में रथ पर चढ़के आती है आसन पर बैठती है आशीर्वाद देती है। हे देवी सरस्वती ! आप मेरे यज्ञ में आवें इत्यादि तब इस का भाव यह होता है कि यज्ञों में बड़े २ विद्वान् रथ पर चढ़के आते हैं वे विद्यायुक्त पुरुष आसन पर बैठते हैं, आशीर्वाद देते हैं। हे सरस्वती अर्थात् हे विद्यायुक्त पुरुष ! मुझे विद्यायुक्त करें। इत्यादि वेदाशय जानना। अलमतिविस्तरेण विद्वज्जनेषु।

त इदेवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः। गूढं ज्योतिः पितरो अन्वविदन् सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्।७।७६।४।

(ते+इत्) वे ही पुरुष (देवानाम्+सधमादः+आसन्) देवों के साथ आनन्द-भोक्ता होते हैं अर्थात् देवत्व को प्राप्त होते हैं (ऋतावानः) जो सत्यपरायण हैं (कवयः) वेदवित् हैं। (पूर्व्यासः) जो पूर्व=पूर्वजों के उत्तम पथपर चलनेवाले हैं (पितरः+गूढम्+ज्योतिः+अन्वविन्दन्) जो पालकगण गूढ़ २ विद्यारूप ज्योति को पाते हैं ((सत्यमन्त्राः) और जो सत्यमन्त्र अर्थात् वेदों का तत्त्व जाननेवाले (उषासम्+अजनयन्) और प्रातःकाल के समान शान्तिप्रद-विद्या को उत्पन्न करते हैं। " पितरः पालकाः सा० "

अधा यथ नः पितरः परासः प्रत्नसो अग्न ऋतमाशुषाणाः। शुचीदयन् दीधितिमुक्थशासः क्षामाभिदन्तो अरुणीरपव्रन्।४।

(अग्ने) हे सर्वव्यापक देव ! (अधा) और (परासः) परम श्रेष्ठ (प्रत्नासः) पुराण प्राचीन (ऋतम्+आशुषाणाः) सत्यमार्गावलम्बी विविधयज्ञसम्पादक (उक्थ-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शासः) अनेक शास्त्र रचियता (क्षामाः+भिंदन्तः) जगत् के क्षयकारी अज्ञानादि अन्धकार को छिन्न भिन्न करते हुए (नः+पितरः) हमारे पितृगण (शुचि+इत्+अयन्) पवित्रता की ओर ही जाते हैं (दीधितिम्) ईश्वरीयप्रकाश पाके (अरुणी+अपवन्) जगत् में विविध विद्यारूप गौओं को प्रकाशित करते हैं (यथा) हे ईश्वर ! जैसे हमारे पितृगण करते हैं वैसे मैं भी किया करूं । प्रत्न=पुराण । अयन् इण् गतौ=क्षामा=क्षयकारक तम अथवा पाप ।

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥

(हवेषु) हव अर्थात् यज्ञों के निमित्त (सत्यस्य+पतयः) सत्य=वेदज्ञान के रक्षक जो ऋत्विक् हैं वे (नः+शम्+भवन्तु) हमारी शान्ति-प्रद होवें अर्थात् क्रोध करके अशान्ति-प्रदन होवें (अर्वन्तः०) लोगों को लाने पहुंचानेवाले सुदृढ़ाङ्ग भारसहिष्णु, घोड़े भी हमारे शान्तिप्रद होवें (सुकृतः) सुकृत् अर्थात् यज्ञ सम्बन्धी गृह पात्रादिकों को अच्छे प्रकार बनानेवाले और (सुहस्ताः) रचना करने में जिन के हाथ निपुण हैं ऐसे (ऋभवः) बढ़ई, तखान, आदिक पुरुष भी (शम्+नः) शान्ति के लिये होवें । तथा (पितरः) रक्षकगण भी (शम्+नः भवन्तु) हमारी शान्ति के लिये होवें ।

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाक स्तासां वयं प्रजया सं सदेम ।१०।१६९।

(विश्वैः+देवैः+पितृभिः) सकल देवगण और पितृगणों से (संविदानः) सम्पूज्यमान और संज्ञायमान वह (प्रजापतिः) प्रजापति (मह्यम्) मुझ को (एताः+रराणः) इन गोवों को देता हुआ (शिवाः+सतीः) कल्याणकारिणी और सब प्रकार से अच्छी गौओं को (नः+उप+गोष्ठम्) हमारे उपगोष्ठ अर्थात् गोबन्धन स्थान में (अकाः) करें और (तासाम्+प्रजया) उन गौओं के सन्तान से (वयम् सम्+सदेम) हम संगत होवें ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितृशब्द किरण-वाचक ॥

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमादधुः ।९।

(उषसः पृश्निः) प्रातःकाल का सूर्य्य (अरूरुचत्) सब को प्रकाशित कर रहा है (अग्रियः) श्रेष्ठ मुख्य (उक्षा) जलसेक्ता (वाजयुः) और अन्न-प्राण दाता वह सूर्य्य (भुवनानि+बिभर्ति) भुवनों को धारण पोषण करता है (अस्य+मायया) इस सूर्य्य की माया से (मायाविनः+ममिरे) मायावी अन्धकार मरजाते हैं और (नृ-चक्षसः+पितरः) मनुष्यों के नेत्र स्वरूप जगत्पालक सूर्य्य किरण (गर्भम्+आदधुः) गर्भ अर्थात् वर्षारूपी गर्भको धारण करते हैं । सायण-"पितरः पालका देवाः पितरो जगद्रक्षका रश्मयः" । पितृशब्द के पालक देव और किरण दो अर्थ करते हैं ।

पितृशब्द प्राकृतिकनियमवाचक ॥

ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवान् जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरुरेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ।१०।

(मातरा) माता अर्थात् पोषण करने वाली (मही+देवी) महती और प्रकाश-वती (यज्ञिये) प्रशंसनीय (ते+द्यावापृथिवी) वे दोनों द्युलोक और पृथिवी (जन्मना+देवान्+इतः+हि) जन्म से ही देवों को प्राप्त होती है । (उभे) दोनों द्यावा पृथिवी (भरीमभिः) विविध भरण पोषण से (उभयम्+बिभृतः) परस्पर दोनों की रक्षा करती हैं और (पितृभिः) प्राकृतिक नियमों से मिलके (पुरुरेतांसि) बहुत जलों को (सिञ्चतः) सीचतीहै । "पितृभिः पालकैर्देवैः" यहां सायणभी पितृशब्दार्थ पालक देव करते हैं।

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरह्न् बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः ।१०।

(न) जैसे (श्यावम्) श्यामवर्ण (अश्वम्) अश्व को (कृशनेभिः) विविध सोने चांदी के भूषणों से (अभि+अपिंशन्) सब प्रकार से सुभूषित करें वैसे ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(पितरः) प्राकृतिक नियम रूप देवों ने (नक्षत्रेभिः) नक्षत्र=तारा गणों से (द्याम्) द्युलोक को अलंकृत करते हैं (रात्र्याम्) रात्रि में (तमः) तम=अन्धकार (अहन्+ज्योतिः) दिन में ज्योति (अदधुः) स्थापित करते हैं (बृहस्पतिः) उसी प्राकृतिक नियम से प्रेरित आचार्य्य भी (अद्रिम्+भिनत्) रुकावटरूप मेघ को भेदन करके (गाः +विदत्) विविधविद्या लाभ करते हैं। यहां सायण भी "पितरः पालयितारः देवाः" पितृ-शब्दार्थ देव ही करते हैं अपिंशन्=पिश अवयवे अत्र दीपनायां वर्तते ।

पितृशब्द जनकवाचक ॥

ये वो देवाः पितरो ये च पुत्राः सचेतसो मे शृणुतेदमुक्तम् । सर्वेभ्यो वः परिददाम्येतं स्वस्त्येनं जरसे वहाथ। अ० ।१।३१।२

(वः) आप लोगों के मध्य में (ये+देवाः) जो देव (पितरः) पितर और (ये+च+पुत्राः) जो पुत्र हैं वे सब ही आप (सचेतसः) सावधान हो के (मे+इदम् उक्तम्) मेरे इस वचन को (शृणुत) सुनें (वः+सर्वेभ्यः) आप सबों को (एतम्+परि+ददामि) यह बालक समर्पित करता हूं-(स्वस्ति+जरसे) कल्याणकर जरावस्था तक (एतम्+वहाथ) इस को पहुंचावें यहां जीवित पितरों से ही अभिप्राय हो सक्ता है वहां पुत्र शब्द भी साथ ही प्रयुक्त है। एम्-

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये। ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति सातिरात्रमतिद्रव ॥ अ० १० । ६ । ६॥ देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये । उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः ॥ अ० ११ । ७ ।२७॥ द्यावापृथिवी अनु मा दिधीथां विश्वेदेवासो अनुमार-भध्वम् । अंगिरसः पितरः सोम्यासः पापमार्च्छत्वपकामस्य कर्त्ता ॥

हे द्यावापृथिवी! आप मेरे अनुकूल प्रदीप्त होवें । हे विश्वेदेवो! आप मेरे अनुकूल कार्य्य आरम्भ करें । हे सोम्य अङ्गिरस् पितर अपकाम अर्थात् द्रोहकर्त्ता पुरुष पापको प्राप्त हों ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव । शर्दिनो अत्रिरग्रभीन् नमोभिः सुसंशासः पितरो मृडता नः ॥ अ० १८ । ३ । १८

हे विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गोतम, वामदेव, शर्दि अत्रि आदि पितृ गणो! आप प्रशंसित हैं हमको सुखी बनावें । ये सब पितरों की संज्ञा है । वेदों में सामान्यनाम आते हैं विशेष नहीं ।

पितर और ऋतु ॥

"नमो वः पितरोरसाय । नमो वः पितरः शोषाय" यजु० २-३२ इस मंत्र के व्याख्यान में महीधर ने वसन्तादिक ऋतुओं को ही पितर कहा है और शतपथ में भी कहा है कि "ऋतवः पितरः" एवं "षड्ऋतूंश्च नमस्कुर्य्यात् पितृनेव मन्त्रवित्" इस से मनु भी संकेत करते हैं कि ऋतुओं का भी नाम पितर है ।

पितृसूक्त ऋ० १०-१५ । य० १९ । अ० १८ ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः । असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ १ ॥

(अवरे) निकृष्ट अधम पितर=नीचे दरजे के रक्षक (उदीरताम्) ऊपर को बढ़ें अर्थात् उन्नति करें (उत्+परासः) और उत्तम पितर भी ऊपर को बढ़ें (उत्+मध्यमाः+पितरः) और मध्यम पितर भी ऊपर को बढ़ें । वे पितर कैसे हैं (सोम्यासः) चन्द्रवत् सुन्दर अथवा सोम अर्थात् सकल पदार्थ, उन के रक्षक (ये) जो पितर (असुम्×ईयुः) हमारी रक्षा के लिये असु=प्राण=बल को प्राप्त अर्थात् बलिष्ठ हैं (अवृकाः) अक्रोधी अहिंसक, शत्रुरहित (ऋतज्ञाः) सत्य जानने वाले हैं (ते+पितरः) वे पितर (हवेषु) आह्वान अर्थात् हम लोगों की पुकार पर (नः अवन्तु) हमारी रक्षा करें वा हमको प्राप्त होवें । इसकी टीका में सायण लिखते हैं कि पितर तीन प्रकार के होते हैं उत्तम, मध्यम, अधम, जो विधिपूर्व श्रौत कर्म्म कर अनुष्ठान से पितृत्व को प्राप्त हैं वे उत्तम जो केवल स्मार्त्त कर्म्म करते हैं वे मध्यम, और जो सकल संस्कारहीन हैं वे अधम । "त्रिविधाः पितरः उत्तमा मध्यमा अधमाश्चेति । यथाविधं

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

श्रौतं कर्म्मानुष्ठाय पितृत्वं प्राप्ता उत्तमाः । स्मार्त्तकर्म्ममात्रपरा मध्यमाः । अत्रापि कैश्चित्संस्कारैर्विकला अधमाः, एतदेवाभिप्रेत्य ' ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा ' इत्यादि मन्त्रे समाम्नाताः । (सायण)

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः । ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥ २ ॥

(अद्य, पितृभ्यः, इदम्, नमः, अस्तु) आज पितरों को यह नमस्कार हो (ये, पूर्वासः) जो पूर्व अर्थात् वृद्ध=पुराने पितर हैं (ये, उ, परासः, ईयुः) जो पर अर्थात् नवीन पितर इस यज्ञमें प्राप्त हैं अथवा जो उपर=उपरतव्यापार=कृतकृत्य पितर हैं (ये, पार्थिवे, रजसि, आ निषत्ताः) जो पृथिवी सम्बन्धी रजोगुण आदि प्रधान कार्य में आसक्त हैं (वा, नूनम्) और जो निश्चय (सुवृजनासु) अच्छे प्रकार त्यागशील (विक्षु) प्रजाओं में कार्य करते हैं उन सब पितरों को आज मेरी ओर से सत्कार प्राप्त होवे । "पार्थिवे पृथिवीसम्बन्धिनि रजसि रजोगुणकार्येऽस्मिन् कर्मणि आनिषत्ता हविः स्वीकर्त्तुमागत्योपविष्टाः" (पार्थिवे, रजसि) पृथिवीसम्बन्धी रजोगुण के कार्य इस कर्म्म में (आनिषत्ताः) हवि को स्वीकार करने के लिये आके बैठे हुए हैं । (सायण)

अहं पितॄन् सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः । बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहा गमिष्ठाः ॥३॥

(अहम्) आज मैंने (पितॄन्) सब पितरों को (आ, अवित्सि) अच्छे प्रकार पाया है, वे कैसे हैं (सुविदत्रान्) मेरे भक्तिभाव को अच्छे प्रकार जाननेवाले (च, नपातम्, विक्रमणं, च, विष्णोः) और यज्ञ के नपात=अपतन और विक्रमणं (फैलाव) को भी पाया (ये, बार्हिषदः) जो ईश्वरीय तत्त्ववित् पितर हैं (ते, इह, आगमिष्ठाः) वे भी यहां अतिशय करके आये हुए हैं । जो आदर पूर्वक आके (स्वधया) स्वकीय धर्म्म चिन्ह अथवा स्वभाव से युक्त हो (सुतस्य) सोमरस संयुक्त (पित्वः) पितु अर्थात् अन्न (भजन्त) भोजन करते हैं ।

बर्हिषदः पितर ऊत्यर्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

त आगताऽवसा शन्तमेनाऽथा नः शंयोररपो दधात ।ऋ०॥४॥

(बर्हिषदः, पितरः) हे बर्हिषदो पितरो ! (अर्वाग्) आप की अपेक्षा अर्वाचीन हम लोगों की (ऊती) रक्षा आप करें (वः) आप के लिये (इमा, हव्या) इन हविष्य अन्नों को (चकृम) किए हैं इनको (जुषध्वम्) ग्रहण करें (ते) वे आप (शान्तमेन, अवसा) सुखकर रक्षण के निमित्त (आगत) सर्वदा हमलोगों के यहां आया करें (अथ) और आप (नः) हमारे लिये (शम्) सुख (योः) दुःख-वियोग (अररपः) पापरहित कर्म्म (दधात) धारण करें । "हे बर्हिषदः ! बर्हिषि यज्ञे सीदन्तीति बर्हिषदः, अत्रापि ये वै यज्वानस्ते पितरो बार्हिषद इत्यत्र श्रुतत्वात्" (सायण)

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु । त आगमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ ५ ॥

(बर्हिष्येषु) यागयोग्य (प्रियेषु) और प्रिय (निधिषु) निधि अर्थात् धन कोशों की रक्षा के निमित्त (सोम्यासः) पदार्थरक्षक=अनुग्राहक (पितरः, उपहूताः) पितृगण निमन्त्रित हुए हैं (ते, इह, आगमन्तु) वे इस यज्ञ में आवें (श्रुवन्तु) सुनें (अधि, ब्रुवन्तु) अधिक उपदेश=शिक्षा देवें और (अस्मान्, अवन्तु) हमारी रक्षा करें । "सोम्यासः सोम्या अस्मदनुग्रहपराः सोमसम्पादिनः" सा० ।

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभिगृणीत विश्वे । मा हिंसिष्ट पितरः केनचिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥ ६ ॥

अर्थ—(पितरः) हे पितृगणो ! (विश्वे) आप सब ही (जानु, आ, अच्य,) जानु को भूमि में गिरा के (दक्षिणतः) दक्षिण पार्श्व में (निषद्य) बैठ के (इमम्, यज्ञम्, अभि गृणीत) इस यज्ञ का सब प्रकार से वर्णन करें, और (वः) आप लोगों का (केन, चित्) किसी कारणवश (पुरुषता) पुरुष स्वभाव से (यद् आगः) यदि कोई अपराध (कराम) करें तो (नः) उस अपराध के कारण हमको (मा, हिंसिष्ट) वध न करें ॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय । पुत्रेभ्यः

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितरस्तस्य वसवः प्रयच्छत त इहोर्जं दधात ॥ ७ ॥

अर्थ–(अरुणीनाम्, उपस्थे) आरोचमान अस्त्र शस्त्र रूप ज्वालाओं के समीप स्थान में (आसीनाः) बैठे हुए (पितरः) पितरो ! आप (दाशुषे, मर्त्याय) भक्त पुरुष के (रयिम्) धन धान्य की (धत्त) रक्षा करें और (तस्य, पुत्रेभ्यः) उसके पुत्र पौत्रादिकों को भी (वसवः, प्रयच्छत) धन देवें (ते) वे आप (ऊर्जम्, दधात) इस यज्ञ की रक्षार्थ बल वीर्य्य धारण करें ।

ये न पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः । तेभिर्यमः सं ररायो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥ ८ ॥

(सोम्यासः) सोम पदार्थ सम्पादन करनेवाले (वसिष्ठाः) सब के गृह गृह में निवास करनेवाले=सर्वपरिचित (ये, पूर्वे, पितरः) जो वृद्ध=प्राचीन पितर हैं वे (सोमपीथम्, अनूहिरे) सोमपान को आनुपूर्वी अर्थात् नियमानुसार सर्वत्र पहुंचा देवें और (उशद्भिः) इच्छा करने वाले (तेभिः) उन पितरों के साथ (उशन्) इच्छा वाले (यमः) पितृपति=रक्षकाधिपति (संरराणः) अच्छे प्रकार क्रीड़ा करते हुए (हवींषि) हव्य वस्तुओं को (प्रतिकामम्) यथेच्छ (अत्तु) खायँ ॥ ८ ॥

ये तातृषुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः । आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ् सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९॥

(ये) जो पितर (देवत्राः) देव अर्थात् विद्वानों के रक्षक हैं (जेहमानाः) जो रक्षार्थ सर्वत्र गमन शील हैं (होत्राविदः) होम करने वालों को जानने वाले हैं जो (अर्कैः) अर्चनीय शब्दों वा स्तोत्रों से (स्तोमतष्टासः) स्तोत्र बनाने वाले हैं (पितृभिः) उन पितरों के साथ (अग्ने, आ, याहि) हे अग्निवत् सन्देश-प्रकाशक दूत अथवा ईश्वर आओ, वे पितर पुनः कैसे हैं (सुविदत्रेभिः) परमज्ञानी, पुनः (अर्वाग्, सत्यैः) सर्वथा सत्यव्यवहारी पुनः (कव्यैः) परम कवि पुनः (घर्मसद्भिः) आग्नेय विद्याओं में निपुण ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्नेयाहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्म्मसद्भिः ॥

(ये) जो पितर (सत्यासः) सत्य (हविरदः) हविष्यान्नभोक्ता (हविष्पाः) हविष्यरक्षक (इन्द्रेण) राजा और (देवैः) विद्वानों के साथ (सरथम्, दधानाः) समान रथ को धारण किये अर्थात् एक ही रथ पर बैठे हुए हैं । (अग्ने) हे अग्निदूत ! आप उन (देववन्दैः) देवों के भी वन्दनीय (पूर्वैः, परैः) प्राचीन नवीन (घर्म्मसद्भिः) आग्नेय विद्या में निपुण (सहस्रम्) सहस्रों (पितृभिः) पितरों के साथ (आ, याहि) आवें ।

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदः सदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ।११।

(पितरः) हे पितृगण ! आप (अग्निष्वात्ताः) आग्नेय-विद्याओं में परम निपुण हैं और (सुप्रणीतयः) अच्छी नीतिवाले हैं इस कारण (इह) यहां (सदः, सदः) घर-घर में (आगच्छत) आवें और (सदत) आके रक्षार्थ यहां बैठें, तत्पश्चात् (बर्हिषि, प्रयतानि) यज्ञार्थ प्रस्तुत (हवींषि) हविष्यान्नों को (अत्त) भोजन करें (अथ) पश्चात् (सर्ववीरम्, रयिम्) सब को वीर करनेहारे धन का (दधातन) पोषण करें ।

त्वमग्ने ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥२॥

(जातवेदः, अग्ने) सब को जाननेवाले हे सन्देशहर दूत (ईळितः) हम लोगों से पूजित हो आप (हव्यानि, सुरभीणि, कृत्वी) हव्य पदार्थों को सुगन्धित करके (अवाट्) पितरों के समीप लेजायं (पितृभ्यः, प्रादाः) पितरों को देवें (स्वधया) अपने २ धर्म्म के साथ वर्तमान (ते) वे पितर (अक्षन्) हविष्यों को खायं तब (देव!, त्वम्) हे देव आप भी (प्रयता, हवींषि) प्रयत्न सम्पादित हविष्यों को (अद्धि) खायं ।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यां उ च न प्र विद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ १३ ॥

(ये, च, पितरः, इह) जो पितर यहां हैं (ये, च, न, इह) और जो यहां नहीं हैं (यान्, च, विद्म) जिन को हम जानते हैं (यान्, उ, च, न, प्र, विद्म) और जिन को नहीं जानते हैं (यति, ते) वे पितर जितने हैं (जातवेदः, त्वम्, वेत्थ) हे जातवेद! उनको आप जानते हैं इस हेतु (स्वधाभिः, सुकृतम्, यज्ञम्) विविध प्रकार के अन्नों से संयुक्त इस यज्ञ को (जुषस्व) सेवें।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते।
तेभिः स्वराडसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥ १४ ॥

(ये, अग्निदग्धाः) जो अग्निविद्या में वा अग्निहोत्रादिक कर्म्मों में जिन्हों ने अपने शरीर को, मानो जला दिया है वे अग्निदग्ध पितर जो हैं (ये, अनग्निदग्धाः) और जो अग्निविद्या में निपुण नहीं हैं और (दिवः, मध्ये) जो दिव्यगुण के मध्य में (स्वधया, मादयन्ते) निज धर्म्म से आनन्दित होरहे हैं (स्वराट्) हे भगवन्! (तेभिः, एताम्, तन्वम्) उन के इस शरीर को (यथावशम्, असुनीतिम्) यथायोग्य बलधारी (कल्पयस्व) बनाओ। इति पित्रादि निरूपणं समाप्तम्।

तीन ही पुरुषों का श्राद्ध क्यों ?

पिता, पितामह, प्रपितामह एवं माता, पितामही, प्रपितामही इत्यादि तीन ही पुरुषों का श्राद्ध क्यों होता है।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः । यजु० १९ । ३६ । एतत्ते प्रतितामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७५ ॥ एतत्ते ततामह स्वधा ये च त्वामनु ॥ ७६ ॥ अथर्व १८ । पितरः पितामहाः परेऽवरे ततास्ततामहाः । (संस्कारविधि विवाहप्रकरण) वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव प्रपितामहान् । पितामहांस्तथाऽऽदित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी । मनु० ३ । २८४ ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यादि वाक्यों में तीन ही पीढ़ियों का श्राद्ध देखते हैं। ततामह प्रततामह शब्द का अर्थ पितामह, प्रपितामह क्रम से जानना। आजकल के भी जितने ग्रन्थ है उन में भी इन ही तीन पुरुषों को पिण्ड देने की विधि पाई जाती हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति के ऊपर टीका करने वाले विज्ञानेश्वरजी लिखते हैं "श्राद्धं द्विविधं, पार्वणमेकोद्दिष्टमिति। तत्र त्रिपुरुषोद्देशेन यत्क्रियते तत्पार्वणम्। एकपुरुषोद्देशेन क्रियमाणमेकोद्दिष्टम्।" श्राद्ध प्रकरण। श्राद्ध द्विविध है। पार्वण और एकोद्दिष्ट। तीन पुरुषों को उद्देश से जो किया जाता है वह पार्वण। एक पुरुष के उद्देश से क्रियमाण को एकोद्दिष्ट कहते हैं। यह तीन पुरुषों का श्राद्ध भी दिखलाता है कि ऋषियों के समय में जीवित ही श्राद्ध होता था। क्योंकि इतने ही पुरुषों के जीते रहने की सम्भावना से, भाव यह है कि कोई २ पुरुष अपने प्रपौत्र का भी मुख देखता है। जब तक प्रपौत्र विद्वान् हो गृह में लौट श्राद्ध करने के योग्य होता है तब तक एक आध ही पुरुष जीता है। अतिवृद्ध प्रपितामह की जीने की सम्भावना नहीं रहती है। अतः तीन ही पुरुषों का श्राद्ध कहा है। यदि यह मृतक श्राद्ध होता तो यह नियम लगाने का क्या प्रयोजन था ? जैसे अनन्त देवों को आवाहन कर लेते हैं वैसे सत्ययुग के पितरों से लेके आजतक सबों को बुलाते। यथार्थ में भोजन तो देना ही नहीं था एक पात्र में अन्न दिखलाके सन्तुष्ट करदेने थे। परन्तु यहां तो जीवितों से प्रयोजन था, अनन्त पितरों को कैसे बुला सकते हैं।

अमावास्या—मासिकश्राद्ध॥

अमावास्यायां यदहश्चन्द्रमसं न पश्यति तदहः पिण्डपितृयज्ञं कुरुते। १। अपराह्णेऽधिवृत्तसूर्य्ये वा पिण्डपितृयज्ञेन चरन्ति। २। (आपस्तम्ब श्रौतसूत्रे) पिण्डपितृयज्ञेऽपराह्णेऽमावास्यायाम्। शाङ्ख्यायन श्रौतसूत्रेऽध्याये। ४। अपराह्णे पिण्डपितृयज्ञश्चन्द्रादर्शनेऽमावास्यायाम्। कात्यायनश्रौ०।०४-१-१ पितृयज्ञन्तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम्। पितृणां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्यं विदुर्बुधाः। मनु०३-१२२॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इत्यादि अनेक स्थानों में विशेष कर प्रत्येक अमावस्या में ही श्राद्ध करने की विधि देखी जाती है, अतएव "यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणम्" इत्यादि मुण्डकोपनिषद् में दर्श अर्थात् अमावस्या "यज्ञ को न करनेवाले के लिये अनिष्ट कहा है। दर्शनाम अमावस्या का है "अमावास्या त्वमावस्या दर्शः सूर्य्येन्दुसंगमः" अब यहां शङ्का होती है कि यदि पितृयज्ञ जीवितयज्ञ होता तो प्रत्येक अमावस्या को ही यह यज्ञ विहित क्यों होता। क्या इतने दिन पितर भूखे बैठे रहेंगे ? और इस के लिये तब इतना बड़ा उद्योग और विधानही क्यों होता। समाधान—क्या अमावास्या अर्थात् मासिकयज्ञ के अतिरिक्त दैनिक पितृयज्ञ का विधान नहीं है ? देखो "कुर्य्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा। पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्" मनु० ३-८२ "अहरहः स्वधाकुर्य्यादोदपात्रात् तथैतं पितृयज्ञं समाप्नोति" "शतपथ ब्रा० काण्ड ११ इस मनु और याज्ञवल्क्य के वचन से प्रतिदिन पितृ-यज्ञ करने का भी विधान देखते हैं। फिर पितरों को भूखे कैसे मार सकते हो! यदि कहो तब मासिक—अमावास्या श्राद्ध की क्या आवश्यकता ?। ठीक है। यह जानना उचित है, यह पितृयज्ञ पूर्व समय में कई एक प्रकार के होते थे, महापितृयज्ञ; पिण्डपितृयज्ञ, पितृयज्ञ, अन्वाहार्य्यपितृयज्ञ वृद्धिपितृयज्ञ, पार्वण, एकोद्दिष्ट आदि। अमावास्या तिथिको क्यों विशेष श्राद्ध विहित है ? इस का वर्णन प्रथम प्रकरण में ही "पितृगण और रात्रि" पृ० १५ "पितृगण और अमावास्यातिथि" पृ० १६ में विस्तार से किया गया है। वहां ही देखना चाहिये। यहां इस बात का स्मरण रखना चाहिये कि सब आचार्य्यों ने इसी अमावास्या—श्राद्ध का अधिक वर्णन किया है आपस्तम्ब, शाङ्खायन, कात्यायन और मनु के प्रमाण दे चुके हैं, गोभिल भी श्राद्धकल्प में इसी का वर्णन करते हैं "अमावास्यायां पितृभ्यो दद्यात्" "पञ्चमीप्रभृति वाऽपरपक्षस्य" क्या कृष्णपक्ष क्या अमावास्यातिथि को ही क्यों प्रधान रक्खा है ? यह पुनः२ विचारणीय है। निश्चय, जैसा मैंने प्रथम प्रकरण में इस से "अध्यात्मगति" बतलाई, वही प्रयोजन है अन्य नहीं। और वह जीवित में ही घट सकता है। अब इस के सम्बन्ध में जो वेद और शतपथ में कहा है उस का भाव दिखलाते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अमावस्या और वेद-शतपथ ॥

वेदों के बहुत से मन्त्र पूर्व में संगृहीत हुए हैं परन्तु प्रायः कोई मन्त्र केवल मासिक श्राद्ध के प्रतिपादक नहीं हैं। यह भी दिखलाया है कि प्रत्येक शुभ कार्य्य में पितर आहूत होते हैं। हां, अथर्ववेद के एक स्थल में कहा है कि:-

तस्मात् पितृभ्यो मास्युपमास्यं ददाति प्र पितृयाणं पन्थां जानाति य एवं वेद। अथर्व। ८। १२। ४।

इस हेतु पितरों को मास मास में भोजन देते हैं। जो ऐसा जानता है वह पितृयाण को जानता है। पुनः शतपथब्राह्मण द्वितीय काण्ड में इस प्रकार वर्णन आता है।

प्रजापतिं वै भूतान्युपासीदन्। प्रजा वै भूतानि वि नो धेहि यथा जीवामेति। ततो देवा यज्ञोपवीतिनो भूत्वा दक्षिणं जान्वाच्योपासीदन् तानब्रवीत् यज्ञो वोऽन्नममृतत्वं व ऊर्गवः सूर्य्यो वो ज्योतिरिति। १। अथैनं पितरः प्राचीनावीतिनः सव्यं जान्वाच्योपासीदन् तानब्रवीत् मासि मासि वोऽशनं स्वधा वो मनोजवो वश्चन्द्रमा वो ज्योतिरिति। २। अथैनं मनुष्याः प्रावृता उपस्थं कृत्वोपासीदन् तानब्रवीत् सायं प्रातर्वोऽशनं प्रजावो मृत्युर्वोऽग्निर्वो ज्योतिरिति। ३। अथैनं पशव उपासीदन्। तेभ्यः स्वैषमेव चकार यदैवं यूयं कदाचलभाध्वै यदि काले यद्यनाकालेऽथैवाश्नाथेति तस्मादेते यदैव कदाच लभन्ते यदि काले यद्यनाकालेऽथैवाश्नन्ति। ४।

प्रजापति के निकट सब प्राणी पहुंचे। "निश्चय प्रजाएं ही प्राणी हैं" हम को धारण पोषण करें जिस से हम जीवें देवगण यज्ञोपवीती हो दक्षिण जानु को टेक कर उन के समीप बैठ गए। प्रजापति ने उन से कहा कि यज्ञ आप का अन्न, अमृतत्व आप का बल और सूर्य्य आप का ज्योति होगा। १। पितृगण प्राचीनावीती (दक्षिण कंधे पर से वाम अंग की ओर यज्ञोपवीत को लटकाने वालेका नाम प्राचीनावीती है) वाम जानु को झुका समीप में बैठ गए। उन से कहा कि मास मास में आपका

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अशन, स्वधा आप का मनोजव=मनोवेग और चन्द्रमा आप का ज्योति होगा । २ । तब मनुष्यगण वस्त्राऽऽवृत हो उपस्थान कर उपस्थित हुए । उन से कहा कि सायं-प्रातःकाल आपका अशन प्रजा आप की मृत्यु और अग्नि आप की ज्योति होगा ॥३॥ तब पशु उपस्थित हुए । उन के लिये स्वेच्छाचार का विधान किया और कहा कि जब कभी तुम लोग अन्न पाओ, समय वा असमय में, उसी समय खाओ । इसी कारण ये पशु जब ही पाते हैं काल में अथवा अनाकाल में तब ही खाया करते हैं । पुनः—

मासि मास्येव पितृभ्यो ददतो यदैवैष न पुरस्तान्न पश्चाद् ददृशे ऽथेभ्यो ददाति । एष वो सोमो राजा देवानामन्नं यश्चन्द्रमाः । सएतां रात्रिं क्षीयते । तस्मिन् क्षीणे ददाति । ७ । स वा अपराह्णे ददाति । पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यन्दिनो मनुष्याणामपराह्णः पितृणां तस्मादपराह्णे ददाति । ८ । शतपथकाण्ड २ ॥

उसको यह फल प्राप्त होता है जो मास मास पितरों को देता है । जब ही यह चन्द्रमा न पूर्व और न पश्चिम दीखता है तब ही पितरों को देता है यही सोमराजा देवों का अन्न है जो चन्द्र है वह इस रात्रि को क्षीण होता है । वह अपराह्ण समय में देता है । वेदों का पूर्वाह्ण, मनुष्यों का मध्याह्न और पितरों का अपराह्ण समय है अतः अपराह्ण में देता है ।

यहां पर भी मासिक-पितृ-यज्ञ का वर्णन देखते हैं । परन्तु इसका भी भाव समझना अब कठिन नहीं । यहां पर भी आप देखते हैं कि मासिक श्राद्ध से अभिप्राय उसी अमावास्या श्राद्ध का है और अपराह्ण का भी वर्णन है । अमावास्या तिथि में पितरों का यज्ञ क्यों कहा है इस का वर्णन पूर्व में होगया है मुख्य बात वही है । परन्तु उसके साथ इतना और भी विशेष जानो । यहां रक्षकगणों की सेवा का नाम पितृयज्ञ है । अमावास्या तिथि में चन्द्र के अभाव से रक्षा की अति आवश्यकता होती है । इस हेतु मासिक यज्ञ यहां उक्त है । अथवा इसको यों समझना चाहिये कि पूर्वकाल में **वानप्रस्थाश्रम** भी नियम से चलता था जिसके लिये अनेक आरण्यकग्रन्थ लिखे गये थे । ज्यों ही पुत्र पौत्र होजाते थे त्योंही गृह छोड़ बन को चले जाते थे । इनके लिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऋषियों ने वेद में चिह्न या मासिक यज्ञ चलाया। अर्थात् सब गृहस्थ पुरुषों को नियम बांध दिया गया कि उन वानप्रस्थियों को कम से कम मास में एक दिन अमावास्या तिथि को आप लोग सत्कार किया करो। इसहेतु पितरों को मासिक अशन अर्थात् भोजन विहित है। इसका आशय यह नहीं है कि पितृगण २९ दिन कुछ नहीं खाते थे। नहीं। वे सब दिन खाते थे। वन में उनके भरण पोषण के लिये सब प्रबन्ध रहता था। गृहस्थों के यहां मास मास ही इनका आगमन था। गृहस्थाश्रम में फिर इनकी अधिक प्रीति न होजाय पुनः जिससे निकले हैं उसी में बद्ध न होजांय, गृहस्थों को भी अधिक भार न हो और कभी २ आने में पितरों में अधिक भक्ति भी बनी रहे इत्यादि कारणवश मासिक यज्ञ कहा है। जैसे आजकल एकादशी २ वा संक्रान्ति २ में ब्राह्मण भोजन विहित है परन्तु क्या अन्यान्य तिथियों में ब्राह्मण भूखे ही रहते। उसी तिथि को देखते हुए क्या उपवास करते हैं। ऐसे ही पितरों के विषय में भी जानना चाहिये। यह मासिक श्राद्ध सब पितरों के लिये विहित नहीं है जो रात्रिरक्षक और वानप्रस्थी हैं उनके लिये ही है। क्योंकि दैनिक पितृयज्ञ में कोई नियत तिथि नहीं और यह भी देखा जाता है कि प्रत्येक शुभ कर्म्म में पितर बुलाये जाते हैं यदि इन के लिये केवल मासिक ही यज्ञ नियत हो तो प्रत्येक शुभ कर्म में वे कैसे बुलाये जासकते हैं। एवं आजकलभी अष्टमी आदि तिथि पितरों की कही गई हैं दर्श-पौर्णमास यज्ञ अवश्य करे एतदर्थ यहां मासिक यज्ञ कहा है दैनिक यज्ञ का प्रमाण पूर्व में दिया है "पितरों की ज्योति चन्द्रमा है" इस का भी भाव सुगम है। मैं इसी शतपथ के वचन से कह चुका हूं कि दिन देव है और रात्रि पितर है इत्यादि। रात्रि नैराश्य-सूचक, शीत-प्रद अन्धकार-ज्योति-मिश्रित है इसी प्रकार चन्द्र भी पितरों की वह यौवनावस्था की ऊष्णता जाती रही अब चन्द्रवत् शीतल हो रहे हैं इत्यादि भाव जानना। द्वितीयपक्ष में यों घटाना पितर जो रात्रि-रक्षक उन्हें चन्द्रमा बड़ा सहायक होता है चान्द्रमसी रात्रि में चौर्य-भय कम रहता है। इस पर पूर्व में भी लेख लिखा गया है देखिये। पितर प्राचीनावीती हैं अर्थात् आजकल जैसे हम लोग यज्ञोपवीत पहिनते हैं उससे विपरीत यज्ञोपवीत पितर धारण करते हैं अर्थात् दक्षिण कंधे पर से वाम बाहु के नीचे यज्ञोपवीत लटका हुआ

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

रहता है । यह विधि भी जीवित पितृयज्ञ सिद्ध करता है । यज्ञोपवीत कर्म चिन्ह है युवावस्था तक यज्ञोपवीत दक्षिण भाग में लटकता है अर्थात् जैसे दक्षिण भागस्थ हाथ बलिष्ठ, अधिक कर्म परायण और पौरुष-युक्त है तद्वत् यौवनावस्था तक मनुष्य बलिष्ठ और सततकर्म्मपरायण आदि रहता है जब यौवन गिरता है तब वामाङ्गवत् शिथिल स्वल्प-कर्म्मपरायण होजाता है । अतः वृद्धत्व-प्राप्ति के कारण शिथिल और बनी बनते हुए पितृगण यज्ञोपवीत को भी बामाङ्गस्पर्शी कर लेते थे । अतः पितरों के वर्णन में प्राचीनावीती पद आता है । यह चिन्ह भी जीवत्पितरों का श्राद्ध बतलाता है । अब यदि कोई यह कहे कि यहां देव, पितर, मनुष्य, पशु आदि प्राणी भिन्न २ योनिएं हैं । अतः मनुष्य से पितर भिन्न योनि है यह सिद्ध होता है । यह भी ठीक नहीं । क्योंकि मैं पूर्व में लिख आया हूं कि पितर भी मनुष्य के ही भेद हैं । इन को भिन्न इस लिये रक्खा है कि ये गणशः बन में रहते थे गणशः रक्षा के कार्य्य में लगे रहते थे । जैसे आजकल संन्यासी वा उदासी । अतः मनुष्यों से उन्हें भिन्न गिना है । मनुष्य शब्दार्थ यहां साधारण प्रजा है । यदि कहो कि पितर भी मनुष्य ही हों तो इन्हें भी दोनों सन्ध्याएं भोजन विहित होना चाहिये । समाधान । यहां पितरों के लिये पराधीन भोजन की चर्चा है । जैसे सूर्य्य, चन्द्र, वायु, अग्नि आदि देवों के लिये पराधीन यज्ञ विहित है तद्वत् । क्या यदि मनुष्य सूर्य्यादि देवों के लिये यज्ञ न करें तो क्या वे मर जायंगे । नहीं । ये तो जड़ पदार्थ हैं हम यज्ञ करें या न करें ये सदा एकरस रहेंगे । यज्ञ से हमारी भलाई होती है । जल, वायु स्वच्छ होजाता है । जहां हम रहते हैं वहां की वायु में दुर्गन्धि नष्ट होजाती है इस प्रकार यज्ञसे हम अपना ही लाभ पहुंचाते हैं । इसी प्रकार यह भी हमारा कर्तव्य है कि कम से कम मास में एकवार भी पितरों को बुलाके अपने गृह पर पूजें । अतः यहां मासिक भोजन कहा गया है । अब यदि पितरों को भिन्न योनि मानोगे तो आपके पक्ष में भी निज पितृयज्ञ सिद्ध नहीं होगा अतः ये पितर मनुष्यान्तर्गत ही मानने पड़ेंगे अब यह भी समझना कठिन नहीं कि इस मासिक दर्शयज्ञ के लिये इतना क्यों उद्योग है । मैं कह चुका हूं कि प्रायः वानप्रस्थी और रक्षक-पितरों के लिये ही यह दर्शयज्ञ है । इसी का नाम ' पार्वण ' भी है । इस में अरण्यसेवी पिता, पितामह, प्रपितामह,

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

माता, पितामही, प्रपितामही आदि अपने सम्बन्धी और इन के सहवासी इन सबों को बुलाके पूजते थे। एक तो यह विधि थी। दूसरी विधि यह थी कि इसी तिथि को देश-रक्षक अग्निष्वात्त, अग्निदग्ध, बर्हिषद्, सोमसद आदि पितृगण विशेष कर बुलाये जाते थे। इन सबों की संख्या अधिक होने के कारण ऐसा बड़ा संभार करना पड़ता था। इस से बढ़ के पवित्र और श्रद्धाजनक अन्यान्य कौनसा कार्य्य हो सकता है और जो दैनिक पितृयज्ञ विहित है उस में एक दो पितरों को ही सत्कार करने का विधान है अधिक उद्योग करना नहीं पड़ता था। यदि आप कहैं कि वह तो मनुष्ययज्ञ वा अतिथियज्ञ में आ जायगा। नहीं। अतिथि, बाल, वृद्ध, युवा, ज्ञानी, अज्ञानी सब ही हो सकता है परन्तु पितर तो क्या वृद्ध, क्या रक्षक आचार्य्य, सभापति, न्यायकर्ता, सेनानायक, परोपकारपरायण, परम देशभक्त आदि ही हो सकता है यही भेद है। इसी कारण इस दर्शयज्ञ को पिण्डपितृयज्ञ कहते हैं इस में सर्वोत्तम पदार्थ पितरों के लिये पकाए जाते हैं। अतः पिण्डशब्द का प्रयोग हुआ है। अन्वाहार्य्य भी इसी का नाम है। दैनिक पितृयज्ञ के पश्चात् आहार्य्य अर्थात् आहार योग्य सामग्री जिस में तैयार की जाय इसी 'अन्वाहार्य्य श्राद्ध' को मनुजी ने भी मासिक कहा है और इसी यज्ञ के लिये तृतीयाध्याय में बड़ा भारी विधान किया है। जिस में केवल एक ही पितर बुलाये जायँ उसे एकोद्दिष्ट कहते हैं। और जो वर्ष वर्ष आश्विन, कार्तिक आदि मास में किया जाय वह वृहत् पितृयज्ञ कहाता है। इस में सन्देह नहीं कि इन सबों का भाव सर्वथा आज परिवर्तित होगया है। वेदों को छोड़ और किसी में इन का यथोचित वर्णन नहीं पाते हैं। अतः आज ज्ञान-दुर्बल पुरुष पद २ सन्देह में पड़े हुए हैं।

अष्टम प्रश्न पर विचार।

यह बात प्रसिद्ध है कि श्राद्धस्थान में भी संन्यासी को आने नहीं देते और मरने पर इस के लिये पिण्डदानादि क्रिया नहीं करते। ऐसा क्यों? यदि मृतकश्राद्ध नित्य और वेदविहित है तो इस आत्मा के लिये भी चाहिये। यदि कहो कि संन्यासी मुक्त होजाता है अतः इस के लिये किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं। एवमस्तु। थोड़ी देर यह मान भी लेवें। अब यह कहो कि श्राद्धस्थान में संन्यासी को आने का भी निषेध

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्यों ? इस का दर्शन भी मना क्यों ? यदि कहो कि इस ने सर्व्व कर्म्म का परित्याग कर दिया है । अतः कर्म्म देखने का भी अधिकार नहीं । प्रथम तो यह मत ही शास्त्र-विरुद्ध है । गीता में कृष्णजी कहते हैं कि " अनाश्रितः कर्म्मफलं कार्य्यं कर्म्म करोति यः । स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्नचाक्रियः" पुनः मनुजी कहते हैं " अधियज्ञं ब्रह्म जपेदाधिदैविकमेव च । आध्यात्मिकञ्च सततं वेदान्ताभिहितञ्च यत्" ६ । ८३ । इत्यादि प्रमाणों से उस के योग्य कर्म्म का भी विधान देखते हैं । अथवा जिसने व्याकरण पढ़ के न्याय पढ़ना आरम्भ किया है क्या उस के लिये व्याकरण देखना भी मना कर दिया जायगा । दूसरी बात यह है कि संन्यासीमात्र मुक्त हो जाते हैं यह कोई नियम नहीं । और अन्यान्य आश्रम के समान संन्यासाश्रम भी नित्य कहा गया है । अतः चतुर्थपन में सब ही संन्यासी होवेंगे और तुम्हारे कथनानुसार सब मुक्त भी होंगे फिर किसी का श्राद्ध नहीं होना चाहिये यह मेरा ही पक्ष पुष्ट होगा । हां, आप के मत से शूद्र को संन्यासी होना निषेध है । तब केवल शूद्र के लिये यह श्राद्ध है यह सिद्ध होगा । एवमस्तु, यह संन्यासी-श्राद्ध-निषेध हमें सूचित करता है कि पूर्व में मृतकश्राद्ध नहीं था । पहले यह जानना चाहिये कि पूर्वकाल में जैसे ब्रह्मचर्य्य गार्हस्थ्य आश्रम नियम पूर्वक पालते थे वैसे ही वन्य और संन्यास आश्रम को भी विधिपूर्वक निवाहते थे । वृद्धावस्था आने पर गृह को छोड़ पुत्र पर सब भार रख वन में ज्ञान वृद्धि के लिये चले जाते थे । अरण्य में तपोभूमि सुन्दर २ बनी रहती थी प्रजा और राजाओं का इन की रक्षा के लिये बड़ा सुप्रबन्ध रहता था । यहां ही वे वृद्ध वनी संन्यासी पितर अपने इस भौतिक शरीर को त्यागते थे । इन का दाह संस्कार यहां ही राजा के प्रबन्ध से अच्छे प्रकार होजाता था । अब आप विचार सकते हैं कि पुत्र को तो अपने पिता पितामहादिक के शवको दग्ध करनेको भी मोका नहीं मिलता था । और न उन्हें मालूम ही होता था कि मेरा पिता पितामह कहां मरा और कहां गया वह किस को पिण्ड देता या कब देता । सूर्य्य, चन्द्रवंशी बड़े २ राजाओं की भी ऐसी ही गति हुई है । संन्यासीगण प्रायः एक आश्रम से दूसरे आश्रम को उपदेशदानार्थ घूमते ही रहते थे । जहीं कहीं इन का प्राण छूटजाता था । इस प्रकार जब ये चारों आश्रम नियम से पाले जाते थे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तब इस मृतक श्राद्ध वा दशगात्र पिण्डादिकों का कोई मोका नहीं आता था। अब आगे चलिये। जब यह आश्रमधर्म्म टूट गया लोग आलसी होगये तब से वृद्धलोग भी अपने गृह में ही मरने लगे। धीरे २ सब कुसंस्कार की बातें चल पड़ीं। इस वन्याश्रम की रक्षा यहां तक लोग करते थे कि यह व्यवहार सम्पूर्ण भारत में अभी तक चला आता है कि गृह के अभ्यन्तर किसी को मरने नहीं देते हैं। उस समय शय्या बाहिर ले आते हैं और कुशादिक पर लेटा देते हैं। यह एक वन्याश्रम का नकल है जैसे आजकल वेदारम्भ की नकल उतारते हैं। अब आप देख सकते हैं कि संन्यासी का मृतकश्राद्ध क्यों निषेध है? पहिले से ही यह श्राद्ध संन्यासी के लिये नहीं था। जब आश्रमभग्न होने से मोहवश श्राद्ध करने लगे तो उस समय भी यह वैदिक मत बना रह गया कि जो संन्यासी होजाय उस को तो श्राद्ध मत करो अन्यान्य का श्राद्ध किया करो। इस से विस्पष्टतया सिद्ध होता है कि जब से वानप्रस्थ और संन्यासआश्रमों का पालन बन्द होगया तब से ही यह चखेड़ा चला है और यह इतिहास से सिद्ध है कि बुद्ध के पीछे नियम पूर्वक आश्रम पालन नहीं रहा अतः बौद्ध धर्म्म के समय में यह कुसंस्कार चल पड़ा यह दृढ़ अनुमान होता है। इति संक्षेपतः।

नवम दशम प्रश्न पर विचार ॥

पितर और द्वादशाह श्राद्ध ॥

मृत्यु होने पर १० दिन लगातार गात्रपूरक पिण्ड देते हैं। और एकादशाह और और द्वादशाह कर्म्म करके समाप्त करते हैं। लोग समझते हैं कि तबतक मृतक प्रेत इसी पृथिवी पर रहता है। अब मृत पुरुष किस योनि में गया इस की भी अनेक परीक्षा करते हैं। ब्राह्मण के लिये द्वादशाह क्षत्रिय के लिये चतुर्दशाह, वैश्य के लिये सप्तदशाह और शूद्र के लिये ३० द्वात्रिंशाह विहित है। परन्तु सब का नाम द्वादशाह ही है। प्रथम तो यह विधि ही बिलकुल काल्पनिक और ईश्वरीय-नियम से विरुद्ध है। देखो, चारों वर्ण करीब दशमास में सन्तान उत्पन्न करते हैं इस उत्पत्ति में कोई भी भेद नहीं। इसी प्रकार बाल्य, यौवन, वार्द्धक्य होने में भी कोई भेद नहीं देखते, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र समान-नियम से ही लड़के, युवा, और बुड्ढे होते हैं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ऐसा कदापि नहीं देखा गया है कि ब्राह्मण का सन्तान तो जल्दी उत्पन्न हो क्षत्रिय का कुछ, उस के बाद, वैश्य का उस से भी बाद और शूद्र का सब से देर करके सन्तान उत्पन्न होता हो। इसी प्रकार प्रत्येक विषय में समानता ही पावेंगे। परन्तु मृतक श्राद्ध में यह असमानता क्यों ? यह असमानता ही प्रथम दिखलाती है कि अहङ्कार और अज्ञानवश मनुष्यों ने यह द्वादशाह--श्राद्ध चलाया है। क्या ईश्वरीय-नियम मृत ब्राह्मण को यहां १२ बारह दिन और शूद्र को ३२ दिन रहने देगा ? ऐसा कदापि नहीं। जब सर्वत्र वह नियम समान-रूप से कार्य्य करता है तब केवल इस में भेद क्यों कर सकता है। एवमस्तु। क्या वेदों और आर्ष-ग्रन्थों में कहीं इस द्वादशाह की चर्चा है ? उत्तर नहीं। इस का खोज कई प्रकार से होसकता है। श्मशान में जो ऋचाएं पढी जाती हैं उन में इस का कोई चिन्ह पायाजाता या नहीं ? एवं मरने के समय प्राचीन लोग अपने पुत्र से इस कर्म्म के लिये कहजाते थे या नहीं ? कहीं अन्यत्र इस की विधि है या नहीं ? प्रथम कतिपय ऋचाएं सुनाता हूं जो श्मशान में पढ़ी जाती हैं॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं वि क्षिपो मा शरीरम्।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्रहिणुतात् पितृभ्यः॥ऋ०१०।१६

मानवीय--स्वाभाविक प्रेम सूचनार्थ दहन समय की यह प्रार्थना है। (अग्ने+मा+एनम्+विदहः) हे प्रकाशमय भगवन् ! शरीरवत् इस जीवात्मा को विदग्ध न करें। (मा+अभि+शोचः) इस को सन्तप्त न करें (मा+अस्य+त्वचम्+मा+शरीरम्+विक्षिपः) न तो इस की त्वचा को और न इस के शरीर को विक्षिप्त करें (जातवेदः+यदा+शृतम्+कृणवः) हे जातवेद ! जब इस को परिपक्वकरना (अथ+एनम्+पितृभ्यः+प्रहिणुतात्) तब इस को पितरों के निकट पहुंचा देना।

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परिदत्तात्पितृभ्यः।
यदा गच्छत्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति। १०। १६। २॥

(जातवेदः, यदा, एनम्, शृतम्, करसि) हे जातवेद ! जब ही इस को परिपक्व करना (अथ, ईम्, पितृभ्यः, परिदत्तात्) तब ही यह पितरों को देदेना (यदा

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

एतम् असुनीतिम्, गच्छति) जब यह जीवात्मा इस असुनीति अर्थात् प्राणप्रापक गति को पाता है (अथ, देवानाम्, वशनीः भवति) तब ही पुनः इन्द्रियों के वश में हो-जाता है ॥

ये दोनों मन्त्र सूचित करते हैं कि मरण के अनन्तर ही अपने स्थान को प्रस्थान करता है। १२ बारह दिनों वा १५ दिनों के लिये नहीं ठहरता। यहां पितृशब्द उपलक्षक है यदि सुकर्म्मी रहता है जो जहां उस के पूर्वज पितृगण गए वहां चला जाता वा मुक्त पुरुषों के निकट जाता वा अपने कर्म्मानुसार इसी पृथिवी पर पुनः जन्म ग्रहण करता है। यदि द्वादशाह का विधान होता तो इन मन्त्रों में कहाजाता कि १२ बारह दिन यहां ठहरजाना। ऐ प्रेत ! इस के बाद जहां कर्म्म ले जाय वहां जाना।

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्याञ्च गच्छ पृथिवीं च धर्म्मणा। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥ ऋ० १० । १६ । ३ ॥ सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्म्माभिः। अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः ॥ अथर्व० १८ । २ । ७ ॥

मृत वा मुमूर्षु पुरुष के लिये यह स्वाभाविक प्रार्थना है (चक्षुः, सूर्यम्, गच्छतु) तेरा चक्षु सूर्य को प्राप्त हो (आत्मा वातम्) आन्तरिक प्राण वाह्य-वायु को प्राप्त हो अर्थात् इस शरीर में जिस का जो भाग है वह वहां प्राप्त हो। हे मुमूर्षु पुरुष! तू (धर्म्मणा) अपने धर्म्म के अनुसार (द्याम्, च, गच्छ, पृथिवीम्, च) मुक्तिसुख भोगने के लिये अन्तरिक्ष को अथवा जन्म-ग्रहणार्थ इसी पृथिवी को प्राप्त हो (अपः, वा, गच्छ) अथवा जल को प्राप्त हो (यदि, तत्र, ते, हितम्) यदि तेरा वहां कोई हित हो अथवा (ओषधीषु, शरीरैः, प्रतिष्ठ) ओषधियों में शरीरावयवों से स्थित रहो अर्थात् जैसे तेरे कर्म्म हैं तदनुसार तत्तत् योनि में जाओ। अथर्ववेदीय मन्त्र का भी यही भाव है।

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः। यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामुलोकम्॥ १०।१६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

इस शरीरमें अज और जन्मवान् दो भाग हैं । जीवात्मा अज और सब जन्मवान् है । यह देह, आंख, कान, नाक आदि अग्नि में भस्म होजाते हैं परन्तु यह अज जीवात्मा एक ही रस रहता है । इसी को इस मन्त्र में दिखलाते हैं । यहां यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जैसे हम पृथिवी की सहायता से चलते हैं वायु से जीते हैं वैसे ही यह जीवात्मा मृत्यु के बाद वायु, विद्युत् आदि की सहायता से गमनागमन करेगा । इस हेतु चितास्थ अग्नि को सम्बोधित कर कहा जाता है यहां उपलक्षणमात्र है । (अजः, भागः) जननरहित, शरीरेन्द्रियादि भाग व्यतिरिक्त जो जीवात्मस्वरूप भाग है (तम्, तपसा, तपस्व) हे अग्ने ! उसको निज ताप से शुद्ध करो (ते, शोचिः, तम्, तपतु) तेरी ज्वाला उसको तप्त करे (ते, अर्चिः) तेरी अर्चि उसको तप्त करे (जातवेदाः) हे जातवेदा ! (याः, ते, शिवाः, तन्वः) जो तेरी वायु, विद्युत्, सूर्य, चन्द्र आदि मूर्तियां सुखप्रद हैं (ताभिः, एनम्, सुकृताम्, उ, लोकम्, वह) उन मूर्तियों से इस जीवात्मा को सुकर्मी पुरुषों के लोक में ले जाओ ॥ ४ ॥

अवसृज पुनरग्ने पितृभ्यो यस्त आहुतश्चरति स्वधाभिः ।
आयुर्वसान उपवेतु शेषः संगच्छताम् तन्वा जातवेदः ॥१०।१६।५॥

(जातवेदः, अग्ने) हे सर्वज्ञ प्रकाशस्वरूप देव (ते, आहुतः, यः, स्वधाभिः, चरति) आप को समर्पित होके जो स्वाभाविक धर्म्मों के साथ विचरण करता है (पुनः, पितृभ्यः, अवसृज) इसको पितरों के साथ मिला दो (शेषः) यह शेष जीवात्मा (आयुः, वसानः, उपवेतु) आयु से युक्त हो कर्म्मानुसार शरीर को प्राप्त करे। हे भगवन् ! (तन्वा, संगच्छताम्) शरीर से यह संगत होवे ।

यत्ते कृष्णः शकुन आतुतोद पिपीलः सर्प उत वा श्वापदः ।
अग्निष्टद्विश्वादगदं कृणोतु सोमश्च यो ब्राह्मणाँ आविवेश ॥ १०

सर्प, व्याघ्र, पिपीलिका आदिकों से जिसकी मृत्यु हुई है उस के लिये ईश्वर से प्रार्थना है (यत्) जो (ते) तुम्हें (कृष्णः, शकुनः, आतुतोद) कृष्ण अर्थात् विषधर पक्षी ने दुःख दिया है अथवा (पिपीलः०) पिपीलिका, सर्प, श्वापदादिकों ने

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आहत किया है और इस अकालमृत्यु से जो तुम दूषित हुए हो (तत्) उस सब से (विश्वात्, अग्निः) सर्वसंहर्त्ता अग्नि (अगदम्, कृणोतु) निर्दोष करे और (यः, ब्राह्मणान्, आविवेश) जो ब्राह्मणों में प्रविष्ट है अर्थात् जिस को ब्रह्मवित् पुरुषों ने धारण किया है (सोमः, च) वह सर्वमंगलप्रद ईश्वर तुम को निर्दोष करे ॥६॥ इत्यादि ऋग्वेदीय ऋचाएं हैं, किन्हीं में द्वादशाह की चर्चा नहीं। अब आगे यजुर्वेद के मन्त्र दिखलाते हैं ॥

स्वाहा प्राणेभ्यः साधिपतिकेभ्यः । पृथिव्यै स्वाहा । अग्नये स्वाहा । अन्तरिक्षाय स्वाहा । वायवे स्वाहा । दिवे स्वाहा । सूर्य्याय स्वाहा ॥ यजुः ३९ । १ ॥

साधिपतिक प्राण, पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ और सूर्य को स्वत्वत्याग की शक्ति प्राप्त है " स्वम् आसमन्ताज्जहाति यया क्रियया सा स्वाहा " निज धन सम्पत्ति आदि का त्याग जिस क्रिया के द्वारा हो उसे स्वाहा कहते हैं। पृथिवी आदि सकल जड़ वस्तु अपने स्वत्व त्याग से ही हम चेतन जीवों की रक्षा करती हैं अतः इनके लिये 'स्वाहा' कहा गया है। "सुष्ठु आह सुहुतं भवतु" इत्यादि भी स्वाहा के अर्थ होते हैं।

दिग्भ्यः स्वाहा । चन्द्राय स्वाहा । नक्षत्रेभ्यः स्वाहा । अद्भ्यः स्वाहा । वरुणाय स्वाहा । नाभ्यै स्वाहा । पूताय स्वाहा ॥ ३ ॥ वाचे स्वाहा । प्राणाय स्वाहा । चक्षुषे स्वाहा । चक्षुषे स्वाहा । श्रोत्राय स्वाहा । श्रोत्राय स्वाहा ॥ ३ ॥ लोमभ्यः स्वाहा । लोमभ्यः स्वाहा । त्वचे स्वाहा । त्वचे स्वाहा । लोहिताय स्वाहा । लोहिताय स्वाहा । मेदोभ्यः स्वाहा । मेदोभ्यः स्वाहा । मांसेभ्यः स्वाहा । मांसेभ्यः स्वाहा । स्नावभ्यः स्वाहा । स्नावभ्यः स्वाहा । अस्थभ्यः स्वाहा । अस्थभ्यः स्वाहा । मज्जभ्यः स्वाहा । मज्जभ्यः स्वाहा । रेतसे स्वाहा । पायवे स्वाहा । १० । आयासाय स्वाहा । प्रायासाय स्वाहा । संया-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

स्राय स्वाहा । विधासाय स्वाहा । उद्यासाय स्वाहा । शुचे स्वाहा । शोचते स्वाहा । शोचमानाय स्वाहा । शोकाय स्वाहा । ११ । तपसे स्वाहा । तप्यते स्वाहा । तप्यमानाय स्वाहा । तप्ताय स्वाहा । घर्माय स्वाहा । निष्कृत्यै स्वाहा । प्रायश्चित्यै स्वाहा । भेषजाय स्वाहा । १२ ॥ यमाय स्वाहा । अन्तकाय स्वाहा । मृत्यवे स्वाहा । ब्रह्मणे स्वाहा । ब्रह्महत्यायै स्वाहा । विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥ १३ ॥

ये सब वैदिक वाक्य चिता में आहुति डालने के समय पढ़े जाते हैं। द्वादशाह की कहीं चर्चा नहीं।

पिता-पुत्रीय-सम्प्रदान ॥

अथातः पितापुत्रीयं सम्प्रदानमिति चाचक्षते । पिता पुत्रं प्रेष्यन्नाह्वयति । नवैस्तृणैरागारं संस्तीर्य अग्निमुपसमाधाय उदकुम्भं सपात्रमुपनिधाय अहतेन वाससा सम्प्रच्छन्नः पिता शेते । एत्य पुत्र उपरिष्टादभिनिपद्यते । इन्द्रियैरिन्द्रियाणि संस्पृश्य आसीनाय अभिमुखायैव सम्प्रदद्याद् । अथास्मै संप्रयच्छति । कौशीतकी ब्राह्मणोपनिषद् ॥

अब पिता-पुत्रीय सम्प्रदान कहते हैं । मरने के समय पिता पुत्र को बुलवाता है प्रथम पृथिवी पर नवीनतृणों को बिछा अग्नि रख, सपात्र जलकलश स्थापित कर नवीन वस्त्र पहिन पिता सोजाता है । पुत्र आके उस के ऊपर धीरे और नम्रता प्रेम से पड़जाता है । तब पिता पुत्र के आंख, कान, आदिक इन्द्रियों को स्पर्श करके सामने बैठे हुए उस पुत्र को देखता है और पीछे इस प्रकार पुत्र से कहता हुआ समर्पण करता है

वाचं मे त्वयि दधानीति पिता । वाचं ते मयिदधे इति पुत्रः । प्राणं मे त्वयि दधानीति पिता । प्राणं ते मयि दधे इति पुत्रः । चक्षुर्मे त्वयि दधानीति पिता । चक्षुस्ते मयि दधे इति पुत्रः । अन्नरसान् मे त्वयि द० । अन्नरसांस्ते मयि द० । कर्म्माणि मे त्वयि । कर्म्माणि ते मयि० । सुखदुःखे मे त्वयि० । सुखदुःखे ते मयि० । आनन्दं, रतिं, प्रजापतिं मे त्वयि० । आनन्दं रतिं प्रजापतिं ते मयि० । मनो मे त्वयि० । मनस्ते मयि० । प्रज्ञां मे त्वयि० । प्रज्ञां ते मयि० इत्यादि ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिता–मैं अपनी वाणी तुझ में स्थापित करूं ।

पुत्र–आप की वाणी को मैं अपने में स्थापित करता हूं ।

पिता–मैं अपने प्राण को तुझ में स्थापित करूं ।

पुत्र–आप के प्राण को मैं अपने में स्थापित करता हूं ।

पिता–मैं अपनी चक्षु को तुझ में स्था० ।

पुत्र–आप की चक्षु को मैं अपने में स्था० ।

पिता–मैं अपने अन्न रसों को तुझ में स्था० ।

पुत्र–आप के अन्न रसों को मैं अपने में स्था० ।

पिता–मैं अपने कर्म्मों को तुझ में स्था० ।

पुत्र–आप के कर्म्मों को मैं अपने में स्था० ।

पिता–मैं अपने सुख दुःख को तुझ में स्था० ।

पुत्र–आप के सुख दुःख को मैं अपने में स्था० ।

पिता–मैं अपने आनन्द, रति, प्रजापति को तुझ में स्था० ।

पुत्र–आप के आनन्द, रति, प्रजापति को मैं अपने में स्था० ।

पिता–मैं अपने मन को तुझ में स्था०

पुत्र–आप के मन को मैं अपने में स्था० ।

पिता–मैं अपनी प्रज्ञा को तुझ में स्था० ।

पुत्र–आप की प्रज्ञा को मैं अपने में स्थापित करता हूं ।

इत्यादि मरणकाल में पिता पुत्र में सम्वाद होता है । यदि उस समय मृतकश्राद्ध होता रहता तो ऐसे आवश्यक कर्म्म की यहां चर्चा अवश्य होती । परन्तु नहीं है । इस से मालूम होता है कि मृतकश्राद्ध उस समय में नहीं प्रचलित था ।

द्वादशाह श्राद्ध और देवयान, पितृयाण और जायस्व, म्रियस्व मार्ग ।

मरने के अनन्तर यह जीव तीन मार्गों से गमन करता है ऐसा वर्णन उपनिषदों में आया है । सब से उत्तम पुरुष देवयान पथ से, मध्यम पितृयाण पथ से, निकृष्ट, जायस्व म्रियस्व पथ से गमनागमन करते हैं । यहां पर भी " तं प्रेतं दिष्टमितोऽन्य एव

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

हरन्ति " छा० उ० । अग्नि में भस्म कर देने की चर्चा देखते हैं परन्तु द्वादशाह की नहीं । यहां पर कहा गया है कि प्रथम अर्चि, दिन, आपूर्यमाणपक्ष, उत्तरायण, सम्वत्सर, आदित्य, चन्द्र विद्युत् आदि के द्वारा ब्रह्मदशा को प्राप्त होता है । अब आप विचार सकते हैं कि द्वादशाह श्राद्ध होता रहता तो यहां पर अवश्य इस की चर्चा आती और अवश्य कहा जाता कि मृत वा प्रेत पुरुष द्वादश दिवस पृथिवी पर ठहर के पुनः उन मार्गों के द्वारा ब्राह्मी दशा को प्राप्त होता । परन्तु सो नहीं कहा है अतः द्वादशाह श्राद्ध अवैदिक अनार्ष है ।

द्वादशाह और मनुस्मृति आदि ॥

प्र०—क्या इस द्वादशाह श्राद्धकी चर्चा मनुस्मृति आदि पुस्तकों में है ? **उ०**—नहीं । मनुस्मृति में केवल शुद्धि की चर्चा देखते हैं । "शुद्ध्येद्विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति । मनु० ५ । ८३ । इस सामान्य नियम से मनु का तात्पर्य्य केवल यह प्रतीत होता है कि मृत पुरुष के लिये स्वभावतः पुत्र पौत्रादिकों को शोक होजाता है इस हेतु नियम बांधा है । विप्र बारहवें दिन अवश्य शोक मोह त्याग अपने शुभकर्म्म में लग जाय । इसी प्रकार क्षत्रियादि को भी उचित है । जितने २ अज्ञानी अधिक हैं उतना उनके लिये शोक अधिक कहा गया है । जब मनु धर्म्मशास्त्र भी इसके लिये कोई आज्ञा नहीं देता है तब कैसे यह अन्धपरम्परा चल पड़ी, मैं नहीं कह सकता । इसी प्रकार श्रौत वा गृह्यसूत्रों को भी जानें । उन में इस द्वादशाह का वर्णन कहीं भी नहीं है । **प्रश्न**—मरण के अनन्तर प्रेत के लिये कुछ करना चाहिये या नहीं ? **उ०**—केवल शव (मृतशरीर) को विधिपूर्वक अग्नि में भस्म कर-देना चाहिये । इस के सिवाय अन्य कोई कर्म्म प्रेत के लिये नहीं होना चाहिये क्योंकि वेदों में इस की कोई भी विधि नहीं । यदि कहा कि रामायण और महाभारत आदिकों में प्रेतकर्म्म विहित है, फिर आप कैसे कहते हैं कि प्रेतकर्म्म नहीं होना चाहिये । सुनो ! हमने आप को वेदों के अनेक प्रमाण दिये उन से प्रेतकर्म्म सिद्ध नहीं होता । फिर वेद से अविहित कर्म्म को हम कैसे बतलावें । रामायण आदिकों में समय समय पर ह्रास और वृद्धि होती गई है इस हेतु इन पुस्तकों से धर्म्मनिर्णय नहीं कर सकते । वेद सृष्टि की आदि से एकरस चला आया है अतः वेदों से जो निर्णय हो वही कर्तव्य है ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितृऋण और पुत्रशब्दार्थ ॥

बहुत लोग कहते हैं कि मरने के अनन्तर पिण्ड देने के वास्ते ही पुत्रजन्म की आकांक्षा करते हैं अन्यथा पुत्र की आवश्यकता ही क्या ? अपुत्रस्य गतिर्नास्ति । महाभारत में कहा गया है कि " स ददर्श पितॄन् गते लम्बमानानधोमुखान् । एकतन्त्ववशिष्टान् वै वीरणस्तम्बमाश्रितान् । तं तन्तुञ्च शनैराखुमाददानं विलेशयम् । इत्यादि आदि पर्व ४५। जरत्कारु नामक पुरुष ने विवाह नहीं किया इस कारण इस के पितर स्वर्ग से गिर के किसी खाई में अधोमुख आ लटके । केवल वीरण का एक ही तन्तु उन का आलम्बन था उसे भी चूहा खा रहा था । ऐसी दशा को प्राप्त पितरो को देख उन के उपदेश से जरत्कारु ने विवाह किया । इस से भी सिद्ध होता है कि मृतकश्राद्ध करना चाहिये । पुनः 'पुत्र' शब्दार्थ ही है कि जो 'पुत्' नाम के नरक से रक्षा करे । समाधान । मरण के अनन्तर पिण्ड देने के लिये ही पुत्र है इस की चर्चा कहीं नहीं है । जरत्कारु की आख्यायिका गृहस्थाश्रम की प्रशंसामात्र करती है और दिखलाती है विवाह अवश्य करना चाहिये क्योंकि यदि विवाह न करें तो प्रथम गृहस्थाश्रम ही धीरे २ लुप्त होजायगा और पाप की भी वृद्धि अधिक होती जायगी क्योंकि हजारों में एक आध ही सम्यक् प्रकार ब्रह्मचर्य्य की रक्षा कर सकता है । वंश के उच्छेद होने से की कीर्ति आदि भी नष्ट होजाती है इत्यादि कारणों से जरत्कारु की आख्यायिका अर्थवादसूचक है । यहां पर श्राद्ध की कोई भी चर्चा नहीं देखते हैं । इसी कारण मन्वादिक धर्म्मशास्त्र और ब्राह्मणादिक ग्रन्थों में तीन ऋण की चर्चा आती है । पुत्र उत्पन्न करने पर आदमी पितृ ऋण से मुक्त होजाता है । पुत् नाम नरक से त्राण करता है इस पुत्र शब्दार्थ से पिण्ड की कौनसी बात आगई । पुत्र का जन्म लेना ही इतना पवित्र माना गया है कि अपने जन्ममात्र से पितरों को पुन्नाम नरक से छुड़ाता है। ऐसा पौराणिक सिद्धान्त है न कि पिण्ड देनेसे पुन्नामनरकत्राता बनाता है । यास्क लिखते हैं । पुत्रः पुरुत्रायते निरपणाद्वा पुं नरकं ततस्त्रायत इति वा । जो बहुत रक्षा करे जो वृद्धावस्था में माता पिता आदि को पालन करे और जो 'पुम्' नाम नरक से रक्षा करे । 'पुम्' नाम नरक कौन है ? वृद्धावस्था होने पर जब आदमी अकर्म्मण्य

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

होजाता है उसी दशा का नाम पुन्नाम नरक है निःसन्देह इस दशा में जिस का सुपात्र पुत्र रहता है । उस की रक्षा अवश्य होती है । यथार्थ में पाणिनि—व्याकरण के अनुसार 'पूञ्पवने' धातु से पुत्र बनता है " पुनातीति पुत्रः पुवो ह्रस्वश्च उणादिसू० ४। १६४" जो गृह को पवित्र करे उसे पुत्र कहते हैं ॥

बारहवां और तेहरवां प्रश्न का समाधान ॥

यह मृतकश्राद्ध कब से चला ?

इस प्रश्न के प्रत्युत्तर के लिये दो बातें अवश्य जाननी चाहियें । १ बुद्ध—सम्प्रदायियों का तीर्थ होने पर भी गया स्थान में श्राद्ध का इतना माहात्म्य क्यों है ? २—और महाभारत की आख्यायिका इस विषय में क्या सूचित करती है। इन दोनों पर यदि अच्छे पकार विचार करें तो इस का उत्तर सहजतया मिल जायगा ।

गया—यह सब इतिहासों में प्रसिद्ध है कि गया हिन्दुओं का तीर्थ स्थान नहीं। यह बौद्धों का पवित्र स्थान है । कहते हैं कि बुद्धदेव, गयामें १२ वर्ष तपस्या करते रहे और अन्तमें उनकी मृत्युभी यहां ही हुई है । जिस विहार देशका एक शहर गया है इसी को मगध कहते हैं ! यह "विहार" नाम ही बतला रहा है कि सम्पूर्ण मगध देश बुद्धसम्प्रदायियों से आकीर्ण था । प्राचीनकाल में बौद्ध लोग ही अपने मन्दिर का नाम 'विहार' रखते थे । यहां उन के सहस्रों विहार थे इस कारण इस देश का नाम 'विहार' होगया । बुद्ध धर्म्म के परम प्रेमी देव—प्रिय अशोक राजा की राजधानी भी मगध में ही थी, अभी तक यहां बुद्धधर्म्म के अनेक चिन्ह पाए जाते हैं, बौद्धस्थान होने के कारण ही पुराणों में मगध की बड़ी निन्दा कही गई है । गया में जो विष्णुपद अर्थात् एक मन्दिर में प्रस्तर के ऊपर खोदा हुआ जो विष्णु के पैर के चिन्ह के नाम से पूजित होता है वह, यथार्थ में बुद्धदेव का ही पैर है । पुराणों में बुद्ध को भी विष्णु का अवतार मानते हैं दशावतारों में एक बुद्ध भी हैं । इसी कारण इस को **विष्णुपद** कहते हैं अभी तक इस स्थान का नाम ' बोधगया ' चला आता है यद्यपि आज कल 'बोधगया" और 'गयास्थान' में दो एक कोश का अन्तर पड़ गया है । परन्तु यह सब गया नाम से ही प्रसिद्ध है पिण्ड देनेवाले एक पिण्ड अभी तक बोधगया में ही

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

देते हैं। अभी तक लोगों में यह बात परम्परा से चली आती है कि जब तक बोध-गया में पिण्डदान न किया जाय तब तक श्राद्ध पूर्ण नहीं होता है ॥

अब यहां एक बड़ी शङ्का उपस्थित होती है कि हिन्दुओं के अति प्राचीन, काशी, प्रयाग, दण्डकारण्य, बदरिकाश्रम, सरस्वती, गङ्गा, नर्म्मदा आदि नदियों के तट एवं अयोध्या, मथुरा, रामेश्वर, द्वारिका आदि तीर्थस्थानों में श्राद्ध करने का उतना माहात्म्य न होके बौद्धस्थान-गया में इतना बढ़ कर माहात्म्य क्यों है ? इस का भेद जानने से ही यह पता लग जाता है कि मृतकश्राद्ध देश में कब से चला है। इतिहासों में यह प्रसिद्ध है कि एक समय यहां की अधिकांश प्रजाएं बौद्ध धर्म्म को मानने लग गई थीं यह धर्म्म सम्पूर्ण एशिया में एक तरह से फैल गया था विशेष कर चीन, जापान और लङ्का में तो उसका राज्य ही हो गया था। मैं यहां अब चीनी-लोगों की बात सुनाना चाहता हूं। इनही चीनी प्रजाओं में बहुत दिनों से मृतक-श्राद्ध चला आता था। इनकी अज्ञानता की बातें बहुत हैं। जब इनके यहां कोई राजा मरता था तो उस के साथ दास, दासियां, घोड़े आदि भी मार के जलाए जाते थे। एक बड़े मकान में राजोचित सब सामग्रियां अर्थात् विविध वस्त्र, अनेक प्रकार के भोज्यपदार्थ, अस्त्र शस्त्र आदि रखके राजाके नाम पर भस्मकर दी जाती थीं अब तक यह रीति कुछ २ बनी हुई है। एक यह भी लीला करते हैं कि प्रत्येक वर्ष ये लोग कागज़ों के घोड़े, हाथी, बैल, दास दासी वग़ैरः बनाते हैं और मृत-पितरों के नाम पर इस आशा से जलाते हैं कि ये सब स्वर्ग में जाके चेतन बनके मृतपुरुषों की सेवा करेंगे। पहले जीतों को ही मार कर स्वर्ग में अपने अपने पितरों के निकट भेजते थे अब कागजों की मूर्तियां बना कर भेजते हैं। इन में जितने लोग मरते हैं प्रायः सबों के नाम क्रम से लिखते चले जाते हैं। एक पाटी पर सब के नाम लिख के अपने २ घर पूजास्थान में लटकाए हुए रखते हैं और प्रतिदिन उन सबों की पूजा क्रम से करते हैं। उन के यहां प्रधानता से, आप यह समझें, कि मृतक-पूजा ही धर्म्म है। श्मशान में बड़े २ और सुन्दर २ मृतकभवन बने हुए हैं। प्रत्येक वर्ष बड़ी धूमधाम से श्मशान में उत्सव होता है। उन के यहां, दरिद्रा, रोग, व्याधि, उपद्रव आदि का कारण भी मृतपुरुषों का असन्तोष वा क्रोध माना जाता है अर्थात् इन के यहां यदि कोई मुख्यधर्म्म है तो मृतक-श्राद्ध ही है।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अब आगे चलिये। जब से बौद्धधर्म्म चीनदेश में फैल गया तब से चीनी-लोग गया में अधिक आने लग गये थे। मुसलमानी राज्य के समय में लूट, मार, डकैती होने के कारण इन का आना जाना बहुत कुछ बन्द होगया था अब इस राज्य में पुनः आने जाने लगे हैं। ये लोग गया में आके बड़ी धूम धाम से श्राद्ध किया करते थे। रास्ते में पितृपूजा छूट जाती थी और पितरों के भी पितर बुद्ध को ही मानते थे। जिनकी तपस्या भूमि गया है इन कारणों से गया में आके जी खोल के पितृ-श्राद्ध करते थे और यहां के लोगों को भी पूर्ण दान दक्षिणा दिया करते थे। इन्ही चीनियों की नकल यहां क लोग भी करने लग पड़े। चीनी लोग बौद्ध होने के कारण भारतवासी बौद्धों के अतिथिस्वरूप थे। दोनों का धर्म्म मिलता था अतः प्रथम बौद्ध सम्प्रदायियों ने चीनी लोगों से इस श्राद्ध का नकल किया। उस समय के पण्डों ने भी देखा कि इसमें तो पूर्ण माल मिलता है इस का खूब ही प्रचार करो। इन में से झुण्ड के झुण्ड देश में निकल के इसका उपदेश देने लगे इस प्रकार सम्पूर्ण भारतवर्ष मृतकपूजक बन गया। आप को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रथम इसका देश में बड़ा विरोध हुआ। लोग अपने गृह में मृतकश्राद्ध नहीं करने देते थे। करानेवाले निकृष्ट माने जाते थे अभीतक मृतक-श्राद्ध करानेवाला महाब्राह्मण, मिथिला देश में जिस को महापात्र कहते हैं, अति निकृष्ट माना जाता है। ब्राह्मण कहलाने पर भी इससे लोग स्पर्श नहीं करते हैं अभीतक मृतक सम्बन्धी दान भी वही लेता है अर्थात् जबतक प्रेत के नाम पर दान होता रहता है तबतक सब दान उसी को मिलता है। इस प्रकार विरोध होने के कारण मृतकभक्त लोग प्रथम गया में भी आके श्राद्ध करते थे। धीरे धीरे सर्वत्र गृह गृह में फैल गया। यहां के लोग उस समय जैसे आज हैं बुद्धि के बड़े दुर्बल हो गये थे झट विना विचारे किसी काम को करने लगे थे। यहां के लोग ऐसे विचार शून्य हो गये हैं कि करीब १५ वर्ष की बात है कि एक उड़ती बात सुन के सब किसी ने क्या गरीब क्या धनाढ्य क्या राजा क्या प्रजा ने अढ़ाई दिन भिक्षा मांग पूजा की। लोग समझने लगे कि यदि इस विधि से पूजा न करेंगे तो सब कोई मर जायँगे। पुनः किसी किंवदन्ती को सुन कई दिनों तक अपने २ गृह छोड़ रात्रि में अन्यत्र सोते रहे। किसी स्वार्थी धूर्त्त

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ने कहा कि गंगा नदी का एक दौहित्र उत्पन्न हुआ है । हजारों लाखों इसकी पूजा के लिये इकट्ठे हो गये । किसी ने यह नहीं पूछा कि वह दौहित्र कहां है । इसी प्रकार की अज्ञानता की घटना हरेक साल होती रहती है । यह सब विहार देश की लीला है । परन्तु यह अज्ञानता की बीमारी सम्पूर्ण भारत में फैली हुई है । एवमस्तु । आगे चलिये । जिस कारण प्रथम से ही यहां जीवित-पितृ-यज्ञ वा श्राद्ध विद्यमान था अतः यह भी झट से चल पड़ा और वेदों के मन्त्र भी निकाल दिखला दिये गये कि वेदों में भी पितृयज्ञ की विधि है । चीन देश-वासियों की अपेक्षा यहां के लोग कुछ बुद्धिमान् थे और वेदों के विश्वासी थे अतः पितृ-श्राद्ध की अनेक पद्धतियां भी बनालीं और चीनी के समान पदार्थों को व्यर्थ भस्म न करके दान कर देने लगे । इसकारण यह गयाश्राद्ध सूचित करता है कि विदेशियों से मृतकश्राद्ध की शिक्षा ली है ।

मृतकश्राद्ध और महाभारत की आख्यायिका ॥

युधिष्ठिर उवाच । केन संकल्पितं श्राद्धं कस्मिन् काले किमात्मकम् । भृग्वंगिरसके काले मुनिना कतरेण वा । भीष्म उवाच । यथा श्राद्धं संप्रवृत्तं यस्मिन् काले यदात्मकम् । येन संकल्पितं चैव तन्मे शृणु जनाधिप । स्वायंभुवोऽत्रिः कौरव्य परमर्षिः प्रतापवान् । तस्य वंशे महाराज दत्तात्रेय इति स्मृतः । दत्तात्रेयस्य पुत्रोऽभून् निमिर्नाम तपोधनः । निमेश्चाप्यभवत्पुत्रः श्रीमान्नाम श्रियावृतः । कालधर्म परीतात्मा निधनं समुपागतः । निमिस्तु कृत्वा शौचानि विधिदृष्टेन कर्म्मणा । सन्तापमगमत्तीव्रं पुत्रशोकपरायणः । तमेव गणयञ्छोकं त्रिरात्रे प्रत्यबुध्यत । तस्यासीत् प्रतिबुद्धस्य शोकेन व्यथितात्मनः । मनः संहत्य विषये बुद्धिर्विस्तारगामिनी । ततः सञ्चिन्तयामास श्राद्धकल्पं समाहितः । यानि तस्यैव भोज्यानि मूलानि च फलानि च । उक्तानि यानि चान्नानि यानि चेष्टानि तस्य ह । तानि सर्वाणि मनसा विनिश्चित्य तपोधनः । अमावास्यां महाप्राज्ञो विप्रानानीय पूजितान् । दक्षिणावर्त्तिकाः सर्वाः स्वयमेवमथाकरोत् । सप्त-

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

विप्रांस्ततोऽभ्येत्य युगपत् सम्युपानयत् । ऋते चलवणं भोज्यं श्यामाकान्नं ददौ प्रभुः । दक्षिणाग्रास्ततो दर्भा विष्टरेषु निवेशिताः । पादयोश्चैव विप्राणां ये त्वन्नमुपभुञ्जते । कृत्वा तु दक्षिणाग्रान् वै कोणे स प्रयतः शुचिः । प्रददौ श्रीमतः पिण्डात् नामगोत्रमुदाहरन् । तत्कृत्वा तु मुनिश्रेष्ठो धर्म्मसंकटमात्मनः । पश्चात्तापेन महता तप्यमानोऽभ्यचिन्तयत् ॥ महाभारत अनुशासन अध्याय ९१ ॥

युधिष्ठिरजी पूछते हैं कि हे पितामह ! किस काल में किस मुनि ने इस श्राद्ध को चलाया । भीष्मजी कहते हैं कि हे राजन् ! अत्रि के गोत्र में एक निमि नाम के मुनि बड़े तपस्वी हुए । इनका एक पुत्र हुआ जिस का नाम उन्होंने श्रीमान् रक्खा वह कुछ दिन के अनन्तर मर गया जिस से निमि बड़ेही शोकसंतप्त हुए । दारुण पुत्रशोक से रात दिन अपने पुत्र श्रीमान् की चिन्ता करते हुए निमि की बुद्धि बहुत चञ्चल और विक्षिप्त होगई । इस व्यथित और विक्षिप्त अवस्था में पड़के वह निमि अपने पुत्रके खान पान बैठना उठना चलना फिरना उस की सारी क्रिया को ही रात दिन ध्यान करने लगे । एक अमावास्या तिथि को कुछ ब्राह्मणों को बुला दक्षिणाग्र कूर्णों पर बिठा स्वयं शुचि हो लवणवर्जित भोज्यान्न दिया और दक्षिणाग्र कूर्णों पर श्रीमान् के नाम गोत्र उच्चारण कर कुछ पिण्ड रख दिये । जब उन्होंने अपने मृतपुत्र के नाम पर पिण्ड रक्खे तब उन्हें बड़ा शोक हुआ क्योंकि उन्होंने स्वयं स्वस्थ होकर देखा कि मैंने यह कर्म्म धर्म्म–विरुद्ध किया । आगे कहते हैं:—

"अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् ।
कथं नु शापेन न मां दहेयुर्ब्राह्मणा इति" ॥

इस से पूर्व इस कर्म्म को किसी मुनि ने नहीं किया । हाय ! यह मैंने क्या अनुचित कर्म्म किया । ऐसा न हो कि मुझे ब्राह्मण लोग भस्म करदें इस प्रकार चिन्ता करतेहुए निमि ने अपने वंशकर्त्ता अत्रिका ध्यान किया । वे आके सब समझागए कि आप चिन्ता मत करो ब्रह्माने ही इस कल्प को विचारा था । अब तुमने इसको आरम्भ कर दिया अच्छा हुआ । भीष्मजी कहते हैं कि इसी निमि से यह श्राद्ध चला ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वराह पुराण और श्राद्ध ।

यही आख्यायिका वराहपुराण के श्राद्धोत्पत्ति-प्रकरण में भी इसी प्रकार आई है। विशेषता इतनी है कि इसके श्राद्ध करने के समय में नारदजी आ पहुंचे हैं। नारद और निमि का सम्बाद सुनने के योग्य है। यथा—

एतस्मिन्नन्तरे देवि नारदो द्विजसत्तमः। जगाम तापसारण्यं ऋष्याश्रमविभूषितम्। तं दृष्ट्वा पूजयामास स्वागतेनाथ माधवि। भीतोगद्गदया वाचा निःश्वसंश्च मुहुर्मुहुः। सव्रीडो भाषते विप्रः कारुण्येन समन्वितः। कृतस्नेहश्च पुत्रार्थे मया संकल्प्य यत् कृतम्। तर्पयित्वा द्विजान्सप्त अन्नाद्येन फलेन च। पश्चात् विसर्जितं पिण्डं दर्भानास्तीर्य्य भूतले। उदकानयनञ्चैव त्वपसव्येन पायितम्।

शोकस्नेहप्रभावेण एतत्कर्म मया कृतम्।
न च श्रुतं मया पूर्वं न देवैर्ऋषिभिः कृतम्।
भयं तीव्रं प्रविशामि मुनिशापात् सुदारुणात्।

इसी के बीच में ऋषियों से विभूषित तपोरण्य में नारदजी आये। उन्हें देख भयभीत हो बारम्बार सांस लेते हुए सलज्ज और करुणायुक्त हो गद्गद वाणी से वह निमि बोले। हे नारद! मैंने यह सब पुत्र के स्नेहवश हो किया है। ब्राह्मणों को अन्न फल खिलाएं। दर्भ के ऊपर पिण्ड दिया, अपसव्य हो जल दिया। हे नारद! शोक और स्नेह के प्रभाव से यह सब कर्म्म मैंने किया है। मैंने इसको कभी नहीं सुना और न देवों ने न ऋषियों ने इसको किया है। इस कारण मुझे बड़ा भय होता है ऐसा न हो कि मुझ अनुचित कर्म्मकारी को आप शाप से भस्म कर देवें। इसके बाद नारद समझा के चले गये। पुनः अत्रिजी आये और पूर्ववत् ही कहा।

यह आख्यान वा सम्वाद सूचित करता है कि मृतकश्राद्ध आधुनिक है वेदविहित नहीं है, और किस प्रकार से चला यह भी दिखलाता है। यह एक स्वाभाविक बात है कि प्रियपुत्र के मरने पर बड़ा शोक होता है। लोक विक्षिप्त होके बारम्बार लड़के के

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

बिछोने को दोड़ २ के देखते हैं कि कहीं से वह आतो नहीं गया इधर उधर ताकते हैं कि कहीं से लड़का आजाय । उस के नाम पर अज्ञानीजन वैसे ही भोजन आदि पदार्थ रखते हैं । रात में समझते हैं कि मेरे ही निकट वह सोता हुआ है । इत्यादि दशा मनुष्यों की स्वाभाविक है । इसी दशा को प्राप्त हो निमि ने भी सब कर्म्म किया यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं । यहां विचारने की बात यह है कि यदि यह मृतक-श्राद्ध वेदविहित होता तो निमि को भय नहीं होता और " अकृतं मुनिभिः पूर्वं किं मयेदमनुष्ठितम् । न च श्रुतं मया पूर्वं न देवैर्ऋषिभिः कृतम् " इत्यादि वाक्य नहीं कहते मालूम होता है कि निमि के समय में यह श्राद्ध नहीं होता था । और निमि के विषय में भी कहा गया है कि वह भी ऋषि अर्थात् वेदवित् था । यदि वेदविहित होता तो स्वयं कहता कि मैं वेदविहित ही कर्म्म कर रहा हूं इस में चिन्ता की कोई बात नहीं । यदि कहो कि अत्रि ने आके कहा कि-" मा तेऽभूद् भीः पूर्वदृष्टो धर्म्मोऽयं ब्रह्मणास्वयम् " महाभारत । इस कर्म्म को स्वयं ब्रह्मा ने ही देखा है तू मत डर इससे सिद्ध है कि अनादिकाल से चला आता है । समाधान । यह तो पुराणों की शैली है कि एक न एक आख्यायिका रच प्रत्येक कर्म्म को अनादित्व सिद्ध कर देते हैं । इसी शैली के अनुसरण करते हुए झट नारद को भी यहां ले आए । मैं पूछता हूं कि यदि यह अनादिकाल से चला आता रहता तो निमि को 'धर्म्मसंकट' का भय क्यों होता । और " किसी ने नहीं किया है " ऐसा क्यों कहते इससे सिद्ध है कि निमि के समय से यह चला है ।

एक बात यह भी ध्यान देने की है कि इस निमि ने द्वादशाह श्राद्ध नहीं किया किन्तु अमावास्या तिथि को ब्राह्मणों को बुलाके प्रथम भोजन दिया । पश्चात् पुत्रस्नेह से पुत्र के नाम पर भी पिण्ड रख दिया । आपको स्मरण है कि जीवित पितृयज्ञ के लिये पहले से ही अमावास्या तिथि प्रसिद्ध थी दर्शपौर्णमासयज्ञ सर्वत्र प्रसिद्ध ही है । इस से भी सिद्ध है कि प्रथम इस ने जीवित श्राद्ध किया पश्चात् विक्षिप्त चित्त से पुत्र को भी पिण्ड देदिया । युधिष्ठिर के सम्वाद से यह नहीं समझना कि उस समय में भी मृतकश्राद्ध था । राजाओं के नाम पर एक प्रसंग चलाने के लिये ऐसी २ आख्यायिका

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गढ़ली जाती है । अतः इस की बात के ऊपर ध्यान रख अन्यान्य को कल्पित मानना चाहिये । इसको विदेशियों से लोगों ने नकल किया है इस में अन्यान्य भी प्रमाण हैं ।

श्राद्ध और बैल को दागना ।

बैल को खूब तप्त लोहे से दागने की भी एक विधि श्राद्ध में आती है । "कर्म्मकारमाहूय वृषभं दक्षिणपार्श्वे त्रिशूलेन वामपार्श्वे चक्रेण व्यत्ययेन चाङ्कयेत् । ततो वृषभस्य दक्षिणकर्णे । ओं पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथोपिता महतां गर्गाणाम् इत्यादि " कर्म्मकार को बुला के दक्षिण पार्श्व में त्रिशूल से और वामपार्श्व में चक्र से वृषभ को दागे । पश्चात् वृषभ के दक्षिणकान में " पिता वत्सानाम् " इत्यादि मन्त्र पढ़े । यद्यपि आजकल बैल का दागना सम्पूर्ण भारतवर्ष में प्रसिद्ध है तथापि बंगाल हाते में इस की अधिकता है । एक साधारण वा लघुवयस्क के मरने पर भी बैल दागा जाता है इस कर्म्म का नाम वृषोत्सर्ग है । लोग समझते हैं कि यदि बैल न दागा जायगा तो प्रेत की सद्गति नहीं होगी । दागने के समय में बैल जितना जोर से चिल्लायगा उतना ही शीघ्र वह मृतपुरुष स्वर्ग को जायगा इत्यादि । यह विधि क्यों चली इसका भी कारण वे ही चीनी हैं चीनीलोग मांस खाने में सब से बढे हुए हैं । कुत्ते के मांस तक को बड़े प्रेम से बड़े २ आदमी खाते हैं । ये लोग गयाजी में वृषभादिक के मांस से श्राद्ध करते थे इसी की देखा देखी यहां के लोग भी वैसा ही करने लगे । मधुपर्क आदि क्रिया में भी यहां के लोग उस समय से गोहत्या करने लग पड़े थे । इसी हेतु जहां तहां गोहत्या की चर्चा पाई जाती है । क्योंकि बौद्धों की प्रबलता के कारण सब प्राचीन ग्रन्थों में वेदों को छोड़ बहुतसी बातें मिलाई गई है । यदि कहो कि अहिंसा परमोधर्म्मः यह बौद्धों का परम माननीय सिद्धान्त था । यह मन्तव्य था इस में सन्देह नहीं परन्तु इस को सबों ने स्वीकार नहीं किया, चीन, जापान, तिब्बत और लङ्कावासी बौद्ध इस के साक्षी हैं । अतः प्रथम यहां के लोग भी चीनियों की देखा देखी से श्राद्धादिक कर्म्मों में बैल मारते थे । आगे मंत्रार्थ करते हुए दिखलाऊंगा कि यहां के सायण आदिक भाष्यकारों ने कैसा अत्याचार किया है परन्तु पुनः वैदिकधर्म्म स्थापित और बौद्धधर्म्म पतित होने पर बैल को मारना तो बन्द कर दिया गया परन्तु उस के स्थान में दागना रह गया है

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

अभी तक विद्यमान है बैल के दागने की चर्चा मनुस्मृति में भी नहीं है। यह महा घोर कर्म्म आर्य्य सन्तान से कदापि नहीं हो सकता है। कैसी अज्ञानता की बात देश में चली हुई है। यह क्रूरकर्म्म सूचित करता है कि यह मृतकश्राद्ध विदेशियों से लिया गया है। अब जो इस समय मन्त्र पढते हैं उस का व्याख्यान कर देते हैं आप लोग विचारें कि दागने या मारने का कोई चिन्ह इस में पाया जाता है।

पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथोपिता महतां गर्गराणाम्।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृततद्वस्यरेतः। अथर्व।६।४

यह वृषभ का वर्णन है (वत्सानाम्+पिता) वृषभ वत्सों का पिता अर्थात् जनक है। (अघ्न्यानाम्+पतिः) गौओं का पति है (अथो) और (महताम्+गर्गराणाम्+ पिता) बड़े २ वृषभों का भी पिता है इसी के कारण (वत्सः+जरायु+प्रतिधुक्) बच्चा गरम दूध पीता है (अस्य+उ+तत्+रेतः) इसी का बीज, मानो (पीयूषः) दुग्ध रूप अमृत (आमिक्षा+घृतम्) आमिक्षा और घृत है।

यही इस का शब्दार्थ है इस में न तो दागने और न मारने का कोई चिन्ह देखते हैं। इस सूक्त में २४ ऋचाएं हैं वे सब हीं गौ और वृषभ की प्रशंसा करती हैं। परन्तु इस सूक्त के विनियोग में लोगों ने क्या २ लिखा है दो एक बात सुनाता हूं। ब्राह्मणो वृषभं हत्वा भिन्न भिन्न देवताभ्यो जुहोति तत्र वृषभस्य प्रशंसा तदङ्गानां च कतमानि कतमदेवतेभ्यः प्रियाणि भवन्ति तद्विवेचनम् ॥..... ...साम्प्रदायिकास्तु एवं विनियुञ्जन्ति सूक्तम्। वृषोत्सर्गे "साहस्र" इत्यर्थसूक्तेन वृषभं सम्पात्य अभिमन्त्र्य विसृजेत्। तथा अनेन सूक्तेन वशाविधानेन (कौ० ८-८) "ऋषभेण इन्द्रं यजते" इत्यादि। इसी कारण मैं कहता हूं कि यहां के लोग चीनी की देखा देखी से गोहत्या में प्रवृत्त हो गए थे। उपर के बचन से भी दो मत देखते हैं एक तो कहते हैं कि वृष को मारना चाहिये और दूसर कहते हैं कि बैल को नीचे गिरा मन्त्र पढ छोड़ देना चाहिये। जैसा कि आज कल श्राद्धस्थल में करते हैं। साथ ही पटक कर दाग भी देते हैं। मैं प्रथम पक्ष को तो अत्यन्त बुरा समझता हूं द्वितीय पक्ष को अनुचित और

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

वेदविरुद्ध होने से अकर्तव्य समझता हूं। मांस भक्ष्याभक्ष्य निर्णय में इस सूक्त का अर्थ देखना।

बैल का विवाह ॥

श्राद्ध विवेकादिक ग्रन्थों में लिखा है और मिथिला बंगादि देशों में अभी तक प्रचलित भी है कि श्राद्ध में गौ और बैल का विवाह भी करवावे। "गोविवाहोऽथवा कार्य्यो माघ्यां वै फाल्गुने पि वा। चतस्रो वत्सिका भद्रा द्वौ वा संभवतोपि वा। वत्सः सर्वाङ्गसम्पूर्णः कन्या सा वत्सिका भवेत्। विवाहमेकवत्सेन नीलेन भवते सदा। वृषभेणाश्वमेधस्य यागस्य फलदायकम्।" यह विधि भी सूचित करती है कि अपण्डितजनों का मृतक श्राद्ध चलाया हुआ है। पूछना चाहिये कि किस मन्त्रों से यह पशुविवाह होगा। शोक की बात है कि इस पवित्र ऋषिभूमि में ऐसी २ अज्ञानता भरी हुई है॥

सोलहवां प्रश्न का समाधान ॥

दशगात्र पिण्ड

शिरस्त्वाद्येन पिण्डेन प्रेतस्य क्रियते सदा। द्वितीयेन तु कर्णाक्षि नासिकाश्च समासतः गलांसभुजवक्षांसि तृतीयेन यथाक्रमम्। चतुर्थेन तु पिण्डेन नाभिलिङ्गगुदानिच॥ जानुजंघे तथा पादौ पञ्चमेन तु सर्वदा। सर्वमर्म्माणि षष्ठेन सप्तेनतुनाडयः। दन्तलोमान्यष्टमेन वीर्य्यं तु नवमेन च। दशमेन तु पूर्णत्वतृप्तताक्षुद्विपर्य्ययः॥ इत्यादि॥

दाह क्रिया के अनन्तर दश दिन तक दश पिण्ड दिए जाते हैं। उस से समझते हैं कि प्रेत का शरीर बनता है। प्रथम पिण्ड से शिर, द्वितीय से कर्ण, नेत्र और नासिका, तृतीय से गला स्कन्ध, भुज और वक्षस्थल, चतुर्थ से नाभि लिङ्ग और गुदा, पञ्चम से जानु जंघा पैर, षष्ठ से सब मर्मस्थान, सप्तम से सब नाड़ियां, अष्टम से दन्तलोम, नवम से वीर्य्य और दशम पिण्ड से क्षुधा पिपासा आदि तैयार होते हैं। यह भी बालक्रीड़ा समान है। इस की भी चर्चा मन्वादि धर्म्मशास्त्र में भी नहीं है। प्रथम तो इस में प्रश्न होता है कि प्रेत का शरीर किस जन्तु का और कहां पर बनता है। यदि लिङ्ग शरीर, बनता है तो लिङ्ग शरीर आकल्पान्तःस्थायी है न वह बनता न घटता न जलता न सरता सर्वदा समान ही रहता यह सर्वसिद्धान्त है। अब रह

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

गया मनुष्यादि शरीर, सो किस स्थान पर बनता है। मान भी लिया जाय कि कहीं बनता है तो बालक शरीरवत् एकादशाह द्वादशाह आदि तिथियों में कम से कम पुत्र को तो दृष्टिगोचर होना चाहिये। ईश्वर के निमय से तो मनुष्य शरीर प्रायः दश मास में पुष्ट होता और आप के नियम से दश ही दिनों में पुष्ट हो जाता है यह आश्चर्य है। इसी कारण अज्ञानी जन पीपल वा बट आदि स्थानों में एक पात्र लटका देते हैं कि इसी में शरीर बनेगा। भाइयो ! सोचो तो स्थूल शरीर यदि बनेगा तो अवश्य दीखना चाहिये। ये सब विधि सूचित करती है कि परम विद्वान्, वेद तत्त्वविद् ऋषियों का चलाया हुआ यह मृतक श्राद्धतत्त्व कर्म नहीं।

मृतकाऽऽशौच और केशच्छेदन ॥

यह भी एक अज्ञानता की बात देश में चल पड़ी। वेदों में तो कहीं भी इसकी आज्ञा है ही नहीं किन्तु सर्वधर्म्मशास्त्र शिरोमणि मनु धर्मशास्त्र में भी विधि नहीं। केश के ऊपर पवित्रता अथवा अपवित्रता निर्भर नहीं। यदि ऐसा होतो स्त्रियां बिचारीं सर्वदा अपवित्र ही मानी जायँ। ब्रह्मचारी भी सदा अशुद्ध माने जायँ क्योंकि इन्हें भी केशी रहने की आज्ञा कहीं २ पाई जाती है अर्थात् चाहें तो केश करावें चाहें रखावें "क्षुरकृत्यं वर्जय" क्षौर मत करा यह आदेश ब्रह्मचारियों को दिया जाता है। पंजाबी 'सिक्ख' हिन्दू होने पर भी केश वपन नहीं करवाते बल्कि वैसा करना पाप मानते हैं। दशरथ की मृत्यु पर न तो अयोध्यावासियों ने और न श्री रामचन्द्र वा भरत आदिकों ने केश मुड़वाया। एवं महाभारत में भी युद्धसमाप्ति के अनन्तर पांचों पाण्डवों को केशवपन करवाते हुए नहीं देखते हैं। मैं यहां ग्रन्थ बढ़ाना नहीं चाहता परन्तु विचारशील पुरुषों से कथन है कि ऐसी २ अज्ञानता की बातें देश से उठा देनी चाहिये ॥

पितर और मांस भोजन ॥

मैंने पूर्व में अनेक मन्त्र उद्धृत किये हैं किसी मन्त्र में पितरों के साथ मांस की चर्चा नहीं आई है। प्रत्युत वेद में देवयज्ञ और पितृयज्ञ दोनों के लिये मांस का निषेध है। यथाः—

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्ञो गच्छतु रिप्रवाहः ।
इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन् ॥ १०।१६

(क्रव्यादम्, अग्निम्, दूरम्, प्रहिणोमि) ईश्वर कहता है कि ऐ मनुष्यो ! क्रव्याद् अर्थात् मांसभक्षक अग्नि को तुम्हारे गृह से मैं दूर करता हूं (रिप्रवाहः, यमराज्ञः, गच्छतु) वह पापवाहक अग्नि (यमराज्ञः) मेरे अन्य स्थान में जाय (इह) तुम्हारे गृह में (अयम्, इतरः, जातवेदाः, एव) यह दूसरा अग्नि जो क्रव्याद् नहीं है वही (प्रजानन्) सबों से विज्ञायमान हो के (देवेभ्यः) वायु आदि देवों को (हव्यम्, वहतु) हव्य पहुंचावे । (यमराज्ञः) यम=ईश्वर वही राजा है जिन प्रदेशों का वह "यमराजा" यह बात प्रसिद्ध है कि अग्नि सर्वभक्षी है । मुरदा जलाते हुए मानो मांस भी खाता है । परन्तु ईश्वर यहां कहते हैं तेरे गृह में मांस न पके जिससे कि गृह्य अग्नि क्रव्याद् न बन जाय । अक्रव्याद् अग्नि ही देवों को हव्य पहुंचावे । इससे देवयज्ञ में मांस निषेध सिद्ध हुआ अब आगे पितृयज्ञ के लिये निषेध करते हैं । यथाः—

यो अग्निः क्रव्यात् प्रविवेश वो गृहमिमं पश्यन्नितरं जातवेदसम् ।
तं हरामि पितृयज्ञाय देवं सधर्म्ममिन्वात् परमे सधस्थे ॥ १०।१६

(वः, गृहम्) तुम गृहस्थियों के गृह में (यः, क्रव्यात्, अग्निः, प्रविवेश) जो मांसभक्षक अग्नि प्रविष्ट हुआ है (तम्, देवम्, पितृयज्ञाय) उस मांसभक्षी अग्निदेव को पितृयज्ञ के निमित्त तुम्हारे गृह से (हरामि) दूर करता हूं (इतरम्, जातवेदसम्, पश्यन्) दूसरे अग्नि को तुम्हारे गृह में देखता हुआ मैं प्रसन्न होता हूं (सः) वह शुद्ध अग्नि (परमे, सधस्थे) उत्कृष्ट स्थान में स्थापित होके (धर्म्मम्, इन्वात्) यज्ञ को प्राप्त करे ।

यहां पर विस्पष्टरूप से वर्णन है कि पितृयज्ञ के लिये क्रव्याद् अग्नि की आवश्यकता नहीं । अब आप समझ सकते हैं कि पितृयज्ञ में मांस का निषेध किया या नहीं । यदि पितृयज्ञ में पितरों के उद्देश से मांस पकेगा तो वह अग्नि अवश्य 'क्रव्याद्' कहलावेगा । परन्तु ईश्वर कहता है कि पितृयज्ञ के लिये उस अग्नि को दूर करता हूं ।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तेरे गृह में दूसरे अग्नि को देखना चाहता हूं। इत्यादि। अब बहुत लिखने की आवश्यकता नहीं। इस कारण पितृयज्ञ में जहां २ मांस का विधान है वह वेदविरुद्ध होने से सर्वथा त्याज्य है। अतः

"यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा। मधुपर्के च यज्ञे च"। "एष्वर्थेषु पशून् हिंसन्" "इत्यादि पञ्चमाध्याय के श्लोक और "द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन" "षण्मासां श्छागमांसेन" इत्यादि तृतीयाध्याय के श्लोक एवं "मासद्वयं मत्स्यैः" ८। "मासत्रयं हारिणेन मृगमांसेन" । ९ । "चतुरः शाकुनेन । १० । पञ्च रौरवेण । ११ । षट् छागेन । १२ । सप्त कौर्म्मेण । १३ । अष्टौ वाराहेण । १४ । नव मेषमांसेन । १५ । दश माहिषेण। १६ । एकादश पार्षतेन"।१७। इत्यादि गोभिलीय–श्राद्धकल्पसूत्र वेदविरुद्ध हैं अतः सर्वथा त्याज्य हैं। पुनः मनुजी कहते हैं कि "मांसविक्रयिणस्तथा"२–१५२ मांस वेचनेवालों को श्राद्ध में नहीं बुलाना चाहिये "बड़ा आश्चर्य्य होता है कि जब मांसविक्रेता से भी मनुजी घृणा करते हैं तब कब संभव है कि मांसभक्षण का विधान स्वयं करें पुनः" अक्रोधनाः शौचपराः सततं ब्रह्मचारिणः। न्यस्तशस्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदेवताः। २–१९२ । पितृगण क्रोधरहित, बाह्याभ्यन्तर–शौचयुक्त, सदा ब्रह्मचारी, शस्त्ररहित, महाभाग और परमदेव हैं। जब मनुजी पितरों को सदा ब्रह्मचारी बताते हैं तो क्या ब्रह्मचारियों के लिये मांस का कहीं भी विधान है। इत्यादि मनु के ही वचनों से सिद्ध होता है कि मनु को भी पितृयज्ञ में मांस अभीष्ट नहीं है अतएव ये सब श्लोक सर्वत्र पीछे से मिलाये गये हैं।

पुनरपि आप विचारें कि यह पितृयज्ञ वानप्रस्थाश्रमी परमवृद्ध पुरुषों के लिये है। जिन्होंने अब संसार के सकल व्यसनों को त्याग दिया है। तपस्या कर रहे हैं हिंसा से सर्वथा निवृत्त होगये हैं। इसी हेतु मनुजी इन को "न्यस्तशस्त्र" कहते हैं। ऐसे पुरुषों के भोजनार्थ मांस की विधि कैसे हो सकती है। पुनरपि मनु स्वयं विधान करते हैं कि "संत्यज्य ग्राम्यमाहारम्" वनी पुरुष (वानप्रस्थाश्रमी) ग्राम्य आहार को भी त्याग दे "मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यैः" मुन्यन्न अर्थात् नीवारादिकों से महापञ्चयज्ञ करे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

"वर्जयेम् मधु मांसं च" मधु मांस को त्याग दे। संन्यासियों के लिये तो इससे भी बढ़के नियम हैं। वह मनुष्य संन्यासाश्रम में आके परम शुद्ध हो मांसादि त्याग तपस्या करता हुआ प्राण त्यागता है। अब प्राण त्यागने के बाद उसी संन्यासी आत्मा के लिये आप मांस देते हैं। यह कैसी उलटी बात है। कुछ दोष देखके ही बनी और संन्यासी के लिये मांस का निषेध किया होगा। अब वह आत्मा आगे चल के गिरेगा या बढ़ेगा। निःसन्देह ऐसे तपस्वी आत्मा की दिन २ वृद्धि होगी। जब आप बनी के लिये ही मांस निषेध करते हैं तो ऐसे के लिये कब विधि हो सकती है। अतः मन्वभीष्ट भी मांस विधि नहीं। मांसभक्षण और यज्ञ में पशु हिंसा के बारे में एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मैं लिखूंगा क्योंकि इस को लोगों ने बहुत बढ़ा रक्खा है। अतः यहां इस को विस्तार नहीं करते। यहां इस पर ध्यान रक्खें कि पितृयज्ञ में क्रव्याद् अग्नि को ईश्वर पसन्द नहीं करता है। इति।

१४ चौदहवां प्रश्न।

तर्पण

आजकल पितरों को जल देना ही पितृतर्पण क्यों कहाता है ?

इस का कारण केवल सोमरस है। हम पूर्व में कह आये हैं कि जीवत् पितरों को **सोमरस** खूब पिलाया जाता था और उन वृद्ध पितरों के षड्रस भोजन और पदार्थों से अच्छे २ रस निकाल कर दिया करते थे। जब सोमलता और पितृयज्ञ भूल गए तब केवल पानी से ही सत्कार करने लगे क्योंकि पानी का भी नाम 'रस' है "मेघपुष्पं घनरसः" अमर।

मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत। चक्षुर्मे तर्पयत श्रोत्रं मे तर्पयत आत्मानं मे तर्पयत प्रजां मे तर्पयत पशून् मे तर्पयत गणान् मे तर्पयत गणा मे मा वितृषन्। यजु०

"मेरे मन को तृप्त करो एवं मेरी वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा, प्रजा, पशु और गणों को तृप्त करो। मेरे गण वितृप्त न होवें" यहां देखते हैं कि तर्पण शब्द

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

का जल देना अर्थ नहीं है यदि मान भी लिया जाय कि जल का ही यह वर्णन है उसी से कहा जाता है कि हे जल ! आप मेरे मन आदि को तृप्त करें । फिर इस से मृतक-तर्पण सिद्ध नहीं हुआ । यहां जीता जागता यजमान कहता है कि हे जल ! मेरे मन आदि को तृप्त करें । फिर तर्पण-शब्दार्थ मृतक में कैसे घटाया जाता है । एवं " निम्राभ्यास्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा " य० ६ । ३० । यहां पर भी जीता हुआ यजमान ही कहता है । यदि कहो कि " ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पथः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन् " यहां मृतपितरों को ही तृप्त करने के लिये जल देवता से प्रार्थना है ? तो यह कथन समुचित नहीं । जैसे " निम्राभ्यास्थ देवश्रुतस्तर्पयत मा " ६ । ३० । यह मन्त्र जीवित परक है वैसे ही " ऊर्जं वहन्तीं " यह भी जीवितपरक है इस में मृतक का कौनसा चिन्ह पाते हैं एवं " शन्नो देवीरभिष्टये " " आपोहिष्ठा मयोभुवः " इत्यादि अनेक मन्त्र जल-वर्णन परक हैं । क्या ये सब मृतक में घटते हैं । ' ऊर्जं वहन्तीः ' का अर्थ पीछे लिख आया हूं । अन्न, पानी, वस्त्र आदि पदार्थों से वृद्ध-पितरों को सर्वदा तृप्त रखना चाहिये यह यहां तर्पण शब्दार्थ है । मृतपितरों के नाम पर पानी देना सर्वथा वेदविरुद्ध है । " आम्राश्च सिक्ताः पितरश्च तृप्ताः " इत्यादि जो कहा है वहां पितृशब्दार्थ ऋतु है । आम्रवृक्ष वसन्तऋतु में मंजरी संयुक्त होता है । सो जितना ही आम्रसिक्त होगा उतना ही वसन्त में अपनी मंजरी की सुगन्धि से वसन्तऋतु-स्वरूप पितर को तृप्त करेगा क्योंकि जलसेक से आम्रवृक्ष अधिक मंजरी देता है ।

तिलों का इतना माहात्म्य क्यों ? जब कोई मरता है तब उस के सम्बन्धी उस के नाम पर तिलाञ्जलि देते हैं और प्रायः पितृकर्म में तिल का व्यवहार अधिक करते हैं । इस का भी क्या कारण है ? निर्मूल कोई व्यवहार नहीं चला परन्तु हम लोग इस पर ध्यान नहीं देते इस हेतु मूल का पता नहीं लगता । इस के अनेक हेतु थे । तिल प्रायः कृष्णवर्ण का होता है और इस से तेल भी निकाला जाता है संस्कृत में 'तैल' शब्द तिल से ही सम्बन्ध रखता है संस्कृत भाषा में तैल को स्नेह भी कहते हैं "यत्किञ्चित्स्नेह-संयुक्तं भक्ष्यं भोज्यमगर्हितम् । मनु । " प्रदीपः स्नेहमादत्ते दशयाऽभ्यन्तरस्थया " मोघ "स्नेहो जलेऽणौ नित्योऽयमनित्योऽवयविन्यसौ । तैलान्तरे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

तत्प्रकर्षाद्दहनस्यानुकूलता " इत्यादि प्रयोगों में स्नेह नाम तेल का है परन्तु 'स्नेह' नाम प्रेम का भी है इन ही दो बातों पर ध्यान रख के विचारें कि तिलाञ्जलि का क्या आशय था। जब कोई वृद्ध अथवा देशहितैषी पुरुष मरता था तब बहुत से तिल दो अभिप्रायों से बांटे जाते थे एक तो शोक प्रकाशित करने के लिये क्योंकि अपने यहां कृष्ण पदार्थ शोकसूचक माना गया है। अब तक अंगरेज शोकावस्था में काला कपड़ा बांधते हैं। और दूसरा जैसे तिल स्नेह को धारण करता है वैसे ही आप लोग भी स्नेह अर्थात् प्रेम को धारण करें अर्थात् हम लोगों में से जो एक वृद्ध वा महान् पुरुष प्रस्थान कर गया है उस के चरित्र उस के विविध 'कृत' से सदा स्नेह रक्खें अर्थात् उस के 'कृत' की रक्षा के लिये हम जीवत्पुरुष सदा तत्पर रहें हम लोगों की भलाई के लिये वह जो कुछ कर गया उस के कृतज्ञ हम बने रहें। ये ही दो मुख्य भाव थे। और भी । रक्षक और वानप्रस्थाश्रमी दोनों प्रकार के पितृगणों को रात्रि में प्रकाश के लिये तेल की बड़ी आवश्यकता थी, प्राचीनकाल में तिलों से ही बहुधा तेल निकाला जाता था अतः पितृगणों को तिल बहुत दिया जाता था।

तिल-रक्षोघ्न-तिल को पापघ्न, रक्षोघ्न, असुरघ्न इत्यादि नाम देते हैं और यजुर्वेद के " अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः " २—२९ "अर्थात् यज्ञ—वेदी पर से असुर और राक्षस निकल जांय " इस मन्त्र को पढ़ कर आजकल यज्ञशाला में वा कर्म्मस्थान में तिल छींट देते हैं परन्तु तिल से और इस मन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं है। तिल को रक्षोघ्न क्यों कहते हैं और क्यों तिल छींटते हैं अब इस का भाव समझना कठिन नहीं। अभी हम ने कहा है कि पूर्व समय में तेल इसी से निकाला जाता था। रात्रि में क्या बन क्या ग्राम में इस का तेल जलाया करते थे अब प्रकाश से कितने राक्षसों का हनन होसकता है इस को सोचिये प्रथम अन्धकार रूप महाराक्षस इस से नष्ट होता है। रात्रि में हिंसक जन्तु प्रकाश रहने पर आक्रमण नहीं कर सकते हैं। चोर, डाकू रात्रिंचर आदि दुष्ट पुरुष चोरी करने का साहस नहीं कर सकते हैं इत्यादि अनेक विध राक्षसों का हनन करनेवाला तिल है इसी कारण तेल का विक्रय भी निषेध और इस के दान का बड़ा माहात्म्य कहा है। चूंकि बनी पितरों को बन में रहने के कारण

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

और रक्षक पितरों को रात्रि में रक्षा के कारण तेल की अधिक आवश्यकता थी अतः पितृ-कर्म्म में इस का बहुत व्यवहार था। इस प्रकार तिलाञ्जलि और पितृ-कर्म्म में तिल प्रदान भी जीवत्पितृश्राद्ध सिद्ध करता है। जब धीरे २ मृतकश्राद्ध चलपड़ा तो जो जो पदार्थ जीवितों के लिये दिये जाते थे मृतकों को भी वहीं देने लगे और यथार्थ भाव को न समझ के इस के प्रयोग भी उलटा पुलटा करने लगे। इति।

ईश्वर के नियम क्या हैं!

यह मृतकश्राद्ध ईश्वरके नियम से भी विरुद्ध है। ईश्वरका नियम है कि जो जैसा कर्म्म करेगा वैसा वह फल पावेगा। परन्तु श्राद्ध में यह नियम भग्न होजाता है क्योंकि पुत्र कर्म्म करता है पिता फल पाता है। और भी। यदि श्राद्ध करने से किसी की सद्-गति हो तो कृतहानि और अकृताभ्यागम दोष प्राप्त होगा। मानो, कि, एक महाराज वा साहूकार बड़ा पापी है वह मर गया। इस का पुत्र लाखों रुपयों की सामग्री से श्राद्ध करता है। यदि इस श्राद्ध के फल से उस राजा को सद्गति होवे तो बड़ा अन्याय होगा क्योंकि उस ने जो जो पाप किए उन के बदले में उसे कुछ दण्ड नहीं मिला और जो कर्म्म उस ने नहीं किये थे उन कर्म्मों के फल मिलगए। इसी प्रकार, मानो, कि, एक तपस्वी वेदवित् स्वधर्म्मनिरत सर्वथा शुद्ध पुरुष है परन्तु वह महादरिद्र है। वह मर गया। इस का पुत्र निर्धन होने के कारण श्राद्ध नहीं करता है। अब विचारने की बात है कि क्या इस शुद्ध पुरुष को सद्गति मिलेगी या नहीं? यदि कहो कि श्राद्ध नहीं होने के कारण उसे सद्गति नहीं मिलेगी तो यह अन्याय है क्योंकि उस ने जो शुभ कर्म्म किये उन के फल उसे नहीं मिले और जो कर्म्म नहीं किये उनके फल नरकादि गमन उसे मिल गए। यह अन्याय है। इसी दोष का नाम शास्त्रों में कृतहानि और अकृताभ्यागम है। इस कारण यह मृतकश्राद्ध ईश्वरीय-नियम-विरुद्ध है। और इस हेतु श्राद्ध से किसी को मुक्ति वा सद्गति हो तो परिणाम यह होगा कि धनाढ्य पुरुष पाप से नहीं डरेगा। क्योंकि समझेगा कि अन्त में श्राद्ध के बल से मुझे अच्छी गति तो मिलनी ही है। और दरिद्र सर्वदा दुःख में रहेगा कितने ही शुभ कर्म्म करे उसे सद्गति नहीं मिलेगी क्योंकि इस का श्राद्ध नहीं होगा। भाव यह है कि धनिक

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पुरुष तो सर्वदा स्वर्गवासी और दरिद्र सर्वदा नरकवासी होगा। परन्तु यह ईश्वरीय नियम विरुद्ध बात है। अतः मृतकश्राद्ध सर्वथा वेद विरुद्ध है। पुनरपि विचारें कि यदि श्राद्ध से हीं लाभ हो तो सारे कर्म्म ही निरर्थक हो जांयगे अन्यान्य शुभ कर्म्मों की क्या आवश्यकता होगी "तू मत डर, पश्चात्ताप मतकर, तू पापी है तो क्या हर्ज है तेरा श्राद्ध अच्छे प्रकार करवा देवेंगे उस से तेरी अच्छी गति हो जायगी। तू क्यों शोक करता है, देख श्राद्ध से अमुक को मुक्ति मिल गई" इस प्रकार के उपदेश किसी सद्ग्रन्थ में नहीं पाये जाते। प्रत्युत "जैसा कर्म्म करेगा वैसा ही फल पावेगा, अतः शुभ कर्म्म करले" इसी प्रकार के उपदेश पाये जाते हैं। और भी। मरने के बाद यह जीव अनेक योनियों में चले जाते है फिर किस योनि के अनुसार पिण्ड दोगे। यदि कहो कि मन्त्र के बल से वही पिण्ड उस २ योनि में तदनुकूल हो जाता है अर्थात् सांप को विष होके देव को अमृतहोके पहुंचता है। तो यह कहना ठीक नहीं क्या वेदों में ऐसा कोई प्रमाण है ? नहीं। और प्रत्यक्ष में मन्त्र का कोई बल नहीं देखते। परीक्षा करके देखो, घर से बाहर गएहुए जीते को यदि तुम मन्त्र के बल से अन्न पहुंचा दो तो यह भी सत्य मान लेवेंगे। "मृतानामिह जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्ति-कारणम्। गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थंपाथेयकल्पना" और आप भी तो किसी के पितर होंगे फिर आप को अन्न क्यों नहीं पहुंचता है क्यों आप व्यर्थ परिश्रम करते हैं। देखिये, जो जीव जहां हैं ईश्वर ने उनके खाने पीने को वहां ही बन्दोवस्त कर रक्खा है, कर्म्मानुसार सब कोई फल पा रहे हैं। अतः यह मृतकश्राद्ध सर्वथा त्याज्य है।

शंका—"स्वधा पितृभ्यो पृथिवीषद्भ्यः। स्वधा पितृभ्योअन्तरिक्षसद्भ्यः। स्वधा पितृभ्यो दिविषद्भ्यः" इस अथर्व के प्रमाण से सिद्ध है कि मृत पुरुष का श्राद्ध होना चाहिये क्योंकि अन्तरिक्षस्थ और द्युलोकस्थ पितरोंको कैसे बुला सकते हैं ? समाधान। इन मन्त्रों में बुलाने की कोई बात नहीं है। वेद में यह विलक्षणता है कि प्रायः प्रत्येक वस्तु को तीनों स्थानों में माना है पृथिवी के पितर-माता, पिता आचार्य्य आदि अन्तरिक्ष के पितर-वायु, मेघ आदि द्युलोक के पितर-सूर्य्य-किरण आदि। ईश्वर से प्रार्थना है कि भगवन्! आप सब पदार्थों को यथावस्थित रक्खें, हमारे लिये सब सुख

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

दायी होवें । स्वधा शब्दार्थ स्वप्रकृति है यह कह आए हैं त्रिभुवनस्थ पदार्थ अपने २ स्वभावानुकूल रहें ऐसी प्रार्थना है । अथवा वसु, रुद्र, आदित्य ये तीनों क्रम से पिता, पितामह और प्रपितामह कहाते हैं । वसून् वदन्ति तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान् । प्रपितामहांस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी" दिविषद्=आदित्य । अन्तरिक्षसद्=रुद्र अर्थात् विद्युत् मेघ आदि । पृथिवीषद्=अग्नि, यह निरुक्त का सिद्धान्त है । हवन से ये सब शुद्ध रहते हैं । अतः प्रार्थना है कि अपने स्वभाव के अनुकूल सब पितर रहें । शङ्का—जो मुक्ति में भ्रमण कर रहे हैं अथवा किसी लोक में किसी रूप में हों उनको ये ही वसु, रुद्र, आदित्य तीनों देव पिण्ड पहुंचा दिया करेंगे । समाधान—नहीं ये तीनों जड़ हैं कैसे पहुंचावेंगे । यदि कहो कि इनके द्वारा पहुंच जायगा तो यह भी ठीक नहीं क्योंकि इनके द्वारा तो प्राणीमात्र को जो सुख पहुंचता है वह पहुंच रहा है आप के देने लेने से कोई विशेषता नहीं होगी । सूर्य न हो तो हमें गरमी और प्रकाश नहीं मिल सकते हैं वायु विना क्षणमात्र में मरजायँ पृथिवी विना निर्वाह ही कैसे । यदि कहो कि चन्द्रलोक से निवृत्त पितर मेघ, पृथिवी, ओषधि आदि में कुछ काल वास करते हुए जन्म लेते हैं । इनको इस अवस्था में हवनसामग्रीवत् पिण्ड पहुंचा सकते हैं । यह कथन भी ठीक नहीं हवनसामग्री भस्म होने से अतिसूक्ष्म होजाने के कारण वायु आदि में प्रविष्ट हो वायु आदि को शुद्ध करती है पिण्ड तो ज्यों का त्यों बना रहता है । एवं इसप्रकार आप के पितरों को ही पहुंचे यह कोई नियम नहीं । जब वायु सुगन्ध लेके चलता है तो सामान्यतया सब को वह गन्ध पहुंचता है फिर आप के पिण्ड देने में क्या विशेषता । शङ्का—"श्राद्धे शरदः । शारदिकं श्राद्धम् । श्राद्धमनेन भुक्तमिति-ठनौ श्राद्धी, श्राद्धिक०" इत्यादि पाणिनि महर्षि के प्रमाण से सिद्ध है कि शरद्ऋतु में अवश्य श्राद्ध करना चाहिये । समाधान । ठीक है । मैं यह कब कहता हूं कि श्राद्ध नहीं करना चाहिये । शरद्ऋतु में वृहत् श्राद्ध होना चाहिये यह मैं भी जोर शोर से कहता हूं झगड़ा तो जीते मुरदे के श्राद्ध का है । शङ्का—यदि जीते के लिये है तो शरद् में क्यों कहा । समाधान—यदि मुरदे के लिये है तो शरद् में क्यों कहा यह शङ्का दोनों में हो सकती है । इसका समाधान आप नहीं कर सकते हैं । परन्तु जीवत् पुरुषों का

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शरद् में क्यों श्राद्ध करना चाहिये इसके विषय में पीछे लिख चुका हूं। शरद् में बीमारी बहुत होती है इसी हेतु "जीवेम शरदः शतम्, शृणुयाम शरदः शतम्" इत्यादि प्रार्थना उक्त है इस कारण रक्षक पितरों की इस ऋतु में बड़ी आवश्यकता है और वर्षा के कारण बनी वृद्धपितरों की सेवा उचित रीति से नहीं होती इस ऋतु में नए नए अन्न भी हो जाते हैं अतः इस में विशेष श्राद्ध का विधान है। यह भी जीवित पुरुष का ही श्राद्ध सूचित करता है। मैंने अब बहुत कुछ निरूपण कर दिया है उसी को ही यदि कोई निष्पक्ष भाव से विचारेगा तो इसका तत्त्व विदित हो जायगा इस प्रकरण के अन्त में गया सम्बन्धी कुछ लेख दे समाप्त करता हूं॥

गयापिण्ड॥

त्वदर्थंतु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः। तत्कथं नैव मुक्तोसि ममाश्चर्यमिदं महत्॥ गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरस्त्विह। प्रेत उवाच। गया श्राद्ध शतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति। उपायमपरं किंचित्तद्विचारय साम्प्रतम्॥ भाग० महा०॥

गोकर्ण और धुन्धुकारी का यह संवाद है। धुन्धुकारी महापापी था मर के प्रेत हो गया। इससे गोकर्ण कहता है कि तेरे लिये विधानपूर्वक गया में पिण्ड दिये फिर तेरी मुक्ति क्यों नहीं हुई। यह बड़ा आश्चर्य मुझे लगता है। यदि गयाश्राद्ध से मुक्ति नहीं हुई तो दूसरा उपाय नहीं है। यह सुन प्रेत धुन्धुकारी कहता है कि सैकड़ों गयाश्राद्ध से भी मेरी मुक्ति नहीं हो सकती। दूसरा कोई उपाय विचारो। इस आख्यायिका का यही भाव है कि गया आदिकों में जो श्राद्ध किये जाते हैं वे निष्फल हैं और दूसरों के किये कर्म्म से दूसरों को कुछ लाभ नहीं पहुंचता। क्योंकि आगे माहात्म्य में कहा गया है कि इस प्रेत ने स्वयं जब भगवत् चरित्र श्रवण किया तब सब दुःखों से छूट मुक्त हुआ है। इति संक्षेपतः॥

परिशिष्ट॥

"पितृयज्ञ और श्राद्ध नाम"

प्राचीनग्रन्थों में इस का नाम 'पितृयज्ञ' शब्द मिलता है। उदाहरण के लिये

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पिछला ग्रन्थ देखिये वेद में यह शब्द पाया जाता है। "तं हरामि पितृयज्ञाय" ऋ० इत्यादि। पश्चात् 'श्राद्ध' इस का नाम इस कारण से होगया है कि यह कर्म्म श्रद्धा से ही हो सकता है। अथवा इस में श्रद्धा स्वतः उत्पन्न होती है। बड़े २ वृद्ध-पुरुषों को बुलाके सत्कार करने में कितनी श्रद्धा उत्पन्न होती है स्वयं इस को सब कोई अनुभव कर सकता है। जो पिता, माता, पितामह आदि अपने पुत्र पौत्रों को गोद में खिलाते थे। आज वे उन्हीं पुत्र-पौत्रों को बड़े आनन्द से सांसारिक व्यवहार में प्रवृत्त देख बड़े आनन्दित होते हैं। पूज्य मान्य पितरों को घर पर देख सन्तानों के हृदय में एक अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न होती है। इन से आशीर्वाद लेते हैं अपने बच्चों को आशीर्वाद दिलाते हैं। ऐसे वृद्ध कभी २ वन से गृह पर आते थे इस कारण और भी श्रद्धा बढ़ती जाती थी। अभी तक लोग प्रत्येक शुभकर्म्म में बड़ी श्रद्धा से प्रथम वृद्धों को खिलाते हैं। इसी को आभ्युदयिक वा वृद्धश्राद्ध कहते हैं। अथवा कोई भी वृद्ध हो किसी अवस्था में हो उसको देखके ही भद्रपुरुष के हृदय में एक अपूर्व श्रद्धा उत्पन्न होती है, इस कारण "चूडादिभ्य उपसंख्यानम्" इस वार्तिकद्वारा "श्रद्धा प्रयोजनमस्य इति श्राद्धम्" ऐसा कहा है। अब आगे अर्थ सहित कुछ वेदमन्त्र लिखे जाते हैं जो आजकल मृतकश्राद्ध कर्म्म में पढ़ते हैं।

वेद के कतिपय मन्त्र ॥

विश्वे देवास आगत शृणुताम इमं हवम्।
एतं बर्हिर्निषीदत। ऋ०। २। ४१। १३। यजु० ७। ३४।

अर्थ–(विश्वे+देवासः) हे सकल विद्वद्गण ! (आगत) मेरे यज्ञ में आप लोग आवें। और आके (मे+इमम्+हवम्) मेरे इस यज्ञिय आह्वान अर्थात् वाणी को (शृणुत) सुनें अर्थात् यदि मेरे भाषण में मेरे कर्म्म में कोई त्रुटि हो तो उसे सुधार दें। और (इदम्+बर्हिः+आ+निषीदत) इस पवित्र आसन पर बैठें। यहां मैं यह भी यथासाध्य दिखलाता जाऊंगा कि किस २ मन्त्र से आजकल क्या क्या करते हैं। "आवाहयेदनुज्ञातो विश्वे देवास इत्यृचा" याज्ञवल्क्यस्मृति। इस से विश्वे देवों को आवाहन करते हैं। हां, ठीक है, मैं भी समझता हूं कि ईश्वर आज्ञा देता है कि विद्वानों को बुलाके सत्कार करना चाहिये। इस से मृतकश्राद्ध सिद्ध नहीं।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शं यो रभि-स्रवन्तु नः । ऋ० १० । ९ । ४ । यजु० ३६ । १२ ।

(देवीः+आपः) ' आप्लृ व्याप्तौ ' वह सर्वत्र व्यापकदेव (नः) हमारे (अभिष्टये+पीतये) " पा रक्षणे " अभीष्ट और रक्षा के लिये (शम्+भवन्तु) सुखरूप होवें पुनः वह देव (नः) हमारे (शम्+योः) रोगों का शमन और भयों का यवन अर्थात् पृथक् करण इन दोनों की (अभिस्रवन्तु) वर्षा करे अर्थात् हमारे भय और रोग का नाश करे । अथवा (देवी+आपः) दीप्यमान जल (नः+अभिष्टये+पीतये) हमारे अभिषेक और पान के लिये (शम्+भवन्तु) सुखस्वरूप होवें (नः+शम्+योः+अभिस्रवन्तु) वह जल हमारे रोग का नाश करे और भय का भी । अच्छे जल के पान से रोग नाश होता है । रोग के न रहने से आदमी निर्भय रहता है अतः जल भयनाशक भी है । इस में जल और ईश्वर दोनों का वर्णन है । " शन्नो देव्या पयः क्षिप्त्वा यवोसीति यवांस्तथा " या० स्मृ० । इस से पानी छींटे । और " यवोसि " उस मन्त्र से जौ को । ऐसा याज्ञवल्क्य कहते हैं । छींटने से मृतपितरों को क्या लाभ ? आजकल अज्ञानी पुरुष इस से शनैश्चर ग्रह का जप करते हैं ।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा । सोमाय पितृमते स्वाहा । अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः । यजु० २ । २९ ।

कव्यवाहन अग्नि, पितृमान् सोम के लिये स्वाहा । और (वेदिषदः) वेदि पर बैठे हुए (असुराः+रक्षांसि+अपहताः) असुर और राक्षस अलग हो जायँ । अर्थात् दुष्ट पुरुषों को यज्ञ से पृथक् कर देना चाहिये । यह और " ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाः " (२–३०) " अत्र पितरो मादयध्वम् " (२–३१) " नमो वः पितरो रसाय " (२–३२) आधत्त पितरो गर्भम् (२–३३) और ऊर्जं वहन्तीः (२–३४) ये छत्तों मन्त्र पिण्ड पितृयज्ञ में पढ़े जाते हैं इन सबों का अर्थ पूर्व में कह आये हैं ।

नमो वः पितरो रसाय । नमो वः पितरः शोषाय । नमो वः पितरो जीवाय । नमो वः पितरः स्वधायै । नमो वः पि-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पा०-पाणिनि-कन्या-अनुसन्धान
नि०
(१५२)

तरो घोराय । नमो वः पितरो मन्यवे । नमो वः पितरः पितरो नमो वः । गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्म । एतद्वः पितरो वास आधत्तः । यजु० । २ । ३२ ।

(पितरः) हे जगद्रक्षकगण (वः) आप के (रसाय नमः) आनन्दपद रूपको नमस्कार (पितरः वः+शोषाय+नमः) हे पितरो ! आप के दुष्ट के शोषण करने वाले रूपको नमस्कार । (पितरः+वः+जीवाय+नमः) पितरो ! आप के जीवनप्रद रूपको नमस्कार (पितरः+वः+स्वधायैनमः) हे पितरो ! आप के स्वपोषणधारणकर्ता रूपको नमस्कार (पितरः+वः+घोराय+नमः) हे पितरो ! आप के घोरस्वरूप को नमस्कार । पितरः वः+मन्यवे नमः । हे पितरो आप के मन्यु अर्थात् क्रोध रूप को नमस्कार (पितरः पितरः वः+नमः) हे पितरो२ ! आप के सकल रूपको नमस्कार हो। (पितरः+गृहान्+नः+दत्त) हे पितरो ! हम लोगों को भार्य्या-पुत्र पौत्रादि रूप गृह दो (सतः+वः+पितरः) हे पितरो ! हमारी रक्षा के लिये आए हुए आपको भी (देष्म) हम लोग भी देवें । (पितरः+वः+ एतत्+वासः) हे पितरो ! यह वस्त्र आदि पदार्थ आप का ही है (आधत्त) उसको धारण पोषण करे ।

महीधर=" नमो व इत्यञ्जलिं करोति । षट् कृत्वो नमस्करोति । षड ऋतवः इति श्रुतेः । रसादिशब्देन वसन्तादिषड्ऋतव उच्यन्ते । ते च पितॄणां स्वरूपभूता अतस्तेभ्यो नमस्करोति ।" कहते हैं कि इस से पितरों को छः वार नमस्कार करना चाहिये । क्योंकि छवो ऋतु ही पितर हैं ऐसी श्रुति है । रसादि शब्द से वसन्तादि ऋतु का ग्रहण है । रस=वसन्त । क्योंकि मधु आदि रस इस में होते हैं शोष=ग्रीष्म=क्योंकि सब पदार्थ इस में सूखते हैं, जीव=वर्षा=क्योंकि जीवनप्रद वर्षा इस में होती है । स्वधा=शरद=क्योंकि प्रायः अन्न इस में होता है । घोर=हेमन्त=क्योंकि यह विषम ऋतु है । मन्यु=शिशिर=क्योंकि इस में अधिक जाड़ा पड़ने से मानो क्रोधस्वरूप है । इस प्रकार छवों शब्दों के छः ऋतु अर्थ करके पितरों को भी ऋतुस्वरूप मानते हैं । परन्तु यदि पितर ऋतुरूप हैं तो वस्त्रादिक पदार्थ किन को दिये जायंगे अतः यह मन्त्र

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

पितरों के स्वरूप बतलाता है । रक्षकों को अनेक रूप धारण करने पड़ते हैं दुष्टों के संहारार्थ घोररूप एवं शिष्टों के रक्षार्थ शान्त रूप । इत्यादि भाव जानना ।

"एतद्वः पितरो वासः आधत्त" इतना पढ़ के पिण्डों पर सूत रखते हैं।

ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन् लोके शतं समाः । य० १९-५६।

(जीवेषु , जीव=प्राणियों में (ये+मामकाः+जीवाः) जो मेरे सम्बन्धी जीवित पुत्र पौत्रादिक (समानाः समनसः) समान और समनस्क हैं तेषाम्+मयि) उन में और मुझ में । शतम्+समाः+अस्मिन्+लोके । सौ वर्ष तक इस लोक में (श्रीः+कल्पताम्) धन धान्य ऐश्वर्य्य प्राप्त हो " इत्यवशिष्टानामेकं यजमानः प्राश्नाति नवा " आपस्तम्बश्रौतसू०। इस को पढ़ के यजमान पिण्डों में से एक पिण्ड खाता है । ऐसा सब ही कहते हैं । परन्तु इस में भोजन की चर्चा नहीं ।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम् । यथेह पुरुषोऽसत् । यजुर्वेदः २-३६ ।

(पितरः) हे पितरो ! (गर्भम्+पुष्करस्रजम्+कुमारम्+आधत्त) गर्भ-स्वरूप अर्थात् लघुवयस्क पुष्पमालाविभूषित इस कुमार को धारण करो (यथा+इह+पुरुषः असत्) जिस से यहां यह अपने कुल परिवार के धारण पोषण योग्य पुरुष होवे । यह मन्त्र बतलाता है कि जब शिशु पढ़ने योग्य हो तो पितर अर्थात् आचार्य्यों को पढ़ाने के वास्ते सौंप देवे जिस से कि वह योग्य हो संसार के सकलकार्य्य क्षम होवे । परन्तु " इति तं पत्नी प्राश्नाति पुमांसं ह जानुका भवतीति विज्ञायते " आपस्तम्बश्रौतसूत्र (१–१०-१५) कहता है कि इस मन्त्र को पढ़ के पत्नी एक पिण्ड खाय उस से उस को पुत्र होगा।

वाजे वाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः । अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः । य०९।१८

(ऋतज्ञः) सत्य विद्या जानने हारे (अमृताः) अपने यश कीर्ति से नाशरहित " वसिष्ठादिक के समान" (वाजिनः) संग्राम के तत्त्व जानने वाले (विप्राः) ऐसे

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

जो विद्वान् राजपुरुष हैं वे (वाजे+वाजे+नः+अवत) जब जब संग्राम उपस्थित हो तब तब हम को प्राप्त होवें, एवम् (धनेषु) जहां २ धन हो वहां २ व रक्षा करें। इस प्रकार रक्षा करते हुए (अस्य+मधवः+पिबत) प्रजा-प्रदत्त इस पुरस्कार रूप मधु को पीवें (मादयध्वम्) पुष्ट हो प्रजाओं को आनन्दित करें और (तृप्ताः+देवयानैः पथिभिः+यात) तृप्त होके जिस मार्ग से विद्वान् लोग जाते हैं उसी मार्ग से चलें। अर्थात् अहङ्कार वा अभिमान में निमग्न हो के उत्तम मार्गों का त्याग न करें। "इति पित्रादिविसर्जनम्। शब्दकल्पद्रुमे। इस से पित्रादिकों " को विसर्जन करते हैं "बाजे बाजे इति प्रीतः पितृपूर्वं विसर्जनम्" याज्ञवल्क्यस्मृति ॥

आ मा वाजस्य प्रसवो जगम्या देमे द्यावापृथिवी विश्वरूपे। आमा गन्तां पितरा मातरा चा मा सोमो अमृतत्वेन गम्यात्। यजुः ॥

(वाजस्य+प्रसवः) ज्ञान का भण्डार (मा+आ+जगम्यात्) मुझे प्राप्त हो (इमे+विश्वरूपे+द्यावापृथिवी) ये विश्वरूप द्यावापृथिवी प्राप्त हों अर्थात् मुझे पृथिवी और द्युलोकस्थ सकल पदार्थ प्राप्त हों (पितरा+मातरा+च) और पिता माता (मा+आ+गन्ताम्) भी मुझे प्राप्त हो सोमः+च+अमृतत्वेन+मा+आ+गम्यात्) और सोम जो ईश्वर वह भी अमृतप्रद होके मुझे प्राप्त हो। "इति देवविसर्जनम्" शब्दकल्पद्रुमे।

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे।

(विष्णुः) यह व्यापक ब्रह्म (इदम्+विचक्रमे) इस सम्पूर्ण जगत् को विक्रान्त अर्थात् प्राप्त है (त्रेधा, पदम्, निदधे) हे मनुष्यो! इसने तीनों स्थानों में अपना स्थान रक्खा है परन्तु (पांसुरे) जैसे धूलि में कोई वस्तु ठीक नहीं दीखती है वैसे ही (अस्य) इसका स्थान (समूढम्) छिपा हुआ है। अथवा (विष्णुः) सूर्य अपने किरणों से इस भुवन में सर्वत्र फैल रहा है पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों स्थानों में यह अपने पद अर्थात् किरणों को निहित अर्थात् स्थापित करता है परन्तु (पांसुरे)

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

धूलि में पदार्थ के समान (अस्य) इस का भी तत्त्व (समूढम्) छिपा हुआ है। इसका व्याख्यान निरुक्त और त्रिदेवनिर्णय में विस्तार से किया हुआ है। इस से वामन अवतार भी सिद्ध करते हैं। इस सब का समाधान त्रिदेव में देखिये "कृत्वेदं विष्णुरित्यन्न द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्। या० स्मृ०। इस मन्त्र से ब्राह्मण के अंगुष्ठ को अन्न में लगा दे। क्या आश्चर्य है कहां इस का अर्थ और कहां अन्न में अंगुष्ठ रखवाना ॥

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा।
अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः। यजु०। २। २९ ॥

(कव्यवाहनाय+अग्नये+स्वाहा) कव्यवाहन अग्नि के लिये स्वाहा (पितृमते+सोमाय+स्वाहा) पितृमान् सोम के लिये स्वाहा (वेदिषदः) वेदि पर बैठनेवाले (असुरा+रक्षांसि) असुर और राक्षस अर्थात् अत्यन्त दुष्ट पुरुष (अपहताः) नष्ट होवें।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमाना असुराः सन्तः स्वधया चरन्ति।
परापुरोनिपुरो ये भरन्त्यग्निष्टान् लोकात् प्रणुदात्यस्मात्। य०२।३०

(असुराः+सन्त) असुर अर्थात् दुष्ट होने पर भी (ये+रूपाणि+प्रतिमुञ्चमानाः) जो पितृमान रूपों को धारण कर (स्वधया+चरन्ति) पितृसम्बन्धी चिन्ह के साथ (चरन्ति) विचरण करते हैं और जो (परा पुरः) उत्तम शरीर और (निपुरः) निकृष्ट शरीरों को (भरन्ति) धारण करते हैं (तान्) उनको (अस्मात्+लोकात्) इस लोक से (अग्निः) प्रकाशस्वरूप देव (प्रणुदाति) दूर प्रेरित करे। परा पुरः=पुर=पुरी ग्राम। शरीररूप ग्राम। परापुर=उत्कृष्ट शरीर, निपुर=निकृष्ट पुर।

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः जीवं व्रातं सचेमहि य०३।५५।

(पितरः) हे पितरो (नः) हमको आप की कृपा से (दैव्यः+जनः) देव पुरुष (पुनः+मनः+ददातु) फिर मन देवें। उस मन से सत्यानुष्ठान करके (जीवम्+व्रातम्) जीवनवाले पशु पुत्र पौत्रादिक गण की (सचेमहि) सेवा करें। सच=सेवायाम्।

मरणकालिकप्रार्थना ॥

अब अन्यान्य चार ऋचाएं आगे अर्थ सहित लिखते हैं, जो मरण समय की प्रार्थ-

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

ना है। इन ऋचाओं में भी आज कल के श्राद्ध का कोई भाव नहीं पाया जाता है ! केवल ईश्वर से प्रार्थना की जाती है कि वह तुम्हें उत्तम लोक में ले जाय, मुक्त पितरों के साथ मिलादे। जहां पुण्यात्मा पुरुष जाते हैं वहां तुम्हें भी वह देव पहुंचा दे। वह अभय और कल्याण देनेहारा है वह सब की दशा जानता है। वह सर्वत्र व्यापक है। वह तेरे मार्ग में परम सहायक होगा। तू चिन्ता मत कर तुझे सुखपूर्वक वह यहां से ले जायगा। तू अब स्थिर हो उसी में चित्त लगा। इत्यादि मनुष्य स्वभाव का क्या ही उत्तम वर्णन आता है। इन चारों के बारे में सायण लिखते हैं कि " दीक्षितमरणे पूषात्वेत इत्याद्याश्चतस्रः शंसनीयाः। सूत्रितञ्च पूषात्वेतश्च्यावयतु प्रविद्वानिति चतस्रः"॥ यदि कोई अग्निहोत्रादि युक्त पुरुष मरे तो "पूषात्वेतः" इत्यादि चार ऋचाएं पढ़ें। परन्तु मैं कहता हूं कि दीक्षित पुरुष के मरण के बाद पढ़ने से क्या लाभ, किन्तु मरण के समय में ये पढ़ी जायं और सब के लिये पढ़ी जायं।

पूषा त्वेत च्यावयतु प्रविद्वान नष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परिददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः॥
१० । १७ । ३ ॥

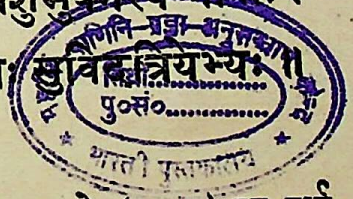

(पूषा) सब का पोषण करनेवाला ईश्वर (त्वा) तुम को (इतः) इस मर्त्य-लोक से (प्रच्यावयतु) प्रकृष्ट उत्तम लोक में लेजाय वह पूषा कैसा है (विद्वान्) निखिल जीवों के धर्म्माधर्म्म का परिज्ञाता, पुनः (अनष्टपशुः) जिन के निकट से ये जीव-रूप पशु कदापि नष्ट नहीं होते। सर्वत्र व्यापक होने से ईश्वरीय राज्य से कोई जीव छिप नहीं सकता, अतः कोई यह चाहे कि मैं बड़ा पापी हूं ईश्वर से छिप जाऊं अथवा भाग जाऊं यह नहीं हो सक्ता अतः कहा गया है कि वह अनष्ट पशु है। पुनः (भुवनस्य, गोपाः) जगत् का रक्षक (सः, अग्नि) वह सब को राह दिखलाने हारा प्रकाशस्वरूप ईश्वर (त्वा) तुमको (सु+विदत्रियेभ्यः) परमज्ञानी अर्थात् मुक्त (एतेभ्यः+पितृभ्यः÷देवेभ्यः) इन देव पितरों को (परिददत्) देवे अर्थात् जहां मुक्त जीव हैं वहां तुम को स्थापित करे। इस से मुमूर्षु को शान्ति दीगई कि वह तुम को अच्छी गति देवेगा और मुक्त जीवों के साथ तुम भी मिलोगे।

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

आयुर्विश्वायुः परिपासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४॥

(आयुः+विश्वायुः) व्यापक, सर्वत्र व्यापक वह देव (त्वा+परि+पासति) तुम को सब तरह से पाले । (पूषा) वह पोषयिता ईश्वर (पुरस्तात्) तुम्हारे आगे वर्तमान है वह (त्वा) तुम को (प्रपथे) मार्ग में (पातु) रक्षा करे (यत्र+सुकृतः आसते) जहां सुकृत अर्थात् सुकर्म्म करने हारे रहते हैं और (यत्र+ते+ययुः) जहां वे अपने धर्म्मबलसे जाते हैं या गये हुए हैं । (सविता+देवः) सब का प्रेरक पहुँचाने हारा वह ईश्वर (त्वा)तुम को (तत्र+दधातु) वहां स्थापित करे । आयुः,-आयाति आगछति सर्वत्र व्याप्नोतीति । विश्वायुः, विश्वमागच्छति व्याप्नोतीति विश्वायुः । सविता–प्रेरयिता प्रापकः । यहां कहा गया है कि वह ईश्वर सर्वत्र है तुम को अच्छे प्रकार मार्ग में रक्षा कर के उत्तम लोक में लेजायगा । अथवा वह आप आयुर्दा देने वाला है इस से भी उत्तम आयु तुम को देगा । हे जीव ! इस हेतु इसी की शरण जाओ

पूषमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥५॥

(पूषा) वह पोषयिता ईश्वर (सर्वाः+इमा+आशाः अनु×वेद) इन सब दिशाओं को आनुपूर्विक जानता है (सः+अस्मान्) वह हम को (अभयतमेन) अतिशय निर्भय मार्ग से (नेषत्) लेचले । वह कैसा है (स्वस्तिदाः) कल्याणप्रद । पुनः–आघृणिः) परमकृपालु अथवा परम तेजस्वी । (सर्ववीरः) सब के प्रेरणा करनेहारा (अप्रयुच्छन्) अप्रमादी अर्थात् सवर्था निरालस्य, पुनः (प्रजानन्) सब के शुभाशुभ कर्मों का जानने हारा, ऐसा जो परमेश्वर है वह—(पुरः+एतु) मेरे आगे २ चले । यदि पढ़ सके तो मुमूर्षु इस ऋचा को पढ़के ईश्वर से एकाग्र हो प्रार्थना करे और अपने धर्म्माधर्म पर पश्चात्ताप करे ।

प्रपथे पथा मजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ६

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Siddhanta eGangotri Gyaan Kosha

(पथाम्) सब मार्गों में से (प्रपथे) उत्तम मार्ग में (पूषा+अजनिष्ट) वह पूषा वर्तमान है (दिवः+प्रपथे) द्युलोक के उत्तम मार्ग में (पृथिव्याः+प्रपथे) पृथिवी के उत्तम मार्ग में वह विद्यमान है और (उभे+प्रियतमे) (सधस्थे) दोनों प्रियतम स्थान में (अभि+चरति) विचरण करता है और (प्रजानन्) सब की सब दशा जानता हुआ वह (आ+चरति) सुकर्म्मी—पुरुषों के अनुकूल आचरण करता है। (परा, चरति, च) दुष्कर्मी पुरुषों के प्रतिकूल आचरण करता है।

इतिश्री मिथिलादेशान्तर्गत दरभंगा—निकटस्थ 'चहुटा' ग्राम निवासि-
शिवशङ्कर शर्म्मा विरचितः श्राद्धनिर्णयः समाप्तः।
चतुर्थः समुल्लासः समाप्तः ॥

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By SIddhanta eGangotri Gyaan Kosha

CC-0, Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Siddhanta eGangotri Gyaan